"सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते"

पृथ्वीराज रासो की विवेचना
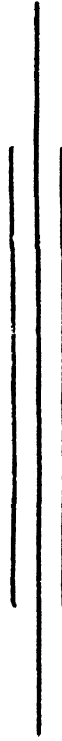
प्रकाशक

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

विक्रम सम्वत् २०१५

परामर्श-मंडल के सदस्य-

(१) डा० मोतीलाल मेनारिया एम्० ए०, पी एच्० डी०, उदयपुर

(२) डा० गोपीनाथ एम्० ए०, पी एच्० डी०, उदयपुर

(३) प्रो० विष्णुराम नागर एम्० ए०, उदयपुर

(४) श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल एम्० ए०, उदयपुर

सम्पादक—

श्री मोहनलाल व्यास शास्त्री, निर्देशक सा० सं०

श्री नाथूलाल व्यास, सहायक निर्देशक सा० सं०

प्रकाशक

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

वि० सं० २०१५ (ई० १९५८)

प्रतियाँ १०००

मूल्य १५) रू०

मुद्रकः—विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर (राजस्थान)

दो शब्द

साहित्य-संस्थान, राजस्थान-विद्यापीठ, उदयपुर ने वर्षों के परिश्रम से "पृथ्वीराजरासौ" का कविराव श्री मोहनसिंहजी द्वारा सम्पादन करवाया, इस प्राथमिक सम्पादन के बाद यह अनुभव किया गया कि पृथ्वीराजरासौ के सम्बन्ध में "अवलोकन" प्रकाशित किया जाय।

"पृथ्वीराजरासौ" ऐतिहासिक दृष्टि से विवादास्पद काव्य-ग्रन्थ है, सच तो यह है कि पृथ्वीराजरासौ भारतवर्ष के एक महत्त्वपूर्ण सन्धि-काल का महाकाव्य हो गया है। भारतीय साहित्य में यह परम्परा अविच्छिन्न मिलती है कि युग का समस्त प्रतिबिम्ब करने वाले महाकाव्य प्रणीत होते रहते हैं। महाकवि चन्द बरदाई और उनका महाकाव्य तत्कालीन भारतीय समाज का जीता-जागता प्रतिबिम्ब ही है। रामायण और महाभारत के बाद यदि किसी महाकाव्य ने जाति के जीवन का प्रतिनिधित्व किया है, तो मेरे मत से वह पृथ्वीराज रासौ है।

हिन्दी-काव्य के बीज ग्रन्थ के रूप में भी पृथ्वीराज रासौ का आधारभूत महत्त्व है। भाषा एवं युगीन जीवनाऽभिव्यक्ति की 'दृष्टि से हम 'पृथ्वीराज रासौ' द्वारा तत्कालीन भारत का मानो सजीव अनुभव कर सकते हैं।

परन्तु यह सब होते हुए भी "पृथ्वीराज रासौ" ऐतिहासिक दृष्टि एवं कसौटी से शंकाओं और उनके अनेक समाधानों एवं पुनः शंकाओं का विवाद और विवेचना का ग्रन्थ हो पड़ा है। ऐतिहासिक दृष्टि से "पृथ्वीराजरासौ" से ही तथ्य खोजना वैज्ञानिक, ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं ठहरता। फिर प्रमुखतया काव्य-ग्रन्थ से इतिहास बटोरना जहाँ सम्यक् नहीं, वहाँ इतिहास के मूलाधारों एवं उनकी कसौटियों की दृष्टि से भी काफ़ी दुस्साहसपूर्ण प्रयत्न होगा। इतिहास के सिद्ध ग्रन्थों के भी पुनर्सम्पादन की आवश्यकता रहती है और नये सिद्ध तथ्यों से मण्डित उनके संस्करण करने अनिवार्य हो जाते

हैं। तब हम "पृथ्वीराजरासौ" से महाभारत की भाँति शुद्ध और ठोस ऐतिहासिक तथ्य खोजने का प्रयत्न करें, मेरे मत में उचित नहीं है। बहुत तो, "पृथ्वीराजरासौ" हमें तत्कालीन ऐतिहासिक मार्ग-दिशाओं की सूचना कर सकता है; और कुछ तथ्य जो काव्य-कथानक के अभिन्न अंग की भाँति अंगीकार किये गये हों, उनको बता सकता है।

अतः इस अवलोकन-ग्रन्थ के सम्पादन की नीति स्पष्टतः यही रही है कि ऐतिहासिक विवादास्पद मतों को देदिया जाय, और "पृथ्वीराज रासौ" सम्बन्धी अधिकारी विद्वानों के प्रसिद्ध एवं अन्य आवश्यक लेखों को सम्पादित कर यह "पृथ्वीरारासौ अवलोकन" तैयार किया गया है।

साहित्य-संस्थान के विद्वानों ने इस ग्रन्थ को तैयार करने और विद्यापीठ प्रेस के कार्यकर्त्ताओं ने इसे मुद्रित करने में जो अथक परिश्रम किया है, उसको दाद दिये बिना मैं नहीं रह सकता।

राजस्थान विद्यापीठ,
उदयपुर (राजस्थान)

जनार्दनराय नागर
वाइस चांसलर

प्रस्तावना

'पृथ्वीराजरासो' हिन्दी साहित्य की महान् निधि है, इसमें कोई सन्देह नहीं है; परन्तु यह स्पष्ट होगया है कि इसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त अंश भी प्रवेश पागया है।

इस दीर्घकाय रासो ग्रन्थ के विषय में आज से कई वर्ष पूर्व तक यह मान्यता रही कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लिए वह प्रामाणिक वस्तु है। इसकी विशिष्ट काव्य शैली सदैव ही लोगों को मुग्ध करती रही। राजपूत जाति का यह निस्सन्देह गौरवाङ्कित कीर्तिभण्डार है। फलतः उन्होंने तथा उनके आश्रयी कवियों ने उसे अपने संग्रह में स्थान देना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। आज से लगभग सातसौ पच्चास वर्ष का रचित मूल ग्रन्थ वस्तुतः उसी रूप में सुरक्षित रहना कठिन बात है। इसलिए कालान्तर में अठारहवीं शताब्दी विक्रमी तक उसके मूल रूप में बड़ा परिवर्तन होकर क्षेपक अंश इतना घुल-मिल गया कि उसका ठीक-ठाक दिशा में तारतम्य निकालना सहज बात नहीं है।

युद्धकालीन अवसरों पर रासो के छन्द वीरों का साहस उद्दीपन करने में संजीवन शक्ति का काम देने लगे। इस निधि का प्रचारित और सुरक्षित रखने में भारत के जैन साधुओं की भी सुरुचि रही, जिससे संघर्षमय युग में भी रासो सुरक्षित रह सका। एवं पाश्चात्यदेशवासी कर्नल टॉड जैसा इतिहास और पुरातत्त्व का अनुरागी विद्वान् भी अपने गुरु यति ज्ञानचन्द्र के द्वारा उसका वर्णन, काव्यशैली तथा विशिष्टता आदि को देख इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने समग्र ग्रन्थ को बड़े चाव से सुना और उसकी प्रशंसा अपने प्रसिद्ध राजस्थान के इतिहास ग्रंथ में इस प्रकार किये बिना नहीं रहा—

"दिल्ली के अन्तिम हिन्दू महाराजा के वीरतामय इतिहास में, जो उनके भट्टकवि चन्द ने लिखा है, हम लोगों को ऐसे चिन्ह दीख पड़ते हैं, जिनसे यह विदित होता है कि उसके जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ, महमूद और शहाबुद्दीन के बीच

के समय (सन् १०००–११९३ ई०) के पहिले उपलब्ध थे; परन्तु अब उनका लोप होगया[१]।"

"···चन्द जो भारत के नामी कवियों में से अन्तिम कवि था, अपने ग्रन्थ की भूमिका में लिखता है–'मैं राज्य शासन के नियम, व्याकरण और वाक्य-योजना के सूत्र देशी तथा विदेशी राजदूतों की व्यवहार सम्बन्धी बातें लिखूंगा' और वह अपना संकल्प उस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर उपाख्यानों के मिस (बहाने) इन विषयों की व्याख्या देकर पूरा करता है[२]।"

"चन्द ने अपने रचे हुए पृथ्वीराज के वीरता विषयक इतिहास में बहुत सी ऐतिहासिक और भौगोलिक बातों का वर्णन, अपने महाराजा की लड़ाइयों के वृत्तान्त में दिया है, जिन लड़ाइयों को उसने स्वयं अपनी आँखों से देखा था; क्योंकि वह महाराजा का मित्र, राजदूत और एलची था। अन्त में अत्यन्त ही शोक-पूरित काम उसने यह किया कि वह महाराजा को अप्रतिष्ठा से बचाने के लिये उनके मरने में भी सहायक हुआ था। मेवाड़ के (महाराणा) बड़े अमरसिंह ने, जो साहित्य के सहायक, शूरवीर और नीतिज्ञ थे, चन्द के रचे हुए कवितावद्ध इतिहासों को एकत्र किया था[३]।"

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी कर्नल टॉड ने चौहानों के इतिहास में दिये हुए सम्वतों का थोड़ा बहुत परीक्षण किया और लिखा कि –

The exploits of Beesildeo from one of books of Chund the bard. The date assigned to Beesildeo in the Rasa (S. 921) is interpolated– a vice, not uncommon with the Rajpoot bard, whose periods acquire verification from less mutable materials than those out of which he weaves his song. (Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. II, p. 582, Calcutta edition).

---

१ खड्गविलास प्रेस बांकीपुर (पटना) से प्रकाशित हिन्दी टॉड राजस्थान, भूमिका, पृ० ५।

२ वही, पृ० ११।

३ वही, पृ० ११–१२

आगे जाकर उन्होंने इस सम्बन्ध में हाड़ा वंश के इतिहास के प्रसङ्ग में अपने ग्रन्थ में स्पष्ट किया कि—

"The Hara Chronicle says S. 981, but by some strange, yet uniform error all the tribes of the Chohan antidate their chronicles by a hundred years. Thus Beesildeo's taking possession of Anhulpoor Patan in 'nine hundred fifty, thirty and six' (S. 986) instead of S.1086. But it even pervades Chund, the poet of Prithviraj, whose birth in made 1115 instead of S.1215, and here, in all probability, the error commenced, by the ignorance (wilful we can not imagine) of some raymer (Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. II, p.887. footnotes 3, Calcutta edition).

फिर भी कर्नल टॉड इस ग्रन्थ पर इतने मुग्ध थे कि उन्होंने उसके २५,००० छन्दों का अँग्रेजी भाषा में अनुवाद कर ही डाला और वह एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल को प्रकाशन के लिये दे ही दिया।

कर्नल टॉड के समय में राजस्थान के बूँदी राज्य में एक महान् प्रतिभाशाली विद्वान् चारण महाकवि मिश्रण श्री सूर्यमलजी हुए थे, जिनका जन्म वि० सं० १८७२ और मृत्युकाल वि० सं० १९२५ है। उक्त विद्वान् महाकवि ने अपने आश्रयदाता तत्कालीन बूँदी नरेश महाराव राजा रामसिंहजी की इच्छानुसार चौहानों और उसकी हाड़ा शाखा के इतिहास को प्रकाश में लाने के लिये 'वंशभास्कर' नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की, जिसमें उपर्युक्त महाकवि ने चौहानों का प्राचीन इतिहास पृथ्वीराजरासो से ही ग्रहण किया है; वे रासो में दिये हुए बीसलदेव के श्राप वश राक्षस होने का वर्णन अप्रामाणिक मानते हैं और पृथ्वीराज के जन्म विषयक ग्रह स्थिति पर भी विचार करते हुए उसको भी ठीक नहीं बतलाते तथा कुण्ठित होकर कविचन्द की योग्यता पर भी आक्षेप करते हैं:—

(१) बीसल करि चालुक विजय, आलय निज इम आय।
राच्यो सतत अनंग रस, ललना जन हिय लाय ॥ ४३ ॥
सो गौरी उरुजा सुता, पुष्कर गिरि तप प्रीति ॥
कोउक सिद्ध प्रसंग करि, जोग भजत निज जीति ॥ ४४ ॥

बरखा गेह बिताय नृप, पुष्कर सरद पधारि ॥
गिरि कंदर मंदर गही, निलज सती वह नारि ॥ ४५ ॥
······अक्खिय रासे मांहि यह, बंदो चंदहु बत्त ॥
बनिक सुता के साप बल, रक्खस भो अघ रत्त ॥ ४७ ॥
मागध लोकहु यह हि मत, मन्नत लिखत समान ॥
भासैं मुहि ससय भरयो, अति समीप आख्यान ॥ ४८ ॥
······कहि चंद सुहि हम कहत, करहु प्रमांन न कोहु ॥ ५२ ॥

वंशभास्कर, चतुर्थराशि, दशम मयूख पृ० १२६८–६६ ।

सतरुद्र स संक्करि जात साल, क्रम लगत पद्रहम अब्दकाल ॥
पख अभित द्वितीया राध पाय उडुचित्रा गोप्पति बार आय ॥ ४ ॥
जिम सिद्धियोग गर करन जत्थ, तिम रहत रत्ति पल नवति तत्थ ॥
अंसादि त्रि ख ख अविलग्न आत, प्रकट्यो सिसु आवत ढिग प्रभात ॥ ५ ॥
दूजै कुज पंचम ससि उदार, बैठो सनि अष्टम लग्न बार ॥
सुर गुरु रु सुक्र बुध दसम संग, तम आय आय-व्यय तिम पतंग ॥ ६ ॥
ए खेट लग्न कुंडलि अधीन, है चंद कथित निज भुक्ति हीन ॥
अंतर यह दीसत तदपि अत्थ, रवि कवि बुध मध्यम सतत रुत्थ ॥ ७ ॥
जो चंद दसम भृगु बुध जताय, जंपिय रवि द्वादश भाव जाय ॥
बिनु गनित हूँ न संसय विनास, श्रम अधिक कटावत व्यर्थ स्वास ॥ ८ ॥
माघहि के भृगु बुध राध मांहि, अक्खेसु असंगत बत्त आहिं ॥
वदि लग्न अविरुभख रवि बताय, निस जन्म कह्यो सो पैन न्याय ॥ ६ ॥
बलि चित्रा तारा तदिन बुल्लि, भाख्या ससि मृगपति रासि भुल्लि ॥
अरु चैत विसद अष्टम अनेह, इम अक्खि भरनि नच्छत्र एह ॥ १० ॥
नवमी दिन बहुला कहि निलज्ज, कहियो पुनि रोहिनि दसमि कज्ज ॥
कनउज्ज खंड बिच यह कुरीति, पै मूढ करत तो सहु प्रतीति ॥ ११ ॥
बिक्खहु सु सूरि रचि अंक आत, इन दिनन कबहु ए उडुन आत ।
इत्यादि असंगत बहुत ओर, जंपिय तिहि केवल प्रसभ जोर ॥ १२ ॥
सब कोन गनें लहि यह प्रसंग, भाख्यो सदीय बिबुधत्व भंग ॥
कवि भो पढि प्राकृत शब्द केक, इतरन सक्यो सु कछु सिक्खि एक ॥ १३ ॥
कवि नप नट तनु पटि होत कूर, सब जानि बजत ए नाम सूर ॥

प्रभु कोन करत चंदहिं प्रमान, इत्यादि लिखी वुध बनि अजान ॥ १४ ॥
वर इक्क ताम रमणीर बानि, प्राकृत पद सगति कछु प्रमानि । ...॥ १५ ॥
वंश भास्कर, चतुर्थ शि. चतुर्दशमयूख पृ० १३३१-१३३३ ।

ई० स० १८७६ के लगभग प्रसिद्ध पुरातत्वान्वेषक डा० व्हूलर संस्कृत ग्रन्थों की खोज के सम्बन्ध में काश्मीर गये। वहाँ उन्हें शारदालिपि में भोजपत्र पर लिखित 'पृथ्वीराजविजय' नामक अपूर्ण संस्कृत ऐतिहासिक काव्य मिल गया। बतलाया गया कि तैरहवीं शताब्दी में होने वाले जयानक नामक काश्मीरी विद्वान् ने प्रसिद्ध महाराजा पृथ्वीराज चौहान के दरबार में रहते हुए इस महाकाव्य की रचना की थी और चवदहवीं शताब्दी में वहीं के विद्वान् जोनराज ने जो द्वितीय राजतरंगिणी का रचनाकार था, उस पर संस्कृत की टीका की। इस प्रकार चवदहवीं शताब्दी विक्रमी तक निर्मित 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य का अस्तित्व स्थिर हुआ और वह चौहानों के इतिहास के लिए उपयोगी माना गया; क्योंकि 'पृथ्वीराज-विजय' में अंकित चौहानों की वंशावली उसही समय के प्राचीन शिलालेखों आदि से प्रायः मिल गई तथा महाराजा पृथ्वीराज और उनके पिता सोमेश्वर आदि का समय भी शिलालेखों से ठीक-ठीक मिल गया। पृथ्वीराज की माता कर्पूरदेवी चेदि राजवंश की राजकुमारी होना लिखा मिला, जिसकी पुष्टि हम्मीर महाकाव्य और सुर्जन चरित से होगई-इत्यादि। डा० व्हूलर ने इस ग्रन्थ का अध्ययन कर यही सार निकाला कि अजमेर के अन्तिम चौहान नरेश पृथ्वीराज तृतीय और उनके पूर्वजों के इतिहास के लिये यही एकमात्र विशिष्ट वस्तु है, एवं उसके समक्ष पृथ्वीराजरासो की कोई उपादेयता नहीं है। फिर उन्होंने एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को लिख कर रासो को छापना बन्द करवा दिया। बावजूद इसके कि जॉनबीम्स, हार्नली, ग्रियर्सन आदि रासो पर अधिक मान्यता रखते थे।

रासो के विषय में डा० व्हूलर ने अपना विरोधी मत स्थिर करने में जोधपुर के कविराजा मुरारीदानजी और उदयपुर के कविराजा श्यामलदासजी से भी सम्मति ली थी। दोनों विद्वानों ने रासो की कथाओं को इतिहास के विरुद्ध बतलाया। तदनन्तर 'वीर विनोद' के इतिहास-निर्माण-समय में कविराजा श्यामलदास जी ने रासो का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन कर उसके विरोध में कई तर्क उपस्थित कर एशियाटिक सोसाइटी बंगाल-कलकत्ता के जर्नल में अंग्रेजी भाषा में एक निबन्ध छपवाया, जिसमें रासो की कई भूलें प्रकट हुईं। फिर उन्होंने इस निबन्ध

का हिंदी अनुवाद 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' शीर्षक से सन् १८८७ में प्रकाशित कराया उससे साहित्यिक जगत् में नूतन हल-चल उत्पन्न होगई।

उस समय सौभाग्य से रासो के समर्थक विद्वान् पं० मोहनलाल विष्णुलाल-जी पंड्या उदयपुर में ही मिल गये और उन्होंने कविराजा के तर्कों का समुचित रूप से उत्तर देने की चेष्टा की। अपनी दलीलों के साथ पंड्याजी को यह तो स्वीकार करना पड़ा कि रासो क्षेपक अंगों से विहीन नहीं है। उसमें जो सम्वत् दिये हैं वे विक्रम संवत् से पृथक् सम्वत् हैं, जिसमें १०० वर्ष जोड़ने पर रासो में दिये हुए सम्वतों की संगति बैठ जाती है। पंड्याजी की युक्तियों में कितनीक ऐसी थीं, जो अधिक वजनदार नहीं थीं। फलतः डा० स्मिथ जैसे इतिहासवेत्ताओं पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और रासो के विषय में भ्रान्ति का निवारण नहीं हुआ। इस पर उन्होंने तथा बाबू श्यामसुन्दरदास ने मिलकर संयुक्त सम्पादन से पृथ्वीराजरासो का बृहत् संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित करवाया। कहा गया कि यह वि० स० १६४२ की लिखित वस्तु है; किन्तु इसके संवत के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं।

उदयपुर के बाबू रामनारायणजी दूगड़ ने भी, जो विद्वान् और मनस्वी पुरुष थे, रासो ग्रन्थ का अध्ययन किया और उन्होंने रासो की कथाओं पर 'पृथ्वीराज चरित' नामक पुस्तक लिखकर उसकी भूमिका में सप्रमाण युक्तियाँ देकर रासो को अनियमित रीति से लिखित होना बतलाया (पृ० च० भूमिका, पृ० १-८८, प्रकाशित ई० स० १८९६)।

इसके बाद रासो के विषय में पक्ष और विपक्ष में अन्य कई विद्वानों ने कलम उठाई। एक पक्ष रासो का पूरा समर्थक और दूसरा रासो का पूरा विरोधी बना समर्थकों में श्री बाबूश्यामसुन्दरदास मिश्रबन्धु आदि प्रमुख थे और विरोधियों में श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा, आ० रामचन्द्र शुक्ल आदि। एक ऐसा भी दल रहा, जो निरपेक्ष भाव से था। उसने विरोधियों की दलीलों को ठीक समझा और रासो के संबंध में खोज का काम जारी रक्खा। येनकेन प्रकारेण सब ने ही यह तो मान लिया कि रासो क्षेपक अंशों से परिपूर्ण है और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो क्षेपकों से परिपूर्ण बृहद् कलेवर है।

इतिहास की कसौटी पर रासो की जाँच करने पर उसके विषय में विरोधी विद्वानों ने जो आक्षेप किये हैं, वे अनर्गल और उपेक्षणीय नहीं हैं। यदि विरोधी

विद्वान् रासो की भ्रान्ति मूलक बातों पर प्रकाश नहीं डालते तो 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की भाँति 'पृथ्वीराजरासो' (ना० प्र० सभा, काशी द्वारा प्रकाशित) ही इतिहास का एकमात्र सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता और तत्कालीन शिलालेखों आदि की सत्यता के आगे पृथ्वीराज रासो की भ्रान्ति मूलक बातें बनी ही रहतीं।

रासो के विषय में प्रायः सब ही अध्ययन शील विद्वानों ने यह भी मान लिया है कि इसके कई संस्करण हुए। परन्तु जब से श्री मुनि जिनविजयजी ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' से महाराज पृथ्वीराज चौहान तृतीय के मन्त्री कयमास वध सम्बन्धी चार छन्द खोज निकाले, तब से रासो के सम्बन्ध में विलक्षण क्रान्ति होकर अधिकांश प्रमुख विद्वानों की प्रबल धारणा होगई कि मूल रासो की रचना क्या आश्चर्य है कि अपभ्रंश में हुई हो, जो वर्तमान रासो की भाषा से बहुत दूर है, एवं अब तक रासो की जितनी भी प्रतियाँ उपलब्ध हैं, वे अपने को वि० सं० १६०० के पूर्व की होना सिद्ध नहीं करतीं। जोधपुर के श्री नेनूरामजी ब्रह्मभट्ट के यहाँ रासो की एक प्रति वि० सं० १४५५ आश्विनसुदि ४ की लिखित बतलाई जाती है, जो खरतरगच्छ के पंडित रूपजी (शोभा के शिष्य) द्वारा कपासन (मेवाड़) में लिखी गई। परन्तु यह प्रति साक्षर वर्ग के सामने नहीं लाई गई, ऐसी अवस्था में उसका मूल्य अंकित नहीं किया जा सकता कि वह किस कोटि की है और उसमें दिया हुआ सम्वत् १४५५ ठीक भी है। अभी थोड़ा ही समय हुआ उदयपुरस्थ प्रतापसभा के अवैतनिक प्रधान मन्त्री श्री शिवनारायणजी शर्म्मा के यहाँ पृथ्वीराज रासो की एक प्रति वि० सं० १७०२ की लिखी हुई देखने में आई है। इसमें ४५ समय हैं और वह मेवाड़ के खेराड़ प्रदेश के जहाजपुर स्थान के समीपवर्ती रामदुर्ग में लिखी गई। यह प्रति साक्षर वर्ग की दृष्टि में नहीं आई और बरसों तक लुप्त रही। उसके पत्र संख्या ३५३ में ग्रन्थ प्रशस्ति इस प्रकार दी है, जो अविकल रूप से उद्धृत करते हैं।

"... इतिश्री कविचन्द विरचिते प्रिथीराज रासौ पातिसाह साहबदीन गारा। राजा प्रिथीराज चंद बरदाई त्रय वधनोनाम चऊतालीसम षंड: ॥ ४४ ॥ इति प्रिथीराज रासो सम्पूर्णः" शुभ भवतु। लेखक पाठकयोः ॥ सम्वत् १७०२ वर्षे शाके १५६७ प्रवर्तमाने दक्षणायनगते श्री सूर्ये। वर्षारितौ। महामांगल्यप्रद भाद्रपद मासे शुक्लपक्षे १४ चतुर्दश्यां तिथौ। सोमवारे लिषतं श्री संडेरगछे। श्री यशभद्र सूरि अन्वये उपाध्याय श्री चारित्रराज तत्सिष्यउ मानसंघ अमरासहितेन लिषतं। स्ववाचनार्थं। परोपकाराय ...... श्री रस्तु। लिषतं रामदुर्गे। जाजपुर प्रत्या सन्ने। षैराट देशे।

रासो के क्षेपक अंशों के कथन पर विचारशील विद्वानों के मत से यह प्रत्यक्ष हो गया कि उसके भिन्न-भिन्न संस्करण, भिन्न-भिन्न स्थानों में होते रहे और मूल रासो का अंश प्रच्छन्न होगया। रासो में छन्द संख्या का उल्लेख करते हुए कोई-कोई विद्वान् उसकी पांच हजार[1] अथवा सात हजार[2] तथा एक लाख[3] छन्द संख्या तक होना बतलाते हैं। इनमें से कौनसी बात ठीक है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्राप्त रासो की प्रतियाँ तथा वृत्तविलास में इसी प्रकार के पाठ मिलते हैं। इनसे निश्चय होगया कि वर्तमान नागरीप्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित रासो ही नहीं, प्रायः सब ही प्रतियाँ क्षेपक-अंश से खाली नहीं है। यही-नहीं क्षेपक अंशों ने मूल रासो के छन्दों में भी, जो अपभ्रंश में थे, उसको दूर लेजाकर खड़ा कर दिया। उस ग्रन्थ में जिसमें इतनी अधिक मिलावट होगई हो और मूल रूप से दूर चला गया हो, उसको कोई-कोई विद्वान् कृत्रिम कहदें, तो कह भी सकते हैं और हमको उनसे असंतुष्ट नहीं होना चाहिए। क्योंकि रासो प्राचीन और प्रामाणिक वस्तु थी, जिसमें पीछे से विद्वानों ने नये-नये छन्दों में रचना कर मिलावट करदी और उसका रूप विकृत कर उसको भ्रष्ट कर दिया। अस्तु, उसका प्रभाव उतना नहीं रहा, जितना कि होना चाहिए। रासो के मूल रूप में विकृति होने का दोष हम चन्द पर नहीं लगा सकते और न यह भी कह सकते हैं कि चन्द नामका कोई कवि हुआ ही नहीं; क्योंकि पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह से प्राप्त छन्दों में 'चन्द बरद्दिया' नाम स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। एक बात और भी है कि पुरातनप्रबन्ध के केवल मात्र चार छन्दों से ही उसकी वास्तविकता एवं कलेवर

---

१. देखो ऊपर पृ० ५१४-१५, कविराव मोहनसिंहजी द्वारा लिखित 'पृथ्वीराज रासो की शंकाओं का समाधान' नामक निबंध, बीकानेर तथा देवलिया वाली प्रतियों का उल्लेख, जिनमें 'पंचसहस' शब्द पाठ होना बतलाया है।

२. सत्त सहस नख सिख सरिस, सकल आदि मुणि दिक्खि।
घटि बढि मत्तह को पढौ, मुहि दूसन न विसिक्खि॥
रासौ, वि०सं० १७०२ की प्रति, आ०पो०, पत्रा २, पृ० १

३. एक लाख रासो कियो, सहस पंच परिमान।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु, जाहर सकल जिहान॥
ना०प्र०सभा द्वारा प्रका० ना०प्र०पत्रिका, भाग ५, पृ० १६७।

आदि पर निश्चयपूर्वक कोई मन्तव्य ठीक-ठीक स्थिर नहीं हो सकता है। इतना सब होते हुए भी यह बात साफ है कि रासो की कथाएँ क्षेपकों से परिवेष्टित होने पर भी धारावाही रूप से चलती हैं और ओज कम नहीं होता। "श्री दशरथ शर्मा, श्री अगरचन्द नाहटा, कविराव मोहनसिंह आदि विद्वानों की इस मान्यता से सहमत होना चाहिये कि मूल में रासो का इतना अधिक विशाल कलेवर न रहा होगा।

उदयपुर के कविराव मोहनसिंहजी ने रासो का अध्ययन कर मन्तव्य प्रकट किया है कि मूल रासो को संख्या पाँच हजार छन्द से अधिक नहीं होनी चाहिए। स्वयं कविवर चन्द अपनी रचना दोहा, छप्पय, साटक और गाथा छन्दों में होने का उल्लेख करता है। अस्तु अवशेष छन्द प्रक्षिप्त अंश है, जो कालान्तर में रचकर मिला दिये गये हैं। अपने सम्पादित टीका सहित पृथ्वीराज रासो में (जो साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर द्वारा प्रकाशित हुआ है) उन्होंने उपर्युक्त चार जाति के छन्द ही ग्रहण किये हैं और अवशेष निकाल दिये हैं। कविरावजी की धारणा के अनुसार अन्य जाति के छन्द ग्राह्य न होने एवं बाणवेध को छोड़ देने पर भी बृहद् रासो के सारे समय की पूर्ति हो जाती है जो ठीक है; क्योंकि कथानक में अन्तर नहीं आता है। चौहानों के अग्निवंशी नहीं होने के कथन का भी समाधान होकर रासो से ही चौहान सूर्यवंशी प्रकट होते हैं। इनके सम्पादित रासो से एक बात और नई ज्ञात हुई कि रासो में महाराजा पृथ्वीराज चौहान तृतीय की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश समरसिंह से होना लिखा है, वह वि० सं० १३३०-५८ तक होने वाला गुहिलवंशी नरेश समरसिंह (तेजसिंह का पुत्र) नहीं था। प्रत्युत् बारहवीं शताब्दी के आस-पास होने वाला गुहिलवंशी राजा विक्रमसिंह या विक्रमकेसरी था और उसका पुत्र रणसिंह था, जिससे मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेशों की दो शाखा—'राणा और रावल' हुई। इसकी पुष्टि में तर्क का ही आश्रय लिया गया है, एवं रासो के छन्दों को ही प्रमाणरूप में ग्रहण कर विक्रमसिंह को समरविक्रम', 'समरसाहस' पराक्रमराज आदि नामों से उल्लिखित होना बतलाया है। विक्रमसिंह के मेवाड़ तथा अन्यत्र कोई शिलालेख नहीं मिले हैं। अजाहरी के वि० सं० १२२३ के लेख में 'रणसिंह' की महामंडलेश्वर और राजकुल

उपाधि देख डा० देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर ने बतलाया है कि वह 'रणसिंह' मेवाड़ का गुहिलवंशी नरेश हो[1]।

मान्यवर ओझाजी, अजाहरो को अजारी होना लिखकर उसको सिरोही प्रदेश के अन्तर्गत होना बतलाते हैं। तथा उल्लेख करते हैं—"इस (गोपालजी के) मन्दिर से बाहिर एक बावड़ी के पास परमार राजा यशोधवल के समय का वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) का, चंद्रावती के राजा रणसिंह के समय का वि० सं० १२२३ (ई० स० ११६६) का, तथा परमार राजा धारावर्ष के समय का वि० सं० १२४७ (ई० स० ११९०) का, लेख पड़ा हुआ मिला है" (सिरोही राज्य का इतिहास, पृष्ठ २७, ई० सन् १९११)।

इस लेख में रणसिंह का वंशसूचक कोई शब्द नहीं होने से यह ठीक-ठीक निश्चित नहीं किया जा सकता कि अजाहरी के लेख का रणसिंह मेवाड़ का गुहील-

---

1 "Appendix to Epigraphia Indica and record of the Archaeol ogical survey of India, Vol. XIX to XXIII. A list of the Inscriptions of Northern India and Brahmi and derivative scripts from about to A. C. by Prof. D. R. Bhandarkar M. A., Ph. D.

P. 41, No. 324. V. 1223 Ajhahari (Jodhpur State, Rajputana) now Ajmer, Musium, Inscripttion referring it sclf to the reign of Mahamanadale svara Rajakula Ransideve * regeigning Cha (m) dapali (probably the same at Chamdravati) Noticed by D.R. Bhandarkar, P. R. A. S. W. C. 1910-11, P. 39.

Sambat 1223 Phalgunasudi 13, Ravau=Sunday, 5 th March, A. D. 1167.

Foot notes * To be identified with the Raval Ramsimhadeve of the Guhilot dy nasty over Mewar.

वंशी नरेश रणसिंह हो, क्योंकि इधर का सारा (अर्बुद) प्रदेश, तैरहवीं शताब्दी विक्रमी में परमार नरेशों के अधिकार में था और उनकी राजधानी आबू के नीचे चन्द्रावती नामक नगरी थी। ये परमार नरेश इस काल में बड़े शक्ति-शाली थे, जो इतिहास प्रसिद्ध बात है।

चौहान नरेश महाराजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज के समय का निर्धारण करते हुए श्री ओझाजी, मेवाड़ तथा वागड़ के नरेश सामन्तसिंह को सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज का समकालीन मान कर अनुमान करते हैं कि रासो में वर्णित समरसिंह, सामंतसिंह हो; क्योंकि दोनों के नामों में अधिक अन्तर नहीं है। श्री ओझाजी के अनुमान पर अथवा अपनी विवेक बुद्धि से श्री गोवर्द्धन शर्मा तथा कुंवर देवीसिंह मंडावा, रासो के समरसिंह को सामन्तसिंह होना निश्चित रूप से मानते हैं।

पुरातत्वानुसंधान से अब तक प्राप्त मेवाड़ तथा वागड़ के शिलालेखों और दानपत्रों से प्रकट है कि अजमेर नरेश सोमेश्वर और पृथ्वीराज तृतीय के समकालीन निम्नलिखित मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश थे, जिनकी राजधानी एकलिङ्गजी के निकटवर्ती नागदा नामक स्थान था—

(१) महाराजधिराज सामन्तसिंह।

क—मेवाड़ के सायरा पर्गने के अन्तरगत तरावलीगढ़ के निकटवर्ती घटा-माता के मन्दिर के छबने का वि० सं० १२२४ चैत्रसुदि ४ रविवार, रोहिणी नक्षत्र का लेख। इस प्रस्तर लेख को श्री नरेन्द्र व्यास एम० ए०, ने जो वर्तमान समय में दिल्ली में सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट के मिनिस्टर ऑफ एज्यूकेशन के साइंटीफिक रिसर्च विभाग में असिस्टेन्ट हैं, देखा और उनके द्वारा ही साहित्यसंस्थान में सूचना मिली है।

ख—मेवाड़ के जगत गाँव के देवी के मन्दिर का वि० सं० १२२८ फाल्गुनसुदि ७ गुरूवार का लेख।

ग—डूंगरपुर के बोरेश्वर के शिवमन्दिर का वि० सं० १२३६ का लेख।

(२) कुमारसिंह (सामन्तसिंह का छोटा भाई) इसका लेख नहीं मिला। वह जालोर के सोनगरा चौहान कीतू (कीर्तिपाल) का समकालीन था और वि० सं० १२३६ के पूर्व मेवाड़ का शासक था।

(३) महाराजाधिराज महणसिंह या मथनसिंह—

क—मेवाड़ के कुरावड़ गाँव के समीपवर्ती आट गाँव के टूटे हुए शिवमंदिर का वि० सं० १२३६ चैतसुदि ११ शुक्रवार का लेख, जिसमें महणसिंह की राजधानी नागद्रह (नागदा) होना लिखा है। यह शिलालेख राजस्थान सरकार के पुरातत्वविभाग के वर्तमान स्थानापन्न डाइरेक्टर श्री रत्नचंद्रजी अग्रवाल एम्० ए० ने अभी जुलाई १९५९ में आट गांव में जाकर देखा और पढ़ा है।

ख - मेवाड़ के ईवाल (ईसवाल) गाँव का वि० सं० १२४२ का लेख ईसवाल जो गोगून्दे जाने वाली सड़क पर स्थित एक प्राचीन विष्णुमंदिर केछबने पर अङ्कित है और उपर्युक्त श्री अग्रवालजी ने ही प्रथम उसको देखा और उन्हीं के द्वारा साहित्यसंस्थान को पता मिला।

(४) महाराजाधिराज पद्मसिंह–वि० सं० १२५१ का कदमाल गाँव का से प्राप्त दानपत्र। इस दानपत्र का फोटोचित्र साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ–उदयपुर में सुरक्षित है।

इन शिलालेखों आदि से महाराजा पृथ्वीराज चौहान तृतीय के समकालीन मेवाड़ के इन चारों गुहिलवंशी नरेशों का होना पाया जाता है। इन में से सामन्तसिंह के साथ पृथाकुंवरी का विवाह हुआ या विक्रमसिंह के साथ, यह विषय अनिर्णयात्मक हो बना रहेगा। क्योंकि एक पुरानी ख्यात में पृथ्वीराज की बहिन का विवाह विक्रमसिंह के साथ होना और उसकी चौहान रानी से उत्पन्न पुत्र का नाम रणसिंह होना उपर्युक्त बाबू रामनारायणजी दूगड़ बतलाते हैं। साथ ही वे लिखते है आश्चर्य नहीं कि सामन्तसिंह के साथ पृथ्वीराज चहुवाण का सम्बन्ध हों (रा० रत्नाकर, भाग १, तरङ्ग २, प्रकाशित वि० सं० १९७० =ई० सं० १९१३, पृ० ४३. ६०, ६१ और ६२)।

कविराव मोहनसिंहजी का यह कथन साधार है कि महाराजा पृथ्वीराज चौहान तराइन के अन्तिम युद्ध में वि० सं० १२४९ में वीरगति को प्राप्त हुआ। रासो में इसही प्रसङ्ग में उसकी रानियों के सती होने का उल्लेख विद्यमान है। इस अवस्था में बाणवेध की सारी की सारी कथा प्रक्षिप्त होकर कोई महत्व नहीं रखती। इस कारण से उन्होंने यह वर्णन अपने सम्पादित रासो से बिल्कुल ही हटा दिया है।

साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ से पृथ्वीराज रासो का नवीन संस्करण प्रकाशित होने पर यह आवश्यक समझा गया कि आलोचनात्मक दृष्टि से रासो पर विवेचना स्वरूप एक स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किया जावे, जिससे भ्रान्ति-मूलक सारी बातों का निराकरण होकर उसकी विशेषताएँ, भाषा, काव्य-सौष्ठव आदि विषयों पर समुचित रूप से सही-सही प्रकाश पड़े, एवं उसके ठीक-ठीक रूप का दिग्दर्शन होजावे। तद्नुसार राजस्थान विद्यापीठ द्वारा भारत सरकार के सामने यह योजना प्रस्तुत कीजाने पर वह स्वीकार कीगई और भारत सरकार के शिक्षा विभाग ने इस ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ दस हजार रुपये प्रदान किए।

एक वर्ष से अधिक समय तक राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर, इस बात के लिए प्रयत्नशील रही कि कोई योग्य अधिकारी विद्वान् इस गहन विषय को हाथ में लेकर आलोच्यरूप से रासो पर विवेचनात्मक ग्रन्थ की रचना करे और राजस्थान विद्यापीठ उसको प्रकाशित करे; परन्तु कोई भी समर्थ विद्वान् उसके लिए उद्यत नहीं हुआ कारण कि रासो जैसे विशालकाय और विषद् काव्य-ग्रन्थ की विवेचना लिखना सामान्य बात नहीं है। उसके लिए गंभीर अध्ययन और पर्याप्त समय चाहिये। अतएव इस कार्य को राजस्थान विद्यापीठ ने अपने ही तोर पर उदयपुर के विद्वानों के परामर्श के अनुसार जिनमें डा०मोतीलालजी मेनारिया, एम० ए०, पी एच० डी०, श्री विष्णुरामजी नागर एम०ए०, श्री रत्नचंद्रजी अग्रवाल एम० ए० और डा० गोपीनाथजी एम० ए०, पी एच० डी० सम्मिलित हैं— सम्पूर्ण कराना स्थिर किया, एवं साहित्य संस्थान के निर्देशकश्री मोहनलाल व्यास शास्त्री के संयोजकत्व एवं सामान्य सपादन में साहित्य संस्थान द्वारा ही कार्यारंभ किया गया श्री नाथूलाल व्यास ने ऐतिहासिक सामग्री के संचय एवं सम्पादन कार्य में सहयोग दिया। साहित्य-संस्थान के "पृथ्वीराजरासो" के सम्पादक कविराव श्री मोहनसिंहजी ने ग्रन्थ सम्पादन में महत्वपूर्ण सहकार किया है।

साहित्य संस्थान की ओर से आगे रासो के साहित्यिक तथा ऐतिहासिक अध्ययन सम्बन्धी दो और भाग प्रकाशित करने की योजना है।

प्रस्तुत प्रथम भाग के तीन विभाग किये गये हैं—प्रथम विभाग में विरोधी विचार धारा के विद्वानों के महत्वपूर्ण निबन्ध रखे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

१ कविराजा श्यामलदास उदयपुर–'पृथ्वीराजरासो की नवीनता'।

२ बाबू रामनारायण दूगड़ उदयपुर–'रासो की ऐतिहासिकता'।

३ गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा अजमेर–'अनंद विक्रम सम्वत् की कल्पना' और 'पृथ्वीराजरासो का निर्माणकाल'।

द्वितीयविभाग में रासो के समर्थक विद्वानों की विचारधारा और मन्तव्यों का समावेश किया गया है–,जिसका क्रम इस प्रकार है–

१ प० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या,उदयपुर 'पृथ्वीराज रासे की प्रथम सरक्षा'।

२ श्री गोवर्द्धन शर्मा–'महाकविचन्द और पृथ्वीराज रासो'।

३ कविराव मोहनसिंह उदयपुर–'पृथ्वीराजरासो पर की गई शंकाओं का समाधान'।

तृतीय विभाग में निरपेक्ष विद्वानों की सम्मतियाँ और विचारधारा है। इनमें पाश्चात्य और भारतीय दोनों ही प्रकार के विद्वान् हैं, जिन्होंने रासो पर अध्ययन किया है। इसका क्रम इस प्रकार है–

(१) पाश्चात्य विद्वानों का सम्मतियाँ–गार्सा द तासी जेम्स मोरिसन. प्रो० व्हूलर, और जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन।

(२ भारतीय विद्वान्–

{ श्री गणेश बिहारी मिश्र, एम्० ए० }
{ श्री श्याम बिहारी मिश्र, एम्० ए० } महाकवि चंदबरदाई'
{ श्री शुकदेव बिहारी मिश्र. एम्० ए० }

बाबू श्यामसुन्दरदास– 'पृथ्वीराजरासो'।

डा० दशरथ शर्मा एम० ए०, डी० लिट्–१ पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, २ रासो की एक पुरानी प्रति और उसकी प्रामाणिकता, ३ पृथ्वीराजरासो, ४ सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की रानी पद्मावती, और ५ पृथ्वीराज रासो सम्बन्धी कुछ विचार।

श्री अगरचंद नाहटा बीकानेर–१ पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ २ पृथ्वीराज रासो के बृहद् संस्करण के उद्धारक अमरसिंह द्वितीय थे?

श्री नरोत्तमदास स्वामी,एम०ए०,–'सम्राट् पृथ्वीराज के दो मन्त्री,'- 'पृथ्वीराज रासो के लघु रूपान्तर का उद्धारकर्त्ता'।

श्री उदयसिंह भटनागर एम० ए०,-पृथ्वीराज रासो संबंधी कुछ योग्य बातें'।

श्री झाबरमल शर्मा, जसरापुर-१ 'शेखावाटी के शिलालेख', २ 'चौहानों के अग्निवंशी कहलाने का आधार'।

श्री कुंवर देवीसिंह मंडावा-'भीमंतसिंह ही रासो के समरसिंह'।

श्री गंगाप्रसाद कमठान-'पृथ्वीराज रासो के बृहद् संस्करण के उद्धारक पर पुनः विचार'।

श्री कृष्णदेव शर्मा शास्त्री एम० ए०, देहरादून-'क्या पृथ्वीराज रासो जाली है'?

श्री कृष्णानंद (सं०ना०प्र०पत्रिका, काशी) 'पृथ्वीराजरासो संबंधी शोध'।

श्री तारकनाथ अग्रवाल,एम०ए० कलकत्ता-'वीरकाव्य में अग्निकुलपरंपरा'।

श्री प० मोतीलाल मेनारिया एम० ए० उदयपुर-१ 'चन्दबरदाई' २ 'चन्द'।

आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी 'रासा पर व्यापक दृष्टिकोण'।

कहना पड़ेगा कि इस विभाग में दिये गये प्रायः सारे निबंध महत्वपूर्ण है। रासो की प्राचीन उपलब्ध प्रतियाँ शेखावाटी के शिलालेख, चौहानों के अग्निवंशी कहलाने का आधार और सम्राट् पृथ्वीराज के दो मन्त्री शीर्षक निबन्ध में शोध का पूरा समावेश है और यह स्पष्ट है कि महाराजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज के मन्त्री नागर जाति के व्यक्ति भी थे। आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मन्तव्य तो बड़ा ही गंभीर और अध्ययन पूर्ण है। वस्तुतः इनके समान निरपेक्ष रूप से रासो का विचार कर्ता और गंभीर अध्ययनशील व्यक्ति दूसरा कोई नहीं है।

ये सारे के सारे निबन्ध और मन्तव्य पूर्व प्रकाशित हैं। कितनेक निबन्ध सम्पूर्ण रूप से ज्यों के त्यों पत्र-पत्रिकाओं से लिये गये हैं और कितनेक मन्तव्य उनकी पुस्तकों से लिये गये हैं, जिनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है, जो निर्णयात्मक दृष्टि से पूर्ण उपादेय हैं। साहित्यसंस्थान, राजस्थान विद्यापीठ इनके लेखकों तथा प्रकाशकों का हृदय से आभारी है, जिन्होंने भारतीय साहित्य की अपूर्व निधि पृथ्वीराज रासो पर अध्ययन कर उसकी वास्तविक स्थिति एवं महत्व

स्थिर करने का सतत: प्रयत्न किया है और चौहानों के सही-सही इतिहास की सामग्री को सुरक्षित तथा प्रस्तुत करने का स्तुत्य कार्य किया है।

अब तक जो रासो पर विवाद चल रहा था. उसका ठीक-ठीक निर्णय इस ग्रन्थ से हो जायगा, क्योंकि इसमें संकलित निबन्ध और मन्तव्य प्रमुख विद्वानों की विचार धारा है, जो एक साथ दी गई है। इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि रासो मूल में अपभ्रंश में था। उसमें समयान्तर से क्षेपक अंश की अत्यधिकता के कारण विकृति होगई और पिछले विद्वान् कवि लोगों ने अवसर पाकर उसका और भी कलेवर बढ़ा दिया। यह इतिहास का ग्रन्थ नहीं होकर काव्य ग्रन्थ है, जो उपमा अलकार एवं विविध रसो से गुंफित है। इस में उल्लिखित कई व्यक्ति-चौहाननरेश महाराजा सोमेश्वर, पृथ्वीराज, गुजरात का चालुक्य(सोलंकी) नरेश भीमदेव, गाहड़वाल-राष्ट्रकूट नरेश जयचंद्र, अनंगपाल तँवर, मन्त्री कयमास, शहाबुद्दीन गोरी, आदि ऐतिहासिक पुरुष हैं, इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं है। काव्य के नियमानुसार काव्य में कल्पना का पुट दिया जाता है, वह रासो में यथा स्थान सर्वत्र विद्यमान है। उसमें उल्लिखित महाराजा पृथ्वीराज तृतीय विषयक सम्वत्, महाराजा पृथ्वीराज चौहान प्रथम के सम्वत् हो सकते हैं, जो वि० सं० ११६२ में विद्यमान था। रासो के इस प्रकार के सम्वत् मूल रचना में न हो और पीछे से मिला दिये गये हो, तो भी आश्चर्य की बात नहीं है।

डॉ० श्री हजारीप्रसादद्विवेदी का यह कथन कि पृथ्वीराजरासो, आरम्भ में ऐसा कथा-काव्य था, जो प्रधान रूप से उद्धत-प्रयोग, प्रधान-मसृण-प्रयोग-युक्त-गेय रूपक था' ठीक भी हो। श्री प्रभुदयाल मित्तल ने बतलाया है कि बंगीय विश्वकोष के निर्माता सुप्रसिद्ध श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने 'रागकल्पद्रुम' के द्वितीय संस्करण का सम्पादन करते हुए उसके प्रथम खण्ड की विज्ञप्ति में लिखा कि रागकल्पद्रुम (भारतीय सगीत का मुद्रित सब से बड़ा गौरव ग्रंथ) का कर्त्ता श्री कृष्णानंद पिता श्री हीरानंद व्यास, पितामह श्रीअमरानंद व्यास मेवाड़ के जोहेनी (मोही ?) गाँव का निवासी था। ब्रज के वृंदावन और गोकुल में उसने संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी। वह उदयपुर के महाराणा का दरबारी गायक था और उसका सम्बन्ध ब्रज के वल्लभ संप्रदायी गोस्वामियों से था। उसका जन्म वि० सं० १८५१ और मृत्यु संवत् १६४५ में हुई। एक मात्र वही ऐसा व्यक्ति था, जो कवि चंद के 'पृथ्वीराजरायसे को उपयुक्त रूप से गा सकता था। उसके कलकत्ता आनेपर

जब पृथ्वीराज रायसा सुनाने का आग्रह किया तो उसने स्वीकार किया। पहले अपना परिधृत परिच्छद समस्त खोल-खाल कर लंगोटा पहिना। पीछे वीररसात्मक कविचंद का एक पद गाया। वैसा हृदय-उत्त जक और वीररसात्मक गान फिर कभी सुन न पड़ा (सम्मेलन पत्रिका प्रयाग, भाग ४०, अङ्क १, पृ० ६३-७०, भारतीय संगीत का गौरव पूर्ण ग्रन्थ)। इससे स्पष्ट है कि रासो लय युक्त गेय काव्य भी रहा हो।

रासो का अस्तित्व प्राचीन है और मूल ग्रन्थ अपभ्रंश के अन्तिमकाल में कवि चंद द्वारा रचा गया हो। पृथ्वीराजविजय (जयानक रचित) नामक संस्कृत काव्य ग्रन्थ में पृथ्वीराज का बन्दीभट्ट, 'पृथ्वीभट्ट' बतलाया है। इससे पाया जाता है कि राज दरबारों में बन्दीभट्ट रहने की प्राचीन प्रथा थी, जिसका इस काल के पूर्व के लेखों में भी उल्लेख मिलता है। पृथ्वीभट्ट, संभवतः चंद हो और 'चंद-बरदाई,चंद वरद्दिया'नाम से अपनी रचना करता हो। मूल रासो इस समय तक लुप्त प्रायः है। पिछले विद्वानों ने उसमें अवश्य ही विकृति पैदा कर कलेवर बढ़ा दिया है। इससे रासो का रूप विकसित होगया और उसको उन्हीं विद्वानों ने इतिहास की टक्कर में लाकर खड़ा होने योग्य बना दिया। कथानक भले हो बढ़ गये हों, भाषा में भी परिवर्त्तन होगये हों और छन्द संख्या भी बढ़ गई; परन्तु उसका धारावाही वर्णन चमत्कारिक दीख पड़ता है। निस्सन्देह रासो को श्रेणी का हिन्दी साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी तक कोई ग्रन्थ नहीं था अतएव उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जैन विद्वानों द्वारा किये गये वर्णन से यह प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज तृतीय विद्याव्यसनी राजा था 'पृथ्वीराजविजय'में उसके प्रेमांकुर का वर्णन भी है,जिससे उसकी युवावस्था का आरंभिक चांचल्य प्रकट होता है। इतिहास तथा रासो से यही निष्कर्ष निकलता है कि इस राजा ने अधिक आयु नहीं पाई और वह युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। रासो में जिस प्रकार वर्णन है, उसको देखते हुए उसे इतिहास की कसौटी पर कसना तथा सर्वथा प्रमाण रूप ही मान लेना सङ्गति युक्त नहीं है एवं, उसकी ऐतिहासिक विवेचना करना भी अनुपयुक्त है; क्योंकि वह सर्वथा इतिहास का ग्रन्थ नहीं है। काव्यग्रन्थों में कल्पना की प्रचुरता होती है, पृथ्वीराजविजय भी उससे मुक्त नहीं है। उसमें पृथ्वीराज की माता कर्पूरदेवी के गर्भ धारण समय के ग्रहों की स्थिति दीगई है, परन्तु सम्वत् का अभाव है। पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् नहीं देकर केवल ज्येष्ठ मास की द्वादशी तिथि दी गई

है। गर्भ धारण के समय ग्रहों की स्थिति से वैशाख मास आता है, फिर ज्येष्ठ मास में पृथ्वीराज का जन्म होना संतति शास्त्र के नियम से भी विपरीत है, जिस पर विद्वानों ने कोई ध्यान नहीं दिया है। वस्तुतः यह वर्णन कवि-कल्पना प्रसूत ही है और इस प्रकार के वर्णन से पृथ्वीराज के जन्म सम्वत् का सही-सही निर्णय नहीं हो सकता है। निरपेक्ष दृष्टि से विचारक विद्वानों का कर्त्तव्य हो जाता है कि चौहानों के इतिहास-लेखन में सङ्गति युक्त ग्राह्य बातों को ही विजय और रासोग्रन्थ से ग्रहण करें।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन-जिन विद्वानों के निबन्ध और मन्तव्य ग्रहण किये गये हैं, उनके प्रति साहित्यसंस्थान राजस्थान विद्यापीठ उनका पूर्णतः कृतज्ञ है। इसही प्रकार परामर्षदातृ मंडली जिनके नाम ऊपर दिये गये हैं? और साहित्य संस्थान के कार्यकर्ताओं का, जिन्होंने इसके सम्पादन कार्य में सहयोग दिया है, धन्यवाद प्रदर्शित करना आवश्यक है। विशेषतः साथी कार्यकर्ता श्री शान्तिलाल भारद्वाज का भी इसमें पूर्ण योग रहा है।

भूल-चूक मनुष्यमात्र से होती है। अस्तु, प्रूफ संशोधन आदि में कितनी ही गलतियां रह गई हैं, उसके लिये क्षमा याचना आवश्यक होगया है।

भगवतीलाल भट्ट
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान

विषय-सूची

भारतीय विद्वानों की विचारधारा और सम्मतियाँ—

परिशिष्ट–

पृथ्वीराज रासो की विवेचना

विभाग प्रथम

वर्णित विषय

कविराजा श्यामलदास

पृथ्वीराज रासा की नवीनता*

यह बहुत प्रसिद्ध हिन्दी काव्य—जिसे बहुधा विद्वान[1] लोग चन्दवरदई, पृथ्वीराज चौहान के कवि, का बनाया हुआ मानते हैं और जो पृथ्वीराज का इतिहास जन्म से मरण पर्यन्त वर्णन करता है—असल नहीं है; पर मेरी बुद्धि के अनुसार चन्द के कई सौ वर्ष पीछे जाली बनाया गया है। बनाने वाला राजपूताने का कोई भाट था, जिसने इस काव्य से अपनी ज्ञाति का[2] बड़प्पन दिखलाना चाहा; ये लोग हिन्दुस्थान के दूसरे प्रदेशों से चौहानों के साथ राजपूताने में आये थे,

---

* यह निबन्ध जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल–जिल्द ५५–भाग १–१८८६ ई० में अंग्रेजी भाषा में 'दि एन्टीक्विटी ओथेन्टीसीटी एन्ड जिनीनेस ऑव दि एपिक काल्ड दि पृथ्वीराज रासा एन्ड कोमनली एस्क्राइब्ड टू चन्दबरदाई' नाम से प्रकाशित किया गया।

१. जान बीम्स साहब इस काव्य को हिन्दी भाषा के काव्यों में सब से प्राचीन मानते हैं। जैसा उन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में लिखा है कि "चंद इस भाषा में सबसे पहला कवि है" (जर्नल १८७३ हिस्सा १ नम्बर १ पृष्ठ १६७) 'इन्डियन एन्टिक्वेरी' नाम के मासिक पत्र की पहली जिल्द में उन्होंने लिखा है कि यह काव्य सन् १२०० ईस्वी के लगभग लिखा गया है। यदि चंद ने इस काव्य को बनाया होता, तो विद्वान् महाशय का विचार यथार्थ होता—परन्तु यह पीछे लिखा गया, जैसा कि मैं आगामी पृष्ठों में दिखलाऊंगा। अनेक हिंदी भाषा के काव्य रासा से पहले लिखे तुलसीदास का रामायण, रायमल्लरासा आदि मिलते हैं।

२. चंदबरदई का, जो पृथ्वीराज का भाट था, इस किताब में बड़प्पन लिखा है।

जिनकी इस देश के क्षत्रियों में समान प्रतिष्ठा बतलाने के लिये यह काव्य कोठारिया या बेदला के चौहानों के घराने के किसी पढ़े लिखे भाट ने शूरवीर राजा पृथ्वीराज के यश के जीर्णोद्धार के आधार से बनाया। उसने मेवाड़ के राजाओं की प्रशंसा इसलिये की कि वे उसके वर्णन को सत्य मान लेवें, जिसमें कि दूसरे राजा भी उस पर विश्वास करें, और वैसा ही हुआ।

ग्रन्थ कर्त्ता ने चन्दबरदाई के नाम से काव्य को प्रसिद्ध किया, अपना नाम ऊपर लिखे कारणों से अथवा इस भय से नहीं लिखा कि उस पर कोई विश्वास न करेगा।

इस काव्य के राजपूताने में बनाये जाने के विषय में कुछ भी सन्देह नहीं, क्योंकि इसमें राजपूताने की कविता के शब्द और मुहावरे बहुत पाये जाते हैं; जो ब्रज भाषा या हिन्दुस्थान की और किसी पूर्वी भाषा में नहीं मिलते।

आदि पर्व के दूसरे छप्पय छन्द में यह लिखा है—

(१) सत फुल्लयौ चावद्दिसि ।

(२) हती भारती व्यास
भारत्थ भाख्यौ ।
जिने उत्त पारत्थ
सारत्थ साख्यौ ।

आदि पर्व
चौथा भुजंगप्रयाति
छन्द, दूसरा चरण

इन पंक्तियों में सत्त, चावद्दिसि–भारत्थ–पारत्थ–सारत्थ यह शब्द राजपुताने की कविता के हैं।

'आखेट चूक' प्रसंग में यह लिखा है—

यह घात सद्ध गौरी सुरन
करूं चूक कै सज्जरन

पत्र ५
छप्पय छन्द ५

यहां चूक करने का आशय दगा करके मार डालना है; जिस मतलब में यह शब्द हिन्दुस्थान के और किसी प्रदेश में नहीं बरता जाता।

उक्त जर्नल में जॉन बीम्स साहिब कहते हैं कि पृथ्वीराज रासा के बनाने वाले ने शब्दों के अंत में अनुस्वार इस तात्पर्य से लगाया कि वह संस्कृत बन जावें।

यह उसका मतलब नहीं था, उसने चाहा कि अपनी इबारत मागधी या बाल भाषा की सी बनावे, क्यों कि ३०० वर्ष पहिले के काव्य प्राय: उसी भाषा में लिखे जाते थे।

ग्रन्थकर्ता, स्वयं तो वह भाषा नहीं पढ़ा था पर ऐसा मालूम होता है कि किसी मागधी काव्य का वर्णन उसने सुना होगा और अपना ग्रन्थ प्राचीन जनाने के लिये उसने अनुस्वार लगाया—परन्तु यह खेद का विषय है कि इस प्रकार से बने हुए शब्द न तो हिन्दी के रहे न मागधी के। अनुस्वार लगाने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वह संस्कृत कुछ भी नहीं जानता था; क्योंकि उसको बिन्दु विसर्ग का भी ठीक ज्ञान न था।

इतने ही उदाहरण लिखे जाते हैं, जिससे कि लेख बहुत बढ़ न जाय—सहस्रों शब्द इसकाव्य में दिखलाये जा सकते हैं, जो केवल राजपूताने की कविता में मिलते हैं। कोई भाषा का चतुर कवि विचार करे तो इस काव्य की भाषा बिलकुल राजपूताने के कवियों की सी पावेगा, जो दो प्रकार की कविता बनाते हैं, पहली मारवाड़ी भाषा में जो 'डिंगल' कहलाती है और दूसरी ब्रज भाषा या किसी पूर्वी भाषा में, जिसको राजपूताने में 'पिंगल' बोलते हैं; परन्तु पिंगल का शब्दार्थ कविता के तौल की किताब है। सब प्रकार की कविता वास्तव में कवित्त हैं, पर यह शब्द यहाँ पर केवल दो प्रकार की कविता का नाम है अर्थात् 'छप्पय' (षट्पदी) और 'मनोहर,' उसी प्रकार राजपूताने में ब्रजभाषा की कविता पिंगल कहलाने लगी।

डिंगल सदैव एक ही प्रकार से लिखी जाती है; परन्तु राजपूताने के कवि लोग डिंगल के मुहावरे और अपने देशीय शब्द पिंगल में मिला देते हैं। इसलिये इस देश की कविता आगरा, दिल्ली, बनारस इत्यादि प्रदेशों की कविता से कुछ भी नहीं मिलती। यह याद रखना चाहिये कि राजपूताने की बोलचाल और कविता की भाषा में कुछ अन्तर है।

इस प्रकार यह काव्य राजपूताने का बना हुआ सिद्ध हो गया।

(२ क)

पृथ्वीराज रासा पृथ्वीराज या चन्द के समय में नहीं, पर पीछे बना।

मैं इस बात को इस रीति पर सिद्ध करूँगा—पहले बहुत से उदाहरण लिखकर और तब उनको अशुद्ध ठहरा कर।

इस काव्य में लिखे हुये साल सम्वत् विशेष करके अशुद्ध हैं। जैसे पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् इस प्रकार से लिखा है—

दो० एकादससें पंचदह हस्ताक्षरी
विक्रम साक अनंद पुस्तक पत्र १८
तिहि रिपुपुरजय हरन को पृष्ठ १
भे पृथिराज नरिंद

अर्थात् शुभ सम्वत् विक्रमी ११११५ में राजा पृथ्वीराज अपने शत्रु का नगर अथवा देश लेने को उत्पन्न हुआ। उसी पत्र के दूसरे पृष्ठ पर निम्न-लिखित पद्धरी छंद है:—

१ दर्बार बैठि सोमेस राय
लीने हजूर जोतिग बुलाय।
२ कहो जन्म कर्म बालक विनोद
सुभलग्न मुहूरत सुनत मोद।
३ संबत्त इक्कदश पञ्च अग्ग
वैसाख तृतीय पखकृष्ण लग्ग।
४ गुरु सिद्ध जोग चित्रानखत्त
गुरुनाम करन सिसु परम हित्त।
५ ऊषा प्रकास इक घरिय राति
पलतीस अंश त्रय बालजाति।
६ गुरु बुद्ध सुक्र परि दसैं थान
अष्टमेवार शनिफल विधान।
७ पंचमे थान परिसोम भोम
ग्यारहें राहु खलकरन होम।
८ बारमें सूर सो करन रंग
अनमी नमाइ तिनकरै भंग॥

इस छंद में पृथ्वीराज के जन्म समय पर जोतिषियों की कही हुई जन्मपत्री की बातें लिखी हैं:—

अर्थ

१ राजा सोमेश्वरदेव (पृथ्वीराज का पिता) एक दर्बार करके विराजमान हुआ और ज्योतिषियों को अपने साम्हने बुलाया—

२ और उनसे कहा कि बालक के जन्मकर्म और चरित्र बतलावें, उसका अच्छा लग्न और अच्छा मुहूर्त सुनते ही सब लोग हर्षित हुए।

३ सम्वत्[१] १११५ वैशाखवदि तृतीया के दिन जन्म हुआ।

४ गुरुवार सिद्धयोग और चित्रा नक्षत्र था। गुरु ने बड़े प्रेम से बालक का नाम रखा।

५ जन्म होने के समय एक घड़ी ३० पल ३ अंश उषाकाल के[२] व्यतीत हुए थे—

६ बृहस्पति, बुध और शुक्र १० वें भवन में थे। आठवें शनैश्चर का फल बालक के लिये बतलाया गया—

७ चंद्र और मंगल पांचवें स्थान में थे और राहु ११ वें स्थान में था, जो दुष्ट बैरियों को जलाने वाला है।

८ सूर्य बारहवें भवन में था, जो बड़ा प्रताप (नूर) या बड़ी कांति देने वाला, और नहीं (झुकने) नमने वाले बैरियों को झुकाकर नष्ट करने वाला है।

---

१. इक्कदशपञ्च १११५ देहली दीपक न्याय के अनुसार दश का शब्द जो इक्क और पंच के बीच में है, दोनों शब्दों में लगता है अर्थात् इक्कदश और दशपंच ऐसा रूप हो जाता है—

२. चार घड़ी रात का समय जो सूर्योदय के पहले होता है, उसको ऊषाकाल कहते हैं।

इसी छंद में आगे ज्योतिषियों ने पृथ्वीराज की अवस्था के विषय में राजा सोमेश्वरदेव से भविष्यत् वाणी कही है:—

चालीस तीन तिन वर्ष साज
कलि पुहमि इन्द्र उद्धार काज ॥

इसका अर्थ यह है कि तेंतालीस वर्ष की अवस्था होगी। कलियुग में वह पृथ्वी का उद्धार करने वाला इन्द्र होगा।

फिर एक छप्पय छंद पत्र ६० के १ पृष्ठ में लिखा है, जिसमें यह वर्णन है कि पृथ्वीराज को उसके नाना दिल्ली के राजा अनंगपाल तंवर ने गोद लिया, जिसके कोई पुत्र न था—

कवित्त १ एकादश संवतह, अठ्ठ अग्गहति तीस भनि ।
प्रथम सुऋतु तहँ हेम, सुद्ध मगसिर सुमासगनि ॥
२ सेतपक्ख पंचमिय, सकलवासर गुरु पूरन ।
सुदि मगसिर सम इंद, जोगसिद्धहि सिधचूरन ॥
पहु अनंगपाल अप्पिय पुहमि पुत्तियपुत्त पवित्तमन ।
छंड्यो सुमोहसुख तन तरुनि, पति बद्री मज्जेसरन ॥

[दिल्लीदान प्रस्ताव पत्र ६० पृष्ठ १ अंत]

अर्थ

१ सम्वत् ११३८ हेमंत ऋतु का आरंभ शुभ मार्गशिर महीने का शुक्ल पक्ष—

२ पंचमी तिथि सकल कला करके पूर्ण बृहस्पतिवार—मंगलदायक मृगशिर नक्षत्र का अखंडित चन्द्रमा और सिद्धियोग जो मांगलिक चूरण है—

३ राजा अनंगपाल ने अपना राज्य अपनी पुत्री के पुत्र अर्थात् दौहित्र को प्रसन्नता पूर्वक शुद्ध मन से दिया। अनंगपाल अपने शरीर

का और स्त्रियों का सब सुख त्याग कर बद्रिकाश्रम को गया, अर्थात् श्री बद्रीनाथ के चरण कमलों का उसने आश्रम लिया।

फिर माधोभाट की कथा के पर्व (पत्र ८४ पृष्ठ १) में यह दोहा लिखा है।

ग्यारहसै अठतीस भनि, भो दिल्ली प्रथिराज।
सुन्यो साह सुरतानवर, बज्जै वज्ज सुबाज ॥

अरिल— ग्यारहसै अठतीसा मानं, भे दिल्ली नृपरा चौहानं ॥
विक्रम बिन सक बंधी सूरं. तपराज प्रथिराज करूरं ॥

अर्थ

१ प्रथ्वीराज सम्बत् ११३८ में दिल्ली का राजा हुआ, इस बात को सुनकर सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी ने लड़ाई के अच्छे बाजे बजवाये—

२ सम्बत् ११३८ में (प्रथिराज) चौहान दिल्ली का राजा हुआ। विक्रमादित्य के बिना भी यह राजा सम्बत् चलाने के योग्य है। अर्थात् इसका पराक्रम विक्रम के समान है—इसका बड़ा क्रूर राज तपता है अर्थात् इसकी आज्ञा को कोई मेंट नहीं सकता—

प्रथ्वीराज के नौकरों में से एक बुद्धिमान राजपूत 'कैमास' ने, जिसका नाम अभी तक प्रसिद्ध है, शहाबुद्दीन से जो लड़ाई की, उसका वर्णन १८० पत्र के पहले पृष्ठ में इस प्रकार लिखा है—

हनूफाल छंद

(१) सम्बत हरचालीस—वदिचैत एकमदीस ॥
रविवार पुष्य प्रमान—साहाब दिय मैलान ॥

कवित्त

(२) ग्यारहसै चालीस—चैत वदि सस्सिय दूजो ॥
चढयौ साह साहाब आति पंजावह पूज्यो ॥
(३) लक्खतीन असवार—तीन सैंहस मदमत्तह ॥
चल्योसाह दरकूंच—कढिय जुग्गिनि धुर बत्तह ॥

(४) सामन्त सूर निकसे उअर—कायर कंपे कलह सुनि ।।
कैमास मंत्रि मंत्रह दियो—ढिग बैठे चामंड पुनि ।।

अर्थ

१ सम्बत् ११४० ('हर' ज्योतिष में ११ को कहते हैं) चैत्र वदी प्रतिपदा रविवार के दिन पुष्प नक्षत्र के समय शहाबुद्दीन गोरी ने अपने सैन्य के डेरे दिये।

२ सम्बत् ११४० में चैत्रवदी[1] २ के चंद्रमाके दिन शहाबुद्दीन गोरी ने चढ़ाई की और पंजाब में पहुँचा, अथवा वहां के लोगों ने उसको पूजा अर्थात् मान लिया।

३ उसके साथ तीन लाख सवार और तीन सहस्र मतवाले हाथी थे। वहां से निकल कर मञ्जिल दर मञ्जिल (जुग्गिनी) दिल्ली की ओर गुर्राता हुआ चला।

४ योद्धा और बहादुरों का मन प्रसन्न (खुश) हुआ, कायर लोग लड़ाई का नाम सुनकर कांपने लगे। मंत्री कैमास, जिसने पृथ्वीराज को सलाह दी थी और चामंडराय जो उसका वीर योद्धा था, दोनों उसके पास बैठे थे।

कवित्त

(१) ग्यारह सै चालीस—सोम ग्यारस वदि चैतह ।।
भये साह चहुआन—लरनठाढ़े बनिखेतह ।।

(२) पंचफौज सुरतान—पंचचौहान बनाइय ।।
दानव देव समान—ज्वान लरने रिन धाइय ।।

(३) कहिचंद दंद दुनिया सुनो—
वीर कहर चच्चर जहर ।
जोधान जोध जंगह जुरत—
उभय मध्य बीत्यो पहर ।।

पत्र १६१
पृष्ठ १
छप्पय
छंद

---

१. एकम के दिन २ का चंद्रमा उग गया होगा, इससे ऐसा कहा। क्योंकि संध्या के समय प्रतिपदा में द्वितीया आजाती है, तो चंद्रमा उग जाता है।

अर्थ

१ सम्बत् ११४० चैत्रवदी ११ सोमवार के दिन पृथ्वीराज चौहान दिल्ली का शाह यानी राजा, बन सज कर रणरंग में लड़ने को खड़ा हुआ—

२ सुल्तान की फौज के ५ व्यूह थे। यह देखकर चौहान ने भी अपनी फौज के ५ पृथक् पृथक् समूह बनाये। दानवों के समान मुसल्मान और देवताओं की नाईं राजपूत जवान लड़ने के लिये रण को धाये।

३ चन्द कवि कहता है, हे दुनियां के लोग सुनो, कि लड़ाई किस प्रकार की हुई; वीरों के ललाट से क्रोध का ज़हर (विष) चमकने लगा।

लड़ाई में बहादुरों के बहादुर जुड़ते हैं और दोनों दल के बीच एक प्रहर तक लड़ाई हुई।

फिर ६ ऋतु के वर्णन के अध्याय (पत्र २४२) के दूसरे पृष्ठ में यह दोहा लिखा है—

ग्यारहसै एक्यावने चैत तीज रविवार।
कनवज देखन कारणे चल्यो सु संभरिवार ॥

सम्वत् ११५१ चैतबदी ३ रविवार के दिन संभरी अर्थात् चौहान राजा कनौज देखने को चला।

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी की आखिरी लड़ाई का वृत्तान्त ३६० पत्र के पहले पृष्ठ में इस प्रकार लिखा है:—

१ शाक सुविक्रम सत्तसिव अट्ठ[1] अग्र पंचास।
शनिश्चर संक्रांति कर्क—श्रावण अद्धोमास ॥

२ श्रावण मावस सुभ दिवस उभै घटी उदियत्त।
प्रथम रोस दुव दीनदल मिलन सुभर रनरत्त ॥

---

१. किसी २ पुस्तक में यहाँ पर पंच लिखा है, परन्तु पंच और अट्ठ दोनों अशुद्ध हैं।

अर्थ

१ सम्वत् ११५८ ('शिव' ज्योतिष में ११ को बोलते हैं) शनिवार के दिन लड़ाई हुई, जिस समय कर्क संक्रान्ति थी और श्रावण का आधा महीना व्यतीत हुआ था ।

२ श्रावण की अमावास्या को जो एक शुभ का दिन है, सूर्य निकलने पर दो घड़ी के पीछे दोनों दीन (धर्म) के दलों में अर्थात् हिंदू और मुसलमानों में पहला क्रोध इसलिये किया गया कि वीरों को लाल रंग मिले, संक्षेप में—दोनों दलों के अंगों का रंग क्रोध से रक्तवर्ण हो गया ।

पत्र २८० पृष्ठ १ बड़ी लड़ाई के अध्याय में लिखा है:—

कवित्त

(१) एकादस से मत्त, अठ्ठ पंचास अधिकतर ।
सावन सुकल सुपुक्ख, बुद्ध एका तिथि वासर ॥

(२) वज्रयोग रोहिनी, करन बालव धिक तैतल ॥
प्रहरसेप रस घटिय—आदि तिथि एक पंचपल ॥

(३) बिथ्थुरिय बत्त जुद्धह सरल—जोगिनि पुरवासर विषम ॥
संपत्ति थान सुरसतिय जुरि रहसि रवी कीनो विरम ॥

अर्थ

(१) सम्वत ११५८ श्रावण शुक्ला प्रतिपदा बुधवार के दिन ।

(२) वज्रयोग, रोहिणीनक्षत्र, कर्ण बालव और उससे अधिक तैतल, जिस समय पिछली रात में ६ घड़ी बाकी रही और एकम तिथि की १ घड़ी ५ पल बीते थे ।

(३) लड़ाई की बात बड़ी सरलता से फैल गई; वह दिन दिल्ली के लिये बड़ा खोटा था । लड़ाई इस तरह पर हुई कि मानो लक्ष्मी के स्थान पर[1]

---

१. सरस्वती और लक्ष्मी का परस्पर विरोध पुराणों में प्रसिद्ध है, अगर एक की कृपा किसी मनुष्य पर होवे तो दूसरी उसके ऊपर अप्रसन्न रहती है ।

सरस्वती ने उससे परस्पर युद्ध किया। लड़ाई देखने के लिये सूर्य ने भी ठहर कर विश्राम किया।

ऊपर लिखे हुए उदाहरण राज पुस्तकालय की पृथ्वीराज रासा की पुस्तकों को मिला कर लिखे गये हैं; जो पुस्तकें बेदले की पुस्तक के अनुसार हैं।

सिर्फ एक ही जगह का सम्वत् लिखना बस होता, पर अनेक सम्वत् इस तात्पर्य से लिखे गये हैं कि किसी को यह सन्देह न हो कि कदाचित् लिखने वाले ने भूल की हो; और मैं आशा रखता हूँ कि पाठकों को इस तरह संतोष हो जायगा कि ऐसी गलती नहीं हुई।

(२ ख)

अब ऊपर लिखे हुए उदाहरणों के सम्वतों पर विचार करना चाहिये।

१. पहले यह देखना चाहिये कि पृथ्वीराज शहाबुद्दीन गोरी के साथ किस सम्बत में लड़ा और दिल्ली में किस समय राज करता था।

पृथ्वीराज रासा में लड़ाई का सम्बत् ११५८ लिखा है, परन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि सम्वत् १२४६ में पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी के साथ पंजाब में लड़ाई की और उस समय के पहले दिल्ली में राज करता था।

इसके प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं:—

तबकात नासरी (जो हिजरी सन् ६०२=ईसवी १२०५=सम्बत १२६१ में बनाई गई) का ग्रन्थकर्त्ता शहाबुद्दीन के विषय में इस तरह लिखता है:—

"शहाबुद्दीन गोरी ने हिजरी सन् ५७१ (=ई. ११७५=सम्बत् १२३२) में मुल्तान लिया और हि. सन् ५७४ (=ई. ११७८=सम्बत् १२३५) में ओरछा और मुल्तान होकर नहर वारा की ओर आया; नहर वारे के राजा भीमदेव या वतु (सु) देव की फौज से साम्हना हुआ। बादशाह की फौज भाग गई और वह बेमुराद लौट गया।

उसने हि. सन् ५७७ (=ई. ११८१=सम्बत् १२३८) में सुल्तान महमूद की सन्तान से लाहौर लिया।

हि. सन् ५७८ (=ई.११८२=सम्वत् १२३६) में बादशाह देवल की ओर आया, समुद्र के किनारे का देश (इलाक़ा) और बहुतसा माल लेलिया।

हि० सन् ५८० (ई० ११८४=सम्वत् १२४०) में दुबारा लाहोर को आया, सब इलाका लूट लिया। महमूद की सब संतानों को कैद किया। सियालकोट का किला बनवाया। सेनापति अलीकर्माख़ को लाहोर का हाक़िम किया और इस किताब के लिखने वाले के बाप सिराजुद्दीन मिनहाज़ को हिन्दुस्थान के सैन्य का क़ाज़ी बनाया।

हि० सन् ५८७ (ई० ११९०=सम्वत् १२४७) में उसने सरहिन्द का क़िला जीत लिया और क़ाज़ी ज़ियाउद्दीन को सौंपा, जो इस किताब के लिखने वाले का चचेरा भाई था।

क़ाज़ी ने १२०० आदमी क़िले में रक्खे, जिनसे बादशाह के आने तक क़िले की रक्षा हो सके। लेकिन राय कोलापि थौरा पास आ गया था, सुल्तान भी आ पहुँचा। हिन्दुस्थान के सब राजा पिथौरा के साथ थे। सुल्तान ने दिल्ली के राजा गोविन्दराय पर हमला किया, जो हाथी पर सवार था और नेज़ा अर्थात् भाला मारकर गोविन्दराय के दो दांत तोड़ डाले।

राजा ने एक पत्थर मारा, जिससे सुल्तान की भुजा में बड़ी चोट लगी। उसको घोड़े से गिरते हुए एक खिलजी सिपाही ने सम्भाल लिया, बादशाह की सब फौज भाग निकली।

राय पिथौरा ने क़ाजी तोलक को सरहिन्द के क़िले में आघेरा और १३ महीने तक लड़ाई रही। बादशाह बदला लेने को फिर हिन्दुस्थान में आया। इस किताब के लिखने वाले ने एक विश्वासी आदमी मुइजुद्दीन से जो बादशाह के साथ था, यह सुना कि उस समय मुसल्मानी सेना की संख्या में १२०००० सवार थे।

साम्हना होने के पहले सुल्तान ने अपनी फौज के ४ टुकड़े कर दिये और सिपाहियों को कहा कि "हर तरफ से तीरन्दाजी करो और जब नालायकों के हाथी और आदमी इत्यादि चढ़ाई करें तो हटजावो"

मुसल्मानी फौज ने ऐसी कारवाई से काफ़िरों को (हिन्दुओं को) हरा दिया। खुदा ने बादशाह को जय दिया और काफिरों ने भागना शुरू किया। पिथौरा हाथी से उतर कर घोड़े पर चढ़ा और एकदम भागा, लेकिन सरस्वती की हद में पकड़ा गया और उसका प्राण लिया गया। दिल्ली का गोविंदराय लड़ाई में मारा गया, जिसकी सूरत बादशाह ने पहचानली। क्योंकि उसके दो दाँत पहली लड़ाई में टूटे थे।

दिल्ली अजमेर सरस्वती इत्यादि जिले लिये गये, वह जय हि० सन् ५८८ (=ई० ११६२=सम्वत् १२४८ विक्रमी) में प्राप्त हुआ। सुल्तान ने कुतुबुद्दीन ऐबक को कहराम के क़िले पर नियत किया; उसने मीरठ; दिल्ली आदि ले लिया।

हि० सन् ५८९ (=ई० ११९३=सम्वत् १२४६ विक्रमी) में कुतुबुद्दीन ने कोल का क़िला ले लिया।

हि. सन् ५६० (=ई० ११६४=सम्वत् १२५० विक्रमी) में सुल्तानगजनी से कनौज और बनारस को आया। चंडावल के पास राय जयचन्द को मार भगाया। इस जीत में ३०० से ज्यादा हाथी हाथ लगे।

सुल्तान की मातहती में कुतुबुद्दीन ने नहरवाड़ा, कालेवा, बदाऊं वग़ैरह बहुत से इलाके फ़तह किये। खुदाने चाहा तो इन सब लड़ाइयों का हाल 'फ़ुतूह कुतबी' में लिखा जावेगा। (यह किताब सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक के हाल की मालूम होती है)।

अब यह देखना चाहिये कि हि० सन् ५८७ =ई० सम्वत् ११६१ = सम्वत् १२४८ है और हि० सन् ५८८ =ई० ११६२ =सम्वत् १२४६ होता है।

इससे सिद्ध हुआ कि शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की लड़ाई, जिसमें पृथ्वीराज का देहान्त हुआ, सम्वत् १२४६ में हुई अर्थात् पृथ्वीराज रासा में लिखे हुए सम्वत् ११५८ विक्रमी से प्राय: ६० वर्ष पीछे।

यद्यपि 'तबक़ातनासरी' का लिखने वाला विदेशी था, पर वह सम्वतों में भूल नहीं कर सक्ता, यदि नामों में गलती हुई।

(२ ग)

'अबुलफिदा' किताब[1] की जिल्द दूसरी में शहाबुद्दीन के हिन्दुस्थान में आने का हाल लिखा है और उसमें सन् ५८६, ५८७, व ५८८ में जो जो बातें हुईं, उनका संक्षेप में वर्णन लिखा है, पर पृथ्वीराज की लड़ाई का हाल नहीं लिखा है; तो भी शहाबुद्दीन गोरी का उस समय में होना तो अच्छी तरह सिद्ध है और पीछे के इतिहासों में भी वही सम्वत् १२४८ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की लड़ाई का लिखा है।

राजा जयचन्द और शहाबुद्दीन गोरी का समय निश्चित हो गया, तो पृथ्वीराज के समय में भी कुछ सन्देह नहीं, क्योंकि वह उन्हीं के समय में हुआ था।

(३)

किताबों का प्रमाण देने के पश्चात अब मैं पाषाण की प्रशस्तियों का प्रमाण देता हूँ, जो मेदपाट देश में पाई गई हैं और थोड़े से ताम्रपत्रों का भी जो बंगाले की एशियाटिक सोसाईटी के पत्रों में छपे हैं:—

१ प्रशस्ति[2]

यह प्रशस्ति मेवाड़ के इलाके में बीजोली गाँव में पाई गई, जो राजधानी से प्रायः ५० कोस पर है। प्रशस्ति एक महुवे के वृक्ष के नीचे एक चट्टान पर है, जो श्री पार्श्वनाथजी के कुण्ड से उत्तर कोट के निकट है। चट्टान की सबसे बड़ी लम्बाई १२ फुट ६ इन्च और कम से कम ८ फुट ६ इन्च है और चौड़ाई ३ फुट ८ इन्च है।

इस प्रशस्ति में लिखा है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वरदेव ने रेवणा ग्राम स्वयंभूपार्श्वनाथजी को भेंट किया। यह प्रशस्ति एक महाजन ने सम्वत् १२२६ विक्रमी की फाल्गुन वदि ३ को रखवाई।

---

१. यह किताब पहिले हि० सन् ७०० (=ई० १,३००=सन्वत् १,३५६ विक्रमी) में अरबी भाषा में लिखी गई और पीछे से इसका भाषान्तर फारसी और उर्दू में हुआ।

२. प्रशस्तियों का मूल और भाषान्तर इसके शेष संग्रह में लिखा है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि पृथ्वीराज सम्वत् ११५८ में कदापि नहीं हो सक्ता; पर पृथ्वीराज रासा में लिखा है कि वह उस सम्वत् में मारा गया, जो अशुद्ध है।

प्रशस्ति में चौहानों की वंशावली सोमेश्वरदेव के नाम पर रुकगई है, जिससे मालूम होता है कि उसका कुँवर पृथ्वीराज प्रशस्ति की तिथिपर्यन्त राजगद्दी पर नहीं बैठा था।

२ प्रशस्ति

यह मेदपाट में मेनालगढ़ के एक महल के उत्तरी फाटक के ऊपर के एक स्तंभ पर मिली, जिसमें यह वर्णन है कि भाव-ब्रह्ममुनि ने एक मठ सम्वत् १२२६ विक्रमी में बनवाया, जब पृथ्वीराज चौहान राज करता था।

पहली और दूसरी प्रशस्तियों के मिलान से अनुमान होता है कि पृथ्वीराज ने सम्वत् १२२६ के फाल्गुन बदी ३ और चैत्र बदि ३० के बीच राजगद्दी पायी होगी। परन्तु यदि सम्वत् का आरंभ चैत्र के शुक्ल पक्ष को छोड़ कर किसी दूसरे महीने से मानने का प्रचार रहा हो, जैसा कि अभी तक कहीं २ प्रचलित है, तो फाल्गुन बदी ३ सम्वत् १२२६ और उसके सिंहासनरूढ़ होने के बीच अधिक अन्तर व्यतीत हुआ होगा क्योंकि दूसरे सम्वत् का आरंभ कई महीने पीछे हुआ होगा।

यह नियम है कि इतिहास तो समयानुसार बनते हैं, जिनमें बढ़ावा या झूठ भी होता है; परन्तु विशेष करके सच हाल लिखा जाता है और सम्वत् मिती में अन्तर नहीं होता और अगर होता है तो पृथ्वीराज रासा के समान ग्रन्थों में, जो कि अगले ग्रन्थकर्ताओं के नामसे कर्त्तबी (जाली) बना लिये जाते हैं, जैसा कि इस समय में भी धर्म्माधिकारी लोग प्राचीन समय का हवाला देने के लिये नई किताबें बनाकर पुरानी पुस्तकों के नामसे प्रसिद्ध करके पुराण बना देते हैं।

यदि पृथ्वीराज के कवि चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज रासा को बनाया होता तो वह इतनी बड़ी भूल ६० वर्ष की नहीं करता और जान बूझकर अशुद्ध सम्वत् लिखने से उसको कुछ लाभ नहीं होता।

(४)

सन् १८७३ ई० के (बंगाले की एशियाटिक सोसाईटी के) जर्नल के ३१७ पृष्ठ में राजा जयचन्द्र कनौज वाले के ताम्रपत्रों[1] का वर्णन है, जिनका सम्वत् १२३३—१२४३ ((ई० सन् ११७६—११८६) है। उसको मुसल्मानों ने सम्वत् १२४६ (सन ११६३ ईसवी) की लड़ाई में हराया।

पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की बेटी संयोगिता के साथ विवाह किया था। जयचन्द्र को शहाबुद्दीन गोरी ने कनौज में दिल्ली लेने के पीछे हराया, जैसा कि तबकातनासरी में लिखा है।

कर्नैलटॉड साहब ने अपनी 'राजस्थान' पुस्तक में सम्वत १२४६ विक्रमी शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की लड़ाई के वास्ते लिखा है; पर उन्होंने पृथ्वीराज रासा में लिखे हुए सम्वत् ११५८ के अशुद्ध होने का कारण कुछ नहीं लिखा। अर्थात् उसको अशुद्ध ठहराने के लिये कोई सबूत या दलील नहीं लिखी।

फिर इन्होंनें रावल समरसी के प्रपौत्र राना राहप्प का होना विक्रम के १३ वें शतक में लिखा है, जो वास्तव में १४ वें शतक के चौथे भाग में हुए थे।

हम कर्नैलटॉड को कुछ दोष नहीं लगा सक्ते; क्यों कि पृथ्वीराज रासो से राजपूताने के इतिहासों में सम्वतों की भूल होगई; और उनके लिये दूसरा वृत्तान्त लिखना बहुत कठिन वरञ्च असंभव था, जब इतिहास की सामग्री बड़ी कठिनता से प्राप्त होती थी। अगर उनका दोष है, तो इतना ही है कि उन्होंने अपनी पुस्तक के पूर्वापर की ओर दृष्टि नहीं दी।

उनके वर्णन से बहुतेरे ग्रन्थकर्त्ताओं ने गलती खाई। जैसे फॉर्बस साहब ने अपनी 'रासमाला' में, प्रिनसिपल साहब ने अपनी 'एन्टिक्विटीज' किताब की दूसरी जिल्द में, और डाक्टर हन्टर साहब ने अपने इम्पीरियल गजेटियर की ६ वीं जिल्द में (लंदन का छापा सन् १८८१ का पृष्ठ ११६); जिसमें लिखा है कि

---

१. इन का मूल और भाषान्तर शेष संग्रह में लिखेंगे।

सन् १२०१ ई. (=सम्वत् १२५७-५८ विक्रमी) में राहप्प राणा चित्तौड़ के राजा थे; परन्तु रावल समरसी का भी कोई चिन्ह सम्वत् १३२४ (=सन् १२६७ ई.) के पहले नहीं मिलता, जैसा इस लेख की अगली प्रशस्ती से प्रकाशित होगा।

(५)

पृथ्वीराज रासा से जो अशुद्धता इतिहास में हुई उनका थोड़ा सा वृत्तान्त लिखा जाता है:—

इतिहास लिखने का व्यवहार मुसल्मान लोग रखते थे। हिन्दुओं में यह चाल नहीं थी. और अगर थी भी तो इतनी ही कि कवि लोग बढ़ावे से काव्य लिखते थे और बड़वा लोग वंशावली के साथ थोड़ा २ तवारीखी हाल भी अपनी पोथियों में लिखते थे।

यह ध्यान रखना चाहिये कि इन लोगों की पोथियों में सम्वत १६०० विक्रमी के पीछे की वंशावली कुछ २ शुद्ध मालूम होती है। सम्वत् १४०० और सम्वत् १६०० के बीच के कुरसीनामे वंशावली) में कई गलतियां मिलती हैं; परन्तु सम्वत् १४०० से पहले की वंशावलियाँ जो उनकी पुस्तकों में पाई जाती हैं वह सब अशुद्ध और कयासी हैं अर्थात् अनुमान से बनाली गई हैं।

जब पृथ्वीराज रासा तैयार होकर पृथ्वीराज के कविचंद का बनाया हुआ प्रसिद्ध किया गया, तब भाट और बडवों ने पृथ्वीराज के स्वर्गवास का सम्वत् १२ वें शतक विक्रमी में मान कर राजपूताने की अपनी सब पुस्तकों में वही लिख दिया।

१ जैसे चित्तौड़ के रावल समरसीजी का विवाह पृथ्वीराज की बहन पृथा के साथ जो रासो में लिखा है, उससे रावल समरसी के गादी विराजने का सम्वत् ११०६ और पृथ्वीराज के साथ लड़ाई में १३००० सवारों के साथ उनके मारे जाने का सम्वत् ११५८ श्रावण शुक्ला ३ लिख दिया।

विचार करना चाहिये कि उन बड़वा भाटों ने रावल समरसिंह का मारा जाना सम्वत् ११५८ में लिख कर उसी को पुष्ट करने के लिये रावल समरसिंह से लेकर राणा मोकलजी के अन्तकाल तक सब राजाओं के सम्वत् अपनी किताबों में अनुमान से लिख दिये—

१. रावल रामसिंह, २. रावल रत्नसिंह, ३. रावल कर्णसिंह, ४. राणा राहप्प, ५. राणा नरपति, ६. दिनकरण, ७. यशाकरण, ८. नागपाल, ९. पूर्णपाल, १०. पृथ्वीपाल, ११. भुवनसिंह, १२. भीमसिंह, १३. जयसिंह, १४. लक्ष्मणसिंह, १५. अरिसिंह, १६. अजयसिंह, १७. हमीरसिंह, १८. क्षेत्रसिंह, १९. लक्षसिंह, २०. मोकलजी।

राजपूताने के लोगों ने इन राजाओं के सम्वतों पर (जैसाकि बड़ावों ने लिखा था) विश्वास कर लिया और अपनी किताबों में लिख दिया।

अब देखना चाहिये—कैसे आश्चर्य की बात है कि रावल समरसी का पृथ्वीराज की बहन के साथ विवाह करना पृथ्वीराज रासा में लिखा है; पर यह कदापि नहीं हो सकता: क्योंकि राजा पृथ्वीराज रावल समरसी से एक सौ वर्ष पहले हुआ था।

गंभीरी नदी के ऊपर,जो चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले के पास बहती है,एक पत्थर का पुल बना हुआ है, जो महाराणा लक्ष्मणसिंह के कुँवर अरिसिंह,का बनवाया हुआ कहा जाता है। यद्यपि मैंने किसी फारसी इतिहास में लिखा हुआ नहीं देखा है, पर कोई २ मुसल्मान लोग उसको अलाउद्दीन खिलजी के बेटे खिज्रखां का बनवाया हुआ कहते हैं। चाहे उस पुल को किसी ने बनवाया हो, पर यह तो निश्चय है कि वह विक्रम के चौदहवें शतक के समाप्त होते २ बनाया गया और इसकी बनावट से यही जान पड़ता है कि किसी मुसल्मान ने बनवाया।

३ प्रशस्ति

उस पुल में पानी के ९ निकास हैं और पूर्व से पश्चिम की ओर आठवें दर में १ पाषाण है, जिस पर एक प्रशस्ति सम्वत् १३२४ विक्रमी (=सन् १२६७ ई०) की है जिसमें रावल समरसी के पिता रावल तेजसिंह का नाम लिखा है।

मालूम होता है कि यह प्रशस्ति पहिले किसी मन्दिर में लगी थी और पुल बनने के समय प्रशस्ति का पत्थर वहां से निकाल कर पुल में लगाया अर्थात् पुल बनाने के लिये कुछ मसाला उस मन्दिर से लाया गया।

प्रशस्ति के अक्षर इतने गहरे खुदे हैं कि कई सौ वर्ष तक पानी की टक्कर लगने से भी नहीं बिगड़े हैं। दो पंक्तियां विद्यमान हैं और उनकी प्रतिलिपि शेष संग्रह (तीन) ३ में लिखी है।

४ प्रशस्ति

उसी पुलके नौकोठे में एक प्रशस्ति और भी है, जिसका सम्वत १३–२ जेष्ठ शुक्ला त्रयोदशी है, उसमें यह मतलब है कि रावल समरसिंह ने लाखोटा बारी[1] के नीचे नदी के तीर पर पृथ्वी का एक टुकड़ा अपनी माता जयम(त)ल्लदेवी के मंगल के हेतु किसी को भेंट किया।

बड़े खेद का विषय है कि इस प्रशस्ति का प्रारंभ ही खंडित है और बीच २ में भी कहीं २ अक्षर टूट गये हैं। सम्वत् के ४ अंकों में दहाई का अंक खंडित हो गया; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रशस्ति रावल समरसी के समय की है और संवत् के शतक का अंक १३ साबित और एकाई के स्थान पर २ का अंक है इससे ऐसा अनुमान होता है कि यह प्रशस्ति संवत् १३३२ की होगी। क्योंकि रावल समरसी के पिता रावल तेजसिंह की संवत् १३२४ की प्रशस्ति से यह बहुत मिलती है और यह संभव है कि एक ही मनुष्यने दोनों प्रशस्तियों को लिखा हो। इस बात से १३४२ का सम्वत होना असंभव है।

५ प्रशस्ति.

एक प्रशस्ति चित्तौड़गढ़ के महल के चौक में मिट्टी में गड़ी हुई मिली, जिसका सम्वत् १३३५ वैसाख शुदी ५ गुरुवार है, यह रावल समरसी के समय में लिखी गई; जिन्होंने अपनी माता जयतल्लदेवी, रावल तेजसिंह की रानी, के बनवाये हुए श्री श्यामपार्श्वनाथजी के मंदिर को कुछ धरती भेंट की थी।

६ प्रशस्ति.

आबूजी पर अचलेश्वर महादेव के मन्दिर के पास मठ में एक पत्थर पर जिसकी लंबाई ३ फुट २ इंच और चौड़ाई ३ फुट है; पाई गई। इसका संवत् १३४२

---

१. चित्तौड़ गढ़ के (किले के) उत्तरी किनारे पर यह दरवाजा है।

(=सन् १२८५ ई.) हैं। इसका मतलब यह है कि रावल समर सिंह ने मठ का जीर्णोद्धार अर्थात् मरम्मत किया और उसके लिये स्वर्ण का ध्वज—स्तंभ बनवाया।

७ प्रशस्ति

चित्रकूट[1] पर चित्रंगमोरी के बनाये हुए जलाशय में एक मंदिर बनाया गया, जिसमें एक प्रशस्ति संवत् १३४४ वैशाख शुदी ३ (=सन् १२८७ ई०) की है। जिसमें यह मतलब है कि वैद्यनाथ महादेव के मंदिर के लिये धरती भेंट की गई, जब रावल समरसिंह चित्तौड़ में राज करते थे।

यह प्रशस्ति एक श्वेत पाषाण के स्तम्भ पर है, जो सुरह का स्तम्भ है जिसमें महादेव की एक मूर्ति बनी है, मुझको चित्तौड़ के पूर्वी फाटक सूर्य पोल के रास्ते में तीसरे दरवाजे में मिली। उसको मैंने राजधानी उदयपुर में मँगवा लिया, जो यहाँ महलों में वर्तमान है।

इन प्रशस्तियों से सिद्ध होता है कि रावल समरसिंह के पिता रावल तेजसिंह संवत् १३२४ (=सन् १२६७ ई.) में चित्तौड़ और मेवाड़ का राज करते थे और यह भी कि रावल समरसिंह संवत् १३३२ से लेकर १३४४ (अर्थात् सन् १२७५ ई. से सन १२८७ ई०) तक राज करते थे।

इस तरह हम देखते हैं कि रावल समरसिंह का राज्य समय सम्वत् १३२४ के पहले किसी तरह नहीं हो सकता, पर सम्वत् १३४४ के पीछे २ या ४ वर्ष राज किया हो तो आश्चर्य नहीं।

इस लिये सम्वत् में पृथ्वीराज के साथ रावल समरसिंह का मारा जाना, जो पृथ्वीराज रासा में लिखा है, किसी तरह ठीक नहीं हो सकता।

फिर रावल समरसिंह का होना सम्वत् १२४६ (= सन् ११६३ ई०) में भी निश्चित नहीं है; जिस वर्ष में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी की लड़ाई हुई।

इससे पाया जाता है कि अगर पृथ्वीराज की बहिन का विवाह चित्तौड़ के किसी राजा के साथ हुआ हो,तो किसी दूसरे राजा के साथ हुआ होगा, समरसिंह के

१.–चित्तौड

साथ नहीं क्योंकि पृथ्वीराज सम्वत् १२४६ में मारा गया और समरसिंह की प्रशस्तियां सम्वत् १३३२ से लेकर सम्वत् १३४४ तक की मिलती हैं। अर्थात् समरसिंह का राज पृथ्वीराज के मारे जाने के ६३ वर्ष पीछे पाया जाता है, जिससे समरसिंह का विवाह पृथ्वीराज की बहिन के साथ होना, जैसा रासा में लिखा है, असम्भव है।

यदि यह विचार किया जावे कि चित्तौड़ पर समरसिंह नाम का कोई दूसरा राजा हुआ होगा, तो यह सन्देह नीचे लिखी हुई बापा रावल से समरसिंह रावल तक, शुद्ध वंशावली से बिलकुल मिट जाता है, क्यों कि यह वंशावली पत्थर की प्रशस्तियों से लिखी गई है।

वंशावली

१	बापारावल	१६	वैरड़
२	गुहिल	१७	वैरिसिंह
३	भोज	१८	विजयसिंह
४	शील	१९	अरिसिंह
५	कालभोज	२०	चौंडासिंह
६	भर्तृभट	२१	विक्रमसिंह
७	अवसिंह	२२	क्षेमसिंह
८	समहायक	२३	सामन्तसिंह
९	खुम्माण	२४	कुमारसिंह
१०	अल्लट	२५	मथनसिंह
११	नरवाहन	२६	पद्मसिंह
१२	शक्तिकुमार	२७	जयसिंह
१३	शुचिवर्म	२८	तेजसिंह
१४	नरवर्म	२९	समरसिंह*
१५	कीर्तिवर्म	३०	रत्नसिंह

ऊपर लिखी हुई वंशावली में चित्तौड़ पर राज करने वाले केवल एक ही समरसिंह (नम्बर २६) हुए और रासा में भी यही लिखा है कि समरसिंह रावल तेजसिंह के पुत्र थे और रत्नसिंह (नम्बर ३०) उनके जेष्ठ और कुम्भकर्ण कनिष्ठ पुत्र थे। तो तेजसिंह के पुत्र और रत्नसिंह के पिता यही रावल समरसिंह हैं, जिनका नाम पृथ्वीराज रासा में भूल से बारहवें शतक में लिखा गया।

दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ का किला बड़ी खूंरेजी (रक्त प्रवाह) के बाद सम्बत १३५६ (= सन् १३०२–३ ई०) में लिया जब समरसिंह के पुत्र रावल रत्नसिंह वहाँ के राजा थे। इस बात से पृथ्वीराज रासा का लिखना कभी सच नहीं हो सकता कि रावल समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन के साथ विवाह किया था और वह पृथ्वीराज के साथ सम्वत् ११५८ में मारे गये, जो सर्वरीति असंभव है, क्योंकि यदि ऐसा हुआ होता, तो रावल समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह सम्वत १३५६ में अर्थात् अपने पिता के देहान्त के २०० वर्ष पीछे किस तरह राज करते?

(१) पृथ्वीराज रासा के लेख से मेवाड़ के इतिहास में सम्वत् की बड़ी गलती हुई कि रावल समरसिंह सम्वत् ११०६ में मेवाड़ की गादी पर बैठे और सम्वत् ११५८ में शहाबुद्दीन गोरी से लड़कर पृथ्वीराज के साथ मारे गये।

इस बात से रावल समरसिंह का होना उनके ठीक समय से प्रायः दो सौ वर्ष[1] पहिले होता है और राजपूताने के बड़वा भाटों ने पृथ्वीराज रासा को सच्चा मान कर ऐसा लिख दिया, तो अगली वंशावली (कुरसीनामे) में भी गलती हुई अर्थात् रावल समरसिंह और राणा मोकलजी के बीच का समय दोसौ वर्ष अधिक हो गया, और कवियों ने इन गलती के वर्षों को समरसिंह और राणा मोकलजी के बीच के राजाओं के सम्वतों में बाँट करके कुरसी नामे में अनुमान से सम्वत् लिख दिये।

(२) इसी तरह जोधपुर के लोगों ने भी राजा जयचन्द्र राठौड़ कनौज वाले के गादी पर बैठने का सम्बत् ११३२ (=सन् १०७५ ई०) लिख दिया क्योंकि पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की बेटी संयोगिता के साथ विवाह किया था।

---

१. १३४४ में से ११५८ घटाया जावे तो १८६ बचते हैं। अर्थात् प्रायः दो सौ वर्ष।

उन्होंने भी गलती के एक सौ बरसों को राजा जयचन्द्र से लेकर मंडोवर के राव चून्डा के अन्तकाल पर्य्यन्त जो राजा हुए उनके सम्वतों में बाँट दिया।

राजा जयचन्द्र का गादी पर बैठना सम्बत् ११३२ में किसी तरह नहीं हो सकता। क्यों कि बंगाले की एशियाटिक सोसाईटी के जर्नल–जिल्द (३३. नम्बर ३ पृष्ठ २३२ सन् १८६४ ई०) में कनौज के राठौड़ों का एक नक्शा मेजर जनरल कनिंगहम साहब ने लिखा है:—

नाम	सम्वत	ई० सन्
चन्द्रदेव	११०६	१०५०
मदनपाल	११३६	१०८०
गोविन्दचन्द्र	११७१	१११५
विजयचन्द्र	१२२१	११६५
जयचन्द्र	१२३१	११७५

इस नकशे से मालूम होता है कि जयचन्द्र उस सम्वत् से १०० वर्ष[1] पीछे हुआ, जोकि जोधपुर के लोगों ने उसके सिंहासन पर बैठने के लिये पृथ्वीराज रासा के आधार से लिख दिया; फिर उक्त सोसाईटी के जर्नल (नम्बर ३ पृष्ठ २१७–२२० सन् १८५८ ई०) में फिड्ज़ एडवर्डहॉल साहब ने ताम्रपत्रों की नकल[2] छापी है—

नम्बर १० मदनपालदेवका ताम्रपत्र सम्वत ११५४ (=सन् १०६८ ई०) का पृष्ठ २२१—

नम्बर २० गोविन्दचन्द्र का दानपत्र सम्वत् ११८२ (= सन् ११२६ ई० पृष्ठ २४३।

इन सम्वतों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन राजाओं का राज्य समय भी सम्वत् ११३२ से पीछे हुआ, जो सम्वत् विजयचन्द्र के गादी विराजने के लिये मान लिया गया: जो कि राजा मदनपाल और गोविन्दचन्द्र के बहुत पीछे हुए।

१– १२३१—११३२=६१

२– शेष संग्रह में देखो—

(३) वैसे ही आमेर (जयपुर) के बड़वा भाटों ने भी प्रजूनजी कच्छवाहा के (जिसका नाम पृथ्वीराजा रासा में पृथ्वीराज के शूर वीरों में लिखा है) सिंहासन पर बैठने का सम्वत् ११२७ (= १०७१ ई०) और उसके देहान्त का सम्वत् ११५१ (= सन १०९५ ई०) लिख दिया।

यह सम्वत् भी किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकते। यद्यपि मुझको प्रजूनजी के गादी पर बैठने का सम्वत् ठीक ठीक सबूती के साथ नहीं मिला है, और वह पृथ्वीराज के सर्दारों में से थे, तो उनका भी सम्वत् १२४९ (= सन् ११९३ ई०) के लगभग होना चाहिये, जो कि पृथ्वीराज के मारे जाने का ठीक सम्वत् है।

(४) इसी प्रकार बूँदी, सिरोही और जैसलमेर इत्यादि ठिकानों के इतिहासों में अशुद्ध सम्वत लिखे गये जैसे कि पृथ्वीराज रासा के लेख से मालुम हुए। इस बात से इतिहास लिखने वालों के प्रयोजन में बड़ा भंग हुआ।

कोई यह कहे कि पृथ्वीराज रासा के लेखक ने भूल से १२०० की जगह ११०० लिख दिया, तो उसका उत्तर यह है—

(१) कविता में ऐसा होने से छंद टूटता है।

(२) 'शिव' और 'हर' यह ज्योतिष के शब्द जो रासा में ११ के लिये लिखे गये हैं, उनका मतलब १२ कभी नहीं हो सकता।

(३) वही वर्ष अर्थात् ११००, रासे की डेढ़ या २०० वर्ष पुरानी पुस्तकों में पाये जाते हैं, जैसे कि हाल की लिखी हुई पोथियों में मिलते हैं।

(४) सम्वत् केवल १ या २ ही स्थानों में नहीं लिखे हैं कि लेखक दोष आजावे; परंतु कई स्थानों में; और पृथ्वीराज की जन्मपत्री, जो रासे में लिखी है, उसमें सम्वत् मिती महीना ग्रह घटी मुहूर्त सब दोहे और छंदों में लिखे हैं। उस जन्मपत्री को पण्डित नारायणदेव शास्त्रीजी ने (जो काशी के एक विद्वान् पंडित ज्योतिषी श्री १०८ श्री मेदपाटेश्वर महाराणाजी के यहां नौकर हैं) गणित से देखा तो मालूम हुआ कि वह उस समय की नहीं हो सकती। गणित नीचे लिखा है—

प्रश्न.

सम्वत् १११५ वैशाखकृष्ण ३ गुरुवार चित्रानक्षत्र सिद्धियोग सूर्योदय में डेढ़घड़ी बाक़ी रहते जन्म हुआ। पृथ्वीराज ऐसा नाम होने से चित्रा का पूर्वार्द्ध कन्या राशि है। पंचम स्थान में चन्द्रमा और मंगल हुए एतञ्च कन्या राशि पंचम स्थान में है। अर्थात् वृष लग्न में जन्म है, अष्टमें शनि, दशमें गुरु शुक्र और बुध, एकादश में राहु; द्वादश में सूर्य, यह ग्रहव्यवस्था सब सही है वा अशुद्ध है इसका उत्तर गणितसमेत कहो—

उत्तर

श्री सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सम्वत् १११५ वैशाख कृष्ण ३ रविवार को होती है। कलियुगादि अहर्गण १५१६९०० स्पष्ट सूर्य ११।२१।२५।४६।। स्पष्ट चन्द्र ६।१६।२७।१७, नक्षत्र स्वाती और योग वज्र होता है, और सूर्योदय के पहिले यदि जन्म है तो लग्न से द्वादश सूर्य किसी तरह नहीं हो सकता और वृष लग्न में द्वादश सूर्य तब होगा कि जब मेष का होगा। यहाँ तो मीन का है और अब भौमादि ग्रह स्थिति विचार करना कुछ आवश्यक नहीं। इतने सेही निश्चत होता है कि प्रश्न लिखित वार आदि तथा लग्न चन्द्र सूर्य स्थिति असंगत हैं।

ऐसे ही पृथ्वीराज रासा में शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की अंतिम लड़ाई, जिसमें पृथ्वीराज मारा गया, उसका सम्वत् ११५८ लिखा है और तिथि श्रावण वदी ३० कर्क संक्रान्ति रोहिणी नक्षत्र और चन्द्रमा वृष राशी का लिखा है।

यदि चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर हो तो सूर्य की वृष राशि होती है और नियम से अमावस्या के सूर्य और चंद्रमा एक ही राशि पर होते हैं। कर्क राशि पर सूर्य का होना तो शुद्ध मालूम होता है; परन्तु वृष का चंद्रमा जो पृथ्वीराज रासा में लिखा है, वह नहीं हो सकता, कर्क का चन्द्रमा चाहिये।

ऐसे जाना जाता है कि ग्रन्थकर्ता ज्योतिष नहीं पढ़ा था। अतः इस भूल पर दृष्टि नहीं दी और यह भी स्पष्ट है कि वह राजा सोमेश्वरदेव अथवा पृथ्वी-राज चौहान का कवि नहीं था, क्योंकि होता तो पृथ्वीराज के जन्म की तिथि मुहूर्त और लग्न अवश्य ठीक २ जानता।

अब यह तो ऊपर लिखी हुई बातों से सिद्ध हो गया कि पृथ्वीराज रासा पृथ्वीराज के समय में नहीं बना और न चन्दबरदई इसका बनाने वाला था।

चन्दबरदई नाम के कवि का होना भी इसी पृथ्वीराज रासा से ही प्रसिद्ध है। फिर न जाने वह कोई कवि उस समय में था या नहीं।

(४)

अब यह प्रश्न स्थित हुआ कि यदि चन्दबरदई ने पृथ्वीराज रासा नहीं बनाया, तो कब और किसने इस ग्रंथ को रचा।

हम ऊपर लिख आये हैं कि राजपूताने के किसी कवि ने यह किताब बनाई तो मेरी बुद्धि के अनुसार इसके बनाने का समय भी नीचे लिखी हुई बातों से सिद्ध हो सकता है—

(१) क्योंकि अकबर बादशाह के समय से पहिले की बनी हुई राजपूताने की कविता जहाँ तक मिलती है, उसमें फ़ारसी भाषा के शब्द नहीं हैं; केवल संस्कृत, राजपूताने की भाषा, ब्रजभाषा, मागधी या प्राकृत और कभी २ गुजराती के शब्द भी पाये जाते हैं।

राजपूताने के राजाओं का बादशाही दर्बार में आना जाना अकबर बादशाह के समय में होने लगा।

आंबेर के राजा भारमल कच्छवाहा का प्रचार बादशाही दर्बार में सम्वत् १६१६ (=१५६२ ई०) में पहिली बार हुआ। परन्तु जयपुर के राज में मारवाड़ी भाषा के कवि बहुत कम थे और उस राज्य में अब तक भी ब्रजभाषा की कविता की चाल अधिक है। अगर जयपुर के राजाओं की या उनके भाई बन्धुओं की कविता प्राचीन समय की मिलती है, तो वह मारवाड़ या मेवाड़ के कवियों की बनाई हुई पाई जाती है। इससे सिद्ध होता है कि अव्वल नंबर मारवाड़ की भाषा की कविता करने वाले कवि मारवाड़ और दूसरे नंबर मेवाड़ के थे।

इन दोनों देशों के कवियों का आना जाना दिल्ली की ओर अकबर बादशाह के पिछले समय में हुआ। अर्थात् जोधपुर के राव मालदेव के बेटों का झगड़ा

मिटने पर उदयसिंह सम्वत् १६३६ (=सन् १५८२ ई०) में मारवाड़ के राजा होकर अकबर के दर्बार में रहने लगे। उस समय से मारवाड़ी कवियों का दिल्ली की ओर आना जाना अधिक होने लगा और उसी समय के पीछे और भी हिन्दी भाषा के बड़े २ कवियों ने उन्नति पाई।

जैसे गुसाईं तुलसीदास, केशवदास, सूरदास, ईश्वरदास, बारहठ, लखा और नरहरदास इत्यादि, और उसी समय से हिन्दी कविता में फ़ारसी भाषा के शब्दों का मेल अधिक होने लगा।

अनुमान से पृथ्वीराज रासा में ८ या १० भाग में एक भाग फ़ारसी शब्द है और सम्वत् १६४० (= सन् १५८३ ई०) के पश्चात् मेवाड़ के महाराणा तो बादशाही दर्बार में नहीं गये, पर इनके भाई बेटे, जो उनसे विरुद्ध थे, गये। जैसे शक्तिसिंह, जगमाल और सगरसिंह इत्यादि; जिनके साथ कई एक कवियों का आना जाना रहा और मारवाड़ और मेवाड़ दोनों देशों की कविता में फ़ारसी शब्दों का बहुत मेलजोल हो गया। हमारे अनुमान से सम्वत् १६४० से १६७० तक ३० वर्षों के बीच यह काव्य बना:—

(१) क्योंकि रणथंभोर के चौहान राजा हम्मीर के पूर्वजों का तथा उनकी लड़ाइयों का वृत्तांत 'हम्मीर महाकाव्य' नाम के ग्रंथ में लिखा है, जो सम्वत १५४० या १५४२ के लगभग बनाया गया। उसमें भी राजा पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी की लड़ाई का हाल लिखा है; परन्तु पृथ्वीराज रासा के वर्णन से कुछ भी नहीं मिलता और न पृथ्वीराज के पूर्वजों के नाम की शृङ्खला मिलती है; यदि पृथ्वीराज रासा पहले बना होता तो हम्मीर काव्य का बनाने वाला अवश्य उसके अनुसार लिखता।

(२) यदि रासा रावल समरसिंह के समय से एक वा दो सौ वर्ष पीछे भी बनाया जाता तो इतनी अशुद्धता उसमें नहीं आती जितनी आगई है। अब भी दो वा ढ़ाई सौ बरस पहले जो राजा हो गये, उनके सम्वतों में इतनी अशुद्धता नहीं होती। इससे पाया जाता है कि पृथ्वीराज राजा रावल समरसिंह के ३००

वर्ष पीछे बनाया गया और रावल समरसिंह पृथ्वीराज से प्राय १०० वर्ष[1] पीछे हुए।

ऐसे सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज रासा पृथ्वीराज या चन्दबर्दाई से प्रायः ४०० वर्ष पीछे बनाया गया और ग्रंथकर्त्ता ने किसी अशुद्ध इतिहास पर अपने काव्य रूपी जाल की रचना की।

(क) अब मैं सिद्ध करूँगा कि यह काव्य सम्वत् १६४० के पीछे लिखा गया। क्योंकि इस किताब में मेवाड़ के राजाओं की बहुतसी प्रशंसा रावल समरसिंहजी के नाम से की है और एक स्थान में उनको आशीस देने में यह शब्द लिखे हैं—

(१) कलंकिया राय केदार
(२) पापियां राय प्रयाग
(३) हत्यारां राय बाणारसी
(४) गदनबान राय राजानरी गंग
(५) सुल्तान ग्रहण मोखन
(६) सुलतान मान मलन

अर्थ

(१) कलंकियों के लिये श्री केदारनाथ के समान।
(२) पापियों के लिये प्रयागराज।
(३) हत्यारों के लिये बनारस अर्थात् काशी सदृश।
(४) मदोन्मत्त अथवा मदिरापान करने वाले राजाओं के लिये श्री गंगाजी के समान।
(५) सुल्तान को पकड़ करके फिर छोड़ देने वाला।
(६) सुल्तान के अभिमान को भंग करने वाला।

१—पृथ्वीराज सम्वत् १२४६ में मारा गया और रावल समरसिंह ने प्रायः सम्वत् १३४४ तक राज्य किया। इस तरह उनके समयों का अन्तर ६५ वर्ष का है।

इन सब पदवियों से मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंहजी (सांगा) की ओर संकेत है—

नम्बर ४ की पदवी से यह संकेत है कि राजपूताने के दूसरे राजा बादशाही नौकर बनकर अभिमान के सहित रहते और मदिरापान करते थे। मेवाड़ के राणा मदिरापान नहीं करते थे। इसलिये दोनों बातों का ताना देकर कहा गया है कि उन राजाओं को पवित्र करने के लिये उदयपुर के राणा गंगाजी के समान हैं।

नम्बर ५ की पदवी से मालूम होता है कि महाराणा संग्रामसिंहजी ने मालवा के सुल्तान महमूद को सम्वत् १५७४ (= सन् १५१८ ई० = ६२४ हिजरी) में कैद किया और पीछे छोड़ दिया।

(६) छठे नम्बर के नाम से गुजराती बादशाहों की ओर संकेत है, जिनका देश महाराणाजी ने जीतकर लूट लिया था।

उस समय के और भी कवियों ने इसी प्रकार कविता की है, जिसका उदाहरण नीचे लिखा है—

(१) दोहा— अइरे अकबरियाह—तेज तुहालो तुरकड़ा।
नयनय नीसरियाह—राण बिनाशहराजवी ॥

(२) अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हिन्दू अवर।
जागे जग दातार, पोहोरे राण प्रतापसी ॥

अर्थ

(१) अहो अकबर ! ए तुरक ! तेरे प्रताप के सामने महाराणा उदयपुर के सिवाय सब राजा नय २ कर निकल गये।

(२) अकबर बादशाह घोर अंधकार है, जिसमें दूसरे सब हिन्दू ऊंघने लगे; परन्तु जगत् को सम्पत्ति देने वाले महाराणा प्रतापसिंहजी पहरे पर जागते हैं।

कवि लोग मुसल्मानों की नौकरी करने और उनको बेटी ब्याह देने का, राजपूताने के राजाओं पर अप्रतिष्ठा का दाग़ लगाते हैं, तो ऊपर लिखे हुये ६ नामों से मालूम होता है कि पृथ्वीराज रासा सम्वत् १५७४ (= सन् १५१८ ई०) के पश्चात् लिखा गया, जिस सम्वत् में महाराणा सांगा ने मालवा के बादशाह को हराया था, और इसमें फारसी भाषा के शब्द होने से जान पड़ता है कि यह सम्वत् १६४० के पीछे बनाया गया, जिस सम्वत् में प्रथम बार राजपूताने के कवि लोग बादशाही दर्बार में गये और अपने लेखों में फारसी शब्द मिश्रित करने लगे।

(ख) रसिका सम्वत् १६४० के पीछे, बनना तो सिद्ध हो गया। अब यह दिखलाया जायगा कि वह, सम्वत् १६७० (= सन् १६१३ ई०) के पहले बना।

क्यों कि (पृथ्वीराज रासा के) दिल्ली कथा नामक प्रस्ताव में (पृष्ठ ३५) ३१ वां दोहा इस तरह है:—

दोहा

सोर सै सत्तोतरे—विक्रम साकवदीत ।
दिल्लीधर चीत्तौड़पत–लेखा गांबलजीत ॥

अर्थ

विक्रमी सम्वत् १६७७ में चित्तौड़ के स्वामी दिल्ली की धरती जीत लेंगे।

इस दोहे से सिद्ध होता है कि भविष्यन् वक्ता होकर कवि ने यह बात लिखी कि दिल्ली पर चित्तौड़ के राजाओं का राज होगा। इसलिये सिद्ध हुआ कि यह काव्य सम्वत् १६७७ के पूर्व बना।

मेरा अनुमान ऐसा है कि सम्वत् १६७१ के पहले बनाया गया; क्यों कि उस सम्वत् में शाहज़ादाखुर्रम के द्वारा महाराणा अमरसिंहजी (१) और जहाँगीर बादशाह के बीच मेल हुआ। उसके पीछे तो यह दोहा नहीं कहा गया होगा; क्यों कि दिल्ली को जीतने का अभिमान जाता रहा था।

सम्वत् १६७१ के पूर्व महाराणा प्रतापसिंहजी के समय से, उदयपुर के राणाओं ने सिर के केश मुंडवाना, धातु के बरतन में खाना, और तलवार कमर में बाँधना तथा सवारी में नक्कारा आगे रखना छोड़ दिया था और यह प्रतिज्ञा की थी कि दिल्ली के बादशाह को जीतेंगे। तभी इन सब रीतियों को पुनः प्रचलित करेंगे अन्यथा नहीं और अद्यावधि वे रीतियां प्रचलित नहीं हुईं।

सम्वत् १६४० से सम्वत् १६७० के बीच इनकी वीरता और महाराणा सांगाजी तथा उनके पहिले के महाराणाओं के पराक्रम से राजपूताने के लोगों को विश्वास हो गया था कि उदयपुर के राणा अवश्य दिल्ली के बादशाहों को जीतेंगे और इसी कारण यह दोहा भविष्यत् वाणी की रीति से पृथ्वीराज रासा में लिख दिया गया।

४ इस लेख से मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि पृथ्वीराज रासा का समस्त वृत्तान्त अशुद्ध है; क्यों कि ग्रंथ कर्ता ने कुछ हाल सुना होगा, तभी इतना लिखा है; पर यह तो स्पष्ट है कि उस को कोई अशुद्ध इतिहास मिला होगा और उसी के अनुसार उसने ग्रंथ बनाया।

मेरा मुख्य मनोरथ इस लेख से यही है कि विद्वानों पर विदित हो जावे कि रासा में सम्वतों की बड़ी अशुद्धता है और चंदवरदाई या उसके समय के किसी कवि ने इसको नहीं बनाया।

पृथ्वीराज रासा की प्राचीनता पर जो मेरा सन्देह है वह इस बात से और भी दृढ़ होता है कि इसका वृत्तान्त और मनुष्यों के नाम तथा सम्वत् जो इसमें लिखे हैं, वह पृथ्वीराज के समय की बनी हुई फारसी भाषा की पुस्तकों के अनुसार नहीं हैं।

[विन्सैन्ट ए० स्मिथ साहब ने बंगाले की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल (नम्बर १ भाग पहिला, पृष्ठ २६ सन् १८८१) में लिखा है कि पृथ्वीराज रासा

वर्तमान रूप में बहकाने वाला है, और इतिहासकर्त्ता के तात्पर्य के लिये प्राय: निरर्थक है] मैं उक्त महाशय की बात स्वीकार करता हूँ।

शेषसंग्रह मूलप्रशस्ति

(१)

श्री पार्श्वनाथजी का कुण्डसूं उत्तर तरफ कोट नखे मोरडी नीचला अक्षर—

उंनमो वीतरागाय चिद्रूपंसहजोदितं निरवधिं ज्ञानैक निष्ठार्पितं। नित्योन्मीलितमुल्लसत्परकलं स्यात्कारविस्फारितं॥ सद्युक्तंपरमाद्भुतं शिवसुखानंदास्पदं शाश्वतं। नौमि स्तौमि जपामि याभि शरणं तज्ज्योपिरात्मस्थितम्॥ १॥ नास्तंगत: कुग्रह संग्रहो वा नोतीव्रतेजा·············· व:॥ ··············· नैवसुदुष्टदेहो पूर्वोरविस्तात्समुदेवृपोव:॥ २॥ भवेच्छ्री शाति: सा सुत विभवभंगी भव भृतां, विभोर्यस्याभातिस्फुरित नखरोचि: करयुगं॥ विनम्राणामेषाम खिल कृतिनां मंगलमयीं। स्थिरी कर्तुं लक्ष्मीमुपरचितरंगा ब्रजमिव॥ ३॥ नासाश्वासेन येनप्रबलवल भृता पूरित: पांचजन्य:। ··························· ············पदमाग्रदेशै:॥ हस्तांगुष्ठेनशार्ङ्गधनुरतुल बलंकृत्स्नमारोप्यविष्णो रंगुल्यांदोलितोयं हलभृदिवनतिं तस्यनेमेस्तनोमि॥ ४॥ प्रांशुप्राकार कान्तात्रिदशपरिवृढव्यूहबद्धावकाशां। वाचालांकेतुकोटीत्क्वणयुमणिमणिकिंकिणीभि: समन्तात्॥ यस्य व्याख्यानभूमिमहहकिंमिदमित्याकुला: कौतुकेन। प्रेक्षंते प्राणभाज: सरवलुविजयतांतीर्थकृत्पार्श्वनाथ:॥ ५॥ वर्द्धतांवर्द्धमानस्यवर्द्धमान-

यह लेख अंग्रेजी भाषा में कविराजाजी ने जर्नल ऑव् दि बंगाल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता जिल्द १ नं० १ सन् १८८६ ई० में मुद्रित करवाया था, फिर उसको हिन्दी भाषा में 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' शीर्षक से सं० १९४३ में सज्जन यंत्रालय, उदयपुर में महाराणा फतहसिंह के आदेशानुसार छपवा कर प्रकाशित किया।

महोदयः ।। वर्द्धतांवर्द्धमानस्यवर्द्धमान महोदयः ।। ६ ।। सारदांसारदांस्तौमि सारदानविसारदां ।। भारतींभारतींभक्तभुक्तिमुक्ति विशारदां ।। ७ ।। निः प्रत्यूहमुपास्महेनितपतोतंत्रानपिस्वामिनः । श्रीनाभेयपुरः सरान्पर कृपा पीयूषपाथोनिधीन् ।। यज्ज्योतिः परभागभाजनतयामुक्तात्मतामाश्रिताः । श्रीमन्मुक्तिनितंबिनीस्तनतटेहारश्रियं बिभ्रति ।।८।। भव्यानांहृदयाभिरामवसतिः सद्धर्मतः संस्थितिः । कर्मोन्मूलन संगतिः शुभततिर्निबधिवोधोदधृतिः ।। जीवानामुपकारकारणरतिः श्रेयः श्रियां संस्मृतिर्देयान्मे भवसंभृतिः शिवमतिंजैनेचतुर्विशतिः ।।९।। श्रीचाहमानाक्षिति राजवंश पौर्वोपिजडावतद्धः ।। विस्तोतवाननृपरंभ्रयुक्तोनोनिः फलः सार युतोनतोनो ।।१०।। लावण्य निर्मल महोज्वलितांगयष्टिरच्छोच्छ लच्छुचिपयः परिधानधात्री ।।.........गपर्वतपयोधरभारभुग्नांसाकं भराश्रनिजनीवततोपिविष्णोः ।।११।। विप्रश्रीवत्सगोत्रेभूदहिछत्रपुरेपुरा । सामंतोनंत सामन्त पूर्णतल्लेनृपस्ततः ।।१२।। तस्माच्छ्रीजय राजविग्रहनृपौ श्रीचंद्रगोपेंद्रकौ तस्मादुर्लभगूवकौशनिन्टपो गूवाकसच्चंदनौ" श्री मद्वप्पयराज विंध्यन्ट पतिः श्रीसिंहराड्विग्रहो' श्रीमद्दुर्ल्लभ गुंदुवाकपतिन्टपाः श्रीवीर्य रामोनुजः ।।१३।। श्रीचंडोवनिपेतराणकधर श्रीसिंहटोदूसलस्तद्भ्राताथ ततो पिवीसलनृपः श्रीराजदेवीप्रियः" पृथ्वीराजनृपोथनत्तनुभवो रासल्य देवीविभु स्तत्पुत्रोजयदेवइत्यवनिपः सोमल्लदेवीपतिः ।।१४।। हत्वापधिगमिचलाभिधयसो राजादिवीरत्रयं । क्षिप्रं-क्रूरकृतांतवक्त्रकुहरे श्री मार्ग दुर्गान्वितं 'श्रीमत्सोलण दंडनायकवरः संग्रामरंगांगणे । जीवन्नेवनियंत्रितः करभकेयेनष्टनि......सात् ।।१५।। अर्णोराजोस्यसूनुर्धृतहृदयहरिः सत्ववासिष्टसीमोणांभीर्यौदार्यवर्यः समभवदपरा लब्ध मध्योनदीत्सः।। तच्चित्रंजंतजाद्यः स्थितिरवृतमहापंकहे तुर्न्नमध्येनश्रीरुवतो न दोषाकरचितरतिनीद्विजिह्वाधिसेव्यः ।।१६।। यद्राज्यंकुशरावणं प्रतिकृतं राजांकुशेनस्वयं येनात्रैवनचित्रमेतत्पुनर्मन्यामहेतंप्रति । तत्चित्रं प्रतिभासतेसुकृतिना निर्वाणनारायणन्यक्काराचरणेन भंगकरणं श्रीदेवरानंप्रति ।।१७।। कुवलय विकासकर्ता विग्रहराजोजनिस्ततो चित्रं ।। तत्तनयस्ताच्चित्रयत्रजडच्चीयसकलंकः ।।१८।। भादानत्वं—चकभादानपतेः परस्य भादानः ।। यस्यदधत्करवालः करालः करतला कलितः ।।१९।। कृतांतपथसज्जोभूत सज्जनो सज्जनो भुवः । वैकुंतंकुंतपालोगा हातोवैकुंत-

पालक: ॥२०॥ जात्रालिपुरं ज्वालापुरं कृतापाल्लिकापि पल्लीग्रामतूलतुल्यंरोषात्तद्दलंयेन-सौर्येण ॥२१॥ प्रतोल्यांचवलभ्यांच येनविश्रामितंयश: ढिल्लिकाग्रहण श्रांतमाशि-कालाभलंभित: ॥२२॥ तज्ज्येष्ठभातृपुत्रोभूत् पृथ्वीराज: प्रभूपम: । तस्मादर्जितदीनागो-हेमपर्वतदानत: ॥२३॥ अतिधर्मरते··पिपार्श्वनाथस्वयंभुवे । दत्तं मोराकरी ग्रामं भुक्तिमुक्ति श्वहेतुना ॥२४॥ स्वर्णादिदानंनिवहैर्देशभिर्महद्भिस्तोलानरैर्नगरदान-चर्यश्चविप्रा: । येनार्चिता श्चतुरभूपनिवस्तपालमाक्रम्यचारुमनसिद्धिकरीगृहीत: ॥२५॥ सोमेश्वराल्लब्धराज्यस्तत: सोमेश्वरोनृप: । सोमेश्वर नतो यस्माज्जनसोमेश्वरो भवत् ॥२६॥ प्रतापलंकेश्वरइत्यभिख्याय: प्राप्तवान् प्रौढप्रथुप्रताप: । यस्याभि-मुख्येवरवैरि मुख्या के चिमृता: केचिदभिद्रुताश्च ॥२७॥ येन श्री पार्श्वनाथाय रेवातीरेस्वयंभुव । शासने रेवणाग्रामो दत्त:स्वर्गायकांत्तया ॥२८॥ अथ कारापक-वंशानुक्रम: । तीर्थे श्रीनेमिनाथस्य राज्येनारायणस्यच । अंभोधिमथवादेव बलिभि-र्बलशालिभि: ॥२९॥ निर्गत: प्रवरो वंशोदेवव्रुन्दै: समाश्रित: । श्रीमाल-पत्तनेस्थाने स्थापित:शतमन्युना ॥३०॥ श्रीमालशैल: प्रवरावचूल पूर्वोत्तर: सत्वगुरु: सुवृत्त: । प्राग्वाटवंशो स्तिबभूवतस्मिन मुक्तापमावैश्रवणाभिधान: ॥३१॥ तद्रा-गग्रस्तनेयेनकारितंजिन मंदिरं । त्यक्त्वा भ्रांत्यायत स्तत्व मेकत्व स्थिरतांगतांगतां ॥३२॥ योचीकरच्चंद्रसूरि प्रभाणिथा प्रेरकाणि जिनमंदिराणि । कीर्तिद्रुमारामसमृद्धि हेतोर्विभातिकंदाइव यान्य मंदा: ॥३३॥ कल्लोलमांसलित कीर्ति सुधा समुद्र: सब्दुद्धिवंधुरवधूधरणी धरेश: । वीरोपकारकरणप्रगुणांत रात्मा । श्रीचंचुलस्तत्रनय: पदेभूत ॥३३॥ शुभंकरस्तस्यसुतोनिष्ट शिष्टैर्महिष्टै: परिकीर्त्यकीर्ति: श्रीजाट-मोसूत तदंगजन्मायदंगजन्माखलु पुण्यराशि: ॥३५॥ मंदिरंवर्द्धमानस्य श्रीनाराणक संस्थितं । भातियत्कारितं स्वीयपुण्यस्कंध मिवोज्वलम् ॥ ३६ ॥ चत्वारश्चतुरा चारा: पुत्रा: पात्रंशुभश्रिय: । अमुष्यामुष्यधर्माणो बभूवुर्भार्ययोर्द्वयो: ॥ ३७ ॥ एकस्यां द्वावजायतां श्रीमदाम्बटपद्मयो । अपरस्यां·····················
लक्ष्मरदेसलौ ॥ ३८ ॥ पाकाणां नृवरेत्रीरवेश्मकारणपाटवं । प्रकटितं स्वीय वित्तेन धातुनैवमहीतलं ॥ ३९ ॥ पुत्रौपवित्रौ गुणरत्नपात्रौ विशुद्ध गात्रौ समशील रात्रौ । बभूवतुर्लक्ष्मटकस्यजेत्रौ मुनींदुरामेंद्वभिधो यसस्त्रौ ॥ ४० ॥ षड्भेदें द्रियवश्यतापरिकरा: षट्कर्मकृत्यादरा: । षट्पंडावनिकीर्तिपालन परा: षाड्गुण्य

चिंताकरा: ।। सदृष्ट संबुजभास्करा: समभवन् सद् शलस्यांगजा: ।। ४१ ।। श्रे ष्ठी-
दुद्कनायक: प्रथमक: श्री मोसलो केगडि द्वे वस्पर्श इतोऽपि सीयकवर: श्रीराहको-
नामत: ।। एतेतुक्रमतोनिनक्रम युगा भौजैक भूमोपमा मान्याराजशतैर्वदान्यमतयोराजंति
जंबूत्सवा: ।। ४२ ।। हर्म्यं श्री वर्द्ध मानस्या जय मेरोर्विभूषणं । कारितं यैर्महा भागै
र्विमानमिवनाकिनां ।। ४३ ।। तेषा मंत श्रिय: पात्र ·········(क श्रे ष्ठिभूषणं ।
मंडल करंमहादुर्गं भूषयामासभूतिना ।। ४४ ।। यो न्यायांकुरसेचनैक जलद: कीर्ति-
र्निधानांपरां । सौजन्यांबुजिनीविकासन रवि: पापर्द्धिभेदेपवि: । कारुण्यामृतवारिधे-
र्विलसने राकाशशांको प:मो नित्यं साधु जनोपकार करणव्यापारबद्धादर: ।। ४५ ।।
येना कारिजितारिनेमिभवनं देवाद्रिशृंगोद्धुरं । चंचत्कांचनचारुदंडकलसच्छोणी-
प्रभाभास्वरं । खेलत्खेचर सुन्दरी श्रमभर भंजध्वजोद्वीजनै, र्वत्रैष्टापद शैल शृंग
जिन भूत् प्रोद्दामसद्म श्रियम् ।। ४६ ।। श्रीसीयकस्य भार्येद्वे नाग श्री मामगंभिधे ।
आद्यायास्तुत्र: पुत्रा द्वितीयाया: सुतद्वयम् ।। ४७ ।। पंचाचार परायणात्म मतय:
पंचांगमंत्रोज्ज्वला: पचज्ञानविचारणासु चतुरा: पंचेंद्रियार्थोज्वला: । श्रीमत्पंचगुरुप्रणाम
मनस: पंचाणु शुद्धव्रता: । पंचैतेतनया गृहस्थविनया: श्रीसीयक श्रे ष्टिन: ।। ४८ ।।
आद्य: श्रीनाम देवोभूल्लोलाक स्त्रोज्वलस्तया । महीधरोदेवधरोद्वावेतावन्य
मातृ जौ ।। ४६ ।। उज्ज्वलस्यांगजन्मानौ श्रीमद्वल्लभलक्ष्मणौ अभूतांभुवनोद्-
भासियसोदुर्लभलक्ष्मणौ ।। ५० ।। गांभीर्यंजलधे: स्थिरत्वमचलात्तेजस्विता भास्वत:,
सौम्यं चन्द्रमस: शुचित्वममरस्रोतस्विनीत: परम एकैकं परिगृणविश्वविदितो
योवेधसासादरम । मन्ये बीजकृतेकृत: सुकृतिना सल्लोलक: श्रेष्ठिन: ।। ५१ ।।
अथागमन्मंदिरमेषकीर्ति । श्रीविंदमल्लोधनधान्यवल्ली । त्रपालुभावादभिगम्यसुप्त:
कंचिन्नरेशपुरत: स्थित: स ।। ५२ ।। उवाचकस्त्वंकिमिहाभ्युपेत: कुत: ससंप्राह-
फणीश्वरोहं । पातालमूलात्तवदेशनायश्रीपार्श्वनाथ: स्वयमेष्यतीह ।। ५३ ।। प्रातस्तत्र
समुत्थाय नकंचनविवेचितं । स्वप्नस्यां तमंतोभावायतोवातादिदूषिता: ।। ५४ ।।
लोलाकस्यप्रियास्तित्रोबभूवुर्मनस: प्रिया: । ललिता कमलश्रीश्चलक्ष्मीर्लक्ष्मीसनाभय:
।। ५५ ।। तत: सभक्तांललितांबभाषे । गत्वाप्रियां तस्यनिशिप्रसुप्तां शृणुस्वभद्रे-
धरणोहमेहि श्री·········शयामि ।। ५६ ।। तया सचोक्तो·········मद्रे सत्य-
मेतत्तु श्रीपार्श्वनाथस्यसमुद्धृतिसं प्रासादमर्चं चिकरीष्यतीह ।। ।। ५७ ।। गत्वा-

पुनर्लेलिकमेवमूचे, भोभक्त सक्तानुगतातिरक्ताः देवेधनेधर्मविधौ जिनेष्टौ श्रीरेवतीतीरमिहापपार्श्वः ॥ ५८ ॥ समुद्धरैनंकुरुधर्मकार्यं त्वकारयश्रीजिनचैत्यनेहं, येनास्यसिश्रीकुलकीर्तिपुत्रपौत्रोरुसंतानसुखादिवृद्धि ॥ ५६ ॥ त.........माख्यंवन-मिहनिवसोजिनपते स्तएवैतेप्रावाणाः शठकमठमुक्ता गगनतः सधारामे......... ....परयतः कुंडसरित स्तदत्रेतत्स्नानं.........गमं प्राप परमं ॥ ६० ॥ अत्रास्त्युत्तममुत्तमा दिशि परंसाङ्गुष्टमंचो स्थिनं तीर्थं श्री वरलाइकात्र परमं देवोऽतिमुक्ताभिधः सत्यश्चात्रयरेश्चरः सुरनतो देवः कुमारेश्वरः सौभाग्येश्वरदाक्षिणे-श्वरसुरौ मार्कंड रिचेश्वरो ॥ ६१ ॥ सत्योत्ररोश्वरोदेवो ब्रह्ममङ्गेश्वरावपि, कुटिलेशः कर्करेशो यत्रास्तिकपिलेश्वरः ॥ ६२ ॥ महानालमहाकाल......... रथेश्वरसंज्ञकाः । श्रीत्रिपुष्करतां प्रापः.........रित्रिभुवयार्चिताः ॥ ६३ ॥ कीर्ति नाथं चके.........मिस्त्रामिनः संगमीसः पुरीसश्चमुखेश्वर घटेश्वरः ॥ ६४ ॥ नित्य प्रमोदितोदेवोसिद्धेश्वरगयायुसः । गंगा भेदन सोमेस गगानाथ त्रिपुरांतकाः ॥ ६५ ॥ संस्तात्रिकोटिलिगानांयत्राग्नि कुटिलानदी, स्वर्णजालेश्वरोदेवः समंकपिल धारया ॥ ६६ ॥ नाल्प मृत्युर्नचारोगानदुर्भिक्षमतर्पणं यत्रदेव, प्रभावेनकलिपंकः प्रश्वर्पणं ॥ ६७ ॥ पण्मासे जायतेयत्रशिवलिंगाः स्वयं भुवः, तत्रकोटीश्वरेणा नकाश्लाघाक्रियतेमया ॥ ६८ ॥ इत्येवज.........कर्त्तावित्तार-क्रियाकर्त्तापार्श्वजिनेश्वरोऽत्रकृपयासोथान्यवास; पतः शक्तेर्वैक्रियिकश्रियस्त्रिभुवन-प्रापिप्रबोधं प्रभुः ॥ ६६ ॥ इत्याकर्ण्यवचोविभाव्यमनसात स्योरगः स्वामिनः, सप्रातः प्रतिबुध्यपार्श्वमभितः क्षोणीविदार्यक्षणात्तावत्तत्रविभुं ददर्शसहसान्यप्राकृता-कारिणं कुंडाभ्यर्णतपवधानदधंत स्वायंभुवः श्रिश्चियं ॥ ७० ॥ नासीद्यत्रजिनें-दपादनमनं नोधर्मकर्मार्जनं नस्नानंनविलेपनंनचतपोध्यानंनदानार्चनं नो वासन् मुनिदर्शनं.........॥७१॥ तत्कुण्डमध्यादय निर्जगाम श्रीसीयक स्यागमनेनपद्मा श्री क्षेत्रपालस्तदथांबिकाच श्रीज्वालिनी श्रीधरणोरगेशः ॥ ७२ ॥ यदावतारमाका-र्षीदत्रपार्श्व जिनेश्वरः, तदानागह्रदेयात्तगिरिस्तंबप्रपातसः ॥ ७३ ॥ यत्तोपिदत्तवान् स्वप्नंलक्ष्मणाब्राह्मणचारिणः । तत्रा ह्ममपियास्यामियत्रपार्श्वविभुर्मम ॥ ७४ ॥ रेवती कुंडतीरेण यानारी स्नानमाचरेत् । सापुत्रभर्तृसौभाग्यं लक्ष्मीचं लभतेस्थिरं ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापिवैश्योवा शूद्र एवच, अंत्यजो वापिस्नानंचसकर्त्तात्युत्तमांगतिं ॥७६॥

॥ ७६ ॥ धनं धान्यं········धैर्यं धारियतांधियां, धराधिपतिसन्मानं लक्ष्मींचाप्नोतिपुष्कलाम् ॥ ७७ ॥ तीर्थश्चयं मिदंजनेन विदितंयद्गीयतेसांप्रतं, कुष्टप्रेतपिशाचकुज्वररुजाहीनागगंडा पहं, संन्यामंचचकारनिर्गत भयं श्रकृष्ट मालीद्वयं, काकीनाकमवापदेवकलया किंकिंमसम्पद्यते ॥ ७८ ॥ श्लाघ्यंजन्मकृतंधनंचसफलं नीताप्रसिद्धिंमतिः, सद्धर्मोपिचदर्शितस्ननुरुहस्वप्नोर्पित सन्यनां,········रद्दष्टि दूषितमनाः सदृष्टिमार्गेकृतो, जैन········तमाश्रीलोलकः श्रेष्ठिनः ॥ ७६ ॥ किंमेरोः शृंगमेतन्नकिमुन हिमगिरेः कूट कोटि प्रकांडं, किंवा कैलाशकूटं किमथसुरपतेः स्वर्विमानंविमानं इत्थंयत्तर्कतेस्म प्रतिदिन ममरैर्मर्त्यराजोत्करैर्वा, मन्ये श्रीलोलकस्यत्रिभुवनभरणा दुच्छ्रितं- कीर्तिपुंजम् ॥ ८० ॥ पवनसुनपताकापाणितो भव्यमुख्यान्, पटुपटहनिनादादाह्वय त्येपजैनः कलिकलुषभयोच्चैर्दूरमुत्सारयेद्वा त्रिभुवनविभु························भानृत्यतिवालयर्थि ॥ ८१ ॥॥········स्थानकमाधरंतिदधतेकाश्चिच्चगीतोत्सवं काश्चिद्विप्रतितालवंशललितं कुर्वंतिनृत्यंचकाः । काश्चिद्वाद्यमुपानयंति निभ्रुतं वीणास्वरं काश्चन, यः प्रोच्चैर्ध्वजकिंकिणी गुवतयः केपांमुदेनाभवन् ॥ ८२ ॥ यः सद् वृत्तयुत लुदीप्तिकलितस्त्रासा दिदायज्झितश्चिताख्यानपदार्थदानचतुराश्चितामणेः सोदरः सोभूः-च्छ्रीजिनचंद्रसूरिसुगुरुस्तत्पादपंकेरुहे, योभृंगायतपद्मलोल कवरस्तीर्थंचकौरषसः ॥ ८३ ॥ रेवत्याः सरिसस्तटेतरुवरायत्राह्वयंतेभृशं शाखा बाहुल तोत्करैर्नरसुरान् पुंस्को किलानांरुतैः, सत्पुष्पोच्चयपत्रसत्फलचयौ रानिर्मलैर्वारिभिर्भोभव्यचर्चयताभिषेकयतवा श्रीपार्श्वनाथं प्रभुं ॥ ८४ ॥ यावत् पुष्करतीर्थे सैकतकुलं यावच्च गंगाजलं, यावत्तारक चंद्राभास्करकरायावच्चदिवंकुंजराः । यावच्छ्री जिनचंद्रशासन मिदं यावन्महेन्द्रंपदं । तावत्तिष्ठतुयः प्रशस्तिसहितं जैन स्थिरं मंदिरं ॥ ८५ ॥ पूर्वतो रेवती सिंधुर्देवस्यापिपुरंतथा । दक्षिणस्यां मठस्थानंमुदीच्यां कुंडमुत्तमं ॥८६॥ दक्षिणोत्तर तोवाटी नानावृक्षैरलंकृता । कारितं लोलिकेनैतत् सप्तायतन संयुता ॥ ८७ ॥ श्रीमन्म··········रसिंहोभूद्गुणभद्रोमहामुनि : कृताप्रशस्तिरेणाच कवि········भूषणा ॥ ८८ ॥ नैगमान्वयकायस्थ छीत्तिगस्यचसूनुनां । लिखिता केशवेनेयं मुक्ताफलमिवोज्वला ॥ ८९ ॥ हरसिंहसूत्रधारो थ तत्पुत्रोपाल्हणोभुवि । तदंगजेमाहडेनापि निर्मितं जिनमंदिरं ॥ ९० ॥ नानिगपुत्रगोविंद पाल्हणसुत-

ल्हणो। उत्कीर्णा प्रशस्ति रेषा कीर्तिस्तंभं प्रतिष्ठितं ॥ ६१ ॥ प्रसिद्धिमगमद्दे व कालेविक्रम भास्वत:। षड्विंशद्वादशशते फाल्गुने कृष्णपक्षके ॥ ६२ ॥ तृतीयायां तिथौवारे गुरौतारेचहस्तके। वृद्धिनामनियोगेच करणे तैतले तथा ॥ ६३ ॥ सम्वत १२२६ फाल्गुन विद ३ कामारेवणाग्रामयोरंतराले गुहिलपुत्र रादान्वरमहंघण-सिंहभ्यां दत्तक्षेत्र डोहली १ खडुवराग्रामवास्तव्य गौड सौनीगवासुदेवाभ्यां दत्तडो-हलिका १ अंतरी प्रतिगणके रायता ग्रामीयमहंत लीवडीयोपलीभ्यां दत्तकूडो डोहलिका १ बडोवाग्राम वास्तव्य पारिग्रहा अल्हणेन दत्तक्षेत्र डोहलिका १ लघुविक्रोलां ग्रामसं गुहिलपुत्रए १ ग्राहरमहंतममा हवाभ्यां दत्तक्षेत्र डोहलिका १ बहुभिर्वसुधामुक्ता राज-भिर्भरतादिभि:। यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्य तस्य तदाफलम् ॥ १

यद्य शुद्धाक्षरा माला
अशुद्धा भणिति यदा।
अनुस्वारा दिभिर्भेदे
अर्थे का भाषया स्थिति: ॥

प्रशस्ति २

मेनालगढ़ में महल के उत्तरी दरवाजे के एक स्तंभ में:—

ॐनम: शिवाय। मालवेशगतवत्सर शतै: द्वादशैश्चषट्विंश पूर्वकै:, कारितं मठमनुत्तमं कलौ भाव ब्रह्ममुनिनाम नह्ययं, तस्मात्सत्यमय: सुभाषितमय: कंदर्पशोभामय: स्वस्वद्धर्म कुलाकुलमय: कल्याणमालामय:, धर्म्मज्ञंचमकल्मषंकृतधियं श्रीचाहमानान्वयं, साप्रदमाधिप सुन्दरो वनिपति: श्रीपृथ्विराजो भवत् ॥ तस्यधर्मवरिष्ठ स्यपृथ्वीराजस्यधीमत: पुण्येकुर्वातिवैराज्यंनिष्पन्नं मठमुत्तमम् ॥

प्रशस्ति ३

पुला के नीचे तलेटी के दरवाजे से आठमां कोठा में प्रशस्ति पश्चिम की फेट में ओलां २—

"सम्वत् १३२४ वर्षे इह चित्रकूट महादुर्गतलहट्टिका यांपवित्र श्री चैत्रंगणाद्या गांगणतरणिस्व प्रपितामह प्रभु श्री हेमप्रभु सूरिभि: वे शितस्यसुविहित शिरोमणि

सिद्धांत सिंधु भट्टारक श्रीपद्मचस्वीर प्रतीप्रितस्यास्य देव श्री महावीर वैतस्य प्रतिभा समुद्र कवि कुंजरः पितृतुल्यातुग्रवात्मल्यात्र राज्य श्री रत्न प्रभव सूरिणा मादेशात् राज भगवन्नारायण महाराज श्रीतेजःसिंह देवकल्याण विजयी राजा विरुध मान प्रधान राज राजपुत्र कांगापुत्र परनारि साहा।"—

प्रशस्ति ४

पुलाका ६ कोठा में पूर्वकी फेट में—

·········म्कृनदुद्भाविनांभूपाः श्रीगुहिलान्वय मघवत्प्राप्ताग्र जन्मक्रम। ५ हृच्छसच्छात······ ··पुरगुलप्रावपा

सिंहदेवः तत्सुधंपुण्य पत्तं पाताभिनव म्क्मांगदहव श्रीसमसिंह देवः। तेन श्रीसमरसिंहेनक्त कायजन श्राश्रेयसे·········भर्तृ पुरीयगच्छे श्रीसामलारगच्छाचार्याणां पद्मशालायां श्वभूमीदीयते ममगच्छा श्रीजयतल्लदेव्या साध्वी सूमलोपदेशेन कूर्म्मप्रविकल्पय य·········वधिप्रासादोई कारि आत्मीया कुकुंजन्या प्रति········· दितस्य मूलद्वारे प्रवेशे वामदक्षिण विभागे द्वेहे हट्टे ददात् तथाच श्री चित्रकूट तलहट्टिकायां·········सज्जनपुरमंडपिकायां बूढाडूर्ग समंडपिकायां आसुचतुर्षु मंडपिका प्रत्येकं वट कडीया द्रम्म २४ तुविंशति ४ दीयंते ·········स्मादेव जगतिमध्यवर्त्ति सिंहनादक्षेत्र पाल योग्यं श्री चित्रकूट तलहट्टिकायां मंडपिकायां द्रम्म·········चकपिलकूपात्रागतायाः सारदाया योग्यं द्रम्म १४ चतुकडी अघाट मंडपिकायांतु श्रीपदमवत्या योग्यं चउकडियां मवि·········राजा श्री समरसिंह··· ·········सेवन—

पुलाका ६ कोठा में अक्षर जोड़े संवन् १३—२ जेष्ट शुदी १३ श्री भुवन चंद्रसूरिश्रेयसे गटीका युग्मदत्त श्री··············

प्रशस्ति ५

नौकोठांके पाछे महलों का चोक में गड्यो थांबो नीकल्यो जीरा—

सम्वत् १३३५ वर्षे वैशाख सुदी ५ गुरौ श्री एकलिंग हराराधन पाशुपतान्वय हारीतर्षिक्षत्रिय गुहिलपुत्र·········हलपूच सहोदर्ये व श्री चूडामणीय भर्तृ स्थानोद्भव द्विजाप्रविभागातुच्छे श्री भर्तृपुरी यगच्छे श्री चूडामणि भर्तृपुरे श्री गुहिलपुत्र

विहार आदेश प्रतिपर्त्ता श्री चित्रकूट मेदपाटाधिपते श्री तेजःसिंह राज्ञा श्री च(ज)य तल्लदेव्या श्री श्याम पार्श्वनाथ वसहीस्वश्रेयसे कारिता ॥ तद्राज्ञीवसही पाश्चात्य भागे............ गच्छीय श्री प्रद्युम्नसूरिभ्यो महाराज कुल गुहिल पुत्रवंश तिलक श्री समरसिंहेन चतुरा घाटो पेतायदानयुताच मठभूमि......... घाटाः पूर्वोत्तरयो योनिः माढलस्यावासः दक्षिणस्यां श्री सोमनाथः ॥ पश्चिमाणां श्री भर्तृपुर गच्छीय चतुर्विंशतिजिन........ लयो राज्ञीवसहिकाच ॥ अन्य चात्रदानानि ॥ श्री चित्रकूट तलहट्टिका मंडपिकायां चउद्रम्मा २४ तथा उत्तरायणे घृतकर्प १४ तथा तैलकर्ष ६ आघाटमंडपिकायां द्रम्मा ३६ खोहर मंडपिकायां द्रम्मा ३२ सज्जनपुर मंडपिकायां द्रम्मा ३४ अमून्यान्य दानानिदत्तानि ॥ श्री एकलिंग शिवसेवन तत्पर श्री हारीत राशिवंश संभूत महेश्वर राशि तच्छिष्य श्री शिवराशि गोडजातीय द्विजदिवाकर वंशोद्भव व्यास रत्न सुतयोतिः साढ लतव्याच विप्रदेल्हणसुतभट्ट साढो सत्पुत्र द्वारभट्ट रविभट प्रसद्भ्यत्त भीमासहितेन एभिर्मिलित्वा श्री भर्तृपुरीयगच्छ....... कारि ॥

प्रशस्ति ६

आबू पर्वत ऊपर अचलगढनीपासे अचलेश्वर महादेव नूं मंदीर छे तेनी पासेना मठनी अंदर ना शीलालेख नुं अक्षरांतर—

(१) ॥ उं० ॥ ॐ नमःशिवाय॥ ध्यानानंदपराः सुराः कति कति ब्रह्मादयोऽपि-स्वसंवेद्यं यस्यमहः स्वभाव विशदं किंचिद्वियां कुर्व्वते माया मुक्तवपुः स्वसंगत-भवाऽभावप्रद्रः प्रीतितो लोकाना मचलेश्वरः सदिशतुश्रे यः प्र—

(२) भुः प्रत्यहं ॥ १ ॥ स्वर्गार्थं स्वतनुं हुताशमनिशं पद्मासनेजुह्वतः प्राणैः प्राजनि नीललोहितवपुर्यो विश्वमूर्तेः पुरा दुष्टांगुष्ट नखांकुरेण हठत स्तेजोमयं पंचमं छिन्नं धातृशिरः करांबुजतले बिभ्रत्सवस्त्रा ।

(३) यतां ॥ २ ॥ अव्यक्ताक्षर निर्भर ध्वनिजय स्त्यक्तान्य कर्म्मश्रमः स्वंदेहासितिमानमुक् त्रिजुमना दानांबुसंवर्धितः । यत्कुंभाचल गस्तपांसि वितनो-त्यद्यापि भंगब्रजः प्रत्यूहापगमोन्नतिर्गजमुखोदेवः सवोऽस्तुश्रिये ।

(४) ॥ ३ ॥ किच ॥ त्रुभ्य द्वारिधदीर्यमाय शिखरि श्रेणिभ्रमद्भूतलं त्रुट्यद्व्योमदिगंत संहृतिपतद् ब्रह्मांड भांड स्थिति। कल्पांतस्य विपर्ययेऽपिजगता-मुद्वेगमुच्चैर्दिशन मिंधोर्लंघनमद्भुतं हनुमतः पायादपायात्सनः ॥ ४ ॥ शाखोप-शाखा।

(५) कुलिनः सुपर्व्वा गुणोन्नितः पत्र विभूषितांशः कृतास्पदो मूर्द्धनि भूधराणां जयत्युदारो गुहिलस्यवंशः ॥ ५ ॥ यद्वंशो गुहिलस्य राजभगवन्नारायणः कीर्त्यते तत्सत्यं कथमन्य था नृपयम्नं संश्रयंत नरां। मुक्तेः कल्पितवेन।

(६) सः करतलन्यासक्तदंडोज्वलाः प्राणत्रायधियः श्रिय समुदयन्त्यस्ति पहस्ताः सदा ॥ ६ ॥ मेदःक्लेद भरेण दुर्ज्जनजनस्या प्लावितः मंगरे देशः क्लेशकथा पकर्षणपटुर्यो बप्पकेनोच्चकैः। लावण्योत्कर निर्जितामरपु (७) रः श्री मेदपाटाभिधा माधत्ते स्मस एष शेपनगर श्रीगर्वसर्वंकषः ॥ ७ ॥ अस्तिनागहृदं नाम सायाम मिह पतनं ॥ चक्रे तपांसि हारित राशिर्यत्र तपोधनः ॥ ८ ॥ केपि क्वापि पर प्रभावजनितैः पुण्यैहविर्भिर्विभुं प्रीणांति ज्वलनं हिता।

(८) यजगता मारब्ध यागव्रमाः। अन्ये प्राण निरोध बोधितसुखाः पश्यंति चात्मस्थितं विश्वं संहृतजगत्स्थलीषु मुनयो यत्राहृतावोदराः ॥ ९ ॥ अस्मिन्नेववने तपस्विनि जने प्रायः फलव्वंधने वृत्तांतं भुवनस्य योग जिवतः प्रत्यक्षतः पश्यति। हा

(९) रीतः शिवसंगमंग विगमात्प्राप्तस्व सेवाकृते बप्पाय प्रथिताय सिद्धि निलयोः राज्यश्रियं दत्तवान ॥ १० ॥ हारीतात्किल बप्यकोऽडिवलयव्याजेनलेभे महः क्षात्रं धात निभा द्वितीय मुनये ब्राह्म स्वसेवाछला

(१०) न। एतेयापि महीभुजः क्षितितले तद्वंशसंभूतयः शोभंते सुतरा मुपात्तवपुषः क्षात्राहि धर्म्मा इव ॥ ११ ॥ वप्पकस्य तनयोनयनेता संबभूव नृपति-र्गुहिलाख्यः यस्य नाम कलितां किलजाति।

(११) भूभुजो दधति तत्कुलजाताः ॥१२॥ यत्पीयूष मयूख सुंदर मतिर्विद्या सुधालंकृति निः प्रत्यूह विनिर्जित स्मरगतिः प्राकाम्य रम्याकृतिः। गांभीर्येन्निति संभुतस्य जलधेर्विस्फोटिताहंकृतिस्तस्माद्भोज।

(१२) नरेश्वरः ससमभूत् मंसेवित श्रीपतिः ॥ १३ ॥ शीलः सत करवाल कराल पाणि भेजे भुजेन तदनु प्रतिपक्ष लक्ष्मीं । उत्साह भावगमकं पु दधानो वीरः स्वयं रस इव स्फुटबद्धदेहः ॥ १४ ॥चोडस्त्रीर ।

(१३) तिखंडनः कुलनृप श्रेणी शिरोमंडन कर्णाटेश्वरदंडनः प्रभुत्व मैत्रीमनोनंदनः । तत्सूनुर्नयमर्मनर्म्मसचिवः श्रीकाल भोजः क्षमापालः कालक कर्कश धनुर्दण्ड प्रचंडोजनि ॥ १५ ॥ छाया

(१४) भिर्वनिताः फलैः सुमनसः सत्पत्रपुंजैर्दिशः शाखाभिर्द्विजवर्ग मग भुजःकुर्व्वन् मुदा मास्पदं ॥ तद्वंशः प्रबलां कुरोतिरुचिरः प्रादुर्बभूवा वनीप भर्तृ भटस्त्रि विष्टपतरोर्गर्व्वाभिहर्त्ता ततः ॥ १६ मुष्टिप्र

(१५) मेयमध्यः कपाटवक्ष स्थलस्तदनु । सिंहस्त्रासित भूधरमत्तेभ पतिर्जयति ॥ १७ तज्जन्मा समहायिक स्वभुजयोः प्रासैकसाहायिकः क्षोणीभारमु मुन्नतशिरा धत्ते स्म भोगीश्वरः यश्चा

(१६) धानल विस्फुलिंगमहसि प्रत्यर्थिनोऽनर्थिनः प्रांचत्यक्ष परि कुलाधिपः पेतुः पतंगा इव ॥ पुंमाणस्य ततः प्रयाण विपति क्षोणीरजो दु निस्त्रिंशांबुधरः शिषेच सुभटान् धारा ।

(१७) जलैरुज्वलैः । तन्नारी कुचकुंकुमानि जगलुश्चित्राणि नेत्रां रित्याश्चर्यमहोमनस्तु सुधिया मन्यापिविस्फूर्जति ॥ १६ ॥ अल्लटो जनिततः क्षितिप मंगैरनुक्रन दुर्जयकालः । यस्यैवरिप्र ।

(१८) तनां करवालः क्रीडयैव जयति स्मकरालः ॥ २० ॥ उदयतिस्म । नरवाहन मभिनि मद्वन भूपति वाहनः । विनय संचयमेविनशंकरः सकलवैरिजन भयंकरः ॥ २१ ॥ विक्रम विधूत विश्व प्रतिभ (१६) टनीने स्तथा गुणस्प कीर्तिस्तारकजैत्री शक्ति (कुमा) रस्य संजज्ञे ॥ २२ ॥ आसीत्ततो नरप शुचिवर्म्म नामा युद्ध प्रदेश रिपु दर्शित चंडधामा उच्चैर्महीध्र शिरः सुनिवे (२ शितां हेः शंभोर्विशाख इव विक्रम संभृत श्रीः ॥ २३ ॥ स्वर्लोके शुचिवर्म्म स्वसुकृतैः पौरंदरं विभ्रमं बिभ्राणे कलकंठ किन्नरवधू संगीत दोर्विक्रमे । माद्य त्रिकार वैरितरुणी गंडस्थली पांडुरे व्रीडांद न ।

(२१) र वम्मणा धवलितं शुभ्रै यशोभिस्ततः ॥ २४ ॥ जाते सुरस्त्री परिरंभ सौख्य समुत्सुके श्रीनर वम्मदेवे । ररक्ष भूमी मथ कीर्तिवम्मा नरेश्वरः शक्र समान धम्मा ॥ २५ ॥ कामक्षाम निकामतापि नितपे ऽमु (२२) ष्मिन्नृपेरागिणि स्वः सिंधोज्जलसंप्लुते रमयति स्वर्लोक वामभ्रुवः । दोर्दंडद्वय भग्न वैरिवसतिः क्षोणीश्वरो वैरटश्चक्रे विक्रमतः स्वपीठ विलुठन्मूर्धेश्चिरं द्वेषिणा ॥ २६ ॥ तस्मिन्नुपरते राज्ञि मुदिताशेषविद्विषि । वैरिसिं ।

(२३) ह स्ततश्चक्रे निजं नामार्थं तद्भुवि ॥ २७ ॥ व्यूढोरस्क स्तनुमध्ये क्ष्वेडा कंपित भूधरः । विजयोप पदः सिंह स्ततो रिकरिणोऽवधीत् ॥ २८ ॥ यन्मुक्तं हृदयांग राग सहितं गौरत्व मेतद् द्विपन्नारीभि विरहात्ततोऽपि समभूत् किंकरिणिका ।

(२४) रक्रमः ॥ धत्ते यत्कुसुमं तदीयमुचितं रक्तत्व माभ्यंतरे बाह्य पिंजरतां चकारण गुण ग्रामो परसंवर्गणं ॥ २९ ॥ ततः प्रतापानलदग्ध वैरिक्षितीश धूमोच्छ मणीरसेन नृपोरिसिंहः सकलासु दिक्षु लिलेखवीर : स्वयशः प्रशस्ति ।

(२५) ॥ ३० ॥ लोचनेषु सुमनस्तरुणी नामंजनानि दिशता यदनेन वारिकाल्पित महोबत चित्रं कज्जलं हृत मराति वधूनां ॥ ३१ ॥ नृपोत्तमांगो पलकांतिकूट प्रकाशिताष्टा पटपादपीठः । अभूदमुष्मादथ चोडनामानरेश्व (२६) रः सूर्य समान धाना ॥ ३२ ॥ कुंभिकुंभ विलुठत्करवाल संगरे विमुख निर्मितकालः ॥ तस्य सूनिस्थ विक्रमसिंहो वैरि विक्रम कथां निरमाद्रत ॥ ३३ ॥ भुजवीर्यविलासेन समस्तेद्धृत कंटकः चक्रे भुवितत: क्षेम क्षे ।

(२७) मसिंहो नरेश्वरः ॥ ३४ ॥ रक्तं किंचिन्निपीय प्रमदपरि लसत्पाद विन्यासमुग्धाः कांतेभ्यः प्रेतवध्वो ददति रस भरोद्गार मुद्राकपालैः । पायं पायं तदुच्चै मुदित सहचरी हस्तविन्यस्त पात्रं प्रीता स्ने ते रिशा (२८) चाः समरभुवि यशो यस्य संव्याहरन्ति ॥ ३५ ॥ सामंतसिंह नामा कामाधिक सर्वसुन्दर शरीरः । भूपालोजनि तस्मा दपहृत सामंत सर्वस्वः ॥ ३६ ॥ षोमाण संतति वियोग विलक्ष लक्ष्मी सेना मन

(२९) ष्ट विरहां गुहिलान्वयस्य । राजन्वतीं वसुमती मकरोत्कुमारसिंह स्ततो रिपुगता मपहृत्य भूपः ॥ ३७ ॥ नामापियस्य जिष्णोः परबलमथनेन सान्वयंजज्ञे विक्रमविनीत शत्रु र्नृपति रभून्मथनसिं

(३०) होऽथ ॥ ३८ ॥ कोशास्थितः प्रति भटक्षतजं नमुक्तं कोशं नत्रैरि रुधिराणि नपीयमानः । संग्राम मीननि परिरभ्ययस्य पाणि द्विसंश्रय मवाप फलं कृपाणः ॥ ३६ ॥ शेषनिःशेष मार्गेण पदम

(३१) सिंहन भूभुजा मेदपाट मही पश्चा त्पालिता लालिता पिच ॥ ४० ॥ व्याकीर्ण वैरिमद सिंधुर कुंभ कूट निष्टन मौक्तिक मणि स्फुट वर्ण भाजः । युद्धप्रदेश फलिकासु समुल्लिलेख विद्वा नयं स्वभुजवीर रमप्र

(३२) बंधान् ॥ ४१ नड्डूल मूलं कपवाहु लक्ष्मी स्तुरुष्क सैन्यार्णव कुंभ योनिः । अस्मिन सुराधीश सहासनस्थे ररक्षभूमी मथ जैत्रसिंहः ॥ ४२ ॥ अद्यापि संधक चमू रुधिरावमत्त संघूर्णमान रमणीय रिरंभणेन आ—

(३३) नंद मंद मनसः समर पिशाचाः श्रीजैत्रसिंह भुज विक्रम मुद्गृणंति ॥ ४३ ॥ धवलयतिस्म यशोभिः पुण्यैर्भू मंडलं तदमुं । विहिता हित भूश शंक-स्तेजः सिंहोनिरातंकः ॥ ४४ ॥ उग्रं

(३४) मौक्तिक बीज मुत्तम भुवि त्यागस्य दानांबुभिः सिक्तासद्गुरु साध-नेन नितरामादाय पुण्यं फलं । राज्ञाऽनेन कृपाणकोटिमटता स्वैरं विगाह्यश्रियः पश्चात्केपिविवद्धिता दिशि दिशि

(३५) स्फारा यशःराशयः ॥ ४५ ॥ आद्यः क्रोड वपु कृपाण विलसद्दंष्ट्रा-कुरोयः क्षणान्मग्नामुद्धरतिस्मगुर्जरमही मुच्चै स्तुरुष्कार्णवात । तेजः सिंहसुतः स एष समरः क्षोणीश्वरग्रामणी राधत्ते बलिकर्णयोर्धु—

(३६) र मिलागोले वदान्योऽ धुना ॥ ४६ ॥ तालीभिः स्फुटतूर्य ताल रचना संजीवनीभिः करद्वंद्वोपात्त कबंधमुग्धशिरसः संनर्तयंतः प्रियाः अद्याप्यु न्नद राक्षसा स्तवयशः खंडं प्रतिष्टं रणे गायंति प्रति

(३७) पक्ष शोणित सदा स्तेजस्विसिंहात्मज ॥ ४७ अप्रमेय गुण गुंफ कोटिभिर्गाढ बद्ध नृप विग्रहा कृतेः । कीर्त्यतोः न सकला तवस्तुतिर्ग्रन्थगौरव भया न्नरेश्वरं ॥ ४८ अर्बुदो विजयते गिरि रु

(३८) च्चैं दैंव सेवित कुला चलरत्नं । यत्र षोडशविकार विपाकै रुभिभ्रतो-ऽकृत तपांसि वसिष्ठः ॥ ४६ ॥ क्लेशा वेश विमुग्ध दांतजनयोः सद्भुक्ति मुक्ति प्रदे लक्ष्मी वेश्मनि पुण्य जन्हु तनयासं ।

(३६) सर्गो पूतात्मनि । प्राप प्रागचलेश्वर त्व मचले यस्मिन् भवानी पति र्विश्व व्याप्ति विभाव्य सर्व गतया देवश्चलोपि प्रभुः ॥ ५० ॥ सर्व सौंदर्य सारस्य कोऽपि पुञ्ज इवा द्भुतः । अयं यत्रं ।

(४०) मठस्तिष्ठ त्यनादि स्तापसो (मो) चितः ॥ ५१ ॥ यत्र कापितप स्विनः सुचरिताः कुत्रापि मर्त्याः कचि द्गीर्वाणाः परमात्म निर्वृ ति मिव प्राप्ताः क्षणेषु त्रिषु । यस्यायोद्गति मर्बु देन सहितां गायं ।

(४१) ति पौराणिकाः संधत्तो सखलु क्षण त्रयमिषात त्रैलोक्य लक्ष्मी मिह ॥ ५२ ॥ जीर्णोद्धारमकारयन्मठमिमं भूमीश्वर ग्रामणीर्देवः श्रीसमरः स्वभाग्य विभवा दिष्टो निज श्रेय मे । किंचास्मि ।

(४२) न्परमास्तिको नरपतिश्चक्रे वसुभ्यः—कृपासंश्लिष्टः शुभ भोजन स्थिति मपि प्रात्या मुनिभ्य स्ततः ॥ ५३ ॥ अचलेश दंड मुच्चैः सौवर्ण समर भूपालः । आयुर्वायु चला चल मिह दृष्ट्वां वारयामास ॥ ५४ ॥

(४३) आसीद्भावाग्निनामेह स्थानाधीशः पुरामठे हेलोन्मूलित संसार बीजः पाशुपतैर्व्र तैः ॥ ५५ ॥ अन्योन्य बैर विरहेण विशुद्धदेहाः स्नेहानुबंधिहृदयाः मदयाननेषु अस्मिन तपस्यति मृगें—

(४४) द्रगजादयोपि सत्वाः समीक्षितविमोक्ष विधायितत्वाः ॥ ५६ ॥ शिष्य स्तस्या यमधुना नैष्टि को भाव शंकरः शिव सायोज्य लाभाय कुरुते दुष्करंतपः ॥ ५७ ॥ कल कुसुम समृ ।

(४५) द्धिं सर्वकालं वहंतः परमनियमनिष्टां यस्यभूमीरुहोऽमी । अपर-मुनिजनेषु प्रायशः सूचयंति स्खलित विषयवृत्ते रर्बु दादि प्रसूताः ॥ ५८ ॥ राज्ञा समरसिंहन भावशंक ।

(४६) रशासनात् मठः सौवर्णदंडेन सहितः कारितोऽबुदे ॥ ५६ ॥ योऽकार्षीदिकलिंगत्रिभुवन विदित श्रीसभाधीश चक्रस्वामि प्रासादवृन्दे प्रियपटुतनये वेदशर्म्मा ।

(४७) प्रशस्तिः । तेनैषापि व्यधायि स्फुटगुण विशदा नागरज्ञातिभाज विप्रेणापि विद्वज्जन हृदय हरा चित्रकूटस्थितेन ॥ ६० ॥ यावदर्बुदमहीशधरसं मंत्रिभर्ति भगवा ।

(४८) नचलेश । तावदेव पठता मुपर्जाभ्या सत्प्रशस्ति रियमस्तुकवीनां॥६१॥ लिखिता शुभ चन्द्रेण प्रशस्ति रियं भुजला उत्कीर्णा कर्मसिंहेन सूत्रधारेण धीमता ॥ ६२ ॥

सं० १३४२ वर्षे मार्ग शुद्धि १ प्रशस्तिः कृता ।

प्रशस्ति ७

[१] सम्वत् १३४४ वैशाख शुदि ३ [१

[२] अद्य श्री चित्रकूटे समस्त महारा [वल]

[३] [——..——] कुल श्रीसमरसिंह देवकल्या [ण]

[४] [——..——] विजय राज्यस्यैवंकाले चित्रांग

[५] तड़ाग मध्ये श्री वैद्यनाथ कृत सकं

[६] रा·········लार राम्वटेन त्रौकड़ी दत्तद्रा

[७] ग्राम १ कायस्थ कुले पर्यंत सांग

[८] सुत बीजडेनकारायितं ॥ १ ॥

कन्नौजाधिपति मदनपाल देवका ताम्रपत्र

अकुण्ठोत्कंठवैकुण्ठकण्ठपीठलुठत्करः, संरम्भः सुरतारम्भे सश्रियः श्रेयसेस्तुवः ॥१॥ आसीदसीतद्युतिवंशजातक्ष्मापालमाला सुदि वंगतासु साक्षाद्विवस्वानिवभूरिधाम्ना नाम्नायशोविग्रहइत्युदारः ॥ २ ॥ तत सुतोऽभून्महीचन्द्रः श्चन्द्रधामनि

निजम् येना ऽपारमकूपारपारे व्यापारितंयशः ॥ ३ ॥ तस्याऽभूत तनयो नयैक रसिकः क्रान्तद्विषन्मण्डलो विध्वस्तोद्धतवीरयोधतिमिरः श्रीचन्द्र देवो नृपः येनोदारतरप्रताप शमिता शेष प्रजोपद्रवं श्रीमद्गाधिपुराधि राज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ॥ ४ ॥ तीर्थानि काशिकुशिकोत्तर कोशलेन्द्र स्थानीयकानि परिपालयताऽभिगम्य हेमात्म तुल्यमनिशं ददताद्विजेभ्यो येनांऽकितावसुमती शतशस्तुलाभिः ॥ ५ ॥ तस्याऽऽत्मजो मदनपाल इति क्षितीन्द्र चूड़ामणिर्विजयते जिनगोत्रचन्द्रः यस्याऽभिषेक कलशोल्लसितैः पयोभिः प्रक्षालितं कलिरजः सकलं धरित्र्या ॥ ६ ॥ यस्याऽऽसी-द्विजयप्रमाणसमये तुंगाचलोच्चैश्चलन माद्यत्कुम्भिपदक्रमास भभरभ्रश्यन्मही मण्डले चूडारत्नविभिन्नतालुगलितस्त्यानासृगुद्भासितः शेषः पेषव शादिव क्षणमसौ क्रोडेनिलीनाननः ॥ ७ ॥ सोयं समस्त राज संसेवित चरणः-परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निजभुजोपार्जित श्री कान्यकुब्जा-धिपत्य श्री चन्द्रदेव पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परमाहेश्वर श्रीमन्मदन पालदेवो विजयी वणेसरमौ अपत्तलाया मह ग्रामग्राम निवासिनो निखिल जान पदानुपगतानपिच राज राज्ञी युवराज मन्त्रि पुरोहित प्रतीहार सेनाधिपति भाण्डागारि कात्त पटालिकभिषड् नैमित्तिकान्तः पुरिकदूत करितुरगपत्तनाकरस्थान गोकुलाधिकारि पुरुपान समाज्ञापयति बोधयत्यादिशतिच ।

विदितमस्तुभवतां यथो परि लिखित ग्रामः सजलस्थलः सलोह लवणाकरः समधूकचूत बनबाटिका विटप तृणयूथिगोचरपर्यंतः सगर्तविर सोर्ध्वाधश्चतुराघाट विशुद्धः स्वसीमापर्यंत श्चतुष्पांचाशदाधिक शतैकादशसंवत्सरे माघेमासे शुक्लपक्षे तृतीयायां सोमदिने वाराणस्या मुत्तरायण संक्रान्तौ अंकतः सम्वत् ११५४ माघ सुदि ३ सोमे वाराणस्यां देव श्री त्रिलोचनघट्टे गंगायांस्नात्त्वा श्रीमद्राजाधिराज श्रीचन्द्रदेवेन विधिवन्मंत्र देवमुनि मनुजभूत पितृगणांस्त र्पयित्वा तिमिर पटल पाटन पटुमहस मुष्ण रोचिषमुपस्थायौषधिपति शकल शेखरं समभ्यर्चा त्रिभुवनत्रातुर्वासु-देवस्य पूजां विधाय प्रचुरपायसेन हविषाह वि भुजं हुत्वा मात्रापित्रोरात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्धये कौशिकगोत्राय विश्वामित्रोदल देवरात त्रिप्रवराय छन्दोगशाखि ब्राह्मण देव स्वामि पौत्राय ब्राह्मण श्री वामनस्वामिशर्मणे गोकर्णकुशलतापूत करतलोदकपूर्व-मापदमसद्मनोहूहूकान्तंयावत शासनीकृत्य प्रदत्त इति ज्ञात्वाऽस्माभिः पितृदान शासन

प्रकाशनार्थं निज नामांकित मुद्रया ताम्रपट्ट के निधाय । प्रदत्तोमत्वा यथादीयमान भाग भोगकर हिरण्यप्रभृति समस्तादादायानाज्ञा विधे यीभूयदास्यथ ।

भवन्तिचाऽत्रश्लोकाः

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्चभूमि प्रयच्छति ।
उभौतौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥ १ ॥

शंखो भद्रासनं छत्रं वराश्ववरवारणाः ।
भूमिदानस्य चिन्हानि फलमेतत्पुरन्दर ॥ २ ॥

सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो-
भूयो याचते रामभद्रः सामान्योऽयं
धर्मसेतुर्नृपाणां कालेकाले पालनीयो
भवद्भिः ॥ ३ ॥

बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमि स्तस्य तस्य तदाफलम् ॥ ४ ॥

सुवर्णमेकं गामेकां भूमरप्येक मंगुलम ।
हरन नरकमाप्नोति यावदाभूत संप्लवम ॥ ५ ॥

स्वदत्तां परदत्तांवा यो हरेत वसुन्धराम ।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा • पितृभिः सहमज्जति ॥ ६ ॥

षष्टिवर्ष सहस्राणि स्वर्गे व सति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ताच तान्येव नरकं वसेत् ॥ ७ ॥

यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्मार्थं ।
यशस्कराणि । निर्माल्य वान्त प्रतिमानि तानि ।
को नाम साधुः पुनराददीति ॥ ८ ॥

वाताभ्रबिभ्रममिदं वसुधाधिपत्यम् आपात्रमात्रमधुरा विषयोपभोगाः ।
प्राणास्तृणा ग्रजलबिंदु समा नराणां धर्मः सखा परमहो परलोकयाने ॥ ९ ॥

श्रीमन्मदनदेवेन पितृ दान प्रकाशकः ।
शासनस्यनिबंधोऽय कारित स्वीयमुद्रया ॥१०॥

लिखितं करणिक ठक्कुर श्री सहदेवेन । शिवमत्र मंगलं महाश्रीः । श्रीमदन पाल देवेन ॥

(२)

राजा गोविन्दचन्द्र देवका ताम्रपत्र

स्वस्ति

अकुण्ठोत्कण्ठवैकुण्ठ कण्ठपीठ लुठत्करः ।
सरम्भः सुरतारंभे सश्रियः श्रेयसेस्तुवः ॥ १ ॥

आसीदशीत द्युतिवंशजात क्ष्मापाल मालासु दिवंगता सु । साक्षाद्विवस्वानिभूरि धाम्ना नाम्नायशोविग्रह इत्यु दारः ॥ २ ॥ तत्सुतोऽभून्महीचंद्रश्चद्रधामनिभंनिजम् । येनापारमकूपारपारेव्यापारितंयशः ॥ ३ ॥

तस्याभूत्तनयो नयैकरसिकः क्रान्तद्विषन्मंडलो विध्वस्तोद्धतवीरयोधतिमिरः श्रीचन्द्रदेवोनृपः । येनोदारतर प्रतापशमिता शेषप्रजोपद्रवं श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितं ॥ ४ ॥

तीर्थानिकाशिकुशिकोत्तरकोशलेन्द्र स्थानीय कानि परिपालयताभिगम्य । हेमात्मतुल्यमनिशं ददताद्विजेभ्यो येनांकितावसुमती शतशस्तुलाभिः ॥ ५ ॥

तस्यात्मजोमदनपाल इति क्षितीन्द्र चूडामणिर्विजयते निजगोत्रचन्द्रः । यस्याभिषेककलशोल्लसितैः पयोभिः प्रक्षालितंकलिरजः पटलं धरित्र्याः ॥ ६ ॥ यस्यासीद् विजयप्रयाणसमये तुंगावलोच्चै श्चलन् माद्यत्कुम्भिपदक्रमासमभर भ्रश्यन्महीमण्डले चूड़ारत्नविभिन्नतालुगलित स्त्यानास्टग्उद्भासितः शेषः पेषवशा द्विवक्षण मसौ क्रोडेनिलीनाननः ॥ ७ ॥ तस्मादजायतनिजायत बाहुवल्ली बन्धा वरुद्ध नवराष्ट्र गजोनरेन्द्र सान्द्रा मृतद्रव मुचां प्रभवो गवांयो गोविन्द चन्द्र इति

चन्द्र इवाऽम्बु राशेः ॥ ८ ॥ नकथमप्यल मन्तरण क्षमांस्तिस्टषुदिक्षुगजानथव-श्रिणः। कर्कुभिवभ्र मुरभ्रमुवल्लभ प्रति भटाइवयस्यघटागजा ॥ ६ ॥ सोऽमं समस्तराजचक्र संसेवितं चरणः परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहे-श्वर निज भुजोपार्जित श्रीकान्यकुब्जाधिपत्य श्रीचन्द्रदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर श्री मदनपाल देव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध विद्या विचारवाचस्पति श्रीमदगोविन्द चन्द्रदेवौ विजयी हलदोय पत्तलायामा गोडलीग्रामनिवासिनो निखिल जनपदानुपगतानपिच राजराज्ञो युवराज मन्त्रि पुरोहित प्रतिहार सेनापतिभांडागारिकाक्षपटलिक भिषङ्नैमिति कान्तः पुरिक दूत करि तुरग पत्तना कर स्थान गोकुलाधिकारि पुरुषा नाज्ञापर्यति बोधयत्या-दिशति च।

यथाविदितमस्तुभवतां यश्चोपरि लिखित ग्रामः सजलस्थलः सलोहलवणाकरः समत्स्याकरः समर्तोपरः समधूकाम्रवन नाटिका विटप तृण यूति गोचर पर्यन्तः सोर्ध्वाध-श्च तुराघाट विशुद्ध स्वसीमापर्यन्तः द्वयशीत्य धिकैकादश शतसंवत्सरे माघमासिकृष्ण-पक्षे पष्ठयां तिथा वंकन सवत् ११८२ मावबदि ६ शुक्रे श्रीशप्रतिष्ठाने गंगायांस्नात्वा विधिवन्मंत्रदेव मुनि मनुजभूत पिन्टगणांस्तर्तयित्वा तिमिर पटल पाटन पटुमहस मुष्णरोचिष मुपस्थायौपधिपति शकलशेखरं समभ्यर्च्चे त्रिभुवनत्रातुर्वासुदेवस्य पूजाविश्चाय प्रचुर पायसेन हविषा हविर्भुजं हुत्वा मातापित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्धयेऽस्माभिर्गोकर्ण कुशलतापूत करतलोदक पूर्व गोतमांगिरसौतथ्य त्रिप्रवराभ्यां ठक्कुरोत्तम पौत्राभ्यां ठक्कुर श्री श्चाल्हाण पुत्राभ्यां श्री छीछा श्रीवाछटशर्मभ्या माचन्द्रार्कं यावत् शासनीकृत्य प्रदत्तोमत्वा यथा दीयमान भाग-भोग कर प्रवणी करतुरुष्क दण्डप्रभृति सर्वदायानाज्ञा विधेयीभूय दास्यथेति।

भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः।

भूमियः प्रतिगृण्हाति यश्चभूमिं प्रयच्छति। उभौतौ पुण्य कर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥ १ ॥ शंखं भद्रासनं छत्रं वराश्व वरवारणाः। भूमिदानस्यचिन्हानि फलमेतत्पुरन्दर ॥ २ ॥ सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः। सामान्योऽयं धर्मसेतुर्न्टपाणां काले काले पालनीयो भवद्भि ॥ ३ ॥ बहुभिर्व

सुधाभुक्ता राजभि: सगरादिभि: यस्य यस्य यदाभूमि स्तस्य तस्य तदाफलम् ।। ४ ।।
गामेकां स्वर्णमेकं च भूमेरप्येकमंगुलं हरन्नरकमाप्नोति यावदाभूत संप्लवम् ।। ५ ।।
तडागानां सहस्रेणाऽश्वमेध शतेनच । गवां कोटि प्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति
।। ६ ।। लिखितं चेदं ताम्र पट्टकं ठक्कुर श्री विश्वरूपेणेति ।

(३)

राजा गोविन्दचन्द्रदेव का ताम्रपत्र

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।।

नमाद्यं सर्वदेवानां दामोदर मुपास्महे । त्रैलोक्यं यस्य वक्तीव क्रोडान्तस्थ
वलित्रयी ।। १ ।। वंशे गाहड नालाख्ये बभूवविजयी नृप: । महि आल सुत: श्रीमान्
नलना भाग सन्निभ: ।। २ ।। याते श्रीभोज भूपे विबुधवरवधू नेत्रसीमा तिथित्वं
श्रीकर्णे कीर्तिशेषं गतवतिच नृपे क्ष्मात्यये जायमाने । भर्तारं यं धरित्री त्रिदिव
विभुनिभं प्रीतियोगा दुपेता त्राताविश्वस्यपूतं समभवदिह सक्ष्मापतिश्चन्द्रदेव: ।। ३ ।।
द्विषत्क्षिति भृत: सर्वान् विधाय विवशान् वशे । कान्यकुब्जेऽकरोद्राजा राजधानी-
मनिंदिताम् ।। ४ ।। तत्राजनि द्विपदिलापति दन्तिसिंह: क्षोणीपतिर्मदनपाल
इति प्रसिद्ध: । येनाक्रियन्त बहुश: समरप्रबंधा: सन्नर्त्तित प्रहृत शात्रुकबन्धबन्धा:
।। ५ ।। तस्मादजायत नरेश्वर वृन्द वन्द्यं पादार विन्द युगलो ज्वलित: प्रताप: ।
क्षोणी पतीन्द्रतिलकोरिपुरंगभंगी गोविन्दचन्द्रइति विश्रुतराज पुत्र: ।। ६ ।।
संवत् सहस्रैके एकपष्ठयुत्तर शताभ्यधिके पौष मासे शुक्लपक्षे पंचम्यां रविदिने
संवत् ११६१ पौषसुदि ५ रवौ ।।

अद्येहासतिकायां सकल कल्मष क्षयकारिणां यमुनायांस्नात्वा यथा विधानं
मन्त्रदेव र्षिमनुष्य भूत पितृं स्तर्पयित्वा । सूर्यं भट्टारकं सर्वकर्त्तारं भगवंतं शिवं
विश्वाधारंवासुदेवं समभ्यर्च्य हुतवहंहुत्वा । जीआवनी पत्तणायां वसभीग्रामे
समस्त महत्तम जनपदान् सम्बोधयति । यथा ग्रामोऽयं मया क्षेत्रवनमधूकाम्राकाश
पाताल सहित: सदशापराधदण्ड: भागकूटक दशबंध, विंशति अगूप्रस्थाद्य पटल

प्रस्थप्रतीहार प्रस्थाकर पुरुष्कदण्डधरकर, हिरण्य सर्वादायसंयुक्तः। पूर्वेस्यां बान्धर्मा अग्रामः पश्चिमायां वडवलाग्रामः दक्षिणस्यां पुसोणीग्रामः उत्तरस्यां साबहृदग्रामः एवं चतुराघाट विशुद्धः। मातापित्रो रात्मनश्चयशः पुण्यविवृद्धये जलबुद्बुदाकारं जीवतं दान भोगफलां लक्ष्मी ज्ञात्वा। बह्वृचेशाखिने गौतमगोत्राय, गौतम, अवितथ, अंगिरस, त्रिप्रवराय, मेमोपौत्राय कुल्येपुत्राय ज्योतिर्विदे ब्राह्मण आह्लेकाय महाराजपुत्र श्रीमद्गोविंदचन्द्रदेवेन उत्तरायणसंक्रान्तौ कुशपूतेन हस्तोदकेन चन्द्रार्कयावत् शासनत्वेन प्रदत्तः।

ये यास्यन्ति महीभृतो मम कुले किंवा परस्मिन् पुर स्तेषामेष मयाऽञ्जलि विंरचितो नाद्रेय मस्मात् कियत्। दूर्वामात्रमपिस्वधर्मनिरता दत्त मयापाल्यतां वायुर्वास्यति तप्स्यति प्रतपनः श्रुत्वामुनीनांवचः ॥ १ ॥ बहुभिर्वसुधा भुक्ताराजभिः मगरादिभिः। यस्य यस्य यदाभूमि स्तस्य तस्य तदाफलम् ॥ २ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा योहरेतवसुन्धराम्। स विष्ठायां कृमिभूत्वा पितृभिः सहमज्जति ॥ ३ ॥ भूमिं यः प्रतिगृण्हाति यस्तु भूमिं प्रयच्छति तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गवासिनौ ॥ ४ ॥ तड़ागानां सहस्रेण वाजपेयशतेन च। गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुध्यति ॥ ५ ॥ लिखितञ्च पुरोहित श्री जागूकमेहत्तक श्री ब्राह्मण प्रतीहार श्री गौतमी एषां सम्मत्य-पण्डितः श्रीकूकेपुत्र विजयदासेनेति ॥

(४)

राजा जयचन्द्र का ताम्रपत्र

(१) ओंस्वस्ति (॥) अकुंठोत्कंठवैकुंठ कंठपीठलुठत्कर संरंभः सुरतारंभे सश्रि (य): श्रेयसेस्तु वः ॥ १ ॥ आसीदशीत द्युतिवंशजात क्ष्मापाल मालासु दिवं य (ता) (२) सु [।] साक्षाद्विवस्वानिवभूरिधाम्न नाम्ना यशोविग्रह इत्युदारः ॥ तत्सुतो भून्महीचन्द्रश्चन्द्र धामनिभं निजं । येनापारमकूपार पारे व्यापारितं यशः [॥] (३)

(३) तस्याभूत्तनयो नयैकरशिकः क्रान्तद्विषन्मंडलो विध्वस्तोद्धत (वीर) योधतिमिरः श्रीचन्द्रदेवोनृपः। येनो दारतरप्रताप शमि (ता) शेषप्रजोपद्रवं श्रीम (द्गा)–

(४) धिपुरा धिरा (ज्य) मसमं दोर्व्विक्रमेणार्जितं ॥ ४ ॥ तीर्थानि काशि कुशिकोत्तर कोशलेन्द्र स्थानीय कानि परिपालयताधिगम्य (।) हेमात्म-तुल्यमनिशं ददता–

(५) द्विजेभ्यो ये (नां) किता वसुमती (श) तश स्तुलाभिः ॥ ५ ॥ तस्यात्मजो मदनपालइति क्षितीन्द्र चूडा मणि र्विजयते निजगोत्रचन्द्रः। यस्याभि (षे) कक–

(६) लसोल्लसितैः पयोभिः प्रक्षालितं कलिरजः पटलं धरित्र्याः ॥ ६ ॥ तस्मादजायत निजायत वाहु वल्लिवंधा वरुद्ध नव राज्यगजो नरेन्द्रः (।) सांद्रामृतद्रवमुचां–

(७) प्रभवो गवां यो गोविंदचन्द्र इतिचन्द्र इवाम्बुरासेः ॥ ७ ॥ नकथ मप्यलभ (न्त) रणक्ष मां स्तिसृपुदिक्षु गजानथ वज्रिणः ककुभि (ब) भ्रमु (रभ्र) मुवल्लभ प्रतिभटा–

(८) इव यस्यघटागजाः ॥ ८ ॥ अजनिविजय चंद्रा नामतस्मान्नरेन्द्रः। सुरपतिरिवभूभृत्पक्षविच्छेद दक्षः। भुवनदलनहेला हर्म्य हम्मीरनारी नयन–

(९) जलदधाराधौत भूलोकतापः ॥ ९ ॥ यस्मिंश्चलत्युदधिर्नेमि मही जवाथ माघत्करीन्द्र गुरु भार निपीडितेव। यातिप्रजापति पदं शरणार्थिनी

(१०) भूस्त्वंगत्तुरंग निवहोत्थ रजश्छलेन ॥ १० ॥ स यं समस्त राजच (क्र) संसेवितचरणः सचपरम भट्टारक महाराजा धिराज परमेश्वर परमाहेश्वर

(११) निजभुजोपार्जित कान्यकुब्जाधिपत्य श्रीचन्द्रदेव पादानुध्यात परम-भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर श्रीमदनपाल देव

(१२) पादानुध्यान परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर (प) रम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति नरपतिराजत्रयाधिपति विविध विद्याविचार वाचस्प

(१३) ति श्रीगोविन्द चन्द्रदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध—

(१४) विद्याविचार (वा) चस्पति श्रीमद्विजयचन्द्रदेवो विजयी। देव (हृ) ली पत्तलायां न (ग) लीग्राम निवासिनो निषिल जनपदानुप गतानपि च राजराज्ञीयुव—

(१५) राजमन्त्रिपुरोहित प्रतीहार सेनापति भाण्डागारिकारि (का) क्ष पटलिकभिषक् नैमित्ति कान्त पुरिकदूत फरितुरगपत्तनाकर स्थान गोकुलाधि—

(१६) कारिं पुरुपानाज्ञापर्याति बाधय त्यादिशति च यथा। विदितमस्तुभवतां यथोपरि लिखित ग्रामः सजल (स्थ)लः। सलोहलवणाकरः सगर्तोषरः

(१७) सा (म्र) मधूक व (नः) समत्स्याकर (स्तृण) यूतिगोचर सहितः (स्व) सीमा सहितश्चतुराघाट विशुद्धः। पंचविंशत्यधिकद्वादश त संवत्सरेकेपि सं० १२२५ माघीपौर्ण—

(१८) मास्यां (वशिष्ठ) घट्ट यमुनायां स्नात्वा विधिवन्मन्त्र देवमुनि मनुजभूत पितृ गणांस्तर्पयित्वा तिमिर पटलपाटनपटुमहस मुष्ण रोचिष मुपस्था-यौषधि पति।

(१९) शकल शेषरं समभ्य (र्च्य) त्रिभुवन त्रातुर्भगवतो वासुदेवस्य पूजां विधाय माता पित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोर्वि वि (वृ) द्धयेऽस्मत्सम्मत्या समस्त।

(२०) राज (स्व) क्रियोपेत यौवराज्या निषिक्त महाराजपुत्र श्री जयच्चन्द्र-देवेन गोकर्ण कुशलता पूत करतलोदक पूर्वमाचन्द्रा (र्कं) यावत् काश्य—

(२१) पगोत्रभ्यां काश्यपावत्सारनै (ध्रु) वत्रिः प्रवराभ्याम् (१) ठक्कुर तिहु (ल) पौत्राभ्यां ठक्कुर श्रा (ल्हे) पौत्राभ्यां राउत गोठ पुत्राभ्यां राउत श्री अणते। राउत—

(२२) श्री (दादे) सम्मेभ्यां ब्राह्मणाभ्यां (शुद्ध) पसा (दं) प्रदोत्तो म (त्वा) य (था) दीयमान भाग भो (ग) क (रप्र) वणिकर गोकर (जात) कर तुरुष्क दंडच- मार (ग) दि श्राण (ण)

(२३) प्रभृति समस्त नियता (निय) तादायानाज्ञा वि (धेयीभूय) दास्यथ ॥ भवन्ति चात्रधर्मा (नु) साशनः पौराणिक श्लोकाः । भूमिं यः प्रतिगृ (ण्हा) ति यश्च भू

(२४) मिं प्रय च्छति (।) (उभौ) तौ पुण्य कर्म्माणौ नियतं स्व- र्गगामिनौ ॥ स्वत्वं भ (द्रा) सनं छत्रं वराश्वावरवारणा (: ।) भूमिदानस्य चिन्हानि फल (मे) तत्पुरन्दर ॥

(२५) षष्ठिं वर्ष सह (स्रा) णि स्वर्गो वसति भूमिदः (।) श्राच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा योहरेत वसुन्धरां । सविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृ

(२६) भिः सह मज्जति ॥ गामेकां स्वर्ण मेकं च भूमे रप्येक मंगुलम् । हरन्नरक मा (प्नोति) यावदाभूत सं (प्ल) वम् ॥ वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य मापात मात्र

(२७) मधुराविषयोप भोगाः (।) प्राणस्तृणाग्र जल बिंदु समानराणां धर्म्मः सखा परमहो परलोक याने ॥ सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान्भूयोयाचतेराम

(२८) भद्रः (।) सामान्योयं धर्म (से) तुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥

लिखितं ताम्रकमिदं श्रीजयपालेन ।

(५)

जयचन्द्रदेव का ताम्र पत्र

ओं स्वस्ति

(१) अकुण्ठोत्कण्ठवैकुण्ठ कण्ठपीठ लुठत्करः। संरम्भः सुरतारंभे सांश्रयः श्रेयसोऽस्तुवः ॥ १ ॥ आसीदशीतद्युतिवंशजात क्ष्मापाल

(२) मालासुदिवंगतासु। साक्षाद्विवस्वानिव भूरिधाम्ना नामायशोविग्रह इत्युदारः ॥ २ ॥ तत्सुतोऽभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभंनिजम। येनापारमकूपार

(३) पारेव्यापारितंयशः ॥ ३ ॥ तस्याभूत्तनयोनयेक (र) सिकः क्रान्ताद्विषन्मण्डलो विध्वस्तोद्धत वीरयोधतिमिर

(४) श्रीचन्द्रदेवोनृपः। येनोदारतरप्रताप शमिताशेष प्रजो पद्रवं श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितं ॥ ४ ॥ तीर्थानिकाशिकुशिकोत्तरकोशलेन्द्र स्थानीयकानि परिपाल यताभिगम्य। हेमात्मतु—

(५) ल्यमनिशं ददताद्विजेभ्यो येनांकितावसुमती शरशस्तुलाभिः ॥ ५ ॥ तस्यात्मजो मदनपाल इति क्षितीन्द्रचूडामणिर्विजयते निजगो (त्र) चन्द्रः। यस्याभिषेक—

(६) कलशोल्लसितैःपयोभिः प्रक्षालितं कलिरजः पटलं धरित्र्याः ॥ ६ ॥ यस्यासीद्विजयप्रमाण समये तुंगावलोच्चैश्चलन

(७) माद्यत्कुम्भिपदक्रमासमभर (भ्र) श्य—न्महीमण्डले। चूड़ारत्न विभिन्नतालु गलितस्त्यानासृमुद्भासितः (शे) षः शेष वशादिव क्षणमसौ क्रोड़े नि (ली) नाननः ॥ ७ ॥ तस्मा दजायत निजायत बाहु—

(८) वल्लिबन्धा वरुद्धनवराज्य गजो नरेन्द्रः। सान्द्रा मृत (द्र) व मुचां प्रभवो गवां यो गोविन्दचन्द इति चन्द्रइवाऽम्बुरासेः ॥ ८ ॥ नकथमप्यलभन्तरणक्षमाँ स्ति

(६) मृषु दिन्नु गजानथ वर्जिणः। कर्कुभव(भ्र) मु र (भ्र) मुवल्लभ प्रतिभा इव यस्य घटागजाः ॥ ६ ॥ अजनि विजय चंद्रोनाम तस्मान्नरेन्द्रः। सुरपतिरि—

(१०) वभूभृत्पक्षविच्छेददक्ष(:) । भुवनदलनहेला हर्म्यह (म्मी) रनारी नयनजलदधाराधौतभूलोकतापः ॥ १० ॥ (लो) कत्रयाक्रमणकेलि विशृंखलानि प्र—

(११) (प्र) ख्यात कीर्ति कविवर्णित वैभवानि। यस्य (त्रि) विक्रमपदक्रम भांजि भांति प्रो (द्यो) तय (न्ति) बलि राजभयंयशांसि ॥ ११ ॥ यस्मिंश्च-लत्युदधिर्नेमि महीज—

(१२) याथं माद्यत्करीन्द्र (गु) रु भार निपीडितेव । याति प्रजापति पदं शरणार्थिनीभू स्त्वंगत्तरंगनिवहोत्थरजश्छलेन ॥ १२ ॥ तस्माद्दद्भुत विक्रमाद्दथ-जयच्चं—

(१३) द्राभिश्वानः पति भूपानामवतीर्ण एष भुवनोद्धाराय नारायणः (द्वैधी) भावमपास्य विग्रह (रुचिं) धिक्कृत्य सान्ताशयाः यमुदग्र बन्धन—

(१४) भय (ध्व) न्सा (थि) नः पार्थिवाः ॥ १३ ॥ गच्छेन्मूर्च्छामतुच्छां न यदि कवलयेत्कूर्म पृष्ठाभिघात प्रत्यावृत्तश्रमार्त्तो नमदखिल फण श्वास वात्या सहस्रं उद्योगे

(१५) यस्यधाव द्धरणिधर धुनी निर्झर स्फारधार भ्रश्यद्दान द्विपाली दहल भरगल (घै) र्यमुद्रः फणीं द्रः ॥ १४ ॥ सोयं समस्त राजचक्रसंसेवित चरणः।

(१६) स च परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निजभु-जोपार्जित श्री कन्यकुब्जा धिपत्य श्री चंद्रदेव पादानुध्यात परम भट्टारक

(१७) महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वर श्रीमदनपालदेव पादा नु (ध्या) त परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वराश्वपतिगजप

(१८) ति नरपति राज (त्र) याधिपति विविध विद्याविचारवाचस्पति श्री जयचंद्रदेव पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वराश्व

(१६) पति गजपति नरपति राज (त्र) याधिपति विविध विद्या विचार वाचस्पचि श्री विजयचंद्रदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममा (हे)

[२०] श्वराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध विद्या विचार वाचस्पति श्रीमज्जय च्चन्द्रदेवोविजयी असुरंस पत्तलायां कमोली ग्रामनि–

[२१] वासिनो निखिल जनपदानुपगता नपिच राजराज्ञी युवराज मंत्रिपुरोहितप्रतीहार सेनापतिभांडागारि काक्ष पटलिक भिषग्नैमित्ति कान्तः पुरिक–

[२२] दूत करि तु (र) गपत्तनाकर स्थान गोकुला धिकारि पुरुपानाज्ञापयति बोधय त्यादिशति च विदितमस्तु भवतां यथोपरिलिखित ग्रामः सजलस्थलः

[२३] सलोह लवणाकरः (ःमा) करः सगर्तोपरः सगिरिगहन निधानः मम (धू) का (म्र) वन वाटिकाविटपतृण यूति गोचरपर्यन्तः सोर्ध्वाधश्चतुरा घाटवि–

[२४] शुद्धः स्वसीमापर्यन्तः । त्रिचत्वारिंशदधिक द्वादश शत संवत्सरं आषाढ़ मासि शुक्ल पक्षे सप्तम्यां तिथौ रविदिने अंकतोपि सम्वत् १२४३ आषाढसुदि ७ र–

[२५] वौ अद्येह श्रीमद्वाराणस्यां गंगायांस्नात्वा विधिवन्मंत्रदेव मुनिमनुजभूत पितृ गणांस्तर्पयित्वा तिमिरपटलपाटनपटु महस मुष्ण रोचिष मुपस्था यौषधि–

[२६] पतिशकल शेखरं समभ्यर्च्य त्रिभुवन त्रातु (र्भ) गवतो (वासु) देवस्य पूजां विधाय प्रचु (र) पायसेन हविषा हविर्भु (जं) हुत्वा माता पित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्ध–

(२७) ये अस्माभिर्गोकर्णा कुशलतापूत करतलोदक पूर्व्वकं भारद्वाज गोत्राय भारद्वाजांगिरसबार्हस्प त्येति त्रिप्रवराय राउत श्री आढले पौत्राय राउत श्री दूंटा–

(२८) पुत्राय डोड राउत श्री अणंगाय चंद्रार्क्क यावच्छासनी कृत्य प्रदत्तो मत्वा यथा दीयमान भाग भोगकर (प्र) वणिकर प्रभृतिनियता नियत समस्ता दायानाज्ञा विधे–

(२६) याभूय दास्यर्थीत ।। ।। भवन्ति चात्र (श्लो) काः । भूमि यः प्रतिगृ (ह्णा) ति यश्च भूमिं प्रयच्छति। उभौ तौ पुण्यकर्माणौ निय (तं) स्वर्गगामिनौ ।। संखं भद्रासनं छ (त्रं) वराश्वा वरवार—

(३०) णाः । भूमिदानस्य चिन्हानि फलमेतत्सुरन्दर ।। षष्ठि वर्ष सहस्राणि (स्वर्गो) वसति भू (मि) दः । आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ।। बहु भिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः मग

(३१) रादिभिः यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्यतस्य तदाफलं ।। स्वदत्तां परदत्तां वा यो ह् (रे) त व (सुं) धरां । स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ।। तडागा (नां) सहस्रेण वाजपेयशतेनच (।)

(३२) गवां कोटि प्रदादेन भूमिहर्त्ता नशुध्यति वारि हीनेश्वरण्येषु शुष्क कोटर वासिनः । कृष्ण (स) र्पाश्व जायन्ते देवब्रह्म (स्व) हारिणः ।। नविषं विषमित्याहुर्ब्रह्म (स्वं) विष मुच्य—

(३३) ते । विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकं ।। वाताभ्रवि (भ्र) ममिदं वसुधाधिपत्य मापातमात्र मधुरा विषयोप भोगाः (।) प्राणास्तृणाग्र जलबिंदु समानराणां धर्म्मः सखापर

(३४) महो परलोकयाने ।। यानीह दत्तानि पुरानरेन्द्रैर्दानानि धर्मार्थ यशस्कराणि । निर्माल्य वान्तं प्रतिमानितानि को नाम साधुः पुन रा ददीत ।।

जबमूल पुस्तक लिखी गई उस समय यह भीमदेव का ताम्र पत्र, जो ८२[1] पृष्ठ में छपा है देखने में नहीं आया था, इस का पाठ इन्डियन एन्टिक्वेरी (सन १८८२) से लियागया है। इससे भीमदेव सोलंखी का संवत् १२५६ में वर्तमान होना सिद्ध है। पृथ्वीराज रासे में लिखा है कि पृथ्वीराज भीमदेव (भोला भीम) से लड़ा और उस लड़ाई में भीमदेव सोलंखी पृथ्वीराज के हाथ से मारा गया, सो पृथ्वीराज के शहाबुद्दीन की लड़ाई में मारे जाने का संवत १२४६ है, जिसके ७ वर्ष पीछे भीमदेव जीता था तो वह पृथ्वीराज के हाथ से किस तरह मारा गया।

---

१ प्रस्तुत पुस्तक में ६० पृष्ठ पर देखिये।

गुजरात के राजा भीमदेव सोलंखी का ताम्रपत्र

स्वस्ति राजावली पूर्ववत्—समस्त राजावली विराजित परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री मूलराज देवपादा नुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री चामुन्ड राज देवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीदुर्लभराज देवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभीमदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर त्रैलोक्यमल्ल श्रीकर्णदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरावंतीनाथ त्रिभुवनगंड बर्बरकजिष्णु सिद्ध चक्रवर्ति श्रीजयसिंह देवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर प्रो (प्रौ) प्रताप उमापति वरलब्धप्रसाद स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्ज्जितशाकंभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर प्रबल बाहुदंडदर्प रूपकंदर्प कलिकाल निष्कलंकावतारित रामराज्य करदीकृत सपाद लक्ष क्ष्मापाल श्रीअजयपाल देवपदानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वराहवपरा भूतदुर्ज्जय गर्ज्जनकाधिराज श्रीमूलराजदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरा भिनवसिद्धराज श्रीमद्भीमदेवःस्वभुज्यमान दंडाहिपथकांतः पातिनः समस्तराज पुरुषान् ब्राह्मणोत्तरां स्तन्नियुक्ताधिकारिणो जनपदांश्च बोधयत्यस्तुवः संविदितं यथा ॥ श्रीमद्विक्रमादित्योत्पादित संवत्सर शतेषु द्वादशसु षट्पंचाशदुत्तरेषु भाद्रपद मास कृष्णपक्षामावास्यायां भो (भौ) मवारेऽत्रांकतोऽपि संवत् १२५६ लौ० भाद्र पद वदि १५ भौमेऽस्यां संवत्सरमास पक्षवार पूर्व्विकायां तिथा वद्येह श्रीमदणहिलपाटकेऽमावास्यापर्वणि स्नात्वा चराचर गुरुं भगवन्तं भवानी—

पति मभ्यर्च्य संसारासारतां विचित्य नलिनी दलगत जल लव तरलतरं प्राणितव्य माकलय्यैहिकमामुष्मिकं च फलमंगी कृत्य पित्रोरात्मनश्च पुण्य यशोभिवृध्दये कडाग्रामे पूर्व्वदिग्भागे महिसाणाग्रामीय श्री आनलेश्वरदेव सत्क भूमिसंलग्नपार्श्व (श्च) उलिग्राम मार्गे वामपक्षे भूमि वि ६ नव विशेपकै (?) र्जातहल ४ चतुर्णां हलानां भूयी स्वसीमापर्यन्ता सवृक्षमालाकुला सहिरण्य भाग भोगा काष्ठ तृणोदकोपेता सर्वादाय समेता रायक वाल ज्ञातीय ब्राह्मण ज्योतिसोढल

पुत आसधराय शासने नोदक पूर्व्वमस्माभिः प्रदत्ता अस्याभूमे राघाटा यथा पूर्वतो
गारडवलयोः क्षेत्रेषु सीमा दक्षिणतो राजमार्गः पश्चिमतः श्री आनले श्वरदेव क्षेत्रेषु
सीमा उत्तरतो वांकय विशेषक आ गामक डोहलिका ग्रामयोः सीमा एवममीभि राघाटै
रूप लक्षिता भूमिमेनामवगम्य एतद्ग्राम निवासि जनपदैं यथा दीयमानभाग
भोगकरहिरण्यादिसर्व्वं सर्व्वदाज्ञा श्रवण विधेयैं भुत्वाऽमुष्मै ब्राह्मणाय समुपतनेतव्यं
सामान्यमेतत्पुण्यफलं मत्वाऽस्मद्वंशजैरन्यैरपि भाविभोक्तृभिरस्मत्प्रदत्त धर्मदायोऽ-
यमनुमंतव्यः पालनीयश्च उक्तं भगवता व्यासेन षष्टि वर्षे सहस्राणि स्वर्गे तिष्ठ-
तेभूमिदः आच्छेत्ता चानुमंताच तान्येव नरके वसेत् १ यानीह दत्तानि पुरानरेन्द्रै दा-
नानि धर्मार्थ यश स्कराणि निर्म्माल्य तानि प्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनरा
ददीत २ बहुभि र्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः यस्य यस्य यदाभूमि स्तस्य तस्य
तदा फलं ३ दत्वा भूमि भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः सामान्योऽयं
दान धर्म्मो नृपाणां स्वे स्वेकाले पालनीयो भवद्भिः ४ लिखितमिदं शासनं मोढान्वय
प्रसूत महाक्षपटलिक ठ० वैजलसुत ठ० कुंयरेण दृतकोऽत्र महासांधि विग्रहिक ठ०
श्री भीमाक इति.

श्री भीमदेवस्य

बाबू रामनारायणजी दूगड़

रासो की ऐतिहासिकता

प्रगट है कि पृथ्वीराज रासा नामका पुस्तक भारतवर्ष के इस प्रान्त (राजपूताना) में अति ही प्रसिद्ध है और प्रत्येक क्षत्री व चारण भाट इसके लिये निर्विवाद ऐसा मानते चले आये हैं कि दिल्ली के अंतिम महाराजाधिराज पृथ्वीराज चौहान के प्रधान कवि व मित्र चन्दवरदाई ने इस पुस्तक को बनाया है। राजस्थान के क्षत्रियों में साधारणत: और चाहुवानों में मुख्यत: यह ग्रन्थ परम प्रामाणिक इतिहास माना जाता है और आज तक राजस्थान सम्बन्धी कितने ही अन्य इतिहासों में भी इसी पुस्तक से लेकर वृत्त लिखने में आये हैं।

यह तो प्रसिद्ध है कि भारतवर्ष के प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों में केवल इतिहास पर लक्ष न करके कवि लोगों ने अपनी कविता के चमत्कार और रस वर्णन पर विशेष श्रम किया अतएव उन पुस्तकों से सत्या—सत्य ऐतिहासिक वृत्तों का निर्णय करना अत्यन्त दुर्घट हो गया तिसपर भी काल पाकर उनमें क्षेपक अंश समय समय पर इतना मिल गया कि वे ऐतिहासिक पुस्तक अपने असली अभिप्राय से कोसों दूर होकर उनके सर्वव्रत देवी बन गये। उसी प्रणाली के अनुसार चन्द या किसी अन्य कवि ने इस रासे के पुस्तक को भी लिखा है क्योंकि इसमें दो प्रकार के वर्णन पाये जाते हैं एक तो ऐतिहासिक और दूसरे पौराणिक. पौराणिक वर्णन से हमारा यह अभिप्राय है कि जैसे पुराणादि ग्रन्थों में भूत, प्रेत, राक्षस, अप्सरा, सिद्ध, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, देवी, देवता आदि की कथा श्राप और उद्धार लिखे हैं वैसे ही रासे के बनाने वाले ने भी अपने पुस्तक को ऐसे अद्‌भुत बनावों से खाली नहीं रक्खा है।

जब तक कि श्रीमती राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया एमप्रेस आफ इण्डिया (परमेश्वर सदा बढावे बल, वय और प्रताप उसका) के निष्कण्टक राज्य समय में पाश्चिमात्य विद्वानों के शोध व श्रम ने, इस देश की सत्य ऐतिहासिक वार्ताओं को दर्शानेवाले शिलालेख, दानपत्र, सिक्के आदि जो प्राचीन लीपियों में लिखे हुए स्थल स्थल पर यही उपलब्ध होते थे, प्रगट न किये तब तक हमारे ऐतिहासिक वृत्तों का आधार केवल बड़वे भाटों की पुस्तकों, प्राचीन ख्यातों और दन्तकथाओं पर ही था और उस अवस्था में अज्ञानता बस इतर देशवासियों का उन्हीं को सत्य करके मानना कुछ अन्यथा भी नहीं था, परन्तु अब तो विद्या की वृद्धि और विद्वानों के परिश्रम से वे प्राचीन लिपियां पढी पढी जाकर शिलालेखादि के अभिप्राय जान लिये गये अतएव एतद्देयशीय इतिहास में एक प्रकार का परिवर्तन हो गया। नवीन शोध के अनुसार अन्यान्य प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों से जैसे वर्तमान समय के विद्वान सम्मत या असम्मत हुए हैं। वैसे ही इस पृथ्वीराज रासे के विषय में भी मतान्तर हैं कोई तो इसको जाली और पृथ्वीराज के समय का बना हुआ नहीं बतलाते और कोई अब तक भी इस पुस्तक की मूल सत्यता पर विश्वास रखते हैं यद्यपि अंग्रेजी भाषा में इस विषय पर बहुत कुछ वाद-विवाद और लेख छपचुके तथापि अपनी देश भाषा में ऐसे लेख बहुत कम होने और विद्वानों के मतभेद देखकर मैंने चाहा कि इस प्रसिद्ध पुस्तक का, जो छन्दबद्ध है, सरल साधु भाषा में कथा रूप से सारांश लिखकर इसके सत्यासत्य विषय में जो कुछ प्रमाण मिल सकें वे भूमिका में लिख दूं जिसके पढ़ने से सर्व साधारण मनुष्य भी लाभ उठा सकें तदनुसार रासे के पुस्तक का पृथ्वीराज चरित्र नाम धर एक उपाख्यान के ढंग पर मैंने लिखा है यद्यपि कहीं प्रचलित कुरीतियों को जतलाने या कथा रस को वढाने के लिये मैंने अपनी ओर से कुछ वर्णन मिलाया है तथापि ऐतिहासिक विषय में मूल पुस्तक के विरुद्ध कुछ भी नहीं लिखा गया है। अन्यान्य प्राचीन ख्यातों की भांति इस रासे के ग्रंथ में भी कई क्षेपक अंग मिल जाने से उसमें इतना तो अन्तर हो गया है कि रासे की दो पुस्तकों में समान पाठ नहीं पाया जाता। मैंने जो यह आशय गद्य में किया वह उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय में रासे की एक लिखित पुस्तक से लिया है।

किसी पुस्तक के पौराणिक अंग पर उसके सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता: क्योंकि उन अपौरुषेय बातों का मानना न मानना तो केवल हमारी श्रद्धा व भक्ति पर अवलंबित है विद्या से उनका सम्बन्ध नहीं परन्तु पुस्तक में लिखे इतिहास के वृतों की जांच से कह सकते हैं कि यथार्थ में वह पुस्तक जैसा कि माना जाता है वैसा ही है या नहीं तदनुसार रासे में लिखे ऐतिहासिक वृत्तों की हम यहाँ यथा शक्ति जांच करेंगे जिससे पाठकगण स्वयं निश्चय कर सकें कि यह रासा कहाँ तक सत्य है और वास्तव में पृथ्वीराज ही के समय में उसके कवीश्वर चन्द ने इसको लिखा था या पीछे से किसी कवि ने बनाकर चन्द के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। रासे की पुस्तक में निम्न लिखित ६८ प्रस्ताव या पर्व हैं :—

(१) आदिपर्व—इसमें मंगलाचरण, आबू पर्वत की उत्पत्ति का पौराणिक वृत्तान्त, उसपर वशिष्ठ ऋषि का यज्ञ करना, और अग्नि कुण्ड में से प्रतिहार, चालुक, पंवार, और चाहुवान नाम के चत्रकुली क्षत्रियों का उत्पन्न होना, क्षत्रियों के छत्तीस वंश, चहुवान से लेकर पृथ्वीराज तक चौहानों की वंशावली, बीसलदेव, सारंगदेव आना या आनल देव आदि का वर्णन, बीसलदेव का गुजरात के चालुक राजा बालुकाराय से युद्ध और वणिक पुत्री गौरी का सतीत्व भ्रष्ट करना और गौरी के श्राप से बीसल का ढुण्ढा नामी नरभक्षी राक्षस होना, कन्नोज के राजा विजयपाल से दिल्ली के तँवर राजा अनंग पाल का युद्ध, अनंग पाल की पुत्री कमला से अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर का विवाह और उससे पृथ्वीराज का उत्पन्न होना आदि वर्णन है।

(२) दसम—इसमें मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्णचन्द्र, रामचन्द्र आदि दस अवतारों का संक्षेप चरित्र और गुणगान है।

(३) ढिल्ली किल्ली कथा—इसमें अनंगपाल का दिल्ली बसाने का वर्णन है।

(४) कन्ह पट्टी—इसमें लिखा है कि गुजरात के राजा भीमदेव चालुक्य के काका सारंग देव के सात पुत्रों को पृथ्वीराज के काका कन्हराज ने अजमेर में मारा अतएव पृथ्वीराज ने उसकी आँखों पर सदा के लिये पट्टी बँधवाई।

(५) आखेट वीर बरदान—कवि चंद का किसी सिद्ध से मंत्र पाना जिसके प्रभाव से वीर हाज़िर होते थे।

(६) लोहाना आजान बाहु—लोहाने का ऊँचे गोख से कूदना पृथ्वीराज का प्रसन्न होकर उसको पर्गना देना और लोहाने का जसवन्त राज से युद्ध।

(७) नाहर राय कथा—मंडोवर के परिहार राजा नाहर राय को सोमेश्वर को युद्ध में परास्त कर उसकी कन्या से पृथ्वीराज का विवाह करना।

(८) मेवाती मुगल कथा—मेवात के राजा मुद्गलराय ने सोमेश्वर को खिराज देना बन्द कर दिया इसलिये सोमेश्वर का उसपर चढ़ाई कर उसको परास्त करना।

(९) हुसेन कथा—गजनी के सुलतान शहाबुद्दीन गोरी के भाई मीरहुसेन का सुलतान की पातुर चित्ररेखा को भगा लाकर पृथ्वीराज के शरण रहना, सुलतान का पृथ्वीराज को कहलाना कि हुसेन को निकाल दो और न मानने पर उस पर चढ़ाई करना और परास्त होकर पकड़ा जाना।

(१०) आखेट चूक—पृथ्वीराज का शिकार को जाना और वहाँ सुलतान गोरी पृथ्वीराज को पकड़ने के वास्ते कुछ सेना गुप्तरीति से भेजना।

(११) चित्र रेखा सम्यो—चित्र रेखा का सुलतान के हाथ आने का वृत्तान्त।

(१२) भोलाराय सम्यो—गुजरात के चालुक्य राजा भीमदेव का आबू के प्रमार राजा सलख से उसकी पुत्री इच्छनी की मांग करना, और अपनी इच्छा पूर्ण न होने से आबू पर चढ़ाई कर प्रमार राजा को जीतना, पृथ्वीराज का भीमदेव को परास्त कर पीछा आबू प्रमारों को दिलाना आदि।

(१३) सलख युद्ध सम्यो—सलख प्रमार का सुलतान गोरी पर जय पाना।

(१४) इच्छनी व्याह—आबूराजा की पुत्री इच्छनी से पृथ्वीराज का विवाह होना।

(१५) मुगल युद्ध—मेवात के राजा से पुनः युद्ध होना।

(१६) पुण्डीरी दाहिमी विवाह—बयाने के राजा की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह।

(१७) भूमि स्वप्न।

(१८) दिल्ली दान प्रस्ताव—पृथ्वीराज का अपने नाना अनंगपाल के दिल्ली गोद जाना आदि।

(१९) माधो भाट कथा—सुलतान के भाट का पृथ्वीराज के पास आना और फिर पृथ्वीराज का सुलतान गोरी से युद्ध होकर सुलतान का कैद होना।

(२०) पृथा विवाह—पृथ्वीराज की बहन पृथा कंवरी का चित्तौड़ के रावल समरसिंह से विवाह होना।

(२१) धन कथा— नागोर के पास पृथ्वीराज को गड़ा हुआ द्रव्य मिलना, तथा सुलतान गोरी से युद्ध होना और सुलतान का कैद होना।

(२२) होली कथा— ढुंढा दानव की बहिन ढुंढी को पार्वती का वर देना कि होली में तीन दिन तक जो गाली न बके उसी को भक्षण करना और तभी से होली के दिनों में कुवाक्य बकने का प्रचार होना।

(२३) दिवाली कथा— सतयुग में सत्यावती नगरी का सोमेश्वर नाम राजा था। एक ब्राह्मण ने राजा से वर पाया कि कातिक कृष्ण अमावस्या को उस ब्राह्मण के घर के सिवाय नगर में और कहीं दीपक न जलेगा। लक्ष्मी का ब्राह्मण पर प्रसन्न होना और तभी से दीपमालिका का प्रचार।

(२४) पद्मावती सम्यो— पूर्व दिशा में गढ़ समुद्र शिखर के राजा की पुत्री पद्मावती को पृथ्वीराज का हर कर ले आना, सुलतान गोरी से मार्ग मार्ग में युद्ध होना और सुलतान का परास्त होना आदि।

(२५) ससिव्रता प्रस्ताव— देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री ससिव्रता को जिसकी मंगनी कन्नौज के राजा जयचन्द के भतीजे से हुई थी— पृथ्वीराज का हर लाना आदि।

(२६) देवगिरी सम्यो— कन्नौज के राजा जयचन्द का देवगिरि पर चढ़ाई करना।

(२७) खानट सम्यो— खातट पर सुलतान गोरी के साथ पृथ्वीराज का युद्ध और सुलतान का पकड़ा जाना।

(२८) अनंगपाल सम्यो— पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल का पीछा दिल्ली का राज मांगना और न मिलने पर सुलतान गोरी सहित दिल्ली पर चढ़कर आना, पृथ्वीराज के साथ युद्ध और सुलतान का कैद होना आदि।

(२९) घघ्घर की लड़ाई— सुलतान गोरी से पृथ्वीराज का घघ्घर के मुकाम पर युद्ध।

(३०) कर्णाटी पात्र सम्यो— पृथ्वीराज का कर्णाटक पर चढ़ाई कर वहाँ के राजा को जीतना और वहाँ से कर्णाटी नाम की एक पातुर का लाना।

(३१) पीपा युद्ध— पृथ्वीराज के सामन्त पीप परिहार का सुलतान गोरी व कन्नौज की सम्मिलित सेना से युद्ध।

(३२) इन्द्रावती ब्याह—मालव देश में सारंगपुर नगर के राव की पुत्री इन्द्रावती से पृथ्वीराज का ब्याहने जाना। मार्ग में चित्तौड़ पर गुर्जरपति भीम की चढ़ाई के समाचार सुन रावल की सहायतार्थ चित्तौड़ जाना और इन्द्रावती को पृथ्वीराज के साथ विवाह करा सामन्तों का दिल्ली आना।

(३३) तथा—

(३४) जैतराव सम्यो—जैत प्रमार का सुल्तान गोरी से युद्ध।

(३५) कांगुरा युद्ध—कांगुरे के राजा से पृथ्वीराज का युद्ध।

(३६) हंसावती विवाह—रणथंभ के यादव राजा की पुत्री हंसावती के साथ पृथ्वीराज का विवाह और सुलतान गोरी और चन्देल राजा से युद्ध।

(३७) पहाड़राय युद्ध—पृथ्वीराज का सुलतान गोरी के साथ युद्ध और सामन्त पहाड़राव का सुलतान को कैद करना।

(३८) वरुण कथा—पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर को दिल्ली में रात के वक्त जमुना जल में स्नान करते हुए वरुण के दूतों का पकड़ना और पृथ्वीराज का वरुण की स्तुति कर पीछा पिता को मुक्त कराना—

(३६) सोमवध सम्यो—गुजरात के राजा भीमदेव का अजमेर पर चढ़ाई कर सोमेश्वर को मारना।

(४०) पज्जून छोगा प्रस्ताव—पृथ्वीराज के सामन्त राव पज्जून का चालुक्य राजा भीमदेव से युद्ध कर उसकी पाग का छोगा ले आना।

(४१) पज्जून चालुक्य प्रस्ताव—पज्जून राव का चालुक्क भीमदेव से युद्ध।

(४२) कैमास जुद्ध नाम प्रस्ताव—पृथ्वीराज के मंत्री कैमास दाहिमा का सुलतान गोरी से युद्ध कर उसको कैद करना।

(४३) चन्द्र द्वारका सम्यो—चंद बरदाई का द्वारका जाना, मार्ग में महा समरसिंह से चित्तौड़ पर मिलना।

(४४) भीम बध सम्यो—पृथ्वीराज का गुजरात पर चढ़ाई कर वहाँ के राजा भीमदेव को मारकर अपने पिता का बैर लेना और भीम के पुत्र कचरा राय को गद्दी बिठाना।

(४५) विनय मंगल प्रस्ताव—संयोगिता की उत्पत्ति व पूर्व जन्म की कथा आदि।

(४६) विनय—कन्नोज के राजा जयचन्द की पुत्री संयोगिता का पृथ्वीराज के प्रेम में पड़ना।

(४७) शुकवर्णन— संयोगिता का वृत्तान्त।

(४८) बालुक राय सम्यो ! राजा जयचन्द का राजसूय यज्ञ आरम्भ कर उसमें पृथ्वीराज को बुलाना, यज्ञ में न आकर पृथ्वीराज का जयचन्द के भाई बालुकराय को युद्ध में मारकर यज्ञ विध्वंस करना।

(४९) पंग यज्ञ विध्वंस नाम प्रस्ताव।

(५०) संयोगिता नेम प्रस्ताव।

(५१) हांसी युद्ध— पृथ्वीराज का सुलतान गोरी के साथ हांसी के मुकाम पर युद्ध।

(५२) पज्जून महुवा नाम प्रस्ताव — महुवा में राव पज्जून का सुलतान से युद्ध।

(५३) पज्जून पतसाह युद्ध।

(५४) सामंत पंग जुद्ध प्रस्ताव।

(५५) समर पंग युद्ध—चित्तौड़ पर जयचंद की चढ़ाई और युद्ध में हारना।

(५६) कैमास वध—कैमास मंत्री का कर्णाटकी के साथ प्रीति करना और पृथ्वीराज के हाथ से मारा जाना।

(५७) दुर्गा केदार सम्यो—दुर्गा केदार भाट से पृथ्वीराज के भाट चन्द-बरदाई का विद्या वाद।

(५८) दिल्ली वर्णन—

(५९) जंगम कथा—एक जंगम का संयोगिता की अवस्था पृथ्वीराज पर प्रकट करना।

(६०) षट् ऋतु वर्णन

(६१) कनवज पर्व—पृथ्वीराज का गुप्त रीति से कन्नोज जाना और संयोगिता को हर लाना, पंगुराजा की सेना से युद्ध और ६४ सामन्तों का मारा जाना।

(६२) आखेटकश्राप—आखेट करते समय एक ऋषि का पृथ्वीराज को श्राप देना।

(६३) सुख चरित्र—संयोगिता के साथ पृथ्वीराज का भोग विलास में लीन होना।

(६४) धीर प्रस्ताव—पृथ्वीराज के सामन्त धीर पुण्डीर का सुलतान के साथ युद्ध कर उसको पकड़ना।

(६५-६६) बड़ी लड़ाई—सुलतान शहाबुद्दीन गोरी के साथ पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध और पृथ्वीराज का कैद होना आदि।

(६७) बाण बेध—चन्द का गजनी पहुँच कर पृथ्वीराज से मिलना और पृथ्वीराज का सुलतान को तीर से मारना और फिर चन्द और पृथ्वीराज का आत्मघात करना।

(६८) रैणसी प्रस्ताव—पृथ्वीराज के पुत्र रैणसी का सुलतान के साथ युद्ध कर मारा जाना।

इन प्रस्तावों में से पौराणिक भाग को त्याग कर निम्न लिखित ऐतिहासिक वृत्तों की परीक्षा करेंगे:—

(१) चाहुवानों की उत्पत्ति।

(२) चाहुवानों की वंशावली।

(३) बीसलदेव का गुजरात के राजा बालुकाराय से युद्ध।

(४) बीसलदेव से सोमेश्वर तक हुए राजा और उनके संवत्।

(५) अनंगपाल तँवर का दिल्ली बसाना, उसकी पुत्री कमला देवी के साथ सोमेश्वर का विवाह और पृथ्वीराज का दिल्ली, अपने नाना के गोद, जाना।

(६) पृथ्वीराज का जन्म संवत्।

(७) सोमेश्वर की पुत्री पृथा कँवरी के साथ चित्तौड़ के रावल समरसिंह का विवाह आदि।

(८) आबू के प्रमार राजा सलख की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह।

(९) सोमेश्वर का सोलंकी राजा भीमदेव के हाथ से मारा जाना और पृथ्वीराज का भीमदेव को बधकर उसके पुत्र कचरा राय को गद्दी बिठाना।

(१०) जयपुर के महाराज पज्जवन का राज समय।

(११) देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह।

(१२) रणथम्भोर के यादवराजा की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह।

(१३) सुलतानगोरी का पृथ्वीराज को पकड़ कर गजनी ले जाना और पृथ्वीराज के तीर से सुलतान का मारा जाना आदि।

(१४) पृथ्वीराज के पुत्र रैणसी का सुलतान से युद्ध।

(१५) महोबा के चन्देल राजा से पृथ्वीराज का युद्ध।

(१) चाहुवानों की उत्पत्तिः—

अब प्रथम चाहुवानों की उत्पत्ति के विषय में विचार करते हैं। रासे में इनके मूल पुरुष चाहमान का अर्बुद गिरी पर वसिष्ठ ऋषि के यज्ञ करने से अग्नि-कुण्ड में से उत्पन्न होना लिखा है तदनुसार चहुवान अपने तई अग्नि वंशी बतलाते हैं परन्तु जब हम इसी विषय पर मिलते हुए अन्य प्रमाणों पर दृष्टि देते हैं तो रासे के कथन में शङ्का उत्पन्न हुए बिना रहती नहीं जैसे कि हम्मीर महाकाव्य में लिखा है (?) :—

एक समय ब्रह्मा यज्ञ करने के लिये पुण्य भूमि की खोज में फिरते थे उनके हाथ में से कमल का पुष्प एक स्थान पर गिर पड़ा, उस स्थान को पवित्र समझ कर ब्रह्मा ने वहीं यज्ञ करना आरम्भ किया परन्तु राक्षस गण आकर यज्ञ में विघ्न करने लगे तब ब्रह्माने सूर्य का आह्वान किया और सूर्य मण्डल से एक दिव्य पुरुष शस्त्र धारण किये उतरा जिसकी रक्षा में यज्ञ निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हुआ। वही पुरुष चाहमान नाम से चहुवानों के वंश का मूल पुरुष हुआ और जहाँ यज्ञ किया था वह स्थान पुष्कर तीर्थ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ।

आबू पहाड़ पर अचलेश्वर महादेव के मंदिर में घुसते हुए दाहिनी तरफ एक प्रशस्ति (२) सम्वत् १३७७ वि० की लगी है जिसमें चहुवान वंश की नाड़ोल शाखा की वंशावली दी है (३) इस प्रशस्ति में चहुआनों की उत्पत्ति विषय में जो श्लोक लिखे हैं वे हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"क्षिनौ प्रशान्तौ किल सूर्य सोम,
वंशौ विशालौ प्रवरौ हि पूर्वौ।"
"तयोर्विनाशे भगवान् श्री वच्छ,
स्वचिन्तयद्दोष भयान्महात्मा॥"
"तं श्चिन्तया चन्द्रम सस्सु योगा—
द्ध्यानान्महर्षेरभवन्मुविस्सु"
...................दिशासु सर्वासु,
दैत्यान्प्रविलोक्य वेगात॥"
"निजायुधं दैत्यवरान्निहत्य
संतोषयत क्रोध युतं तु वच्छं"
वच्छयास्तदारा धन तत पराश्च,

चन्द्रस्य .... चन्द्र वंश्याः ॥"
"एतेतदारभ्य विशाल वंशाः,
ख्याताः क्षितावत्र पवित्र गोत्राः ।"
श्रागाय त्रासात्रपत्तात्र चित्रा,
त्तात्रं निधि विधि वशात प्रवर्तति चित्रा ।"

[भावार्थ] जब पृथ्वी पर सूर्य और चंद्र वंश अस्त हुए तो श्री वत्स ऋषि ने दोष भय से ध्यान किया। ऋषि के ध्यान और चन्द्रमा के योग से एक पुरुष उत्पन्न हुआ जिसने अपने चारों तरफ दैत्यों को देखा, उनका अपने शस्त्र द्वारा नाशकर उसने श्रीवत्स को शान्त किया। यह पुरुष चन्द्र के योग से उत्पन्न हुआ था। इसीसे चंद्रवंशी कहलाया।

ऐसे ही बिजोलिया की प्रशस्ति में भी (जिसका वर्णन आगे होगा) चहुवानों को श्री वत्स विप्र के गोत्र का होना लिखा है। कर्नल टाड साहब चाहुवानों का गोत्रोच्चार्य ऐसे लिखते हैं:—

"सामवेद, सोमवंश, माध्यन्दिनी शाखा, वत्स गोत्र, पञ्च प्रवर आदि,"[1]

जनरल कन्हिंगम साहब लिखते हैं कि मिस्टर फैल साहब को मिले हुए कन्नौज के राजा जयचन्द के एक दान पत्र सन् ११७७ ई० (सं०१२३४ वि०) में लिखा है कि राजा ने राव राष्ट्रधर वर्मा को कुछ पृथ्वी दी। इस राव का वत्स गोत्र, पञ्चप्रवर—भार्गव, च्यवन, अपनयन औरव और जमदग्नि ऋषि थे। इस छन्द से सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज के समय तक चौहान अपने को अग्नि कुली होना नहीं मानते थे परन्तु जमदग्नि वत्सद्वारा अपने को महर्षि भृगु की सन्तान बतलाते थे[2]।

---

१. देखो—टाड राजस्थान पहिला एडीशन जिल्द २ पृष्ठ ४४१.

२. देखो—आर्कियालोजिकल् सर्वे की रिपोर्ट जिल्द २ पृष्ठ २५३।

★ यह पुस्तक स० १५०० वि० के लगभग जयचन्द्र सूरी के शिष्य नयचन्द्र सूरी ने वीरम तँवर की सभा में लिखा था जिसमें रणथम्भोर के चाहुवान राजा हम्मीर का वर्णन है।

★ इस प्रशस्ति की नकल पं० गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा ने की है।

★ इसमें लिखा है कि महाराज लुएढा ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया जो माणिक्यराज के पुत्र लक्ष्मण से, जिसने नाडोल बसाई—दसवीं पीढ़ी में हुआ था।

सोलहवीं शताब्दी के पूर्व के जितने शिला लेखादि आज तक चहुवान वंश के पाये गये उनमें कहीं यह लिखा हुआ नहीं मिलता कि इस वंश का मूलपुरुष अग्नि कुंड में से उत्पन्न हुआ था। सोलहवीं शताब्दी के पीछे के लेखों में रासे से मिलता हुआ वर्णन अलबत्ता पाया जाता है। इसके अतिरिक्त रासे के कर्ता ने प्रतिहार चालुक्य और प्रमार चारों का एक ही समय में यज्ञ कुण्ड से उत्पन्न होना लिखा है परन्तु चालुक्यों के सैंकड़ों लेख दान पत्रादि छठी शताब्दी से चौदहवीं तक के मिले हैं। उनमें कहीं वर्णन तक नहीं कि चालुक्य अग्नि वंशी हैं। वे अपनी उत्पत्ति हारीत ऋषि से मानते हैं[1] ऐसे ही प्रतिहार हरिश्चन्द्र ब्राह्मण को अपना मूल पुरुष लिखते हैं[2] अतएव रासे का यह कथन भी अप्रामाणिक ही ठहरता है।

अब यदि यह जानना चाहें कि रासे के कर्ता ने चाहुवानों को अग्नि वंशी कैसे ठहराया? तो रासे ही में लिखे हुए प्रमारों के वर्णन पर इतना कह सकते हैं कि अग्नि कुली प्रमार की प्रसिद्ध कथा पर शायद कवि ने अपनी यह कथा घड़न्त करली हो। प्रमारों के प्राचीन पुस्तक शिलालेखादि में लिखा है कि इस वंश का मूल पुरुष प्रमार अग्नि कुण्ड में से उत्पन्न हुआ था जैसे कि—परिमिल कविकृत

---

१. यद्यपि इस कथन को सत्य ठहराने वाले चालुक्यों के अनेक लेख दान पत्रादि आज तक उपलब्ध हो चुके हैं तथापि हम प्रमाण के लिये केवल एक ही दान पत्र का वर्णन करना काफी समझते हैं जो चालुक्य राजा राजराज के समय का सं० १११० वि० का है। उसमें लिखा है कि चालुक्य चंद्र वंशी हैं। देखो एपि ग्राफिका इण्डिका जिल्द ४ पृष्ठ ३००। इसके अतिरिक्त कश्मीर का प्रसिद्ध पण्डित विल्हण, जिसने चालुक्य राजा विक्रम (राजराज) के समय में 'विक्रमांक देव चरित' नामी पुस्तक लिखी, उसमें भी चालुक्यों की उत्पत्ति का वर्णन यों किया है कि एक समय इन्द्र ने असुरों से दुःखी हो ब्रह्मा के पास आकर सहायता चाही। ब्रह्माने अपनी अंजली की ओर देखा और उसमें से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ क्योंकि यह चुलुक से उत्पन्न हुआ था, इसी से इसका नाम चालुक्य रक्खा गया। छठी शताब्दी से लेकर चवदवीं तक के कितने ही दान पत्र चंद्र वंशी लिखा है।

२. देखो—पृथ्वीराज चरित्र के कथा भाग पृष्ठ ३ की नोट।

भी कहते हैं[१] क्या आश्चर्य कि समय पाकर आनल का अनल बन गया हो और क्योंकि अनल को अग्नि वंशी मान लिया हो।

उक्त वर्णन से यह बात तो ध्यान में आई होगी कि चहुवान चन्द्र वंशी हैं, अग्नि वंशी नहीं, परन्तु चाहमान नाम से [जिसकी सन्तान चहुवान कहलाये] की उत्पत्ति हुई ? इस प्रश्न का उत्तर यद्यपि निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता। यथापि इतना कह सकते हैं कि छठी शताब्दी के पीछे यदि उसका उत्पत्ति काल माना जावे तो अनुचित नहीं, कारण कि महाभारत रामायणादि अन्य प्राचीन पुस्तकों में सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रियों ही का वर्णन मिलता है व इन पुस्तकों के बहुत काल पीछे बने हुए पुराण ग्रन्थों में भी इन चत्रकुली क्षत्रियों का वर्णन नहीं पाया जाता अतएव सिद्ध है कि इनकी उत्पत्ति पुराण रचे जाने के बाद हुई।[२]

---

(१) रासे के अनुसार यह राजा चहुवानों की राजधानी अजमेर को पीछी बसाने वाला हुआ। जिसको ढुंढा दानव ने उजाड़ दिया था और पृथ्वीराज विजय नामी पुस्तक के लेख पर भी यह अनुमान हो सकता है कि अजमेर का बसना आनल देव (अरुणोराज) ही के समय में प्रारम्भ हुआ हो परन्तु उसके पुत्र अजयराज के नामपर उस नगर का नाम अजयमेरु या अजमेर पड़ा क्योंकि पर्वत पर दुर्ग इत्यादि के बनने और नगर पूरा बस जाने का कार्य इसी राजा के समय में सम्पूर्ण हुआ था। यद्यपि इस पुस्तक पर पंडित जौनराज की की हुई सं० १४५०—७५ वि० की टिप्पणी से यही पाया जाता है कि अरुणो राज के पुत्र अजय राज होने अजमेर बसाया परन्तु पुस्तक में उस स्थल पर मूलपाठ में "एवं विधात्रजय मेरुगिरौ प्रतिष्ठां" ऐसा होने से यह अनुमान करना अन्यथा नहीं कि इस अजयराज ने पर्वत पर दुर्ग बनाया हो। इसके वास्ते अजमेर पर दिया हुआ डाक्टर ब्हुलर का लेख इन्डियन एन्टीक्वेरी जिल्द २६ जून सं० १८९७ के पृष्ठ १६२ में देखो।

२. पंडित मोहनलालजी विष्णुलालजी पंड्या ने अपने छपाये हुए रासे के आदि पर्व पृष्ठ ५१ की टिप्पणी में कालिंदी का प्रकाशनामी पुस्तक में पुराणोक्त एक श्लोक होना लिखा है, जिसके आधार पर वे पुराणों में चत्रकुली क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन रासे के अनुसार होना मानते हैं। परन्तु उक्त पंडितजी के लेखानुसार कालिंदी का प्रकाशनामी पुस्तक का यह श्लोक है, पुराण का नहीं। क्योंकि किसी पुराण का नाम उन्होने वहाँ नहीं लिखा और

राज शेखर कृत चतुर्विंशति प्रबन्ध की प्रति के अन्त में दी हुई चाहुवानों की वंशावली में जो वासुदेव से शुरु होती है वासुदेव का सम्वत् ६०८ लिखा है (शायद यह शक सम्वत् हो)। वासुदेव इस वंश के मूल पुरुष चाहमान से दूसरा ही राजा था। शेखावाटी में हर्षनाथ के मंदिर की प्रशस्ति सं० १०३० वि० की सिंहराज के समय की मिली है। इस सिंहराज के पहले १२ राजा इस वंश में हुए यदि इन प्रत्येक का राज्य समय औसत हिसाब से २५ वर्ष का माना जावे तो वही ऊपर लिखा सं० ६०८ (शक) वासुदेव के राज समय का आन मिलता है।

इस वंश की जितनी वंशावलियां मिली हैं (जिनका वर्णन आगे करेंगे) उनका मिलान कर देखा जावे तो मालूम होगा कि चाहमान से लेकर पृथ्वीराज तक इस वंश में करीब ३० राजा हुए। यदि इन प्रत्येक का समय बीस वर्ष का माना जावे (पिछले राजाओं का राज्य समय कम होने से जैसे कि विग्रह राज नं० २ से लेकर सोमेश्वर के गद्दी बैठने तक १८४ वर्ष में, जो आगे बतलाया जावेगा, बारह राजा हो गये) तो करीब २ वही उपरोक्त समय चाहमान की उत्पत्ति का ठहरता है।

कर्नल टाड साहब लिखते हैं कि सातवीं शताब्दी के पीछे चहुवानों का इतिहास अन्धकार में से निकलता है। इसी सन के पूर्व ही से तातारी (सीथियन्स) कौमों ने मध्य एशिया से आकर हिन्दुस्थान के उत्तरी प्रान्त में अपना राज जमा लिया था शायद उन्हीं कोमों में से बहुत से क्षत्री वंशों का प्रादुर्भाव हुआ हो क्योंकि उन कोमों के प्राचीन रीति रिवाज क्षत्रियों से बहुत कुछ मिलते हुए थे।

कई विद्वानों का यह भी अनुमान है कि बौद्ध मत के सारे भारतवर्ष में फैल जाने से जब वैदिक मतावलम्बी क्षत्रिय राजा यहाँ कम रहे तो ब्राह्मणों ने बौद्धों का

दूसरे श्लोक में जो "याज्ञिक" शब्द है उसका अर्थ यज्ञ से उत्पन्न हुए, ऐसा नहीं बन सकता। किन्तु यज्ञ करने वाले का होता है जिसके क्षत्री मात्र अधिकारी हैं। अलबत्ता सन् १,८९७ ई० के बम्बई के छपे हुए भविष्य पुराण के प्रति सर्ग पर्व में चहुवानों की उत्पत्ति रासे के अनुसार दी है परन्तु उक्त सर्ग कर्त्ता ने वह वृत्तान्त रासे से ही लिया है ऐसा उसी पुस्तक से प्रतीत होता है। उक्त सर्ग में दिये हुए ऐतिहासिक वृत्तान्त की सत्यता व उस सर्ग के बनने का समय एक बार उस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ने से पाठकगण स्वयं जान सकेंगे।

नाश करने के लिये अन्य देश मे आये हुए लोगों में से कितनों ही को संस्कार द्वारा द्विजन्मा बनाया था।

(८) अब चहुवानों की वंशावली का वर्णन करते हैं:—

(इसमें फेरफार होने का वर्णन हमने इस पुस्तक के कथा भाग में कर दिया है) पृथ्वीराज रासे में दी हुई वंशावली पृथ्वीराज तक:—

चाहमान	महासिंह	वालनराय
सामन्तदेव	चन्द्रगुप्त	प्रथमराय
महदेव	प्रतापसिंह	अंगराज
साहन्त	मोहसिंह	धर्माधिराज
अजयसिंह	सेनराय	आमलदेव
वीरसिंह	सम्प्रतराय	सारंगदेव
विन्दुसुर	वीरसिंह	आनलदेव
उदारहार	विबुधसिंह	जयसिंहदेव
अशोक श्री	चन्द्रराय	आनन्दमेव
वैरिसिंह	कृष्णराज	सोमेश्वर
वीरसिंह	हरहरराय	पृथ्वीराज
माणिकराव		रेणसी

बूंदी नगर निवासी कवि सूरजमल्ल कृत वंशभास्कर में:—

"कलियुग के एक हजार वर्ष के लगभग बीतने पर बौद्धों का मत भारतवर्ष में बहुत फैल गया था, वेद के मानने वालों की संख्या घटी और असुर गणों की वृद्धि हुई इसलिये बौद्धों और दैत्यों का नाश करने ऋषियों ने आबू पहाड़ पर यज्ञ कर अग्नि कुंड में से ४ क्षत्री उत्पन्न किये (१) प्रतिहार या प्रतिहार (२) चालुक्य या सोलंखी (३) प्रमार या पंवार (४) चाहुवाण या चाहमान।

चहुवाण कीवंशावली:—

(१) चाहमान—(चतुर्बाहुमान, चौहाण, चव्हाण, चुहाण, चतुर्भुज, चंडासि और चहुवाण भी कहते हैं) वत्सगोत्र, सामवेद, कौथुमीशाखा, पञ्चप्रवर,

और गोमिल सूत्र। देवी के वरदान से असुरों को मारा, वशिष्ठ ऋषि की सहायता से बौद्धों का नाश कर दिल्ली ली, मथुरा के यादवों को जीता, पुष्कर के राजा विजयाश्व की पुत्री से विवाह किया और कश्मीर फतह की।

(२) सामन्तदेव—प्रचण्ड भी कहते हैं।

(३) महादेव—[परभंजन] मारवाड़ के राजा देवराज को जीता।

(४) कुबेर—या महन्तदेव।

(५) बिन्दुमार—या मंत्र सहाय या मंत्रजय।

(६) सुधन्वा—(उदारहार) मोरां के राजा प्रथुसोलंखी ने दिल्ली घेरली उसमें बिन्दुसार मारा गया और सद्यो धारण कामदार ने सुधन्वा को बालक समझ प्रथु से सन्धि कर ली परन्तु फिर सुधन्वा ने प्रथु को जय कर उसकी पुत्री से विवाह किया।

(७) वीर धन्ना या अशोक. (८) जय धन्वा—या शंका विडार
(९) वीरसिंह— या विजय (१०) वरसिंह—या मारुत
(११) वीरदण्ड (१२) अरिमंत्र—या जयंत
(१३) माणिक्यराज—या शूर (१४) पुष्कर—या विजयपाल
(१५) अरमंजस (१६) प्रेमपूर
(१७) अनुराज (१८) मानसिंह
(१९) हनुमान—या धर्मपाल (२०) चित्र सेन
(२१) शम्भु (२२) महासेन—या ऋद्धीश
(२३) सुरथ (२४) रुद्रदत्त—या कर्णपाल
(२५) हेमरथ—या रोमपाल (२६) चित्राङ्गद
(२७) चन्द्रसेन (२८) वाल्हीक—या वत्सराज
(२९) धृष्टद्युम्न—या वरुण (३०) उत्तम
(३१) सुनीक (३२) सुबाहु—या मोहन,

इसके १४५ राणियां थीं। शिकार में मथुरा के यादव-वंशी राजा व कुरुवंशी राजा ने छल से मारा।

(३३) सुरथ (३४) भरथ—या मदसेन

(३५) सत्यकी (३६) शत्रुजित या केसरदेव

(३७) विक्रम (३८) महदेव—इससे कुरुवंशी राजा ने दिल्ली छीन ली अपने मामा आरघाट की सहायता से सहदेव ने सुनभ राजा को मार कर्णाटि देश लिया और वहां सिहकावती नाम नगर को राजधानी बनाया, गुजरात के राजा की सहायता से पौण्ड्र देश जीता।

(३९) वीरदेव—या भीमसेन (४०) वसुदेव

(४१) वासुदेव (४२) रणधीर

(४३) शत्रुघ्न—अयोध्या के राजा की सहायता में युद्ध में मारा गया।

(४४) सुमेरु—या शालिवाहन (४५) कृतवर्मा

(४६) सु वर्मा (४७) दिव्य वर्मा

(४८) यौवनाश्व (४९) हयेश्व

(५०) अजयपाल—बंगाल, कामरूप आदि देश जीते, रावण विड़ाल और विडंब नाम के असुरों को मारा, अजमेर बसाया। इसके १३ पुत्र हुए परन्तु रावण के बेटे ने १२ पुत्रों को बचपन ही में मार डाला।

(५१) भट दलन—इसके तीन पुत्र हुए लोहराज, निम्भराज और अनंगपाल। दो पुत्र बालापन में मारे गये जिनको चहुवाण पितृ मानते हैं।

(५२) लोहराज—इसके २१ पुत्र हुए जिनमें से बीस मारे गये।

(५३) भीम

(५४) गोगा—जटवक नामी असुर को मारा, इसके नाना देवजी के कोई पुत्र न था, एक पुत्री से तो गोगा और दूसरी जो गौड़ भवदेव को ब्याही थी उससे उर्जन सुर्जन दो दौहित्र हुए। इन तीनों दोहित्रों में से देवजी ने गोगा को अपने नगर भोजकट का राज दिया। उर्जन सुर्जन ने गोगा से आधा राज मांगा परन्तु गोगा ने न दिया तो उन्होंने ईरान के पादशाह अबूफर को पराजित कर हरियाने के पास उसको मारा। गोगा को नाग का अवतार मानते हैं। और आज तक लोग उसकी पूजा करते हैं और मुसलमान उसे जाहिर पीर के नाम से पूजते हैं।

(५५) शुभकर्ण (५६) उदयकर्ण

(५७) जशकर्ण (५८) हरिकर्ण

(५६) कीर्तीश (६०) बालकृष्ण

(६१) हरिकृष्ण (६२) रामकृष्ण

(६३) बलदेव (६४) हरदेव

(६५) भीम—मगध देश के राजा के साथ लड़ाई में मारा गया।

(६६) महदेव। (६७) रामदेव।

(६८) वसुदेव—विदर्भ देश पीछा लिया परन्तु फिर मगध के राजा के हाथ से मारा गया।

(६६) श्यामदेव। (७०) हरिदास।

(७१) महीधर।

(७२) वामदेव—लाहौर के राजा मदनसेन के सहायतार्थ युद्ध में मारा गया।

(७३) श्रीधर। (७४) गंगाधर।

(७५) महादेव—अश्वमेध करना चाहा परन्तु मगध के राजा ने घोड़ा पकड़ लिया। महादेव उसके हाथ से युद्ध में मारा गया।

(७६) शार्ङ्गधर। (७७) मानसिंह।

(७८) चक्रधर। (७६) शत्रुजित।

(८०) हलधर। (८१) महाधनु।

(८२) देवदत्त। (८३) दामोदर।

(८४) काशीनाथ—कुन्तलदेश के श्रीधर को मारकर उसकी पुत्री अपने पुत्र लीलाधर के वास्ते ले आया।

(८५) लीलाधर—इसका साला मदन सेन—कुन्तलदेश का राजा अपने पिता का बैर लेने को इस पर चढ़ आया युद्ध में लीलाधर और मदनसेन मारे गये।

(८६) धरणीधर। (८७) रमणेश।

(८८) भगवद्दास।

(८६) कृष्णदास—भगवद्दास और ये दोनों कुन्तलदेश के राजा के साथ युद्ध में मारे गये।

(९०) शिवदास

(९१) हरिपूर्ण—कुन्तल पर चढ़ाई की वहीं पर मारा गया।

(९२) देवीदास

(९३) कर्मचन्द नं० ९२ सहित कुन्तल देश के राजा से युद्ध में मारा गया।

(९४) रामदास—कुन्तल के राजा दृढ़ सेन के पुत्र हरिसेन के हाथ से मारा गया।

(९५) महानन्द—इसकी माता इसको लेकर प्रथमतो अपने पिता विदर्भ के राजा भीम के यहां गई परन्तु जब हरिसेन ने वहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा तो राणी अपने पुत्र सहित टोड़े में तँवर राजा के यहाँ आ रही वहाँ के राजा ने महानन्द को अपनी पुत्री व्याह दी फिर यह सेना इकट्ठी कर सांभर पर चढ़ा और वहाँ के राजा नरवाहन व उसके पुत्र जयपाल को मार कर सांभर का राज्य अपने स्वाधीन किया महानन्द के वंशज सम्भरी चहुवाण कहलाये।

(९६) विष्णुदास (९७) महाराम

(९८) रेवादास (९९) अमरसिंह

(१००) गंगादास (१०१) मानसिंह

(१०२) विश्वम्भर (१०३) मथुरादास

(१०४) द्वारकादास

(१०५) माधवदास—इसने देताल गढ़ जीता, इसके दस पुत्र थे।

(१०६) वीरभद्र (१०७) कमलनयन

(१०८) गोपाल

(१०९) गोविन्ददास

(११०) माणिक्य राज—(विश्वपति भी कहते हैं) इसके दो पुत्र थे हनुमान और सुग्रीव, हनुमान बाहर चला गया और पटने के सूर्यवंशी राजा चढुलजी को मारकर वह राज्य अपने स्वाधीन किया उसी के वंशज पूर्विये चौहाण कहलाये जिनकी ३१ शाखा है—

(१११) सुग्रीव।	(११२) अंगद।
(११३) केसरी।	(११४) जयन्त।
(११५) जगदीस।	(११६) जयराम।
(११७) बिजयराम।	(११८) कृष्ण।
(११९) जितयुद्ध।	(१२०) गोवर्धन।
(१२१) मोहन।	(१२२) गिरिधर।
(१२३) जयराम [उग्रम]	(१२४) भरत।
(१२५) अर्जुन	(१२६) शत्रुजित
(१२७) सोमदत्त	(१२८) दुःस्वन्त
(१२९) भीम	(१३०) लक्ष्मण
(१३१) परशुराम	(१३२) रघुराम—शराब बहुत पीता

था, मारोठ के पड़िहार राजा मंगल ने सांभर छीन लिया और रघुराम बुरहानपुर में अपने श्वसुर के घर शराब ही से मरा।

(१३३) समरसिंह—सांभर लेने का उद्योग किया परिहार मंगल के पुत्र बाहर से युद्ध हुआ दोनों मारे गये।

(१३४) माणिक्यराज—इसने अर्जुन के पुत्र चक्रधर की सहायता से सांभर का राज पीछा लिया और परिहार नाहर के ग्यारह पुत्रों को मारा। कांगड़े के राजा जल्हण की पुत्री से विवाह किया और श्वसुर की सहायता में लाहोर के राजा केदार से युद्ध किया और उससे कांगड़े के पर्गने पीछे छुड़ा लिये। दूसरी लड़ाई में लाहोर के राजा के हाथ से मारा गया, इसके ग्यारह पुत्र थे बड़ा मुहुकर्ण तो सांभर की गद्दी पर बैठा (२) लालसिंह ने मद्र देश का राज लिया जिसकी सन्तान मादरेचे चहुआण कहलाई (३) हरिसह ने सिंध देश में राज किया, इसके पुत्र धुन्धट की सन्तान धुन्धेड़िये चहुवाण कहलाई (४) शार्दूल— इसके दो पुत्र धनजी और टंक, धनजीने पञ्जाब में राज किया इसकी सन्तान टांक चहुवाण हुए (५) पूर्णराज ने भदावर का राज लिया इसकी सन्तान भदोरिया कहलाई (६) मौक्तिक राज ने जालोर लिया जिसका दूसरा नाम सोनगिर है। इसकी सन्तान सोनगरे चहुवान कहलाई (७) निर्वाण इसके वंशज निर्वाण चहुवाण हुए। इसी वंश के

देवजी नामक चहुवाण ने आबू पर राज्य किया और सिरोही बसाई। इसके वंशज देवड़े चहुवाण कहलाये (८) कृष्ण राज ने पाण्ड्य देश में राज्य किया उसकी सन्तान पाण्डिया चहुवाण हुई। (९) लखनराज गुजरात का राजा हुआ जिससे गुजराती चहुवाण निकले (१०) प्रवलराज ने बगसर में राज किया जिसकी सन्तान के बगसरिये चहुवाण और (११) खिच्चीराज जिसके बंसज खीची चहुवाण हुए।

(१३५) मुहुःकर्मा

(१३६) रामचन्द्र—इसके १२ पुत्र हुए बड़ा संग्रामसिंह तो सांभर की गादी पर बैठा और शेष ११ से ग्यारह शाखा निकलीं:— (१) बालेश (२) बंगड़िये (३) गोलवाल (४) पुष्ट वाल (५) मलयेचे (६) चाहोड़ (७) हरीणे (८) माल्हण (९) मुकलार (१०) चक्रडाणे (११) शूवटे।

(१३७) संग्रामसिंह (१३८) शिवदत्त

(१३९) भोगदत्त—इसके छोटे पुत्र चित्रक के वंशज चीते चहुवाण कहलाये।

(१४०) शिवदत्त

(१४१) रुद्रदत्त—इसके सात पुत्र, बड़ा इसरजी तो सांभर का राजा हुआ शेष ६ से छः शाखा निकली:—१ भैरवे २ जपरवे ३ अभावे ४ वारोर ५ बघनेचे ६ केशर खेले।

(१४२) ईशरजी—इसके ८ पुत्र, बड़ा उमादत्त तो सांभर रहा बाकी सात से सात शाखा निकलीं १ मोरचे २ पच्चिया ३ सांचोर ४ बहोले ५ गयले ६ तिलवाड़े ७ चीबे।

(१४३) उमादत्त

(१४४) चतुरजी—नं० १४३ के पुत्रों में से चित्रांगजी नाम मोरी ने चित्तौड़ का कीला बनवाया।

(१४५) सोमेश्वर—इसके दो पुत्र भरत और उरथ।

(१४६) भरत—इसके वंश में हमीर चहुवाण तक राज रहा जिसको दिल्ली के पादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने मारा था। नीमराणे के चहुवाण इसी वंश में हैं और बूंदी वाले उरथ के वंश के हैं।

(१४७) युद्ध प्र

(१४८) महिसिंह

(१४९) सिंहजी

(१५०) चन्द्रगुप्त—इसके दो पुत्र प्रतापसिंह और आरत्न, पृथ्वीराज के सामन्तों में से लंगरीराय और अन्नाताई इसी आरत्न के वंश में से थे—

(१५१) प्रतापसिंह। (१५२) सिंहदेव।

(१५३) सिंहवर। (१५४) रत्नसिंह।

(१५५) मोहनरूप। (१५६) सेनराज।

(१५७) सम्प्रतिराज (१५८) नगहस्त।

(१५९) स्थूलानन्द। (१६०) लोहधार।

(१६१) धर्मसार। (१६२) वैरिसिंह।

(१६३) विबुधसिंह। (१६४) योगशूर।

(१६५) चन्द्रराज सं० सं० ८७५ में अजमेर राजधानी की।

(१६६) कृष्णराज। (१६७) हरिराज।

(१६८) विल्हणराज—इसके पृथ्वीराज और अनुराज दो पुत्र थे।

(१६९) पृथ्वीराज (डिड्र) इसके वंशज डेडरे चौहाण कहलाये।

(१७०) धर्माधिराज।

(१७१) बीसलदेव—सोलंखी राजा बालुकराय को जीता और उससे जालोर सोजन लिया। एक करोड़ रुपया दण्ड ले पट्टन के पास सं० ९३६ में गुजरात में बीसलपुर बसाया।

(१७२) सारंगदेव।

(१७३) आना—इसको विग्रहराज भी कहते हैं अजमेर में आनासागर तालाब बनवाया।

(१७४) जयसिंह।

(१७५) आनन्द मेव—इसके दो पुत्र सोमेश्वर और कृष्ण या कन्ह।

(१७६) सोमेश्वर—दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री ब्याही।

(१७७) पृथ्वीराज सं०१११५ में जन्मा (सर्व वृत्तान्त रासे से मिलता है)।[1]

---

१. हमको तो यह वंशावली और इसमें लिखा हुआ वृत्तान्त शुद्ध नहीं जान पड़ता क्योंकि प्रथम तो पृथ्वीराज रासे व अन्यान्य वंशावलियों में चाहमान से लेकर पृथ्वीराज तक तीस चालीस नाम दिये हैं और इसमें नम्बर १७७ तक पहुँचा दिया जिनमें से आदि के १३ और अन्त के २० बीस नाम तो रासे से मिलते है और बीच में मनमानी कल्पना की है।

दूसरा—यह लेख कि कलियुग के एक हजार वर्ष बीतने पर बौद्धों को प्राबल्यता देखकर वसिष्ठ ऋषि ने अग्नि कुण्ड से चत्रकुली क्षत्री उत्पन्न किये। प्रमाण भूत नहीं, क्योंकि कलियुग को प्रवृत्त हुए ५००० वर्ष बीतने हैं जिसमें से १००० निकाल लें तो इन चवकुली क्षत्रियों का उत्पत्ति काल ४००० वर्ष मे ठहरता है [इसके लिये देखा ! भूमिका के आदि में उत्पत्ति का वर्णन] परन्तु चार हजार वर्ष पहले बौद्ध मत भारतवर्ष में प्रबल हुआ नहीं। बुद्ध को हुए—जिससे बौद्ध मत प्रचलित हुआ—केवल २५०० वर्ष के लगभग हुए हैं इसके पूर्व यह धर्म कुछ यों ही रूपान्तर में स्थित हो परन्तु प्रबल तो महाराज अशोक के समय मे हुआ जिसको करीब २१५० वर्ष बीतने हैं।

तीसरा—इसमें गोगा चहुवाण को चाहमान से चौपनवीं पुश्त में होना लिखा है। ग्रन्थ कर्ता के माने हुए समय के अनुसार प्रत्येक राजा का औसत काल करीब २३ साल का ठहरता है तदनुसार गोगा का होना आज से २७१० वर्ष के पूर्व सिद्ध होता है परन्तु कर्नल टाडसाहब उसको सुल्तान महमूद गजनवी के समकालीन राजा बीसलदेव चौहाण के समय में होना लिखते हैं अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी में, फिर ग्रन्थ कर्ता लिखता है कि गोगा ने ईरान के पादशाह अबूफर को शिकस्त दी परन्तु ग्रन्थ कर्ता के माने हुए समय में अर्थात् सिकन्दर आज़म से भी ४०० वर्ष पूर्व इरान में आर्यों का राज्य था, मुसलमानों का तो उस वक्त नाम निशान भी न था। ईरान की तवारीख से मालूम होता है कि सन ६५१—५२ ई० में ईरान के ससानियन पादशाह यजदर्द को अरबों ने खलीफा उमर की सर्दारी में पराजित कर मारा और तभी से मुसलमानों का राज्य ईरान में हुआ, इसके पीछे भी अबूफर नाम का कोई पादशाह ईरान में न हुआ। पर जिस वक्त ईरान मे मुसलमान ही न थे फिर उनका वहाँ से हिन्दुस्तान में आना कब सम्भव हो सकता है (अबूफर यह नाम मुसलमानी है)।

टाड राजस्थान से:—

कर्नल टाड़ साहब लिखते हैं कि "चहुवानों की प्राचीन राजधानी माकावती है वहाँ से अजयपाल ने आकर अजमेर बसाया इसकी पदवी चक्वा (चक्रवर्ती) थी फिर पिरथी पहर माकावती से अजमेर गोद आया और उसके एक ही स्त्री से २४ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें से एक माणिकराय समय से चहुवानों का इतिहास अन्धकार में से निकलता है परन्तु झूंठ किस्सों से फिर भी खाली नहीं है"।

"इसी अर्से में (सन ६८४ ई०, या सन ६३ हि०, या सं० ७४२ वि०) मुसलमान पहले पहल राजपूताने में आये और दूलाराय आसुरों के हाथ से मारा गया उसका पुत्र लोट जो सात सालका था किले के कंगूरों पर खेलते हुए, तीर लगने से मरगया और बालक लोट को चौहान देवता या लोट पुत्र के नाम से पूजने लगे, मुसलमानों का यह हमला सिन्ध की तरफ से हुआ कहते हैं और यह भी प्रसिद्ध है कि रोशन नाम के एक फ़क़ीर की उंगली कटवा देने से मुसलमानों ने चढ़ाई की थी। इसी समय खलीफा उमर ने अबुल अयास की सरदारी में राजपूताने पर सेना भेजी थी आलोर की लड़ाई में अबुल अयास मारा गया परन्तु अजमेर मुसलमानों के हाथ आया और दूलाराय युद्ध में स्वर्ग सिधारा माणकराय सं० ७४१ वि० में सांभर को चला गया।

दोहा—

समत सात सो इगताली मालत बालीबेस ।
सम्भर अयटूटी सरस माणकराय नरेस ॥

चौथा–ग्रन्थ कर्ता या वंशावली लिखने वाले ने चित्तौड़ का किला उमादत्त के पुत्र चित्रांग मोरी का बनाया हुआ लिखा है, यह तो एक प्रसिद्ध कथा है कि चितौड़ का गढ़ चित्रंग मोरी ने बनाया और प्राचीन सिक्कों और लेखों से भी यह सिद्ध होता है कि बापा रावल के पूर्व चित्तौड़ पर मौर्य वंशी राजा राज्य करते थे परन्तु मौर्यों का चाहुमाण होना आज तक जाना नहीं गया पाटली पुत्र के अन्तिम नन्दवंशी राजा के मुरा नाम स्त्री के पेट से चन्द्र गुप्त उत्पन्न हुआ था इसी से उसकी सन्तान मौर्य कहलाई ऐसा प्रसिद्ध है।
हमने विस्तार भय से यहाँ ये दो चार बातें कही उक्त ग्रन्थ में अन्य ऐतिहासिक अशुद्धियाँ भी मिल सकती हैं अतएव कह सकते हैं कि इसमें लिखे हुए प्राचीन वृत्त प्रामाणिक नहीं।

"भागते हुए माणकराय ने एक बड़ा सर देखा जिसका नाम अपनी इष्ट देवी के नाम पर शाकम्भरी सर रक्खा। देवी की मूर्ति अब तक वहाँ एक छोटे टापू में है माणकराय ने अजमेर फिर ले लिया और इसके बहुत सी सन्तान हुई जिन्होंने पश्चिमी राजस्थान में कई छोटे २ ठिकाने स्थापन किये और सिन्धु तक फैल गये खीची, हाड़ा, मोहिल, नभेणा, भदोरिया, आरेचा, धनेरिया, बागरेचा आदि कई शाखा उनमें निकली हैं। खींची सिन्ध सागर में विहट और सिन्ध के बीच के ६८ कोस के हिस्से में बसे इन की राजधानी खीच पुर पट्टन था हाड़ों ने हरियाने के जिले में असि (हांसी) बसाई और धनेरिया शाहाबाद में बसे।

"चोहानों की एक बड़ी शाखा नाड़ोल[1] में आई जिसका मूल पुरुष राव लाखन था जिसने सं० १०३९ वि० (स० ९८२ ई०) में नैहरवाले के राव से यह परगना छीन लिया। गजनी के पादशाह सुबुक्तगीन और उसके पुत्र सुलतान महमूद ने राव लाखन पर चढ़ाई की और नाड़ोल को लूटकर वहाँ के मंदिर तोड़ डाले परन्तु चौहानों ने उस पर पीछा अपना अधिकार कर लिया। यहाँ से कई शाखा निकलीं जिन तमाम का खातमा देहली के पादशाह अलाउद्दीन खिलजी के वक्त में हो गया। मालूम होता है कि नाड़ोल वालों ने सुलतान शहाबुद्दीन गोरी की सेवा स्वीकार करली थी क्योंकि वहाँ के प्राचीन सिक्कों पर एक तरफ राजा का और दूसरी तरफ सुलतान का नाम है।"

"जागों की ख्यात में माणकराय से बीसलदेव तक ११ राजा हुए लिखे हैं इनमें एक हर्पराज सं० ८१२ से सं० ८२७ वि० तक राज्य पर रहा और असुरों के साथ युद्ध में मारा गया। तारीख फिरिश्त: में लिखा है कि लाहोर के राजा ने, जो अजमेर के राजा के वंश में से था, अपने भाई को हिजरी सन् १४३ (स० ७६१) में अफगानों से लड़ने को भेजा पांच महीनों में ७० लड़ाइयां हुई जिनमें मुसलमानों की विजय रही परन्तु कभी २ राजपूत भी जीते और उन्होंने मुसलमानों को कोहिस्तान तक निकाल दिया।

१. मारवाड़ के पर्गने गोड़वाड़ में है। आबू पर अचलेश्वर महादेव के मंदिर में सं० १३७७ वि० की एक प्रशस्ति लुण्ठदेव की है जिसमें माणिक्यराज के पुत्र सिद्धराज को इस शाखा का मूल पुरुष लिखा है।

"हाड़ों के इतिहास में विल्लन देव की पदवी धमगज लिखी है महमूद की अंतिम चढाई बीसलदेव के समय में हुई थी। महमूद को बीसल से परास्त होकर अजमेर से जाना पड़ा किन्तु वीसलदेव युद्ध में मारा गया। वत्सराज का पुत्र गोगा चहुवान इसी बीसल के समय में हुआ। गोगा बड़ा वीर था हिन्दुस्तान में बहुत सी जगह आज तक उसकी पूजा की जाती है यह जंगम देश[1] का राजा था। अपनी राजधानी मेहरा की रक्षा करने में वह अपने ४५ पुत्र और ६० भाई भतीजों समेत मारा गया।

वंशावली:—

अन्हल या अग्निपाल सं० ६५० वि० पहले हुआ हो, माकावती नगरी बसाई कोकन आसेर गोलकुण्डा पतह किया।

सुवन्छ—

मल्लन—संभव है कि यह मल्लीनी शाखा का मूल पुरुष हो।

अजयपाल—स० २०२ वि० में अजय बसाया।

दूलाराय—सं० ७४१ वि० में मुसलमानों के हाथ से मारा गया और अजमेर छिन गया।

माणकराय—सं०७४१ वि० में सांभर बसाया यहीं से चौहानों की पदवी सम्भरीराव हुई।

हर्षराज—सं० ८२७ वि० नासिरुद्दीन (सुबुकतगीन?) को हराया तब से "सुलतानग्रह" पद पाया।

वीरबिल्लनदेव—या धर्मगज, अजमेर की लड़ाई में महमूद गजनवी से मारा गया।

बीसलदेव—इसका समय कई शिला लेखों से सं० १०६६ वि० से सं. ११३० वि० तक ठहरता है।

सारंगदेव—बालक मरा.

---

१. सतलज नदी से हरियाने तक के प्रदेश को जंगल देश कहते हैं।

आना—अजमेर में आनासागर तालाब बनाया, इसके दो पुत्र जयपाल और हर्षपाल।

जयपाल—इसके ३ पुत्र-अजयदेव, या अनुनदेव, बीजदेव, उदयराज।

अजयदेव—इसके ३ पुत्र—सोमेश्वर, दिल्ली के तँवर राजा अनंगपाल की पुत्री रुका बाई ब्याही, कन्हराय, इसका पुत्र ईसरदास मुसलमान हो गया, जैत गोएलवाल।

सोमेश्वर—इसके दो पुत्र—पृथ्वीराज व चाहिरदेव चाहिरदेव का पुत्र विजयराज।

पृथ्वीराज—सं० १२४६ वि० में शहाबुद्दीन गोरी से मारा गया।

रैणसी—दिल्ली के शाके में मरा।

विजयराज—चाहिरदेव का पुत्र पृथ्वीराज के पीछे राजा हुआ इसका नाम दिल्ली की लाठ पर है।

लाखनसी—विजयराम का पुत्र—इसके २४ पुत्र असल १७ पुत्र खवासनिये हुए जिनसे कई मिश्रित शाखा फैली नीमराणे का वर्तमान ठाकुर लाखनसी से छब्बीसवीं पीढ़ी में है।"

हम्मीर महाकाव्य से:—[१]

चाहमान या चहुआन–मूल पुरुष, पुष्कर में ब्रह्मा के यज्ञ की रक्षा करने के लिये सूर्य लोक में आया।

वासुदेव,	नरदेव,
चन्द्रराज,	जयपाल,
जयराज,	सामन्तसिंह,
गुह्यक,	नन्दन,
वप्रराज	हरिराज

सिंहराज (मुसलमानों के सरदार हातिम को लड़ाई में मारा और ४ हाथी छीन लिये)

भीमराज—(सिंहराज का भतीजा, गोद आया)

विग्रहराज—(गुजरात के मूलराज को मारा और देश जीता).

गंगादेव गंगापाल

वल्लभराज सोमेश्वर—(कर्पूर देवी परणा)

राम. पृथ्वीराज.

चामुण्डराज—[हिजामुद्दीन को मारा]

हरिराज—[विल्हण का पिता रणथम्भोर में राजधानी की]

दुर्लभराज [शहाबुद्दीन को जीता]

वल्हण—[दो पुत्र–प्रल्हाद और वाग्भट्ट]

दुःशल—[कर्णदेव को मारा]

वीसल—[शहाबुद्दीन को मारा] प्रल्हाद.

पृथ्वीराज वीर्यराज.

आल्हन वाग्भट्ट [वल्हण का पुत्र].

—नल—[अजमेर में तालाब बनाया] जैतसिंह.

जगदेव हम्मीर.

वीसल.

जयपाल.

राजशेखर कृत चतुर्विंशति प्रबन्ध की एक प्राचीन लिखित प्रति के अन्त में दी हुई चौहाणों की वंशावली:—

वासुदेव [वि० सम्वत् ६०८].

सामन्त नरदेव,

अजयराज—[अजमेर बसाया]

विग्रहराज विजयराज

चन्द्रराज.

गोबिन्द राज. [सुलतान वेगवारी को हराया]

दुर्लभराज. वत्सराज.

सिंहराज. [जेठण की लड़ाई में हाजी उद्दीन को हराया].

दुर्योधन विजयराज.

बप्पयराज. [शाकम्भरी में सोने की खान तलाश की].

दुर्लभराज.

गण्डुराज— [मुहम्मद सुलतान को हराया]

बालकदेव विजयराज

चामुण्डराज— [सुलतानों को हराया]

दुःशलदेव— [गुर्जर पति को बांधकर अजमेर लाया और उससे छाछ बिकवाई]

बीसलदेव [इस स्त्री लम्पट ने एक महासती ब्राह्मणी से बलात्कार किया और उसके शाप से कुष्ठी होकर मरा].

पृथ्वीराजबड़ा— [वलूगी शाह का हाथ तोड़ा].

आल्हनदेव— [शहाबुद्दीन को हराया]

आनलदेव— जगतदेव.

बीसलदेव. अमर गांगेय.

पिथलदेव. सोमेश्वरदेव.

पृथ्वीराज [वि० सम्वत् १२३६ में गादी बैठा देहान्त सं० १२४८ वि०]

हरिराज राजदेव.

बल्हणदेव—[बावरिया].

वीर नारायणदेव—[शमशुद्दीन के हाथ से लड़ाई में मारा गया].

वाहड़देव—[मालवा जीता].

हम्मीरदेव—[वि० सं० १३४२ में गद्दी बैठा, सं० १३५८ वि० में मारा गया]

जयपुर इलाके के शेखावाटी प्रांत में हर्षनाथ के मंदिर में लगे हुए शिलालेख पे चौहानों की वंशावली। यह लेख वि० सं० १०३० का है[1]।

गूवक—[नाग और दूसरे राजाओं की सभा में वीरता के लिये प्रसिद्ध हुआ] सका पुत्र—

चन्द्रराज इसका पुत्र गूवक दूसरा–इसका पुत्र

चन्दन—[इसने रुद्रेण नाम के तोमर राजा को युद्ध परास्त करके मारा] सका पुत्र वाक्पतिराजा

सिंहराज—[इसने तोमर नायक को, जो लवण नाम के किसी राजा से लकर इस पर चढ़ आया था, परास्तकिया] इसका पुत्र—

विग्रहराज—[इसके एक छोटा भाई दुर्लभ राज था, सिंहराज के चन्द्रराज ार गोविन्दराज नाम के दो पुत्र थे और एक भाई जिसका नाम वत्सराज था]।

मेवाड़ इलाके के बीजोल्यां नामी ग्राम के अग्नि कोण में पार्श्वनाथ के एक चीन मन्दिर के पास चट्टान पर खुदे हुए लेख में चहुवाणों की वंशावली इस ा प्रकार लिखी है:

"विप्र श्रीवत्स गोत्रे भूदहि छत्रपुरे पुरा"
"सामन्तो नन्त सामन्त पूर्ण तल्ले नृपस्ततः। १२।"
"तस्माच्छ्री जयराज विग्रह नृपौ श्री चन्द्रगोपेन्द्रकौ।"
"तस्माद् दुर्लभ गूवकौ शशिनृपो गूवाक सच्चन्दनौ॥"
"श्रीमद्वप्पय राज विन्ध्य नृपतिः श्री सिंहराड्विग्रहौ।"

---

[1] इस लेख के अन्त में लिखा है कि अनन्त देश में विश्व रूप नाम का एक महात्मा शैव पञ्चार्थ कुलाम्नाय वाला रहता था। उसके चेले के चेले भाव रक्त या अल्लट ने राणपल्लिका से हर्ष में आकर हर्षनाथ का मन्दिर बनवाया और सिंहराज ने पुष्कर तीर्थ में स्नान कर १२ ग्राम इस मंदिर के भेंट किये। देखो! एपिग्राफिआ इन्डिका जिल्द २ पृष्ठ ११६-१२५।

"श्रीमद्दुलभ गुन्दुवाक्पतिनृपाः श्री वीर्यरामोनुजः ॥ १३ ॥"
"श्री चण्डो वनिपेति राणकधर श्रीसिंहटो दूसल"
"स्तद्भ्राताथ ततोपि वीसल नृपः श्री राजदेवी प्रियः"
"पृथ्वीराज नृपो थ तत्तनुभवो रासल्य देवी विभु"
"स्तत्पुत्रो जयदेव इत्यवनिपः सोमल्ल देवीपतिः ॥ १४ ॥"
"हत्वा चच्चिग सिन्धुलाभिधयशो राजादि वीर त्रयं"
"त्तिपंकुर कृतान्त वक्त्र कुहरे श्री मार्ग दुर्गान्वितं"
"श्रीमत्सोलण दण्डनायक वरः संग्राम गंगा गणे"
"जीवन्नेव नियंत्रितः करभके..................॥ १५ ॥
"अर्णो राजोस्य सूनुर्धत हृदय हरिः मत्व वाशिष्ठ सीमो
"गाम्भीर्योदार्यवर्यः ममभव-परालब्ध मध्यो नदीत्मः ॥ १६ ॥"
"कुवलय विकासकर्ता विग्रहराजो जनिस्ततो चित्रं
"तत्तनयस्तच्चित्रं यत्र जड़ क्षीण सकलंकः ॥ १८ ॥"
"जाबालिपुरं ज्वालापुरं कृता पल्लि कापि............ ॥ २१ ॥
"प्रताल्यां चवलभ्यां च येन विश्रामितं यशः ।
"ढिल्लीका ग्रहणश्रान्तमाशिकालाभ लंभितः ॥ २२ ॥"
"तज्जेष्ट भ्रातृ पुत्रो भून् पृथ्वीराज प्रभूपमः ।"
"तस्मादर्जित गो हेम पर्वत दाननः ॥ २३ ॥
"सोमेश्वर नतो यस्माज्जन सोमेश्वरो भवत ॥ २६ ॥
"संवत १२२६ फाल्गुन विद ३............"

(भावार्थ—श्रीवत्स विप्र के गौत्र में अहिछत्र पुर[1] में सामन्त नाम का राजा हुआ उसके पीछे, २ जयराय, ३ विग्रहराज, ४ चन्द्र, ५ गोपेन्द्र, ६ दुर्लभराज

---

(१) राम नगर या अहिछत्र किसी जमाने में उत्तरी पंचाल के प्रतापी राज्य की राजधानी था जो अब बरेली से २० मील पश्चिम एक बड़ा ग्राम है—आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया न्यू सिरीज जिल्द २ पृष्ठ २६.

चीनी यात्री हुएन्त्संग जो सन् ६३९ ई० में यहाँ आया आपने सफर नामें में अहिछत्र पुर का हाल यों लिखता है—"ओहि चांटेलो (या अहिछत्रपुर) करीब ३००० ली के

७ गूवक, ८ शशिनृप, ६ गूवाक, १० चन्दन, ११ बप्पयराज, १२ सिंहराज, १३ विग्रहराज, १४ दुर्लभराज, १५ गन्दुराज, १६ वाक्पतिराज, १७ उसका छोटा भाई वीर्यराम, १८ फिर श्रीचण्ड, १६ श्रीसिंह, २० दूसल, २१ उसका भाई बीसल राजदेवी का पति राजा हुआ उससे २२ पृथ्वीराज (पहिला) रासलदेवी का पति उससे २३ जयदेव सोमलदेवी का पति हुआ जिसने चच्चिग सिन्धुल और यशोराज नामी तीन वीरों को जीता और सोल्हण को कैद किया। उसका पुत्र २४ अर्णोराज (आनलदेव) उसका पुत्र २५ विग्रहराज (वीसलदेव) हुआ जिसने जाबालिपुर को ज्वालापुर बनाया और दिल्ली फतह की, उसके बड़े भाई का पुत्र २६ पृथ्वीराज (पृथ्वीभट्ट), और उसके पीछे २७ सोमेश्वर गद्दी पर बैठा।

पृथ्वीराज विजय नाम की पुस्तक में दी हुई चौहानों की वंशावली:—

(१) चापहरि या चाहमान।

(२) वासुदेव (शाकम्भरी पाया, इसी के समय से चहुवाण शाकम्भरीश्वर कहलाये)।

(३) सामन्तराय।

(३) जयराय।

(५) विग्रहराज।

(६) चन्द्रराज।

(७) गोपेन्द्रराज (नं० ६ का भाई)।

(८) दुर्लभराज (गौड़ों से लड़ा)

(६) चन्द्रराज दूसरा.

(१०) गोवक.

घेरे का मुल्क है। बाजू पर पहाड़ियां आगई हैं, गेहूँ पैदा होता है और वहाँ कई वन और नाले हैं। आबहवा अच्छी, मनुष्य सच्चे और मिलनसार हैं। यहाँ दस संघाराम हैं जिनमें १,००० साधु रहते हैं। नौ देव मंदिर और २०० पुजारी ईश्वर के पूजने वाले अर्थात् पाशुपत हैं। नगर के बाहर एक नागसर है इसके पास अशोक का बनाया हुआ।

(११) चन्दन

(१२) वाक्पति. (तुष्कर में मंदिर बनवाया)

(१३) सिंहराज (विक्रम संवत् १०३० इसके दो पुत्र थे)।

(१४) विग्रहराज (नं० १३ का पुत्र इसने अणहिलवाड़े के मूल राज को कन्था दुर्ग में भगाया)।

(१५) दुर्लभ २(नं० १३ का पुत्र)

(१६) गोविन्द

(१७) वाकपतिराज दूसरा.

(१८) वीर्यराम (अवन्ती के राजा भोज से मारा गया, इसके भाई चामुण्डने नरपुर (नरवर) में विष्णु का मंदिर बनवाया)।

(१९) दुर्लभ ३ (नं० १८ का पुत्र, इससे घोड़ा पाकर मालवे के राजा उदयादित्य ने गुजरात के राजा कर्ण को जीता)।

(२०) विग्रहराज ३ (नं० १९ का भाई)

(२१) पृथ्वीराज.

(२२) अजयराज या मल्हण (इसने अजमेर बसाया[१] और मालवा के सल्हण को जीता इसकी स्त्री का नाम सोमलेखा था।

(२३) अरुणोराज (मारवाड़ सुधवा का पुत्र)

(२४) नाम नहीं दिया (जगदेव) अपने पिता को मारा

(२५) विग्रहराज. ४

(२६) पृथ्वीभट्ट.

(२७) सोमेश्वर (गुजरात के राजा जयसिंह की पुत्री काञ्चन देवी से अरुणोराज के उत्पन्न हुआ. इसने चेदी के राजा की पुत्री कर्पूरदेवी से विवाह किया)

(२८) पृथ्वीराज.

---

१. इसके वास्ते देखो भूमिका के पृष्ठ १५-१६ का नोट.

(२६) हरिराज (नं० २८ का भाई)[१]

अब इन वंशावलियों के मिलान करने से स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज विजय नामी पुस्तक में दी हुई वंशावली शिलालेखों की वंशावलियों से, एक दो नाम की न्यूनाधिकता के अतिरिक्त क्रम व संख्या में ठीक २ मिलती हैं। जैसा कि पृथ्वीराज विजय में चाहमान से पृथ्वीराज तक २८ नाम दिये हैं और बीजोजिया के शिला लेख में सामन्त देव से (जो चाहमान से तीसरा था) पृथ्वीराज तक २७ नाम हैं। इस शिला लेख में श्री चण्ड और दूसल दो नाम पृथ्वीराज विजय से अधिक हैं। हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति जो चाहमान से नवीं पीढ़ी में हुए गूवक राजा से शुरु होती है। उसमें के भी सर्व नाम प्रथम शिलालेख और पृथ्वीराज विजय के नामों से क्रमवार बराबर मिलते हैं। अतएव सिद्ध है कि पृथ्वीराज विजय व शिला लेखों में दी हुई वंशावली शुद्ध है इसके अतिरिक्त चतुर्विंशति प्रबन्ध में और हंमीर महा काव्य में दी हुई वंशावलियों में भी चाहमान से पृथ्वीराज तक ३० तीस नाम दिये हैं। परन्तु ये नाम क्रमानुसार नहीं तथापि दो चार नामों के अतिरिक्त अन्य नाम शिलालेखों से मिलते हुए हैं। परन्तु शिलालेख व पृथ्वीराज विजय में दी हुई वंशावलियों के समय की अपेक्षा ये दो वंशवलियां बहुत पीछे लिखी गईं। अतएव इनमें इतनी सी अशुद्धि होना सम्भव हो सकता है। वंशभास्कर में आदि से १३ और अन्त के बीस नाम रासे से मिलते हुए और शेष मनमाने हैं। पृथ्वीराज रासे में चाहमान से पृथ्वीराज तक कहीं तो ३६ और कही ४४ (या न्यूनाधिक) तक नामों की संख्या है परन्तु उनमें से आदि या अन्त के दो तीन नामों को छोड़ दूसरा एक भी नाम न तो शिला लेखों से, न पृथ्वीराज विजय से और न चतुर्विंशति

---

१. यह पृथ्वीराज विजय नाम का पुस्तक प्राचीन शारदा लिपि में लिखा हुआ प्रोफेसर ब्हुलर को सं० १८७५ ई० में कश्मीर के पुस्तकालय में से मिला था मिस्टर जेम्स मोरिसन ने इसको पढ़ा अब यह पुस्तक पूना के डैकन् कालिज के पुस्तकालय में है इसका लिखने वाला पण्डित पृथ्वीराज का समकालीन और उसके दरबार का कवि था। उसने यह पुस्तक रचकर पृथ्वीराज को सुनाया। इस पर सन् १६५०—७५ के बीच में लिखी हुई प्रसिद्ध पण्डित जोनराज की टीका है जिसने कश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी का एक अंश लिखा है।

प्रबन्ध व हम्मीर महाकाव्य में मिलता है अतएव प्रत्यक्ष है कि रासे में दिये हुए ये नाम कल्पित हैं ।

बीसल का समय और उसका गुजरात के राजा बालुकाराय से युद्ध—

रासे में एक ही बीसलदेव होना लिखा है और उसी से ग्रन्थ कर्ता ने अपनी कथा का आरम्भ किया है कि वह आनलदेव का दादा था, सम्वत ८२१ में अजमेर में गद्दी बैठा और सम्वत ९८६ में उसका देहान्त हुआ अर्थात उसने १६६ वर्ष राज्य किया । उसने गुजरात के राजा बालुकाराय[1] को युद्ध में जीता और एक तपस्विनी के शाप से वह ढुंढा नामी राक्षस हो गया और अपने पुत्र सारंगदेव को मार डाला आदि ।[2] अब इस वृत्तान्त के सत्यासत्य का निर्णय करने के वास्ते हमें आनल देव (अरुणोराज) का और गुजरात के राजा मूलराज का जिसके साथ बीसलदेव का युद्ध हुआ, अन्यान्य आश्रयों से ठीक समय जानना आवश्यक है। जिससे स्पष्ट हो जावे कि रासे में दिया हुआ बीसलदेव का समय और आनलदेव के साथ उसका सम्बन्ध ठीक है या नहीं ।

पृथ्वीराज विजय व शिलालेखों में विग्रहराज या बीसलदेव नाम के चार राजा होने लिखे हैं जिनमें से नं० १३ या १४ का, गुजरात के राजा मूलराज से युद्ध होना पाया जाता है और अन्त का विग्रहराज (बीसल) अरुणोराज का पुत्र था जिसने जाबालिपुर को जलाया और दिल्ली फतह की ।

गुजरात के इतिहास और चहुआनों के अनेक लेखों से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि बीसलदेव (जिसका वर्णन रासे में है) गुजरात के राजा मूलराज का

१. रासे के कर्त्ता ने बालुकाराय नाम दिया है । परन्तु बालुकाराय नाम का कोई राजा गुजरात में हुआ नहीं । हाँ मूलराज दूसरे को गुजरात के इतिहास लिखने वालों ने बालमूलराज लिखा है परन्तु उसका समय सं० १२३४ वि० का है । आश्चर्य नहीं कि चालुकाराय का बालुकाराय बन गया हो ।

२. कर्नल टाड साहब अनुमान करते हैं कि शायद बीसलदेव मुसलमान बना लिया गया हो— देखो टाड राजस्थान जिल्द १ पृष्ठ २, पृष्ठ ४५८ ।

मकालीन था जिसको उसने युद्ध में हराया। यह मूलराज राजी का पुत्र था जिसको ज भी लिखा है और इसके दादा का नाम त्रिभुवनादित्य या भूवड़ था जो कन्नौज राजधानी कल्याण में राज करता था[1]। मूलराज की माता ललितादेवी (लीलादेवी) णहिलवाड़े के अन्तिम चावड़ा राजा सामन्तसिंह की बहिन थी। राज या जी मूलराज का पिता गुप्त रीति से सोमनाथ की यात्रा को आया था। उसकी रता से प्रसन्न होकर सामन्तसिंह चावड़ा ने उसको अपनी बहन परणादी और णहिलवाड़े में रक्खा, ललितादेवी प्रसव वेदना से मर गई और उसका पेट रकर बालक निकाला गया जिसका नाम मूलराज रक्खा। सामन्तसिंह के पुत्र न ने से उसने मूलराज को गोद ले लिया। पीछे मूलराज सामन्तसिंह को मारकर जरात की गादी पर बैठा। मेरुतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि में[2] मूलराज के ज्याभिषेक का समय सं० ९९३ वि० आषाढ़ शुद १५ गुरुवार लिखा है। उस न उसकी अवस्था २१ वर्ष की थी और वीसलदेव के साथ युद्ध का वृत्तान्त नीचे खे अनुसार दिया है:—

"इसके (मूलराज के) समय में सपाद लक्षीय [चहुवाणों की पदवी है] जा गुजरात पर चढ़ आया और उसी अवसर पर तैलंगाने के राजा ने अपने नापति बारव को सेना सहित गुजरात पर भेजा। मूलराज यह विचार कर यदि मैं एक से लड़ूँगा तो दूसरा पीछे से आकर हमला कर देगा, कन्थ कोट दुर्ग में जा रहा, उसके प्रधान ने सलाह दी कि नवरात्रि में चहुवान राजा तो नी कुलदेवी की पूजा करने के लिये अपनी राजधानी शाकम्भरी में चला येगा उस समय बारव के साथ युद्ध करना ठीक है। नवरात्रि में सपादलक्षीय जा अपनी राजधानी को नहीं गया था, और वहीं पर एक नगर बसाकर अपनी देवी को स्थापन किया। जब मूलराज को यह मालूम हुआ तो उसने अपने मन्तों को भेद भरे पत्र लिखे जिनमें गुप्त रीति से तो उनको अमुक दिवस युद्ध

---

(१) मिस्टर एलफिन्सटन और मिस्टर फार्ब्स मूलराज को दक्षिण के चौलुक्य राजाओं का वंशज मानते हैं।

(२) यह पुस्तक जैनाचार्य मेरुतुंग कृत सं० १३०८ ईस्वी के लगभग लिखा गया था।

के लिये शाकम्भरी के राजा के डेरों के समीप हाजिर रहने की सूचना थी और प्रत्यत्त में लहणिका के वास्ते आमन्त्रण किया था। संकेत के अनुसार सामन्तगण नियत समय पर अपनी २ सेना सहित आन उपस्थित हुए और मूलराज एक सांडनी पर सवार होकर निर्भयतापूर्वक अकेला चहुवाण के कटक में चला गया राजा के तम्बू के पास सांडनी से उतर कर द्वारपाल को स्मृति दिलाता हुआ डेरे के भीतर घुस गया और शाकम्भरीश्वर के पलंग पर जा बैठा। और उससे कहने लगा कि यदि आपको युद्ध करना है तो कुछ विलम्ब कीजिये जब तक कि मैं तैलंग देश के सेनापति से निबट आऊँ। चहुआना राजा मूलराज की वीरता को देख इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उससे मित्रता करनी चाही और भोजनादि सत्कार करने की इच्छा प्रगट की परन्तु मूलराज जैसे आया था उसी प्रकार खड्ग लिये चहुआन के कटक में से निकल कर अपनी सेना में चला आया और तत्काल बारब पर चढ़ धाया। उसका नाश कर दश सहस्र घोड़े और १८ हाथी उससे छीन लिये। चहुआन राजा मूलराज की विजय के समाचार सुन उसके लौटने के पूर्व ही अपनी राजधानी को चला गया।"

मूलराज ने सं० १०५२ वि० तक राज्य किया यह बात उसके कई दान पत्रों से सिद्ध है जैसे कि गायकवाड़ी इलाके के कुड़ी गांव की कचहरी में से निकले हुए दानपत्र में लिखा है:—

"चौलुकिकान्वयो महाराजाधिराज श्री मूलराजः"
"महाराजाधिराज श्री राजी सुतः निज भुजोपार्जित"
"सारस्वत मण्डल .... ।

"सं० १०४३ माघ वदि १५ रवौ। श्रीमूल राजस्य"[१]

मारवाड़ के किसी स्थान में मुनशी देवी प्रसाद को मिले हुए दानपत्र की छाप में:—

"सं० १०५१ माघशुदि १५ अद्येह श्री मदणहिल पाट के"
"राजावली पूर्ववत परम भट्टारक महाराजाधिराज"

---

१. देखो— इण्डियन ऐन्टिक्वेरी जिल्द ६ पृष्ठ १९१—९२.

"परमेश्वर श्री मूलराज देवः स्वभुज्यमान सत्यपुर मण्ड"
"लान्त आदि ....

जबकि मूलराज और बीसलदेव समकालीन राजा थे और मूलराज का राज समय सं० ६६३ वि० से सं० १०५२ वि० तक ठहरता है तो अवश्य मानना पड़ेगा कि बीसल देव भी इसी समय में हुआ। शेखावाटी में हर्षनाथ के मन्दिर के लेख से स्पष्ट होता है कि यह विग्रहराज अथवा बीसलदेव सिंह राज का पुत्र सं०१०३० वि० में मौजूद था। अतएव इसका जन्म समय सं०१०३० से कुछ पहले और राज समय सं० १०३० से पीछे होना चाहिये अतएव सिद्ध है कि रासे में दिया हुआ इसका समय सं० ८२१ से सं० ६८६ तक का बिलकुल अशुद्ध और कपोल-कल्पित है[१]।

फिर रासे के कर्ता का यह भी कथन माननीय नहीं ठहर सकता कि आनल-देव या अरुणोराज उपरोक्त बीसलदेव का पौत्र था। क्योंकि पहले दी हुई वंशावलियों के अनुसार अरुणोराज, मूलराज के समकालीन बीसलदेव से नवीं पीढ़ी में हुआ था। अरुणोराज का ठीक समय डाक्टर ब्हुलर सा० यों निश्चय करते हैं:—

"पृथ्वीराज विजय के सातवें सर्ग में लिखा है कि अरुणोराज ने गुजराज के राजा जयसिंह (सिद्धराज) की पुत्री काञ्चनदेवी से विवाह किया था। जिसके पेट के सोमेश्वर उत्पन्न हुआ अतएव अरुणोराज, सिद्धराज का समकालीन था और सिद्धराज ने सं०११५०वि०से सं०११६६ वि० तक राज किया। हेमाचार्य के द्वाश्रय कोष से पाया जाता है कि जयसिंह के पुत्र कुमारपाल ने आनलदेव(अरुणोराज)से युद्ध किया था और कुमारपाल के चित्तौड़गढ के लेख के अनुसार यह युद्ध वि०सं० १२०७ से कुछ पहले हो चुका था, क्योंकि उस लेख में लिखा है कि कुमारपाल, शाकम्भरी के सपादलक्षीय राजा को विजय करके चित्तौड़ देखने को आया, तदुपरान्त अरुणोराज के दूसरे पुत्र

---

१. इसके अतिरिक्त सं०८२१ में गुजरात में सोलंखियों का राज ही नहीं हुआ था। उस वक्त वहाँ चावड़े राज्य करते थे फिर उस समय में बीसलदेव का गुजराज के राजा बालुकाराय सोलंखी से युद्ध करना कैसे बन सकता है?

विग्रहराज (नं० ४) के अजमेर के लेख सं० १२१० वि०[1] से यही सिद्ध होता है कि अरुणोराज सं० १२०७–१२१० वि० के बीच में परलोक वासी हुआ।[2]

इस उपरोक्त वर्णन के अनुसार विग्रहराज (बीसलदेव) प्रथम के पिता सिंहराज के समय से अरुणोराज के देहान्त समय तक १८० वर्ष के लगभग दस राजा हो चुके जिन प्रत्येक का राज समय औसत हिसाब से १८ वर्ष का आता है। परन्तु रासे का यह कथन कि आनलदेव बीसलदेव का पोता था और उसने १०० वर्ष राज किया आदि: सत्य प्रतीत नहीं होता।

क्योंकि पृथ्वीराज रासे में दी हुई वंशावली में बीसलदेव नाम का एक ही राजा लिखा है। इसी कारण से कर्नल टाड साहब ने भी रासे के अनुसार दिल्ली की लाठ पर के बीसलदेव के लेख को रासे में दिये हुए बीसल का होना अनुमान करके लेखके संवत में कुछ फेरफार होने का अनुमान किया है। यदि उस समय टाड साहब को ज्ञात होता कि बीसल (विग्रहराज) नाम के चार राजा हुए हैं तो वे इस विषय में कदापि ऐसी कल्पना न करते. वह यह लेख है:—

"ॐ सम्वत् १२२० वैशाख शुदि १५ शाकम्भरी भूपति श्री मदान्नल (२) देवात्मज श्रीमद्वीसलदेवस्य"

"अविन्ध्यादाहि माद्रे विरचित विजयस्तीर्थ"
"यात्रा प्रसंगादुद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु"
"विनमत कंधरेषु प्रसन्न: आर्यावर्त्त"
"यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छ विच्छेद"
"नाभिर्देव शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते"
"बीसल क्षोणीपाल: । १ ।

---

१. यह लेख अजमेर के अढाई दिन के झोंपड़े में खुदा हुआ है। यह एक ललित विग्रहराज नाम का नाटक है।

२. देखो इण्डियन एन्टीक्वेरी जिल्द २६ जून सा० १८६७ ई० के पृष्ठ १६२ में डाक्टर व्हुलर का लेख अजमेर पर।

"ब्रूत सम्प्रति चाहमान तिलकः शाकम्भरी"
"भूपतिः श्रीमद्विग्रहराजएष विजयी सन्तान"
"जानात्मजः अस्माभि कर दव्यधापि हिम"
"वद विन्ध्यान्तरालं भुवः शेष स्वीकरणाय मास्तु"
"भवता सुद्योग शून्यंमनः । २ ।"
"सम्वत श्री विक्रमादित्ये १२२० वैशाख शुति १५ गुरौ"
"लिखित मिदं राजादेशात् ज्योतिपिक श्री तिलकः"
"राज प्रत्यत्तं गौडान्वय कायस्थ माहव पुत्र श्रीपतिः"
" ना अत्र समये महामंत्री राजपुत्र श्री सल्लक्षणपालः" [1]

(भावार्थ) सं० १२२० वि० वैशाख शुदि १५ शाकम्भरी (सांभर) के राजा आनलदेव के पुत्र बीसलदेव ने, तीर्थ यात्रा करते हुए हिमालय से विन्ध्याचल-पर्यन्त का देश विजय करके आर्य्यावर्त से म्लेच्छों का विच्छेद किया। चाहमान कुल तिलक विग्रहराज (बीसल) अपने सन्तानों को कहता है कि हिमालय से विन्ध्य तक का देश तो मैंने अपने आधीन किया। शेष देश को जय करने का उद्योग तुम मत छोड़ना।

आनलदेव से सोमेश्वर तक राजाओं का राज समयः—

"चौघट्टि सत्त बरपं प्रमान आना नरिंद तपि चाहुवान"
"खग धुम्म देस दिय पुत्र हत्थ जैसिंह देवत पिराज तत्थ"

---

१. इसी लेख में दिये हुए सम्वत् १२२० के लिये टाडसाहब ने लिखा है कि शायद यह ११२० हो और लेख के दूसरे श्लोक में—"ब्रते सम्प्रति चाहमान तिलकः शाकम्भरी भूपतिः" को गलती से "प्रतिव चाहमान तिलक शाकम्भरी भूपति" पढ़कर "प्रतिव" शब्द से पृथ्वीराज ग्रहण किया और लिखा कि इस लेख का पहला श्लोक तो बीसलदेव के समय और दूसरा पृथ्वीराज के समय का है। तदनुसार बीसलदेव का सं० १०७८ से सं० ११४२ तक होना मानकर उसको दिल्ली के तँवर राजा जयपाल गुजरात के दुर्लभ और भीमदेव सोलंखी, धार के उदयादित्य और चित्रकूट के राजा तेजसी परमसी का समकालीन माना है. परन्तु शिला लेखों से स्पष्ट है कि यह चौथा विग्रहराज था जिसने दिल्ली फतह की थी।

"सो बरस अठ्ठतप राज कोन आनन्द मेव सिर छत्र दीन"
"सो बरस तप राज कीन सिर छत्र मोम पुत्रह सु दीन" आदि पर्व—

रासे के इस छन्द के अनुसार आनलदेव (आना) से सोमेश्वर तक तीन राजाओं ने ३०४ वर्ष राज किया। यह समय भी कल्पित ही प्रतीत होता है और रासे ही में दिये हुए पृथ्वीराज के जन्म समय से विरुद्ध पड़ता है। रासे के कर्ता ने पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् १११५ दिया है और उपरोक्त छन्द के अनुसार बीसलदेव के देहान्त के सम्वत ९८७ में ३०४ जोड़ देने से १२९१ का सम्वत् आता है जो पृथ्वीराज के जन्म संवत् से १६७ वर्ष अधिक है। पृथ्वीराज सम्वत् १२४८–४९ में परलोक पहुँचा और यहाँ सम्वत १२९१ तक उसके जन्म ही का पता नहीं चलता है।

दूसरे-प्रशस्तियों, पृथ्वीराज विजय आदि के अनुसार सोमेश्वर के गद्दी बैठने का काल सं० १२२५ वि० के लगभग आता है[१] और उसका देहान्त सं० १२३५ के लगभग अर्थात् उसने ९ वर्ष के करीब राज्य किया परन्तु रासे में दिये हुए सम्वतों की गणना के अनुसार सं० १२९१ तक के सोमेश्वर का गद्दी बैठना ही सिद्ध नहीं होता, अस्तु-प्रत्यक्ष है कि रासे के कर्ता ने संवत काल लिखते हुए अपने पूर्वापर कथन की ओर कुछ ध्यान न दिया।

पृथ्वीराज विजय और शिला लेखों के अनुसार बीसलदेव (विग्रहराज नं० २) से सोमेश्वर के गद्दी बैठने तक का समय १८५ वर्ष के लगभग आता है इस अन्तर में १२ राजाओं ने राज किया और औसत हिसाब से प्रत्येक का राज समय १५ वर्ष के करीब आता है जो अति ही सम्भव और बुद्धि के अनुकूल है।

पृथ्वीराज विजय के अनुसार अरुणोराज (आनल देव) के मारवाड़ की सुधवा नाम राजपुत्री से पुत्र उत्पन्न हुए, बड़ा जिसका नाम नहीं लिखा (चतुर्विंशति

---

१. बिजोल्या के सम्वत् १२२६ वि० के शिलालेख में सोमेश्वर का वर्णन है। इसके अतिरिक्त मेवाड़ राज्य के जहांजपुर (यज्ञपुर) नामी कसबे के पास पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा को निम्नलिखित प्रशस्तियाँ मिली हैं:—

प्रबन्ध का जगदेव और रासे का जयसिंह देव हो) इसने अपने पिता को मारा अतएव हत्यारा ठहराया गया और राज्य न करने पाया। इसका छोटा भाई विग्रहराज (बीसल देव नं० ४) गद्दी पर बैठा जिसका देहान्तकाल सं० १२२०-२१ वि० दिल्ली की लाठ के लेख से सिद्ध है अतएव रासे के कर्त्ता का यह कथन है कि जयसिंह देव (जगदेव ?) ने १०८ वर्ष राज किया, निरा निर्मूल ही पाया जाता है।

विग्रह राज के पीछे पृथ्वीभट्ट गादी बैठा और फिर सोमेश्वर राजा हुआ। सोमेश्वर का देहान्त समय सं० १२३४-३५ का है तो सं० १२२० से सं० १२३४ तक १५ वर्ष में पृथ्वीभट्ट और सोमेश्वर दो राजा हुए, इसमें सोमेश्वर का राज्य समय ६ वर्ष का और पृथ्वीभट्ट का ६ वर्ष के लगभग ठहरता है. और यह ठीक भी मालूम देता है क्योंकि पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि गद्दी बैठने के उपरान्त थोड़ा ही राज कर के सोमेश्वर स्वर्गवासी हुआ। यदि रासे में दिये हुए आनन्ददेव-को पृथ्वीभट्ट मानें तो उसका राज्य समय केवल ६ वर्ष का था फिर सो वर्ष तपना क्योंकर सत्य समझा जावे ?

(क) जहाँजपुर से सात मील अग्नि में धोरा गांव के मंदिर का लेखः—

"स्वस्ति संवत १२२८ ज्येष्ठ शुदि १० अस्य सम्वत्सरे मास पक्ष दिन पूर्ववत"

"समस्त राजावली समलकृत परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर"

"परम माहेश्वर श्री सोमेश्वरदेवकुशली कल्याण विजय राज्ये, आदि "

(ख) जहाँजपुर से १३ मील आंवरा ग्राम के बाहर कुण्ड के पास पड़े हुए एक स्तम्भ पर खुदा हुआ लेखः -

"स्वस्ति श्री महाराजाधिराज श्री सोमेश्वर देव महाराये डोडरा सिंहरा"

"सुत सिन्दुराउ देवी·····················सं० १२३४ भाद्र पद सुदि ४ सुक्रदिने"

(ग) जहाँजपुर से ८ मील लोहारी ग्राम के पास भूतेश्वर के मंदिर के बाहर सतियों की मूर्ति वाले स्तम्भ का लेखः—

"संवत् १२३६ आसाढ़ वदि १२ श्री पृथ्वीराज राज्ये वागड़ी मलखण"

"पुत्र अल सल ·· ····· "

पहले लिख चुके हैं कि वीसलदेव से सोमेश्वर तक राजाओं का राज्य समय औसत हिसाब से १५ वर्ष का आता है। तदनुसार अरुणोराज और विग्रहराज के ३० साल में पृथ्वीभट्ट के छः वर्ष मिलाने से आनलदेव (अरुणोराज) से सोमेश्वर तक ४ राजाओं ने ३६ वर्ष राज्य किया, परन्तु यह भी मानलें कि आनलदेव और विग्रहराज ने अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक राज किया हो तथापि रासे में दी हुई कल्पित संख्या २०५ वर्ष का सिद्ध होना असम्भव है।

अनगपाल तंवर का दिल्ली बसाना, उसकी पुत्री कमलादेवी के साथ सोमेश्वर का विवाह और पृथ्वीराज का दिल्ली अपने नाना के गोद जाना

पृथ्वीराज रासे के कर्त्ता ने दिल्ली के राजा अनंगपाल तंवर को पृथ्वीराज का समकालीन होना मानकर अनंगपाल की पुत्री कमलादेवी को पृथ्वीराज की माता होना लिखा और यह भी लिखा है कि अनंगपाल दिल्ली का राज अपने दोहित्र पृथ्वीराज को देकर आप बदरिकाश्रम में तप करने चला गया।

इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के पहले चौहानों का राज दिल्ली में नहीं था किन्तु वहां तंवर राजा राज करते थे। चौहान केवल अजमेर व सांभर ही के राजा थे।

अब हम अन्यान्य आश्रयों से इस बात की खोज करेंगे कि दिल्ली कैसे बसी? अनंगपाल के दिल्ली बसाने का कौनसा काल और इस विषय में लोक प्रसिद्ध वार्त्ता क्या है? पृथ्वीराज से पहले ही दिल्ली चौहानों के आधीन होगई थी या पृथ्वीराज ही दिल्ली का प्रथम चौहान राजा हुआ? पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री ब्याहा या नहीं इत्यादि?

तारीख फरिश्तः में दिल्ली के बसने के विषय में यों लिखा है कि "सन् ३०७ हि० (सं० ६२० ई०) में तंवर खान्दान के वादित्य (या वादपित्ता?) राजपूतने क़स्बा इन्द्रप्रस्थ बसाया क्योंकि मिट्टी उस जगह की बहुत सुस्त और नरम थी,

मेख वहां बहुत मुश्किल के साथ मजबूत बैठ सकी थी इसलिये वह शहर दिल्ली (दिल्ली) के नाम से मशहूर होगया। वादित्य के पीछे आठ तंवर राजा दिल्ली की गद्दी पर बैठे आखिरी राजा का नाम शालिवान था। तंवरों का राज ग़ारत होने पर वहाँ की हुकूमत चौहानों के हाथ आई वे उम्द: राजपूत हैं उनके ६ राजाओं ने वहां राज किया—मानकदेव, देवराज, रावलदेव, जाहरदेव, सहरदेव, और पिथोरा (पृथ्वीराज)[१] आख़िरी राजा पिथोरा सुल्तान शहाबुद्दीन ग़ोरी से लड़ाई में मारा गया और सन ५८७ (हि० सन ११९१ ई०) में दिल्ली की सल्तनत मुसलमानों के हाथ आई।

लोक प्रसिद्ध वार्त्ता है कि पाण्डु वंशी दिल्ली के अन्तिम राजा नीलाधिपति ने रघुवंशी राजा शंखध्वज से १७ लड़ाई की परन्तु अन्त में परास्त हुआ और ४४ वर्ष राज करने के उपरान्त मारा गया। इस शंखध्वज को उज्जयन के तंवर राजा विक्रमादित्य ने मार कर दिल्ली पर अपना कब्जा किया। विक्रमादित्य की सन्तान ने ७९२ वर्ष तक उज्जयन में राज्य किया और दिल्ली इतने अर्से तक ऊजड़ पड़ी रही फिर बिल्हनदेव (अनंगपाल) तंवर ने उसको बसाया और बीसलदेव चौहान ने तंवरों से दिल्ली छीनी[२]।

मिस्टर विन्सेंट ए स्मिथ साहब लिखते हैं कि "ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व अर्थात् विक्रम सम्वत् के आरम्भ में दिल्ली ऊजड़ होकर सं० ७९२ वि० तक उसी अवस्था में रही फिर अनंगपाल ने उसको आबाद की। अबुल्फजल दिल्ली बसने का समय सं० ४२९ वि० लिखता है। संभव है कि यह गुप्त सम्वत् हो क्योंकि ४२९ + ३१९ = ७४८ ईसवी के होता जो दिल्ली बसने के उपरोक्त समय से मिलता हुआ है। दिल्ली में कुतबुद्दीन ऐबक की बनाई हुई मसजिद के अहाते में जो लोहे का स्तम्भ पड़ा है उस पर संग तराशों (सिलावटों) के चिन्ह में हिन्दी भाषा का यह लेख है:—"सम्वत् दिल्ली ११०९ अनंगपाल बही" "कुतबुद्दीन

---

१. इन नामों की सेहत नहीं हो सकती, क्योंकि फिरिश्तः ने प्रायः स्थानों और व्यक्तियों के नाम बहुत ही अशुद्ध दिये हैं।

२. इस दन्त कथा के अनुसार दिल्ली बसानेवाला अनंगपाल सं० ७९२ वि० में हुआ था।

की मसजिद के पास एक तालाब पर अनंगपाल के बनाये हुए मन्दिर के खम्भे अब तक मौजूद हैं जिनमें से एक पर उसका नाम लिखा हुआ है। कन्हिंघम साहब का कथन है कि जब राठौर कन्नोज में आये तब ही शायद अनंगपाल ने दिल्ली बसाई हो[1] जब कुतबुद्दीन ने मसजिद बनवाई तो वहाँ के २७ प्राचीन मन्दिर तुड़वा कर उनके पत्थर उसमें लगाये गये थे।"

"अनंगपाल प्रथम के होने का कोई सबूत नहीं मिलता अतएव कह सकते हैं कि जब अनंगपाल दूसरे ने सं० १०५२–५३ ई० में दिल्ली बसाई तब ही से वह स्तम्भ उसकी यादगार में खड़ा किया था[2] परन्तु वह स्तम्भ किसी अन्य स्थान से लाया गया था जैसे कि फिरोजशाह तुगलक अशोक के स्तम्भ को मेरठ और टोपरा से लाया। वास्तव में वह स्तम्भ सं० ४१५ के लगभग बना हुआ हो और शायद उसका असली स्थान मथुरा हो जो गुप्त राजाओं की राजधानी थी और चन्द्रगुप्त दूसरे ने उस स्तम्भ को विष्णु के मन्दिर की यादगार में बनवाया हो क्योंकि चन्द्र (चन्द्रगुप्त) के नाम का उस पर लेख है।"[3] यदि हम रासे के लेख के अनुसार अनंगपाल को पृथ्वीराज का समकालीन मान कर उसी का दिल्ली बसाना स्वीकार करें तो सिद्ध हो गया कि उससे पहले दिल्ली नहीं बसी थी परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि बीसलदेव का सं० ११२० में दिल्ली लेना और दिल्ली बसाने वाले अनंगपाल का सं० ११०६ का लेख स्तम्भ पर होना प्रत्यक्ष किये देता है कि दिल्ली पृथ्वीराज के बहुत पूर्व बस चुकी थी और पृथ्वीराज अनंगपाल नाम का कोई तंवरराजा दिल्ली में राज नहीं करता था किन्तु उस वक्त चौहान ही दिल्ली के स्वामी थे।

---

१. राठौड़ों के दान पत्रों से पाया जाता है कि राठौड़ राजा चन्द्रदेव ने सं० ११०० के लगभग कन्नौज पर कब्जा किया था।

२. क्या अजब है कि इस स्तम्भ पर ही रासे के कर्ता ने ढिल्ली किल्ली की कथा घड़ली हो।

३. देखो ! जर्नल आफ रोयल एशियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड जनवरी सं० १८६७ ई० पृष्ठ १२

अब इसका विचार करें कि रासे में यह कथा कैसे लिखी गई ? तो अनुमान कर सकते हैं कि जैसे रासे के कर्त्ता ने पृथ्वीराज से पूर्व और उत्तर में बने बहुत से वृत्तों को पृथ्वीराज की कीर्ति बढ़ाने के लिये उसी के समय में होना मान कर उसके नाम पर नामाङ्कित कर दिये, उसी प्रकार यह अनंगपाल और दिल्ली की प्रसिद्ध कथा भी जो पृथ्वीराज के जन्म से एक सौ वर्ष से कुछ पहले की थी पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त करने का यश देने के लिये (चाहे भूल से चाहे जानकर) उसके नाम के साथ लिख दी हो और कौन जाने यही कारण रासे में सम्वत् की अशुद्धि का हो।

अब रहा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का अनंगपाल की पुत्री कमलादेवी के साथ विवाह और उससे पृथ्वीराज का उत्पन्न होना और उसका दिल्ली गोद जाना सो जब कि पृथ्वीराज के समय में दिल्ली पर तंवरों का राज होना ही नहीं होता तो फिर इस कथा के निर्मूल और कृत्रिम होने में क्या संदेह रहा और न रासे के अतिरिक्त अन्य शिलालेखों व उस समय के बने हुए संस्कृत व फारसी की पुस्तकों में कहीं यह वर्णन मिलता है कि पृथ्वीराज दिल्ली गोद गया।

पृथ्वीराज विजय में सोमेश्वर के वास्ते लिखा है कि वह अरुणोराज का पुत्र था और उसकी माता गुजरात के चौलुक्य राजा जयसिंह सिद्धराज की पुत्री काञ्चनदेवी थी। अरुणोराज की प्रथम स्त्री सधवा मारवाड़ की राजकुमारी थी जिसके पेट से अरुणोराज के दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम पृथ्वीराज विजय और लेखों में नहीं दिया, दूसरा विग्रहराज (बीसलदेव) था। बड़ा पुत्र जिसका नाम नहीं दिया (जगदेव या जय सिंहदेव था) उसने अपने पिता को मार डाला। कवि लिखता है कि उसने अपने पिता की वही सेवा की जो भृगु के पुत्र (परशुराम) ने अपनी माता की की थी और केवल अपनी दुर्गन्ध पीछे छोड़कर बत्ती के समान बीत गया। विग्रहराज अपने पिता की गद्दी पर बैठा और उसके पीछे उसका पुत्र राजा हुआ। तदुपरान्त पृथ्वीभट्ट गद्दी का स्वामी बना।

सोमेश्वर के प्रधानों ने गद्दी बिठाया। इतने दिन तक वह विदेश में रहा उसके नाना जयसिंह ने उसको शिक्षा दी फिर वह चेदी देश की राजधानी त्रिपुर

(जबलपुर जिलत्र में) को गया। वहाँ चेदी के राजा की पुत्री कर्पूरदेवी से उसका विवाह हुआ। इसी कर्पूर देवी से उसके पृथ्वीराज व हरीराज दो पुत्र उत्पन्न हुए।[1]

पृथ्वीराज का जन्म संवत्:—

पृथ्वीराज के जन्म विषय में रासे के कर्त्ता ने यह दोहा लिखा है:—

दोहा

एकादस मैं पंचदह विक्रम साक अनन्द[2]
तिहिं रिपु जयपुर हरनको भ पृथिराज नरिन्द ॥

अर्थात विक्रम शक १११५ में पृथ्वीराज पैदा हुआ। सं० १२४८ वि० में पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध में मारा जाना निर्विवाद है, तो रासे के जन्म सम्वत् के अनुसार पृथ्वीराज की आयुष्य १३३ वर्ष की होनी चाहिये परन्तु रासे के कर्ता ने उसकी केवल ४३ वर्ष ही की अवस्था लिखी है अतएव सिद्ध है कि रासे में दिया हुआ पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् अशुद्ध है। इसके अतिरिक्त जो स्थिति ग्रहों की रासे के कर्ता ने उस समय लिखी वह भी गणित से शुद्ध नहीं

---

१. देखो प्रोसीडिंग्स आफ दी एशियाटिक् सोसाइटी बंगाल, नं० ४-५ अप्रैल व मई सन् १८९३ ई० में प्रोफेसर ब्हुलर की चिट्ठी का आशय।

२. इस दोहे में जो अनन्द शब्द है उसमें पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने अपने छपाये हुए रासे के आदि पर्व में एक नया अनन्द शक ग्रहण किया है अर्थात् अनन्द विक्रम शक और लिखा है कि नन्द से ९ और अ से शून्य मानके ९०+१११५ (रासे में दिया हुआ पृथ्वीराज का जन्म संवत्=१२०५ के साथ पृथ्वीराज की ४३ वर्ष की आयुष्य को मिला देने से सं० १२४८ उसके देहान्त का शुद्ध समय आ मिलता है। परन्तु प्रथम तो अनंद सनन्द सम्वत् जैसा कि उक्त पंड्याजी ने लिखा है आज तक कहीं प्रयोग होना पाया नहीं जाता और न इस बात के मानने में कोई प्रमाण मिलता है कि भाट लोग विक्रम राजा के देहान्त समय से अपना सम्वत् मानते हैं अर्थात् प्रचलित विक्रम सम्वत से एक सौ वर्ष कम, यदि भाटों की पुस्तकों में सदैव से ऐसा ही लिखने का प्रचार चला आता हो तो आज भी उन पुस्तकों में उसी प्रणाली के अनुसार सम्वत् लिखे जाने चाहियें।

ठहरती[1] अब हम अन्याय आश्रयों पर पृथ्वीराज के जन्म सम्वत् के जानने का उद्योग करें तो जितनी प्राचीन पुस्तकें व शिलालेखादि इस विषय के आज तक उपलब्ध हुए उनमें पृथ्वीराज का जन्म सम्वत कहीं दिया हुआ नहीं मिलता है, पृथ्वीराज विजय में इतना लिखा है कि सोमेश्वर के देहान्त समय पृथ्वीराज बालक था और उसकी माता कर्पूरदेवी ने कदम्ब वाम (या कदम्ब वंश के वाम नामी) प्रधान की सहायता से राज्य कार्य चलाया।

सोमेश्वर का देहान्त समय सं० १२३४–३५ शिलालेखों से पहले सिद्ध कर चुके हैं और सं० १२३६ का पृथ्वीराज का लेख भी मिलता है[2] तो इससे जान सकते हैं कि पृथ्वीराज सं० १२३५ वि० में गद्दी पर बैठा उस समय वह बालक था। यदि उस समय हम उसकी अवस्था १२ वर्ष की भी मान लें तो इस हिसाब से उसका जन्म काल सं० १२२३ वि० के लगभग ठहरता है, सं० १२४८–४९ में शहाबुद्दीन से मारा गया। उस समय उसकी अवस्था २६ वर्ष तक लगभग होगी और उसने करीब १४ वर्ष तक राज किया हो।

सोमेश्वर की पुत्री पृथा कंवरी के साथ चित्तोड़पति महारावल समरसिंह का विवाह और महारावल का पृथ्वीराज के सहायतार्थ युद्ध में मारा जाना

रासे के अनुसार पृथ्वीराज की बहन पृथा कंवरी का विवाह महारावल समरसिंह से हुआ था फिर महारावल पृथ्वीराज की सहायता के लिये सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध करने को दिल्ली गये और वहीं काम आये।

यदि हम ख्यातों से रासे के इस वृत्तान्त का मिलान करें तो अवश्य इस कथा की पुष्टि होती है और कर्नल टाड साहब ने भी (उन्हीं के आधार पर) अपने इतिहास राजस्थान में ऐसा ही लिखा है परन्तु जब साम्प्रत काल में प्राप्त

---

१. देखो एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जर्नल जिल्द ५५ पृष्ठ ५ से ५५ तक महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी का लेख पृथ्विराज रासे पर।

२. देखो पृ० ८६ का नोट (ग)

हुए अन्य अन्य आश्रयों से शुद्ध हाल का पता लगावें तो रासे की यह कथा लिखने वाले की केवल अक्ल ही प्रगट करती है और कह सकते हैं कि रासे की पुस्तक रचे जाने के पीछे ही इस कथा का मेवाड़ के इतिहास में प्रवेश हुआ हो अर्थात सं० १५१७ वि० के पीछे।

कुम्भलगढ़ पर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा को मिले हुए शिलालेख में जो महाराणा कुंभ कर्ण[1] ने सं० १५१७ में लिखवाये थे, श्लोक १६० से लेकर श्लोक १७६ तक महारावल समरसिंह का वर्णन किया है जिसमें कहीं इस बात का पता तक नहीं कि समरसिंह ने पृथाकंवरी से विवाह किया या पृथ्वीराज के सहायतार्थ दिल्ली जाकर मुसलमानों के हाथ से मारा गया। उक्त शिलालेख के प्रामाणिक होने के लिये उसके आरंभ में ऐसा लिखा है कि "यह हमने अनेक प्राचीन प्रशस्तियों आदि से संग्रह करवाकर पूरे शोध के साथ लिखवाया है।"

श्री एकलिंग महात्म्य नामी ग्रन्थ व उपरोक्त शिलालेख में महारावल समरसिंह के वर्णन में यह श्लोक लिखा है:—

> स रत्नसिंहं तनयं नियुज्य स्वचित्रकूटाचल रक्षणाय।
> महेश पूजा हतकल्मषोय इला पतिः स्वर्ग पतिर्बभूव ॥

महारावल समरसिंह और उनके पिता तेजसिंह[2] के समय के कई शिलालेख मिल चुके हैं उनमें से कुछ प्रमाण के वास्ते नीचे दर्ज किये जाते हैं जिनसे समरसिंह का सही समय मालूम होजावेगा—

---

१. यह महाराणा मेवाड़ के महा विद्वान थे और विजयी महाराणाओं में से गिने जाते हैं जिन्होंने सं० १४९० से सं० १५२५ वि० तक राज किया।

यह लेख श्याम पाषाण की ४ बड़ी शिलाओं पर खुदा है जिसमें गुहादित्य (गोहिल) से लेकर महाराणा कुम्भकर्ण तक मेदपाट देश के राजाओं का क्रमवार सविस्तार वर्णन लिखा हुआ है। यह शिलालेख अभी विक्टोरिया हॉल उदयपुर में मौजूद है। अफसोस की दूसरी शिला पूरी नहीं हुई और तीसरी का कुछ भाग टूट जाने से कई श्लोक साफ नहीं पढ़े जाते हैं।

२. टाड साहब ने तेजसिंह को समरसिंह का दादा लिखा है।

चित्तोड़ की तलेटी में गम्भीरी नदी के पुल के एक कोठे में लगा हुआ लेख:—

"सं० १३२४ वर्षे इह श्री चित्रकूट महा दुर्गतलहट्टिकायां.........."
"श्री रत्नप्रभसूरी णामादेशात राज भगवन्नारायणमहा"
"राज श्री तेज:सिंह देव कल्याण विजयी राजा वियनमान प्रधान"
"राजपुत्र कांमा पुत्र..आदि"

चित्तोड़ से तीन कोस पश्चिम घागसा नामी गांव की एक बावड़ी में लगा हुआ महारावल तेजसिंह का लेख पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को मिला:—

"गुहिलान्वय संभूतो बप्पको भूद्भुवो विभु: ।"
"..........श्र्केपपादाब्ज द्वंद्वयन्दन तत्पर: ॥३॥"
"बहूश्वनीतेपु महीश्वरेपु श्रीपद्मसिंह: पुरुषोत्तमोभूत"
"सर्वांग हृद्यं यमवाप्यलक्ष्मीस्तस्थौ विहायास्थिरतां सहोत्थां ॥४॥"
"श्री जैत्रसिंहस्तनुजोस्य जात: प्रत्यर्थी श्रभृत प्रलपानिलाभ"
"सर्वत्रयेन स्फुरतांनकेपां चित्तानिकम्पं गमितानिसद्य: ॥५॥"

"अप्रतिहतप्रतापस्तेज: सिंहसुतोस्य जयतिचिरं.......... संवत १३२२ वर्षे कार्तिक वदि १२" आदि

(भावार्थ) गुहिल वंश में बापा हुआ। उसके पीछे कई राजाओं के पीछे पद्मसिंह हुआ। उसका पुत्र जैत्रसिंह और उसका पुत्र तेजसिंह अभी राज करता है। सं० १३२२ कार्तिक वदि १२।

प्राचीन संस्कृत पुस्तकों की मिस्टर पीटर्सन की पांचवीं रिपोर्ट के पृष्ठ २३ में विजयसिंहाचार्य के "श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र पूर्णि:" के अन्त में लिखा है:—

"सम्वत १३१७ वर्षे महा सुदि ४ आदित्य दिने श्री मदाघाट दुर्गे"
"महाराजाधिराज परम भट्टारक उमापति वरलब्ध"
"प्रौढ़ प्रताप समलंकृत श्री तेजसिंह देव कल्याण विजय राज्ये"
"तत्पाद पद्मोपजीविनि महामात्य की समुद्धरे मुद्राव्यापारान"

"परिपंथयति श्रीमदाघाट वास्तव्य पं० रामचन्द्र शिष्येण"
"कमल चन्द्रेण पुस्तिका व्यालेखि"

(भावार्थ) सं० १३१७ में यह पुस्तक आघाटपुर (आहड़) में लिखा गया जबकि वहाँ पर महाराजाधिराज तेजसिंह राज करते थे।

इन उपरोक्त लेखों से सं० १३१७ व १३२४ वि० तक समरसिंह का पिता तेजसिंह का विद्यमान होना सिद्ध है। महारावल समरसिंह के समय का लेख सं० १३३५ वैशाख सुद ५ का चित्तोड़ में नोकोठा के पीछे एक पत्थर पर खुदा हुआ था वह अब विक्टोरिया हाल उदयपुर में रखा हुआ है।

एक लेख सं० १३४२ मार्ग शीर्ष सुद १ का आबू पर अचलेश्वर के मठ में लगा है।

एक और लेख सं० १३४४ वैशाख शुदि ३ का चित्तोड़ में मिला है जो विक्टोरिया हाल में है, इत्यादि शिलालेखों से १३४४ वि० तक महारावल समरसिंह विद्यमान होना स्पष्ट है। अतएव कदापि संभव नहीं कि वे पृथ्वीराज के समय में हुए हों परन्तु उनका शुद्ध समय सं० १३२५ से सं० १३४४ के बीच का ठहरता है।

इसके अतिरिक्त यह भी बात ध्यान में लाने योग्य है कि रासे के कर्ता ने भी समरसिंह के पुत्र का नाम रत्नसिंह लिखा है। इसी रत्नसिंह के समय में देहली के पातशाह अलाउद्दीन खिलजी ने सं० १३६० वि० में चित्तोड़ पर चढ़ाई की थी। अब यदि रावल समरसिंह पृथ्वीराज का समकालीन माना जावे तो क्या उसका पुत्र अलाउद्दीन का समकालीन हो सकता है? कदापि नहीं। क्योंकि रासे में दिये हुए पृथ्वीराज के मृत्यु समय से तो (सं० ११५८ वि०) इसका अंतर २०२ वर्ष का और पृथ्वीराज के शुद्ध मृत्यु सम्वत् (१२४८–४६) से ११२ वर्ष का रहता है। अतएव स्पष्ट है कि रासे में दिया हुआ यह वृतान्त ठीक नहीं कि सोमेश्वर की पुत्री पृथाकंवरी के साथ चित्रकूटाधिपति महारावल समरसिंह का विवाह हुआ और महारावल पृथ्वीराज की सहायतार्थ दिल्ली जाकर शहाबुद्दीनगोरी से युद्ध में मारे गये।

हां, महाराणा राजसिंह के समय की सं० १७७२ वि० की लिखी हुई राजनगर की प्रशस्ति में रासे के अनुसार वर्णन मिलता है। परन्तु उसमें स्पष्ट लिखा है कि यह वर्णन भाषा रासा[1] की पुस्तक से उद्धृत किया है[2]।

आबू के प्रमार राजा सलख की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाहः—

रासो में लिखा है कि आबूगढ़ के प्रमार राजा सलख की पुत्री इच्छनी को गुजरात के चौलुक्य राजा भीमदेव (भोला भीम) ने वरना चाहा परन्तु इच्छनी की मंगनी पृथ्वीराज के साथ हो चुकी थी। इसलिये राजा सलख और उसके पुत्र

---

१. पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने अपने रासे की संरक्षावाली पुस्तक में लिखे हुए 'भाषा रासा' को भीखा रासा नामसे एक जुदा पुस्तक होना लिखा है। भावनगर में छपी हुई 'प्राचीन शोध संग्रह' नामी पुस्तक में छापने वाले ने भूल से 'भाषा' को 'भीषा' कर दिया। शायद इसी भूल ने उक्त पंड्याजी को भूल में डालकर भीखारासा की उत्पत्ति कराई हो।

२. चित्रकूटाधिपति महारावल समरसिंह, कन्नौजाधिपति राजा जयचन्द राठौड़ और जयपुर के राव पज्जून आदि (रासे के अनुसार) पृथ्वीराज के समकालीन राजा थे। ऐसा मान लेने से मेवाड़, मारवाड़, ढूंढाड़ आदि राजपूताने की कई रियासतों की वंशावलियों में संवत्सरों का बहुत अन्तर पड़ गया है क्योंकि अब इन वंशावली लिखने वालों ने रासो में दिये हुए पृथ्वीराज के सम्वत से एक दो शताब्दी पहले या पीछे के काल को पृथ्वीराज के समय में मिलाया तो अवश्य उनको वह दिया हुआ अन्तर निकालने के वास्ते पीछे की कई पीढ़ियों तक प्रत्येक राजा के राज समय में कुछ समय बढ़ाना पड़ा जैसे कि उदयपुर की ख्याति में महारावल समरसिंह का पाट सम्वत् ११०६ दिया है तदनुसार उनके पीछे होने वाले चवदह पन्द्रह महाराणा के राज समय में गड़बड़ पड़ती है। प्रगट है कि महाराणा राहप से महाराणा लक्ष्मणसिंह (लाखासी) तक ५० वर्ष के अन्तर में ९ राजा इस राजगद्दी पर बैठे परन्तु ख्याति के अनुसार उन्हीं राजाओं का राज समय १२५ वर्ष का ठहरता है। इसी प्रकार जयपुर, जोधपुर आदि की वंशावलियों में भी जानो। इससे तो यह पाया जाता है कि इस पृथ्वीराज रासे की पुस्तक ने राजपूताने की कई रियासतों के शुद्ध ऐतिहासिक समय में बहुत कुछ अन्तर डाल दिया है।

जैनराव ने भीमदेव को इच्छिनी ब्याह ने से इन्कार किया। इस पर भीमदेव ने क्रोध कर आबू पर चढ़ाई की और उसको विजय कर वहाँ अपना अधिकार कर लिया। राजा सलख इस युद्ध में काम आया। पृथ्वीराज ने सहायता देकर भीमदेव को परास्त किया और जैनराव को पीछा आबू दिलवा इच्छनी से अपना विवाह किया। यह जैनराव पृथ्वीराज के मुख्य सामन्तों में गिना गया।

यदि यह कथा सत्य हो तो गुजरात के इतिहासों में भी इसका वर्णन अवश्य मिलना चाहिये सो नहीं मिलता परन्तु इसके विरुद्ध उन प्राचीन इतिहासों से यह सिद्ध होता है कि आबू का प्रमार राजा गुजरात के राजा भीमदेव के आधीन था और भीमदेव की राजधानी पर जाती हुई मुसलमानी फौज से उसने युद्ध किया था; इसकी तसदीक फारसी तवारीखों से भी होती है।

तारीख फिरीश्तः में नेहरवाल की लड़ाई के विषय में लिखा है—"सन ५९३ हि० (सन ११९८ ई०) में कुतुबुद्दीन नेहरवाल के राजा की चश्मनुमाई को चढ़ा रास्ते में धांतली व बजोल[1] नाम के दो किले छीने। उसको खबर मिली कि वालनवारासी (नाम गलत मालूम देता है) राजपूत नेहरवाल के राजा से मिलकर सिरोही के पास आबूगढ़ के नीचे पड़े हैं। सुलतान कुतुबुद्दीन उनसे जंग करने को मुतवज्जा हुआ और खूंख्वारजंग के बाद राजपूतों ने पीठ दिखलाई। इस लड़ाई में करीब ५० हजार हिन्दू कतल हुए और बीस हजार से जियादह लौंडी गुलाम बनाये गये।"

ताजुल्मआसिर नामी दूसरी फारसी तवारीख में इसी जंग का हाल यों दिया है:—

"सं० ५९३ हि० (स० ११९८ ई०) माह सफर में खुसरू (कुतुबुद्दीन) अजमेर से रवाना हुआ पाली और नाडोल के किले उसके हाथ आये, दुश्मन पहले ही से उन्हें खाली करके भाग गये थे। आबू पहाड़ के नीचे रायकरन और

1. ब्रिग साहब ने अपने फिरिश्तः के तर्जुमे में इन नामों को बाली वनाडोल लिखा है और ताजुलमआसिर में पाली वनाडोल है।

और दारावष (धारावर्ष) बहुतफौज जमा किये रास्ते की एक घाटी में पड़े थे । ऐसे संगीन मोर्चों में उन पर हमला करने की मुसलमानों को जुरअत न हुई क्योंकि पहले खास उसी मुकाम पर सुल्तान मुहम्मद सेम गोरी (शहाबुद्दीन) जख्मी हुआ था। हिन्दुओं ने मुसलमानों की इस पसोपेश को देखकर जाना कि ये डर गये हैं, घाटी छोड़कर मैदान में आगये। सुबह से दुपहर तक सख्त लड़ाई हुई आदि"

इस उपर के बयान से साफ है कि आबू का राजा धारावर्ष उस वक्त गुजरात के राजा के अधीन था। कई दानपत्र व शिलालेख आदि से यही पाया जाता है कि सं० १२२० वि० से लेकर सं० १२६५ वि० तक प्रमार राजा धारावर्ष आबू की राजगद्दी पर रहा। उसके पुत्र का नाम सोमसिंह और उसके भाई का नाम प्रह्लाददेव था।

आबू पर अचलेश्वर महादेव के मन्दिर में अष्टोत्तर शतलिंग के नीचे वस्तुपाल के समय का लेख (सं० १२८६ के लगभग का) पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को मिला:—

"पुरातस्यान्वये राजा धूमराजाह्वयो भवत"
"येन धूमध्वजेनैव दग्धा वंशाः त्तमाभ्रताम" ॥ १२ ॥
"अपरेपिन संदिग्धा धंधूध्रु वभटादयः"
"जाता कृता ह्वोत्साह बाह्वो बह्वस्ततः" ॥ १३ ॥
"तदनन्तरमभ्रं गित कीर्ति सुधासिन्धु शुधित व्योमा"
"श्री रामदेव नामा कामादपि सुन्दर सोभूत्" ॥ १४ ॥
"तस्मान मही······विदितान्य कलत्र गात्र स्पर्शो यशो"
"धवल इत्यवलं बतेस्म यो गूर्जर चिति पति"
"(प्रतिपत्तमार्जो) वल्लाल मालभत मालव
मेदिनींद्रम" ॥ १५ ॥
"धारावर्षस्तत्सुतः प्रापलक्ष्मीम् लिप्र चोणिः"
"शोणितैः कुंकुणेन्दोः । सर्वत्रापि स्वैश्चारित्रैः"
"पवित्रे··················रावर्वेणेव येन" ॥ १६ ॥ आदि

इस लेख में आबू के प्रमार राजाओं की वंशावली दी है अर्थात् पहले धूमराज फिर धन्धु, ध्रुवभट आदि बहुत राजा हुए तत्पश्चात् रामदेव, उसके यशोधवल और उसके पीछे धारावर्ष हुआ।

इस धारावर्ष के समय का एक लेख सं० १२२० वि० का सीरोही राज में रोहेड़ा गांव से ५ मील कायदरा (कासहृद) नामी ग्राम में काशी विश्वेश्वर महादेव के मन्दिर के सामने एक स्तम्भ पर खुदा पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को मिला है।

आबू पर ओरिया गांव में कनखलेश्वर के मन्दिर में धारा वर्ष का सं० १२६५ वि० का लेख है:—

"वंशोद्धरण परम भट्टारक महाराजाधिराज श्रीमद्भीम देव"
"प्रवर्द्धमान विजयराज्ये श्री करणे महामुद्रामात्य"
"महं० भाभ्र् प्रभृति समस्त पंचकुले परिपंथयति चन्द्रावती"
"नाथ मण्डलीका सुरशत्रु श्री धारावर्ष देवे एकात पत्र"
'वाह कत्वेन भुवंपालपति" .... आदि।

आबू पर वस्तुपाल तेजपाल के मन्दिर की प्रशस्ति सं० १२८७ वि० की में उसी धारावर्ष के पुत्र सोमसिंह का उस समय विद्यमान होना लिखा है।

सुतरां, यह वही धारावर्ष है जिसका जिकर फारसी तवारीखों में किया है। वह उस समय आबू का राजा था जो पृथ्वीराज के जन्म समय से पूर्व ही आबू की गद्दी पर बैठा और उसके (पृथ्वीराज के) मरने के १८ वर्ष पीछे तक राज करता रहा फिर किस प्रकार माना जावे कि उसी समय में सलख जैतनाम के कोई अन्य राजा आबू पर राज करते थे ?

जब कि सलख जैत नाम के कोई राजा ही उस वक्त आबू पर हुए तो फिर उसकी पुत्री इच्छिनी से पृथ्वीराज का विवाह होना, और भीमदेव के साथ युद्ध करने में सलख का मारा जाना और जैतराव को पीछा आबू का राज पृथ्वीराज की सहायता से मिलना आदि, रासे में दिया हुआ वृत्तान्त कल्पित नहीं तो अन्य क्या समझा जावे ?

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का गुजरात के राजा भीमदेव के हाथसे मारा जाना और पृथ्वीराज का भीमदेव को मारना

रासे में लिखा है कि पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर गुजरात चौलुक्य राजा भीमदेव (भोले भीम) के हाथ से युद्ध में मारा गया और अपने पिता का बैर लेने को पृथ्वीराज ने गुजराज पर चढ़ाई कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गुजरात की गद्दी पर बिठाकर उसके राज्य में से कुछ पर्गने अपने राज में मिला लिये।

इस कथा की सत्यता की परीक्षा करने के लिये प्रथम हमको भीमदेव के राज समय का निश्चय करना चाहिये। गुजरात के प्राचीन इतिहासों व फार्ब्स साहब कृत रासमाला से विदित होता है कि भीमदेव दूसरा (जो भोला भीम करके प्रसिद्ध था) अजयपाल का छोटा भाई, कुमारपाल का पुत्र स० ११७८ ई० (सं० १२३५ वि०) में गद्दी बैठा था और स० १२४१ ई० (सं० १२९८ वि०) तक ६३ वर्ष तक राज्य करके परलोक को सिधारा। इस भीमदेव के कई लेख व दानपत्रादि मिलते हैं। यहाँ विस्तार भय से एक ही दानपत्र का खुलासा दिया जाता है जिससे सं० १२९६ वि० तक भीमदेव का विद्यमान होना प्रगट होगा:—

> "अभिनव सिद्धराज सप्तमचक्रवर्ती श्री मद्भीमदेवः स्वभुज्यमान"
> "वर्द्धिपथकान्तर्वर्तिनः। समस्तराजपुरुषान ब्राह्मणोत्तरां"
> "स्तन्नियुक्ताधिकारिणो जनपदांश्चबोधयत्यस्तुवः विदितं यथा॥"
> "श्री मद्विक्रमादित्योत्पादित संवत्सरशतेषु द्वादशसुषट्नव"
> त्युत्तरेषु मार्ग्ग मासीप कृष्ण चतुर्दश्यां रविवारेऽत्रां कतोपि॥"
> विक्रम संवत् १२९६ वर्षे मार्ग्ग वदि १४ रवा वद्येह, आदि[१]।

मेरुतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार भीमदेव सं० १२३५ वि० में गद्दी बैठा और सं० १२९८ वि० तक राज करता रहा। इसके पीछे तिहुनपाल (त्रिभुवनपाल) सं० १२९९ वि० में राजा हुआ।

१. देखो इन्डियन् एन्टीक्वेरी जिल्द ६ पृष्ठ २०७।

फारसी तवारीख तबकाते नासिरी का कर्त्ता लिखता है कि "सं० ५९३ हि० (स० ११९७ ई०) में कुतुबुद्दीन ने नेहरवाल के राय भीमदेव को शिकस्त दी। राय भीमदेव उस वक्त नाबालिग था। और फिरश्तः वगैरह और तःरीखों से भी इसकी तस्दीक होती है। पृथ्वीराज विजय और हम्मीर महाकाव्य से पाया जाता है कि सोमेश्वर अपनी मृत्यु से मरा। हम्मीर महाकाव्य का कर्त्ता लिखता है कि "गंगदेव के पीछे सोमेश्वर राजा हुआ वह कर्पूरदेवी से ब्याहा था जिसके पेट से पृथ्वीराज उत्पन्न हुआ। वह बालक नैरोग्य और पराक्रमी था। जब पृथ्वीराज सर्व शस्त्र शास्त्र विद्या में कुशल होगया तो सोमेश्वर उसको राज सौंप आप योगाभ्यास करने को वन में चला गया और वहीं उसका देहान्त हुआ।"

पृथ्वीराज विजय में लिखा है की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिन पीछे सोमेश्वर मर गया।"

सोमेश्वर का देहान्त समय सं० १२३४-३५ वि० का पहले निश्चय कर आये हैं अर्थात् भीमदेव के गद्दी पर बैठने और सोमेश्वर के परलोकवास करने का काल मिलता जुलता ही है। प्राचीन संस्कृत पुस्तकों से प्रत्यक्ष है कि सोमेश्वर अपनी मृत्यु से मरा और न गुजरात के प्राचीन इतिहास में कहीं ऐसा वृत्तान्त मिलता है कि भीमदेव ने सोमेश्वर को युद्ध में मारा। फिर रासे का यह कथन कैसे सत्य समझा जा सकता है ?

अब भीमदेव का पृथ्वीराज के हाथ से मारा जाना, यह तो सर्वथा अयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि फ़ारसी तवारीखों, भीमदेव के समय के लेख, दानपत्रों और गुजरात के प्राचीन इतिहास आदि से स्पष्ट है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु के पीछे ५० वर्ष तक राज्य करता रहा। भीमदेव के पीछे गुजरात की गद्दी पर उसका पुत्र त्रिभुवनपाल बैठा था। रासे में दिया हुआ कचराराय नाम केवल कचरे के तुल्य कपोल कल्पित है।

अब यदि यह विचार करें कि रासे में लिखे अनुसार न तो पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीमदेव का पृथ्वीराज के हाथ से मारा जाना सही ठहरा। फिर रासे के कर्त्ता ने इस निर्मूल कथा को

कैसे अपनी पुस्तक में लिख दिया ? तो अनुमान कर सकते हैं कि रासा रचने वाले ने जैसे अन्य अन्य बनाव, जो पृथ्वीराज के समय में नहीं हुए थे, उनको भी पृथ्वीराज की कीर्ति बढ़ाने के लिये उसी के नाम पर नामाङ्कित कर दिये हैं उसी प्रकार यह भी लिख दी हो।

गुजरात के राजा भीमदेव प्रथम ने, जो चामुण्डराज का भतीजा और नागराज का पुत्र था धार के प्रमार राजा भोज को युद्ध में जीता था और आबू भी प्रमारों से छीन लिया था। यह भीमदेव सं० १०७६ वि० (स० १०२२ ई०) में गद्दी बैठा और स० ११२६ वि० (स० १०७२ ई०) तक पचास वर्ष राज किया। इसी के समय में गज़नी के पादशाह सुल्तान महमूद ने गुजरात पर चढ़ाई करके सोमनाथ के मन्दिर को लूटा और इसी भीमदेव के समय में (स० १०४३ ई० या सं० ११०० वि०) में भारत के क्षत्री राजाओं ने मिल कर विचार किया कि मुसलमानों को देश से निकाल देना चाहिये और अजमेर के चोहाण राजा बीसलदेव की सर्दारी में यवनों को परास्त किया। उस वक्त भीम चहुवाणों के साथ न मिल कर अलग हो रहा था[1] क्या अजब है कि रासो के कर्त्ता ने यह सब चरित्र पृथ्वीराज के समय में होना प्रगट करने के लिये पहले भीमदेव को दूसरा भीमदेव और बीसलदेव को पृथ्वीराज मान या जान लिया हो। तथापि सलख जैत नाम का तो कोई प्रमार राजा उस वक्त भी आबू पर राज नहीं करता था। उस वक्त धुन्धुक प्रमार आबू का राजा था।

१. कर्नल् टाड साहब ने ऐसा वृत्तान्त लिखा है। रासे के कर्ता ने जो बीसलदेव के दिग्विजय के वर्णन में सर्व राजाओं का उसकी सेवा में आना परन्तु गुजरात के सोलंखी राजा बालुक राय का न आना लिखा है। उस वृत्तान्त का सम्बन्ध इस भीमदेव के वृत्तान्त से पाया जाता है। परन्तु महमूद के समय में बीसलदेव की सर्दारी में क्षत्री राजा महमूद से लड़े हों; यह फारसी तवारीखों में दर्ज नहीं, हां लाहोर के राजा अनंगपाल की सहायता करके बहुत हिन्दू राजा महमूद से लड़े थे।

जयपुर के महाराज पज्जवन का राज समयः—

रासे के कर्त्ता ने जयपुर के राय पज्जून को पृथ्वीराज का सामन्त और समकालीन लिखा है और उसी के अनुसार जयपुर राज की ख्यात में भी दर्ज है कि "राव पज्जून (या पज्जवन) जन्हड़ देव का पुत्र था जो सम्वत ११२७ वि० में राजगद्दी पर बैठा और सम्वत् ११५१ जेठ वदि ३ को पृथ्वीराज चहुवाण के साथ कन्नौज के झगड़े में काम आया।" विशेष वृत्तान्त रासे के रूपक भी उसमें लिखे हैं।

यद्यपि पज्जवन या उसके क्रमानुयायी राजा के समय का कोई दानपत्र शिलालेख आदि अब तक उपलब्ध न हुआ परन्तु "इतिहास राजस्थान" का कर्ता रामनाथ रत्नू लिखता है कि कछवाहों की पृथक पृथक वंशावलियों से राव पज्जून का राज्य संवत् १०८४ से ११५४ तक पाया जाता है। उन वंशावलियों में यह नहीं लिखा कि पज्जून पृथ्वीराज के समय में हुए या उसके साथ किसी लड़ाई में गये। इससे निश्चय होता है कि पज्जून पृथ्वीराज के पहले हुआ था[१]।

---

१. ग्वालियर के किले में से मिले हुए प्राचीन लेखों में सं० ११६१ वि० तक के कच्छपघात (कछवाहे) राजाओं के नाम हैं जिन्होंने ग्वालियर में राज किया अर्थात्—लक्ष्मण, वज्रदामा, मंगल, कीर्ति, भुवन, देवपाल, पद्मपाल, सूर्यपाल, महीपाल, भुवनपाल, और मधुसूदन।

जनरल् कनिंगम् साहब लिखते हैं कि तेजकर्ण ने जिसका दूसरा नाम दूलहराय (ढोलाराम) हो स० ११२६ ई० (सं० ११८६ वि० में ग्वालियर छोड़कर ढुंढाड़ में अपना राज स्थापन किया हो। देखो आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया जिल्द २ पृष्ठ ३७४—७५।

ख्यातों के अनुसार राव पज्जून दूलहराम से चौथी पीढ़ी में हुए अर्थात् दूलहराय से पज्जवन के देहांत समय तक का अन्तर (यदि पृथ्वीराज की मृत्यु से ७ वर्ष पूर्व माना जावे तो) ५५ वर्ष का ठहरता है। इस प्रकार प्रज्जवन का पृथ्वीराज के समय में होना सम्भव है परन्तु यह समय रासे में दिया हुआ न समझा जावे अर्थात् ११५१ संवत् क्योंकि उस वक्त तो ढुंढाड़ में कछवाहों का राज होना भी सिद्ध नहीं होता।

पण्डित हरिवल्लभ कृत "जयनगर पश्चरंग" के अनुसार पज्जवन, जिसको पजनदेव करके लिखा है, सं० १०७६ में गद्दी बैठा और सं० ११९३ वि० में काल नाम हुआ था।

देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाहः—

रासे में लिखा है कि देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री ससिव्रता से पृथ्वीराज का विवाह हुआ था। इस कथन की सत्यता में भी सन्देह हुए बिना नहीं रहता क्योंकि देवगिरि के नगर की नीम ही पृथ्वीराज की मृत्यु से केवल ४ वर्ष पूर्व पड़ी थी और तभी वहां यादवों का राज स्थापन हुआ। दक्षिण के यादव राजा वीर बल्लाल, विष्णुवर्धन के पौत्र ने वहां के अंतिम चालुक्य राजा सोमेश्वर चौथे के सेनापति बह्म या बावन को पराजित कर दक्षिण में अपना राज जमाया परन्तु उत्तरी शाखा के यादवों में से भिल्लम ने दक्षिण में बहुत कुछ विजय प्राप्त की और होसल्प शाखा के यादवों को परास्त कर कृश्ना नदी के उत्तर तक सर्व देश अपने आधीन किया। इसी भिल्लम ने शक सं० ११०६ (वि० संवत् १२४४) में देवगिरी के नगर की नीम डाली और फिर उस नगर को अपनी राजधानी बनाया। शक सं० १११४ (१२४६ वि०) में वीर बल्लाल ने लोकी गुण्डीयालकुण्डीग्राम के पास भिल्लम को युद्ध में परास्त कर देश फिर अपने हस्तगत किया।[1]

प्रथम तो पृथ्वीराज की मृत्यु तक देवगिरि का नगर पूरा बस ही न चुका था और न वहां के राजाओं को परस्पर के झगड़ों से अवकाश मिला होगा, तत्पश्चात् शक सम्वत् ११९३ से लेकर शक सं० ११३५ (सं० १२७० वि०) तक भान नाम का कोई राजा देवगिरि में हुआ नहीं।

---

[1] देखो "अर्ली हिस्टरी आफ डैकन" (दक्षिण का प्राचीन इतिहास). भंडारकर कृत, पृष्ठ ८०—८१.

रणथम्भोर के यादव राजा की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह

ऐसे ही रासे के कर्त्ता ने रणथम्भोर के यादव राजा भान की पुत्री हंसावती से पृथ्वीराज का विवाह होना लिखा है, यद्यपि देवगिरि में तो उस समय यादवों का राज हो भी गया था परन्तु रणथम्भोर में यादव कहां से आये ? इस लेख से तो यह अनुमान हो सकता है कि रासा लिखने वाले को चहुवाणों का पुराना हाल भी थोड़ा ही मालूम था, क्योंकि पृथ्वीराज के समय से पहले ही रणथम्भोर पर चहुवाणों का राज हो गया था जो चवदवीं शताब्दी तक उन्हीं के आधीन रहा। यहां के अंतिम राजा हम्मीरदेव को देहली के पातशाह अलाउद्दीन खिलजी ने मारा था। पृथ्वीराज के समय में रणथम्भोर पर पृथ्वीराज प्रथम का प्रपौत्र गोविन्दराज राज्य करता था जैसा कि हम्मीर महाकाव्य में लिखा है:—

जब हरीराज ने पृथ्वीराज की शोकजनक मृत्यु का हाल सुना तो वह अत्यन्त ही दुखी हुआ। रोते हुए उसने पृथ्वीराज के मृतक शरीर का दाहकर्म करके आप गादी पर बैठा। गुजरात के राजा ने उसकी कृपा संपादन करने के लिये कई एक वेश्यायें उसके पास भेजीं जो महा रूपवती और गायन विद्या में कुशल थीं। हरीराज उन वेश्याओं पर ऐसा मोहित हुआ कि वह अपना सारा समय उन्हीं के साथ राग रंग में बिताने लगा, अन्त में प्रजा बिगड़ी और सेना में उपद्रव मचा।"

शहाबुद्दीन ने सोचा कि हरीराज को गारत करने का यह अच्छा मौका है और उस पर चढ़ आया। पृथ्वीराज की मृत्यु के पीछे हरीराज ने यह प्रतिज्ञा करली थी कि मैं मुसलमान का मुख तक न देखूंगा। इसलिये वह शत्रु के सन्मुख न होसका और अपने सर्व कुटुम्बियों सहित चिता में जल मरा।"

हरीराज के पुत्र नहीं था और उसके आधीन स्वजनों को शहाबुद्दीन ने बहुत तंग किया तब उन्होंने मिलकर सलाह की कि अब क्या करना चाहिये ? शहाबुद्दीन प्रबल और हम निर्बल हैं। इसलिये यहाँ हमारा टिकाव नहीं हो सकता। फिर वे अजमेर छोड़कर पृथ्वीराज (प्रथम) के प्रपौत्र गोविन्दराज के पास रणथंभोर में चले गये। गोविन्दराज के पिता ने उसे देश निकाला दे दिया था और उसने अपने भुजबल से नया देश जीत रणथंभोर को अपनी राजधानी बनाया था।"

न मालूम रासे के कर्त्ता ने ऐसी बड़ी भूल क्योंकर की ? क्या संभव है कि यदि चन्द (जिसको पृथ्वीराज का समकालीन मानें) इस रासे का कर्त्ता होता तो ऐसी भूल करता ?

सुल्तान गोरी का पृथ्वीराज को पकड़कर गज़नी लेजाना और पृथ्वीराज के तीर से सुल्तान का मारा जाना आदि:—

बड़ी लड़ाई—इस प्रस्ताव में रासे का कर्त्ता लिखता है कि अन्त में जब सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी बड़ी भारी फौज लेकर दिल्ली पर चढ़ आया और घोर संग्राम होने के पीछे सुल्तान, पृथ्वीराज को कैद कर गज़नी लेगया। चन्द, पृथ्वीराज का भेजा हुआ, जम्बू कश्मीर के राजा हाहुलीराय [1] के पास सहायता मांगने को गया था वहीं देवी जालन्धरी के मन्दिर में कैद होगया। जब वह (चन्द) पीछा दिल्ली आया और उसको मालूम हुआ कि सुल्तान, पृथ्वीराज को कैद करके गज़नी लेगया है तो आप भी जोगी बनकर गज़नी पहुंचा। वहां किसी ढब से सुल्तान से मिलकर उसको पृथ्वीराज की तीरन्दाजी का तमाशा देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चन्द के संकेतानुसार बाण मारकर सुल्तान का काम तमाम किया और फिर चन्द व आप दोनों अपने अपने हाथ से अपना गला काट कर मर गये।

इस लड़ाई व पृथ्वीराज की मृत्यु के विषय में अन्यान्य ग्रंथकारों के लेख पाठकों के सन्मुख किये जाते हैं। हम्मीर महाकाव्य में पृथ्वीराज का वर्णन यों लिखा है:—

"जब कि पृथ्वीराज न्यायपूर्वक प्रजापालन करता और अपने शत्रुओं को सदा भय में रखता था, उसी समय शहाबुद्दीन इस पृथ्वी को आधीन करने का परिश्रम करने लगा। पश्चिम प्रान्त के राजा उसके अन्याय से महा दुखी हुए।

१. कश्मीर के इतिहास राज तरंगिणी के अनुसार सं १९२७ ई० से लेकर सं० ११९८ ई० तक (अर्थात् पृथ्वीराज की मृत्यु के ६ सात वर्ष पीछे तक) हाहुलीराय नामका कोई राजा कश्मीर में नहीं हुआ।

गोविन्दराज के पुत्र चन्द्रराज को अग्रगण्य कर सब मिलके पृथ्वीराज के पास आये। दस्तूर के मुवाफिक़ नज़र न्यौछावर करके राजा लोग बैठे। उन सब को उदास देखकर पृथ्वीराज ने उनसे इसका कारण पूछा तो चन्द्रराज बोला कि महारज! शहाबुद्दीन नाम का एक यवन, राजाओं का नाश करने को उत्पन्न हुआ है। उसने हमारे कई नगर लूट कर जला दिये, और हमें बहुत बुरी दशा में कर दिया है। देश में कोई ऐसी घाटी नहीं रही जहाँ राजपूत लोग उसके अन्याय से बचने को जाकर न छिपे हों। जो राजपूत शस्त्र लेकर उसके सन्मुख होता है वह तत्काल यमपुरी को पहुंचता है। मेरे ख्याल में तो शहाबुद्दीन दूसरा परशुराम है जिसने क्षत्री कुल का नाश करने को फिर जन्म धारण किया है। लोग ऐसे भयातुर होगये हैं कि आराम छोड़कर यह नहीं जानते कि वह किस दिशा से आवेगा—च्यारों ओर दृष्टि दिये रहते हैं. बड़े बड़े उत्तम क्षत्रीकुलों का उसने नाश कर दिया और अब मुल्तान में अपनी राजधानी स्थापन की है। ये राजालोग उस प्रबल शत्रु और उसके निष्कारण दुखसे बचने के लिये आपके शरण में आये हैं।"

"शहाबुद्दीन के दुराचारों का वृत्तान्त सुनने से पृथ्वीराज को महाक्रोध उत्पन्न हुआ। जोश में आकर मूंछ पर ताव दिया और राजाओं से कहा कि यदि मैं शहाबुद्दीन के हाथ में हथकड़ी और पांव में बेड़ी न डालूं और घुटनों के बल गिरा कर तुम लोगों से क्षमा न मंगवाऊं तो असल चहुआण नहीं।"

"कुछ दिनों पीछे पृथ्वीराज सुसज्जित सेना लेकर मुल्तान की तर्फ चला और कई मंज़िलें तै करके शत्रु के देश में जा पहुंचा। शहाबुद्दीन ने जब यह हाल सुना तो वह भी सेना लेकर मुक़ाबले पर आया। परस्पर युद्ध हुआ। पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को क़ैद कर उससे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करवाई अर्थात उस घमण्डी म्लेच्छ को उन राजाओं के सन्मुख जिनको उसने कष्ट दिया था—घुटने टेक कर सिर झुकाये हुए उनसे क्षमा मांगने को मजबूर किया। जब अपनी प्रतिज्ञा पूरी हो गई तो पृथ्वीराज ने राजा लोगों को रीझ देकर अपने घर भेजा और शहाबुद्दीन को भी मुक्त कर सत्कार सहित मुल्तान को रवाना किया।"

"यद्यपि शहाबुद्दीन का सत्कार किया गया था तथापि अपनी पराजय से उसको बड़ा शोक हुआ और इसका बदला लेने के वास्ते वह सात बार पृथ्वीराज पर चढ़ आया परन्तु बराबर हारता रहा। जब उसने देखा कि मैं पृथ्वीराज को न तो छल बल और न शस्त्रबल से जीत सकता हूँ तो अपनी हार होने का हाल घटेक के राजा को लिख कर उसकी सहायता चाही। राजा ने कई सहस्र सवार पैदलों की सेना भेजी व शहाबुद्दीन फिर दिल्ली पर चढ़ आया। दिल्ली निवासी भयभीत होकर चारों ओर भागने लगे। इस पर पृथ्वीराज को बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला कि यह शहाबुद्दीन कुबुद्धि लड़के के समान चाल चलता है। मैंने कई बार परास्त करके किसी प्रकार का दुःख दिये बिना छोड़ दिया तथापि वह नहीं मानता। पूर्व में प्राप्त की हुई अपनी विजय से फूला हुआ पृथ्वीराज थोड़ी सी सेना इकट्ठी कर शत्रु के सन्मुख आया।"

यद्यपि शहाबुद्दीन के पास बहुत फ़ौज थी तथापि राजा के निकट पहुँचने की खबर सुनकर वह डरा क्योंकि पहले कई बार उससे हार खा चुका था। उसने अपने कई एक विश्वासी नौकरों को रात के वक्त चुपके से राजा के डेरों में भेजा और उनके द्वारा राजा के घुड़साल के दारोग़ा और वादित्र बजाने वालों को बहुत सा लोभ देकर मिला लिया। प्रभात होते-होते म्लेच्छ सेना राजा की सेना के सीमा पर आन उपस्थित हुई। राजा की सेना में घबराहट पड़ गई। जब पृथ्वीराज युद्ध के वास्ते तैयार हुआ तो घुड़साल के नमक हराम दरोग़ा ने नाट्यारम्भ नामी घोड़े को राजा की सवारी के लिये हाज़िर किया और वादित्री लोग, जो अवसर देख रहे थे, राजा के सवार होते ही वही राग बजाने लगे जो उस घोड़े को प्रिय थे। उन बाजों के सुनते ही घोड़ा नृत्य करने लग गया और इस तमाशे में कुछ काल तक राजा का चित्त लुभा जाने से वह उपस्थित महान कार्य को भूल गया।"

"मुसलमानों ने इस अवसर का लाभ लेकर जोर शोर के साथ धावा कर दिया। राजपूत कुछ भी वीरता न दिखला सके। यह देख पृथ्वीराज घोड़े पर से उतर हाथ में नंगी तलवार लिये पैदल शत्रु सेना पर टूटा और कई वीरों को खेत रखा, इतने में एक यवन ने पीछे से कमन्द डाल कर पृथ्वीराज को पृथ्वी पर गिरा

दिया और दूसरे लोगों ने बांध कर कैद कर लिया। उसी समय से राजा ने खाना पीना त्याग दिया।"

शहाबुद्दीन से युद्ध करने को जाने से पूर्व पृथ्वीराज ने उदयराज को आज्ञा दी थी कि तुम भी पीछे से आकर शत्रु पर धावा करना। उदयराज युद्ध में उस समय पहुंचा जब कि पृथ्वीराज कैद होचुका था। शहाबुद्दीन डरा कि न जाने उदयराज से लड़ाई करने का क्या फल होवे इसलिये पृथ्वीराज को लेकर दिल्ली के भीतर घुस गया। शोक युक्त हुआ उदयराज कहने लगा कि यदि पृथ्वीराज के बदले मैं कैद होजाता तो अच्छा होता। राजा को इस दशा में छोड़कर वह लौट नहीं गया क्योंकि उसने विचारा कि ऐसा करने से मेरे निष्कलंक यश में दाग लग जावेगा और मेरी गौड़ देश की प्रजा मुझको बुरा कहेगी। उसने योगिनीपुर (दिल्ली) को जिस पर शहाबुद्दीन ने कब्जा कर लिया था घेर कर एक महीने तक बराबर लड़ता रहा।

"जब घेरा लग रहा था तो शहाबुद्दीन के एक सरदार ने बादशाह से अर्ज की जिस पृथ्वीराज ने आपको कई बार कैद कर करके आदर पूर्वक छोड़ दिया है मुनासिब है कि आप भी उसको एक बार छोड़ देवें। बादशाह ने मुँह चढ़ाकर उत्तर दिया कि यदि तुम्हारे जैसे मंत्री हों तो अवश्य राज को भ्रष्ट करदे, और पृथ्वीराज को किले के भीतर रखने की आज्ञा दी। उस वक्त पादशाह के सारे सामन्तों ने शर्म के मारे सिर नीचा कर लिया। थोड़े ही दिन पीछे राजा स्वर्ग को सिधारा।"

"जब उदयराज ने अपने मित्र की मृत्यु के समाचार सुने तो उसने विचारा कि अब अपने भी मित्र के समीप ही रहना अच्छा है और खड्ग खोलकर सेना सहित शत्रु पर टूट पड़ा व स्वर्ग लोक में पहुँचा।"

फारसी तवारीखों से इन्तखाबः—तारीख फिरिश्तः[१]

---

१. यह किताब स० १०१५ हि० (स० १६०७ ई०, सं० १६६४ वि०) में दक्खन में बीजापुर के सुलतान नासिरुद्दीन इब्राहिम आदिलशाह के वक्त में बनी थी।

"सन ५८२ हिज्री (स० ११८६ ई० या सं० १२४३ विक्रमी) में सुल्तान शहाबुद्दीन एक जर्रार लश्कर लेकर हिन्दुस्थान में आया। खुसरो मलिक को जीतकर लाहोर को मुल्तान के हाकिम अली किर्माज के सुपुर्द कर गया। स० ५८७ हि० स० ११९१ ई० सं० १२४८ वि०) में भिटण्डे का क़िलअ जो अजमेर के राजा के आधीन था छीन लिया और जियाउद्दीन को १२०० सवारों के साथ क़िलअ की हिफाजत के लिये छोड़ आप ग़ज़नी को लौट गया।"

"फिर खबर लगी कि अजमेर का राय पिथोरा (पृथ्वीराज) अपने भाई दिल्ली के राजा खांडराय से इत्तिफ़ाक़ करके कई राजाओं को साथ लिये दो लाख सवार और तीन हज़ार हाथी की फ़ौज से भिटण्डा लेने को आता है। सुल्तान भी फ़ौज लेकर पहुँचा। तरावन[1] गाँव के पास जो सरस्वती नदी के किनारे थाने-सर से सात कोस और दिल्ली से ४० कोस है, राजा की फ़ौज से मुक़ाबला हुआ। सुल्तान के अमीर सर्दार भाग निकले और पासवालों में से एक आदमी ने सुल्तान से अर्ज़ की कि उमरा भागे जाते हैं और अफ़ग़ानी व खलज के सर्दार जो मर्दानगी की शेखी मारा करते थे जंग से पीछे हट रहे हैं। इसलिये मुनासिब है कि आप लाहोर को लौट जावें। सुल्तान को यह बात पसन्द न आई। तलवार खींचकर अकेला दुश्मन के लश्कर में चला, नागहानी दिल्ली के हाकिम खांडराय[2] की नज़र सुल्तान पर पड़ी और उसने अपना हाथी सुल्तान पर पेला, सुल्तान ने नेज़ा सम्भाल कर उसके मुंह पर मारा जिससे उसके कई दांत गिर गये। खांडराय ने बड़ी बहादुरी के साथ हाथी पर से सुल्तान के बाजू में ऐसा जख्म पहुंचाया कि उससे नज़दीक था कि सुल्तान घोड़े पर से गिर पड़े। इतने में एक खिलजी प्यादा सुल्तान का यह हाल देख आप उसके पीछे घोड़े पर चढ़ बैठा और सुल्तान को गोद में पकड़ कर मैदान जंग से भगा ले गया। सुल्तान को भागा देख उसका

---

१. तबक़ातेनासिरी का कर्त्ता इसको तराइन लिखता है। पीछे इसको तलावड़ी कहने लगे। जनरल कन्हिंगम साहब ने लिखा है कि मैदान जंग 'तराइन' तरावरी से ४ मील दक्षिण, पश्चिम में और १० मील कर्नाल के उत्तर, गद्धा नदी के किनारे पर है।

२. कर्नल टाड साहब इसको पृथ्वीराज का सामन्त चामुण्डराय होना लिखते हैं।

लश्कर भी भाग निकला। जब सुल्तान ग़जनी पहुंचा तो उसने मसलहत समझ कर अफ़ग़ानी सर्दारों को कुछ न कहा मगर खलज खुरासान और गोर के अमीरों के गले में तोबरे लटका कर सारे शहर में घुमाये और उनका दर्बार बन्द कर दिया।"

"राय पिथोरा की फौज ने भिटण्डा ले लिया। गजनी में सुल्तान का आराम हराम होगया। राय से बदला लेने की नीयत से उसने फिर एक लाख सात हज़ार तुर्क ताज़क व अफग़ानों का लश्कर इकट्ठा किया और जब ज़ख्म से फुर्सत पाई तो हिन्दुस्थान को तर्फ कूच किया। पेशावर में ग़ोर के एक बुज़ुर्ग ने गुस्ताख़ी के साथ अर्ज की कि मालूम नहीं होता कि सुल्तान कहां जाते और क्या इरादा रखते हैं? सुल्तान बोला कि जब से मैंने हिन्दू राजा से शिकस्त खाई है कभी आराम से अपने हरामखाना में न लेटा और न उम्दा लिबास पहना है। ग़ोर खलज व खुरासान के अमीरों ने जंग में मुझको धोखा दिया इसलिये उनकी सूरत तक देखना मैं पसन्द नहीं करता। उस बुज़ुर्ग ने अर्ज़ की कि अब मैं उन अमीरों की तर्फ से हुज़ूर में उनके कुसूर की मुआफी की दर्खास्त करता हूं और उम्मीद रखता हूं कि पादशाह उनका सलाम ले लेवे। सुल्तान ने इसको मन्ज़ूर किया और फिर वह लाहोर में आया। रूकनुद्दीन हमज़ा को अजमेर भेज कर राय पिथोरा से कहलाया कि इताअत कबूल करो मगर राय ने जवाब सख्त दिया। राय ने हिन्द के तमाम राजाओं से ज्ञमा मांगी और तीन लाख पैदल व सवार की भीड़ भाड़ लेकर सुल्तान के मुकाबले पर आया।"

"स० ५८८ हि० (स० ११९२ ई०, सं० १२४९ वि०) में तरावन गांव के पास दोनों लश्कर पड़े। राजपूतों की फौज में १५० राजा थे जिन्होंने अपने दस्तूर के मुवाफिक़ क़सम खाई कि जब तक दुश्मन को बिल्कुल तबाह न कर देंगे हर्गिज़ लड़ाई से न टलेंगे और क्योंकि पहली लड़ाई जीत चुके थे इसलिये बड़े ग़रूर के साथ उन्होंने एक खत सुल्तान के पास भेजा जिसमें यह लिखा था—तुमको मालूम होगा कि हमारा लश्कर बेशुमार है और रोज बरोज़ बढ़ता जाता है। अगर तुमको अपने आप पर रहम नहीं आता तो साथ में जो नामर्दों की जमाअत है उसी पर रहम करके अपनी फौजकशी से शर्मिन्दा होकर पीछे लौट जाओ, हमें परमेश्वर की

सौगन्ध है कि हम तुम्हारा पीछा न करेंगे और किसी तरह की तकलीफ नहीं पहुंचावेंगे। परन्तु जो लड़ाई करोगे तो तीन हज़ार हाथी, तीरन्दाज़ व तोपची की बेशुमार फौज बात की बात में तुमको पकड़ कर मात कर देगी।"

"सुल्तान ने जवाब दिया कि आप लोगों ने जो पैग़ाम भेजा, बड़ी मेहरबानी की। मगर मुझको फौजकशी में बिल्कुल इख़्तियार नहीं है। अपने भाई के हुक्म से मैं इधर आया हूँ। आप लोग इतनी फ़ुर्सत दें कि मैं आपकी फौज का तमाम अह-वाल अपने भाई को लिखकर सुलह के लिये उसकी इजाज़त हासिल करलूं। फिर सर्हिन्द, पञ्जाब और मुल्तान का मुल्क तो हमारे रहे। बाकी आप लोगों को मुबारिक हो। राजपूत ऐसा जवाब पाने से बिल्कुल ग़फलत में रहे और सुल्तान ने उसी रात जंग की तैय्यारी की। दिन निकलते ही जबकि राजपूत लोग अपने नहाने-धोने के काम में लगे हुए थे सुल्तान की फौज उनके सिर पर आगई। हिन्दू भी जमा होकर मुक़ाबले पर आये। सुल्तान को हिन्दियों की जल्दी और बेबाकी मालूम थी। उसने अपने लश्कर के च्यार टुकड़े किये और हुक्म दिया कि एक टुकड़ी जंग करे और जब काफिर उन पर हमला करें तो वे पीठ दिखा कर भागने लग जावें। जब काफिरों को गुमान हो कि दुश्मन भागता है और वे पीछा करें तब मुड़ कर फिर जंग करने लग जावें। दूसरी टुकड़ी उन पर पीछे से हमला करें और सुल्तान आप बारह हज़ार चुने हुए सवारों के साथ अलहदा रहा। सुल्तान की फौज ने वैसा ही किया। राजपूतों ने देखा कि दुश्मन भाग निकला उन्होंने पीछा किया इतने में दूसरी टुकड़ी ने उन पर पीछे से हमला कर दिया तब तो राजपूतों के पांव छूट गये। इसी अर्से में सुल्तान अपने सवारों सहित नंगी तलवारें लिये आन पड़ा और आनन फानन् हिन्दुओं की फौज में तहलका मचा दिया। देहली का हाकिम खांडेराय और कितने ही राजा मारे गये और राय पिथोरा सरसती की हद में गिरफ़्तार हुआ, सुल्तान के हुक्म से वह क़त्ल किया गया और बहुत सी लूट मुसलमानों के हाथ आई।"

"सर्सती, हांसी और समाने के क़िलों को ग़ारत करता हुआ सुल्तान शहाबुद्दीन अजमेर पहुँचा और उसको भी अपने कब्जे में लाया। बेशुमार क़ैदी पकड़े गये जिनको क़त्ल करने में तक़सीर न हुई। खिराज देने का वाअदा करने

पर अजमेर कोला पिथोरा के लड़के के सुपुर्द किया गया और सुल्तान पीछा दिल्ली की तरफ़ चला। वहां के राजा बहुत सा नज़र नज़राना लेकर हाज़िर हुआ। सुल्तान ने दिल्ली से कूच किया मगर अपने गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक़ को कहराम में छोड़ गया। मलिक कुतबुद्दीन ऐबक़ ने मेरठ व दिल्ली को खांडेराय व पिथोरा के भाईयों से छीन लिया और स० ५८६ हि० (स० ११६३ ई०, सं० १२५० वि०) में दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया।"

"इन्हीं दिनों में पिथोरा के रिश्तेदारों में से हेमराज[1] नामी एक शख्स ने अजमेर पिथोरा के लड़के से छीन ली और पादशाही फौज के मुकाबले पर आया। स० ५९१ हि० (स० ११९५ ई०, सं० १२५२ वि०) में कुतबुद्दीन से उसकी लड़ाई हुई जिसमें वह (हेमराज) क़त्ल हुआ और अजमेर में मुसलमान हाकिम मुक़र्रर किया गया।"

जामेउल् हिकायत[2] में इस लड़ाई का हाल यों लिखा है:—

मुहम्मदसाम[3] की फ़तह कोला पिथोरा[4] पर कहते हैं कि जब ग़ाज़ी मुइज्जु-द्दुनिया व दीन मुहम्मदसाम (खुदा उसकी क़ब्र रोशन करे।) दूसरी मर्तबा कोला से हंजर और तबर हिन्द के दर्मियान जंग करने को था तब उसको खबर मिली कि दुश्मन ने जंग के वास्ते सजाये हुए हाथियों को जुदागाना सफ़ में आरास्तः किये हैं। घोड़े उन हाथियों से चमकते थे और यह तबाही का खास एक सबब था। जब दोनों फौजें एक दूसरे के करीब पहुंचीं और दोनों तरफ से लश्कर में सुलगती हुई आग नज़र आने लगी तो सुल्तान ने हुक्म दिया कि हरेक आदमी अपने खेमे के पास बहुत सी लकड़ियां इकट्ठी कर लेवे। रात के वक्त सुल्तान तो फौज लेकर

१. शायद पृथ्वीराज के भाई हरीराज के लिये गलती से लिखा गया हो।

२. यह किताब मौलाना नुसरुद्दीन मुहम्मद उर्फी की बनाई हुई है जो सुलतान शमशुद्दीन अल्तमश के अहद हुकूमत में (स० ६०७ हि०, स० १२११ ई० में) मौजूद था।

३. शहाबुद्दीन गौरी नाम है।

४. फ़ारसी तवारीखों में पृथ्वीराज का यही नाम लिखा है।

दूसरी तरफ रवाना हुआ और थोड़े से आदमियों को लश्कर में छोड़कर हुक्म देगया कि वे तमाम रात आग जलती रक्खें ताकि दुश्मन ख्याल करे कि वहां फौज का पड़ाव है। काफिरों ने आग जलती देखकर यकीन कर लिया कि दुश्मन वहां पड़ाव डाले हुए हैं। सुल्तान रात भर सफ़र करके सुबह होते होते कोला के लश्कर के पिछवाड़े पहुंच गया और एक दम से हमला करके कई आदमियों को कत्ल किया। पीछे की तरफ से फौज के खास टुकड़े पर दबाव पहुंचने से कोला ने चाहा कि पीछे हठ जावे मगर फिर उसकी फौज की तर्तीब बिगड़ गई और हाथी बेकाबू होगये। आम तौर पर जंग शुरू हुआ। कोला को शिकस्त फाश हुई और क़ैद किया गया।"

ताजुल मआसिर[१] में यों लिखा है:—

"सन् ५८७ हि० (स० ११६१ ई०, सं० १२४८ वि०) में खुदावन्द आलम सुल्तानों का सुल्तान मुइज्जुदुनिया वदीन (मुहम्मद गोरी) शुभमुहूर्त और शुभ-नक्षत्र में ग़ज़नी से रवाना हुआ। फतह फीरोज़ी के निशान उड़ाता खुदा पर भरोसा किये वह हिन्दुस्तान को चला। जब उसका लश्कर लाहौर में पहुंचा तो सदर किवामुल् मुल्करुहुद्दीन हमज़ा वहां के सर्दार ने उसकी क़दमबोसी हासिल की। इसी सर्दार को अजमेर एलची भेजा कि उस मुल्क का (अजमेर का) राय पिथौरा तलवार की मदाखलत के बग़ैर ही राह रास्त पर आजावे और मुक़ाबले से बाज़ आकर इताअत क़बूल करे व दीन इसलाम की तर्फ मुतवज्जह होता जब एलची अजमेर के दर्बार में पहुँचा। उसने अपने आने का मतलब फसाहत के साथ बयान किया मगर अपनी बेशुमार फौज और शान शौकत ने राय के दिल में दुनिया भर को फतह कर लेने का बातिल ख्याल पैदा कर रखा था। उसने इस उसूल पर ध्यान न दिया कि जब वक्त आजाता है तब फौज कुछ काम नहीं देती है। जब यह हाल सुल्तान पर ज़ाहिर किया गया तो मारे ग़ज़ब के उसका चेहरा सुर्ख हो गया और

---

१. हसन निज़ामी की बनाई हुई है इसमें खुसूसन कुतबुद्दीन एबक की तवारीख़ है। मुवर्रिख़ कुतबुद्दीन के समय में दिल्ली में मौजूद था और वहां उसने यह किताब सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी के मरने से २३ वर्ष पीछे (स० ६१४ हि० स० १२१७ ई० में) लिखी थी।

राय के मुक़ाबले पर लश्कर कशी का हुक्म दिया। जब कोलाराय अजमेर ने, जिसकी बहादुरी का शोहरा दूर दूर तक फैला हुआ था—लश्कर सुल्तानी के नज़दीक पहुँचने की खबर सुनी तो वह जिरह सजकर बेशुमार आरास्तः फौज के साथ मैदान में आया।"

ज़ागरु (काले) हिन्दू सुपेद मोहरा (शंख) बजाते हाथियों पर चढ़े जंग करने लगे। आखिर में इसलाम के लश्कर को फतह हासिल हुई। एक लाख हिन्दू कत्ल हुए और अजमेर का राय कैद हुआ मगर उसकी जिन्दगी बख्शी गई। अजमेर में सुल्तान ने बहुत से मन्दिर तोड़े और उनकी जगह मसजिदें व मदरसे इसलाम बनवाये। अजमेर का राय जो किसी तरह से रिहा होगया था–यानी सज़ा से बच गया था–उसको मुसलमानों से दिली नफ़रत थी और मालूम हुआ कि वह उनके खिलाफ कुछ बन्दिश करता है इसलिये उसकी मौत का हुक्म जारी हुआ। तलवार से उसका सिर काटा गया और अजमेर का राज उसके लड़के के सुपुर्द हुआ। अजमेर फतह करने के बाद सुल्तान दिल्ली को चला, वहां के राजा से लड़ाई हुई मगर आखिर उसने खिराज देना मंजूर किया। सुल्तान ग़ज़नी लौट गया और उसका लश्कर देहला के पास मौजअ् इन्द्रप्रस्थ में रहा।"

"रणथम्भोर से क़िवामुल् मुल्क रुहुद्दीन हमज़ा ने कुतबुद्दीन के पास खबर कि अजमेर के राय पिथोरा का भाई बाग़ी होगया है और रणथम्भोर के मुहासरे को आता है। उसका पिथोरा के लड़के से भी बिगाड़ हुआ है। कुतबुद्दीन रण-थम्भोर गया। राय पिथोरा के लड़के को खिलअत अता किया और उसने बहुतसा खज़ाना और तीन सोने के खर्बूज़े नज़र किये।"

"सन ५८९ हि० (स० ११९३ ई० में) में खबर आई कि हीराज अजमेर का राय बाग़ी होगया है और उसकी तरफ से भीतर फौज लेकर दिल्ली को आता है। कुतबुद्दीन ऐन गर्मी के मौसम में अजमेर गया जब कि तलवार म्यान में मौम के मुताबिक़ पिघलती थी। भीतर शाही फौज की आमद सुनकर अजमेर आया।

हीराज क़त्ल हुआ और उसका सिर दिल्ली भेजा गया, अजमेर में मुसलमानों का कब्जा हुआ।"[1]

तबक़ातेनासिरी[2] का कर्त्ता लिखता है:—

"सुल्तान मुहम्मद गोरीने सरहिन्द का क़िला फतह कर क़ाज़ी जियाउद्दीन टोलक के सुपुर्द किया और १२०० सवार उसके पास छोड़कर आप ग़ज़नी चला गया। राय कोला पिथोरा क़िले पर चढ़ आया और तराइन के मुकाम पर सुल्तान के साथ उसकी लड़ाई हुई;" जिसमें दिल्ली के राजा गोविन्दराज के हाथ से सुल्तान का जख्मी होकर भागना आदि सारा हाल फिरिश्तः के मुताबिक है। दूसरे साल सुल्तान फिर आया, उसी मुकाम पर लड़ाई हुई, राय पिथोरा हारा और हाथी से उतर कर घोड़े सवार हो भागता हुआ सर्सती (नदी) के पास पकड़ा गया और क़त्ल हुआ। गोविन्दराय[3] दिल्ली की लड़ाई में मारा गया। सुल्तान ने उसका सिर उसके टूटे दांतों से पहचाना (जो पहली लड़ाई में सुल्तान के हाथ का नेज़ा लगने से टूट गये थे)। इस फतह से अजमेर, सिवालिक पहाड़, हांसी और सर्सती आदि ज़िले सुल्तान के हाथ आये।

इन उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज का अंतिम युद्ध सुल्तान शहाबुद्दीन के साथ स० ११६२ ई०, सं० १२४६ वि०) में हुआ जिसमें पृथ्वीराज परास्त होकर मारा गया। परन्तु उसका क़ैद होकर ग़ज़नी पहुँचना और वहां सुल्तान को मार कर आत्मघात करना कहीं नहीं लिखा और न कहीं पृथ्वीराज के वर्णन के

१. मुवर्रिख़ ने राय पिथोरा के लड़के का हाल लिखा है मगर मालूम होता है कि यह ग़लती अजमेर में पिथोरा के किसी क़रीब रिश्तेदार के वास्ते ख़ता से लिख दिया हो क्योंकि नीचे साफ़ लिखता है कि "अजमेर का राय हीराज" (हरीराज)। इससे साफ़ यही पाया जाता है कि अजमेर की गादी पर पृथ्वीराज के पीछे उसका भाई हरीराज ही बैठा था।

२. क़ाज़ी मिनहाबुद्दीन उस्मान, सुल्तान शमशुद्दीन अलतिमश के वक्त में हिन्दुस्थान में था।

३. इसको फिरिश्तः ने खांडेराय लिखा है।

साथ चन्द का ज़िकर है। इन्हीं तवारीखों से साफ ज़ाहिर है कि सुल्तान शहाबुद्दीन पृथ्वीराज की मृत्यु के पीछे १४ वर्ष तक जीता रहा, ग्वालियर का किला फतह किया व बनारस के राजा जयचंद राठौड़ को युद्ध में परास्त कर मारा। फिर हिन्दुस्तान में कुतबुद्दीन ऐबक को छोड़ आप ग़ज़नी गया। वहां उसने ख्वारज़म के पादशाह से जंग किया। आखिरकार हिन्दुस्तान से ग़ज़नी को लौटते हुए मार्ग में सिन्धु के किनारे पर गक्खरों के हाथ से मारा गया। फारसी तवारीखों में उसकी मृत्यु का यों लिखा है:—

"शहाबुद्दीन, बहाउद्दीन का बेटा और गयासुद्दीन मोहम्मद साम का भाई था। दूसरी शब्बान स० ६०२ हि० (१५ मार्च स० १२०६ ई० सं० १२६३ वि०) को जब वह कोकरों (गक्खरों) को शिकस्त देकर लाहौर से ग़जनी जाता था तब धमेक के पास नदी के किनारे बाग में उसका खेमा खड़ा हुआ। जब वह मग़रबकी नमाज पढ़ रहा था तो चन्द बेईमानों ने चुपके से आकर तीन हथियार बन्द खिदमतगार और ४ फर्राशों को कत्ल किया और दो आदमियों ने सुल्तान की तरफ दौड़ कर उसके पांच छः ज़ख्म कारी लगाये जिससे वह वहीं मर गया। उसकी लाश बड़ी इज्जत के साथ ग़जनी लेजाई गई।"

यदि सुल्तान पृथ्वीराज के हाथ से मारा जाता तो क्या मुमकिन था कि उस समय की बनी हुई तवारीखों में यह हाल दर्ज न होता?

अन्त में रासे का कर्त्ता लिखता है कि पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रैणसी गद्दी पर बैठा और वह भी सुल्तान शहाबुद्दीन के हाथ से युद्ध में मारा गया।

रासे की पुस्तक में यह वर्णन कहीं नहीं दिया कि अमुक समय में पृथ्वीराज के पुत्र जन्मा। रैणसी का प्रागट्य ही केवल उस जगह हुआ है जहां चामुण्डराय का पृथ्वीराज के प्रिय हाथी को मारना लिखा है और रैणसी का चामुण्डराय की बहन दाहित्री के पेट से उत्पन्न होना कहा है।

प्राचीन संस्कृत पुस्तक व शिलालेखादि से जिनका वर्णन पहले कर आये हैं, पृथ्वीराज के कोई पुत्र होना पाया नहीं जाता। उसके पीछे उसका भाई हरीराज गद्दी पर बैठा था। फारसी तवारीखों में से तारीख फिरिश्तः और काज़ुलम आसिर

के कर्त्ता पृथ्वीराज के पीछे उसके लड़के का गद्दी बैठना लिखते हैं परंतु साथ ही उन्होंने हीराज (या हरीराज) को अजमेर का राय होना भी लिखा है और यह भी कहा है कि हरीराज ने राय पिथोरा के बेटे पर चढ़ाई की। इन मुवर्रखों का यह बयान शक भरा हुआ मालूम देता है परन्तु उसपर अनुमान कर सक्ते हैं कि जिसको उन्होंने पृथ्वीराज का बेटा कहा वह रणथम्भोर का राजा हो। क्योंकि हम्मीर महाकाव्य से पाया जाता है कि उस वक्त वहां पृथ्वीराज (प्रथम) का परपोता गोविन्दराज राज करता था। शायद उसी को इन पृथ्वीराज का लड़का लिख दिया हो, यह तो संभव नहीं कि एक ही समय में अजमेर की गद्दीपर पृथ्वीराज का बेटा और पृथ्वीराज का भाई दोनों रहे होंगे। इसके अतिरिक्त रैणसी प्रस्ताव के विषय में एक यह भी शंका हो सकती है कि रासे के अनुसार चन्द तो पृथ्वीराज का वर्णन लिख कर गजनी चला गया और वहीं मरा फिर वह रैणसी के युद्ध का हाल कैसे लिख सकता था। इसलिये यह कथा अवश्य उसके पीछे किसी अन्य की लिखी हुई होना चाहिये। रासे का कर्ता ही लिखता है कि जब रैणसी ने पृथ्वीराज की मृत्यु के समाचार सुने तो उसे बड़ा क्रोध हुआ। अपने सामन्तों को एकत्रित कर दिल्ली से तीन कोस पर म्लेच्छों का थाना लूटा, लाहोर लिया और पंजाब में डंका बजाया। सुल्तान दो हजार हाथी और बारह लाख फौज लेकर लड़ने आया और सात महीने तक दिल्ली के गढ़ का घेरा डाले हुए पड़ा रहा परन्तु गढ़ न टूटा। अन्त में तातारखां ने सुरंग लगाकर गढ़ तोड़ा। राजपूत तलवारें सूंत कर बाहर आये और सब मारे गये। फिर सुल्तान ने जयचन्द पर चढ़ाई की। जयचंद गङ्गा में डूब मरा।

ऐसे वर्णन से तो रासे के कर्ता की स्मरणशक्ति में दोष आता है क्योंकि पहले पास ही तो वह यह लिख आया कि पृथ्वीराज के बाण से सुल्तान मारा गया और फिर साथ ही यह लिख दिया कि वह रैणसी से युद्ध करने को आया। राजा जयचन्द पर शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज की मृत्यु के दो बरस पीछे चढ़ाई कर उसे परास्त किया था। इसका हाल तारीख फिरिश्तः में यों लिखा है:—

"सं० ५९० हि० (सं० ११९४ ई०, सं० १२५१ वि०) में कुतबुद्दीन ने कोल का क़िला लिया। वहां एक हजार घोड़े और बहुत सा माल असबाब उसके हाथ

लगा। जब उसको खबर मिली कि सुल्तान बनारस व कन्नौज की ओर जाता है तो कोल से वह सुल्तान की पेशवाई को गया और सो घोड़े तुर्की व एक हाथी स्याह व एक सफेद सुल्तान के नजर किया और आप पचास हजार सवारों के लश्कर के साथ हो लिया। रास्ते में बनारस के राजा जयचन्द की फौज से मुक़ाबला हुआ पीछे से खुद राजा भी मैदान जंग में शरीक होगया। ऐन लड़ाई के वक्त सुल्तान के हाथ का तीर जयचंद की आँख में लगा। राजा हाथी से नीचे गिर कर मर गया और राजपूतों का लश्कर तीन तेरह हुआ। किसी को राजा के मरने की खबर न हुई आखिरकार इस अलामत से कि उसके दांत बुढ़ापे के बाइस सोने की मेखों से बंधे हुए थे—मुर्दों के ढेर में से उसकी लाश पहचान कर निकाली गई। सुल्तान शहाबुद्दीन बनारस पहुँचा और वहां क़रीब एक हजार मन्दिर तोड़े और जवाहिर व दूसरी क़ीमती चीज़ों से ४०० ऊंट भरवाकर कोल के क़िले में हिसामुद्दीन के सुपुर्द किये कि ग़ज़नी पहुंचादे। कहते हैं कि जब जयचन्द के लूट में मिले हुए हाथी सुल्तान के रूबरू लाये गये तो दूसरे सब हाथियों ने फीलबानों के इशारे के मुवाफ़िक़ सुल्तान से सलाम किया मगर एक सफेद हाथी ने, महावत की बड़ी कोशिश पर भी, सलाम करना मन्जूर न किया और ग़ज़ब में आकर क़रीब था कि महावत को मार डाले।"

ताजुलमआसिर का मुवर्रख लिखता है कि "स० ५९० हि० में बनारस के राजा जयचन्द से लड़ाई हुई। सुल्तान के हाथ का तीर लगने से वह (राजा) मारा गया और उसका सिर बरछी की नोक पर उठाया गया। ३०० हाथी और बहुत सा माल खज़ाना सुल्तान के हाथ आया। असनी का क़िला जहां राय का खज़ाना रहता था, सुल्तान ने लूटा।"

अब मैं रासो के निस्बत अपनी राय प्रकट करने के पूर्व कतिपय उन्नीसवीं शताब्दी के पाश्चिमात्य विद्वानों का मत पाठक गणों के सम्मुख पेश करता हूँ:—

(१) मिस्टर फार्ब्स साहब गुजरात के प्राचीन इतिहास की रासमाला नामी पुस्तक में लिखते हैं कि "चन्द का रासा ऐसा अशुद्ध है कि किसी किसी स्थल में तो समझ में नहीं आता और जहां भावार्थ समझा जाता है वहां, चन्द

का लिखा हुआ कितना और क्षेपक कितना, इसका ढूंढ निकालना अत्यन्त कठिन है, यहां तक कि सारे पुस्तक की सत्यता के विषय में स्थल स्थल पर संशय उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। चन्द के लेखानुसार पृथ्वीराज चहुआन के हाथ से दूसरा भीमदेव मारा गया, परंतु वास्तव में पृथ्वीराज के मरने के पीछे भी कई वर्ष तक भीमदेव जीता रहा था। चन्द बारहट्ट के रासे की सत्यता के विषय में शङ्का न करके भीमदेव के लेख के लिये कदापि ऐसा भी मानलें कि चन्द ने अपने राजा की कीर्ति बढ़ाने को लिख दिया हो परंतु पीरंभ के गोहिलों के गीत चन्द ने गाये हैं और इस बारहट्ट के समय से लगभग एक शताब्दी पीछे तक गोहिलों का अधिकार पीरंभ पर हुआ ही नहीं था। तो ऐसी बातों में क्या खुलासा हो सकता है? हमको तो प्रतीत होता है कि रासा, जो चन्द बारहट्ट के नाम से प्रसिद्ध है, वह कुल ही उसका लिखा हुआ नहीं होवे, ऐसा माने बिना सिद्धि होती नहीं।"

(२) मिस्टर वी० ए० स्मिथ साहिब लिखते हैं कि "रासा आज जैसा विद्यमान है। वह मार्ग भुलाने वाला और इतिहासवेत्ताओं के कार्य के लिये निष्फल है।"

(३) प्रोफेसर व्हूलर साहब लिखते हैं कि "मुझे अन्देशः है कि इस समय का इतिहास फिर से न बदला जाय, और चन्द का रासा अब न छापा जावे। वह कृत्रिम (जाली) है जैसा कि जोधपुर के कविराज मुरारदान और उदयपुर के कविराज श्यामलदास ने मुद्दत पहले कहा था। 'पृथ्वीराज विजय, में पृथ्वीराज के वन्दीराज का नाम पृथ्वीभट्ट लिखा है चन्द बरदाई नहीं।"

(४) मेजर जनरल सर ए० कन्हिंगम साहब लिखते हैं कि "चौहानों का सही हाल हमको सिर्फ उनके शिलालेखों से मिलता है. पृथ्वीराज रासा जाली है जैसा कि डाक्टर व्हूलर ने दिखलाया है और टाड की फेहरिस्त और भाटों की वंशावली जो चन्द से लीगई है वह बिल्कुल रद्दी है।"

जिस अवस्था में, रासे की पुस्तक में लिखे अनुसार न तो चहुआनों का अग्नि कुण्ड में से उत्पन्न होना, न रासे में दी हुई चहुआनों की वंशावली का शुद्ध होना, न बीसलदेव का सं० ६८६ में चालुकराय सोलंखी से युद्ध, न दिल्ली में उस

वक्त (पृथ्वीराज के समय में), तंवरों का राज्य रहना, और न पृथ्वीराज का अपने नाना अनंगपाल के गोद जाना, न सं० १११५ में पृथ्वीराज का जन्म, न रावल समरसिंह का पृथ्वीराज का समकालीन होना, न उस समय आबू पर सलख जैत नाम के कोई प्रमार राजा का राज्य, न रणथभोर में यादव राजा होना, न देवगिरी में भान नाम का कोई राज उस समय होना, न पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का गुजरात के राजा भीमदेव के हाथ से मारा जाना, और न भीमदेव का पृथ्वीराज का हाथ से वध होना, न पृथ्वीराज का कैद होकर शहाबुद्दीन के साथ गज़नी पहुंचना, और न वहाँ शहाबुद्दीन को तीर से मार आपका आत्मघात करना और न रैणसी का पृथ्वीराज के पीछे गाद़ी बैठना आदि वृत्त पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध होते हैं। तो कहा जा सकता है कि रासे में दिये हुए एतिहासिक वृत्तों की अशुद्धियां रासे का कोई प्रमाणिक एतिहासिक पुस्तक नहीं होना सिद्ध करती हैं और साथ ही इसको भी मनन कराने में समर्थ होती है कि रासे का लिखने वाला पृथ्वीराज का समकालीन नहीं था; क्योंकि यदि ऐसा होता तो संभव नहीं कि वह अपने समय में न बने हुए बनावों के झूठ मूठ अपने पुस्तक में लिख मारता। कदापि ऐसा मानलें कि ग्रन्थकर्त्ता ने अपने पूर्व के वृत्तों को केवल अपने स्वामि की कीर्त्ति बढ़ाने के निमित्त उसके नाम पर अंकित कर दिये हों तथापि पृथ्वीराज से कई सौ वर्ष पीछे के प्रस्तावों का इस पुस्तक में पाया जाना इस प्रकार मान लेने में दृढ़ प्रमाण-रूप होजाता है कि रासे का पुस्तक पृथ्वीराज के समय में नहीं लिखा गया और न इसका कर्त्ता कोई चन्द कवि पृथ्वीराज का समकालीन था परन्तु यही मानना पड़ता है कि पृथ्वीराज के कई सौ वर्ष पीछे इस काव्य का प्रादुर्भाव हुआ हो। रासे में चन्द आदि भाटों की महिमा स्थल स्थल पर गाई है इससे जाना जाता है कि रासे का कर्त्ता कोई चौहानों का भाट था जिसको बीसलदेव आदि की प्राचीन कथा ज्ञात थी और हिन्दी के सिवा फारसी भाषा का भी जानने वालाथा। क्योंकि रासे में जहां तहां सैकड़ों फारसी अर्बी के शब्द भरे हुए हैं। यह भी उसको पृथ्वीराज के समय का बना हुआ होने में शंका उत्पन्न कराते हैं।

अब यदि यह रासा पृथ्वीराज के समय में नहीं बना तो इसके बनने का समय कौनसा ठहर सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में कह सकते हैं कि सोलहवीं

शताब्दी के आरम्भ तक तो इस कथा की उत्पत्ति नहीं पाई जाती कि चाहुआन अग्नि कुण्ड में से उत्पन्न हुए और पृथ्वीराज दिल्ली अनंगपाल के गोद में गया। गज़नी में सुल्तान को तीर से मार कर आप आत्मघात करके मरा और चन्द पृथ्वीराज का कवि और मित्र था। क्योंकि स० १५०० के लगभग बने हुए हम्मीर महाकाव्य में जिसमें। दिया हुआ पृथ्वीराज का वर्णन पहले लिख चुके हैं—कहीं इन कथाओं का पता नहीं यदि पृथ्वीराज रासे की पुस्तक इसके पहले की बनी हुई होती तो संभव नहीं कि हम्मीर काव्य का कर्त्ता इन कथाओं को अपने काव्य में दर्ज करना छोड़ देता या उनके विरुद्ध अन्य कुछ लिखता क्योंकि वह भी चौहानों ही की कीर्ति लिखने वाला था। तो अनुमान हो सकता है कि रासा सं० १५०० के पीछे किसी समय बना हो।

मेदपाट देश में राजसमुद्र नामी तालाब पर की प्रशस्ति में रासे का वर्णन है जो महाराणा राजसिंहजी के समय में सं० १७२२ में लगाई गई थी। अतएव सं० १५०० और सं० १७२२ के मध्य किसी समय में इस रासे का बनना स्वीकार करना पड़ेगा। उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय में रासे की जिस पुस्तक से मैंने यह सारांश लिया है उसके अंत में यह लिखा है कि चन्द के छन्द जगह जगह पर बिखरे हुए थे जिनको महाराज अमरसिंहजी ने एकत्रित कराये। महाराणा कुम्भकर्ण के पीछे जिन्होंने सं० १४६० से सं० १५२५ तक चित्तौड़ पर राज्य किया था। मेवाड़ की राजगद्दी पर अमरसिंहजी नाम के दो महाराणा हुए हैं। प्रथम तो महाराणा प्रतापसिंहजी के पुत्र जिन्होंने सं० १६५३ से सं० १६७६ तक राज्य किया, और दूसरे, महाराणा राजसिंहजी के पौत्र व महाराणा जयसिंहजी के पुत्र थे जिन्होंने सं० १७५६ से सं० १७६८ तक राज किया। तो जिन अमरसिंहजी ने रासे के पृथक पृथक भागों को एकत्रित कराया वे पहले ही अमरसिंहजी थे दूसरे नहीं क्योंकि दूसरे अमरसिंह के राज्य के पूर्व की लगी हुई राजनगर की प्रशस्ति में भाषा रासा पुस्तक से उद्धृत किया हुआ वर्णन मिलता है। जब प्रथम अमरसिंहजी के समय में अर्थात् सं० १६५३–७६ के बीच में रासे के पृथक पृथक अंगों का एकत्रित होना पाया जाता है तो वह अवश्य इनके पूर्व किसी समय में रचा जाना चाहिये।

मेवाड़ इलाक: में एक रात्र के पास "चन्द छन्द महिमा" नामी पुस्तक के पत्रे हैं जिसके अंत में यह लिखा है:—"वारता–इतना सुनके पातशाहजी श्री अकबरशाहजी ने आधसेर सोना नरहरदास[1] चारन को दिया। इसके डेढ़ सेर सोना होगया। रासा बांचना पूरन भया। अबकास बरकास हुआ जिसका सं० १६२७ का मिती मधु मास सुदी १३ गुरुवार के दिन पूरन भयो। इति श्री रइनिसी जुद्ध चन्द छन्द वर्णन की महिमा दली पति पातशाहजी श्री श्री अकबरशाहजी कूं गंग भाटजी ने सुनाया जिनकी महिमा महाराजाधिराज महाराज श्री १०८ श्री श्री सिशोद वंशे अखंड मंड: सूरं उदयसिंह: सुत सगतसिंहजी[2] विज्ये राज्य राज्ये तत् पंडित विष्णुदास लिखित नगर अजमेर मध्ये सं० १६२६ का साके १४६४ का मास सावन मासं शुक्ल पक्षे बीज रविवासरे श्री रस्तु कल्याण मस्तु।"[3] इस उपरोक्त वर्णन से सं० १६२७ वि० में अकबर पादशाह को गंग भाट का रासा सुनाना पाया जाता है और इस विषय में एक दन्त कथा भी प्रचलित है कि अकबर को वीर रस के चरित्र सुनने का बड़ा शौक़ था। तब कतिपय हिन्दू राजों की सम्मति से किसी भाट ने यह पृथ्वीराज की कथा रच कर बड़े आडम्बर के साथ अकबर को सुनाई, यद्यपि अकबर के वक्त की फारसी तवारीखों में कहीं रासे का ज़िकर नहीं है।

---

१. नरहरिराय या नरहरिदास—यह ज़िला फतहपुर में असनी गांव का रहनेवाला भाट था। पादशाह अकबर ने इसको असनी गांव जागीर में दिया और महापात्र का ख़िताब सन् १५५० ई० में दिया था।

२. ये शक्तसिंहजी, महाराणा प्रतापसिंहजी के छोटे भाई थे जो किसी कारण से अपने भाई से रूठ कर अकबर पादशाह के पास चले गये थे।

३. इस लेख से जान पड़ता है कि सं० १६२६ में पंडित विष्णुदत्त ने यह ग्रंथ नकल किया परन्तु इसके सही होने में एक बड़ी शंका यह है कि इसमें जो सं० १६२७ माघ सुदी १३ को गुरुवार और १६२६ श्रावण सुद २ को रविवार लिखा है यह ठीक नहीं, गणित के व चण्डू पञ्चाङ्ग के अनुसार सं० १६२७ माघ सुदि १३ को बुधवार और सं० १६२६ श्रावण सुदी २ को शनिवार आता है।

रासे को कृत्रिम सिद्ध करने के लेख में उदयपुर के भूत पूर्व कविराज श्यामलदास ने लिखा है कि "मेवाड़ राज्य के अव्वल दर्जे के उमराव बेदले और कोठारिये के घराने के किसी पढ़े लिखे भाटने अपनी शाही का बड़प्पन दिखाने और हिन्दुस्तान के दूसरे प्रदेशों से आये हुए इन चौहानों की राजपूताना के क्षत्रियों में समान प्रतिष्ठा बतलाने को यह पृथ्वीराज रासा नाम का पुस्तक जाली बनाया।" यद्यपि मैं उक्त कविराज के इस लेख से तो सहमत नहीं हूँ कि राजपूताने के क्षत्रियों में अन्य प्रदेश से आये हुए इन चौहानों की समान प्रतिष्ठा दिखलाने को पृथ्वीराज रासा रचा गया हो क्योंकि प्रथम तो चौहानों का प्रतापी होना कई शताब्दियों से राजपूताने ही में नहीं किन्तु भारतखण्ड के एक बड़े विभाग में भली प्रकार विदित है। इसके अतिरिक्त रासा रचे जाने के समय में भी राजपूताने में चहुवानों का राज बूंदी में मौजूद था, फिर यह कहना कि राजपूताना के क्षत्रियों में समान प्रतिष्ठा दिखलाने को रासा लिखा गया— यह तो सर्वथा विरुद्ध है; तथापि रासे में स्थल स्थल पर उदयपुर के महारावल समरसिंहजी की विशेष प्रशंसा लिखी रहने से इतना अनुमान तो हो सकता है कि जब यह रासे का पुस्तक लिखा गया तब चहुआनों का उदयपुर के दर्बार से कोई ऐसा संबंध अवश्य हो गया होगा जिससे उनकी प्रशंसा करना चहुआनों के ग्रंथ कर्त्ता पर वाजिब हो और यह समय सोलवीं शताब्दी के अंत का था जब कि ये चहुआण सर्दार मेदपाट के महाराणा के आश्रित हुए। अतएव कह सकते हैं उसी समय में या उससे कुछ पूर्व इस पृथ्वीराज रासा नाम के ग्रन्थ का प्रादुर्भाव हुआ है। पीछे तो इसकी महिमा इतनी बढ़ी कि प्रत्येक क्षत्रीवंश ने इस पुस्तक में अपना वर्णन होना एक प्रतिष्ठा का कारण समझ, समय समय पर जब अवसर मिला कुछ न कुछ वर्णन अपना इसमें लिखवाही दिया और इसी प्रकार यह रासा मानों क्षत्री वंश का एक पुराण होगया। इस रासे के कई संस्कार होने से हम यह दोष मूल कवि के सिर पर नहीं लगा सकते कि उसने कई जगह अपने पुस्तक में पूर्वापर विरोध

किया या कथा भाग अनियमित रीति से लिखा। परन्तु उन्नीसवीं सदी के राजपूताना के एक प्रसिद्ध कवि सूरजमल मिश्रण ने इस रासे की कविता आदि के विषय में जो वर्णन अपनी पुस्तक वंशभास्कर में लिखा है उसका संक्षेप देकर मैं अपने इस लेख को समाप्त करता हूँ:—

"पृथ्वीराज रासे के कर्त्ता ने कुछ प्राकृत का ज्ञान प्राप्त करके कविता की है और उसमें पूर्वापर विरोध बहुत है।"[१]

१. महोबा के युद्ध के वास्ते देखो कथा भाग का पृष्ठ ६०—६१।

राय बहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

रासो का निर्माण-काल

[अनंद विक्रम संवत् की कल्पना]

उदयपुर के कविराजा श्यामलदासजी ने मेवाड़ का इतिहास 'वीरविनोद' लिखते समय 'पृथ्वीराजरासे' की ऐतिहासिक दृष्टि से छान-बीन की। जब उन्होंने उसमें दिए हुए संवतों तथा कई घटनाओं को अशुद्ध पाया, तब उन्होंने उसको उतना प्राचीन न माना, जितना कि लोग उसको मानते चले आते थे। फिर ईस्वी सन् १८८६ में उन्होंने उसकी नवीनता के संबंध में एक बड़ा लेख एशिआटिक सोसाइटी बंगाल, के जर्नल (पत्रिका)[१] में छपवाया और उसी का आशय हिंदी में भी 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' के नाम से पुस्तकाकार प्रसिद्ध किया, जिससे पृथ्वीराजरासे के संबंध में एक नई चर्चा खड़ी होगई। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने उसके विरुद्ध 'पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा' नामक छोटीसी पुस्तक ई० सं० १८८७ के प्रारंभ में छापी, जिसमें 'पृथ्वीराजरासे' के कर्त्ता चंदबरदाई का प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज के समय में होना सिद्ध करने की बहुत कुछ चेष्टा, जिस तरह बन सकी, की। फिर उसी का अँग्रेजी अनुवाद एशिआटिक सोसाइटी बंगाल के पास भेजा; परन्तु उक्त सोसाइटी ने उसे अपने जर्नल के योग्य न समझा और उसको उसमें स्थान न दिया। इस पर पंड्याजी ने उसे स्वतंत्र पुस्तकाकार छपवा कर वितरण किया। उस समय तक पंड्याजी और राजपूताना आदि के विद्वानों में से किसी ने भी अनंद विक्रम संवत का नाम तक नहीं सुना था।

---

१. जं० ए० सो० बं० ई० स० १८८६, जिल्द तीसरा, पृ० ५-६५।

'पृथ्वीराजरासे' में घटनाओं के जो संवत् दिए हैं, वे अशुद्ध हैं, यह कर्नल टॉड को मालूम थी, क्योंकि उन्होंने लिखा है कि—"हाड़ाओं (चौहा एक शाखा) की ख्याति में [अष्टपाल] का संवत् ६८१ मिलता है (कर्नल ने १०८१ माना है), परन्तु किसी आश्चर्यजनक, तो भी एक सी, भूल के सब चौहान जातियाँ अपने इतिहासों में १०० वर्ष पहले के संवत् लिखती हैं, कि बीसलदेव के अनहिलपुर पाटन लेने का संवत् १०८६ के स्थान पर ६८६ है। परन्तु इससे पृथ्वीराज के कविचंद ने भी भूल खाई है और पृथ्वीर जन्म संवत् १२१५ के स्थान में १११५ होना लिखा है; और सब तरह सं कि यह अशुद्धि किसी कवि की अज्ञानता से हुई है।

पंड्याजी ने कर्नल टॉड का यह कथन अपनी 'पृथ्वीराजरासे की संरक्षा' में उद्धृत किया[2] और आगे चल कर उसकी पुष्टि में लिखा कि— और बड़वा लोग जो संवत् अपने लेखों में लिखते हैं, उसमें और शास्त्रीय सं सौ १०० वर्ष का अन्तर है। अब मैं यह विदित करूंगा कि मैं किस तरह बड़वा भाटों के संवत् से परिज्ञात हुआ।...... इस ग्रंथ (पृथ्वीराजरासे राजपूताने में—सर्व-प्रिय और सर्वमान्य देख कर के मुझे भी उसके क्रमशः पढ़ने उसकी उत्तमता की परीक्षा करने की उत्कंठा हुई जब कि मैं कोटे में थ उसका थोड़ा सा भाग, उस राज्य के उन प्रसिद्ध कविराज चंडीदानजी से प जिनके बराबर आज भी कोई चारण संस्कृत भाषा का विद्वान् नहीं है। पढ़ते ही मेरे अंतः करण में एक नया प्रकाश हुआ और रासा मेरे मन के अ का केंद्र हुआ और मेरे मन के सब संदेह मिट गये। तदनन्तर बूंदी और स्थलों के चारण और भाट कवियों के आगे उस में लिखे संवतों के विषय कविराजजी से मेरा एक बड़ा वाद हुआ। उसका सारांश यह हुआ कि चंडी ने सप्रमाण यह सिद्ध किया कि जब विक्रमी संवत् प्रारम्भ हुआ था, तब वह नहीं कहलाता था, किंतु शक कहलाता था, परन्तु जब शालीवाहन ने विक्र बँधुआ करके मार डाला और अपना संवत् चलाना और स्थापन करना चाह

---

१. टॉड राजस्थान (कलत्ते का छपा, अंग्रेजी), जि० २, पृ० ५०० टिप्पण।

२. पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा पृ० २० ।

सब साधारण प्रजा में बड़ा कोलाहल हुआ। शालिवाहन ने अपने संवत् के चलाने का दृढ़ प्रयत्न किया, परन्तु जब उसने यह देखा कि विक्रम के शक को बंद करके मेरा शक नहीं चलेगा, क्योंकि प्रजा उसका पक्ष नहीं छोड़ती और विक्रम को वचन भी दे दिया है अर्थात् जब विक्रम बंदागृह में था; तब उससे कहा गया था कि जो तू चाहता हो वह मांग कि उसने यह याचना कियी कि मेरा शक सर्व साधारण प्रजा के व्यवहार में से बंद न किया जावे··· ··

"तदनंतर शालिवाहन ने आज्ञा कियी कि उसका संवत तो "शक" करके और विक्रम का "संवत्" करके व्यवहार में प्रचलित रहैं। पंडित और ज्योतिषियों ने तो जो आज्ञा दियी गई थी, उसे स्वीकार कियी; परंतु विक्रम के याचकों अर्थात् आज जो चारण भाट राव और बड़वा आदि नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके पुरुषाओं ने इस बात को अस्वीकार करके विक्रम की मृत्यु के दिन से अपना एक प्रथक् विक्रमी शक माना। इन दोनों संवतों में सौ १०० वर्षों का अन्तर है। शालि-वाहन के शक और शास्त्रीय विक्रमी संवत् में १३५ वर्षों का अंतर है। इन दोनों के अन्तरों में जो अन्तर हैं, उसका कारण यह है कि भाट और वंशावली लिखने वालों ने विक्रम की सब वय केवल १०० सौ वर्ष की ही माना है। यह लोग यह नहीं मानते कि विक्रम ने १३५ वर्ष राज्य किया और न उसके राजगद्दी पर बैठने के पहिले भी कुछ वय का होना जो संभव है, वह मानते हैं। इस प्रकार विक्रम के उस समय से दो संवत् प्रारंभ हुवे, उनमें से जो पंडित और ज्योतिषियों ने स्वीकार किया वह "शास्त्रीय विक्रमी संवत्" कहलाया और दूसरा जो भाटों और वंश लिखने वालों ने माना वह "भाटों का संवत्" करके कहलाया। आदि में ही इस तरह का मतान्तर होगया और दो थोक इतने शीघ्र उत्पन्न हो गये। भाटों ने अपने शक का प्रयोग अपने लेखों में किया। यह भाटों का शक दिल्ली और अजमेर के अंतिम चौहान बादशाह के राज्य समय तक कुछ अच्छा प्रचार को प्राप्त रहा और उसका शास्त्रीय विक्रमी संवत् से जो अन्तर है, उसका कारण भी उस समय तक कुछ लोगों को परिज्ञात रहा। तदन्तर इसका प्रचार तो प्रति दिन घटता गया और शास्त्रीय विक्रम संवत् का ऐसा बढ़ता गया कि आज इसका नाम सुनते ही लोग आश्चर्य सा करते हैं। इस भाटों के शक का दूसरे राजपूतों के इतिहास में प्रवेश होने की अपेक्षा चौहान शाखा के राजपूतों

में अधिक प्रयोग होना देखने में आता है। यदि हम रासे में लिखे संवतों की भाटों के विक्रम शक के नियमानुसार परीक्षा करें तो सौ १०० वर्ष के एक से अन्तर के हिसाब से वह शास्त्रीय विक्रम संवत् से बराबर मिल जाते हैं और जो हम रासे के बनने के पहले और पिछले संवतों को भी इसी प्रकार से जांचें तो हम हमारी उक्ति की सत्यता के विषय में तुरन्त सन्तुष्ट हो जाते हैं। जैसे उदाहरण के लिये देखो कि हाड़ा राजपुत्रों की वंशावली लिखने वाले हाड़ाओं के मूल पुरुष अस्थिपाल जी का असेर प्राप्त करने का संवत् ६८२ (१०८१) और बीसलदेवजी का अनहलपुर पट्टन प्राप्त करने का सं० ६८६ (१०८६) वर्णन करते हैं। भाटों का यह एक अपना पृथकशाक मानना सत्य और योग्य है; क्योंकि किसी का नाम वंशावली में मृत्यु होने पर ही लिखा जाता है[१]"।

इस प्रकार पंड्याजी ने कर्नल टॉड की बताई हुई चौहानों के इतिहासों (ख्यातों) और रासे में १०० वर्ष की अशुद्धि पर से विक्रम का एक नया संवत् खड़ा कर दिया, जिसका नाम उन्होंने 'भाटों का संवत' या 'भटायन संवत' रक्खा और साथ में यह भी मान लिया कि उसमें १०० वर्ष जोड़ने से शास्त्रीय विक्रम संवत् ठीक मिल जाता है। इस सम्बन्ध में विक्रम की आयु १३५ वर्ष की होने, शालिवाहन के विक्रम को बन्दी करने आदि की कल्पनाएँ अपना खण्डन अपने आप करती हैं। पृथ्वीराजरासे और चौहानों की ख्यातों में जो थोड़े से संवत मिलते हैं, वे शुद्ध हैं या नहीं, इसकी जाँच के साधन उस समय जैसे चाहिएँ वैसे उपस्थित न होने के कारण पंड्याजी को उक्त कथन में विशेष आपत्ति मालूम नहीं हुई; परन्तु एक आपत्ति उनके लिए अवश्य उपस्थित थी, जो पृथ्वीराजजी की मृत्यु का सम्वत् था। चौहानों की ख्यातों और पृथ्वीराजरासे में तो उनकी मृत्यु का शुद्ध सम्वत नहीं मिलता; परन्तु मुसलमानों की लिखी हुई तवारीखों से यह निर्णय हो चुका था कि तराइन की लड़ाई, जिसमें पृथ्वीराज की शहाबुद्दीन गोरी से हार हुई और वे कैद होकर मारे गए, हिजरी सन् ५८७ (वि० सं० १२४८-४६) में हुई थी। पृथ्वीराजरासे में पृथ्वीराज का जन्म सं० १११५ में होना और ४३ वर्ष की उम्र

१. वही, पृ० ४३-४५। अवतरण में पंड्याजी की लेखन शैली ज्यों की त्यों रक्खी है।

पाना लिखा है। यदि पंड्याजी के कथन के अनुसार इस सम्वत् ११११ को भटायत सम्वत् मानें तो उनका देहान्त वि० सं० (१००+११११+४३) १२५८ में होना मानना पड़ता है। यह सम्वत् उनके देहान्त के ठीक सम्वत् (१२४८–४६) से ६ या १० वर्ष पीछे आता है। इस अन्तर को मिटाने के लिये पंड्याजी को पृथ्वीराज रासे के पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् सूचित करने वाले दोहे के 'एकादस सै पंचदह' पद में आए पंचदह (पंचदश) शब्द का अर्थ 'पाँच,' करने की खेंचतान में 'दह' (दश) शब्द का अर्थ 'दस' न कर 'शून्य' करने की आवश्यकता हुई और उसके सम्बन्ध में यह लिखना पड़ा कि "हमारे इस कहने की सत्यता के विषय में कोई यह शंका करे कि "दश" से शून्य का क्यों ग्रहण किया जाता है, तो उसके उत्तर में हम कहते हैं कि यहाँ 'दश' शब्द के यह दोनों (दस और शून्य अर्थ हो सकते हैं और इन दोनों में से किसी एक अर्थ का प्रयोग करना कवि के अधिकार की बात है[1]"। 'दस' का अर्थ 'शून्य' होता है वा नहीं इसका निर्णय करना हम इस समय तो पाठकों के विचार पर ही छोड़ते हैं। यहाँ पंड्याजी की प्रथम संरक्षा का, जिसका भूमिका ता० १–१–१८८७ ई० को लिखी गई थी, शोध समाप्त हुआ और तारीख तक तो 'अनन्द विक्रम संवत' की कल्पना का प्रादुर्भाव भी नहीं हुआ था।

पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा छपवा कर उसी साल (ई० सं० १८८७ में) पंड्याजी ने 'पृथ्वीराजरासे' का आदि पर्व छपवाना प्रारम्भ किया। ऊपर हम लिख चुके हैं कि पृथ्वीराजरासे और चौहानों की ख्यातों में दिए हुए सम्वतों में से केवल पृथ्वीराज की मृत्यु का निश्चित संवत् फ़ारसी तवारीख़ों से पहले मालूम हुआ था। उसमें भी रासे के उक्त सम्वत् को पंड्याजी के कथनानुसार भटायत सम्वत मानने पर भी ९–१० वर्ष का अन्तर रह जाता है। इसी से पंड्याजी को 'दह' (दश) का अर्थ 'शून्य' और 'पंचदह' (पंचदश) का 'पाँच' मानना पड़ा, जो उनको भी खटकता था। ई० सं० १८८८ के एप्रिल महीने में पंड्याजी से पहली बार मेरा मिलना उदयपुर में हुआ। उस समय मैंने उनसे 'पंचदह' (पंचदश) का अर्थ पाँच करने के लिये प्रमाण बतलाने की प्रार्थना की, जिस पर उन्होंने यही उत्तर दिया कि 'चंद के गूढ़ आशय को समझने वाले विरले ही चारण

---

१. वही, पृ० ४६–४७।

भाट रह गए हैं, तुम लोगों को ऐसे गूढ़ार्थ समझाने के लिये समय चाहिए, का
समय मिलने पर मैं तुम्हें यह अच्छी तरह समझाऊँगा।' इस उत्तर से न तो मु
संतोष हुआ और न पंड्याजी की खटक मिटी। फिर पंड्याजी को 'पंचदह' ·
अर्थ 'पाँच' न कर किसी और तरह से उक्त संगति मिलाने की आवश्यकता हुई
रासे में दिए पृथ्वीराज के जन्म सम्बन्धी दोहे—

> एकादस सै पंचदह, विक्रम साक अनंद।
> तिहि रिपु जय पुर हरन कौं, भय प्रिथिराज नरिंद ॥

में अनंद शब्द देख कर उस पर की टिप्पणी में उन्होंने 'नद' का अर्थ 'नव
'अनंद' का नव रहित, और उस पर से फिर 'नव रहित सौ' कर पृथ्वीराज ·
जन्म सम्बन्धी रासे के सम्वत् में जो ६-१० वर्ष का अन्तर आता था, उसव
मिटाने का यत्न किया और टिप्पणी में लिखा कि—

"अब आप चंद की संवत् सम्बन्धी कठिनता को इस प्रकार समझने ·
प्रयत्न करें कि प्रथम तो रूपक ३५५ (एकादस सै पंचदह०) को बहुत ध्यान देव
पढ़ें। तदनंतर उसका अन्वय करके यह अर्थ करें कि (एकादस सै पंचदह
ग्यारह से पंद्रह (अनन्द विक्रम साक अथवा विक्रम अनन्द साक) अनन्द विक्र
का साक अथवा विक्रम का अनन्द साक (तिहि) कि जिसमें (रिपुजय) शत्रुओं व
विजय करने (पुर हरन) और नगर अथवा देशान्तरों को हरन करने (कौं) व
प्रिथिराज नरिंद) पृथ्वीराज नामक नरेन्द्र (भय) उत्पन्न हुए।"

"तदनन्तर इसके प्रत्येक शब्द और वाक्य खंड पर सूक्ष्म दृष्टि देकर अन्वेषण
करें कि उसमें चंद की (Archaic style) प्राचीन गूढ़ भाषा होने के कारण सम्व
सम्बन्धी कठिनता कहाँ और क्या छुपी हुई है। कवि के प्रतिकूल नहीं, किंतु अनुकू
विचार करने पर आपकी न्याय बुद्धि झट खोज कर पकड़ लावेगी कि—विक्रम सा
अनंद वाक्य खण्ड में—और उसमें भी अनन्द शब्द में हम लोगों को इतने वर्षों ·
गड़बड़ा कर भ्रमा रखने वाली चंद की लाघवता भरी हुई है। इतनी जड़ हाथ ·
आय जाने पर अनन्द शब्द के अर्थ की गहराई को ध्यान में लेकर पक्षपात रहि
विचार से निश्चिय कीजिये कि यहाँ चंद ने उसका क्या अर्थ माना है। निदा
आपको समझ पड़ेगा कि अनन्द शब्द का अर्थ यहाँ चंद ने केवल नव-संख्

रहित-का रक्खा है अर्थात अ=रहित और नंद=नव ९। अब विक्रम साक अनन्द को क्रम से अनन्द विक्रम साक अथवा विक्रम अनन्द साक करके उसका अर्थ करो कि नह रहित विक्रम का शक अथवा विक्रम का नव रहित शक अर्थात् १००-९=९०। ९१ अर्थात् विक्रम का वह शक कि जो उसके राज्य के ९०। ९१ से प्रारम्भ हुआ है। यही थोड़ी सी और उत्प्रेक्षा (!) करके यह भी समझ लीजिए कि हमारे देश के ज्योतिषी लोग जो सैंकड़ों वर्षों से यह कहते चले आते हैं और आज भी वृद्ध लोग कहते हैं कि विक्रम के दो संवत् थे कि जिनमें से एक तो अब तक प्रचलित है और दूसरा कुछ समय तक प्रचलित रह कर अब अप्रचलित हो गया है। और हमने भी जो कुछ इसके विषय की विशेष दंत कथा कोटा राज्य के विद्वान् कविराज श्री चंडीदानजी से सुनी थी. वह इस महाकाव्य की संरक्षा में जैसी की तैसी लिख दियी है और दूसरा अनंद जो इस महाकाव्य में प्रयोग में आया है। इसी के साथ इतना यहाँ का यहाँ और भी अन्वेषण कर लीजिये कि हमारे शोध के अनुसार जो ९०। ९१ वर्ष का अन्तर उक्त दोनों संवतों का प्रत्यक्ष हुआ है, उसके अनुसार इस महाकाव्य के संवत् मिलते हैं कि नहीं। पाठकों को विशेष श्रम न पड़े, अतएव हम स्वयम नीचे के कोष्टक में कुछ संवतों को सिद्ध कर दिखाते हैं:—

"पृथ्वीराज के अनंद संवतों का कोष्टक"

पृथ्वीराजी का	रासो में लिखे अनन्द संवत में	सनन्द और अनन्द सवतों का अतर जोड़ो	यह सनन्द संवत हुआ
जन्म	१११५	९०।९१	१२०५।६
दिल्ली गोद जाना	११२२	९०।९१	१२१२।३
कैमास जुद्ध	११४०	९०।९१	१२३०।१
कन्नौज जाना	११५१	९०।९१	१२४१।२
अंतिम	११५८	९०।९१	१२४८।९

......"चंद के प्रयोग किये हुए विक्रम के अनन्द संवत् का प्रचार बारहवें शतक की राजकीय व्यवहार की लिखावटों में भी हमको प्राप्त हुआ है, अर्थात् हमको शोध करते करते हमारे स्वदेशी अंतिम बादशाह पृथ्वीराजजी और रावल समरसीजी और महाराणी पृथाबाईजी के कुछ पट्टे परवाने में मिले हैं कि उनके

सम्वत् भी इस महाकाव्य में लिखे संवतों से ठीक ठीक मिलते हैं और पृथ्वीराजजी के परवानों में जो मुहर छाप है, उसमें उनके राज्याभिषेक का सं० ११२२ लिखा है। इन परवानों के प्रतिरूप अर्थात् Photo हमने हमारी ओर से एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को भेंट करने के लिये हमारे स्वदेशी परम मित्र प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर रायबहादुर राजा राजेन्द्रलालजी ऐल० ऐल० डी०, सी० आई० ई० के पास भेजे हैं और उनके अकृत्रिम (!) होने के विषय में हमारे परस्पर बहुत कुछ पत्र व्यवहार हुआ है। यदि हमारे राजा साहब अकस्मात् रोगग्रस्त न हो गये होते तो वे हमारे इस बड़े परिश्रम से प्राप्त किये हुए प्राचीन लेखों को अपने विचार सहित पुरातत्ववेत्ताओं की मंडली में प्रवेश किये होते। इन परवानों के अतिरिक्त हमको और भी कई एक प्रमाण प्राप्त होने की दृढाशा है कि जिसको हम उस समय विद्वत् मंडली में प्रवेश करेंगे कि जब कोई विद्वान् उनको कृत्रिम होने का दोष देगा। देखिये जोधपुर राज्य के काल-निरूपक राजा जयचन्दजी को सम्वत् ११३२ में और शिवजी और सेतरामजी को सं० ११६८ में और जयपुर राज्यवाले पज्जूनजी को सं० ११२७ में होना आज तक निः संदेह मानते हैं और यह सम्वत् भी हमारे अन्वेषण किये हुए ९१ वर्ष के अन्तर के जोड़ने से सनंद विक्रमी होकर संप्रतकाल के शोध हुए समय से मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त रावल समरसीजी की जिन प्रशस्तियों को हमारे मित्र महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदासजी ने अपने अनुमान को सिद्ध करने को प्रमाण में माना है, वह भी एक आंतरीय हिसाब से indirectly हमारे शोध किये इस अनन्द सम्वत को और उसके प्रचार को पुष्ट और सिद्ध करती है[१]।"

इस प्रकार पंड्याजी ने जिस सम्वत् को 'पृथ्वीराज रासे की प्रथम संरक्षा' में 'भाटों का संवत्' या 'भटायत' सम्वत् माना था उसी का नाम उन्होंने 'अनन्द्विक्रम सम्वत्' रक्खा और पहले 'भटायत' सम्वत् में १०० जोड़ने से प्रचलित विक्रम संवत-का मिल जाना बतलाया था, उसको पलट कर 'अनंदविक्रम-संवत्' में ९० या ९१ मिलाने से प्रचलित विक्रम सम्वत् का बनना मान लिया। साथ में यह भी मान

---

१. पृथ्वीराज रासा, आदि पर्व, पृ० २३९-४४।

लिया कि ऐसा करने से पृथ्वीराज रासे तथा चौहानों की ख्यातों में दिए हुए सब संवत् उन घटनाओं के शुद्ध संवतों से मिल जाते हैं और जोधपुर तथा जयपुर के राजाओं के जो संवत मिलते हैं, वे भी मिल जाते हैं, और मेवाड़ के रावल समरसिंहजी की प्रशस्तियां भी उक्त संवत (अनंद) की पुष्टि करती है। पंड्याजी के इस कथन की तथा उनके ऊपर उल्लेख किए हुए पृथ्वीराजजी, समरसीजी तथा पृथाबाई के पट्टे परवानों की जाँच कुछ आगे चल कर करेंगे, जिससे स्पष्ट हो जायगा कि उनका कथन कहाँ तक मानने योग्य है।

इसके पीछे बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की हुई ई० स० १९०० की हिंदी की हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट, पुस्तकों के प्रारम्भ और अन्त के अवतरणों आदि सहित, अँग्रेजी में छापी, जिसमें पृथ्वीराज-रासे की तीन पुस्तकों के नोटिस हैं और अंत में पृथ्वीराजजी, समरसीजी तथा पृथाबाई के जिन पट्टे परवानों का उल्लेख पंड्याजी ने किया था, उनकी प्रति-कृतियों (फोटो) सहित नकलें भी दी हैं। उसकी अंग्रेजी भूमिका में, जिसका हिन्दी अनुवाद जयपुर के 'समालोचक' नामक हिन्दी मासिक पुस्तक की अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर सन् १९०४ ई० की सम्मिलित संख्या में भी छपा है, बाबूजी ने पंड्याजी के कथन का समर्थन करते हुए लिखा कि "चंद ने अपने ग्रन्थ में ९०-९१ वर्ष की लगातार भूल की है। परन्तु किसी बात का एकसा होना भूल नहीं कहलाता, इसलिये इस ९० वर्ष के समअन्तर के लिये कोई न कोई कारण अवश्य होगा।............पृथाबाई का विवाह समरसी से अवश्य हुआ था, लोग इसके विरुद्ध चाहे कुछ ही क्यों न कहें। परवानों का जो प्रमाण यहाँ दिया गया है, वह बहुत ही पुष्ट जान पड़ता है और इसके विरुद्ध जो कुछ अनुमान किया जाय उस सबको हलका बना देता है।.........परवानों और पत्रों की सत्यता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता; क्योंकि उनमें से एक दूसरे की पुष्टि करता है......। यह बात ऊपर बहुत ही स्पष्ट करदी गई है कि चंद की तिथियाँ कल्पित नहीं हैं और न उसके महाकाव्य में दी हुई घटनाएँ ही मिथ्या हैं, वरन् वे सब सत्य हैं। यह भी साबित किया जा चुका है कि ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी के लगभग राजपूताने में दो सम्वत् प्रचलित थे, एक तो सनन्द विक्रम सम्वत् जो ईसवी सन् के ५७ वर्ष पहले चलाया गया था और दूसरा अनन्द विक्रम सम्वत् जो सनन्द विक्रम

संवत् में से ६२ वर्ष घटाकर गिना जाता था[1] ।"

बाबूजी की वह रिपोर्ट यूरोप में पहुंची और वहाँ के विद्वानों ने उसे पढ़कर नए, 'अनंद विक्रम संवत् को इतिहास के लिये बड़े महत्व की बात माना। अनेक भाषाओं के विद्वान प्रसिद्ध डाक्टर सर जी० ग्रिअर्सन ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के विद्वान् विंसेंट स्मिथ को इस संवत् की सूचना दी, जिस पर उन्होंने अपने 'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में पंड्याजी अथवा बाबूजी का उल्लेख न करके लिखा कि "सर जी० ग्रिअर्सन मुझे सूचित करते हैं कि नंदवंशी राजा ब्राह्मणों के कट्टर दुश्मन माने गए हैं और इसीलिये उनका राजत्व काल बारहवीं शताब्दी में चंद कवि ने काल गणना में से निकाल दिया। उसने विक्रम के अनंद (नंद रहित) संवत् का प्रयोग किया है, प्रचलित गणना से ६० या ६१ वर्ष पीछे है। 'नंद' शब्द का 'नव' के अर्थ में व्यवहृत होना पाया जाता है (१००–९=९१)[2]" आगे चल कर उसी विद्वान् ने लिखा है कि "रासे में काल गणना की जो भूलें मानी जाती हैं, उनका समाधान इस शोध से होजाता है कि ग्रंथकर्ता ने अनंद विक्रम संवत् का प्रयोग किया है [जिसका प्रारंभ] अनुमान से ई० सं० ३३ से है और इसीलिये वह प्रचलित सनन्द विक्रम सम्वत् से, जो ई० स० पूर्व ५८-५७ से [प्रारंभ हुआ था] ९०–१ वर्ष पीछे है। अनन्द और सनन्द शब्दों का अर्थ क्रमशः 'नंद-रहित' और 'नंद सहित' होता है और नंद ९० या ९१ का सूचक माना जाता है, परन्तु नव नंदों के कारण वह शब्द वास्तव में ९ का सूचक है[3] ।"

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की हुई हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज की ई० स० १९०० से १९०३ तक की बाबू श्यामसुन्दरदासजी की अंग्रेजी रिपोर्ट की समालोचना करते समय डाक्टर रूडोल्फ हार्नली ने ई० स० १९०६ के रायल-एशिआटिक सोसाइटी के जर्नल में लिखा कि "पृथ्वीराज रासे के प्रामाणिक होने को जो एक समय बिना किसी सन्देह के माना जाता था, पहले पहल कवि-राजा श्यामलदास ने ई० स० १८८६ में बंगाल एशिआटिक सोसाइटी के जर्नल

---

१. एन्युअल् रिपोर्ट ऑन दि सर्च फॉर हिन्दी मैनुस्क्रिप्ट्स १९०० ई०, पृ० ४–१० और 'समालोचक' (हिन्दी का मासिक पत्र), भाग ३, पृ० १६५–७१ ।

२. विंसेंटस्मिथ; अर्लीहिस्टरी ऑफ इण्डिया पृ० ४२ टिप्पन २ ।

३. वही ।

में छपवाए लेख में अस्वीकार किया और तब से उस पर बहुत कुछ सन्देह होरहा है; जिसका मुख्य कारण उसके सम्वतों का अशुद्ध होना है। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या का तलाश किया हुआ उसका समाधान उसी पुस्तक (रासे) से मिलता है। चंद बरदाई अपने आदि पर्व में बतलाता है कि उसके सम्वत् प्रचलित विक्रम सम्वत् में नहीं; किन्तु पृथ्वीराज के ग्रहण किए हुए उसके प्रकारांतर अनंद विक्रम संवत् में दिए गए हैं। इस नाम के लिए कई तर्क बतलाए गए हैं जिनमें से एक भी पूर्ण संतोषप्रदायक नहीं है, तो भी वास्तव में जो ठीक प्रतीत होता है वह मि० श्यामसुन्दरदास का यह कथन है कि यदि अनंद विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ प्रचलित विक्रम सम्वत् से, जो पहिचान के लिये सनंद विक्रम सम्वत् कहा जाता है, ९०-९१ वर्ष पीछे माना जावे तो रासे के सब सम्वत् शुद्ध मिल जाते हैं, इसलिये यह सिद्ध होता है कि अनंद विक्रम सम्वत् में ३३ जोड़ने से ई० स० बन जाता है[1]।"

ई० स० १९१३ में डॉक्टर बार्नेट ने 'एंटिक्विटीज़ ऑफ इंडिआ' नामक पुस्तक प्रसिद्ध की, जिसमें अनंद विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ ई० स० ३३ से होना माना है[2]।"

विक्रम संवत् १९६७ में मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' नामक उत्तम पुस्तक लिखी; जिसमें चंद बरदाई के चरित्र के प्रसंग में रासे के संवतों के विषय में लिखा है कि "सन संवतों का गड़बड़ अधिक संदेह का कारण हो सकता था, पर भाग्य वश विचार करने से वह भी निमूल ठहरता है। चंद के दिए संवतों में घटनाओं का काल अटकलपच्चू नहीं लिखा है, वरन् इतिहास द्वारा जाने हुए समय से चंद के कहे हुए संवत सदा ९० वर्ष कम पड़ते हैं और यही अंतर एक दो नहीं प्रत्येक घटना के संवत् में देख पड़ता है। यदि चंद के किसी संवत में ९० जोड़ दें तो ऐतिहासिक यथार्थ संवत् निकल आता है। चंद ने पृथ्वीराज के जन्म, दिल्ली गोद जाने, कन्नौज जाने, तथा अंतिम युद्ध के १११५, ११२२, ११५१, ११५८ संवत् दिए हैं और इनमें ९० जोड़ देने से प्रत्येक घटना के यथार्थ संवत् निकल आते हैं

---

१. जर्नल ऑफ दी रॉयल एशियाटिक् सोसाइटी, सन १९०६, ई०, पृ०, ४००-१।

२. डा० बार्नेट एँटिक्विटीज़ ऑफ इंडिआ, पृ० ६४।

(पृथ्वीराज रासो, पृ० १४०, देखिए)। प्रत्येक घटना में केवल ६० साल का अंतर होने से प्रकट है कि कवि इन घटनाओं के संवतों से अनभिज्ञ न था नहीं तो किसी में ६० वर्षों का अन्तर पड़ता और किसी में कुछ और।······। चंद पृथ्वीराज का जन्म ११११५ विक्रम अनंद सम्वत् में बताता है। अतः वह साधारण सम्वत् न लिखकर 'अनंद' सम्वत् लिखता है। अनंद का अर्थ साधारणतया आनंद का भी कहा जा सकता है, पर इस स्थान पर आनंद के अर्थ लगाने से ठीक अर्थ नहीं बैठता है। यदि आनंद शब्द होता तो आनंद वाला अर्थ बैठ सकता था। अतः प्रकट होता है कि चंद अनंद संज्ञा का कोई विक्रमीय सम्वत् लिखता है। यह अनंद संवत् जान पड़ता है कि साधारण संवत् से ६० वर्ष पीछे था ·····। अनंद संवत् किस प्रकार चला और साधारण संवत् से वह ६० वर्ष पीछे क्यों है, इसके विषय में पंड्याजी ने कई तर्क दिए हैं,पर दुर्भाग्यवश उनमें से किसी पर हमारा मत नहीं जमता है। बाबू-श्यामसुन्दरदासजी ने भी एक कारण बतलाया है, पर वह भी हमें ठीक नहीं जान पड़ता।···अभी तक हम लोगों को अनंद संवत् के चलने तथा उसके ६० वर्ष पीछे रहने का कारण नहीं ज्ञात है, पर इतना जरूर जान पड़ता है कि अनंद संवत् चलता अवश्य था और वह साधारण संवत् से ६० या ६१ वर्ष पीछे अवश्य था। उसके चलने का कारण न ज्ञात होना उसके अस्तित्व में संदेह नहीं डाल सकता[1]।"

इस प्रकार पंड्याजी के कल्पना किए हुए 'अनंद विक्रम संवत' को इंग्लैंड और भारत के विद्वानों ने स्वीकार कर लिया, परन्तु उनमें किसी ने भी यह जाँच करने का श्रम न उठाया कि ऐसा करना कहाँ तक ठीक है। राजपूताने में इतिहास की ओर दिन-दिन रुचि बढ़ती जाती है और कई राज्यों में इतिहास कार्यालय भी स्थापित हो गए हैं। ख्यातों आदि के अशुद्ध संवतों के विषय की चर्चा करते हुए कई पुरुषों ने मुझे यह कहा कि उन संवतों को अनंद विक्रम संवत् मानने से शायद वे शुद्ध निकल पड़ें। अतएव उसकी जाँच कर यह निर्णय करना शुद्ध इतिहास के लिये बहुत ही आवश्यक है कि वास्तव में चंद ने 'पृथ्वीराजरासे' में प्रचलित विक्रम संवत् से भिन्न 'अनंद विक्रम संवत्' का प्रयोग किया है, या नहीं। पंड्याजी के कल्पना किए हुए उक्त संवत् में ६० या ६१ जोड़ने से 'रासे' तथा चौहानों की

१. मिश्रबंधु; हिन्दी नवरत्न, पृ० ३२२–२४।

ख्यातों में दिए हुए सब घटनाओं के सम्वत् शुद्ध मिल जाते हैं या नहीं, ऐसे ही जोधपुर और जयपुर राज्यों की ख्यातों में मिलने वाले संवतों तथा पृथ्वीराज, रावल समरसी तथा पृथाबाई के पट्टे परवानों के संवतों को अनंद विक्रम संवत मानने से वे शुद्ध संवतों से मिल जाते हैं या नहीं, इसकी जाँच नीचे की जाती है।

'अनंद विक्रम संवत्' नाम

कर्नल टॉड की मानी हुई चौहानों की ख्यातों और पृथ्वीराज रासे के संवतों में १०० वर्ष की अशुद्धि पर से उन संवतों की संगति मिलाने के लिये पंड्याजी ने ई० स० १८८७ में पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा में तो एक नए संवत् की कल्पना कर उसका नाम 'भाटों का संवत्' या 'भटायत संवत्' रक्खा और प्रचलित विक्रम संवत् से उसका १०० वर्ष पीछे होना मानकर लिखा कि "यदि हम रासे में लिखे संवतों की भाटों के विक्रमी शक के नियमानुसार परीक्षा करें तो सौ १०० वर्ष के एक से अंतर के हिसाब से वह शास्त्रीय विक्रमीय संवत् से बराबर मिल जाते हैं।" इस हिसाब से पृथ्वीराज का देहान्त, जो रासे में ४३ वर्ष की अवस्था में होना लिखा है, वह वि० सं० १२५८ में होना मानना पड़ता था। पृथ्वीराज का देहांत वि० सं० ११४८-४९ में होना निश्चित् था, जिससे भटायत सं० से वह ९-१० वर्ष पीछे पड़ता था। इस अन्तर को मिटाने के लिये 'एकादश से पंचदह' में से (पंचदश) का गूढ़ार्थ 'पांच' मानकर उसकी संगति मिलाने का उन्होंने यत्न किया, जिसको साक्षर वर्ग ने स्वीकार न किया। तब उन्होंने उसी साल पृथ्वीराजरासे के आदि पर्व को छपवाते समय टिप्पणी में उस ९ वर्ष के फर्क को मिटाने के लिये पृथ्वीराज के जन्म-सम्बन्धी रासे के दोहे 'एकादश सै पंचदह विक्रम साक अनंद' में 'अनंद' शब्द का अर्थ नंद रहित' या 'नवरहित' कर अपने माने हुए भटायत संवत् के अनुसार पृथ्वीराजजी के देहांत संवत् को ठीक करने का उद्योग किया, परन्तु ऐसा करने पर उक्त दोहे का अर्थ 'विक्रम का नव-रहित संवत १११५ (अर्थात् ११०६) होता था, जिससे उन्होंने मूल में १०० का सूचक कोई शब्द न होने पर भी सौ रहित नव (अर्थात् ९१) कर उक्त संवत् का नाम 'अनंद विक्रम संवत्' रक्खा और लिखा कि "३५५ रूपक में जो अनंद शब्द प्रयोग हुआ है, उसमें किसी किसी को कुछ सन्देह रहेगा; अतएव हम फिर उसके विषय में कुछ अधिक कहते हैं। देखो संशय करना कोई बुरी बात नहीं है; किंतु वह सिद्धांत का मूल है। हमारे गौतम

ऋषि ने अपने न्यायदर्शन में प्रमाण और प्रमेय के पीछे संशय को एक पदार्थ माना है और उसके दूर करने के लिये ही मानो सब न्याय शास्त्र रचा गया है। यदि अनंद का नव-संख्या-रहित का अर्थ किसी की सम्मति में ठीक नहीं जँचता हो तो उससे इस स्थल में बहुत अच्छी तरह घटता हुआ कोई दूसरा अर्थ बतलाना चाहिए, परन्तु बात तब है कि वह सर्वतन्त्र सिद्धान्त Universally true से उसी तरह सिद्ध हो सकता है कि जैसे हमने यहाँ अपना विचार सिद्ध कर दिखाया है। सब लोग जानते हैं कि हमारे इस शोध के पहिले तक युवा और मध्य वय के कोई-कोई कवि लोग इस अनन्द संज्ञावाचक शब्द का गुणवाचक अर्थ शुभ Auspicious का करते हैं और चारण जाति के महामहोपाध्याय कविराज श्री श्यामलदासजी ने भी अपने इस महाकाव्य के खंडन-ग्रंथ में यही अर्थ माना है। परन्तु विद्वानों के विचारने और न्याय करने का स्थल है कि इस दोहे में आनंद का पाठ नहीं है, और न छंद के लक्षण के अनुसार वह बन सकता है; किन्तु स्पष्ट अनन्द पाठ है। यदि यहाँ संज्ञावाचक आनन्द पाठ भी होता तो भी उसका गुणवाचक शुभ का अर्थ नहीं हो सकता था; परन्तु संस्कृत का थोड़ासा ज्ञान रखने वाला भी जान सकता है ····· कि जब अनंद शब्द का सत्य अर्थ दुःख का है, तो फिर क्या सुख या शुभ का अर्थ करना अयोग्य नहीं है[१]।"

पंड्याजी ने यहाँ संस्कृत के 'अनंद' शब्द का अर्थ 'दुःख' माना है, परन्तु पृथ्वीराज रासा संस्कृत काव्य नहीं है कि उसको संस्कृत के नियमों से जकड़ दें। वह तो भाषा का ग्रंथ है। संस्कृत में 'अनंद' और 'आनन्द' शब्द एक दूसरे से विपरीत अर्थ में भले ही आवें; परन्तु हिंदी काव्यों में 'अनंद' शब्द आनन्द' के अर्थ में तुलसीदासजी आदि प्रसिद्ध कवियों के काव्यों में मिलता है[२]। हिंदी भाषा

---

१. पृथ्वीराज रासा, आदि पर्व, पृ॰ १४० टिप्पण।

२. पुनिमुनिगन दुहु भाइन्ह बंदे, अभिनत आसिख पाइ अनंदे ॥

रामचरित मानस (इंडियन प्रेस का), पृ॰ ५६२,

नव गयंद रघुबीर मन, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गमन सुनि, उर अनंद अधिकान ॥

वही, पृ॰ ३३३

प्राकृत के अपभ्रंश रूप से निकली है और अपभ्रंश में बहुधा विभक्तियों को प्रत्यय नहीं लगते। यही हाल हिन्दी काव्यों का भी है। विभक्तियों के प्रत्यय न लगने से कई संज्ञावाचक शब्दों का प्रयोग गुणवाचक की तरह हो जाता है, जैसे कि पृथ्वीराज के जन्म-संवत् संबंधी दोहे में 'विक्रम साक' का अर्थ विक्रम का संवत् या वर्ष है और यहाँ विक्रम के साथ संबंधकारक का प्रत्यय नहीं है, जिससे उसका गुणवाचक अर्थ 'विक्रमी' संवत् हुआ। ऐसे ही 'अनंद साक' का संज्ञाबाचक अर्थ 'आनंद का वर्ष' या गुणवाचक 'आनंददायक वर्ष या शुभ वर्ष' होता है; क्योंकि 'अनंद' के साथ विभक्ति सूचक प्रत्यय का लोप है। 'अनंद साक' पद ठीक वैसा ही है, जैसा कि 'आनंद का समय,' आनंद का स्थान' आदि। इसलिये उक्त दोहे का वास्तविक अर्थ यही है कि 'विक्रम के शुभ संवत ११५ में पृथ्वीराज का जन्म हुआ'। ज्योतिषी लोग अपने यजमानों के जन्मपत्र वर्षपत्र आदि में सामान्यरूप से 'शुभसंवत्सरे' लिखते हैं, तो पृथ्वीराज जैसे प्रतापी राजा के संबंध का इतना बड़ा काव्य लिखने वाला उनके जन्म-सम्वत् को 'शुभ' कहे तो इसमें आश्चर्य की बात कौनसी है। बहुधा राजपूताने में पत्रों के अंत में 'शुभमिती' और स्त्रियों के पत्र के अंत में 'मिती आनंद की' लिखने की रीति पाई जाती है।

जिन विद्वानों ने 'अनंद संवत्' को स्वीकार किया है, उन्होंने 'अनंद' शब्द पर से नहीं; किंतु पंड्याजी और बाबूजी के इस कथन पर विश्वास करके कि 'रासे के संवतों में ९० या ९१ वर्ष मिलाने से सब संवत् शुद्ध मिल जाते हैं, अनंद संवत् का अस्तित्व माना है। हम आगे जाँच कर यह बतलावेंगे कि वास्तव में संवत नहीं मिलते और न चौहानों की ख्यातों, जोधपुर और जयपुर के राजाओं के संवत् तथा पृथ्वीराज, समरसी और पृथाबाई के पट्टे परवानों के संवत् में ९० या ९१ वर्ष मिलाने से वे शुद्ध संवतों से मिल जाते हैं। तब स्पष्ट हो जायगा कि रासे के कर्ता ने 'अनंद शक का प्रयोग 'आनंददायक' या 'शुभ'

पौढि रही उमगै अति ही मतिराम अनंद अमात नहीं के।

मतिराम का रसराज (मनोहर प्रकाश), पृ० १२६,

आये विदेश तें प्रानप्रिया, मतिराम अनंद बढाय अलेखें।

वही पृ० १५०

के अर्थ में किया है और 'अनंद विक्रम संवत्' नाम की कल्पित सृष्टि केवल पंड्याजी ने ही खड़ी की है।

पृथ्वीराज के जन्म का संवत्।

पृथ्वीराज रासे में पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १११५ में होना लिखा है। पंड्याजी इस संवत् को अनंद विक्रम संवत् मानकर उसका जन्म सनंद विक्रम संवत् (१११५ + ९०–९१=) १२०५–६ में होना बतलाते हैं। इसके ठीक निर्णय के लिये पृथ्वीराज के दादा अर्णोराज (आना) से लगाकर पृथ्वीराज तक के अजमेर के इतिहास की संक्षेप से आलोचना करना आवश्यक है। आधुनिक शोध के अनुसार अर्णोराज से पृथ्वीराज तक का वंशवृत्त प्रत्येक राजा के निश्चित ज्ञात समय के साथ नीचे लिखा जाता है—

अर्णोराज
आनल्ल देव
१ आनक
आनाक
(वि०सं० ११९६-१२०७)

(मारवाड़ की सुधवा से) | (गुजरात की कांचन देवी से)

२. (जगद्देव) — ५ पृथ्वीभट्ट, पृथ्वीराज (दूसरा), पृथ्वीदेव, पेथडदेव (वि.सं. १२२४, १२२५, १२२६)

१

३ विग्रहराज-चौथा, वीसलदेव (वि० सं० १२१०, १२११, १२२०)
— ४ अपरगांगेय, अमरगांगेय, अमरगंगु
— नागार्जुन ७

६ सोमेश्वर (वि०सं० १२२६, १२२८, १२२९, १२३०, १२३४)
— ९ पृथ्वीराज तीसरा (वि.सं. १२३६, १२३९, १२४४, १२४५)
— ८ गोविन्दराज
— हरिराज (वि० सं० १२५१)

(१) पृथ्वीराज विजय में अर्णोराज की दो रानियों के नाम मिलते हैं—मारवाड़ की सुधवा और गुजरात के राजा जयसिंह (सिद्धराज) की पुत्री कांचनदेवी। सुधवा के तीन पुत्र हुए, जिनमें से केवल सबसे छोटे विग्रहराज का नाम

उसमें दिया है। कांचनदेवी से सोमेश्वर का जन्म हुआ[1]। सुधवा के ज्येष्ठ पुत्र

---

१. अवीचिभागो मरुभूमिनामा खण्डो द्युलोकस्य गुर्जराख्यः।
परीक्षणायेव दिशि प्रतीच्यामेकीकृतौ पाशधरेण यौ द्वौ ॥ [२६]
तयोर्द्वयोरप्युदिते नरेन्द्रं, तं वत्रतुस्तुल्यगुणे महिष्यौ।
रसातलस्वर्गभवे इव द्वे, त्रिलोचनं चन्द्रकलात्रिसर्गे ॥ [३०]
पूर्वा तयोर्नाम कृतार्थयन्ती तं प्राप्य कान्तं सुधवाभिधाना।
सुतानवापत्प्रकृतेस्समानान्गुणानिवान्योन्यविभेदिनस्त्रीन् ॥ [३१]
(पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, सर्ग ६)।

गुर्जरेन्द्रो जयसिंहस्तस्मै यां दत्तवान्सा काञ्चनदेवी रात्रौ च दिने च सोमं सोमेश्वरसंज्ञमजनयत्" (पृथ्वीराज विजय, सर्ग ६, श्लोक [३४] पर जोनराज की टीका, मूल श्लोक नष्ट होगया है)।

सूनुः श्रीजयसिंहोऽस्माज्जायते स्म जगज्जयी ॥ २६ ॥
अमर्षणं मनः कुर्वन्विपक्षोर्वीभृदुन्नतौ।
अगस्त्यवत् इव यस्तूर्णमर्णोराजमशोषयत् ॥ २७ ॥
गृहीता दुहिता तूर्णमर्णोराजस्य विष्णुना।
दत्तानेन पुनस्तस्मै भेदोभूदुभयोरयम् ॥ २८ ॥
द्विषां शीर्षाणि लूनानि दृष्ट्वा तत्पादयोः पुरः।
चक्रे शाकंभरीशोभि शङ्कितः प्रणतं शिरः ॥ २६ ॥
(सोमेश्वर रचित कीर्तिकौमुदी, सर्ग २)

'कीर्तिकौमुदी' का कर्ता, गुर्जरेश्वरपुरोहित सोमेश्वर, गुजरात के राजा जयसिंह (सिद्धराज) का चौहान (शाकंभरीश्वर) अर्णोराज (आना) को जीतना और अपनी पुत्री का विवाह उस (अर्णोराज) के साथ करना स्पष्ट लिखता है, तो भी 'बंबई गॅजे़टियर' का कर्त्ता सोमेश्वर के कथन को स्वीकार न कर लिखता है कि यह भूल है, क्योंकि अर्णोराज के साथ की लड़ाई और संधि कुमारपाल के समय की घटनाएँ हैं (बंबई गॅजे़टिअर, जि० १, भाग १, पृ० १७६)। यहाँ सोमेश्वर की भूल बतलाता हुआ उक्त 'गॅजे़टियर' का कर्त्ता स्वयं भूल कर गया है, क्योंकि 'प्रबन्धचिंतामणि का कर्ता मेरुतुंगाचार्य भी जयसिंह और आनाक (अर्णोराज=आना) के बीच की लड़ाई का उल्लेख करता है (सपादलक्षः सहभूरिलक्षैरानाकभूपाय नताय दत्तः। दत्ते यशोवर्मणि मालवोपि त्वया न सेहे द्विपि सिद्धराजः (प्रबन्धचिंतामणि पृ० १६०)। 'पृथ्वीराज विजय के कर्त्ता जयरथ (जयानक) ने अपना काव्य वि० सं० १२४८ के पूर्व बनाया और इसमें जयसिंह की पुत्री कांचनदेवी का विवाह

(जगद्देव) के विषय में लिखा है कि उसने अपने पिता की वही सेवा बजाई जो भृगुनंदन (परशुराम) ने अपनी माता की की थी (अर्थात् उसने अपने पिता को मारडाला) और वह दीपक की नाईं अपने पीछे दुर्गन्ध (अपयश) छोड़ मरा[१]। वि० सं० ११९६ के अर्णोराज के समय के दो शिलालेख जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रान्त में प्रसिद्ध जीणमाता के मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदे हुए हैं[२] और चित्तौड़ के किले तथा पालड़ी के शिलालेखों से पाया जाता है कि गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा कुमारपाल की अर्णोराज के साथ की लड़ाई वि० सं० १२०७ के आश्विन या कार्तिक में हुई होगी[३]। उसके पुत्र विग्रहराज (बीसलदेव) ने राज्य पाने के बाद वि० सं० १२१० मार्गशुक्ला ५ को 'हरकेलि' नाटक समाप्त किया[४]। अतएव अर्णोराज और जगद्देव दोनों का देहान्त वि० सं० १२०७ के आश्विन और १२१० के मार्ग के बीच किसी समय हुआ होगा।

अर्णोराज से होना लिखा है, इतना ही नहीं, किंतु उस कन्या से उत्पन्न होने वाले सोमेश्वर को जयसिंह का अपने यहाँ लेजाने और उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के द्वारा गुजरात में सोमेश्वर का लालन-पालन होने आदि का विस्तार के साथ उल्लेख किया है। कीर्तिकौमुदी वि० सं० १२८२ के आसपास बनी है। इन दोनों काव्यों का कथन 'बंबई गेजे़टिअर' के कर्ता के कथन की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है।

१. प्रथमस्सुधवासुतस्तदाना परिचर्यां जनकस्य तामकार्षीत् ।
प्रतिपाद्यजलाञ्जलिं घृणायै त्रिदिवं यां भृगुनन्दनो जनन्याः ॥ [१२ ॥]
स्वयमेव विनश्य गर्हणीयं व्यतनोद्दीप इवानुरागगन्धम् ॥ [१३ ॥]

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ७।

२. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ दि आर्किऑलॉजिकल, सर्वे, वेस्टर्न सर्कल, ई० स० १९०९-१०, पृ० ५२।

३. इन्डि० एँटि; जि० ४०, पृ० १६६।

४. संवत् १२१० मार्गशुदि ५ आदित्यदिने श्रवणनक्षत्रे मकरस्थे चन्द्रे हर्षणयोगे बालवकरणे हरकेलिनाटकं समाप्तं ॥ मंगलं महा श्रीः ॥ कृतिरियं महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीविग्रहराजदेवस्य (शिलाओं पर खुदा हुआ हरकेलि नाटक, राजपूताना म्यूजिअम, अजमेर, में सुरक्षित)।

(२) जगद्देव का नाम, पितृघाती (हत्यारा) होने के कारण, राजपूताने की रीति के अनुसार बीजोल्यां के वि० सं० १२२६ के शिलालेख तथा 'पृथ्वीराज विजय' में नहीं दिया; परन्तु 'हमीरमहाकाव्य'[१] और 'प्रबंध कोष (चतुर्विंशति प्रबन्ध)' की हस्तलिखित पुस्तक के अन्त में दी हुई चौहानों की वंशावली[२] में उसका नाम जगद्देव मिलता है। जगद्देव के पुत्र पृथ्वीभट के विद्यमान होने पर भी उसके पीछे उसका छोटा भाई विग्रहराज (वीसलदेव) राजा हुआ, जिसका कारण यही अनुमान किया जा सकता है कि जैसे मेवाड़ के महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) को मार कर उसका ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) मेवाड़ का राजा बना; परन्तु सर्दारों आदि ने उसकी अधीनता स्वीकार न की और राणा कुंभा का छोटा पुत्र रायमल सर्दारों की सहायता से उसे निकाल कर मेवाड़ का राजा बना, वैसे ही पृथ्वीभट से विग्रहराज ने अजमेर का राज्य लिया हो।

(३) विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के राजत्वकाल के संवत वाले शिलालेख अब तक ४ मिले हैं, जिनमें से उपर्युक्त 'हरकेलिनाटक' की पुष्पिका वि० सं० १२१० की, मेवाड़ के जहाजपुर जिले के लोहारी गाँव के पास के भूतेश्वर महादेव के मन्दिर के स्तम्भ पर का वि० सं० १२११ का[३] और अशोक के लेख वाले देहली के शिवालिक स्तम्भ पर [कार्तिकादि] वि० सं० १२२० (चैत्रादि १२२१) वैशाख शुदि १५ (ता० ६ एप्रिल, ई० स० ११६४) गुरुवार (वार एक ही लेख में दिया है) के दो[४] हैं। पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरे) का सबसे पहला लेख वि० सं० १२२४ माघशुक्ल ७ का हाँसी से मिला है[५]। अतएव विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे और उसके पुत्र अमर गांगेय दोनों की मृत्यु वि० सं० १२२१ और १२२४ के बीच किसी समय हुई, यह निश्चित है।

---

१. विस्मापकश्रीर्भवति स्म तस्माद्भूभृत् जगद्देव इति प्रतीतः।
हमीरमहाकाव्य, सर्ग २, श्लो० ५२।

२. गउडवहो, अँग्रेजी भूमिका, पृ० १३५–३६ (टिप्पण)।

३. ॐ॥ सम्वत् १२११ श्रीः (श्री) परमगासु (शु) पताचार्येन (ण) विश्वेश्वर [प्र] ज्ञेन श्रीवीसलदेवराज्ये श्रीसिद्धेश्वरप्रासादे मण्डपं [भूषितं]॥
(लोहारी के मन्दिर का लेख, अप्रकाशित)।

४. इन्डि० एन्टि०, जि० १६, पृ० २१८।

५. वही, जि० ४१, पृ० १६।

(४) अपरगांगेय (अमरगांगेय) से पितृघाती जगदेव के पुत्र पृथ्वीभट्ट ने राज्य छीन लिया हो, ऐसा पाया जाता है । क्योंकि मेवाड़ राज्य के जहाजपुर जिले के धौड़ गांव के पास के रूठी राणी के मंदिर के एक स्तंभ पर के वि०सं० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ के पृथ्वीदेव (पृथ्वीभट्ट) के लेख में उसको रणखेत में अपने भुजबल से शाकंभरी के राजा को जीतने वाला[1] बतलाया है । बालक अपरगांगेय की मृत्यु विवाह होने से पहले हुई हो और वह एक वर्ष से अधिक राज करने न पाया हो । 'पृथ्वीराजविजय' में लिखा है कि 'पृथ्वीराज के द्वारा सूर्यवंश (चौहानवंश) की उन्नति को देखते हुए यमराज ने इस (विग्रहराज) के पुत्र अपरगांगेय को हर लिया[2] ।

(५) पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरे) के समय के अब तक तीन शिलालेख मिले हैं, जिनमें से उपर्युक्त हाँसी का वि०सं०१२२४ का, धौड़ गाँव का, १२२५ का (ऊपर लिखा हुआ) और मेवाड़ के मेनाल नामक प्राचीन स्थान के मठ का १२२६ का[3] (बिना मास पक्ष और तिथि) का है । उसके उत्तराधिकारी सोमेश्वर का सब से पहला वि०सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ का मेवाड़ के बीजोल्यां गांव के पास की चट्टान पर खुदा हुआ प्रसिद्ध लेख[4] है, जिसमें सामंत से लगा कर सोमेश्वर तक की सांभर और अजमेर के चौहानों की पूरी वंशावली मिलती है । इन लेखों से निश्चित है कि पृथ्वीभट्ट का देहान्त और सोमेश्वर का राज्याभिषेक ये दोनों घटनाएँ वि०सं० १२२६ में फाल्गुन के पहले किसी समय हुईं ।

---

१. ॐ सं० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ अद्येह श्री सपादलक्षमंडले महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक उमापतिवरलब्धप्रसाद प्रौढ़प्रताप निजभुजरणांगणविनिर्जितशाकंभरीभूपाल श्री प्रिथिम्विदेवविजयराज्ये (धौड गाँव के रूठी राणी के मंदिर के एक स्तंभ पर का लेख—अप्रकाशित) ।

२. सुतोप्यपरगाङ्गेयो निन्येस्य रविसूनुना ।
उन्नतिं रविवंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता ॥ [५४ ॥]
पृथ्वीराजविजय सर्ग ८ ।

३. बंगाल एशिआटिक् सोसाइटी का जर्नल, ई० सं० १८८६, हिस्सा १, पृ० ४६ ।

४. वही, पृ० ४०–४६ ।

पृथ्वीराजविजय में लिखा है कि 'सब गुणों से सम्पन्न, पितृवैरी (जगद्देव) का पुत्र, पृथ्वीभट्ट भी (विग्रहराज को लाने के लिये अचानक चल धरा= (मर गया'[१]।

(६) सोमेश्वर के विषय में 'पृथ्वीराज विजय' में लिखा है कि "उसका जन्म होने पर जब उसके नाना (जयसिंह=सिद्धराज) ने ज्योतिषियों से यह सुना कि रामचंद्र अपना बाकी रहा हुआ कार्य करने के लिये इस (सोमेश्वर) के यहाँ जन्म लेंगे, तब उसने उसको अपने नगर में मँगवा लिया। उसके पीछे कुमारपाल ने कुमार (बालक) सोमेश्वर का पालन किया, जिससे उसका 'कुमारपाल' नाम सार्थक हुआ। उसकी वीरता के कारण वह (कुमारपाल) उसको सदा अपने पास रखता था। एक हाथी से दूसरे हाथी पर उछलते हुए उस (सोमेश्वर) ने कोंकण के राजा की छुरिका (छोटी तलवार) छीनली और उसी से उसका सिर काट डाला फिर उसने त्रिपुरी (चेदि की राजधानी तेवर) के कलचुरि राजा की पुत्री (कर्पूरदेवी) से विवाह किया, जिससे ज्येष्ठ (पक्ष नहीं दिया) की द्वादशी को पृथ्वीराज का जन्म हुआ[२]। उसका चूड़ाकरण संस्कार होते ही रानी के

---

१ प्रत्यानेतुमिवाकाण्डे पूर्णोपि सकलैर्गुणैः ।
पितृवैरितनूजोपि प्रतस्थे पृथिवीभटः ॥ [५६ ॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८।

२ उत्पत्स्यते कंचन कार्यं शेषं निर्मातुकामस्तनयो ऽस्यरामः ।
मात्रत्सगैरित्युदितानुभावं मातामहस्तं स्वपुरं निनाय ॥ [३५ ॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ६।

अथ गूर्जरराजमूर्जितानां मुकुटालङ्करणं कुमारपालः ।
अधिगत्य सुतासुतं तदीयं परिरक्षन्नभवद्यथार्थ नामा ॥ [११ ॥]
[क्रमशो रथि] यन्तृसादिपत्तिव्यवहारेषु विसारिणा चतुर्धा ।
युधि वीरसेन शुद्धिमन्तं न समीपादमुचत्कुमारपालः ॥ [१४ ॥]
हनुमानिव शैलतस्स शैलं द्विरदेन्द्राद्द्विरदेन्द्रमुत्पतिष्णुः ।
छुरिकामपहृत्य कुङ्कणेन्द्रं गमयामास कबंधतां तयैव ॥ [१५ ॥]
इति साहससाहचर्यचर्यंसमयज्ञैः प्र[तिपादि] तप्रभावाम् ।
तनयां स सपादलक्षपुण्यैरुपयेमे त्रिपुरीपुर[न्द]रस्य ॥ [१६ ॥]

फि, गर्भ रहा[१] और माघ सुदि ३ का हरिराज का जन्म हुआ[२]।" पृथ्वीराज विजय' के इस लेख से पाया जाता है कि जब कुमारपाल ने राज पाया उस समय अर्थात् वि० सं० ११६६ में तो सोमेश्वर बालक था; परन्तु कौंकण के राजा के साथ की लड़ाई के समय वह युद्ध में वीरता बतलाने के योग्य अवस्था को पहुँच गया था। कौंकण के जिस राजा का उक्त काव्य में उल्लेख किया गया है, वह उत्तरी कौंकण का शिलारावंशी राजा मल्लिकार्जुन है। कुमारपाल की उस पर की चढ़ाई के विषय में 'प्रबंधचिंतामणि' से पाया जाता है कि कुमारपाल के दर्बार में एक भाट ने मल्लिका-

---

ज्येष्ठत्वं चरितार्थतामथ नयन्मासान्तरापेक्षया
ज्यैष्ठस्य प्रथयन्परन्तपतया ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितिम्।
द्वादश्यास्तिथिमुख्यतामुपदिशन्भानोः प्रतापोन्नतिं
तन्वन्गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥ [५०]

वही, सर्ग ७।

पृथ्वीं पवित्रतां नेतुं राजशब्दं कृतार्थताम्।
चतुर्वर्णधनं नाम पृथ्वीराज इति व्यधात् ॥ [३०॥]

वही, सर्ग ८।

१ चूडाकरणसंस्कार बहुधा प्रथम वर्ष में, नहीं तो तीसरे में होता है।

२ चूडाकरणसंस्कारसुन्दरं तन्मुखं बभौ।
पाश्चात्यभागसंप्राप्तलक्ष्मेव शशिमण्डलम् ॥ [४५॥]
अत्रान्तरे पुनर्देवीवपुः प्रैक्षत पार्थिवः।
स्वप्नदृष्टभुजङ्गेन्द्रभोगकान्त्येव पाण्डुरम् ॥ [४६॥]
प्रसूतपृथिवीराजा देवी गर्भवती पुनः।
उदेष्यत्कुमुदा फुल्लपद्मेव सरसी बभौ ॥ [४८॥]
माघस्याथ तृतीयस्यां सितायामपरं सुतम्।
प्रसादमिव [पार्वत्या मूर्तम्], रमवाप सा ॥ [४६॥]

युद्धेऽप्यस्य हस्तिदलनलीलां भविष्यन्तीं जानतेव हरिराजनाम्नायं स्वस्य कृतार्थत्वायेव स्पृष्टः। हरिराजो हि हस्तिमर्दनः। (श्लोक ५० पर जोनराज की टीका, मूल श्लोक बहुतसा नष्ट होगया है)।

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८।

र्जुन को 'राजपितामह' कहा। इस पर क्रुद्ध होकर कुमारपाल ने अपने मंत्री आँबड को सेनापति बनाकर अपने सामन्तों सहित उस पर भेजा। उसने कौंकण में प्रवेश किया और कलबिणि नदी को पार करने पर मल्लिकार्जुन से उसकी हार हुई और वह काला मुँह कराकर लौटा। इस पर कुमारपाल ने बड़ी सेना के साथ फिर उसी को उस पर भेजा और उसी नदी के पार फिर उससे लड़ाई हुई, जिससे आँवड़ ने उसके हाथी पर चढ़ कर अपनी तलवार से उसका सिर काट डाला और कौंकण पर कुमारपाल का अधिकार जमा दिया। उसने मल्लिकार्जुन के सिरको सोने में मढ़ा लिया और दरबार में बैठे हुए कुमारपाल को कई बहुमूल्य उपहारों के साथ भेंट किया। इस पर कुमारपाल ने आँवड़ को ही राजपितामह की उपाधि दी।[1] प्रबंधचिंतामणिकार मल्लिकार्जुन का सिर काटने का यश सेनापति आँबड़ को देता है, परन्तु 'पृथ्वीराजविजय', जो प्रबन्धचिंतामणि' से अनुमान ११४ वर्ष पूर्व बना था, उस वीर कार्य का सोमेश्वर के हाथ से होना बतलाता है, जो अधिक विश्वास के योग्य है। मल्लिकार्जुन के दो शिलालेख शक सं० १०७८ और १०८२ (वि०सं०१२१३ और १२१७) के[2] मिले हैं और उसके उत्तराधिकारी अपरादित्य का पहला शिलालेख शक सं० १०८४ (वि०सं०१२१६)[3] का है। अतएव सोमेश्वर ने मल्लिकार्जुन को वि० सं० १२१७ या १२१८ में मारा होगा, जिसके पीछे उसने चेदि देश की राजधानी त्रिपुरी के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा की पुत्री से विवाह किया। टीकाकार ने एक श्लोक की टीका में राजा का नाम तेजल लिखा है किन्तु 'पृथ्वीराजविजय' के एक और श्लोक में श्लेष से यह अर्थ संभव है कि कर्पूरदेवी के पिता का नाम अचलराज हो। उससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ जो वि०सं० १२१७ के पीछे किसी समय होना चाहिए, न कि वि०सं० १२०५-६ में। उस समय तक तो सोमेश्वर युवावस्था को भी न पहुँचा होगा।

'पृथ्वीराजविजय' में पृथ्वीभट की मृत्यु के वर्णन के बाद लिखा है कि 'जिसमें से पुरुप रूपी मोती गिरते गए, ऐसे सुधवा के वंश को छोड़ कर राजश्री

---

१ प्रबन्धचिंतामणि, पृ० २०१–२०३।

२ बंबई गेज़िटिअर, जि० १, भाग १, पृ० १८६।

३ वही, पृ० १८६।

सोमेश्वर को राजा देखने के लिये उत्कण्ठित हुई। महामन्त्री यश और प्रताप रूपी दोनों पुत्रों (पृथ्वीराज और हरिराज) सहित राजा (सोमेश्वर) को सपादलक्ष में लाए और दान तथा भोग जैसे उन दोनों पुत्रों को लेकर संपत्ति की मूर्ति स्वरूप कर्पूरदेवी ने अजयदेव की नगरी (अजमेर) में प्रवेश किया। परलोक को जीतने की इच्छा वाले राजा ने मंदिरादि निर्माण कराए और इस तरह पितृ-ऋण से मुक्त होकर पिता के दर्शन के लिए त्वरा की (अर्थात् जल्दी ही मरणोन्मुख हुआ)। मेरे पिता अकेले स्वर्ग में कैसे रहें और बालक पृथ्वीराज की उपेक्षा भी कैसे की जावे, ऐसा विचार कर उसने उस (पृथ्वीराज) को राज्य सिंहासन पर बिठलाया और अपनी व्रतचारिणी रानी पर उसकी रक्षा का भार छोड़ कर पितृभक्ति के कारण वह स्वर्ग को सिधारा[1]।" इससे भी निश्चित है कि सोमेश्वर के देहान्त के समय पृथ्वी-राज बालक ही था। सोमेश्वर के राज्य समय के ५ शिलालेख मिले हैं, जिनमें से बीजोल्यां का उपर्युक्त लेख वि०सं० १२२६ का, धौड़ गाँव के उक्त मन्दिर के दो खंभों पर वि० सं० १२२८ ज्येष्ठ सुदि १०[2] और १२२६ श्रावण सुदि १३

१. मुक्त्वैनि सुववावंशं गलत्पुत्रमौक्तिक।
देवं सोमेश्वरं द्रष्टुं राजश्रीरुत्कण्ठत ॥ [४७]

आत्मजाभ्यामिव यशःप्रतापाभ्यामिवान्वितः।
सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपति ॥ [४८]

कर्पूरदेव्यथादाय दानभोगाविवात्मजौ।
विवेशाजयराजस्य सपन्मूर्तिमती पुरीम् ॥ [४६]

ऋणशुद्धिं विनिर्माय निर्माणैरीदृशैः पितुः।
तत्वरे दर्शनं कर्तुं परलोकजयी नृपः ॥ [७१]

[एकाकिना हि] मत्पित्रा स्थीयते त्रिदिवे कथम्।
बालश्च पृथ्वीराजो मया कथमुपेक्ष्यते ॥ [७२]

[इतीवास्याभिषिक्तस्य रक्षार्थं व्रतचारिणीम्।
स्थापयित्वा निजां देवीं पितृ] भक्त्या दिवं ययौ ॥ [७३]

पृथ्वीराज विजय सर्ग ८।

२. ओं ॥ स्वस्ति ॥ सम्वत् १२२८ जेष्ठ (ज्येष्ठ) सुदि १०.............समस्त राजावली-समलंकृतपरमभट्टारकः (क) महाराजाधिराजपरमेस्व (श्व) रपरमबाहेस्व (श्व) रश्रीसोमेस्वः (श्व) रदेवकुस (श) ली कल्याणविजयराज्ये०

धौड़गाँव का लेख (अप्रकाशित)।

के[१] जयपुर राज्य के प्रसिद्ध जीणमाता के मंदिर के स्तम्भ पर वि० सं० १२३० का[२] और मेवाड़ (उदयपुर) राज्य के जहाज़पुर ज़िले के आँवलदा गाँव से मिले हुए सती के स्तम्भ पर वि० सं० १२३४ भाद्रपद शुदि ४ शुक्रवार का[३] है। सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज के समय के कई लेख मिले हैं, जिनमें से पहला उपर्युक्त भूतेश्वर महादेव के मन्दिर के बाहर के एक सती के स्तम्भ पर वि० सं० १२३६ आषढ़ वदि १२ का[४] है। इन लेखों से स्पष्ट है वि० सं० १२३४ और १२३६ के बीच किसी समय सोमेश्वर का देहान्त और पृथ्वीराज का राज्याभिषेक हुआ। उस समय तक तो पृथ्वीराज बालक था, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। पृथ्वीराज विजय में विग्रहराज (बीसलदेव) चौथे की मृत्यु के प्रसंग में यह भी लिखा है कि 'अपने भाई (सोमेश्वर) के दो पुत्रों से पृथ्वी को सनाथ जानने पर विग्रहराज ने अपने को कृतार्थ माना और वह शिव के सान्निध्य में पहुँचा[५]। इसका तात्पर्य यही है कि विग्रहराज ने अपनी मृत्यु के पहले सोमेश्वर के दो पुत्र होने की खबर सुनली थी। उसका देहान्त चैत्रादि वि० सं० १२११ और १२२४ के बीच बीच किसी समय

---

१. ओं ॥ संवत् १२२६ श्रावण सुदी १३ अद्येह श्रीमत् (द) अजय मेरुदुर्गे सपादलक्ष ग्रामस······॥ समस्तराजावलिसमलंकृतः स परम भट्टारकः महाराजाधिराज परमेस्व (श्व) रपरम माहेस्वर (श्वरः) ॥ श्रीसोमेस्व (श्वर) रदेव कुशलीकल्याण विजय राज्ये०

धौड़ गाँव का लेख (अप्रकाशित)

२. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ् दी आर्किऑलाजिकलसर्वे ऑफ इंडिआ, वेस्टर्न सर्कल, ई० स० १६०६-१०, पृ० ५२।

३. ओं ॥ स्वस्ति श्री महाराजाधिराज श्री सोमेस्व (श्व) रदेवमहाराये (ज्ये) डोडरा सिंघरा-सुत सिंदराउ · संवत् १२३४ भाद्र [पद] शुदि ४ शुक्र, दिने०

आँवलदा गाँव का लेख (अप्रकाशित)

४. संवत १२३६ आषाढ़ वदि १२ श्रीपृथ्वीराजराज्ये वागड़ी सलखण पुत्र जलसल। मातु- काल्ही०

लोहारीगाँव का लेख (अप्रकाशित)

५. अथ भ्रातुरपत्याभ्यां सनाथां जानता भुवम्।
जग्मे विग्रहराजेन कृतार्थेन शिवान्तिकम् ॥ ५३ ॥

पृथ्वीराज विजय सर्ग ८

होना ऊपर बतलाया जा चुका है। इसलिये पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १२२१ के आसपास होना स्थिर होता है। 'पृथ्वीराज रासे' में उक्त घटना का संवत ११९५ दिया है। यदि अनंद विक्रम संवत् की कल्पना के अनुसार उसमें ९०-९१ मिलावें तो भी पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १२०५-६ में आता है, जो सर्वथा असंभव है। यदि उक्त संवत् में पृथ्वीराज का जन्म होता, तो सोमेश्वर के देहान्त के समय पृथ्वीराज की अवस्था लगभग ३० वर्ष की होती और सोमेश्वर को उसकी रक्षा का भार अपनी रानी को सौंपने की आवश्यकता न रहती।

पृथ्वीराज का देहली गोद जाना

'पृथ्वीराज रासे' में लिखा है कि "देहली के तँवर (तोमर) वंशी राजा अनंगपाल ने अपनी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया, जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अन्त में अनंगपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बद्रिकाश्रम में तप करने को चला गया।" पंड्याजी ने अनंद विक्रम संवत् ११२२ और सनंद (प्रचलित) विक्रम संवत् १२१२-१३ में पृथ्वीराज का देहली गोद जाना और उस समय उसकी अवस्था ७ वर्ष की होना माना है; परन्तु उस समय तक तो पृथ्वीराज का जन्म भी नहीं हुआ था, जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। न तो सोमेश्वर के समय देहली में तँवर अनंगपाल का राज्य था और न उसकी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ हुआ। इसलिये 'पृथ्वीराज रासे' का यह कथन माननीय नहीं; क्योंकि देहली का राज्य तो विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे ने ही अजमेर के अधीन कर लिया था। बीजोल्या के उक्त वि० सं० १२२६ के लेख में विग्रहराज के विजय के वर्णन में लिखा है कि 'ढिल्ली (देहली) लेने से थके हुए और आशिका (हाँसी) प्राप्त करने से स्थगित अपने यश को उसने प्रतोली (पोल) और बलभी (झरोखे) में विश्रांति दी।'[१] अर्थात् देहली और हाँसी को जीत कर उसने अपना यश घर घर में फैलाया। देहली के शिवालिक स्तम्भ पर के उसके लेख में हिमालय से विंध्य तक के देश को

---

१. प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितंयशः [।]
ढिल्लिका ग्रहणश्रांतमाशिकालाभलंभितः (तं) ॥ २२ ॥

बीजोल्यां का लेख (छाप पर से)

विजय करना लिखा है।[1] हाँसी से मिले हुए पृथ्वीराज (पृथ्वीभट) दूसरे के वि० सं० १२२४ के शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय वहाँ का प्रबन्धकर्त्ता उसका मामा गुहिल वंशी किल्हण था।[2] ऐसे ही देहली का राज्य भी अजमेर के राजा के किसी रिश्तेदार या सामंत के अधिकार में होगा। 'तबकात् इ-नासिरी' में शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की पहली लड़ाई में देहली के [राजा] गोविंदराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी (गोविंदराज) के भाले से सुल्तान का घायल होकर लौटना तथा दूसरी लड़ाई में, जिसमें पृथ्वीराज की हार हुई, उस गोविंदराज का मारा जाना लिखा है।[3] इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज (तीसरे) के समय देहली अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार में थी। 'तारीख फरिश्ता' में भी वैसा ही लिखा है; परन्तु उसमें गोविंदराज के स्थान पर खांडेराव नाम दिया; है, जो फारसी अक्षरों के दोष से ही मूल से भिन्न हुआ है।

पृथ्वीराज की माता का नाम कमला नहीं, किन्तु कर्पूरदेवी था और वह देहली के राजा अनंगपाल की पुत्री नहीं; किन्तु त्रिपुरी (चेदि देश की राजधानी) के हेहय (कलचुरी) वंशी राजा तेजल या अचलराज की पुत्री थी (देखो ऊपर) नयचंद्र सूरि ने भी अपने 'हंमीर महाकाव्य' में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी[4] ही दिया है।

---

१ आविंध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्रा प्रसंगात्

इंडि० एंटि०, जि० १६

२ चाहमानान्वये जातः पृथ्वीराजो महीपतिः।

तन्मातुश्चाभवत्भ्राता किल्हणः कीर्त्तिवर्द्धनः॥ २॥

गुहिलौतान्वयव्योममंडनैकशरच्छशी।

वही, जि० ४१, पृ० १६

३ तबकात्-इ-नासिरी का अँग्रेजी अनुवाद (मेजर रावर्टी का किया हुआ), पृ० ४५६-६८।

४ इलाविलासी जयति स्म तस्मात् सोमेश्वरोऽनश्वरनीति रीतिः॥ ६७॥

कर्पूरदेवीति बभूव तस्य प्रिया [प्रिया] राधन सावधाना।...॥ ७२॥

हंमीरमहाकाव्य, सर्ग २

जब विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से ही देहली का राज्य अजमेर के चौहानों के अधीन हो गया था और पृथ्वीराज अनंगपाल तँवर का भानजा ही न था तो उसका अपने नाना के यहाँ देहली गोद जाना कैसे सम्भव हो सकता है ? यदि पृथ्वीराज का देहली गोद जाना हुआ होता, तो फिर अजमेर के राज्य पर उसका अधिकार ही कैसे रहता ? पृथ्वीराज के राजत्वकाल के कई एक शिलालेख मिले हैं, जिनमें से महोबे की विजय के लेखों को छोड़ कर बाकी सबके सब अजमेर के राज्य में से ही मिले हैं। उनमें भी निश्चित है कि पृथ्वीराज की राजधाधी अजमेर ही थी, न कि देहली। देहली का गौरव मुसलमानी समय में ही बढ़ा है। उसके पहले विग्रहराज के समय से ही देहली चौहानों के महाराज्य का एक सूबा था। चौहानों की राजधानी अजमेर थी, प्रान्त के नाम से वे सपादलक्षेश्वर कहलाते थे और पुरखाओं की राजधानी के नाम से शाकंभरीश्वर।

कैमास युद्ध

'पृथ्वीराजरासे' में लिखा है कि 'शहाबुद्दीन गोरी देहली पर चढ़ाई करने के इरादे से चढ़ा और सिन्धु नदी के इस किनारे सम्वत् ११४० चैत्रवदि ११ को आजमा इसकी खबर आने पर पृथ्वीराज ने अपने मन्त्री कैमास को बड़ी सेना और सामन्तों के साथ उससे लड़ने को भेजा। तीन दिन की लड़ाई के बाद कैमास शत्रु को पकड़ कर पृथ्वीराज के पास ले आया। पृथ्वीराज ने १२ हाथी और १०० घोड़े दण्ड लेकर उसे छोड़ दिया।" यह घटना भी कल्पित ही है; क्योंकि यदि उस सम्वत् को अनंद विक्रम सम्वत् मानें, तो प्रचलित विक्रम सम्वत् (११४०+९०-९१=) १२३०-३१ होता है। उस समय तक तो पृथ्वीराज राजा भी नहीं हुआ था और बालक था। शहाबुद्दीन गोरी उस समय तक हिन्दुस्तान में आया भी नहीं था। गजनी और हेरात के बीच गोर का एक छोटा सा राज्य था, जिसकी राजधानी फ़ीरोज कोह थी। हिजरी सन् ५५८ (वि० सं० १२१०-२१) में वहाँ के मालिक सैफ़ुद्दीन के पीछे उसके चचेरे भाई गियासुद्दीन मुहम्मद गोरी ने, जो बहाउद्दीन सामका बेटा था, वहाँ का राज्य पाया। उसका छोटा भाई शहाबुद्दीन गोरी था, जिसको उसने अपना सेनापति बनाया। हि० स० ५६९ (वि० सं० १२३०-३१) में शहाबुद्दीन ने ग़ज़्जों से ग़ज़नी छीनी, जिससे उसके बड़े भाई ने उसको ग़ज़नी का हाकिम बनाया। हि० स० ५७१ (वि० सं० १२३२-३३ में हिन्दुस्तान पर शहाबुद्दीन

ने चढ़ाई कर मुलतान लिया।[1] इसके पहले उसकी कोई चढ़ाई हिंदुस्तान पर नहीं हुई थी। ऐसी दशा में वि० सं० १२३०–३१ में पृथ्वीराज के मंत्री कैमास से उसका हार कर क़ैद होना विश्वास योग्य नहीं।

इसमें संदेह नहीं कि कैमास (कदंबवास) पृथ्वीराज का मंत्री था। राजपूताने में 'कैमासबुद्धि' कहावत होगई है। 'पृथ्वीराजविजय' में उसकी बहुत प्रशंसा की है और लिखा है कि उसकी रक्षकता और सुप्रबन्ध से पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ।[2] उसी समय पृथ्वीराज के नाना का भाई भुवनैकमल्ल भी अजमेर में आगया और उसके आने पर हरिराज युवा हुआ।[3] इन दोनों- कदंबवास और भुवनैकमल्ल–की बुद्धि तथा वीरता से राजकाज चलता था।

जैसे पितृवैरि जगद्देव के पुत्र पृथ्वीभट ने विग्रहराज (वीसलदेव) के पीछे उसके पुत्र अपरगांगेय से राज छीन लिया, वैसे सुधवा के वंश ने फिर कांचनदेवी के वंश से राज छीनने का यत्न किया हो! मंत्री जब सोमेश्वर को ले आए, उस समय विग्रहराज का पुत्र नागार्जुन बहुत छोटा रहा हो; किन्तु अब पृथ्वीराज की प्रबलता होने पर उसने विरोध का झंडा उठा कर गुडपुर का क़िला अपने हाथ कर लिया। यह गुडपुर संभव है कि दिल्ली के पास का गुडगांव हो और नागार्जुन पहले वहाँ का अजमेर की ओर से शासक हो; क्योंकि उसकी

---

१. तबकात-इ-नासिरी, पृ० ४४८–९।

२. स कदम्बवास इति वासवादिभिः स्पृहणीयधीर्व्यसनमध्यपातिभिः।
अवगाहते सहचरस्सुमन्त्रिणाम् परिगीतुं क्षितिवरस्य सद्गुणान्॥ (षड्गुणान्)॥ [३७]
सचिवेन तेन सकलासु युक्तिषु प्रवणेन तत्किमपि कर्म निर्ममे।
मुखपुष्करं शिशुतमस्य यत्प्रभोः परिचुम्ब्यते स्म नवयौवनश्रिया॥ [४४]

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ६।

३. स पुनर्मदग्रज सुतासुतो नयन्निह भुजापि रक्षति चराचरं जगत्।
इति वार्तया कृतकुतूहलः क्रमाद् भुवनैकमल्ल इति बन्धुराययौ॥ [६८]
प्राज्यप्रजाभ्युदयवर्धनदत्त [चित्तो दैवातिशायियुग्मुत्र]–नैकमल्ले।
संकीर्ण बाल्ययुवभावगुणानुभाव पस्पर्श वर्महरता हरि [राजदेवम्]॥ [८५]

वही, सर्ग, ६।

माता भी वहीं रहती थी। पृथ्वीराज ने कदंबवास और भुवनैकमल्ल को साथ न लेकर स्वयं ही उस पर आक्रमण किया। क़िला घिर जाने पर नागार्जुन भाग गया और पृथ्वीराज उसकी माता को बंदी करके ले आया।[1]

गोरी ने, जिसने पश्चिमोत्तर दिशा के बलवान् हयपति का गर्जन छीन लिया था, पृथ्वीराज के पास भी दूत भेजा। यह गोरी, राजमंडल की श्री के लिये राहु बनकर आया हुआ कहा गया है। फिर दूत का वर्णन देकर 'पृथ्वीराजविजय' में लिखा है कि गूर्जरों के नड्वल (नाडोल, मारवाड़ में) नामक दुर्ग पर गोरियों ने आक्रमण किया, जहाँ सब राज्यांग छिप गए थे। पृथ्वीराज को इस पर क्रोध आया; किंतु कदंबवास ने कहा कि आपके शत्रु सुन्दोपसुन्द न्याय से स्वयं नष्ट हो जायँगे, आप क्रोध न कीजिए। इतने ही में गूर्जर देश से पत्र लेकर दूत आया, जिससे जाना गया कि गोरी को गूर्जरों ने हरा कर भगा दिया है।[2] बिजोलियाँ के लेख से पाया

---

१. अथ कुविधियदृच्छयेव नागार्जुन इति निन्दितभिक्षुयोग्यनामा।
निगडगृहपरिग्रहाय मातुर्ग्रह इव विग्रहराजवल्लभायाः॥ [७]
पितुरखिलनृपातिलङ्घ्यामाग्याद्भुतबलनिर्मथनैकवीरजन्मा।
गुडपुरमिति दुर्गमध्यरोहन्मधुररसाहृतिदोहदेन बालः॥ [८]
गुडपुरमथ वेष्टयांचकार क्षितिपतिरुद्धतयुद्धतत्वदर्शी॥ [३०]
दयितमपि विमुच्य वीरधर्मं क्वचिदपि विग्रहराजभूरयासीत्॥ [३२]
मममहितमहीपतेर्जनन्या सुभटघटाः प्रभुरानिनाय बध्वा॥ [३६]

२. मरुदिव दिशि पश्चिमचोत्तरायामतिबलवानधिपस्समस्त एव।
तदुपरि परमार्थपौरुष [ध्यां हय] पतिरेव तिरस्करोति सर्वान्॥ [३९]
तमपि मुषितगर्जनाधिकारं विरसलघुं शरदभ्रवद्व्यधाद्यः।
कदशनकुशलो गवामरिस्त्वात्समुदितगोरिपदापदेशमुद्रः॥ [४०]
स किल सकलराजमण्ड [ल श्री]—व्यवधिविधानविधुन्तुदत्वमैच्छत्। [४१]
[व्यसृ] जदजयमेरुमेरुभूभृत्कुहरहरेरपि दूतमेकमग्रे॥ [४२]
यावद्राजाङ्गान्यपि दुर्गाङ्गे मग्नानीत्यर्थः। मयास्सर्वे दुर्गं प्रविष्टा [इ] ति

जाता है कि वीसलदेव (विग्रहराज) ने (नड्डुल) पाली आदि को बर्बाद किया था,[1] इसलिये वहाँ वाले भी चौहानों के शत्रु थे। सुंदोपसुंद न्याय कहने का यही तात्पर्य है। गोरी का हमला गूर्जरों[2] के अधिकार के नड्डूल पर भी हुआ हो। किन्तु उसका पहला हमला हिन्दुस्तान की भूमि पर हि० स० ५६१ (वि० सं० १२३२-३३) में हुआ और उसके पहले कैमास का उससे लड़ने जाकर उसे (अनंद संवत ११४०=वि० सं० १२३०-३१) में हरा आना असंभव है।

पृथ्वीराज का कन्नौज जाना

'पृथ्वीराजरासे' में लिखा है कि 'कन्नौज के राजा विजयपाल ने देहली के

तात्पर्यम् (श्लोक ४८ पर जोनराज की टीका, श्लोक नहीं रहा)।

पृथ्वीराजस्य तावन्निखिलदिगभयारम्भसंरम्भसीमा-
भीमा भ्रूभङ्गभङ्गी विरचनसमयं कार्मुकम्याचचक्षे ॥ [५०]

पृथ्वीराजविजय, सर्ग १०।

राजन्नवसरो नायं रुषां भाग्यनिधेस्तव।...[४]
सुन्दोपसुन्दुभंङ्गया ते स्वयं नंक्ष्यंति शात्रवः ॥ [५]
लेखहस्तःपुमान्प्राप्तो देव गूर्जरमण्डलात् ॥ [७]
गूर्जरोपक्रमाचख्यौ घोरं गोरिपराभवम् ॥ [६]

वही, सर्ग ११।

१. जावालिपुरं ज्वलापुरं कृता पल्लिकापि पल्लीव।
नड्वलतुल्यं रोषान्नड्डू (ड्डू)लं येन सौ (शौ)र्येण ॥ २१ ॥

(बीजीलियाँ का लेख)

२ विग्रहराज से लेकर शहाबुद्दीन की चढ़ाई के समय तक नाडोल, पाली आदि पर नाडौल के चौहानों का अधिकार था। पृथ्वीराजविजय में उस प्रदेश को गूर्जरमंडल कहा है। हुएन्तसँग भी भीनमाल के इलाके को, जो नाडोल से बहुत दूर नहीं है, गूर्जर देश कहता है। नाडोल का प्रदेश इस गूर्जर प्रांत के अन्तर्गत होने से अथवा वर्तमान गुजरात देश के अधीन हो जाने से वहाँ वाले गुर्जर कहे गए हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि नाडोल उस समय गूर्जर जाति के अधिकार में था।

तँवर राजा अनंगपाल पर चढ़ाई की; परन्तु चौहान सोमेश्वर और अनंगपाल की सेना से वह पराजित हुआ, जिसके पीछे विजयपाल ने अनंगपाल की दूसरी कन्या सुन्दरी से विवाह किया। उसका पुत्र जयचंद हुआ। विजयपाल ने दिग्विजय करते हुए पूर्वी समुद्र तट पर कटक के सोमवंशी राजा मुकुन्ददेव पर चढ़ाई की। उसने उसका बड़ा स्वागत किया और बहुत से धन के साथ अपनी पुत्री भी उसके भेंट करदी। इसका विवाह विजयपाल ने अपने पुत्र जयचंद के साथ कर दिया और उसके संजोगता नामक कन्या हुई। विजयपाल वहाँ से आगे बढ़ कर सेतुबंध तक पहुँचा। वहाँ से लौटते हुए उसने तैलंग, कर्णाट, मिथिला, पुंगल, आमेर, गुर्जर गुंड, मगध, कलिंग आदि के राजाओं को जीतकर पट्टनपुर (अनहिलवाड़) के राजा भोला भीम पर चढ़ाई की। भीम ने अपने पुत्र के साथ नजराना भेजकर उसे लौटा दिया। इस प्रकार सब राजाओं को उसने जीत लिया; परन्तु अजमेर के चौहान राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। विजयपाल के पीछे उसका पुत्र जयचंद कन्नौज का राजा हुआ। उसने राजसूय यज्ञ करना निश्चय कर सब राजाओं को उसमें उपस्थित होने के लिये बुलाया। उसने पृथ्वीराज को भी बुलावा भेजा; परन्तु उसने उसकी अधीनता न मान कर वहाँ जाना स्वीकार न किया, इतना ही नहीं; किन्तु जयचन्द की धृष्टता से क्रुध होकर उसके भाई बालुकराय पर चढ़ाई कर दी। उसने बालुकराय के इलाके को उजाड़ कर उसके मुख्य नगर खोखंदपुर को लूटा और लड़ाई में उसको मार डाला। उसकी स्त्री रोती हुई कन्नौज में जयचन्द के पास पहुंची और उसने चौहान के द्वारा अपने सर्वनाश होने का हाल कहा। जयचन्द ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने का विचार किया; परन्तु उसके सलाहकारों ने यह सलाह दी कि मेवाड़ के राजा समरसिंह को अपने पक्ष में लिए बिना पृथ्वीराज को जीतना कठिन है। इस पर उसने रावल समरसिंह को यज्ञ में बुलाने के लिये पत्र लिखा और बहुत कुछ लालच भी बतलाया, परन्तु उसने एक न मानी। इस पर जयचन्द ने समरसिंह और पृथ्वीराज दोनों पर चढ़ाई करना निश्चय किया और पृथ्वीराज से अपने नाना अनंगपाल का देहली का आधा राज्य भी लेना चाहा। फिर उसने अपनी सेना के दो विभाग कर एक को पृथ्वीराज पर देहली और दूसरे को समरसिंह पर चित्तोड़ भेजा। दोनों स्थानों से उसकी फौजें हार खाकर लौटीं। पृथ्वीराज उसके यज्ञ में न गया, इसलिये उसने पृथ्वीराज की सोने की मूर्ति बनवा कर द्वारपाल की जगह खड़ी

करवाई। राजसूय के साथ साथ जयचन्द की पुत्री संजोगता का स्वयंवर भी होने वाला था। उस राजकुमारी ने पृथ्वीराज की वीरता का हाल सुन रक्खा था, जिससे उसी को अपना पति स्वीकार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। स्वयंवर के समय उसने वरमाला पृथ्वीराज की उस मूर्ति के गले में डाली, जिस पर क्रुद्ध हो जयचन्द ने उसको गंगातट के एक महल में क़ैद कर लिया। इधर पृथ्वीराज ने अपनी मूर्ति द्वारपाल की जगह खड़ी किए जाने और संजोगता का अपने पर अनन्य प्रेम होने के समाचार पाकर कन्नौज पर चढ़ाई करदी। वहाँ पर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें कन्नौज के राजा तथा उसके अनेक सामंतों आदि के दलबल का संहार कर पृथ्वीराज संजोगता को लेकर देहली लौटा। जयचंद इससे बहुत ही लज्जित हुआ; किंतु पृथ्वीराज को देहली में आए दो दिन भी नहीं हुए थे कि जयचंद ने अपने पुरोहित श्रीकंठ को वहां भेज कर संजोगता के साथ पृथ्वीराज का विधि पूर्वक विवाह करा दिया।'

'रासे' में पृथ्वीराज के कन्नौज जाने का संवत् ११५१ दिया है, जिसको अनंद विक्रम संवत् मान कर पंड्याजी ने सनंद (प्रचलित) विक्रम सं० (११५१+९०-९१=) १२४१ ४२ में कन्नौज की लड़ाई होना माना है; परन्तु कन्नौज की गद्दी पर विजयपाल (विजयचंद) के पुत्र जयचंद का बैठना, और उसका तथा पृथ्वीराज का उक्त संवत् में विद्यमान होना,– इन दो बातों को छोड़ कर ऊपर लिखा हुआ पृथ्वीराज रासे' का सारा कथन ही कल्पित है। सोमेश्वर के समय देहली पर अनंगपाल तँवर का राज्य ही न था: क्योंकि विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से ही देहली का राज्य तो अजमेर के चौहानों के अधीन होगया था (देखो ऊपर पृ० ४०५)। अतएव अनंगपाल की पुत्री सुन्दरी का विवाह विजयपाल के साथ होने का कथन वैसा ही कल्पित है, जैसा कि उसकी बड़ी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ होने का। विजयपाल की अजमेर के चौहानों के सिवाय हिन्दुस्तान के सेतुबंध तक के सब राजाओं का जीतने की बात निर्मूल है। विजयपाल के समय कटक पर सोमवंशी मुकुन्ददेव का नहीं; किन्तु गंगावंशियों का राज्य था। ऐसे ही उसके समय पट्टनपुर (पाटन; अनहिलवाड़ा=गुजरात की राजधानी) का राजा भोला भीम नहीं; किन्तु कुमारपाल था; क्योंकि कन्नौज के विजयचन्द्र ने वि० सं० १२११

के अनंतर ही राज पाया, तथा ११२६ में उसका देहान्त हुआ[1]। उधर गुजरात का राजा वि० सं० ११६६ से १२३० तक कुमारपाल था। भोला भीम तो वि०सं० १२३५ में बाल्यावस्था में राजा हुआ था। जयचन्द के समय मेवाड़ (चित्तौड़) का राजा रावल समरसी नहीं; किन्तु सामन्तसिंह और उसका छोटा भाई कुमारसिंह थे[2]। कुमारसिंह से पाँचवीं पुश्त में मेवाड़ का राजा समरसिंह हुआ, जो वि० सं० १३५८ तक जीवित था[3]। ऐसे ही जयचन्द के राजसूय यज्ञ करने और संजोगता के स्वयंवर की कथा भी निरी कल्पित ही है। जयचंद बड़ा ही दानी राजा था। उसके कई दान-पत्र अब तक मिल चुके हैं, जिनसे पाया जाता है कि वह प्रसंग-प्रसंग पर भूमिदान किया करता था। यदि उसने राजसूय यज्ञ किया होता तो ऐसे महत्त्व के प्रसंग पर तो वह कितने ही गांव दान करता; परन्तु उसके सम्बन्ध का न तो अब तक कोई दान पत्र मिला और न किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक में उसका उल्लेख है। इसी तरह पृथ्वीराज और जयचन्द के बीच की कन्नौज की लड़ाई और संजोगता को लाने की कथा भी गढंत ही है; क्योंकि उसका और कहीं उल्लेख नहीं मिलता। ग्वालियर के तोमर (तंवर) वंशी राजा वीरम के दरबार के प्रसिद्ध कवि नयचन्द्र सूरि ने वि० सं० १४४० के आस-पास 'हंमीर महाकाव्य' रचा, जिसमें पृथ्वीराज का विस्तृत वृत्तांत दिया है। ऐसे ही उक्त कवि ने अपनी रची हुई, 'रंभामंजरी' नाटिका' का नायक जयचंद्र

---

१. विजयचन्द्र के पिता गोविन्दचन्द्र का अंतिम-दान-पत्र वि० सं० १२११ का मिला है (एपि० इंडि० जिल्द ४, पृ० ११६) और विजयचन्द्र का सबसे पहला दान-पत्र वि० सं० १२२४ का है (एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० ११८)। विजयचन्द्र का अंतिम दान-पत्र वि० सं० १२२५ का है, जिसमें जयचन्द्र को युवराज लिखा है (इंडि० एँटि०, जिल्द १५, पृष्ठ ६७) और जयचन्द्र का सबसे पहला दान-पत्र वि० सं० १२२६ का है, जिसमें उसके अभिषेक का उल्लेख है (एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० १२१)।

२. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १, पृ० २५-२६।

३. ओं ॥ संवत् १३५८ वर्षे माघशुदि १० दशम्यां······महाराजाधिराज श्रीसमरसिंह-[देवक]ल्याणविजयराज्ये। (चित्तौड़ के रामपोल दरवाजे के सामने नीम के पेड़वाले चबूतरे पर पड़ा हुआ शिलालेख, जो मुझे ता० १६-१२,१६२० को मिला, अप्रकाशित)।

को बनाया है और जयचन्द के विशेषणों से लगभग दो पत्रे भरे हैं; परन्तु उन दोनों काव्यों में कहीं भी पृथ्वीराज का और जयचन्द के बीच की लड़ाई, जयचन्द के राजसूय यज्ञ या संजोगता के स्वयंवर का उल्लेख नहीं किया। इससे यही पाया जाता है कि वि० सं० १४४० के आस-पास तक तो ये कथाएँ गढ़ी नहीं गई थीं। ऐसी दशा में वि० सं० १२४१-४२ में पृथ्वीराज के कन्नौज जाकर जयचन्द से भीषण युद्ध करने का कथन भी मानने के योग्य नहीं।

अन्तिम लड़ाई

इस लड़ाई का सम्वत् 'पृथ्वीराजरासे' में ११५८ दिया है, जिसको अनंद सम्वत मानने से इस लड़ाई का वि० सं० (११५८+६०—६१=) १२४८-४६ में होना निश्चित होता है। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच की दूसरी लड़ाई का इसी वर्ष होना फ़ारसी तवारीखों से भी सिद्ध है। इसी लड़ाई के बाद थोड़े ही दिनों में पृथ्वीराज मारा गया; परन्तु इस पर से यह नहीं माना जा सकता कि अनंद विक्रम संवत् की कल्पना ठीक है; क्योंकि पंड्याजी का सारा यत्न इसी एक संवत् को मिलाने के लिये ही हुआ है। 'पृथ्वीराजरासे' के अनुसार पृथ्वीराज का देहांत (१११५÷४३=) ११५८ में होना पाया जाता है। यह संवत् उक्त घटना के शुद्ध संवत् से ६१ वर्ष पहले का होता है। इसी अन्तर को मिटाने के लिये पंड्याजी को पहले 'भटायत संवत्' खड़ा कर उसका प्रचलित विक्रम सं० से १०० वर्ष पीछे चलना मानना पड़ा। परंतु वैसा करने से पृथ्वीराज की मृत्यु वि० सं० १११५+ ४३+१००=) १२५८ में आती थी। यह संवत् शुद्ध संवत से ६ वर्ष पीछे पड़ता था, जिससे पृथ्वीराज के जन्म संवत् संबंधी 'रासे' के दोहे के पद 'पंचदह' (पंच-दश) का अर्थ पंड्याजी को 'पांच' कर पृथ्वीराज की मृत्यु वि० सं० १२४८ में बतलानी पड़ी। जब 'पंचदह' का अर्थ 'पांच' करना लोगों ने स्वीकार न किया, तब पंड्याजी ने उक्त दोहे के 'विक्रम शाक अनंद' से 'अनंद' का अर्थ 'नवरहित' और उस पर से 'नवरहित सौ' अर्थात् ६१ करके अनंद विक्रम संवत् का सनंद विक्रम संवत् से ६०। ६१ वर्ष पीछे प्रारंभ होना मान लिया, इतना ही नहीं, परंतु 'पृथ्वीराजरासे' तथा चौहानों की ख्यातों आदि में दिए हुए जिन भिन्न-भिन्न घटनाओं के संवतों में १०० वर्ष मिलाने से उनका शुद्ध संवतों से मिल जाना पहले बतलाया था, उन्हीं का फिर ६१ वर्ष मिलाने से शुद्ध संवतों से मिल जाना बतलाना पड़ा।

परन्तु एक ही अशुद्ध सम्वत् एक बार सौ वर्ष मिलाने और दूसरी बार ९०-९१ वर्ष मिलाने से शुद्ध संवत् बन जाय इस कथन को इतिहास स्वीकार नहीं कर सकता। इससे संवत् के सर्वथा अशुद्ध होने तथा ऐसा कहने वाले की विलक्षण बुद्धि का ही प्रमाण मिलता है। 'पृथ्वीराजरासे' के अनुसार वि० सं० ११५८ पृथ्वीराज की मृत्यु का सम्वत् नहीं, किन्तु लड़ाई का सम्वत् है। मृत्यु के विषय में तो यह लिखा है कि "सुल्तान पृथ्वीराज को कैद कर ग़ज़नी लेगया। वहाँ उसने उसकी आंखें निकलवा डाली। फिर चंद योगी का भेष धारण कर ग़ज़नी पहुँचा और उसने सुल्तान से मिल कर उसको पृथ्वीराज की तीरंदाजी देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चंद के संकेत के अनुसार बाण चला कर सुल्तान का काम तमाम किया। फिर चंद ने अपने जूड़े में से छुरी निकाल कर उसने अपना पेट चाक किया और उसे राजा को दे दिया। पृथ्वीराज ने भी वही छुरी अपने कलेजे में भोंकली। इस प्रकार शहाबुद्दीन, पृथ्वीराज और चंद की मृत्यु हुई। पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रेणसी दिल्ली की गद्दी पर बैठा"। यह सारा कथन भी कल्पित है; क्योंकि शहाबुद्दीन की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से नहीं; किंतु हिजरी सन् ६०२ तारीख २ शाबान (वि० सं० १२६३ चैत्र सुदि ३) को गक्खरों के हाथ से हुई था। वह जब गक्खरों को परास्त कर लाहौर से ग़ज़नी को जा रहा था। उस समय धमेक के पास नदी के किनारे बाग़ में नमाज़ पढ़ता हुआ मारा गया। इस तरह पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रेणसी देहली की गद्दी पर नहीं बैठा। किंतु उसके पुत्र गोविंदराज को शहाबुद्दीन ने अजमेर का राजा बनाया था। उसने शहाबुद्दीन की अधीनता स्वीकार की, इसको न सह कर, पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने उससे अजमेर छीन लिया और गोविंदराज रणथंभोर में जा बसा।

यहाँ तक तो पंड्याजी के दिए हुए पृथ्वीराजरासे के संवतों की जांच हुई। अब उनके मिलाए हुए चौहानों के ख्यातो के संवतों की जांच की जाती है।

अस्थिपाल का आसेर प्राप्त करना

पंड्याजी कर्नल टॉड के कथनानुसार अस्थिपाल के आसेर प्राप्त करने का संवत् ९८१ बतलाते हैं। वे उसको भटायत संवत् मान कर उसका शुद्ध संवत् १०८१ मानते हैं। चौहानों की ख्यातों के आधार पर मिश्रण सूर्यमल्ल के 'वंश-

भास्कर' तथा उसी के सारांश रूप 'वंशप्रकाश' में चौहानों की वंशावली दी गई है। उनसे पाया जाता है कि 'चाहमान (चौहान) से १४९ वीं पुश्त में ईश्वर हुआ, उसके ८ पुत्रों में से सब से बड़ा उमादत्त तो अपने पिता के पीछे सांभर का राजा हुआ और आठवें पुत्र चित्रराज के चौथे बेटे मौरिक से मोरी (मौर्य वंश चला। चित्रांग नामक मोरी ने चित्तौड़ का किला बनवाया। ईश्वर के पीछे उमादत्त, चतुर और सोमेश्वर क्रमशः सांभर के राजा हुए। सोमेश्वर के दो पुत्र भरथ और उरथ हुए। भरथ से २१ वीं पुश्त में सोमेश्वर हुआ, जिसने देहली के राजा अनंगपाल की पुत्री से विवाह किया, जिससे संवत् १११५ में पृथ्वीराज का जन्म हुआ। उधर उरथ से १० वीं पुश्त में भौमचंद्र, हुआ जिसको चन्द्रसेन भी कहते थे। चंद्रसेन(भौमचंद्र) का पुत्र भानुराज हुआ, जिसका जन्म सं० ४८१ में हुआ।[1] वह अपने साथियों के साथ जंगल में खेल रहा था, उस समय गंभीरारंभ राक्षस उसको खा गया; परन्तु उसकी कुलदेवी आशापुरा ने उसकी अस्थियाँ एकत्र कर उसे फिर जीवित कर दिया, जिससे उसका दूसरा नाम अस्थिपाल हुआ। उसके वंशज अस्थि अर्थात् हड्डियों पर से हाडा कहलाए। गुजरात की राजधानी अनहिलपुर पाटण (अनहिलवाडे) के राजा गहिलकर्ण (कर्ण घेला, गहिल=पागल; गुजराती में पागल को 'घेला', राजस्थानी में 'गहला' कहते हैं) के पुत्र जयसिंह का जन्म वि० सं० ४४१ में हुआ।[2] गहिलकर्ण के पीछे वह गुजरात का राजा हुआ। उसने अपने

---

१ वंशप्रकाश में १४८१ छपा है (पृ० ५३), जो अशुद्ध है। वंशभास्कर में ४८१ ही है (सक जँहँ विक्रमराज को, वसुभा बारन बेद ४८१। भौमचन्द्र सुत तँहँ भयो, अरिन करन उच्छेद-वंश भास्कर पृ० १,४२९)।

२ अनहिलपट्टन नैर इत, जनपद गुज्जरजत्थ।
गहिलकर्ण चालुक्य के, सुत जो कहिय समत्थ॥ ६ ॥
सोहु जनक जब स्वर्ग गो, सो तब पट्टनि भूप।
जास नाम जयसिंह जिहिं, राज्य करिय अनुरूप॥ ७ ॥
क्रम पढि मात्र कलंदिका, जोग रीति सब जानि।
सिद्धराज यह नाम जिहिं, पायो उचित प्रमानि॥ ८ ॥
जहँ सक विक्रमराज को, ससि चउवेद ४४१ समत्त।

पूर्वज कुमारपाल की तरह जैनधर्म स्वीकार किया और व्याकरण (अष्टाध्यायी), अनेकार्थनाममाला, परिशिष्टपद्धति (परिशिष्टपर्व), योगसार आदि अनेक ग्रंथों के कर्त्ता श्वेतांबर जैन सूरि हेमचंद्र को अपना गुरु माना। जयसिंह के गोभिलराज आदि ८ पुत्र हुए। गोभिलराज जयसिंह के पीछे गुजरात का राजा हुआ। चौहान -अस्थिपाल ने गोभिलराज पर चढ़ाई की, गोभिलराज की हार हुई और अंत में दो करोड़ द्रम्म देकर उसने अस्थिपाल से सुलह कर ली। फिर अस्थिपाल ने मोरवी (काठियावाड़ में) के झाला कुबेर की पुत्री उमा के साथ विवाह किया। भुज (कच्छ) की राजधानी) के यादव राजा भीम को दंड दिया और वह अनेक देशों को विजय कर अपने पिता के पास आया। अपने पिता (भौमचन्द्र) पीछे वह आसेर का राजा हुआ।"

चौहानों की ख्यातों के आधार पर लिखा हुआ ऊपर का सारा वृत्तांत कल्पित है; क्योंकि उसके अनुसार मोरी या मौर्य वंश के प्रवर्तक का चाहमान (चौहान) से १४३ वीं पुश्त में होना मानना पड़ता है, जो असम्भव है। मौर्य वंश की उन्नति देने वाला चन्द्रगुप्त ई० सं० पूर्व की चौथी शताब्दी में हुआ तो चाहमान को उससे अनुमान ३००० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा। यदि चाहमान इतना पुराना होता, तो पुराणों में उसकी वंशावली अवश्य मिलती। चाहमान का अस्तित्व ई० सं० की सातवीं शताब्दी के आस पास माना जाता है। चौहानों के प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, एवं पृथ्वीराजविजय, हंमीरमहाकाव्य, सुर्जनचरित आदि ऐतिहासिक पुस्तकों में कहीं भी भरथ और उरथ के नाम नहीं मिलते। गुजरात के सोलंकियों में कर्ण नाम के दो राजा हुए। एक तो जयसिंह (सिद्धराज) का पिता, जिसने वि० सं० ११२० से ११५० तक राज्य किया और दूसरा बाघेला (व्याघ्रपल्लीय सोलंकियों की एक शाखा) कर्ण हुआ, जो सारंगदेव का पुत्र था और जिसको गुजरात के इतिहास-लेखक कर्ण घेला (पागल) कहते हैं। उसने वि० सं० १३५२ से १३५६ से कुछ पीछे तक राज्य किया और उसी से गुजरात का राज्य मुसमानों ने छीना। जयसिंह (सिद्धराज) का पिता कभी 'घेला' नहीं कहलाया; परन्तु भाटों को अंतिम कर्ण का स्मरण था, जिससे जयसिंह के पिता को

जनम तत्थ जयसिंह को, नृप जानहु अनुरत्त ॥ ६ ॥
वंशभास्कर, पृ० १४२४।

भी गहल (घेला) लिख दिया। जयसिंह का जन्म वि० सं० ४४१ में नहीं हुआ, किन्तु उसने वि० सं० ११५० से ११९९ तक राज्य किया था। जयसिंह के गोभिल-राज आदि आठ पुत्रों का होना तो दूर रहा, उसके एक भी पुत्र नहीं हुआ। कुमारपाल जयसिंह का पूर्व पुरुष नहीं; किन्तु कुटुम्ब में भतीजा था और जयसिंह के पुत्र न होने के कारण वह उसका उत्तराधिकारी हुआ। ऐसी दशा में अस्थि-पाल का वि० सं० ४८१ (वंशभास्कर के अनुसार) या ९८१ (कर्नल टॉड और पंड्याजी के अनुसार) में होना सर्वथा असम्भव है। भाटों की वंशावलियां देखने से अनुमान होता है कि ई० स० की १५ वीं शताब्दी के आस–पास उन्होंने उसका लिखना शुरु किया और प्राचीन इतिहास का उनको ज्ञान न होने के कारण उन्होंने पहले के सैंकड़ों नाम उनमें कल्पित धरे। ऐसे ही उनके पुराने साल सम्वत् भी कल्पित ही सिद्ध होते हैं। चौहानों में अस्थिपाल नामका कोई राजा ही नहीं हुआ। हाड़ा नाम की उत्पत्ति तक से परिचित न होने के कारण भाटों ने अस्थिपाल नाम गढंत किया है। उनको इस बात का भी पता न था कि चौहानों की हाड़ा शाखा किस पुरुष से चली। मूंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है कि "नाडोल के राजा राव लाखण (लक्ष्मण) के वंश में आसराज (अश्वराज) हुआ, जिसका पुत्र माणकराव हुआ। उसके पीछे क्रमशः सभराण, जैतराव, अनंगराव, कुंतसीह (कुंतसिंह), विजैपाल, हाडो (हरराज) (बांगो बंगदेव) और देवी (देवीसिंह) हुए। देवा ने मीणों से बूंदी छिनली [1]।" नैणसी का लेख भाटों की ख्यातों से अधिक विश्वास योग्य है। उक्त हाड़ा (हरराज) के वंशज हाड़ा कहलाए हैं। नाडोल के आसराज (अश्वराज) के समय का एक शिलालेख वि० सं० ११६७ का मिल चुका है[2]। अतएव उसके सातवें वंशधर हाड़ा का वि० सं १३०० के आसपास विद्यमान होना अनुमान किया जा सकता है। उसी हाड़ा (हरराज) के लिये भाटों ने अनेक कृत्रिम नामों के साथ अस्थिपाल नाम भी कल्पित किया है।

बीसलदेव का अनहिलपुर प्राप्त करना।

कर्नल टॉड और पंड्याजी ने बीसलदेव के अनहिलपुर प्राप्त (विजय) करने

---

१. मूंहणोत नैणसी की ख्यात (हस्तलिखित), पत्र २४, पृ० २।

२. एपि० इंडि० जि० ११, पृ० २९।

का संवत् ९८६ लिखा है, उसको अटायत संवत् मानने से प्रचलित वि०सं०१०८२ और अनंद विक्रम संवत् मानने से वि०सं०१०७६-७७ होता है। चौहानों के बीजोलियां आदि के शिलालेखों तथा 'पृथ्वीराज विजय' आदि ऐतिहासिक पुस्तकों से सांभर तथा अजमेर के चौहानों में विग्रहराज या बीसलदेव नाम के चार राजाओं का होना पाया जाता है; परन्तु भाटों की वंशावलियों में केवल एक ही बीसलदेव नाम मिलता है। जिस विग्रहराज (बीसलदेव) ने गुजरात पर चढ़ाई की, वह विग्रहराज (बीसलदेव) दूसरा था; जिसके समय का हर्षनाथ (शेखावाटी में) का वि०सं० १०३० का शिलालेख भी मिल चुका है। 'पृथ्वीराजविजय' में उक्त चढ़ाई के संबंध में लिखा है कि "विग्रहराज की सेना ने बड़ी भक्ति के कारण बाणलिंग ले लेकर नर्मदा नदी को अनर्मदा (बाणलिंगरहित) बना दिया। गुर्जर (गुजरात के राजा) मूलराज ने तपस्वी की नांई यशरूपी वस्त्र को छोड़कर कंथा दुर्ग (कंथकोट का किला, कच्छ में, तपस्वी के पक्ष में कंथा अर्थात् गुदड़ी) में प्रवेश किया। विग्रहराज ने भृगु कच्छ (भड़ौंच) में आशापुरी देवी का मन्दिर बनवाया[१]।" इस से पाया जाता है कि विग्रहराज (बीसलदेव) की चढ़ाई गुजरात के राजा मूलराज पर हुई थी। मूलराज भाग कर कच्छ के कंथकोट के किले में जा रहा और विग्रहराज (बीसलदेव) आगे बढ़ता हुआ भड़ौंच तक पहुँच गया। मेरुतुंग ने अपने 'प्रबन्धचिंतामणि' में इस चढ़ाई का जो वृत्तांत दिया है, उसका

---

१. सूनुर्विग्रहराजोऽस्य सापराधानपि द्विषः ।
दुर्बला इत्यानुध्यायन्नक्षत्रिय इवाभवत् ॥ [४७॥]
अहरणद्भिः परया भक्त्या बाणलिङ्गपरंपराः ।
अनर्मदेव यत्सैन्यैर्निरमीयत नर्मदा ॥ [५०॥]
त्यक्त तपस्विना[स्वच्छं] यशोंशुकमितीवयः ।
गुर्जरं मूलराजाख्यं कंथादुर्गमवीविशत ॥ [५१॥]
व्यधादाशापुरीदेव्या भृगुकच्छे स धाम तत ।
यद्रेवास्पृष्टसोपानं चन्द्रश्चुम्बति मूर्धनि ॥ [५३॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ५।

सारांश यह है कि "एक समय सपादलक्षीय[1] (चौहान) राजा युद्ध करने की इच्छा से गुजरात की सीमा पर चढ़ आया। उसी समय तैलंग देश के राजा सेनापति बारप ने भी मूलराज पर चढ़ाई करदी। मूलराज अपने मंत्रियों की इस सलाह से कि जब नवरात्र आते ही सपादलक्षीय राजा अपनी कुलदेवी का पूजन करने के लिये अपनी राजधानी शाकंभरी (सांभर) को चला जायगा, तब बारप को जीत लेंगे, कंथादुर्ग (कंथकोट) में जा रहा; परन्तु चौहान ने गुजरात में ही चातुर्मास व्यतीत किया और नवरात्र आने पर वहीं शाकंभरी नामक नगर बसा, और अपनी कुलदेवी की मूर्ति मँगवा कर वहीं नवरात्र का उत्सव किया। इस पर मूलराज अचानक चौहान राजा के सैन्य में पहुँचा और हाथ में खड्ग लिए अकेला उसके तंबू के द्वार पर जा खड़ा हुआ। उसने द्वारपाल से कहा कि अपने राजा को खबर दो कि मूलराज आता है। मूलराज भीतर गया तो राजा ने पूछा कि, 'आप ही मूलराज हैं? मूलराजने उत्तर दिया कि 'हां'। इतनेमें पहले से संकेत पर तय्यार रक्खे हुए ४००० पैदलों ने राजा के तंबू को घेर लिया और मूलराज ने चौहान राजा से कहा कि "इस भूमंडल में मेरे साथ लड़ने वाला कोई वीर पुरुप है या नहीं, इसका मैं विचार कर रहा था। इतने में तो आप मेरी इच्छा के अनुसार आ मिले; परंतु भोजन में जैसे मक्खी गिर जाय, वैसे तैलंग देश के राज तैलप का सेनापति मुझ पर चढ़ाई कर, इस युद्ध के बीच विघ्न सा होगया है। इसलिये जब तक मैं उसको शिक्षा न दे लूं, तब तक आप ठहर जावें; पीछे से हमला करने की चेष्टा न करें। मैं इससे निपट कर आप से लड़ने को तय्यार हूँ।" इस पर चौहान राजा ने कहा कि "आप राजा होने पर भी एक सामान्य पैदल की नांई अपने प्राण की पर्वाह न कर शत्रु के घर में अकेले चले आते हो; इसलिये मैं जीवन पर्यंत आप से मैत्री करता हूँ।' " मूलराज वहाँ से चला और बारप की सेना पर टूट पड़ा। बारप मारा गया और उसके घोड़े और हाथी मूलराज के हाथ लगे। दूतों के द्वारा मूलराज की इस विजय की खबर सुन कर चौहान राजा भाग गया[2]।"

---

१. सांभर तथा अजमेर के चौहानों के अधीन का देश 'सपादलक्ष' कहलाता था। मेरुतुंग ने चौहान राजा का नाम नहीं दिया; परन्तु उसको 'सपादलक्षीय नृपति' (सपादलक्ष का राजा) ही कहा है, जो 'चौहान राजा' का सूचक है।

२. प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ४०-४२।

'प्रबंधचिंतामणि' का कर्ता चौहान राजा का भाग जाना लिखता है, वह विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उसी के लेख से यही पाया जाता है कि मूलराज ने उससे डर कर ही कंथकोट के क़िले में शरण ली थी। संभव तो यही है कि मूलराज ने हार कर अंत में उससे संधि कर उसे लौटाया हो।

नयचंन्द्र सूरि अपने 'हंमीरमहाकाव्य' में लिखता है कि "विग्रहराज (वीसलदेव) ने युद्ध में मूलराज को मारा और गुर्जरदेश (गुजरात) को जर्जरित कर दिया[१]।" नयचंन्द्र सूरि भी मेरुतुंग की नांई पिछला लेखक है, इसलिये उसके मूलराज के मारे जाने का कथन यदि हम स्वीकार न करें, तो भी मूलराज का हारना और गुजरात का बर्बाद होना निश्चित है। हेमचंद्र सूरि ने अपने 'द्व्याश्रयकाव्य' में विग्रहराज और मूलराज के बीच की लड़ाई का उल्लेख भी नहीं किया, जिसका कारण भी अनुमान से यही होता है कि इस लड़ाई में मूलराज की हार हुई हो। 'द्व्याश्रयकाव्य' में गुजरात के राजाओं की विजय का वर्णन विस्तार से लिखा गया है और उनकी हार का उल्लेख तक पाया नहीं जाता। यदि विग्रहराज हार कर भागा होता तो 'द्व्याश्रय' में उसका वर्णन विस्तार से मिलता।

भाटों की ख्यातों और वंशभास्कर में एक ही वीसलदेव का नाम मिलता है और उसको गुजरात के राजा बालुकराय से लड़नेवाला अजमेर के पास के वीसलसागर (वीसल्या) तालाब का बनानेवाला, अजमेर का राजा तथा आनोजी (अर्णोराज) का दादा माना है; जो विश्वास के योग्य नहीं। बालुकराय पाठ भी अशुद्ध है। शुद्ध पाठ 'चालुक (चौलुक्य) राय' होना चाहिए। जैसे 'प्रबंधचिंतामणि' में विग्रहराज (वीसलदेव) के नाम का उल्लेख न कर उसको 'सपादलक्षीय नृपति' अर्थात् सपादलक्ष देश का राजा कहा है, वैसे ही भाटों आदि ने गुजरात के राजा का नाम नहीं दिया; परंतु उसके वंश 'चालुक' के नाम से

---

१. अथांद्दिदीर्घऽनयनिग्रहाय बद्धाग्रहाद्विग्रहराजभूपः।
द्विधापि यो विग्रहमाजिभूमावभंजयद्दुर्गमहीपतीनाम ॥ ६ ॥...॥
अप्युग्रवीरव्रतवीरवीर ससेव्यमानक्रमपद्मयुग्मं।
श्रीमूलराजं समरे निहत्य यो गुर्जरं जर्जरतामनैषीत् ॥ ९ ॥
हंमीरमहाकाव्य, सर्ग २।

उसका परिचय दिया है। उसका नाम ऊपर के अवतरणों से मूलराज होना निश्चित है।

मूलराज के अब तक तीन ताम्रपत्र मिले हैं, जिनमें से पहला वि०सं०१०३० भाद्रपद शुदि ५ का[1], दूसरा वि० सं० १०४३ माघ वदि १५ (अमावास्या) का[2] और तीसरा वि०सं० १०५१ माघसुदि १५ का[3] है। विग्रहराज (विसलदेव) दूसरे का उपर्युक्त हर्षनाथ का शिलालेख वि०सं०१०३० का है, जिसमें मूलराज के साथ की लड़ाई का उल्लेख नहीं है[4]। अतएव यह लड़ाई उक्त संवत् के पीछे हुई होगी। मूलराज की मृत्यु वि०सं०१०५२ में हुई, इसलिये विग्रहराज (वीसलदेव) दूसरे का गुजरात पर की चढ़ाई वि० सं० १०५२ के बीच किसी वर्ष में होनी चाहिए। पंड्याजी का भटायत या अनंद विक्रम संवत् ६८६ क्रमशः प्रचलित वि०सं० १०८६ और १०७६-७७ होता है। उक्त संवतों में गुजरात का राजा मूलराज नहीं; किंतु भीमदेव पहला था। ऐसे ही उस समय सांभर का राजा विग्रहराज (वीसलदेव) दूसरा भी नहीं था; क्योंकि उसके पुत्र दुर्ल्लभराज (दूसरे) का शिलालेख वि०सं०१०५६ का मिल चुका है। इसलिये भटायत वा अनंद विक्रम संवत् का हिसाब यहाँ पर भी किसी प्रकार बंध नहीं बैठता।

जोधपुर के राजाओं के संवत्

पंड्याजी ने 'पृथ्वीराज रासे' की टिप्पणी में लिखा है कि जोधपुर राज्य के काल-निरूपक-राजा जयचंदजी को सं० ११३२ और शिवजी और सैतरामजी को सं. ११६८ में होना आज तक निःसंदेह मानते हैं और यह संवत् भी हमारे अन्वेषण किए हुए ६१ वर्ष के अन्तर के जोड़ने से सनंद विक्रमी होकर सांप्रतकाल के शोधे हुए समय से मिल जाते हैं, इसकी जाँच के लिये जोधपुर की भाटों की ख्यात् के अनुसार जैचन्द से लगा कर राव मालदेव तक के प्रत्येक राजाकी गद्दीनशीनी के संवत् नीचे लिखे जाते हैं-

---

१. विएना ओरिएंटल जर्नल, जि० ५, पृ० ३००।

२. इंडि० ऐंटि०, जि० ६, पृ० १६१।

३. विएना ओरिएंटल जर्नल, जि० ५, पृ० ३००।

४. वही, जि० २, पृ० ११६।

राजा का नाम			गद्दीनशीनी का संवत्
जयचन्द (कन्नौज का)	...	...	११३२
बरदाई सेन	...	. .	११६५
सेतराम	...	...	११८३
सीहा (शिवा)	...	...	१२०५
आस्थान (मारवाड़ में आया)	...	...	१२३३
धूहड	...	...	१२४८
रायपाल	...	...	१२८५
कन्नपाल	...	...	१३०१
जालणसी	...	...	१३१५
छाडा	...	...	१३३६
तीडा (टीडा)	..	...	१३५२
सलखा	...	...	१३६६
वीरम	...	...	१४२४
चूँडा	...	...	१४४०
कान्ह	...	...	१४६५
सत्ता	...	...	१४७०
रणमल	...	...	१४७४
जोधा	...	...	१५१०
सातल	...	...	१५४५
सूजा	...	...	१५४८
गांगा	...	...	१५७२
मालदेव	...	...	१५८८–१६०६

इन संवतों को देखने से पाया जाता है कि इनमें से किसी दो के बीच ६० या ६१ वर्ष का कहीं अन्तर नहीं है, जिससे यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से यहाँ तक तो अनंद विक्रम संवत् और आगे सनंद (प्रचलित) विक्रम संवत् हैं। अतएव ये सब संवत् एक ही संवत् में होने चाहिए, चाहे वह अनंद हो चाहे सनंद। परन्तु राव जोधा ने राजा होने के बाद वि० सं० १५१५ में जोधपुर बसाया यह सर्वमान्य है। इसलिये जोधा की गद्दीनशीनी का संवत् १५१० प्रचलित विक्रम

संवत् ही है। यदि उसको अनंद विक्रम संवत मानें तो उसके राज पाने का ठीक संवत् १६००-१ मानना पड़ेगा, जो असंभव है। इसी तरह राव मालदेव की शेरशाह सूर से वि०सं०१६०० में लड़ाई होना भी निश्चित है। इसलिये मालदेव के राज पाने का संवत १५८८ भी प्रचलित विक्रमी संवत् है। अतएव ऊपर लिखे हुए जोधपुर के राजाओं के सब संवत् भी अनंद नहीं; किन्तु सनंद (प्रचलित) विक्रम संवत् ही हैं और चूँडा के पहले के बहुधा सब संवत भाटों ने इतिहास के अज्ञान की दशा में कल्पित धर दिए हैं। बीटू (जोधपुर राज्य में पाली से १४ मील पर) के लेख से पाया जाता है कि जोधपुर के राठोर राज्य के संस्थापक सीहा की मृत्यु सं० १३३० कार्तिक वदि १२ को हुई[1] और तिरसिंघड़ी (तिंगड़ी–जोधपुर राज्य के पचपद्रा ज़िले में) के लेख से आसथामा (अश्वत्थामा, आसथान) के पुत्र धूहड़ का देहांत वि०सं० १३६३ में होना पाया जाता है[2]। इसलिये भाटों की ख्यातों में जोधपुर के शुरु के कितने एक राजाओं के जो संवत् मिलते हैं; वे अशुद्ध ही हैं। कन्नौज के राजा जयचंद की गद्दीनशीनी का संवत् ११३२ भी अशुद्ध है। यदि इसे अनंद संवत मानें तो प्रचलित विक्रम संवत् १२२२–३ होता है। ऊपर हम दिखा चुके हैं कि जयचंद्र की गद्दीनीशीनी प्रचलित विक्रम संवत १२२६ में हुई थी (देखो ऊपर)। भाटों के संवत् अशुद्ध हों या शुद्ध, प्रचलित विक्रम संवत के हैं, न कि 'अनंद' विक्रम संवत के; क्योंकि मालदेव और जोधा के निश्चित संवत् भाटों के संवतों से 'सनंद' मानने से ही मिलते हैं।

जयपुर के राजाओं के संवत्।

पंड्याजी का मानना है कि 'जयपुर राज्य वाले पज्जूनजी का [गद्दीनशीनी] संवत् ११२७ में होना मानते हैं और यह संवत् भी हमारे अन्वेषण किए हुए ६१ ९९ वर्ष के अन्तर के जोड़ने से सनन्द विक्रमी होकर सांप्रतकाल के शोधे हुए समय से मिल जाता है।'

पज्जून की गद्दीनशीनी का उपर्युक्त संवत् अनंद विक्रम है, या सनंद(प्रचलित)। इसका निर्णय करने से पहले हम जयपुर की भाटों की ख्यात से राजा ईशासिंह से

१. इंडि० एंटि०, जि० ४०, पृ० १४१।

२. वही पृ० ३०१।

लगाकर भगवानदास तक के राजाओं के पाट-संवत् नीचे लिखते हैं—

नाम			पाट—संवत
१ ईशासिंह	...	...	(अज्ञात)
२ सोढदेव	...	...	१०२३
३ दूलेराय	...	...	१०६३
४ काकिल	...	...	१०९३
५ हणू	...	...	१०९६
६ जान्हडदेव	...	...	१११०
७ पज्जून	...	...	११२७
८ मलेसी	...	...	११५१
९ बीजलदेव	...	...	१२०३
१० राजदेव	...	...	१२३६
११ कील्हण	...	...	१२७३
१२ कुंतल	...	...	१३३३
१३ झोणसी	...	...	१३७४
१४ उदयकरण	...	...	१४२३
१५ नृसिंह	...	...	१४४५
१६ बनवीर	...	...	१४८५
१७ उद्धरण	...	...	१४९६
१८ चन्द्रसेन	...	...	१५२४
१९ पृथ्वीराज	...	...	१५५९
२० पूर्णमल्ल	...	...	१५८४
२१ भीमसिंह	...	...	१५९०
२२ रत्नसिंह	...	...	१५९३
२३ भारमल्ल	...	...	१६०४
२४ भगवानदास	...	...	१६३०

इन संवतों में भी कहीं दो संवतों के बीच ९० या ९१ वर्ष का अंतर नहीं है, जिससे यह नहीं माना जा सकता कि अमुक राजा तक के संवत् तो अनंद

विक्रमी है और अमुक से सनंद (प्रचलित) विक्रमी दिए हैं अर्थात् ये सब संवत् किसी एक ही विक्रमी गणना के अनुसार हैं।

बादशाह अक़बर हिज़री सन् ६६३ तारीख २ रबिउस्सामानी (वि० सं० १६१२ फाल्गुन बदी ४) को कलानूर में गद्दीनशीन हुआ। उस समय राज्य में बखेड़ा मचा हुआ था, जिससे सूर सुलतान सिकंदर के सेवक हाजीखां पठान ने आंबेर के राजा भारमल कछवाहे की सहायता से नारनौल को घेरा, जो मजनूखाँ काकशाल के अधीन था। राजा भारमल ने बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से मजनूखाँ को उसके बाल बच्चों तथा मालताल के साथ वहाँ से बचा कर निकाल दिया। जब बादशाह अकबर ने हेमू ढूसर आदि को नष्ट कर देहली पर अधिकार किया, उस समय मजनूखाँ ने ऊपर किए हुए उपकार का बदला देने के लिये बादशाह से राजा भारमल की सिफ़ारिश की। राजा देहली बुलाया गया और बादशाह ने उसको तथा उसके साथ के राजपूतों को खिलअतें देकर विदा किया। वि० सं० १६६८ में बादशाह अकबर आगरे से राजपूताने को चला। बादशाह की तरफ़ से बुलाए जाने पर राजा भारमल साँगानेर में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने उसकी अधीनता स्वीकार की। राजपूताने के राजाओं में से भारमल ने ही सब से पहले बादशाही सेवा स्वीकार की। वि० सं० १६२४ में बादशाह अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। उस समय राजा भारमल भी उसके साथ था और वि०सं०१६२५ में बादशाह ने रणथंभोर के किले को घेरा, तब वहाँ के किलेदार बूँदी के राव सुर्जन हाड़ा ने इसी राजा की सलाह से बादशाही सेवा स्वीकार की।

ऊपर दिए हुए संवतों में से भारमल का वि० सं०१६०४ से १६३० तक राज करना निर्विवाद है और उन संवतों को प्रचलित (सनंद) विक्रम संवत मानने से ही राजा भारमल अक़बर का समकालीन सिद्ध होता है, न कि अनंद विक्रम संवत् से।

ऊपर दिए हुए संवतों में से राजा पूर्णमल्ल की गद्दीनशीनी से लगा कर पिछले राजाओं के संवत् शुद्ध हैं; परन्तु पूर्णमल्ल से पहले के राजाओं के संवत; इतिहास के अंधकार की दशा में बहुधा सबके सब भाटों ने कल्पित कर के धरे हैं; क्योंकि, उनमें सोढदेव से लगा कर पृथ्वीराज तक के १८ राजाओं का राज्य समय

---

* बादशाह अकबर की वि०सं०१६६३ (ई०सं०१६०) में मृत्यु हुई। अस्तु- इस संवत् के लिखने में कुछ भूल होना पाया जाता है है। वस्तुतः बादशाह होने के बाद अकबर १६१८ वि०सं०में राजपुताने की ओर प्रथम बार बढ़ा था। —सम्पादक

५६१ वर्ष दिया है, जिससे औसत हिसाब से प्रत्येक राजा का राजत्यकाल ३१ वर्ष से कुछ अधिक आता है, जो सर्वथा स्वीकार नहीं किया जा सकता। जयपुर की ख्यात में जैसे संवत् कल्पित धर दिए हैं, वैसे ही सुमित्र (पुराणों का) के बाद के कूरम से लगा कर ग्यानपाल तक के १३८ नाम भी बहुधा कल्पित ही हैं; क्योंकि ग्वालिअर के शिलालेखों में वहाँ के जिन कछवाहे राजाओं के नाम मिलते हैं, उनमें से एक भी ख्यात में नहीं है। मूँहणोत नैणसीं ने भी अपनी ख्यात में कछवाहों की दो वंशावलियाँ दी हैं, उनमें से जो भाट राजपाण ने लिखवाई, वह तो वैसी ही रद्दी है जैसी कि ख्यात की; परन्तु जो दूसरी वंशावली उसने दी है, उसमें पिछले नाम ठीक हैं और वे शिलालेखों के नामों से भी मिलते हैं। ग्वालिअर के शिलालेखों तथा उक्त वंशावली के नामों का मिलान नीचे किया जाता है:—

ग्वालिअर के कछवाहे (शिला-लेखों से)[1]	जयपुर के कछवाहे (नैणसी की ख्यात से)[2]
१ लक्ष्मण (वि० सं० १०३४)	१ लक्ष्मण
२ वज्रदामा	२ वज्रदीप
३ मंगलराज	३ मगलां
४ कीर्तिराज	४ सुमित्र
५ मूलदेव	५ मुधिब्रह्म
६ देवपाल	६ कहानी
७ पद्मपाल	७ देवानी
८ महीपाल (वि०सं०११५०)	८ ईशे (ईशासिंह)
९ त्रिभुवनपाल (वि०सं०११६१)	९ सोढ (सोढदेव)
	१० दूलराज
	११ काकिल

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की विस्तृत टिप्पणी सहित खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर का छपा हुआ हिंदी टॉड राजस्थान, खंड १, पृ० ३७२–३७३। इस वंशावली के नामों के साथ जो संवत दिए हैं, वे ग्वालिअर के कछवाहों के शिलालेखों से हैं।

२. मूँहणोत नैणसी की ख्यात, पृ०६३–६४।

१२ हणू
१३ जानड
१४ पज्जून

इन दोनों वंशावलियों में पहले तीन समान हैं। दोनों के मिलान से पाया जाता है कि मंगलराज के दो पुत्र कीर्तिराज और सुमित्र हुए हों। कीर्तिराज के वंशज तो शहाबुद्दीन गोरी के समय तक ग्वालिअर के राजा बने रहे[1] और सुमित्र के वंशजों, अर्थात् ग्वालिअर की छोटी शाखा, के वंशधर सोढ (सोढदेव) ने राजपूताने में आकर बड़गूजरों से द्यौसा छीन लिया और वहाँ पर अपना अधिकार जमाया। वहाँ से फिर आँबेर उनकी राजधानी हुई और सवाई जयसिंह ने जयपुर बसा कर उसको अपनी राजधानी बनाया। फीरोजशाह तुग़लक के समय में तंवर वीरसिंह ग्वालिअर का क़िलेदार नियत हुआ; परंतु वहाँ के सय्यद किलेदार ने उसको क़िला सौंप देने से इनकार किया, जिस पर वीरसिंह ने उससे मित्रता बढ़ाने का उद्योग किया। एक दिन उसको वहाँ मिहमान किया और भोजन में नशीली चीज़ें मिला कर उसको भोजन कराया। फिर उसके बेहोश हो जाने पर उसे क़ैद कर क़िले पर अपना अधिकार जमा लिया। यह घटना वि० सं० १४३२ के आस-पास हुई। तब से लगा कर वि० सं० १५६६ के आस-पास तक ग्वालिअर का क़िला तंवरों (तोमरों) के अधीन रहा[2]।

कछवाहों की ख्यात लिखने वाले भाटों को यह ज्ञात नहीं था कि ग्वालिअर पर कछवाहों का अधिकार कब तक रहा और वह तंवरों के अधीन किस तरह हुआ, इसलिये उन्होंने यह कथा गढंत की कि ग्वालिअर के कछवाहा राजा ईशासिंह ने अपनी वृद्धावस्था में अपना राज्य अपने भानजे जैसा (जयसिंह) तंवर को दान कर दिया; जिससे ईशा के पुत्र सोढ़देव ने ग्वालिअर से द्यौसा में आकर अपने बाहुबल से वहाँ का राज्य छीना। भाटों की ख्यातों में सोढ़देव का वि० सं० १०२३ में गद्दी बैठना लिखा है; परंतु ये बातें मनगढंत ही हैं, क्योंकि शहाबुद्दीन गोरी तक ग्वालिअर पर कछवाहों की बड़ी शाखा का राज्य रहा और सोढ़देव से नौ पुश्त पहले होने वाला राजा लक्ष्मण वि० सं० १०३४ में विद्यमान था। ऐसा

---

१. खड्ग-विलास प्रेस का छपा हुआ हिंदी टॉड राजस्थान, खंड १ पृ० २७२।

२. वही पृष्ठ २७३।

उसी के समय के ग्वालिअर के शिलालेख से निश्चित है।

अब हमें जयपुर के कछवाहों के पूर्वज पज्जून का समय निर्णय करने की आवश्यकता है। ग्वालिअर का राजा लक्ष्मण वि० सं० १०३४ में विद्यमान था और पज्जून उसका १४ वाँ वंशधर था। यदि प्रत्येक राजा के राज्य समय की औसत २० वर्ष मानी जावे, तो पज्जू का वि० सं० १२६४ में विद्यमान होना स्थिर होता है, जो असम्भव नहीं। इसी तरह पज्जून से लगा कर उसके १७ वें वंशधर भारमल्ल तक के राजाओं में से प्रत्येक का राज्य समय औसत से २० वर्ष माना जावे तो भारमल्ल का वि० सं० १६०४ से १६३० तक राज्य करना निश्चित है।

ऐसी दशा में पज्जून पृथ्वीराज का समकालीन नहीं; किंतु उसे उससे लगभग आधी शताब्दी पीछे होना चाहिए।

पट्टे परवाने

पंड्याजी ने लिखा है कि "चंद के प्रयोग किए हुए विक्रम के अनंद संवत् का प्रचार बारहवें शतक तक की राजकीय व्यवहार की लिखावटों में भी हमको प्राप्त हुआ है अर्थात् हमको शोध करते–करते हमारे स्वदेशी अंतिम बादशाह पृथ्वी-राजजी और रावल समरसीजी और महाराणी पृथाबाईजी के के कुछ पट्टे परवाने मिले हैं। उनके संवत भी इस महाकाव्य में लिखे संवतों से ठीक–ठीक मिलते हैं और पृथ्वीराजजी के परवानों में जो मुहर अर्थात् छाप है, उसमें उनके राज्याभिषेक का संवत ११२२ लिखा है।"

ये पट्टे परवाने नौ हैं। इनके फोटोग्राफ, प्रतिलिपि अँगरेजी अनुवाद हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की सन् १६०० ई० की रिपोर्ट में छपे हैं। हम विचार करने के लिये इन्हें इस क्रम से रखते हैं:—

(क) पृथ्वीराज के परवाने।

(१) संवत ११४३ का पट्टा आचारज रुषीकेश के नाम कि तुम्हें पृथाबाई के दहेज में दिया गया है, मुहर का संवत् ११२२ (प्लेट ३)।

(२) संवत ११४५ का पट्टा, उसी के नाम 'आगना' (आज्ञा) कि काकाजी बीमार हैं, यहाँ आओ, मुहर का संवत् वही (प्लेट ४)।

(३) ११४५ का पट्टा, उसी के नाम कि काकाजी को आराम होने से तुम्हें रीझ (प्रसन्नता) में पाँच हजार रुपए दिए जाते हैं, मुहर का संवत वही (प्लेट ६)।

(ख) पृथावाई के पत्र।

(४) संवत ११ [४५] का, उसी के नाम; कि काकाजी बीमार हैं, मैं दिल्ली जाती हूँ. तुम्हें चलना होगा, चले आओ (प्लेट ४)।

(५) संवत ११५७ का, अपने पुत्र के नाम, कि समरसी झगड़े में मारे गए हैं, मैं सती होती हूँ, तुम मेरे चार दहेजवालों की, विशेषतः रुषीकेश के वंश की, सम्हाल रखना (प्लेट ८)।

(ग) रावल समरसी का पट्टा।

(६) संवत ११३९ का आचारज रुषीकेश के नाम, कि तुम दिल्ली से दहेज में आए हो, तुम्हारा संमान और अधिकार निवत किया जाता है (प्लेट १)।

(७) संवत ११४५ का, उसी के नाम, कि तुम्हें मोई का ग्राम दिया जाता है।

(घ) महाराणा जयसिंह का परवाना।

(८) संवत १७५१ का, आचारज अपाराम रगुनाथ के नाम, कि पृथाबाई का पत्र (देखो ऊपर नं० ५) देख कर नया किया गया कि तुम राज के 'श्यामखोर' अर्थात् नमक हलाल हो। (प्लेट ६)।

(ङ) महाराणा भीमसिंह का पट्टा।

(९) संवत १८५८ का, आचारज संभुसीव सदासीव के नाम कि समरसी का पट्टा (ऊपर नं० ६ देखो) जीर्ण हो जाने के कारण नया किया गया।

इन पट्टों परवानों में नं० ८ और ९ का विचार करने की आवश्यकता नहीं। नं० ८ तो सं० १७५१ में नं० ५ की पुष्टि करता है और नं० ९ सं० १८५८ में नं० ६ की। पुराने पट्टे को देखकर नया लिखने के समय ऐतिहासिक प्रश्नों की जाँच

नहीं होती, जैसा आगे दिखाया जायगा। पट्टे लिखने, सही करने, भाला और अंकुश बनाने का कार्य एक ही मनुष्य के हाथ में रहने से किसी राजस्थान में क्या-क्या हो सकता है, यह समझाने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। हमें आचारज रुषीकेश के बंशजों के पास इन पट्टों तथा भूमि के होने से भी कोई सम्बन्ध नहीं। सं० १८५८ में या सं० १७५१ में समरसी और पृथाबाई के विवाह की कथा मानी जाती थी, यह कथन भी हमारे विवेचन में बाधा नहीं डालता। हमें यही देखना है कि बाकी सात पट्टे परवाने स्वतंत्र रूप से अनंद संवत के सिद्धांत को पुष्ट करते हैं, या केवल 'रासे' की संवत् और घटनाओं की ढिलाई को दृढ़ करने के लिये उपस्थित किये गये हैं।

(क) पृथ्वीराज के पट्टे परवाने—

(१)

॥ श्री ॥

॥ श्री ॥
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत् ११२२
वैशाख सुदि ३

(सही)

श्री श्री दलानं मंहनं राजानं धीराजनं हदुसथानं राजधानं संभ
री नरेस पुरब दली तपत श्री श्री महानं राजं धीराजनं श्री
प्रथीराजी सुसथानं आचारजरुषीकेस धनंत्रिनं अप्रन तमको बाई
श्री प्रथु कवरन की साथ हतलेवे चीत्र,
कोट का दीया तुमार हक चहुवान के रज में साबित हे तुमारी
ओलाद का सपुत कपुत होगा जो चहान की पोल आ
वगा जीनं को भाई सी तरे समंजेगा तुमारा कारंन
नहीं गटेगा तुम जमाषात्रि से बाई।

के आ तुमरी जो हुवे श्रीमुप
दुवे पंचोली हृडमंराश्र के संमत ११४३
वर्षे आसाड सुद १३

(२)

श्री रामहरी

|| श्री ||
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत् ११२२
वैशाख सुदि ३

सही

श्री श्री दलीन महाराजनं धीराजं श्री श्री
प्रथीराजनं की आगना पोछे आचार
ज भ० रषीकेस ने चत्रकोट पोछे
आहा श्री काकाजी नं महा······हुई
छे सो पास रुको बांचने अहां हाजर बीजे संमत
११४५ चेत बदि ७ ।

(३)

श्री रामहरी

|| श्री ||
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत् ११२२
वैशाख सुदि ३

सही

श्री श्री दलीन महाराजं धीराजंनं हिंदुसथा
नं राजं धानं संभरी नरेस पुरब दली तपत
श्री श्री माहानं राजं धीराजंनं श्री प्रथीराजी
सुमाथनं श्राचारज रुषीकेम धनंत्रि श्रप्रन तमने का
काजीनं के दुवा की श्रारामं चश्रो जीन
के रीजं में राकड़ रुपीश्रा ५०००) तुमरे श्रा
हानी गोड़ का परचा सीवाश्र श्रावेंगे षजानं
मे इनको कोई माफ करेंगे जीनको नेरकों
के श्रधंकारी होवेंगे सई दुवे हुकम के हडमंतराश्र
ममत ११४५ वर्षे श्रासाड सुदी १३

ये तीनों दस्तावेज़ जाली हैं, जिसके प्रमाण ये हैं:—

(१) इन तीनों के ऊपर जो मुहर लगी है, वह संवत् ११२२ की है। इ सम्वत् को अनंद विक्रम संवत् मान कर पंड्याजी पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी व संवत् बतलाते हैं। अनंद विक्रम सम्वत ११२२ सनद (प्रचलित) विक्र सम्वत् (११२२+६०-६१=) १२१२-१३ होता है। उक्त सम्वत् में तो पृथ्वीरा का जन्म भी नहीं हुआ था; जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है।

(२) मेवाड़ के रावल समरसिंह का समय वि० स० १३३० से १३५८ त का है, जैसा कि पहले सिद्ध किया गया है, उसके साथ पृथाबाई का विवाह होन और सम्वत् ११४३ अनंद अर्थात १२३३-४ सनंद में उसे दहेज में दिए हुए आच रज रुपीकेश को पट्टा देना और सम्वत ११४५ अनंद अर्थात १२३५-६ सनंद उसे बीमारी पर बुलाया या बीमारी हट जाने पर बुलाना या बीमारी हट जाने प इनाम देना सब असम्भव है।

(३) इन पट्टों परवानों की लिखावट वर्तमान समय की राजपूताने व लिखावट है, बारहवीं शताब्दी की वर्णमाला में नहीं है। ध्यान देने से जान पड़ है कि महाजनी हिन्दी के वर्तमान मोड़ इसमें जगह-जगह पर हैं। जिन्होंने बारह शताब्दी के शिलालेख या हस्तलिखित पुस्तकें देखी हैं, उन्हें इस विषय में अधि विचार करने की आवश्यकता नहीं। एक ही बात देखली जाय कि इनमें 'ए' 'ओ' की पुष्ट (पड़ी-मात्रा, अक्षर की बाई ओर) कहीं नहीं है। राजकी लिखावट सदा सुन्दर अक्षरों में लिखी जाती थी, ऐसी भद्दी घसीट में नहीं।

(४) इनकी भाषा तथा पारिभाषिक शब्दों के व्यवहार को देखिए। पृथ्वी-राज के समय के लेखों में कभी उसे 'पूर्वदेश महीपति' नहीं कहा गया है। मेवाड़ में बैठकर पट्टे गढ़ने वाले आदमी को चाहे दिल्ली पूर्व जान पड़े; किन्तु संकेत के व्यवहार में पूरब का अर्थ काशी—अवध आदि देश होते हैं, दिल्ली नहीं। पूरब का अर्थ काशी—अवध आदि देश होते हैं,'पूरब दिल्ली नहीं। तखत' कहना भी वैसा ही असंगत है। उस समय 'हदुमथानं राजधानं' की कल्पना नहीं हुई थी। मेरु-तंत्र के 'हिंदू' पद की दुहाई देने से यहाँ काम न चलेगा। 'रासे' के अनुस्वार तो छंदों को लघु मात्राओं का गुरु करने के लिये लगाए गए हैं, या शब्दों को संस्कृत सा बनाने के लिये, या उन स्वयं सिद्ध टीकाकारों को बहकाने के लिये, जो यह नहीं जानते कि अपभ्रंश अर्थात् पिछले प्राकृत में नपुंसक लिंग का चिन्ह 'उ' है और 'वानीयवंदेपयं' के 'अम्' को कह बैठते हैं कि यह द्वितिया विभक्ति नहीं, नपुंसक की प्रथमा है, किंतु इन पदों में स्थान—कुस्थान पर अनुस्वार रासे की संरक्षा के लिये लगाये गए हैं। भाषा बड़ी अद्भुत है। मेवाड़ के रहने वाले अपनी मातृभाषा से गढ़ कर जैसी 'पक्की हिंदी' बोलने का उद्योग करते हैं, वैसी हिंदी बनाई गई 'तमको हतलेवे चीत्रकोट कोदीया, 'तुमार हक साबित है', 'जो चहान की पोल आवेगा जीन को भाई मी तरे समजेगा:' किंतु यह खड़ी बोली ज्यादा देर न न चली। दूसरे पट्टे में लिखने वाला फिर वर्तमान मेवाड़ी पर उतर आया 'षास रुको बांचने अहां हाजर बीजे'। मानों महाराणा उदयपुर का कोई हाजिर बाश पृथ्वीराज के वहां बैठा बोल रहा हो! रासे की भाषा पर फ़ारसी शब्दों की अधि-कता का आक्षेप होता था। उसके लिये फ़रमान का रुक्माणः बनाया गया। 'रासे' तथा इन पट्टों की फ़ारसी की पुष्टि में कहा जाता है कि पृथाबाई दिल्ली से आई थी, वहाँ मुसलमानों का लश्कर रहता था, सौ वर्ष पहले से लाहोर में मुसल-मानों का राज्य था; वहां से दूत आदि आया जाया करते थे, इत्यादि। इन तीन पट्टों में हदुसथानं राजधानं दली तखत, हक, साबित, ओलाद जमा खातिर, हाजिर, दबा, आराम, रोकड़, खरचा, सिवा, खजाना, माफ, सही, इतने विदेशी शब्द शुद्ध या भ्रष्ट रूप में विद्यमान हैं। पृथाबाई के पत्र (नं० ४, ५) में साहब, हजूर, खास, रुक्का, कागज, डाक बैठना, हुकम, ताकीद, खातरी, हरामखोर, दस्तखत, पासवान के तत्सम या तद्भव रूप हैं। नं० ६–७ समरसी के पत्रों में बराबर, आबादान, जमाखातिरी, मालकी, जनाना, परवाना शब्द हैं। यह बात

इन पट्टों की वास्तविकता में सन्देह उत्पन्न करती हैं; इतना ही नहीं, बिलकुल इन्हें प्रमाण कोटि से बाहर डाल देती हैं। राज्यों की लिखावट में पुरानी रीति चलती है अँगरेज़ी राज्य को डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर हो जाने पर भी वायसराय और देशी राज्यों के मुरासिले फ़ारसी उर्दू में होते हैं, कचहरी की भाषा घनी फ़ारसी की उर्दू है। सिक्के पर 'यक रुपया' फ़ारसी में है। पृथ्वीराज के समय में विदेशी शब्द व्यवहार में आ भी गए हों तो रायकीय लेखों में पुराने 'मुन्शी' लकीर के फकीर इतनी जल्दी परिवर्त्तन नहीं कर सकते। समरसी तो दिल्ली से दूर थे, वे भी जनाना और परवाना जानने लग गए थे। इन पट्टों की पृथाबाई तो गज़ब करती है, स्त्रियाँ सदा पुरानी चालों की आश्रय होती हैं; किन्तु वह पति और भाई दोनों को 'हज़ूर' कहती है! इन पट्टों में खास-रुक्का, परवाना, तख्त, हक, खजाना, औलाद, जमाखातिर, सही; दस्तखत, पासवान(=रक्षिता स्त्री, भोग पत्नी) जनाना, आदि पद ऐसे रूढ़ संकेतों में आए हैं, जिन्हें स्थिर करने में हिन्दू-मुसलमानों के सहवास को तीन-चार सौ वर्ष लगे होंगे। समरसी के पट्टे (नं० ६) में, प्रधान के बराबर बैठक होना, केवल वर्तमान उदयपुर राज्य का संकेत है; दिल्ली में प्रधान' होता हो, तथा 'बैठकें' होती हों, यह निरी पिछली कल्पना है। खास-रुक्का अर्थात् राजा की दस्तखती चिट्ठी भी वर्तमान रजवाड़ों की रूढ़ि है। पत्र के अर्थ में 'कागज' 'कागद' की रूढ़ि भी वर्तमान राजपूताने की है, जब कि चिट्ठी,शब्द अशुभ सूचक पत्र या आटे दाल के पेटिए के अर्थ में रूढ़ हो गया है। यदि समरसी और पृथ्वीराज के समय में इतने विदेशी शब्द रात दिन के व्यवहार में आने लग गए थे, तो राणा कुम्भा का शिलालेख, जिसकी चर्चा आगे की जायगी, बिलकुल फ़ारसी ही सा होना चाहिए था। पृथाबाई के पत्रों में यह और चमत्कार है कि वह अपने लिये 'पधारना' लिखती है, जैसे कि गँवार कहा करते है कि तुमने जब अर्ज़ करी तब मैंने फरमाया! पंड्याजी कहते हैं, वह दिल्ली से आई थी, अपने दहेज में फ़ारसी के शब्द भी समरसी के यहाँ लाई थी; किन्तु उसके पत्र शुद्ध वर्तमान मेवाड़ी में है, 'सबेरे दिन अठे आंवसी', 'थाने माँ आगे जाणो पड़ेगा,' 'थांरे मंदर का व्याव का मारथ दली तु आआ पाछे करोगा' इत्यादि।

(५) पृथ्वीराज के समय में यहाँ के हिन्दू राजाओं के दरबारों की लिखावट हिन्दी भाषा में नहीं; किन्तु संस्कृत में थी। अजमेर और नाडौल आदि के चौहानों, मेवाड़ (उदेपुर) और डूंगरपुर के गुहिलोतों (सीसोदियों), आबू और

मालवे के परमारों, गुजरात के सोलंकियों; कन्नौज के गाहड़वालों (गेहरवालों) आदि की भूमि-दान की राजकीय सनदें (ताम्रपत्र) संस्कृत में ही मिलती हैं। पृथ्वीराज के वंशज महाकुमार चाहडदेव (बाहडदेव) के दान-पत्र के प्रारम्भ का टूटा हुआ टुकड़ा मिला है, जिसकी नक़ल नीचे दी जाती है। उससे मालूम हो जायगा कि पृथ्वीराज के पीछे भी उसके वंशजों की सनदें भाषा में नहीं; किन्तु संस्कृत में लिख कर दी जाती थीं—

[म]हाकुमार श्री चाहडदेवः ॥

······कीर्तिरनंता द्यौः परत्र दातुः प्रतिग्रहातुश्च । आच्छेत्तुर्विपरीता भूर्त्रा (त्रा)ह्मण शा(सा)त्कृता ······················विक्रमः । चाह-मानकुलैके(कें)दुर्विभुः शाकंभरीभुवः ॥ २ [॥] व(ब)भूव भुवनाभोग·········
··············धिपः ॥ ३ [॥] ततोऽर्णोराजनृपतिर्व (र्ब)भार जगतीभरं। स्वामि । [स्वस्मि ?] न्नालानितो ये [न]·······················
तनूजोऽय च स्वावासैकनिवासिनीः समकरोज्जित्वा दिगंतश्रियः···············
······स्य दासवदमी चेरुश्चिरं निर्मदाः ॥ ४ [॥] पृथ्वीराज [स्य]······[1]

इस ताम्रपत्र के टुकड़े में अर्णोराज (आना) से लगा कर पृथ्वीराज तक की अजमेर के चौहानों की वंशावली बची है; जिससे निश्चित् है कि महाकुमार चाहडदेव, पृथ्वीराज ही का कोई वंशधर था। यदि पृथ्वीराज के समय में चौहानों की राजकीय लिखावटें भाषा में होने लग गई होतीं, तो चाहडदेव फिर संस्कृत का ढर्रा नए सिरे कभी न चलाता। पृथ्वीराज के पीछे भी राजपूताने के जो राज्य मुसलमानों की अधीनता से बचे, उनकी राजकीय लिखावटें संस्कृत में होती रहीं। मेवाड़ के महाराणा हंमीर के संस्कृत के दानपत्र की नकल; वि० सं० १४०० से कुछ पीछे की, एक मुकद्दमें की मिसल में देखीगई (मूल देखने को नहीं मिला) और वागड़ (डूँगरपुर) के राजा वीरसिंघदेव का वि० सं० १३४३ का संस्कृत ताम्रपत्र राजपूताना म्यूजिअम में सुरक्षित है।

(६) इन तीनों पट्टों में मुहर के पास 'सही' लिखा है। राजकीय लिखा-वट के ऊपर सही करने की प्रथा हिन्दू राज्यों में मुसलमानों के समय उनकी

१. एपि० इन्डि०, जिल्द १२, पृ० २२४।

देखा-देखी चली है। पृथ्वीराज तक किसी राजा के दानपत्र में 'सही' नहीं मिलती। प्राचीन काल में दानपत्रों पर बहुधा राजा के हस्ताक्षर इबारत के अन्त में 'स्वहस्तोऽयं मम' या 'स्वहस्तः' पहले लिख कर किए हुए मिलते हैं। लेख की इबारत दूसरे अक्षरों में तथा यह हस्ताक्षर बहुधा दूसरे अक्षरों में मिलते हैं, जिससे पाया जाता है कि ताम्रपत्र पर राजा स्याही से अपने हस्ताक्षर कर देता था, जो वैसे ही खोद दिए जाते थे। बंसखेड़ा के ताम्रपत्र का 'स्वहस्तोय मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य' अपनी सुन्दर अलंकृत लिपि के लिये प्रसिद्ध हो चुका है। ऊपर वर्णन किये हुए महाकुमार चाहड़देव के दानपत्र के ऊपर उसके हस्ताक्षर भी दानपत्र की लिपि से भिन्न लिपि में है। यदि पृथ्वीराज के समय 'सही' करने का प्रचार चौहानों के यहाँ होगया होता तो उसका वंशधर भी वैसा ही करता, न कि पुरानी रीति पर हस्ताक्षर।

प्राचीन राजाओं के यहाँ कई प्रकार की राज मुद्राएँ होती थीं; जिनका यथा स्थान लगाना किसी विशेष कर्मचारी के हाथ में रहता था। उनमें एक 'श्री' की मुद्रा भी होती थी। वह सब में मुख्य गिनी जाती थी। कई ताम्रपत्र आदि में किसी महन्तम (महता) या मन्त्री के नाम के साथ 'श्रीकरणादिसमस्तमुद्राव्यापारान् परिपन्थयति इत्येवं काले प्रवर्तमाने' लिखा मिलता है। यह 'श्रीकरण व्यापार' या 'श्री' की छाप लगाने का काम बड़े ही विश्वासपात्र अर्थात मुख्य मन्त्री का होता था, जैसे कि गुजरात के सोलंकी राजा वीसलदेव के राजकवि नानाक के लेख में श्रीकरण से प्रसन्न होकर उक्त चालुक्य राजा का अपने वैजवापगोत्री मन्त्रियों को गुंजा ग्राम देने का उल्लेख है (इंडि० एंटि०, जि० ११, पृ० १०२)। जैसे राजपूताने की रियासतों में आजकल 'श्री करना', 'मती करना' 'सिरिमिती करना' 'सही करना' आदि वाक्य लेख की प्रामाणिकता कर देने के अर्थ में आते हैं, वैसे ही यह 'श्री करणव्यापार' था। मेवाड़ में और मुहरें तो मन्त्री आदि लगा देते हैं; किन्तु रुपए लेने देने की आज्ञाओं पर जो मुहर लगाई जाती है, उसमें 'श्री' लिखा हुआ है और उसे अब तक महाराणा स्वयं अपने हाथ से लगाते हैं। इस 'श्री' करने के स्थान में पीछे 'सही' करना चल गया; किन्तु यह पृथ्वीराज के समय में चला हुआ नहीं माना जा सकता। हिन्दू राज्य इतनी जल्दी अपनी प्राचीन प्रथा को बदल डालें इसकी साक्षी इतिहास नहीं देता।

पृथाबाई के पत्र।

नीचे उक्त पत्रों की नक़ल दी जाती है। उनमें संवत ११ [४५] और ११५७ हैं। अनंद या सनंद उन संवतों में पत्र लिखने वाली पृथाबाई वि०सं० १३५८ तक जीवित रहने वाले चितौड़ के राजा समरसिंह की रानी किसी प्रकार नहीं हो सकती। इसलिये ये पत्र भी जाली हैं।

(४)

श्री हरी एकलिंगो जयति।

श्री श्री चीत्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुंवरबाई का वारणा गाम
मोई आचारज भाई रुसीकेसजी बांच जो अप्रन श्री दलीसूं भाई श्री लंगरी रा
जी आआ है जो श्री दली सूं वी हजूर को वी खास रुका आयो है जो
मारी बी पदारवा की
सीख वी है ने दली ककाजी रे पेद है जो का[गद बाच]त चला आवजो
थाने मा आगे जाणो
पडगा थांके वास्ते ड.क बेठी है श्री हजूर · · · बी हुकम बे गीयो है जो थे
ताकीद सूं आव
जो थारे मंदर को ब्याव का मारथ अबार · · · · · करांगा दली सु आ
आ पाछे करांगा ओ
र थे सवेरे दन अठे आंधसी संवत ११ [४५] चेत सुदी १३

(५)

चीत्रकोट माहा सुभ सुथाने श्री · · · · · · · · · सी पास
तीर मासाब चवाण श्री परथु · · · · · · की आसीस
वाच जो श्री दली का · · · · · · सु अप्रन अठे श्री हजुर
माहा सुद १२ क · · · · · · जगडा में वेकु पदारीआ
नो आचारज · · · · · · साकेस वी श्री हजूर की
लार काम आआ · · · · · · · श्री हजूर के लारे
जावागा वेकुट पछे · · · · · · सीकेसरा मनपा
की षात्री राषजो ई मारा चारी · · · · · नप मारा
जीव का चाकर हे ही थासु राज · · · हरामषोर

नी वेगा दुवे नडुर राम्र के ······ ११५७ माहा
सुद १५ दसगत पासवान बेव ········ रकाभं ···
मा माव श्री ········ थुबाई का बेकुटप ···

(यह हमने उक्त रिपोर्ट में से ज्यों का त्यों नकल कर दिया है; किंतु प्लेट से मिलान करने पर देखा जाता है कि जहाँ इस प्रतिलिपि में पंक्तियों का आदि अंत बताया गया है, वहाँ प्लेट में नहीं है। जहाँ बीच में टूटक के संकेत हैं, वहाँ पंक्तियों का अंत है।)

इन पत्रों की भी भाषा वर्तमान मेवाड़ी है। इनकी भाषा का महाराणा कुंभकर्ण के आबू के लेख की भाषा के साथ मिलान करने से स्पष्ट हो जायगा कि उस लेख की भाषा इनसे कितनी पुरानी है, भाषा विषयक और विवेचन ऊपर हो चुका है।

मेवाड़ में यह प्रसिद्ध है कि रावल समरसिंह का विवाह पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई के साथ हुआ था। यदि इस प्रसिद्धि का 'पृथ्वीराजरासे' की कथा के अतिरिक्त कोई आधार हो और उसमें कुछ सत्यता हो; तो उसका समाधान ऐसा मानने से हो सकता है कि चौहान राजा पृथ्वीराज (दूसरे) की, जिसको 'पृथ्वीराजविजय' में पृथ्वीभट कहा है, बहिन का विवाह मेवाड़ के राजा समतसी (सामंतसिंह) के साथ हुआ हो। मेवाड़ की ख्यातों में सामंतसिंह को समतसी और समरसिंह को समरसी लिखा है। समरसी नाम प्रसिद्ध भी रहा, जिससे समतसी के स्थान में समरसी लिख दिया हो। पृथ्वीराज (दूसरे) के शिलालेख वि० सं० १२२४, १२२५ और १२२६ के मिले हैं और समतसी का वि० सं० १२२८ और १२३६ में विद्यमान होना उसके शिलालेखों से ही निश्चित है, तथा वि० सं० १२२८ से कुछ पहले उसका मेवाड़ का राज जालौर के चौहान कीतू ने छीना था। अतएव चौहान पृथ्वीराज (पृथ्वीभट) दूसरे और मेवाड़ के समतसी (सामंतसिंह) का समकालीन होना निश्चित् है। संभव है कि उन दोनों का संबंध भी रहा हो।

रावल समरसिंह के परवाने

'पृथ्वीराजरासे' में मेवाड़ के रावल समरसिंह का विवाह पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई से होना लिखा है। पंड्याजी इस कथन की पुष्टि में रावल समर-

सिंह के दो परवाने प्रसिद्धि में लाए हैं, जिनके संवत् ११३६ और ११४५ को वे अनंद विक्रम संवत् मानकर रावल समरसिंह का सनंद (प्रचलित) वि० सं० १२२६–३० और १२३५–३६ में विद्यमान होना मानते हैं। उक्त परवानों की नक़लें नीचे दी जाती हैं—

(६)

सही

स्वस्ति श्री श्री चीत्रकोट महाराजाधीराज तपेराज श्री श्री रावलजी श्री समरसींजी बचनातु दाअमा आचारज ठाकर रषीकेष कस्य थाने दलीसु डायजे लाया अणी राज में ओपद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थाकी है ओ जनाना में थारा बंसरा टाल ओ दूजो जावेगा नहीं ओर थारी बेठक दली में ही जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण देवेगा ओर थारा बंस क सपूत कपूत वेगा जी ने गाम गोणो अणी राज में षाय्या पाय्या जायगा ओर थारा चाकर घोड़ा को नामो कोठार सूं मला जायेगा और थूं जमाखातरी रीजो मोई में रायथान बादजो अणी परवाना री कोई उलंगण जी ने श्री एकलिंग जी की आण दुबे पंचोली जानकीदास सं० ११३६ काती बीद ३

(७)

सही

श्री श्री चीत्रकाट महाराजधीराज तपेराज श्री रावरजी श्री श्री समरसीजी बचनातु दाअमा आचारज ठाकुर रुसीकेस कस्य गाम मोई रो षेडो थाने मआ कीदो लोग भोग सु दीया आवादान करजो जमाषात्री सो आवांदान करजे थारे हे दुवे घबा मुकना नाथा समत ११४५ जेठ सुद १३

ये दोनों पत्र भी जाली हैं। क्योंकि—

(१) रावल समरसिंह का अनंद वि०सं०११३६या सनंद वि०सं०१२२६-३० या अनंद वि.सं.११४५अर्थात् सनंद वि.सं.१२३५-६में विद्यमानहोना किसी प्रकारसे संभव

नहीं हो सकता। शिलालेखादि से निश्चित है कि समरसिंह का ७ वां पूर्व पुरुष सामंतसिंह वि० सं० १२२८ से १२३६ तक विद्यमान था। वि० सं १२२८ से कुछ पहले जालौर के चौहान कीतू (कीर्तिपाल) ने मेवाड़ का राज्य उससे छीन लिया, जिससे उसने वागड़ (डूँगरपुर–बांसवाड़ा) में जाकर वहाँ पर नया राज्य स्थापित किया। उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने वि० सं० १२३६ के पहले गुजरात के राजा की सहायता से मेवाड़ का राज्य कीतू से छीन लिया और वह वहाँ का राजा बन बैठा। उसके पीछे क्रमशः मथनसिंह और पद्मसिंह मेवाड़ के राजा हुए, जिनके समय का अब तक कोई शिलालेख नहीं मिला। पद्मसिंह का उत्तराधिकारी जैत्रसिंह हुआ, जिसके समय के शिलालेखादि वि० सं० १२७१ से १३०६ तक के और उसके पुत्र तेजसिंह के समय के वि० सं० १३१७ से १३२४ तक के मिलते हैं। तेजसिंह का पुत्र समरसिंह हुआ। उसके समय के वि० सं० १३३०, १३३५, १३४२ और १३४४ के लेख पहले मिल चुके थे। उसका समकालीन जैन विद्वान् जिनप्रभ सूरि अपने 'तीर्थकल्प' में उसका वि० सं० १३५६ में विद्यमान होना बतलाता है और अब चित्तौड़ के किले पर रामपोल दरवाजे के आगे के नीम के दरख्त वाले चबूतरे पर वि० सं० १३५८ माघ शुदि १० का रावल समरसिंह का एक और शिलालेख मिला है (देखो पृष्ठ ५७), जिससे निश्चित है कि वि० सं० १३५८ के अन्त के आसपास तक तो रावल समरसिंह विद्यमान था।

(७) उक्त परवाने में 'सही' के ऊपर भाला बना हुआ है, जो पुरानी शैली से नहीं है। मेवाड़ के राजा विजयसिंह के कदमाल गाँव से मिले हुए संस्कृत दान-पत्र के अन्त में उक्त राजा के हस्ताक्षरों के साथ भाले का चिह्न देखने में आया, जो कटार से अधिक मिलता है। वैसा ही चिह्न डूङ्गरपुर के रावल वीरसिंह के वि० सं० १३४३ के संस्कृत दान–पत्र के अन्त में खुदा है और महाराणा उदयपुर के झंडे पर भी वैसा ही कटार का चिह्न रहता है। महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के वि० सं० १५०५ के दान–पत्र में भाला ताम्रपत्र के ऊपर बना है, जो छोटा है और पिछले पट्टे परवानों के ऊपर होने वाले भाले के चिह्न से उसमें भिन्नता है। ठीक वैसा ही भाला आबू पर के देलवाड़ा के मन्दिर के चौक के बीच के चबूतरे पर खड़े हुए उसी राणा के शिलालेख के ऊपर भी बना है। राणा कुंभकर्ण के समय तक भाला छोटा बनता था, पीछे लम्बा बनने लगा। पहले भाले का चिह्न

महाराणा के हाथ से किया जाता था, ऐसा माना जाता है।[1] महाराणा लाखा (लक्षसिंह) का ज्येष्ठ पुत्र चूंड़ा था, जिसकी सगाई के लिये मंडोर (मारवाड़) से नारियल लेकर राजसेवक आए। महाराणा लाखा ने हँसी में यह कहा कि जवानों के लिये नारियल आते हैं, हमारे जैसे बूढ़ों के लिये नहीं। जब पितृभक्त चूंडा ने यह सुना तो उसको यह अनुमान हुआ कि मेरे पिता की इच्छा नई शादी करने की है। इस पर उसने मंडोरवालों से कहा कि यह नारियल मेरे पिता को दिला दीजिए। इसके उत्तर में उन्होंने यह कहा कि महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र आप विद्यमान हैं, अतएव हमारी बाई के यदि पुत्र हो तो भी वह चित्तौड़ का राजा तो हो नहीं सकता। इस पर चूँडा ने आग्रह कर यही कहा कि मैं लिखित प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस राज्यकन्या से मेरा भाई उत्पन्न हुआ तो चित्तौड़ का स्वामी वही होगा और मैं उसका सेवक होकर रहूँगा। इस पर मारवाड़ की राजकन्या का विवाह महाराणा लाखा के साथ हुआ और उसी से मोकल का जन्म हुआ। अपने पिता के पीछे सत्यव्रत चूँडा ने उसी बालक को मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बिठलाया और सच्ची स्वामिभक्ति के साथ उसने उसके राज्य का उत्तम प्रबन्ध किया। तब से राजकीय लिखावटों पर राजा के किए हुए लेख के समर्थन के लिये भाले का चिह्न चूँडा और उसके वंशज (चूँडावत) करते रहे। पीछे से चूँडावतों ने अपनी ओर का भाला करने का अधिकार 'सही-वालों' को दे दिया जो राजकीय पट्टे परवानों और ताम्रपत्र लिखते हैं।[2] भाले

---

१. "पट्टे परवानों पर पहिले श्रीदर्बार, भाला बनाया करते थे।······अपने [मोकल के] जमाने में पट्टे व पर्वानों पर भाले के निशान बनाने का काम चूँडाजी के सुपुर्द करके खुद दस्तखत करने लगे।" सहीवाला अर्जुनसिंहजी का जीवन चरित्र, पृष्ठ १२।

२. "चूँडाजी की औलाद में से जगावत आमेट रावतजी और साँगावत देवगढ़ रावतजी ने उज्र किया कि सलूम्बर वाले [चूँडावतों के मुखिआ] भाला करते हैं तो हम भी चूँडाजी की औलाद में हैं, इसलिये हमारी निशानी भी पट्टे परवानों पर होनी चाहिए। तब महाराणाजी श्री कर्णसिंहजी [जिनकी गद्दीनशीनी वि० सं० १६७६ माघशुक्ला ५ को हुई थी] ने हुक्म फर्माया कि सलूम्बर व आपकी तरह से एक आदमी मुकर्रर करदो, वह भाला बना दिया करेगा। तब उन्हों ने श्री दर्बार से अर्ज की कि श्री दर्बार जिसको मुनासिब समझें हुक्म बख्शें। श्री जी हुजूर ने मेरे बुजुर्गों के वास्ते फरमाया कि यह मेरी तरफ से

की आकृति में कुछ परिवर्तन महाराणा स्वरूपसिंह ने किया[1] । महाराणा अमर-सिंह (दूसरे) के, जिसने वि० सं० १७५५ तक राज्य किया, समय में शक्तावत शाखा के सर्दारों ने महाराणा से यह निवेदन किया कि चूँडावतों की ओर से सनदों पर भाला होता है, तो हमारी तरफ से भी कोई निशान होना चाहिए। इस पर महाराणा ने आज्ञा दी कि सहीवालों को अपनी तरफ से भी कोई निशान बता दो कि वह भी बना दिया जाया करें। इस पर शक्तावतों ने अंकुश का चिह्न बनाने को कहा। उस दिन से भाले के प्रारम्भ का कुछ अंश छोड़ कर भाले की छड़ से सटा हुआ नीचे की ओर दाहिनी तरफ झुका हुआ अंकुश चिह्न भी होने लगा[2] । ऊपर लिखे हुए रावल समरसिंह के परवाने में भी शक्तावतों का अंकुश का वही चिह्न विद्यमान है, जो महाराणा कुंभकर्ण के ताम्रपत्र और आबू के शिलालेख के भाले में नहीं है। अतएव वह परवाना वि० सं० १७५५ के पीछे का जाली बना हुआ है।

(३) परवाने पर 'सही' लिखा हुआ है। ऊपर कह चुके हैं कि संस्कृत की प्राचीन राजकीय लिखावटों में 'सही' लिखने की प्रथा न थी। वह तो पीछे से मुसलमानों की देखा-देखी राजपूताने में चली। मेवाड़ में 'सही' लिखना कब चला, इस विषय में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता[3], परन्तु महाराणा हंमीर के बाद जब संस्कृत लिखावट बन्द होकर राजकीय सनदें भाषा में लिखी

लिखा करते हैं और मेरे भरोसे के हैं, इनसे कहदो कि आपकी तरफ से भी भाला बनाया करें। उसी दिन से भाला भी मेरे बुजुर्ग करते आये हैं"। (वही, पृष्ठ० १३)

१. वही, पृष्ठ० १३-१४।

२. वही, पृष्ठ० १४।

३. "विक्रमी संवत् १५६६ में महाराणाजी श्री संग्रामसिंहजी (सांगाजी) गद्दीनशीन हुए, इन्होंने ताम्रपत्र, पट्टे तथा पर्वानों पर सही करना शुरु किया और उनको 'सही' मेरे बुजुर्ग कराते, इससे 'सहीवाला' ख़िताब इनायत हुआ, तभी से सहीवाले मशहूर हैं" (वही पृष्ठ १३)। किन्तु हम देख चुके हैं कि महाराणा कुंभा के ताम्रपत्र और शिलालेख (आबू का) दोनों पर 'सही' खुदा हुआ है। महाराणा कुंभा, सांगा के दादा थे, इसलिये सहीवालों का यह कथन प्रामाणिक नहीं।

जाने लगीं, तब किसी समय उसका प्रचार हुआ होगा[1]। सम्भव है कि जब से महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) ने 'हिंदुसुरत्राण' (हिंदुओं के सुल्तान) विरुद धारण किया[2], तब से 'सही' लिखने का प्रचार मेवाड़ में हुआ हो। महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के उपर्युक्त वि० सं० १५०५ के ताम्रपत्र और वि० सं० १५०६ के आबू के प्राचीन मेवाड़ी भाषा के शिलालेख में 'सही' खुदा हुआ है।

(४) महाराणा हंमीर तक मेवाड़ की राजकीय लिखावट संस्कृत में लिखी जाती थी। अतएव रावल समरसिंह के समय मेवाड़ी भाषा की लिखावट का होना संभव नहीं।

(५) भाषा, लिपि आदि के विषय में पृथ्वीराज के पट्टों पर विचार करते समय इन पर भी ऊपर विचार किया जा चुका है।

(६) अब इन पट्टों की मेवाड़ी भाषा और लिपि का इनसे लगभग २५० वर्ष पीछे की मेवाड़ी भाषा और लिपि के लेख से कितना अन्तर है, यह दिखाने के लिये महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के आबू के वि० सं० १५०६ के लिखालेख की नकल यहाँ दी जाती है। यदि समरसी के समय में वैसी भाषा मानी जाय, तो राणा कुंभा को समरसी से तीन सौ वर्ष पूर्व का मानना पड़ेगा; क्योंकि इस लेख की भाषा उन पट्टों की भाषा से बहुत पुरानी है और उसमें कोई फ़ारसी शब्द नहीं है। केवल 'सुरिहि' फ़ारसी 'शरह' का तद्भव माना जा सकता है, जैसा कि टिप्पणी में

---

१. "पहिले लिखावट बिलकुल संस्कृत में होती थी, लेकिन सं० १३५९ में रावल श्री रत्नसिंहजी के जमाने में पद्मनी की बाबत दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का मुहासरा किया और चित्तौड़ पर बादशाही कब्ज़ह होगया, इस गर्दिश परेशानी के जमाने में लिखावट में भाषा के शब्द मिलने लगे और फिर महाराणाजी श्री हंमीरसिंहजी के चित्तौड़ वापस ले लेने के बाद से महाराणा श्रीरायमल्लजी के अखीर वक्त तक लिखावट में बहुत भाषा मिल गई, लेकिन ढंग अब तक संस्कृत का ही चला आता है"। (वही, पृ० १४)।

हमीर का दान-पत्र संस्कृत में है और कुंभा का दान-पत्र पुरानी मेवाड़ी में है, जैसे कि उसका आबू का लेख।

२. प्रबलपराक्रमाक्रांतडिल्लीमंडलगुजरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राण विरुदस्य……
(सं० १४९६ राणपुर के जैन मंदिर का शिलालेख, भावनगर इंस्क्रिपशंस, पृ० ११४)।

बतलाया है। इस लेख की भाषा सं० १५०६ की मेवाड़ी निर्विवाद है तो समरसी के इन पट्टों की भाषा कभी उससे पुरानी नहीं हो सकती। इस शिलालेख का फोटो भी दिया जाता है'।

श्री गणेशाय: ॥ सही ॥
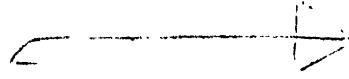
॥ संवत १५०६ वर्षे आषाढ़ सुदि २
महाराणा श्री कुंभकर्ण विजय-
राज्ये श्री अबुंदाचले देलवाड़ा ग्रामे विमे-
लवसही श्री आदिनाथ तेजलवसही श्री नेमिनाथ

---

१. यहाँ टिप्पणियों के लिये अधिक अंक न लगाकर इस लेख पर जो वक्तव्य है, वह एक ही टिप्पणी में दे दिया जाता है।

विमलवसी-वसही (प्राकृत) वसहीका (प्राकृत से बना संस्कृत) वसति (संस्कृत) मंदिर, बिमलशाह का स्थापित किया हुआ(बसाया हुआ)श्री आदिनाथ का मंदिर। **तेजलवसही** प्रसिद्ध मन्त्री वस्तुपाल के भाई तेजपाल की स्थापित श्री नेमिनाथ की वसहिका। **बीजे**-दूसरे। **श्रावक**-जैन धर्मानुयायी संघ के चार अंग हैं, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका। श्रावक-धर्म को सुनने वाले (साधुओं के उपदेश के अनुयायी) अर्थात् गृहस्थ। इसीसे 'सरावगी' शब्द निकला है। **देहर**-देवगृह; देवकुल, देवल,मंदिर। **बीजे श्रावके देहरे**-अन्यान्य जैन मन्दिरों में (अधिकरण की विभक्ति विशेषण तथा विशेष्य दोनों में है।) **दाण**-संस्कृत दण्ड,राजकीयकर; दण्ड या दाण जुर्माने के लिये भी आता है और राहदारी, जगात आदि के लिये भी। **मुंडिक**— मूंडकी, प्रतियात्री या प्रतिमुंड पर कर। **वलावी**-मार्ग में रक्षा के लिये साथ के सिपाही का कर। **रखवाली**-चौकीदारी का कर। गोडा-घोड़ा। **पोठ्या**-पृष्ठ्य (संस्कृत) पीठ पर भार लादने वाले बैल। **रूं**-का। **राणि कुंभकर्णि इ**-तृतीया विभक्ति का चिह्न है, राणा कुंभकर्ण ने, हिन्दी 'मैं'=मइं(स० मया) भी तृतीया विभक्ति है। उसके आगे फिर 'ने' लगाकर 'मैंने' यह दुहरा विभक्ति चिह्न भूल से चल पड़ा है। **महं**-महत्तम, महत्तम, उच्चराज्याधिकारी या मन्त्री। मिलाओ, महता या महत्तर। **जोग्यं** योग्य, डूंगर भोजा नामक अधिकारी के कहने से उस पर कृपा या उपकार करके। **जिको**-जो। **तिहिरू**-उसका। **मुकावुं**-छुड़ाया (पंजाबी मुक-समाप्त करना, गुजराती- मूक=छोड़ना, भेजना या रखना)। **पले**-पालित हो, पाला जाय।

तथा बीजे श्रावके देहरे दाण मुंडिकं वलावी रखवाली
गोडा पोठ्यारुं राणि श्री कुम्भकर्णि महं डूंगर भोजा जो
ग्यंमया उधारा जिको ज्यात्रि आवि तिहिरुं सर्वमु-
कावुं ज्यात्रा संमंधि आच्यंद्रार्क लगि पले कुई कोई
मांगवा न लहि राणि श्री कुम्भकर्णि म० डूंगर भो
जा ऊपरि मया उधारी यात्रा मुगती कीधी आ
घाट थापु सुरिहि रोपावी जिको आ विधि लो
पिसि ति इहि सुरिहि भांगीरुं पाप लागिसि
अनि संह जिको जात्रि अविसई स फदयु ं१ एक देव

मांगवा न लहि–मांग न सके। **ऊपरि**–ऊपर जोग्यं की व्याख्या देखो। **मयाउधारा**–मया धारण करके, 'दया मया कर' के कृपा करके। **मुगति**–मुक्ति, छूट। **कीधी**–की, कृता। **थापु**–थापा, स्थापित किया। **आघाट**–नियम। **सुरिहि**–फारसी–शरह १, नियम का लेख (देखो पत्रिका, अंक ६, पृ० २५३–४)। **रोपावी**–रोपी, खड़ी की (संस्कृत, रोपिता, प्राकृत–संस्कृत, रोपापिता)। **आ विधि**–यह विधि (कर्मकारक)। **लोपसि**–(मारवाड़ी लोपसी, सं० लोपयिष्यति) लोपेगा, नष्ट करेगा। **ति**-(कर्मकारक) उसे। **भांगीरुं**–तोड़ने का। **लागिसि**–लगेगा **अनि**–और (सं० अन्यत्)। **संह**–संघ, यात्रियों का समूह। **अविसइं**–आवेगा, संस्कृत सम आविष्यति (!) **स**–वह। **फदयु** ं(संस्कृत पदिक) फदैया, दो आने के लगभग मूल्य का चाँदी का सिक्का। **अचलेश्वरि भंडारि, संनिधानि,** अधिकरण कारक। **दुगाड़ी** (सं० द्विकाकिणी), एक पदिक में पाँच, (रुपये के ४०) एक तांबे का सिक्का। **मुकिस्यइं**–देवेगा, (मिलाओ **मुकावुं, अविसइ**)। **दुए**–दूतक। शिलालेख और ताम्रपत्रों में जिस अधिकारी के द्वारा राजाज्ञा दी हो उसका नाम दूतकोऽत्र कह कर लिखा जाता था। उसी का अपभ्रंश **दुए, दुवे या प्रत** पीछे के लेखों, पट्टों आदि में आता है। ऊपर के जाली पट्टों में भी दुबे' आया है। इस लेख के दुए या दूतक स्वयं राणा कुंभा ही हैं। **दोसी रामण** इस लेख का लेखक होगा।

इस लेख के अन्त में पत्थर पर स्थान खाली रहने से सं० १५०६ में किसी दूसरे ने सवा दो पंक्ति लिख कर जोड़ दी है। उस लेख का इससे कोई सम्बन्ध न होने से हमने उसे यहाँ उद्धृत नहीं किया।

श्री अचलेश्वरि अन दुर्गाणि ४ च्या देवि श्री विशिष्ट
भंडार मुकिस्यइं । अचलगढ़ ऊपरि देवी ॥
श्री सरस्वती सन्निधानि बइठां लिखितं । दुए ॥
श्री स्वयं ॥ श्री रामप्रसादात् ॥ शुभंभवतु ॥
दोमी रामण नित्यं प्रणमति ॥

उपसंहार

इस सारे लेख का निष्कर्ष यही है कि पृथ्वीराज रासे में कोई ऐसा उल्लेख नहीं है, जिससे किसी नए सम्वत् या विक्रम सम्वत् को "अनन्द" रूपान्तर का होना संभव माना जाय। अनंद विक्रम सम्वत नाम का कोई संवत कभी प्रचलित नहीं था। रासे के संवत् तथा भाटों की ख्यातों के संवत् अशुद्ध भले ही हों, किंतु हैं सब प्रचलित विक्रम संवत् ही। रासे के अशुद्ध संवतों तथा मनमानो ऐतिहासिक कल्पना को सत्य ठहराने की खींचतान में जब भटायत संवत् से काम न निकला, तब पंड्याजी ने इस अनंद विक्रम सम्वत् की सृष्टि की। जिन दूसरे विद्वानों ने इसे स्वीकार कर अपने नाम का महत्त्व इसे दिया है, उन्होंने स्वयं कभी इसकी जाँच न की, केवल गतानुगतिक न्याय से पंड्याजी का कथन मान लिया। इस सम्वत् की कल्पना से भी रासे या भाटों की ख्यातों के संवत् जाँच की कसौटी पर शुद्ध नहीं उतरते। जिन जिन घटनाओं के संवत् दूसरे ऐतिहासिक प्रमाणों से जाँचे गए हैं, उन सबमें यही पाया गया कि संवत् अशुद्ध और मन माने हैं, किसी 'अनंद' या दूसरे संवत्सर के नहीं। रासे की घटनाओं और इस कल्पित संवत् की पुष्टि में जो पट्टे-परवाने लाए गए वे भी सिखाए हुए गवाह की तरह उलटा मामला बिगाड़ गए।

पृथ्वीराज रासे में एक दोहा यह भी है—

एकादस सै पंचदह, विक्रम जिम ध्रम सुत्त।
त्रितिय साक प्रथिराज को, लिख्यो विप्र गुन गुत्त (प्त) ॥

इसका अर्थ यह दिया गया है कि जैसे युधिष्ठिर के १११५ वर्ष पीछे विक्रम का संवत चला, वैसे विक्रम से १११५ वर्ष पीछे कवि ने गुप्त रीति से पृथ्वीराज का तीसरा शक लिखा। यदि इस दोहे का यही अर्थ माना जाय तो जिस कवि को यह ज्ञान हो कि युधिष्ठिर और विक्रम संवत् का अन्तर १११५ वर्ष है, वह जो

न कहे सो थोड़ा है। युधिष्ठिर संवत् तो प्रत्येक वर्ष के पञ्चाङ्ग में लिखा रहता है और साधारण से साधारण ज्योतिषी भी उसे जानता है। यही दोहा सिद्ध किए देता है कि जैसे युधिष्ठिर और विक्रम के बीच १११५ वर्ष कल्पित हैं, वैसे ही पृथ्वीराज का जन्म १११५ में होना भी कल्पित है।

भाटों की ख्यातें विक्रम संवत् की १५ वीं शताब्दी के पूर्व की घटनाओं और संवतों के लिये किसी महत्त्व की नहीं है। मुसलमानों के यहाँ इतिहास लिखने का नियमित प्रचार था; चाहे वे हिंदुओं की पराजय और अपनी विजय का वर्णन कितने ही पक्षपात से लिखते थे; किन्तु संवत् और मुख्य घटनाएँ वे प्रामाणिक रीति पर लिखते थे। जब दिल्ली में मुगल दरबार में हिन्दू राजाओं का जमघट होने लगा, तब उनके इतिहास की भी पूछ हुई। मुसलमान तवारीख नवीसों को देख कर, उन्होंने भी लिखा इतिहास चाहा और भाटों ने मनमाना इतिहास गढ़ना आरम्भ कर अपने स्वामियों को रिझाना आरम्भ किया। 'पृथ्वीराजरासे' की सब घटनाओं के मूल में एक बड़ी भारी कल्पना है कि जैसे दिल्ली के मुगलिया दरबार में सब प्रधान राजा अधीनरूप से संमिलित थे, वैसे ही पृथ्वीराज का कल्पित दिल्ली दरबार गढ़ागया है, जिसमें प्रधान राजवंशों के कल्पित प्रतिनिधि, चाहे वे समरसी और पज्जून आदि मित्र संबंधी रूप से हों और चाहे जयचन्द आदि शत्रु रूप से हों, खड़े करके वर्णन किए गए। पीछे इतिहास के अंधकार में यही 'रासा' सब राजस्थानों की ख्यातों का उपजीव्य होगया।

'पृथ्वीराजरासे' की क्या भाषा, क्या ऐतिहासिक घटनाएँ और क्या संवत्, जिस-जिस बात की जाँच की जाती है, उसी से यह सिद्ध होता है कि वह पुस्तक वर्तमान रूप में न पृथ्वीराज की समकालीन है और न चंद जैसे समकालीन कवि की कृति है।

ना० प्र० प० (त्रै०, न० सं०), काशी,
भाग १, सं० १६७७, ई० सं० १६२०।
पृ० ३७७-४५४

सं० टि०—इस लेख में मूल में या टिप्पण में 'देखो ऊपर पृ०.......' छपा है, उसका अभिप्राय उपर्युक्त ना० प्र० पत्रिका से है।

पृथ्वीराज-रासो का निर्माण-काल

पृथ्वीराज-रासो राजस्थानीय हिन्दी भाषा का वीररसात्मक बृहत् काव्य है। राजपूताने में उसका बड़ा आदर है। पहले वही ग्रन्थ इतिहास का खजाना समझा जाता था; परन्तु आधुनिक विद्वान् शोधक उसकी असलियत में सन्देह करने लगे हैं। उसका रचयिता चन्द बरदाई उक्त ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वीराज का राजकवि था। यदि वास्तव में वह ग्रन्थ पृथ्वीराज के समय में बना होता, तो उसमें लिखी हुई पृथ्वीराज के सम्बन्ध की सब घटनाएँ शुद्ध होतीं; परन्तु प्राचीन शोध की कसौटी पर उनमें से अधिकांश ठीक नहीं उतरतीं। राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कर्नल टॉड ने उस ग्रन्थ से बहुत सी बातें अपने 'राजस्थान' में उद्धृत की हैं और उसकी कविता पर मुग्ध होकर उसने उसके तीस हजार छन्दों का अँगरेजी अनुवाद भी किया था[1]। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने उसे ऐतिहासिक ग्रन्थ समझ कर उसका कुछ अंश अपनी ग्रन्थमाला में प्रकाशित भी किया था।

ई० सन् १८७५ में प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डाक्टर बूलर को कश्मीर में संस्कृत-ग्रन्थों की खोज करते समय [जयानक कवि-रचित] 'पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य' की भोजपत्र पर लिखी हुई एक प्राचीन अपूर्ण प्रति मिली, जिस पर द्वितीय राजतरंगिणी के कर्त्ता जोनराज की टीका भी है। इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् उक्त डाक्टर ने एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को निम्नलिखित आशय का पत्र लिखा—

---

१. मेरा लिखा हुआ कर्नल जेम्स टॉड का जीवन चरित्र, (खड्गविलास प्रेस; बाँकीपुर, (पटना) से प्रकाशित 'हिन्दी टॉड राजस्थान', प्रथम खण्ड में) पृ० ३२।

"पृथ्वीराज विजय का कर्त्ता निःसंदेह पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था। वह सम्भवतः कश्मीरी था और एक अच्छा कवि तथा पंडित था। उसका लिखा हुआ चौहानों का वृत्तांत चंद के लिखे हुए विवरण के विरुद्ध है और वि० सं० १०३० तथा वि० सं० १२२६ के शिलालेखों से मिल जाता है। 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' में पृथ्वीराज को जो वंशावली दी हुई है, वही उक्त लेखों में भी मिलती है और उसमें लिखी हुई घटनाएँ दूसरे साधनों अर्थात् मालवे और गुजरात के शिलालेखों से मिल जाती हैं। उक्त पुस्तक में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के संबंध में लिखा है—उसका पिता अर्णोराज और उसकी माता गुजरात के सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह की पुत्री कांचनदेवी थी। अर्णोराज की पहली रानी सुधवा से, जो मारवाड़ की राजकन्या थी, दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से बड़े का नाम किसी ग्रन्थ या शिलालेख में लिखा नहीं मिलता और छोटे का विग्रहराज (वीसलदेव) था।

"ज्येष्ठ पुत्र ने, जिसका नाम किसी ग्रन्थ या शिलालेख में नहीं दिया है, अपने पिता को मार डाला। इस विषय में कवि लिखता है—'उसने अपने पिता की वैसी ही सेवा की, जैसी परशुराम ने अपनी माता की की और अपने पीछे दीपक की बत्ती के समान दुर्गंध छोड़ गया।' अर्णोराज के बाद उसका पुत्र विग्रहराज और उसके अनंतर उसका पुत्र अपरगांगेय (अमरगंगू) राजा हुआ। फिर उक्त पितृघाता के पुत्र पृथ्वीभट या पृथ्वीराज (दूसरे) को गद्दी मिली। पृथ्वीराज के पीछे मंत्रियों ने सोमेश्वर को राज्य-सिंहासन पर बिठाया, जिसने तब तक सारा समय विदेश में बिताया था और अपने नाना जयसिंह से शिक्षा पाई थी। सोमेश्वर ने चेदि (जबलपुर जिला) की राजधानी त्रिपुर में जाकर चेदिराज की कन्या कर्पूरदेवी से विवाह किया, जिससे उक्त काव्य के चरित्र-नायक पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए। अजमेर की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही समय पीछे सोमेश्वर का देहान्त हो गया और अपने पुत्र पृथ्वीराज की नाबालिगी में अपने मन्त्री कादंबवास (कादंबवास) की सहायता से कर्पूरदेवी राजकाज चलाने लगी।

"उक्त काव्य में कहीं इस बात का नामनिशान तक नहीं है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनंगपाल की कन्या से उत्पन्न हुआ था और उसे अनंगपाल ने गोद लिया था। यह आश्चर्य की बात है कि पुराने मुसलमान इतिहास लेखकों ने

भी यह कहीं नहीं लिखा कि पृथ्वीराज दिल्ली में राज्य करता था। वे उसे अजमेर का राजा बतलाते हैं; उनका कहना है कि वह राजद्रोह के कारण विजेताओं (मुसलमानों) के हाथ से, जिन्होंने उसे उसके राज्य में कुछ अधिकार दे रखे थे, अजमेर में मारा गया।

"मुझे इस काल के इतिहास के संशोधन की बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है और मैं समझता हूँ कि चन्द के रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया जाय, तो अच्छा होगा। वह ग्रन्थ जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया था। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के वंदीराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था न कि चन्द बरदाई।"[१]

यह तो प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर बूलर का मत है। हिन्दी भाषा के इतिहास-लेखक मिश्र-बन्धुओं ने अपनी 'हिंदी नवरत्न' नामक पुस्तक में चंदबरदाई का जन्म संवत् ११८३ और मृत्यु संवत् ११५० बतलाया है[२]। और लिखा है—"रासो जाली नहीं है। पृथ्वीराज के समय में ही चन्द ने इसे बनाया था। इसके अकृत्रिम होने का एक यह भी कारण समझ पड़ता है कि यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी के आदि में इसे बनाता, तो वह स्वयं अपना नाम न लिखकर ऐसा भारी (२५०० पृष्ठों का) बढ़िया महाकाव्य चन्द को क्यों समर्पित कर देता।"[३]

बाबू श्यामसुन्दरदास तथा पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल पृथ्वीराज रासो की घटनाओं तथा संवतों को अशुद्ध स्वीकार करते हुए उसके कर्त्ता का समय १२२५ और १२४८ के बीच में मानते हैं[४] और 'पृथ्वीराज-विजय' में जिन-जिन घटनाओं तथा नामों का उल्लेख है, उन्हें ठीक समझते हैं।[५]

---

१. यह पत्र एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की प्रोसीडिंग्ज़ संख्या ४ और ५ (अप्रेल और मई) सन् १८९३ पृ० ६४-६५ में प्रकाशित हुआ है।

२. हिन्दी नवरत्न; तृतीय संस्करण; पृष्ठ ५५।

३. वहीं; पृष्ठ ५९।

४. नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ६, पृष्ठ २८।

५. वही; पृष्ठ ३२।

यदि 'पृथ्वीराज-विजय' और 'पृथ्वीराजरासो' दोनों ग्रन्थ पृथ्वीराज के समय में लिखे गए होते, तो एक ग्रन्थ में पृथ्वीराज की वंशोत्पत्ति, उसके पूर्व-पुरुषों की नामावली, उसके माता पिता, भाई, बहिन तथा रानियों के नाम और युद्धों आदि के जो वर्णन दिए हुए हैं, वे ही दूसरे में भी होते; परन्तु पृथ्वीराजरासो की मुख्य-मुख्य बातें पृथ्वीराज-विजय से बहुधा भिन्न हैं और विजय के कथन तो शिलालेख आदि से मिलते हैं, पर रासो के नहीं। ऐसी दशा में दोनों ग्रंथों का निर्माण-काल पृथ्वीराज के समय में मानना किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं।

अब हम पृथ्वीराज रासो का समय निर्णय करने के लिये उसमें दी हुई मुख्य मुख्य घटनाओं की जांच करते हैं—

पृथ्वीराज रासो और अग्निवंशी क्षत्रिय

पृथ्वीराज रासो में लिखा है—"आबू पर्वत पर एक बार ऋषि लोग यज्ञ करने लगे तो राक्षसों का समूह यज्ञ-विध्वंस की चेष्टा करने लगा। इस महाउपद्रव से अत्यन्त दुःखी हो सब ऋषियों ने वशिष्ठ के पास जाकर अपना समस्त दुःख निवेदन किया। तब वशिष्ठ ने स्वयं अग्निकुंड के पास आकर उसमें से पड़िहार, चालुक्य और परमार ये तीन क्षत्रिय उत्पन्न किए और उन्हें राक्षसों को मारने के लिये आज्ञा दी; किंतु जब यथासाध्य चेष्टा करने पर भी इन तीनों क्षत्रियों द्वारा अपेक्षित कार्य का संतोषप्रद साधन न हो सका, तब वशिष्ठ स्वयं एक नवीन यज्ञकुंड की रचना कर श्री चतुरानन ब्रह्मा का ध्यान करते हुए आहुति देने लगे, जिससे तुरंत ही चार बाहु वाला एक दीर्घकाय महान् तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ।..............वेदी से निकले हुए उस पुरुष को देख कर वशिष्ठ ने उसे चहुवान नाम से संबोधन किया"।[1]

इस समय उक्त चारों क्षत्रियों के वंशज अपने को अग्निवंशीय मानते हैं, पर उनमें से केवल परमार की उत्पत्ति के संबंध में परमारों के शिलालेखों[2] तथा उनके

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराजरासो, आदि पर्व; पृथ्वीराजरासो सार पहिला समय, पृष्ठ ७—८।

२. अस्त्युच्चैर्गगनावलंबिशिखरः क्षोणीभृदस्यां भुवि—
ख्यातो मेरुमुखोच्छ्रितादिषु परां कोटिं गतोप्यर्बुदः (बुंदः)
....[२] ॥

ऐतिहासिक ग्रन्थों[1] में लिखा है—'एक बार विश्वामित्र' आबू पर्वत पर रहने वाले वशिष्ठ ऋषि की गाय नंदिनी को हर ले गए। इस पर वशिष्ठ ने क्रुद्ध होकर अपने

तस्मिंस्त्यक्तभवश्चरित्रविभवस्तथ्यं तपो तप्यत
ब्रह्मज्ञाननिधिर्गुणैर्निरवधिः श्रेष्ठो वशिष्ठो मुनिः।
......[४]॥

मुनेस्तस्यांतिके रेजे निर्मला दव्यरुंधती।
स्थिरवश्ये द्रियग्रामा तपः श्रीरिव जंगमा॥ [५]॥

अनन्यसुलभा धेनुः कामपूर्वास्य सन्निधौ।
ददती वांछितान्कामांस्तपः सिद्धिरिव स्थिता॥ [६]॥

ततः क्षत्रमदोद्वृत्तो गाधिराजसुतश्छलात्।
धेनुः जहे स्य दुष्प्रायां छिन्नं सिद्धिमिवोद्यतां॥ [७]॥

अथ पराभवसंभवमन्युना ज्वलनचंडरुचा मुनिनामुना।
रिपुवधं प्रतिवीरविधित्सया हुतभुजि स्फुटमंत्रयुतं हुतं॥ [८]॥

पृष्ठे तूणीरयुग्मं दधदथ च करे चंडकोदण्डदण्डं।
बध्नन्जूटं जटानामतिनिबिडतरं पाणिना दक्षिणेन॥
क्रुद्धो यज्ञोपवीती निजविषमदृशा भापयञ्जीवलोकं।
तस्मादुद्दामधामा प्रतिबलदलनो निर्गतः कोपि वीरः॥ [९]॥

आदिष्टस्तेन यातो रणममरगणैर्मंगलं गीयमाने।
बाढं व्याप्तान्तरालैर्दिनकरकिरणच्छादकैर्व्योमबाणैः॥
हत्वा भंगं रिपूणां प्रबलभुजबलः कामधेनुं गृहीत्वा।
भक्त्या तस्यांह्रिपद्मद्वयलुलितशिराः सोवतस्थौ पुरस्तात्॥ [१०]॥

आनतस्य जयिनः परितुष्टो वांछिताशिषमसौवभिधाय।
तस्य नाम परमार इतीत्य तथ्यमेव मुनिराशु (शु) चकार॥ [११]॥

बांसवाड़ा राज्य के अर्थुणा ग्राम के मंडलीश्वर महादेव के मन्दिर में लगा हुआ परमार वंश के राजा मंडनदेव के समय का वि० सं० ११३६ का शिलालेख।

इस प्रकार की उत्पत्ति अन्य शिलालेखों में भी मिलती है।

१. ब्रह्माण्डमण्डपस्तम्भः श्रीमानस्त्यर्बुदो गिरिः॥......॥ ४६॥

अतिस्वाधीननीवारफलमूलसमित्कुशम्।

अग्नि कुण्ड में आहुति दी, जिससे उस कुंड में से एक वीर पुरुष प्रकट हुआ, जो शत्रु से लड़कर गाय छीन लाया। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर ऋषि ने उसका नाम 'परमार' अर्थात् शत्रु को मारने वाला रखा। पृथ्वीराजरासो का परमारों की उत्पत्ति का कथन ऊपर उद्धृत किए हुए उन्हींके शिलालेखों और पुस्तकों से भी नहीं मिलता।

प्रतिहार, चालुक्य (सोलंकी) और चौहानों के १६ वीं शताब्दी के पूर्व के शिलालेखों और पुस्तकों में भी कहीं अग्निवंश या वशिष्ठ के यज्ञ के संबंध की कोई बात नहीं मिलती[१]। उनसे उनका वंश-परिचय नीचे लिखे अनुसार मिलता है।

प्रतिहार उत्पत्ति — ग्वालियर से वि० सं० ६०० (ई० स० ८४३) के आसपास की प्रतिहार वंश की राजा भोजदेव का एक बड़ी प्रशस्ति मिली है। उसमें प्रतिहार सूर्यवंशीय बतलाए गए हैं[१]। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर, जिसने वि० सं० की दसवीं शताब्दी में कई नाटक रचे, अपने नाट-

---

मुनिस्तपोवनं चक्रे तत्रेक्ष्वाकुपुरोहितः ॥ ६४ ॥
हृता तस्यैकदा धेनुः काममूर्गाधिसूनुना ।
कार्तवीर्यार्जुनेनेव जमदग्नेरनीयत ॥ ६५ ॥
स्थूलाश्रुधारसन्तानस्नपितस्तनवल्कला ।
अमर्षपावकस्याभूद्भर्तुः स्समिदरुन्धती ॥ ६६ ॥
अथाथर्वविदामाद्यस्समंत्रामाहुतिं ददौ ।
विकसद्विकटज्वालाजटिले जातवेदसि ॥ ६७ ॥
ततः क्षणात् सकोदण्डः किरीटी काञ्चनाङ्गदः ।
उज्जगामाग्नितः कोऽपि सहेमकवचः पुमान् ॥ ६८ ॥
दूरं संतमसेनेव विश्वामित्रेण सा हृता ।
तेनानिन्ये मुनेर्धेनुर्दिनश्रीरिव भानुना ॥ ६९ ॥
परमार इति प्रापत् स मुनेर्नाम चार्थवत् ... ॥ ७० ॥

पद्मगुप्त (परिमल) रचित 'नवसाहसाङ्कचरित', सर्ग ११।

१ मन्विक्ष्वाकुककुत्स्थ (त्स्थ) मूलपृथवः क्ष्मापालकल्पद्रुमाः ॥ २ ॥
तेषां वंशे सुजन्मा क्रमनिहितपदे धाम्नि वज्रेषु घोरं ।

कों में उक्त भोजदेव के पुत्र महेंद्रपाल को, जो उसका शिष्य था, रघुकुल तिलक[1] और उसके पुत्र महीपाल को 'रघुवंशमुक्तामणि' लिखता है। शेखावाटी के प्रसिद्ध हर्षनाथ के मंदिर की चौहान राजा विग्रहराज की वि० सं० १०३० की प्रशस्ति से भी कन्नौज के प्रतिहारों का रघुवंशी होना ज्ञात होता है[2] इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिहार पहले अपने को अग्निवंशीय नहीं; किंतु सूर्यवंशीय(रघुवंशी) मानते थे।

चालुक्यवंश की

चालुक्य (सोलंकी) राजा विमलादित्य के ८ वें राज्यवर्ष अर्थात् वि० सं० १०७४ (ई० स० १०१८) के दानपत्र में सोलंकियों को चंद्रवंशी उत्पत्ति लिखा है। इसके सिवा उसमें ब्रह्मा से अत्रि, अत्रिसे सोम, सोम से लगा कर विचित्रवीर्य तथा उसके पुत्र पांडुराज तक की पूरी नामावली, पांडु के पाँचों पुत्रों युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, आदि के नाम और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से लगाकर विमलादित्य तक की वंशावली भी दी हुई[3]। इससे स्पष्ट है कि उक्त संवत् में सोलंकी अपने को चंद्रवंशांतर्गत पांडवों के वंशज मानते थे।

रामः पौलस्त्यहिंस्रं क्षतविहितसमित्कर्म्म चक्रे पलाशैः।
श्लाघ्यस्तस्यानुजोऽसौ मघवमदमुषो मेघनादस्य संख्ये।
सौमित्रिस्तीव्रदण्डः प्रतिहरणविधेर्यः प्रतीहार आसीत्॥ ३ ॥
तद्वंशे प्रतिहारकेतनभृति त्रैलोक्यरक्षास्पदे।
देवो नागभटः पुरातनमुनेर्मूर्तिर्बभूवाद्भुतम्। ······॥ ४ ॥
आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इन्डिया: वार्षिक रिपोर्ट, ई० सन १९०३-४, पृ० २८०।

१. रघुकुलतिलको महेंद्रपालः (विद्धशालभंजिका)।
देवो यस्य महेंद्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः।
बालभारत: १। ११।
तेन (महीपालदेवेन) च रघुवंशमुक्तामणिना।
बाल भारत।

२. इन्डियन् एंटिक्वेरी: जिल्द ४२, पृ० ५८-५९।

३. श्रीधाम्नः पुरुषोत्तमस्य महतो नारायणस्य प्रभो-
र्नाभीपंकरुहाद् बभूव जगतस्स्रष्टा स्वयं भूस्ततः [।]

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव (दूसरे) के सामंत बुद्धराज के शक संवत १०६३ (वि०सं० १२२८ के दानपत्र) में कुलोत्तुंग चोड़देव के प्रसिद्ध पूर्वज कुब्ज विष्णु[1] को 'चंद्रवंश-तिलक' कहा है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र ने, जो गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज, वि० सं० ११५०–११६६) तथा उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल (वि०सं० ११६६–१२३०) से सम्मानित हुआ था, अपने द्वयाश्रय महाकाव्य' के ६ वें सर्ग में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के दूत और चेदि देश के राजा कर्ण के वार्तालाप का सविस्तर वर्णन किया है। उसका सारांश यह है—

"दूत ने राजा कर्ण से पूछा कि भीम आपसे यह जानना चाहते हैं कि आप उनके मित्र हैं या शत्रु। इसके उत्तर में कर्ण ने कहा कि कभी निर्मूल न होने वाला सोम (चंद्र) वंश विजयी है। इसी वंश में जन्म लेकर पुरूरवा ने पृथ्वी का पालन किया। इन्द्र के अभाव में डरे हुए स्वर्ग का रक्षण करने वाला मूर्तिमान् क्षात्रधर्म नहुष इसी कुल में उत्पन्न हुआ। इसी वंश के राजा भरत ने निरंतर

जज्ञे मानसमूनुरत्रिरिति यस्तस्मान्मुनेरत्रित-

स्सोमो वंश [क] रस्सुधांशुरुदित [:] श्रीकंठचूडामणिः ॥ १ ॥

तस्मादासीत्सु[धा]सूतेर्बु[धो]बु[ध]नुतस्ततः । [।]

ज[ा]तः पुरु(रू)रवानाम चक्रव [र्ती स] विक्रमः । [२]

ततोऽर्जुनादभिमन्युरभिमन्योः परिक्षि[त परिक्षि]तो जनमेजयः जनमेजया-

त्क्षेमुकः क्षेमुकान्नरवाहनः नरवा[हन] ा [च्छ]तानीकः शतानीकादुदयनः

..............।तस्यैव दाननृपतेस्साध्व्याश्चार्य्य [ा] महादेव्याः [।]

सूनुर्विमलादित्यस्सत्याश्रयवंशवर्द्धनो देवः [१२]

अनलानलरंध्रगते शकवर्षे वृषभमासि सितपक्षे ।

षष्ठ्यां गुरुपुष्ये सिंह लग्ने प्रसिद्धमभिषिक्तः । [१३]

एपिग्राफिआ इन्डिका; जिल्द ६ पृ० ३५१–५८ ।

१. ओं [॥] अस्ति श्रीस्तनकुंकुमांकितविराज [व्यू]ढ वक्षस्थलो

देवश्शीतमयूखवंशशातिलक [:] श्री [कु]ब्जविष्णुर्नृपः ।...१

वही; जिल्द ६, पृ० २६६ ।

संग्राम करने और अनीति के मार्ग पर चलने वाले दैत्यों का संहार कर अतुल यश प्राप्त किया। इसी कुल में जन्म लेकर धर्मराज युधिष्ठिर ने उद्धृत शत्रुओं का नाश किया। जनमेजय तथा अन्य अक्षय यश वाले तेजस्वी राजा इसी वंश में हुए और इन सब पूर्ववर्ती राजाओं की समानता करने वाला भीम (भीमदेव) इस समय विजयी है। सत्पुरुषों में परस्पर मैत्री होना स्वाभाविक है, अतएव हमारी मैत्री के विरुद्ध कौन क्या कह सकता है"।[1]

ऊपर उद्धृत किए हुए प्रमाणों से निश्चित है कि पृथ्वीराज के समय तथा उससे पूर्व भी सोलंकी अपने को अग्निवंशी नहीं, किन्तु चंद्रवंशी और पांडवों की संतान मानते थे[2]।

चौहान वंश की उत्पत्ति

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का बड़ा भाई विग्रहराज (वीसलदेव चतुर्थ) बड़ा विद्वान राजा था। उसने अजमेर में अपनी बनवाई हुई संस्कृत पाठशाला (सरस्वती मंदिर) में अपना बनाया हुआ 'हरकेलि नाटक', अपने राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज' नामक नाटक तथा चौहानों के इतिहास का एक काव्य शिलाओं पर खुदवाए। मुसलमानों ने उस मंदिर को तोड़कर वहाँ पर 'ढाई दिन का झोंपड़ा' नाम की मसजिद बनवाई। वहीं से उक्त काव्य की प्रथम शिला मिली है, जिसमें चौहानों को सूर्यवंशी कहा है।

---

१. द्व्याश्रय महाकाव्य; सर्ग ६, श्लोक ५०-५६ (सोलंकियों का प्राचीन इतिहास; प्रथम भाग, पृष्ठ ६ और १० के टिप्पण में प्रकाशित)

२. ·················देवो: रवि पातु वः।

तस्मात्समालंव(ब)नदंडयोनिरभूज्जनस्य स्खलतः स्वमार्गे।

वंशः स दैवोढरसो नृपाणामनुद्गतैर्नोघुणकीटरन्ध्रः ॥ ३४ ॥

समुत्थितोर्कंदनयययोनिरुत्पन्नपुन्नागकदंव(ब) शाखः।

आश्चर्यमंतः प्रसरत्कुशोयं वंशोर्थिनां श्रीफलतां प्रयाति ॥ ३५ ॥

आधिव्याधिकुवृत्तदुर्गतिपरित्यक्ताप्रजास्तत्र ते

सप्तद्वीपभुजो नृपाः समभवन्निक्ष्वाकुरामादयः। ···३६ ॥

'पृथ्वीराज विजय' में भी चौहानों को जगह जगह सूर्यवंशी लिखा है[1], अग्निवंशी कहीं भी नहीं। ग्वालियर के तोमर (तँवर) वंशी राजा वीरम के दरबार के जैन कवि नयचंद्र सूरि ने वि० सं० १४६० के आसपास 'हम्मीरमहाकाव्य' बनाया। उसको भी चौहानों का अग्निवंशी होना मालूम नहीं था। उसने लिखा है—"ब्रह्माजी यज्ञ करने के निमित्त पवित्र भूमि की शोध में फिरते थे। उस समय उनके हाथ में से पुष्कर (कमल का फूल) गिर गया। जहाँ पर कमल गिरा, उस भूमि को पवित्र मान वहीं यज्ञ आरंभ किया; परंतु राक्षसों का भय होने से उन्होंने सूर्य का ध्यान किया, जिस पर सूर्यमण्डल से एक दिव्य पुरुष उतर आया। उसने यज्ञ की रक्षा की और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। जिस स्थान पर ब्रह्माजी के हाथ से पुष्कर (कमल) गिरा था, वह स्थान पुष्कर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और सूर्यमंडल से बुलाया हुआ जो वीर पुरुष आया था, वह चाहमान (चौहान) कहलाया और ब्रह्माजी की कृपा से महाराजा बनकर राजाओं पर राज्य करने लगा"।[2]

तस्मिन्नथारिविजयेन विराजमानो

राजानुरंजितजनार्जनि चाहमानः ।··········॥ ३७ ॥

चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में रखी हुई पहली शिला।

१ काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत्

पुराभवत्त्रिप्रवरं रवेः कुलम्।

कलावपि प्राप्य स चाहमानतां

प्ररूढतुर्यप्रवरं बभूव तत् ॥ २ । ७१ ॥

······भानोः प्रतापोन्नतिं।

तन्वन् गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥ ७ । ५० ॥

सुतोऽप्यपरगांगेयो निन्येऽस्य रविसूनुना।

उन्नतिं रविवंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता ॥ ८ । ५४ ॥

पृथ्वीराजविजय महाकाव्य।

२ यज्ञाय पुण्यं क्वचन प्रदेशं द्रष्टुं विधातुर्भ्रमतः किलादौ।

अपेतिवत् पुष्करमाशुपाणिपद्मात्पराभूतमिवास्य भासा ॥ १४ ॥

इस प्रकार पृथ्वीराज के पूर्व से लगाकर वि० सं० १४६० के आस-पास तक चौहान अपने को सूर्यवंशी मानते थे। यदि पृथ्वीराज-रासो, पृथ्वीराज के समय का बना हुआ होता, तो वह चौहानों को अग्निवंशी न कहता।

पृथ्वीराज-रासो और चौहानों की वंशावली

पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज तक की जो वंशावली दी है, वह अधिकांश में कृत्रिम है। हम वि० सं० १०३० से लगाकर वि० सं० १६३५ के आस पास तक के चौहानों के शिलालेखों और संस्कृत-पुस्तकों में मिलने वाली भिन्न-भिन्न वंशावलियों का एक नक्शा यहाँ देते हैं, जिसमें पृथ्वीराज रासो की भी वंशावली उद्धृत की गई है। उनके परस्पर के मिलान से ज्ञात हो जायगा कि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन नहीं हो सकता; क्योंकि रासो की वंशावली कुछ इधर-उधर के नामों को छोड़कर सारी कृत्रिम है। किसी भी प्राचीन शिलालेख या ग्रन्थ से नहीं मिलती। नीचे लिखी हुई वंशावली की तालिका को देखने से ज्ञात हो जायगा कि चौहानों के सबसे पुराने वि० सं० १०३० के लेख में दिए हुए आठों नाम बिजोलियाँ के लेख से और पृथ्वीराज विजय से ठीक मिल जाते हैं। तनिक अंतर के विषय में यही कहना आवश्यक होगा कि गूवक (प्रथम) के स्थान पर गोविंदराज लिखा है, जो उक्त प्राकृत नाम का संस्कृत रूप है। शशि नृप और चन्द्रराज भी एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। इसी तरह प्राकृत 'वप्पराज' का संस्कृत रूप वाक्पतिराज है।

ततः शुभं स्थानमिदं विभाव्य प्रारब्धयज्ञो यमयास्तदैन्यः।
त्रिशंकय भीतिं दनुजव्रजेभ्यः स्मेरम्य सस्मार सहस्ररश्मेः ॥ १५ ॥

अवातरन्मंडलतोथमासां पत्युः पुमानुद्यतमंडलाग्रः।
तं चाभिषिच्याशक्रसौयरक्षाविधौ व्यधादेष मखं सुखेन ॥ १६ ॥

पपात यत् पुष्करमत्रपाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत्।
यच्चायमागादथ चाहमानः पुमानतोऽख्यायि स चाहमानः ॥ १७ ॥

हम्मीरमहाकाव्यः सर्ग १।

शिलालेखों आदि से चौहानों की वंशावली

चौहान राज विग्रह राज के समय के वि० सं० १०३० की हर्षनाथ की प्रशस्ति से;	चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ के बिजोलियाँ के शिलालेख से	पृथ्वीराज विजय महाकाव्य से।	वि०सं० १५ वीं शताब्दी के आसपास के लिखे प्रबन्ध कोश के अन्त में दी हुई चौहानों की वंशावली	वि० सं० १४६० के आसपास के बने हुए हम्मीर महाकाव्य से	वि० सं० १६३५ के आसपास के बने हुए सुर्जन चरित्र काव्य से	पृथ्वीराज रासो से
१	२	३	४	५	६	७
	सामंत जयराज विग्रह चंद्र गोपेन्द्र	चाहमान वासुदेव सामन्तराज जयराज विग्रहराज चंद्रराज गोपेन्द्रराज	वासुदेव सामन्त नरदेव अजयराज विग्रहराज विजयराज चन्द्रराज गोविन्दराज	चाहमान वासुदेव नरदेव चन्द्रराज जयपाल चक्री जयराज	वासुदेव नरदेव अजयपाल अजयराज सामन्तसिंह	चाहुवान सामन्तदेव महादेव मोहन्त अजयसिंह रामसिंह वीरसिंह विगन्दसूर उद्दारहार अशोक शंकोविडार बैरसिंह

१	२	३	४	५	६	७
						वरसिंह
				सामन्तसिंह		वीरदण्ड
	दुर्लभ	दुर्लभराज	दुर्लभराज			अरिमंत
गूवक	गूवक	गोविन्दराज				मानिकराय
चन्द्रराज	शशिनृप	चंद्रराज (द्वितीय)				महासिंह
गूवक (द्वितीय)	गूवाक (द्वितीय)	गूवक		गूवक	गुर्जर	संग्राम
चन्दन	चन्दन	चन्दनराज		नन्दन	चन्द्र	चन्द्रगुप्त
					वप्र	
वाक्पतिराज	वप्पयराज	वाक्पति	वत्सराज	वप्रराज	विश्नपति	प्रतापसिंह
				हरिराज	हरिराज	मोहसिंह
						सेनराय
सिंहराज	सिंहराज	सिंहराज	सिंहराज	सिंहराज		सप्रतिराय
			दुर्योधन	भीम	भीम	नागहस्त
विग्रहराज	विग्रह	विग्रहराज द्वितीय	विजयराज	विग्रहराज	विग्रहदेव	स्थूलनंद
(वि०सं० १०३०)						आनन्दराज
			वप्पेयीवर			लोहधीर
	दुर्लभ	दुर्लभराज	दुर्लभराज			धर्मसार
	गंडु	गोविन्दराज	गडुराज	गंगदेव	गंडुदेव	विबुधसिंह
	वाक्पति	वाक्पतिराज (द्वितीय)	बालपदेव	वल्लभराज	वल्लभ	योगसूर

१	२	३	४	५	६	७
						चन्दराय
	वीर्यराम	वीर्यराम	विजयराज	राम	रामनाथ	कृष्णराज
	चामुंड	चामुंड	चामुंडराज	चामुंडराज	चामुंड	हरहरराय
	सिंहट					बालन्नराय
	दुसल	दुर्लभ	दूसलदेव	दुर्लभराज	दुर्लभराज	पृथुराय
				दुमल	दुमलदेव	अनेय
	वीसल	विग्रहराज (तृतीत)	विसलदेव	वीसल	वीसलदेव	धर्माधिराज
					वल्लभ	वीसलदेव
	पृथ्वीराज	पृथ्वीराज	पृथ्वीराज	पृथ्वीराज		सारंगदेव
	अजयदेव	अजयराज	आल्हणदेव	आल्हणदेव		आनलराउ
	अर्णोराज	अर्णोराज	अनालदेव	अनालदेव	आनलदेव	जयसिंह
	०	०	जगदेव	जगदेव	जगदेव	आनन्ददेव
	विग्रहराज	विग्रहराज (चतुर्थ)	वीसलदेव	वीसलदेव	वीसलदेव	
				जयपाल	अजयपाल	
		अपर गांगेय	अमर गांगेय	गंगपाल	गांगदेव	
	पृथ्वीराज (दूसरा)	पृथ्वीभट्ट	पीथलदेव			
	सोमेश्वर	सोमेश्वर	सोमेश्वर	सोमेश्वर	सोमेश्वर	सोमेश्वर
	(वि० सं० १२२६)	पृथ्वीराज, हरिराज	पृथ्वीराज, हरिराज	पृथ्वीराज, हरिराज	पृथ्वीराज, मानिकयराज	पृथ्वीराज रेणसी

बिजोलियाँ के लेख और पृथ्वीराज विजय की वंशावली भी पूर्णतः परस्पर मिलती है। बिजोलियाँ के लेख का लौकिक नाम 'गण्डू' संस्कृत में गोविंदराज में,

'इसल' दुर्लभ में और 'वीसल'[1] विग्रहराज में बदल गए है। बिजोलियाँ के लेख का सिहट नाम 'पृथ्वीराज-विजय' में नहीं है और पृथ्वीराजविजय का अपरगांगेय (अमरगंगू)[2] उक्त शिलालेख में नहीं है। प्रबन्धकोप के अन्त में दी हुई चौहानों की वंशावली भी बीजोल्याँ के लेख और 'पृथ्वीराजविजय' से अधिकतर मिलती है; क्योंकि उसमें दिए हुए ३१ नामों में से २२ नाम ठीक मिल जाते हैं। हम्मीर महाकाव्य में दिए हुए ३१ नामों में से २१ नाम पृथ्वीराजविजय से और उनके अतिरिक्त २ नाम प्रबन्धकोप से मिलते हैं। 'सुर्जनचरित' महाकाव्य बूँदी के चौहान राव सुर्जन के समय में वि० सं० १६३५ के आसपास बना, इसलिये उसमें प्राचीन ग्रंथों से बहुत अधिक समानता नहीं पाई जाती, तो भी २७ नामों में से १३ नाम मिल जाते हैं। उसमें और हम्मीर महाकाव्य तथा प्रबन्धकोष में अधिक समानता है। उपर्युक्त नामों के अतिरिक्त सुर्जनचरित के ७ नाम प्रबन्धकोप या हम्मीर महाकाव्य से मिलते हैं; परन्तु पृथ्वीराजरासो के ४४ नामों में से केवल कहीं कहीं के ७ नाम ही बिजोलियाँ के लेख और पृथ्वीराजविजय के नामों से मिलते हैं, अन्य सब कृत्रिम और कल्पित हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वीराजरासो बहुत अधिक अर्वाचीन है। यदि रासो पृथ्वीराज के समय ही बना होता तो उसकी वंशावली में और 'पृथ्वीराजविजय' की वंशावली में इतना अधिक अन्तर न होता। पृथ्वीराजरासो १७ वीं सदी के पूर्वार्ध में बने हुए 'सुर्जनचरित' से भी पीछे प्रसिद्धि में आया, ऐसा ज्ञात होता है। राजपूताने में चौहानों का मुख्य और पुराना राज्य बूँदी है। यदि सुर्जन के समय पृथ्वीराजरासो वहाँ प्रसिद्धि में आगया होता, तो उसी के आधार पर 'सुर्जनचरित' में वंशावली लिखी जाती; परन्तु ऐसा न होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उस समय तक बूँदी में उसकी प्रसिद्धि नहीं हुई थी। उस समय पृथ्वीराजरासो की कुछ कथाएँ जनश्रुति से लोगों में कुछ कुछ अवश्य प्रचलित थी।

---

१. अशोक के लेखवाले दिल्ली के सवालक स्तंभ पर के चौहान राजा विग्रहराज (वीसलदेव) के वि०सं०१२२० वैशाख सुति (सुदि) १५ के लेखों में वीसल और विग्रहराज दोनों एक ही राजा के नाम दिए हैं। इण्डियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १९, पृष्ठ २१८ और प्लेट।

२ अबुलफजल ने अमर गंगू नाम दिया है। वह थोड़े ही दिन राज्य कर बचपन में मर गया था, जिससे उसका नाम छोड़ दिया गया हो।

पृथ्वीराज रासो और पृथ्वीराज की माता

पृथ्वीराज रासो में लिखा है—दिल्ली के तँवर राजा अनंगपाल ने अपनी छोटी कुँवरी कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया[1], जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ था। अंत में अनंगपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बदरिकाश्रम में तप करने को चला गया[2]।" यह सारी कथा कल्पित है, क्योंकि उस समय न तो अनंगपाल दिल्ली का राजा था और न उसकी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ हुआ था। दिल्ली का राज्य तो पहले ही सोमेश्वर के बड़े भाई विग्रहराज (चतुर्थ) ने ही अपने राज्य (अजमेर) के अधीन कर लिया था। बिजोलियाँ के उक्त लेख में विग्रहराज का दिल्ली और हाँसी को लेना लिखा है[3]। तबक़ाते नासिरी में शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की पहली लड़ाई में दिल्ली के राजा गोविंदराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी (गोविंदराज) के भाले से सुलतान का घायल होकर लौटना तथा दूसरी लड़ाई में, जिसमें पृथ्वीराज की हार हुई, उस (गोविंदराज) का मारा जाना लिखा है[4]। इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज (तीसरे) के समय दिल्ली अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार में थी।

पृथ्वीराज की माता का नाम भी कमला नहीं, किंतु कर्पूरदेवी था और वह दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री नहीं, किंतु त्रिपुरी (चेदि अर्थात् जबलपुर के आसपास के प्रदेश की राजधानी) के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा तेजल (अचलराज) की पुत्री थी।[5]

---

१. पृथ्वीराजरासो; आदि पर्व, रासोसार, पृ० १५।

२. वही; दिल्ली-दान-प्रस्ताव, अठारवाँ समय, रासोसार, पृ० ६२।

प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः [।]
ढिल्लिकाग्रहणश्रांतमाशिकालाभलंभितः (तं) ॥ २२ ॥

बिजोलियाँ का लेख (छाप पर से)।

४. तबक़ातेनासिरी का अँगरेजी अनुवाद (मेजर रावर्टी का किया हुआ); पृ० ४५९-६८।

५. इति साहससाहचर्यचर्यस्समयज्ञैः प्र[तिपादि]त प्रभावाम्।
तनयां स सपादलक्षपुण्यज्ञैरुपयेमे त्रिपुरीपुर[न्द]रस्य ॥ [१६] ॥

पृथ्वीराजविजय; सर्ग ७।

यदि पृथ्वीराजरासो पृथ्वीराज के समय में लिखा जाता, तो उसमें यह घटना ऐसी कल्पित न लिखी जाती। पंद्रहवीं शताब्दी का लेखक नयचंद्र भी 'हम्मीर-महाकाव्य' में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी देता है[1] और सुर्जनचरित्र का कर्त्ता भी कर्पूरदेवी ही लिखता है, तथा उसका दिल्ली के राजा की पुत्री नहीं; किन्तु दक्षिण के कुंतल देश के राजा की पुत्री बतलाता है।[2]

पृथ्वी पवित्रतां नेतुं राजशब्दं कृतार्थताम्।
चतुर्वर्णधनं नाम पृथ्वीराज इति व्यधात्॥ [३०]॥

वही; सर्ग. ८।

भुक्त्वा वनि सुधवावंशं गलत्पुरुषमौक्तिक।
देवं सोमेश्वरं द्रष्टुं राजश्रीरुदकण्ठत॥ [५७]॥

आत्मजाभ्यामिव यशः प्रतापाभ्यामिवान्वितः।
सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपतिः॥ [५८]॥

कर्पूरदेव्यथादाय दानभोगाविवात्मजौ।
विवेशाजयराजस्य सपन्मूर्तिमती पुरीम्॥ [५९]॥

वही; सर्ग ८।

१. इलाविलासी जयति तस्मात्
सोमेश्वरोऽतश्वरनीतिरीतिः॥ ६७॥

कर्पूरदेवीति बभूव तस्य
प्रिया [प्रिया] राधमसावधाना॥ ६८॥

हम्मीरमहाव्यः सर्ग २।

२. शकुन्तलाभा गुणरूपशीलैः
स कुन्तलानामधिपस्य पुत्रीम्।

कर्पूरधारां जनलोचनानां
कर्पूरदेवीमुदुवाह विद्वान्॥ ४॥

सुर्जन चरित; सर्ग ६।

पृथ्वीराज-रासो और पृथ्वीराज की बहिन

पृथ्वीराज-रासो में लिखा है–'पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह मेवाड़ के राजा समरसिंह (रावल तेजसिंह के पुत्र और रत्नसिंह के पिता) के साथ हुआ था[१], जो पृथ्वीराज के पक्ष में लड़ता हुआ शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा गया[२]।

यह कथा भी बिलकुल कल्पित है; क्योंकि समरसिंह पृथ्वीराज के बहुत समय बाद हुआ। पृथ्वीराज का देहांत (वि०सं०१२४९ ई०सं० ११९३ में) होगया था। समरसिंह का दादा जैत्रसिंह उक्त संवत् के बहुत बाद तक विद्यमान था। उसके समय के दो शिलालेखों में से एक एकलिंगजी के मन्दिर के चौक में और दूसरा नादेसमा गाँव में चारभुजा के मंदिर के निकटवर्ती सूर्य-मंदिर के स्तंभ पर तथा दो हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं। दोनों शिलालेख क्रमशः वि० सं० १२७०[३] और १२७९[४] के हैं। उसी के समय में 'पाक्षिकवृत्ति' वि० सं० १३०९[५] लिखी गई। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि जैत्रसिंह वि० सं० १३०९ तक विद्यमान था। समरसिंह का पिता तेजसिंह वि० सं० १३२४[६] तक तो अवश्य विद्यमान था, जैसा कि उसके

---

१ पृथ्वीराजरासो, पृथाव्याह कथा; (इक्कीसवाँ समय) रासोसार; पृ० ७०–७१।

२ पृथ्वीराजरासो, बड़ी लड़ाई; (छासठवाँ समय) रासोसार पृ० ४२८।

३ संवत् १२७० वर्षे महाराजाधिराज श्री जैत्रसिंह देवेपु······ (भावनगर प्राचीन-शोधसंग्रह: पृ० ४७, टिप्पण। भावनगर इन्स्क्रिप्शंस: पृ० ९३, टिप्पण)।

४ ओं संवत् १२७९ वर्षे वैशाख सुदि १३ सु (शु) क्रे अद्येह श्रीनागद्रहे महाराजाधिराज-श्रीजयतसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये··············· (नादेशमा का शिलालेख)।

५ संवत् १३०९ वर्षे माघ वदि १४ सोमे स्वस्ति श्रीमदाघाटे महाराजाधिराजभगवन्नारायणदक्षिण-उत्तराधीशमानमर्दनश्रीजयतसिंहदेवतत्पदविभूषणराजाश्रितं जयसिंहविजयराज्ये ··········ठ० वयजलेन पाक्षिक वृत्तिर्लिखितेति ॥

(पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट; पृ० १३०)।

६ संवत् १३२४ वर्षे इहचित्रकूटमाहादुर्गे तलहट्टिकायां पवित्र························ महाराज श्रीतेजःसिंहदेवकल्याण विजयी······।

दी जर्नल आफ् एशियाटिक सोसाइटी आफ् बंगाल; जि० ५५, भाग १, १८८६, पृ० ४६–४७।

समय के उक्त संवत् के शिलालेख से, जो गंभीरी नदी (चित्तौड़ के पास) के पुल के नवें कोठे (महराब) में लगा है, पाया जाता है। समरसिंह के समय के आठ शिलालेख मिले हैं, जिनमें से प्रथम वि० सं० १३३०[1] का है, जो चीरवे के विष्णु-मंदिर की दीवार में लगा है और अंतिम लेख वि०सं०१३५८[2] का है, जो चित्तौड़ के रामपोल दरवाजे के बाहर पड़ा हुआ पाया गया। इनसे स्पष्ट है कि रावल समरसिंह वि० सं० १३५८ तक अर्थात् पृथ्वीराज की मृत्यु से १०६ वर्ष पीछे तक तो अवश्य जीवित था। ऐसी अवस्था में पृथाबाई के विवाह की कथा भी कपोलकल्पित है। पृथ्वीराज, समरसिंह और पृथाबाई के वि० सं० ११४३ और ११४५ (इस संवत् के दो); वि०सं० ११३६ और ११४५; तथा वि०सं० ११४५ और ११५७ के जो पत्र, पट्टे, परवाने नागरीप्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी पुस्तकों की खोज में फोटो सहित छपे हैं, वे सब जाली हैं, जैसा कि हमने नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण) भाग १, पृ० ४३२–५२ में बतलाया है।

पृथ्वीराज-रासो और सोमेश्वर की मृत्यु

रासो का कर्त्ता लिखता है गुजरात के राजा भीम के हाथ से पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया। अपने पिता का वैर लेने के लिये पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गद्दी पर बिठाकर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य में मिला लिए।[3]

यह सारी कथा भी असत्य है, क्योंकि न तो सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीम पृथ्वीराज के हाथ से। सोमेश्वर के समय के कई शिलालेख मिले हैं, जिसमें से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुनवदी ३ का बिजौलियाँ का

---

१. यह शिलालेख मेरी तैयार की हुई छाप के आधार पर छप चुका है (विएना ओरिएंटल जर्नल; जि० २१, पृ० १५५–१६२)।

२. ओं ॥ संवत् १३५८ वर्षे माघ शुदि १० दशम्यां······महाराजाधिराज श्रीसमरसिंह दे [वक] ल्याणविजयराज्ये·········।

आंवलदा गांव का लेख (अप्रकाशित)

यह शिलालेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है।

३. पृथ्वीराजरासो; भीमवध (चौवालीसवाँ समय), रासोसार; पृ० १५६।

प्रसिद्ध लेख है[1] और अन्तिम वि० सं० १२३४ भाद्रपद सुदी ४ का है[2]। पृथ्वीराज का सबसे पहला लेख वि० सं० १२३६ आषाढ़ वदि १२ का है[3]। वि० सं० १२३६ के प्रारम्भ में सोमेश्वर का देहांत और पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी मानी जा सकती है, जैसा कि प्रबन्धकोष के अन्त की वंशावली से ज्ञात होता है।[4] भीमदेव वि० सं० १२३५ में गद्दी पर बिलकुल बाल्यावस्था में बैठा और ६३ वर्ष अर्थात् वि०सं० १२९८ तक वह जीवित रहा[5]। इतनी बाल्यावस्था में वह सोमेश्वर को नहीं मार सकता और न पृथ्वीराज ने उसका बदला लेने के लिये उसपर चढ़ाई कर उसे मारा था। गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत ग्रंथों में भी कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है। राजपूताना म्यूजियम में भीमदेव का वि० सं० १२६५ का एक शिलालेख विद्यमान है[6]। आबू पर देलवाड़ा गाँव के प्रसिद्ध तेजपाल के जैन-मन्दिर की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति के लिखने के समय भी भीमदेव विद्यमान था[7]।

---

१. दी जर्नल, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल; जिल्द ५५, भाग १, ई०सं० १८८६ पृ० ४० ४६ ।

२ ॐ। स्वस्ति श्रीमहाराजाधिराज श्रीसोमेश्व(श्व)रदेवमहाराये(ज्ये)·········
संवत १२३४ भाद्र पद सुदि ४ शुक्रदिने० ।

आंवलदा गांव का लेख (अप्रकाशित ।

यह लेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है।

३ संवत् १२३६ आषाढ़ वदि १२ श्रीपृथ्वीराज्ये·········

लोहारी गाँव का लेख (अप्रकाशित)।

यह लेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है।

४ पृथ्वीराजः संवत् १२३६ वर्षे राज्यं चकार। संवत् १२४८ मृतः।
(यह वि० सं० १२४८ कार्तिकादि है, चैत्रादि १२४९ होगा)

प्रबन्धचिन्तामणिः पृष्ठ ५४ ।

५ सं० १२३५ पूर्ववर्षाद्वर्षं ६३ श्रीभीमदेवेन राज्यं कृतं········ वही; पृ० २४९ ।

६ यह लेख इंडियन एंटिक्वेरी; जि० ११, पृष्ठ २२१-२२ में प्रकाशित हो चुका है।

७ ॐ नमः········ [सव] त् १२८७ वर्षे लौकिक फाल्गुन वदि ३ रवौ अद्येह श्रीमदणहिलपाटके·········महाराजाधिराज श्री भ······ विजयिराज्ये······
तस्यैव महाराजाधिराज श्रीभीमदेवस्य प्रसा[द]······।

एपिग्राफिया इंडिका; जि० ८ पृष्ठ २१९ ।

डाक्टर बूलर ने वि०सं० १२९६ मार्गशीर्ष वदि १४ का भीमदेव का दानपत्र प्रकाशित किया है।[1] इससे निश्चित है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु से अनुमान पचास वर्ष पीछे भी विद्यमान था।

पृथ्वीराज-रासो और पृथ्वीराज के विवाह

नाहरराय की पुत्री से विवाह

पृथ्वीराज-रासो का कथन है कि पृथ्वीराज का प्रथम विवाह, ग्यारह वर्ष की अवस्था में, मंडोवर के पड़िहार नाहरराय की कन्या से हुआ[2]। यह कथन भी सत्य नहीं है। मंडोवर का नाहरराय पड़िहार पृथ्वीराज से कई सौ वर्ष पूर्व हुआ था, जैसा कि मंडोवर के पड़िहारों के वि० सं० ८९४ के शिलालेख से पाया जाता है[3]। वि० सं० १२०० से पूर्व मंडोवर पर से पड़िहारों का राज्य अस्त हो गया था और नाडोल के चौहानों ने उस पर अधिकार कर लिया था। पृथ्वीराज के समय के आस पास तो नाडोल के चौहान रायपाल के पुत्र सहजपाल का मंडोवर पर अधिकार था, जैसा कि वहीं से मिले हुए उसके शिलालेख से पाया जाता है[4]।

इच्छनी से विवाह

पृथ्वीराज-रासो में लिखा है कि १२ वर्ष की अवस्था में, पृथ्वीराज ने आबू के परमार राजा सलख की पुत्री और जैत की बहिन इच्छनी से विवाह किया[5]। यह कथा भी ऐतिहासिक नहीं है। आबू पर सलख या जयत नाम का परमार राजा कभी हुआ ही नहीं। आबू पर की वि० सं० १२८७ की वस्तुपाल के मंदिर की प्रशस्ति में आबू के परमारों की उस समय तक की वंशावली दी है[6]। उसमें वहाँ के परमार राजा यशोधवल का पुत्र धारावर्ष होना लिखा है। यशोधवल का वि० सं० १२०२ का

१. इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० ६, पृ० २०६—२०८।
२. पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैंसठवाँ समय), रासोसार; पृ० ३८२।
३. एपिग्राफिया इंडिका; जि० १८, पृ० ९५—९७।
४. आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, एन्युअल रिपोर्ट, ई० सं० १९०९—१०, पृष्ठ १०२—१०३।
५. पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैंसठवां समय), रासोसार; पृष्ठ ३८२।
६. एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ८, पृष्ठ २०८—२१९।

शिलालेख राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में विद्यमान है। उसके पुत्र धारावर्ष के १४ शिलालेख और १ ताम्रपत्र मिला है, जिनमें से वि०सं० १२२० ज्येष्ठ सुदि १५,[1] वि०सं० १२६५, १२७१ और १२७४[2] के चार मूल लेख राजपूताना म्यूजियम में सुरक्षित हैं, जिनसे निश्चित है कि पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी के पूर्व से लगाकर उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा धारावर्ष था, न कि सलख या जैत।

दाहिमा चावंड की बहिन से विवाह

पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि, १३ वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज ने दाहिमा चावंड की बहन से विवाह किया, जिससे रैणसी का जन्म हुआ[3]। यह कथन भी निराधार कल्पित है, क्योंकि पृथ्वीराज का पुत्र रैणसी नहीं, किंतु गोविन्दराज था, जो पृथ्वीराज के मारे जाने के समय बालक था। फ़ारसी तवारीख़ों में उसका नाम 'गोला' या 'गोदा' पढ़ा जाता है, जो फ़ारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण गोविंदराज का बिगड़ा हुआ रूप ही है। हम्मीर–महाकाव्य में भी गोविंदराज नाम मिलता है[4]। सुलतान शहाबुद्दीन ने अपनी अधीनता में उसे अजमेर की गद्दी पर बिठाया, परन्तु उसके सुलतान की अधीनता में रहने के कारण पृथ्वीराज के छोटे भाई हरिराज ने उसे अजमेर से निकाल दिया, जिससे वह रणथंभोर में जा रहा। हरिराज का नाम पृथ्वीराजरासो में नहीं दिया, परंतु पृथ्वीराज-

---

१ ओं ॥ स्वस्ति श्री संवत १२२० जेष्ठ सु [शु] दि १५ शनिदिने सोमपर्व्वे महाराजाधिराजमहामंडलेश्वर श्रीधारावर्षदेवेन शासनं प्रदत्तं......... ।

इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० ५६, पृ० ५१।

२ संवत १२७४ मा[घ]फाल्गु (ल्गु) नयो [म]ध्ये [सो] मग्रहणपर्व्वे श्रीधोमराजसंतान जसधवलदेवसुन (सुत) श्रीधारावर्ष विजयराज्ये ।

वही; जि० ५६, पृ० ५१।

३ पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैंसठवां समय), रासोसार; पृ० ३८२।

४ तत्रास्ति पृथ्वीराजस्य प्राक् पित्रातो निरासितः ।
पुत्रो गोविन्दराजाख्यः स्वसामर्थ्यात्तभैमवः ॥ २४ ॥

हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ४।

विजय, प्रबन्धकोश के अंत की वंशावली और हम्मीर महाकाव्य में दिया है[1] और फारसी तवारीखों में हीराज या हेमराज मिलता है,[2] जो उसी के नाम का बिगड़ा हुआ रूप है।

शशिव्रता और हंसावती से विवाह

इसी तरह रासे में देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री शशिव्रता और रणथंभोर के यादव राजा भानराय की पुत्री हंसावती से विवाह करना लिखा है[3]। ये दोनों बातें भी कल्पित हैं, क्योंकि देवगिरि में भान नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। रणथंभोर पर कभी यादवों राज्य ही नहीं रहा। उस पर तो पहले से ही चौहानों का अधिकार था। पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद उसके भाई हरिराज ने अपने भतीजे गोविंदराज को अजमेर से निकाला, तब वह रणथंभोर में रहा[4] और हम्मीर तक उसके वंशजों ने वहीं राज्य किया[5]।

इसी प्रकार ११ वर्ष की अवस्था से लगाकर ३६ वर्ष की अवस्था तक के १४ विवाह होना पृथ्वीराज रासा में लिखा है, जो ऊपर जाँच किए हुए पाँच विवाहों के समान निर्मूल हैं। पृथ्वीराज ३६ वर्ष तक जीवित भी नहीं रहा।

---

१. जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी; ई० स० १६१३, पृ० २७०–७१।

२. इलियट; हिस्ट्री ऑफ इंडिया; जिल्द २, पृष्ठ २१६।

३. पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैंसठवाँ समय), रासोसार; पृ० ३८२।

४. मंत्रमित्येति भूपीयं सर्वं कोशबलादिकं।
महादाय चलंति स्म रणस्तंभपुरं प्रति ॥ २६ ॥
दावपावकवत् वादयं ज्वालयन् देशमुद्धसं।
शाकः पश्चादुपागत्याऽजयमेरुपुरं ललौ ॥ २७ ॥
अथ प्राप्य रणस्तंभं पुरं गोविन्दभूपतेः।
समशंसत ते सर्वे वृत्तान्तं च न्वगादिशुः ॥ २८ ॥
पितृव्यस्य तथाभूतं मृत्युं श्रुत्वा धराधिपः।
वाचामगोचरं कष्टं कलयामास मानसे ॥ २६ ॥
हम्मीरमहाकाव्य; सर्ग ४।

५. वही सर्ग ४ से सर्ग १४ तक।

वह तो ३० वर्ष से पहले ही मारा गया था। वि० सं० १२२६ में जब वह गद्दी पर बैठा, उस समय वह बालक था और उसकी माता कर्पूरदेवी अपने मन्त्री कादंबवास की सहायता से राज्य-कार्य करती थी[१]।

यदि पृथ्वीराज रासो पृथ्वीराज के समय में लिखा गया होता, तो पृथ्वीराज का वंश परिचय, उसके पूर्व पुरुषों की नामावली, माता, पिता, बहिन और रानियों आदि का तो शुद्ध परिचय मिलना चाहिए था। ऐसा न होना यही बतलाता है कि वह पृथ्वीराज के कई सौ वर्ष पीछे चौहानों के इतिहास से अनभिज्ञ चंद वरदाई नाम के किसी भाट ने लिखा होगा।

पृथ्वीराज रासो में दिए हुए भिन्न भिन्न संवतों की जांच

पृथ्वीराजरासो में दिए हुए सभी संवत् अशुद्ध हैं। कर्नल टॉड ने पृथ्वीराज रासो के आधार पर चौहानों का इतिहास लिखते समय संवतों की जाँच कर उन्हें अशुद्ध बताया और लिखा कि आश्चर्यजनक भूल के कारण सब चौहान जातियां अपने इतिहासों में १०० वर्ष पहले के संवत लिखती हैं[२]। रासो को प्राचीन सिद्ध करने की खींचतान में पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने टॉड का बतलाया हुआ १०० वर्ष का अन्तर देखकर एक नए 'अनंद' संवत की कल्पना कर वि०सं०१९४४ में 'पृथ्वीराजरासो की प्रथम संरक्षा' नामक पुस्तिका लिखी, परन्तु इस कल्पना से भी पृथ्वीराजरासो के संवतों की अशुद्धि दूर न हुई। इससे पृथ्वीराज के जन्म संवत १११५ में ४३ माल जोड़कर उसकी मृत्यु ११५८ अनंद संवत अर्थात् विक्रम

---

१. अथशुद्धि विनिर्माय निर्मोनिहोः पितुः ।
तत्त्वरे दर्शनं कर्तुं परलोकजयी नृपः ॥ [७१] ॥
॥ [कालिना हि] मतिपत्रा स्थीयते त्रिदिवे कथम् ।
बालश्च पृथिवीराजो मया कथमुपेक्ष्यते ॥ [७२] ॥
[इतिवास्याभिषिक्तस्य रक्षार्थव्रतचारिणीम् ।
स्थापयित्वा निजां देवीं पितृ[भ]क्त्या दिवं ययौ ॥ [७३] ॥

पृथ्वीराजविजयः सर्ग ८ ।

२. टॉड राजस्थान (कलकत्ते का छपा अँगरेजी), जिल्द २ पृ० ५००, टिप्पण ।

संवत् १२४८ में माननी पड़ती थी, परन्तु वि० सं० १२४९ में अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से उसकी मृत्यु सिद्ध थी। इस वास्ते इन ९ वर्षों की कमी पूरी करने के लिये उन्होंने पृथ्वीराज के जन्म संवत् संबंधी दोहे[1] में 'अनंद' शब्द को देखकर अनंद संवत् की कल्पना की और उक्त शब्द का अर्थ 'अनंद' अर्थात् नौ रहित' किया। फिर इसे नौ रहित सौ अर्थात् ९१ वर्ष का अंतर बताकर उन्होंने उक्त नवीन संवत की कल्पना की और कहा कि पृथ्वीराजरासो में दिए हुए सब संवतों में ९१ जोड़ देने से वे शुद्ध विक्रम संवत हो जाते हैं! 'अनंद संवत् की कल्पना' नाम के विस्तृत लेख[2] में हमने इसकी निराधारता सिद्ध की है। अब हम पृथ्वीराजरासो में दिए हुए कुछ संवतों की जांच नीचे करते हैं—

बीसलदेव की गद्दीनशीनी का संवत

पृथ्वीराजरासो में बीसलदेव की गद्दीनशीनी का संवत् ८२१ दिया है[3] और लिखा है कि उसने शत्रुओं से अजमेर लिया और उसके बुलाने पर बीसल-सरोवर (बीसलिया नाम का तालाब, अजमेर में) पर अन्य राजा तो आ गए, परन्तु गुजरात के चालुक्य राजा बालुकाराय के न आने के कारण बीसलदेव ने उसकी राजधानी पाटन पर चढ़ाई की। बालुकाराय के मंत्रियों ने उससे मिल कर संधि करली[4]।

यह संपूर्ण कथन भी निराधार है। अजमेर बसने के बाद बीसलदेव नाम का एक ही चौहान राजा (सोमेश्वर का बड़ा भाई) हुआ, जिसने अपने नाम से बीसलसर तालाब बनवाया और उसके समय के शिलालेख वि०१२१०-१२११ और १२२० के मिले हैं[5], जिनसे वि०सं०८२१ अर्थात् पंड्याजी के अनंद संवत के अनुसार वि०

---

१. एकादस से पंचदह, विक्रम साक अनंद। तिहिरिपु जय पुर हरन कों, भय पृथ्वीराज नरिंद।

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका; (नवीन संस्करण) जिल्द १, पृष्ठ ३७७–४५४।

३. आठ सं रु इक ईस। बैठि बीसल सु पाट तख। सुक्रवार प्रतिपदा मास बैसाख सेत पख॥·········२३९॥

पृथ्वीराजरासो; आदिपर्व, पहिला समय पृ० ६६।

४. पृथ्वीराजरासो; आदि पर्व, पहला समय, रासोसार पृ० ११।

५. संवत् १२१० मार्ग शुदि ५ आदित्यदिने श्रवण नक्षत्रे मकरस्थे चन्द्रे हर्षणयोगे वालवकरणे

सं० ६३४ में उसका राज्याभिषेक होना किसी प्रकार नहीं माना जा सकता। इसी तरह पंड्याजी के माने हुए संवत तक पाटन में सोलंकियों का अधिकार भी नहीं हुआ था। उस समय तो क्षेमराज चावड़ा गुजरात का राजा था। वि० सं० १०१७ में सोलंकी मूलराज ने अपने मामा सामंतसिंह को मारकर पाटन का राज्य लिया और चावड़ा वंश की समाप्ति की। बालुकाराय नाम का सोलंकी राजा गुजरात में कोई हुआ ही नहीं।

विग्रहराज (वीसलदेव) नाम के चार चौहान राजा हुए, जिनमें से तीन तो अजमेर बसने से पूर्व हुए थे। दूसरे विग्रहराज ने, जिसके समय की वि० सं० १०३० की हर्षनाथ के मंदिर की प्रशस्ति है, मूलराज सोलंकी पर, जिसने १०१७ से १०५२ तक राज्य किया था [1]शाकंभरी (साँभर) से चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई का वर्णन पृथ्वीराजविजय, हम्मीर महाकाव्य और प्रबंध-चिंतामणि में मिलता है; परंतु पृथ्वीराजरासो के कर्त्ता को तो केवल एक वीसलदेव का ज्ञान था, जिसने वीसलसर बनाया था। वह वस्तुत: चतुर्थ विसलदेव था। वीसलदेव (दूसरे) की सोलंकी राजा मूलराज पर चढ़ाई करने की परंपरागत स्मृति से रासो के कर्त्ता ने चौथे वीसलदेव की गुजरात पर चढ़ाई लिख दी और वहाँ के राजा का ठीक नाम ज्ञात न होने से उसका नाम बालुकराय धर दिया।

पृथ्वीराजरासो में वि० सं० १११५ में पृथ्वीराज का जन्म होना लिखा है। यदि पंड्याजी के कथनानुसार इसे अनंद विक्रम संवत् मानें, तो भी (१११५+६१)

हरकेलि-नाटकं समाप्तं ॥ मंगल महाश्री: ॥ कृतिरियं महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीविग्रहराजदेवस्य······।

(शिलाओं पर खुदा हुआ हरकेलि नाटक, राजपूताना म्यूजियम, अजमेर में सुरक्षित)।

ॐ ॥ संवत् १२११ श्रो: (श्री) परमपासु (शु) पताचार्येन (ण) विश्वेश्वर [प्र] ज्ञेन श्रीवीसलदेवराज्ये श्रीसिद्धेश्वरप्रसादे मण्डपं [भूषित] ॥

(लोहारी के मंदिर का लेख, अप्रकाशित)।

ॐ संवत् १२२० वैशाख शुदि १५ शाकंभरी भूपति श्री मदन्नल्लदेवात्मज श्रीमद्वीसलदेवस्य ॥

इंडियन ऐंटिक्वेरी; जिल्द १९, पृ० २१८।

1. राजपूताने का इतिहास; जिल्द १, पृष्ठ २१४-१५।

पृथ्वीराज का जन्म संवत्

विक्रम संवत् १२०६ में पृथ्वीराज का जन्म मानना पड़ता है, जो सर्वथा असंभव है, क्योंकि पृथ्वीराजविजय में लिखा है कि सोमेश्वर के देहांत के समय (वि०सं० १२३६ में) पृथ्वीराज बालक था। वि० सं० १२०६ तक तो पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर भी बालक था और उसका विवाह भी नहीं हुआ था। पृथ्वीराजविजय में लिखा है कि सोमेश्वर के उत्पन्न होने पर उसके नाना जयसिंह (सिद्धराज) ने उसे अपने यहाँ बुला लिया। उसके बाद कुमारपाल ने बालक सोमेश्वर का पालन किया। सोमेश्वर बहुत वीर हुआ। एक युद्ध में उसने कुमारपाल के शत्रु कोंकण के शिलारा राजा मल्लिकार्जुन को मारा था। फिर उसने चेदि कलचुरि राजा की पुत्री से विवाह किया, जिससे ज्येष्ठ की द्वादशी को पृथ्वीराज का जन्म हुआ। उसका चूड़ाकर्म संस्कार होने के नौ मास बाद हरिराज उत्पन्न हुआ।[1]

इस वर्णन से दो तीन बातें स्पष्ट होती हैं कि कुमारपाल के गद्दी पर बैठने के समय अर्थात् वि० सं० ११६६ में सोमेश्वर बालक था। मल्लिकार्जुन के वि० सं० १२१३ और १२१७ के लेख[2] और उसके उत्तराधिकारी अपरादित्य का प्रथम लेख

---

१. ज्येष्ठस्य प्रथयन्परन्तपतया ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितम् ।
द्वादश्यामतिथिमुख्यतामुपदिशन्भानोः प्रतापोन्नतिं
तन्वन्गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥ [५०] ॥

पृथ्वीराजविजय; सर्ग ७ ।

प्रसूतपृथ्वीराजा देवी गर्भवती पुनः ।
उदेष्यत्कुमुदा फुल्लपद्मेव सरसी बभौ ॥ [४७] ॥
माघस्याथ तृतीयस्यां सितायामपरं सुतम् ।
प्रसादमिव [पार्वत्या मूर्तं] परमवाप सा ॥ [४६] ॥
युद्धेष्वस्य हस्तिदलनलीलां भविष्यन्तीं जानतेव हरिराजनाम्नार्थं स्वस्य कृतार्थत्वायेव स्पष्टः

हरिराजो हि हस्तिमर्दन ।

श्लोक ५० पर जोनराज की टीका, मूल श्लोक बहुत सा नष्ट हो गया है ।

वहीं; सर्ग ८ ।

२. बंबई गजेटियर, जिल्द १, भाग १, पृ० १८६ ।

वि० सं० १२१६ का[1] मिला है। इससे स्पष्ट है कि मल्लिकार्जुन वि० सं० १२१८ में सोमेश्वर के हाथ से मारा गया, जिसके पीछे सोमेश्वर ने चेदि देश में जाकर कर्पूरदेवी से विवाह किया। बहुत संभव है कि वि० १२२० या उसके कुछ पीछे पृथ्वीराज का जन्म हुआ हो। पृथ्वीराज विजय में विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे की मृत्यु के प्रसंग में लिखा है कि अपने भाई (सोमेश्वर) के दो पुत्रों के पैदा होने का समाचार सुनकर वह मरा[2] वीसलदेव की मृत्यु वि० सं० १२२१ और १२२४ के बीच किसी संवत् में हुई, जैसा कि उसके अंतिम लेख वि० स० १२२० और उसके उत्तराधिकारी पृथ्वीभट्ट (पृथ्वीराज दूसरे) के वि० सं १२२४ के लेख से मालूम होता[3] है। इस तरह पृथ्वीराजरासो का वि० सं० १११५ तथा पंड्याजी की उक्त नवीन कल्पना के अनुसार वि० सं० १२०६ में पृथ्वीराज का जन्म होना सर्वथा असंभव है।

पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि वि० सं० ११३६ में पृथ्वीराज के सामंत मलख (आबू का परमार) ने शहाबुद्दीन को कैद किया[4]। यह कथन भी कल्पित है। हम ऊपर बतला चुके हैं कि आबू पर मलख नाम का कोई परमार राजा ही नहीं हुआ। यदि इस संवत् को अनंद विक्रम संवत् अर्थात् वि० सं० १२२७ माना जाय, तो भी यह संवत् ठीक नहीं ठहरता। वि० सं० १२२७ तक तो पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था और न उस समय तक शहाबुद्दीन गोरी भारत में आया था। वि० सं० १२२०-२१ में गयासुद्दीन गोरी ने गोर का राज्य पाया। उसके छोटे भाई शहाबुद्दीन गोरी ने वि० सं०१२३० में गज़नी भी छीनी, जिस पर गयासुद्दीन ने उसे वहाँ का हाकिम बनाया। उसने

पृथ्वीराज के सामंत मलख के शहाबुद्दीन को कैद करने का संवत

---

१. वही; पृष्ठ २८६।

२ अथ भ्रातुरपत्याभ्यां सनाथां जानता भुवम्।
जग्मे विग्रहराजेन कृतार्थेन शिवान्तिकम्॥ [५२]॥

पृथ्वीराजविजय; सर्ग ८।

३ इण्डियन ऍटिक्वेरी; जिल्द ४१, पृ० १६।

४ पृथ्वीराजरासो; मलख युद्ध समय (तेरहवां समय); रासोसार, पृ०५३।

वि० सं० १२३२ में भारत पर चढ़ाई कर मुलतान लिया तो वि० सं० १२२७ में पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन को कैद करना कहाँ तक ठीक सिद्ध हो सकता है? इसी तरह रासो में दिया हुआ वि० सं० १३३८ और अनंद विक्रम संवत के अनुसार वि० सं० १२२९ में चामुण्डराय द्वारा शहाबुद्दीन गोरी को कैद करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि गोरी तो वि० सं० १२३२ में भारत आया था और उस समय तक पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज वि० सं० ११३८ में दिल्ली की गद्दी पर बैठा[1] और उसी वर्ष में उसने खाटू के जंगल से धन निकाला[2]। समुद्रशिखर के यादव राजा विजयपाल की पुत्री पद्मावती से वि० सं० ११३९ में उसने विवाह किया[3]। वि०सं० ११४१ में दक्षिण देशीय राजाओं ने कर्नाट देश की एक सुन्दरी वेश्या पृथ्वीराज को अर्पण की[4]। ये सारे सम्वत् कल्पित हैं। अनंद सम्वत् मानने से ये सम्वत् क्रमशः १२२९, १२३० और १२३२ होते हैं, तो भी वे निराधार ठहरते हैं, क्योंकि उस समय तक तो पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

कुछ अन्य सवत्

इसी तरह पृथ्वीराजरासो में दिए हुए सभी सम्वत् कल्पित हैं, जिनका विवेचन हम 'अनंद विक्रम सम्वत् की कल्पना' नामक लेख में कर चुके हैं। यदि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन होता, तो सम्वतों में इतनी अशुद्धियाँ न होतीं।

पृथ्वीराजरासो की कुछ मुख्य-मुख्य घटनाएँ

पृथ्वीराजरासो में केवल उपर्युक्त घटनाएँ और सम्वत ही अशुद्ध नहीं दिए, परन्तु उसका मूल कथानक भी ऐतिहासिक कसौटी पर परीक्षा करने से प्रायः संपूर्ण अशुद्ध ठहरता है। उसमें दी हुई मुख्य घटनाएँ प्रायः सभी निराधार तथा अनैतिहासिक हैं। उनमें से बहुत सी घटनाओं की जाँच ऊपर हो चुकी है।

---

१ पृथ्वीराजरासो; दिल्लीदान प्रस्ताव (अट्ठारहवाँ समय); रासोसार; पृ० ६२-६३।

२ वही; धन कथा (चौबीसवाँ समय); रासोसार; पृ० ७४।

३ वही; पद्मावती-विवाह-कथा (बीसवाँ समय); रासोसार; पृ० ६८-६९।

४ वही; कर्नाटी पात्र समय (तीसवाँ समय), रासोसार; पृ० ११२।

अतएव बाकी की घटनाओं में से कुछ मुख्य-मुख्य घटनाओं की जांच यहां करते हैं—

चन्दबरदाई ने लिखा है कि अनंगपाल ने अपने दोहते पृथ्वीराज को गोद लेकर वि० सं० ११३८ में दिल्ली का राज्य दे दिया। यह कथा भी सर्वथा निराधार है। हम ऊपर बता चुके हैं कि दिल्ली का राज्य तो वीसलदेव ने पहले ही अपने राज्य में मिला लिया था और अनंगपाल की पुत्री से पृथ्वीराज का जन्म नहीं हुआ था। दिल्ली का राज्य तो अजमेर के राज्य का सूबा मात्र था।

पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना

पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि सोमेश्वर ने मेवात के मुगल राजा (मुग्दलराय) से अन्य राजाओं के समान कर माँगा। उसके इन्कार करने पर सोमेश्वर ने उस पर चढ़ाई करदी। पृथ्वीराज भी कुछ समय बाद अजमेर से चला और रातो-रात मुगल सेना पर उसने आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुगल राजा का ज्येष्ठ पुत्र बाजिदखाँ मारा गया और वह स्वयं कैद हुआ[1]।

मेवाती मुगल से युद्ध

यह कथा भी कल्पित है। सोमेश्वर के समय में तो मेवात प्रदेश अजमेर के राज्य के अन्तगत था। वहां कोई स्वतन्त्र राजा नहीं था और मुगलों का तो क्या, अन्य मुसलमानों तक का उस प्रदेश पर अधिकार नहीं था। सोमेश्वर की जीवित अवस्था में पृथ्वीराज इतना बड़ा न था कि युद्ध में जा सकता।

चंदबरदाई लिखता है कि कन्नौज के राजा विजयपाल ने, जिसने दिल्ली के अनंगपाल की पुत्री सुंदरी से विवाह किया था, विजय-यात्रा करते हुए सेतुबंध तक का सारा प्रदेश जीत लिया। बहुत से राजा अधीन हो गए, परन्तु पृथ्वीराज ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। विजयपाल के सुन्दरी से उत्पन्न पुत्र जयचंद ने भी जब राजसूय यज्ञ के लिये सब राजाओं को निमंत्रित किया, तब भी पृथ्वीराज न आया। इस लिये और पृथ्वीराज से अपने नाना अनंगपाल का आधा दिल्ली का राज्य लेने के

संयोगिता का स्वयंबर

१. पृथ्वीराजरासो; मेवाती मुगलकथा (आठवाँ समय); रासोसार; पृ०२८।

लिये उसने पृथ्वीराज और उसके सहायक रावल समरसिंह पर आक्रमण किया, परंतु उसमें सफलता न हुई। इसलिये उसने राजसूय के साथ संयोगिता के स्वयंवर मंडप में द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा रखी। संयोगिता ने, जो पृथ्वीराज की वीरता पर पहले से ही मुग्ध थी, उसकी प्रतिमा के गले में ही वरमाला डाली। इस पर जयचन्द ने क्रुद्ध होकर संयोगिता को कैद कर लिया। पृथ्वीराज यह सुनकर ससैन्य कन्नौज पर चढ़ा और युद्ध कर संयोगिता को लेकर दिल्ली लौट आया। इस पर लाचार होकर जयचंद ने अपने पुरोहित श्रीकंठ को दिल्ली भेजकर दोनों का विधि-पूर्वक विवाह करा दिया[१]।

इस संपूर्ण कथन में विजयपाल के पुत्र जयचंद के उसके पीछे गद्दी पर बैठने और पृथ्वीराज तथा जयचंद की समकालीनता के सिवा एक भी बात सत्य नहीं है। सोमेश्वर के समय अनंगपाल दिल्ली की गद्दी पर था ही नहीं और न उसकी पुत्रियों का विजयपाल और सोमेश्वर से विवाह हुआ था। कमला के सोमेश्वर के साथ विवाह की कथा के समान सुंदरी के विजयपाल के साथ विवाह की की कथा भी कल्पित ही है। विजयपाल के दिग्विजय की कथा भी निमूल है। रासो में उक्त प्रसंग के सम्बंध में जिन-जिन राजाओं के नाम दिए हैं, वे सब प्रायः कल्पित हैं। समरसिंह का जन्म भी उस समय तक नहीं हुआ था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। जयचंद के राजसूय यज्ञ की बात मनगढ़ंत कथा ही है। जयचंद बहुत दानी राजा था। उसके कई उपलब्ध दानपत्रों से पाया जाता है कि उसने प्रसंग-प्रसंग पर अनेक भूमिदान किए। यदि उसने राजसूय यज्ञ किया होता, तो उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर वह बहुत अधिक दान करता, परन्तु उसके संबंध का न तो अब तक कोई दानपत्र ही मिला और न किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक में उसका उल्लेख है। इसी तरह पृथ्वीराज और जयचंद की परस्पर लड़ाई और संयोगिता-स्वयंवर का कथा भी ऐतिहासिक नहीं है। ग्वालियर के तँवर राजा वीरम के दरबार के प्रसिद्ध कवि जयचंद्र ने वि॰सं॰ १४६० के आसपास 'हम्मीर महाकाव्य' बनाया, जिसमें पृथ्वीराज का विस्तृत वर्णन दिया है और उसी की रची हुई 'रंभामंजरी' नाम की नाटिका में उसने जयचन्द को उसका नायक बनाया है, जिसकी प्रशंसा में लगभग दो पृष्ठ उसके विशेषणों के दिए हैं। इन दोनों

---

१. पृथ्वीराजरासो; संयोगिता नाम प्रस्ताव (पचासवाँ समय); रासोसार; पृ॰ १८५-८८।

पुस्तकों में पृथ्वीराज और जयचन्द की पारस्परिक लड़ाई, राजसूय यज्ञ और संयोगिता के स्वयंवर का उल्लेख तक नहीं है। इससे स्पष्ट है कि वि० सं० १४६० तक ये कथाएँ प्रसिद्धि में नहीं आई थीं।

रावल समरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा का बीदर जाना

रासे के ६१ वें समय से पाया जाता है कि रावल समरसिंह ने, शहाबुद्दीन के साथ की अंतिम लड़ाई में जाते समय, अपने छोटे पुत्र रतनसिंह को उत्तराधिकारी बनाया, जिससे उसका ज्येष्ठ पुत्र कुम्भ (कुम्भा) दक्षिण में बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जा रहा।

शहाबुद्दीन के साथ की पृथ्वीराज की लड़ाई तक न तो समरसिंह का जन्म हुआ था और न दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश हुआ था। मुसलमानों का प्रथम प्रवेश दक्षिण में अलाउद्दीन खिलजी के समय वि०सं० १३५१ में हुआ। बहमनी सुलतान अलाउद्दीन हसन ने दिल्ली के सुलतान से विद्रोह कर बहमनी राज्य की स्थापना की थी। इस वंश का दसवा सुलतान अहमदशाह वली ई० स० १४३० (वि०सं०१४८७) में बीदर बसाकर गुलबर्गे से अपनी राजधानी वहाँ ले आया। अतएव ऊपर लिखा हुआ कुम्भा का वृत्तांत वि० सं० १४८७ से पीछे लिखा जा सकता है, जिससे पूर्व बीदर का पृथक् राज्य भी स्थापित नहीं हुआ था।

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की मृत्यु

चंदबरदाई, पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की अन्तिम लड़ाई का वर्णन करते हुए लिखता है कि शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को कैद कर गजनी ले गया। वहाँ उसने उसकी आँखें निकलवा लीं। फिर चंद कवि योगी का भेष धारण कर गजनी पहुँचा और उसने सुलतान से मिलकर उसको पृथ्वीराज की तीरंदाजी देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चंद के संकेत के अनुसार शब्द बेधी बाण चलाकर सुलतान का काम तमाम कर दिया। फिर चंद ने अपने जूड़े में से छुरी निकालकर उसने अपना पेट काटकर वह छुरी पृथ्वीराज को दे दी, जिससे उसने भी अपना पेट फाड़ लिया। इस प्रकार तीनों की मृत्यु हुई। पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रैणसी दिल्ली की गद्दी पर बैठा[1]।

---

१ पृथ्वीराज रासो, बड़ी लड़ाई समय (छाछठवां समय); रासोसार, पृ० ३८३–४३४।

यह संपूर्ण कथन भी ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है, क्योंकि शहाबुद्दीन की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से वि०सं० १२४६ में नहीं, किंतु वि० स० १२६३ चैत्र सुदि ३ को गक्खरों के हाथ से हुई थी। जब वह गक्खरों को परास्त कर लाहोर से गजनी जा रहा था उस समय, धमेक के पास, नदी के किनारे बाग में नमाज पढ़ता हुआ वह मारा गया। पृथ्वीराज के पीछे भी उसका पुत्र गोविंदराज दिल्ली की गद्दी पर नहीं; किंतु अजमेर की गद्दी पर बैठा था, न कि रेणसी, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

इस तरह ऊपर कुछ मुख्य घटनाओं की जांचकर हमने देखा कि वे बिलकुल असत्य हैं और उनका लेखक चौहानों के इतिहास से बिलकुल अपरिचित था। यदि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन होता, तो इतनी बड़ी भूलें न करता।

पृथ्वीराजरासो का समय-निर्णय

यहाँ तक हमने पृथ्वीराजरासो की विभिन्न घटनाओं की जांच कर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि वह ग्रंथ पृथ्वीराज के समय में नहीं बना। तब वह कब बना, इस पर विचार करना आवश्यक है। हमारी सम्मति है कि वह ग्रंथ विक्रम संवत् १६०० के आस-पास बना। इसके लिये हम संक्षेप से नीचे विचार करते हैं—

वि०सं० १४६० में 'हम्मीर महाकाव्य' बना, जिसका निर्देश ऊपर कई जगह किया गया है। उसमें चौहानों का विस्तृत इतिहास है, परन्तु उसमें पृथ्वीराजरासो के अनुसार चौहानों को अग्निवंशी नहीं लिखा और न उसकी वंशावली को आधार माना गया है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक पृथ्वीराजरासो प्रसिद्धि में नहीं आया। यदि रासो की प्रसिद्धि हो गई होती, तो हम्मीर महाकाव्य का लेखक उसी के आधार पर चलता।

चन्दबरदाई ने रावल समरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा का बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जाना लिखा है, जिसकी जांच हम ऊपर कर चुके हैं। पृथ्वीराज के समय में तो दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश भी नहीं हुआ था। बीदर का राज्य तो बहमनी राज्य की उन्नति के समय में अहमदशाह वली ने ई० सं० १४३० (वि० सं० १४८७) में स्वतन्त्र रूप से स्थापित किया। इससे यह निश्चित है कि पृथ्वीराजरासो उक्त संवत् के पीछे बना होगा।

चन्दबरदाई ने सामेश्वर और पृथ्वीराज की मेवात के मुगल राजा से लड़ाई और उसमें उसके कैद होने तथा उसके पुत्र वाजिदखाँ के मारे जाने की कथा लिखी है, जिसकी जाँच हम ऊपर कर आए हैं। हिन्दुस्तान में मुगल राज्य तो वि० सम्वत् १५८३ में बाबर ने स्थापित किया। उससे पूर्व भारत में मुगलों का कोई राज्य था ही नहीं और मुगलों का सबसे पहला प्रवेश, मुगल तमूरलंग द्वारा वि० सं० १४५५ में हुआ, जिससे पहले मुगल-राज्य की भारत में कल्पना भी नहीं की जा सकती। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराजरासा वि० सं० १५८३ से और यदि बहुत पहले भी मानें तो वि० सं० १४५५ से पूर्व नहीं बन सकता।

महाराणा कुम्भकर्ण ने वि० सं० १५१७ में कुम्भलगढ़ के किले की प्रतिष्ठा की और वहाँ के मामादेव (कुम्भ स्वामी) के मन्दिर में बड़ी-बड़ी पाँच शिलाओं पर कई सौ श्लोकों का एक विस्तृत लेख खुदवाया, जिसमें मेवाड़ के उस समय तक के राजाओं का बहुत कुछ वृत्तांत दिया है। उसमें समरसिंह के पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह करने या उसके साथ शहाबुद्दीन की लड़ाई में मारे जाने का कोई वर्णन नहीं है, परन्तु वि० सं० १७३२ में महाराणा राजसिंह ने अपने बनवाए हुए राजसमुद्र तालाब के नौचौकी नामक बाँध पर २५ बड़ी-बड़ी शिलाओं पर एक महाकाव्य खुदवाया, जो अब तक विद्यमान है। उसके तीसरे सर्ग में लिखा है कि "समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह किया और शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई में वह मारा गया, जिसका वृत्तांत भाषा के 'रासा' नामक पुस्तक में विस्तार से लिखा हुआ है।"[1] इन दोनों लेखों से निश्चित है कि पृथ्वीराजरासो

---

[1] ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः ।
पृथाख्यायाः भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः ॥ २४ ॥
गोरीसाहिबदीनेन गज्जनीशेन संगरं ।
कुर्वताऽखर्वगर्वस्य महासामंतशोभितः ॥ २५ ॥
दिल्लीश्वरस्य चौहाननाथस्यास्य सहायकृत् ।
स द्वादशसहस्रैः स्ववीराणांसहितो रणे ॥ २६ ॥
बध्वा गोरीपतिं दैवात् स्वर्यातः सूर्यबिंबभित् ।
भाषारासापुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥ २७ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३।

वि० सं० १५१७ और १७३२ के बीच किसी समय में बना होगा। वि० सं० १६४२ की पृथ्वीराजरासो की सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति मिली है, इसलिये उसका वि०सं० १५१७ और १६४२ के बीच अर्थात् १६०० के आसपास बनना अनुमान किया जा सकता है।

पृथ्वीराजरासो की भाषा

पृथ्वीराजरासो की भाषा विक्रम की तेरहवीं शताब्दी की नहीं, किंतु वि० सं० १६०० के आसपास की है। हेमचंद्र के 'प्राकृत-व्याकरण' में अपभ्रंश भाषा के छंदोबद्ध उदाहरणों, सोमप्रभ के 'कुमारपाल प्रतिबोध', मेरुतुंग की 'प्रबंध-चिंतामणि' तथा 'प्राकृत-पिंगल' में दिए हुए रणथंभोर के अंतिम चौहान राजा हम्मीर के प्रशंसात्मक पद्य, तथा वि०सं० १५६१ के बीठू सूजा रचित 'जैतसी राव को छंद' नामक ग्रंथ में मिलने वाले छंदों की भाषा से पृथ्वीराजरासो की भाषा का मिलान किया जाय, तो बहुत बड़ा अन्तर मालूम होता है। पठित चारण और भाट लोग अब भी कविता बनाते हैं, उसमें वीर रस की कविता बहुधा डिंगल भाषा में करते हैं और दूसरी कविता साधारण भाषा में। डिंगल भाषा की कविता में व्याकरण की ठीक व्यवस्था नहीं होती और शब्दों के रूप तथा विभक्तियों के चिह्न कुछ पुराने ढंग के होते हैं। एक ही ग्रंथ में भिन्न-भिन्न प्रकार की कविता देखनी हो, तो विक्रम संवत् १८७९ में आढ़ा किशन के बनाए हुए 'भीमविलास' और विक्रम की बीसवीं सदी में बने हुए मिश्रण सूर्यमल के वृहद्ग्रंथ 'वंशभास्कर' को देखना चाहिए। राजस्थानी भाषा की कविता में पहले फारसी-शब्दों का प्रयोग नहीं होता था, पीछे से कुछ-कुछ होने लगा। पृथ्वीराजरासो में प्रति सैकड़ा दस फ़ारसी शब्द पाए जाते हैं, जो उसकी प्राचीनता सिद्ध नहीं करते। आधुनिक लेखक भी स्वीकार करते हैं कि 'भाषा' की कसौटी पर यदि ग्रन्थ (पृथ्वीराजरासो) को कसते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है, क्योंकि वह बिल्कुल बेठिकाने है—उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छंदों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारांत शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है, जैसे किसी ने संस्कृत-प्राकृत की नकल की हो। कहीं-कहीं तो भाषा आधुनिक सांचे में ढली सी दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नए रूपों में मिलती हैं। पर साथ ही कहीं-कहीं भाषा अपने असली

प्राचीन साहित्यिक रूप में भी पाई जाती है, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ साथ शब्दों के रूप और विभक्तियों के चिन्ह पुराने ढंग के हैं। इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असंभव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का रह गया है[1]।

भाषा की दृष्टि से भी रासो वि०सं० १६०० से पूर्व का सिद्ध नहीं हो सकता।

पृथ्वीराजरासो का परिमाण

भाषा साहित्य के आधुनिक इतिहास–लेखक जब पृथ्वीराजरासो की घटनाएँ अशुद्ध पाते हैं, तब यह कहते हैं कि 'मूल पृथ्वीराजरासो छोटा होगा और पीछे से लोगों ने उसे बढ़ा दिया हो, यह सम्भव है', परन्तु यह कथन भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि चन्दबरदाई के वंशधर कवि जदुनाथ ने करौली के यादव राजा गोपालपाल (गोपालसिंह) के राज्य-समय अर्थात् वि० सं० १८०० के आसपास 'वृत्तविलास' नाम का ग्रन्थ बनाया। उसमें वह अपने वंश का परिचय देते हुए लिखता है कि 'चन्द ने १०५००० श्लोक (अनुष्टुप् छन्द) के परिमाण का पृथ्वीराज के चरित्र का रासो बनाया।'[2] यह कथन नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो द्वारा प्रकाशित रासो के परिमाण से मिल जाता है। जदुनाथ के यहाँ अपने पूर्वज का बनाया हुआ मूल ग्रंथ अवश्य होगा, जिसके आधार पर ही उसने उक्त ग्रंथ का परिमाण लिखा होगा। ऐसी स्थिति में पृथ्वीराज-रासो के छोटा होने की कल्पना भी निर्मूल है।

पृथ्वीराजरासो को प्राचीन सिध्द करनेवालों की कुछ अन्य युक्तियां

पृथ्वीराजविजय के पांचवें सर्ग में विग्रहराज के पुत्र चन्द्रराज का वर्णन करते हुए जयानक ने उसे अच्छे वृत्त (छन्द) संग्रह करनेवाले चन्द्रराज से उपमा

---

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका; (नवीन संस्करण) भाग ८, पृ०३३-३४।

२. एक लाख रासौ कियौ सहस पंच परिमान।

पृथ्वीराज नृप को सुजस जाहर सकल जिहान॥ ५६॥

नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ५, पृष्ठ १६७।

दी है। इस पर से कोई-कोई विद्वान यह कल्पना करते हैं कि अच्छे छन्दों का वह संग्रह-कर्त्ता चन्दबरदाई हो[1], परन्तु यह युक्ति भी स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि चन्दबरदाई रासो में अपने को पृथ्वीराज का मित्र और सर्वेसर्वा होना बतलाता है। इसके विपरीत पृथ्वीराजविजय का कर्त्ता पृथ्वीराज के वंदिराज अर्थात मुख्य भाट का नाम 'पृथिवीभट' देता है, न कि चन्द। कश्मीरी पंडित जयानक ने जिस चन्द्रराज का उल्लेख किया है, वह वही चन्द (चन्द्रक) कवि हो सकता है, जिसका उल्लेख विक्रम की ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में होने वाले कश्मीरी क्षेमेंद्र ने भी किया है[2]। इसके सिवाय चन्द्र नाम के कई और भी ग्रंथकार हुए, परन्तु उनमें से किसी को हम चंदबरदाई नहीं मान सकते।

मिश्रबन्धुओं का लिखना है कि 'यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी के आदि में इसे बनाता, तो वह स्वयं अपना नाम न लिख कर ऐसा भारी (२५००-पृष्ठों का) बढ़िया महाकाव्य चंद को क्यों समर्पित कर देता'[3]। इसके उत्तर में इतना ही लिखना आवश्यक होगा कि चंद नाम के अनेक कवि समय समय पर हो सकते हैं। कालिदास नामक अनेक कवि हो गए और तेरहवीं सदी के आस-पास होने वाले 'ज्योतिर्विदाभरण' के कर्त्ता ज्योतिषी कालिदास ने अपने को विक्रम का मित्र और उसके दरबार के नवरत्नों में से एक होना लिख दिया है। इतना ही नहीं, किंतु कलियुग संवत ३०६८ (वि० सं० २४) में अपने ग्रन्थ का प्रारंभ और अन्त होना भी लिख डाला है।

उपसंहार

इस तरह हमने जाँचकर देखा कि पृथ्वीराजरासो बिलकुल अनैतिहासिक ग्रंथ है। उसमें चौहानों, प्रतिहारों और सोलंकियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध की कथा चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, भाई, बहिन, पुत्र और रानियों आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओं के संवत् और प्रायः सभी घटनाएँ

---

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ६, पृ० २८।

२. आफ्रेक्ट; कैटलॉगस कैटेलॉगरम; भाग १, पृ० १७६।

३. मिश्रबंधु; हिंदीनवरत्न; (तृतीय संस्करण) पृ० ५६१।

तथा सामंतों आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित हैं; कुछ सुनी सुनाई बातों के आधार पर उक्त बृहत् काव्य की रचना की गई है। यदि पृथ्वीराजरासो पृथ्वीराज के समय में लिखा जाता तो इतनी बड़ी अशुद्धियों का होना असंभव था। भाषा की दृष्टि से भी यह ग्रंथ प्राचीन नहीं दीखता। इसकी डिंगल भाषा में जो कहीं-कहीं प्राचीनता का आभास होता है, वह तो डिंगल की विशेषता ही है। आज की डिंगल में भी ऐसा आभास मिलता है, जिसका बीसवीं सदी में बना हुआ 'वंशभास्कर' प्रत्यक्ष उदाहरण है। रासो की भाषा में फारसी शब्दों की बहुलता भी उसके प्राचीन होने में बाधक है। वस्तुतः पृथ्वीराजरासो वि०सं० १६०० के आसपास लिखा गया। वि०सं० १५१७ की प्रशस्ति में रासो की घटनाओं का उल्लेख नहीं है और रासो की सब से पुरानी प्रति वि०सं० १६४२ की मिली है, जिसके बाद यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हो गया, यहाँ तक कि वि० सं० १७३२ की राजप्रशस्ति में रासो का स्पष्ट उल्लेख है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि पहले पृथ्वीराजरासो का मूल ग्रंथ उसके वर्तमान परिमाण से बहुत छोटा था, परन्तु पीछे से बढ़ाया गया है, क्योंकि आज से १२५ वर्ष पूर्व उसी के वंशज कवि जदुनाथ ने उसका १०५००० श्लोकों का होना लिखा है। पृथ्वीराजरासो को प्राचीन सिद्ध करने के लिए जो दूसरी युक्तियां दी जाती हैं, वे भी निराधार ही हैं। अनंद विक्रम संवत् की कल्पना तो बहुत व्यर्थ और निर्मूल है, जिसका विस्तृत खंडन नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में किया जा चुका है। संक्षेप से इस लेख में भी उसकी जाँच की गई है।

इस ग्रंथ के प्रसिद्धि में आने के कारण राजपूताने के इतिहास में बहुत अशुद्धि हुई। उदयपुर, जोधपुर, जयपुर आदि राज्यों की ख्यातों के लिखने वालों ने रासो के संवतों को शुद्ध मानकर वहाँ के कई पुराने राजाओं के संवत् मनमाने झूठे धर दिए। हिंदी भाषा का इतिहास लिखने वाले जो विद्वान् चंदबरदाई को पृथ्वीराज का समकालीन मानते हैं, वे सत्य जांच की उपेक्षा कर हठधर्मी ही करते हैं। यदि वे निष्पक्ष होकर इसकी पूरी जांच करें, तो उन्हें स्पष्ट मालूम हो जायगा कि रासो वि०सं०१६०० से पूर्व का बना हुआ नहीं है और न वह ऐतिहासिक ग्रंथ है।

पृथ्वीराज रासो की विवेचना

विभाग द्वितीय

वर्णित विषय

रासो के समर्थक विचारकों के मत—

पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, उदयपुर

महाकवि चंद बरदई कृत

पृथ्वीराज रासे की प्रथम संरक्षा*

परम प्रसिद्ध और सर्वमान्य चंदबरदई कृत पृथ्वीराज रासे की प्राचीनता प्रामाणिकता और सत्यता पर कविराज श्रीश्यामलदासजी का आक्षेप लेख कि जो एशियाटिक सोसाईटी बंगाल के जर्नेल पुस्तक ५५ भाग १, अंक १, में प्रकाशित हुआ है और उसका "पृथ्वीराज रासे की नवीनता" नामक लोक-भाषा में अनुवाद ॥

१—मैंने कविराज जी के इस आक्षेप-लेख को बहुत विचार और अनुराग के साथ अवलोकन किया। उसका स्पष्ट अभिप्राय सर्व साधारणों को इस झूंठे अनुभव के धोके से बचाने का है कि पृथ्वीराज रासा जो इतने दिनों से चंदबरदई कृत करके प्रसिद्ध है, वह वास्तव में उसका रचा नहीं है; किन्तु वह पंदरवें अथवा सोलवें शतक में एक जान बूझ कर किया हुआ जाल है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यह लेख जो इतनी बड़ी प्रतिज्ञा और सब बातों को उलट पलट कर देने को इतना बड़ा साहस करता है, वह इतिहास वेत्ताओं की मंडलियों में कोलाहल

* म० म० कविराजा श्यामलदास के 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' शीर्षक निबन्ध के उत्तर में उपर्युक्त पण्ड्याजी ने इस लेख को सन् १८८७ ईस्वी में बनारस मेडिकल हॉल नामक यंत्रालय में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया था। इससे रासो के विषय में पण्ड्या जी की कैसी मान्यता थी, उसका भली प्रकार से ज्ञान हो सकेगा। आगे हम इसी क्रम से अन्यान्य विद्वानों की विचार-धाराओं को भी प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने रासो पर अध्ययन किया है और उसके पक्ष-विपक्ष में उनका कुछ मत है, जा भावी शोधकों एवं अन्वेषकों को रासो सम्बन्धी गूढ़ समस्या सुलझाने में पथ-प्रदर्शक का काम देगा, एवं इस ग्रन्थ सम्बन्धी शोध सामग्री एक ही स्थान पर इस ग्रन्थ में मिल जायगी। अन्त में रासो के विषय में नवीन दृष्टि बिन्दु और शिलालेख ताम्रपत्र आदि का भी परिचय देंगे, जो अब तक प्रकाश में नहीं आये हैं। —सम्पादक

उत्पन्न न करें। मेरे इस विषय में इतिहास की पुरानी पुस्तकों और राजपूताने के वृद्ध चारण भाटादि जो इस रासे में पारगत हैं—उनसे निश्चय करने में मुझे यह विचार कर कहने को निर्देश किया है कि कविराज के तर्क और अनुमान अयुक्त और असंतोषक हैं।

२—उक्त लेख को ध्यान देकर पढ़ने वालों को उसकी लिखावट का प्रकार यह विदित करता है कि उसके ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) भाटों और बेदले[1] के चौहानों के साथ कुछ अमित्र भावना रखते हैं और वह चंद बरदाई कृत इस महा काव्य को अपनी महिमा में खड़े हुए देख सहन नहीं कर सकते—कि जो चंद कवि की महाकाव्य-शक्ति का एक अमर स्मारक चिन्ह है; क्योंकि जिस सिद्धान्त का उन्होंने अपने ग्रन्थभर में अवलम्ब किया है और जिस पर से उनकी दृष्टि अन्यत्र कहीं नहीं गई है, वह यह है कि यह रासा राजपूताने के किसी कल्पना करने वाले भाट का व्यर्थ बनाया हुआ झूंठा और जाली सिद्ध हो।

यद्यपि पक्षपात रहित न्याय करने वाले की सहायता करने को रासे में बहुत से स्थल ऐसे हैं, जो कि इसकी सत्यता सिद्ध करते हैं, तथापि मुझे यह कहते शोक होता है कि ग्रंथकर्ता ने उन स्थलों को अपने विचार करने में त्याग दिये हैं कि जिन पर उन्हें सत्य के पक्षपात रहित अन्वेषण करने में अवश्य विचार करना योग्य था।

३—ग्रंथकर्त्ता [कविराज] मिस्टर जोन बीम्स और अन्य विद्वान् शोधकों के इस कहने से असम्मत है कि पृथ्वीराज रासा नामक महाकाव्य दिल्ली और अजमेर के अंतिम चौहान बादशाह के कविराज चंद बरदाई का बनाया हुआ है और वह बारहवें शतक के लगभग के बने हुए हिन्दी के सब काव्यों में बहुत ही प्राचीन है। वरुक ग्रंथ कर्त्ता (कविराज) यह कहते हैं कि पृथ्वीराज रासा तुलसी-कृत रामायण और रायमल्ल रासे के पीछे बना हुआ है। परन्तु यह उनकी भूल है; क्योंकि उन्होंने पिछली दोनों पुस्तकों के बनने का ठीक समय विदित नहीं किया

---

[1] "हमारे वृद्ध और बहुदर्शी बनारस वाले राजा श्री शिवप्रसाद जी महाशय सी. एस. आई. कविराज जी के लेख को विचार कर यथावत् कहते हैं कि कविराजजी चौहानों से कुछ खफा से मालूम होते हैं।

है। वे अपने केवल इस बहुत दृढ़ और सुनिश्चित कहने पर ही संतुष्ट हैं कि रासा संवत् १६४० से लेकर सं० १६७० के बीच के समय में अवश्य ही जाली बना है। यह बात विचार करने लायक है कि नीचे लिखे दोहे के अनुसार गुसांई तुलसीदास का मरण सं० १६ ० में होना स्पष्ट निश्चित है:—

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

और तुलसीदासजी के जीवन चरित्र[1] की कथा में से यह विख्यात है कि उन्होंने बाल्यावस्था व्यतीत होने पर सोरों में विद्या पढ़ी, उनके पिता के मरने पर उनका विवाह हुआ। तदनन्तर उनके कुछ दिन आनन्द पूर्वक गृहस्थाश्रम के सब व्यवहारों में व्यतीत हुए। उनके एक लड़का उत्पन्न हुआ और वे अपनी स्त्री पर अति प्रेम रखने वाले पुरुष थे। एक दिन उनकी स्त्री उनसे बिना पूछे अपने नैहर चली गई। जब कि वह उनके घर में न मिली, तब वे उसे देखने को अपने स्वसुर के घर गये। स्त्री ने उनको स्नेह के मारे वहाँ आये देख कर नीचे लिखे दोहे कह ताड़ना दिया:—

दोहा

लाजन लागत आप कों, दौरे आयेहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥ १॥

अस्थि चर्म मय देह मम, तामों जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मह. होत न तौ भो भीति॥ २॥

यह सुनते ही उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसके वचन के प्रभाव का उनको अनुभव हुआ। उन्होंने संसार का त्याग किया और राम का ध्यान करते करते अयोध्या को गये। वहाँ उन्होंने रामानन्दी संप्रदाय के गोस्वामी होकर कुछ समय तक तप किया। फिर पीछे वे काशी आय रहे और अस्सी घाट पर जहाँ उनका अब भी आश्रम है, वहाँ उन्होंने कुछ समय तक जप और अनुष्ठान किया। वहाँ उन्होंने

---

१. पंडित विश्वेश्वरदत्त कृत भक्तमाल की कथा पंडित बिहारीलाल चौबे कृत वर्णना बोध और मिस्टर ग्राऊज साहब कृत रामायण के अमूल्य अंग्रेजी अनुवाद को देखो।

रामायण की कथा का सप्रेम श्रवण और पाठ किया। इसके थोड़े ही समय पीछे रामचन्द्रजी ने उनको स्वप्न में दर्शन दिये और भाषा में रामायण बनाने की आज्ञा किया। यही कारण उनके परम प्रसिद्ध ग्रन्थ रामायण के बनने का हुआ। अब जो उनकी उम्र ८० वर्ष की भी मानें तो भी हमें विचारना चाहिये कि प्रथमतः कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में विवाह का अवस्था क्या है? क्योंकि बहुत ही बाल्यावस्था के विवाह का प्रचार इन लोगों में प्रचलित नहीं है और जो इनमें शीघ्र से शीघ्र विवाह होता है, तो भी ३० वर्ष अथवा उसके लगभग की अवस्था में होता है और बहुत से स्त्री-पुरुष आज भी चालीस वर्ष की वय तक के कुँवारे मिल सकते हैं। दूसरे उनको गृहस्थाश्रम के सब व्यवहार कर के अपनी अवस्था के कौन से भाग में रामायण बनाने का समय मिला था। यदि हम ठीक जवानी में अर्थात् ४० वर्ष की अवस्था में भी रामायण बनाई मानें तो भी सं० १६४० से पहले रामायण बनाने का समय नहीं हो सकता। अब यह स्पष्ट है कि ग्रन्थकर्ता की सम्मति के अनुसार भी उक्त काव्य सं० १६४० से १६७० तक के समय में ही बने हैं। तब फिर यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि रामायण[1] और रायमल रासा पहले के बने हुए हैं। यदि ग्रन्थकर्ता (कविराज) ने उक्त काव्यों के भिन्न २ सम्वत् मिति खोज कर प्रकाश किये होते तो उनका अनुमान विश्वास करने और सर्व साधारणों के मानने के योग्य होता।

---

१. कविराजजी अपने लेख में स्पष्ट नहीं लिखते हैं कि वे रामायण के बनने का सही सम्वत् कौनसा मानते हैं। तथापि मालूम होता है कि उन्होंने सं० १६३१ को शुद्ध माना है। बालकांड के एक छन्द पर उनका विश्वास है। परन्तु यह छन्द कितने विश्वास योग्य है यह एक संशय भरी बात है; क्योंकि रामायण भी पृथ्वीराज रासे जैसी है और वह क्षेपक अंग से खाली नहीं है। अतएव बाजारू छपी हुई पुस्तकों के सिवाय पुरानी पुस्तकों की विश्वास करने योग्य साक्षी और तुलसीदासजी के जीवन चरित्र सम्बन्धी समाचार अन्य प्रकार से सत्य के प्राप्त करने के लिये अत्यावश्यक हैं। वाल्मीक रामायण में और तुलसीकृत में बहुत फरक है। बालकांड में लिखि ग्रन्थकर्ता की भूमिका में बहुत भूलें हैं। मैं बालकांड में लिखे हुए सम्वत् मिति को शुद्ध नहीं मानता हूँ; क्योंकि जो क्षेपक अंग में कुछ समय से एकत्र करता रहा हूँ उससे बहुत सी भूलें पाई जाति है।

४—ग्रन्थकर्ता (कविराज) कहते हैं कि मेवाड़ राज्य के अव्वल दर्जे के उमराव बेदले और कोठारिया के घराने के किसी पढ़े लिखे भाट ने अपनी जाति का बड़प्पन दिखाने और हिन्दुस्थान के दूसरे प्रदेशों से आये हुए इन चौहानों की राजपूताने के क्षत्रियों में समान प्रतिष्ठा बतलाने को यह पृथ्वीराज रासा नामक महा काव्य जाली बनाया है। उनका यह कहना बिलकुल ध्यान में नहीं आ सकता, क्योंकि सब अंग्रेजी, फ़ारसी और देशी इतिहास चौहानों का कुलीन और प्रतापी होना हमको अच्छी तरह स्पष्ट सिद्ध कर बताते हैं इसके सिवाय यह एक कैसा बड़ा प्रमाण है कि जब से यह बेदले और कोठारिये के चौहान मेवाड़ में आये हैं, तब से आज तक मेवाड़ के परम कुलीन महाराणाओं ने उनकी अव्वल दर्जे की प्रतिष्ठा किया है और अपनी लड़की का सगपण [1] तक उनके साथ किया है। यह बात उनकी प्रतिष्ठा विदित करती है। अर्थात् जो यह लोग राजपूताने के क्षत्रियों के समान प्रतिष्ठा वाले न होते तो उनको कन्यादान कभी न दिया जाता। अब भी यदि कोई महाराणा साहब मेवाड़ से निश्चय करे तो मुझे आशा है कि वे उनको ऐसे ही प्रतिष्ठित बतलावेंगे तो फिर इनको इस जाली रासे के द्वारा राजपूताने के क्षत्रियों के समान प्रतिष्ठा बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं थी और न ऐसी ही कोई आवश्कता भाटों [2] को महाराणाजी के गुण गाने से थी। क्योंकि इस जाली रासे से उनकी जातका कुछ बड़प्पन नहीं बढ़ा है। किन्तु इतिहासों से सिद्ध है कि जैसे वे इस रासे से पहिले जागीरें रखते थे, वैसे ही वे उसके पीछे अब भी रखते हैं।

५—ग्रंथकर्ता (कविराज) कहते हैं कि इस जाली रासे के बनाने वाले मेवाड़ के राजाओं की बहुत प्रशंसा का आश्रय सर्व साधारणों को अपने ग्रंथ की सत्यता और प्रामाणिकता मनवाने के लिये धोखा देने को किया है। फिर भी यह

---

1. हिन्दुओं में परस्पर विवाह का होना उभय पक्षवालों की समान प्रतिष्ठा का पूर्ण प्रमाण है।

2. यह प्रसिद्ध है कि सतयुग में वेलंग और वलास नामक भाट चंडी देवी की सेवा में और शेष के पास भीमसी थे। त्रेता में बलिराम के पास पिंगल और रामराज के पास रामपाल थे। द्वापर में पांडवों के पास संजय और नैमिषारण्य में शौनकादिक के पास वेताल, पृथ्वीराज के पास चंद और अकबर के पास गंग भाट थे।

इस रासे के जाली होने का कोई प्रबल कारण नहीं है। क्योंकि मेवाड़ के रा
भरतखंड भर में सदा से परम कुलीन और प्रतापी प्रसिद्ध हैं और यावत् क्षि
उनको अपना शिरोमणी मानते आये और मानते हैं। जो कदाचित् मेवाड़
राजा साधारण प्रतिष्ठा के होते तो ग्रंथकर्ता का यह कहना मानने योग्य होत
परन्तु जाली ग्रंथ बनाने वाला उस मनुष्य की प्रशंसा करने से अपना क्या प्रभाव
साधारणों पर प्रकाश कर सकता है कि जो प्रत्येक मनुष्य की प्रशंसा का पात्र है

२—अब ग्रंथकर्ता (कविराज) कहते हैं कि जाल करने वाले ने आशं
टालने के लिये, अपने महाकाव्य को चंद के नाम से प्रसिद्ध किया, यह उनकी भ
भा भूल है। क्योंकि यह सहसा ध्यान में नहीं आ सकता कि कोई मनुष्य,
पृथ्वीराज रासे जैसे महाकाव्य बनाने की व्युत्पत्ति और शक्ति सम्पन्न हो और
अपने रचे महाकाव्य के ग्रन्थकर्ता पने का मान किसी अन्य पुरुष को दे कि
उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता। यदि हम ग्रंथकर्ता के इस कहने
सत्य होना भी स्वीकार करें, तथापि उनका यह कहना उनकी इस प्रतिज्ञा को ह
करता है कि चंद नामक कवि हो नहीं हुआ। इसके सिवाय ग्रंथकर्ता का क
ही यह सिद्ध करता है कि पृथ्वीराज के समय में चंद नामक एक परम प्रसिद्ध क
था- कि जिसके देखा-देखी काव्यरचना करने की आकांक्षा साधारण भाटादि
थी और उसी ने पृथ्वीराज रासा बनाया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि
जाल होने के समय सर्व साधारणों के चित्त पर यह संस्कार था कि पृथ्वीराज रा
नामक कोई काव्यग्रंथ है और उसे चंद कवि ने बनाया है। यदि ऐसा न हे
तो जाल करने वाला अपने रचे ग्रंथ को चंद के नाम से प्रसिद्ध न करता श्र
न यह भरतखंड भर में इतने मान से प्रचार को प्राप्त होता।

७—केवल यही बात, कि पृथ्वीराज रासे में राजपूताने की कविता के ढ
से ऐसे शब्द और वागरीति मिलती है कि जो राजपूताने में ही प्रचलित है।
सिद्ध नहीं कर सकती है कि पृथ्वीराज रासे का अकृत्रिम ग्रन्थकर्ता कोठारिये
बेदले के घराने का कोई भाट था। क्योंकि प्रथम तो यह सिद्ध होना कठिन है
राजपूताने की भाषा के शब्द और वागरीति उस समय की हिन्दी भाषा में
न जारी रहे हों। क्या दिल्ली के अंतिम हिन्दू बादशाह और उनकी प्रजा श्र
राजपूताने के राजा और उनकी प्रजा में परस्पर कोई प्रकार का व्यवहार न थ

क्या दिल्ली और राजपूताने के राज्यों में परस्पर विवाह का व्यवहार प्रचलित न था? यदि यह बातें होना संभव है तो दिल्ली की हिन्दी भाषा में राजपूताने के शब्द और वागरीतियों का प्रयोग होना किसी भाँति असम्भव नहीं था। दूसरे पृथ्वीराज और चन्द दोनों राजपूताने में ही बड़े हुए थे और दोनों ने शिक्षा भी राजपूताने में ही पाई थी। क्या यह बहुत विलक्षण बात है और क्या यह एक आश्चर्य-दायक बात है कि चन्द ने अपने महाकाव्य में अपनी मातृ भाषा के वाक्यों का प्रयोग किया? जो ग्रन्थकर्ता का मेरी तरह यह मालूम होता तो वह अपने कहने को पीछा फेर लेते कि महाकवि चन्द और उसके भाई के वंश के वरदई राजोरा और राज्योरा-राव अब तक राजपूताने के देशी राज्यों में उपलब्ध हैं। यह लोग अब भी जागीरें रखते हैं। बेदले जैसे एक अति समीप ठिकाने में हम उक्त घरानों में एक नाथजी नामक राव को देखते हैं कि जिन पर बेदले रावजी महाशय बड़ा अनुग्रह रखते हैं और उनको वे उक्त महाकवि के उक्त घरानों में का एक संतान होना मानते हैं। तीसरे सत्त, फूल्यौ, चावद्दिसि, उत्त, पारत्थ, सारत्थ, भारत्थ, आदि जैसे शब्दों के प्रयोगों के लिये कोई विशेषता राजपूताने में ही नहीं थी, क्योंकि जब कोई छंद भरपूर वीररस में लिखा जाता है तो हिन्दुस्थान भर की भाषाओं में यह नियम है कि प्रायः अक्षरों को द्वित्त कर देते हैं, जो ऐसा न करें तो काव्यनिर्जीव और नीरस हो जाता है। इसके सिवाय किसी शब्द अथवा वाक्य खंड को बलपूर्वक उच्चारण करना होता है तो साधारण बोल-चाल की भाषा में भी प्रायः अक्षर द्वित्त कर दिये जाते हैं। इस प्रकार के प्रयोग हमको व्रज, मैनपुरी, गंगा, जमना, के बीच के देश, पंजाब और अन्य प्रदेशों में प्रायः मिलते हैं:—जैसे-इत्तै धरदै-उत्तै नांखदै-जबै, वाकूं, सत्त, चढ, आयो, तबै वो सत्ती भई-हद मिच्च, चुराई में डार दई वो कै त्तौ जाय है, हट्टो बच्चा मेंने या वात की चच्चा करो ही-सत्त हरदत्त, गुरदत्त, दाता-राम राम सत्त है, दो चार नित्त है हम तौ भत्थ अथवा भरत्थ मिलाप को मेला देखने गये हैं। चूक शब्द का शब्दार्थ हिन्दुस्थान की सब भाषाओं में एकसा ही है; परन्तु उसका भावार्थ भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न है। ग्रंथकर्ता का कहना कि चूक करने का आशय दगा से मार डालना-राजपूताने में ही विशेषता रखता है, वह स्पष्ट असंगत है। 'चूक' शब्द संस्कृत धातु चुक्क अथवा प्राकृत चुक्कई जिनका अर्थ

दुःख पहुँचाना है, उनसे बना है (देखो डाक्टर ए. एफ. आर. होर्नली साहब कृत हिन्दी धातुओं का संग्रह–एशियाटिक सोसाईटी बंगाल का जर्नल पुस्तक ४४ भाग १ अंक २ सन् १८८० पृष्ठ ६६)। यद्यपि इस शब्द का यह प्रयोग आज कल बहुत कम है, तथापि यह कोई तर्क नहीं है कि वह जिस समय रासा रचा गया था, या उसके बहुत दिन पीछे तक की हिन्दी भाषा में प्रचलित नहीं था देखो चूक आववी और चूक नाखवी इन दो गुजराती वाक्यों को कि जिनमें चूक शब्द बहुत प्राचीन समय के अर्थ में प्रयोग हुआ है (देखो–कविराज नर्मदाशङ्कर कृत नर्म (द) कोष पृ० २३६ और २३७)। इसके सिवाय बहुत से संस्कृत, ब्रजभाषा, प्राकृत, मागधी, और पंजाबी भाषा के शब्द और उनसे परस्पर बिगड़ कर बने अपभ्रंश शब्द महाकवि चंद के समय की हिन्दी में वर्तमान थे। ग्रंथकर्ता को भाषा सम्बन्धी व्युत्पत्तिग्रहण करने को चाहिये कि वह हिन्दुस्थान की भाषाओं के सापेक्ष्य-व्याकरण और मिस्टर जोन बीम्स और डाक्टर होर्नली साहब और अन्य प्रसिद्ध विद्वानों के रचित भाषा–सम्बन्धी–विद्या के ग्रंथों को अवलोकन करें। चौथे राजपूताने की भाषा जिसका ग्रंथकर्ता (कविराज जी) को बहुत अभिमान होना विदित होता है, वह कोई बिलकुल स्वतंत्र भाषा नहीं है किंतु,वह प्रत्येक रूप और सर्व भाव से संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और प्राकृत आदि भाषाओं से सम्बन्धित है। तब फिर वह कैसे अपने स्वतंत्र शब्द वाक्य और वागरीतियों के होने का दावा कर सकती है ?

८—जब कि मिस्टर जोन बीम्स साहब यह कहते हैं कि पृथ्वीराज रासे के ग्रन्थकर्ता ने बहुत से शब्दों पर अनुस्वार इस अभिप्राय से लगाये हैं कि वे संस्कृत के सदृश विदित हों, उनका यह कहना मेरी सम्मति में तो अन्यथा नहीं है। परन्तु अनुस्वारों के प्रयोग देख कर हमारे कविराज जी का यह अनुमान करना बिलकुल अयुक्त है कि रासे के रचने वाले को संस्कृत और मागधी भाषाओं का कुछ भी ज्ञान नहीं था। यदि हम पृथ्वीराज रासे की आज की बिगड़ी हुई दशा और जब वह बिलकुल शुद्ध दशा में उसके ग्रन्थकर्ता की लेखनी से सद्य लिखा गया था, विचारें तो हम उसके रचने वाले को उक्त भाषाओं के जानने का यह भारी अपराध किसी प्रकार से नहीं लगा सकते। आज का पृथ्वीराज रासा सात शतक पहिले का पृथ्वीराज रासा नहीं है। क्योंकि यदि हम काव्याधिकार की छूट भी करें, तो भी हम समय के फेर–फार को प्रत्येक पृष्ठ में प्रबल पाते हैं।

यहाँ तक हम कुशलता से कह सकते हैं कि नकल करने वालों और शोधन संस्कार करने वालों की अज्ञानता और राजपूताने में अब तक अशुद्ध हिन्दी लिखने के प्रचार ने पृथ्वीराज रासे को वर्तमान दशा में पहुँचाने के लिये बहुत कुछ किया है। अतएव क्या अज्ञानी मनुष्यों की कियी हुई भूलों को ग्रन्थकर्ता कवि के द्वार पर रखना योग्य है ? कभी नहीं। इसके सिवाय यह बड़ी विलक्षण बात है कि हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराज) ने चन्द कृत काव्य को अनुस्वार के प्रयोग सहित होने के कारण दोषी ठहराया है। हमारे पाठकों की तृप्ति के लिये हम गायन सागर (जो सं० १९४१=ई० १८८५ में छपा है) से नीचे लिखे कुछ छन्द उद्धृत कर यह सिद्ध करने को प्रमाण देते हैं कि अब तक हिन्दुस्थान में कवि लोग ऐसे हिन्दी भाषा में काव्य, भाषा को अति गुणकारी करने के लिये लिखते हैं। मेरे इस कहने की पुष्टि में इस प्रकार के सैंकड़ों छन्द पुराने और नये कवियों के ग्रन्थों से उद्धृत कर प्रमाण में प्रवेश किये जा सकते हैं; जब कि अनुस्वार सहित काव्य रचने की यह दशा है, तो मैं नहीं जानता कि पृथ्वीराज रासे के ग्रन्थकर्ता को हमारे कविराज जी ने अपने नीचे लिखे वचनों के द्वारा संस्कृत नहीं जानने का अयोग्य दोष क्यों लगाया है:—

"ग्रन्थकर्ता स्वयं तो वह भाषा नहीं पढ़ा था, पर ऐसा मालूम होता है कि किसी मागधी काव्य का वर्णन उसने सुना होगा और अपना ग्रन्थ प्राचीन जनाने के लिये उसने अनुस्वार लगाया, परन्तु यह खेद का विषय है कि इस प्रकार से बने हुए शब्द न तो हिन्दी के रहे न मागधी के। अनुस्वर लगाने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वह संस्कृत कुछ भी नहीं जानता था, क्योंकि उसको बिन्दु विसर्ग का ही ठीक ज्ञान न था।"

[गायन सागर पृष्ठ २६-३१]

तनूं धुज्जटा के समानं प्रमानं, कपालं विसालं सुचंद्रं सुहानं।
विशालं त्रिनेत्रं महाकाल कालं; जटा मध्य गगा तरंगा उछालं॥
पटं शुभ्र अगं भुजा में भुजुंगं, ग्रिवा मुण्डमाला सुशोभीत रंग।
यही बीधरीतं बतावै सगीतं, गुनी गात गानेंरु होवै पुनीतं॥
अती है अनोपं सुगौरं स्वरूपं, पटं स्वेत धारं गले चंप हारं।
करे कंगनं हेम राजे विराजे, सितं कंचुकी रंग रेशम छाजे।

सुढालं सिवारं सिरं बाल कालं, तनूं पें छवाये सुकेशं विशालं ॥
फुलं पारिजातं सुहानं सुकानं, गुनी यों बतावें त्रिरारी प्रमानं ।
अती कोमलं निर्मलं हेम अंगं, पटं पीत पैने वपू शाम रंगं ।
पटं लाल रंगं महा क्रोध अंगं, सुकुमार बाला स्वरूपं रसालं ।
त्रिशूलं विशालं महाकाल कालं, महादेव पूजा करंति सुबालं ॥
पटं पीत भासं सदा मंद हासं, त्रिशूलं करैं शुभ्र रूपं उजासं ।
पुनी चर्चितं म्रगमदं गंध भालं; अनोपं रसाल कपालं बिसालं ॥
पटं शुभ्र अंगं घनश्याम रंगं, स्वरूपं सुरंगं तिया चौत संगं ।
शुभं मस्तके कांचनीयं किरीटं, करमें छरी पुष्प को पत्र बीटं ॥
अतो चातुरं हास्य भासं विसालं, गले मुत्त माला सुजोतं उजासं ।
करे काम केलं धरि हांस जोसं, करैं गून गाने गुनी माल कौसं ॥
कपूरं सुहातं सुगंधं सुभालं, पटं शुभ्र है पद्म नेत्र विसालं ।
रही कंचुकी स्तन्नें रग शामं, सदा रंग भींजी रही अंग कामं ॥

६—कविराज कहते हैं कि पिंगल का शब्दार्थ कविता के तोल की किताब है। परन्तु यह अन्यथा है। उसका शब्दार्थ एक मुनि विशेष है—एक पिंगल नामक मुनि जो नागों के आचार्य हुए हैं, वह यही हुवे हैं कि जिनों ने छन्द सूत्र रचे हैं और जिनके नाम से पिंगल छन्द सूत्रम् नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। हम पिंगल का शब्दार्थ मुनि विशेष होने के प्रमाण में हलायुध के नीचे लिखे वचन उद्धृत करके लिखते हैं:—

[पिंलल छन्दः सूत्रम्]

श्रीमत् पिङ्गल नागोक्त, छन्दः शास्त्र महोदधेः ।
वृत्तानि मौक्तिकानीव कानिचिद्विचिनोम्यहं ॥ १ ॥
वेदानां प्रथमांगस्य, कवीनां नयनस्य च ।
पिंगलाचार्य्य सूत्रस्य, मया वृत्तिर्विधास्यते ॥ २ ॥
क्षीराब्धेरमृतं यद्वद्, उद्धृतं देव दानवैः ।
छन्दोऽब्धेः पिंगलाचार्य्यं, छन्दोऽमृतं तथोद्धृतं ॥ ३ ॥

यदि कविराज ने यह पिंगल का लाक्षणिक अर्थ होना कहा होता, तो कुछ सत्य भी होता। संस्कृत भाषा में तो यह शब्द स्पष्ट है। क्योंकि वह पिंगल छन्दः

सूत्रम् अर्थात् पिङ्गल कृत छन्द सूत्र कर के प्रसिद्धि है। परन्तु हिन्दी में कर्ता के नाम से उसका कर्म ग्रहण किया गया है। किन्तु अब बात यह है कि जैसे कविराज ने पिंगल का शब्दार्थ कविता के तोल की किताब माना है, वह कभी नहीं हो सकता। हम नहीं समझ सके कि उन्होंने "कविता के तोल की किताब" से क्या अर्थ माना है। यह वाक्य खण्ड वास्तव में एक बड़ी बुरी हिन्दी है। यूक्लिड़ का रेखागणित यूक्लिड़ करके कहलाता है, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि यूक्लिड़ का शब्दार्थ रेखागणित के तौल की किताब है, यद्यपि वह अलंकार विद्या के भावार्थ से कुछ सम्भव भी है। कविराजजी ने फिर भी एक भूल डिंगल के शब्दार्थ में कियी है डिंगल नामक एक पुरुष पैशाची और मागधी आदि भाषाओं का हिन्दुस्थान में प्रचार हुआ उस समय हुआ है। उसकी कविता के नियम पिंगल से कुछ भिन्न हैं और वह उसके नाम से प्रसिद्ध हैं।

१०—कविराजजी ने पृथ्वाराज रासे को विध्वंस और लोप करने वाला निर्णय अपनी सम्मति का वर्तमान पृथ्वीराज रासे के संवत् मिति यथार्थ न मिलने के आधार पर स्थिर करके किया है। और उनका उसके जाली होने का प्रमाण भी मुख्य कर के इस पर ही आधार रखता है। अब यदि उनका किसी पुस्तक के जाली होने का सिद्धान्त उसमें लिखे संवत् मिति अशुद्ध होने के कारण से हमारे पाठक सर्व साधारण लोग एक सर्व तंत्र सिद्धान्त करके मान लें तो बिचारे ग्रंथ-कर्ताओं की दुर्गति है, जिन्होंने अपने सिर पचाये हैं और अपने ग्रंथ रचन में कठिन परिश्रम व्यर्थ किये हैं। देखो टोड साहब कृत राजस्थान नामक पुस्तक के संवतों में जैसे छापे की भूल हैं, वैसे ही और भी होंगी, अतएव कविराज जी माने हुवे सिद्धान्त के अनुसार यह एक प्रमाण है कि राजस्थान पुस्तक के संवतों में जैसे छापे की भूल हैं, वैसे ही और भी होंगी। अतएव कविराजजी के माने हुवे सिद्धान्त के अनुसार यह एक प्रमाण है कि राजस्थान पुस्तक का ग्रंथकर्ता कर्नेल टोड साहब नामक कोई पुरुष नहीं हुआ, टोड साहब का राजस्थान केवल एक जाल ग्रन्थ है और वह किसी महाराणा साहब के अँग्रेजी भाषा जानने वाले नोकर भाट ने बनाया है; क्योंकि उसमें मेवाड़ के राजाओं की बहुत प्रशंसा है। निदान कविराज जी को मानना चाहिये था कि चन्द ने शब्द और अंक में सम्वत् मिति शुद्ध लिखे थे; परन्तु सात सौ वर्ष के इतने अतिकाल में लेखक दोष की भूलें इस

महाकाव्य को बहुत भ्रष्ट करने को उसमें धीरे धीरे प्रवेश हो गई है। जब ऐसा होता है, तब भिन्न २ पुस्तकों में पाठान्तर हो जाते हैं; जैसे कि कविराज जी के दिये एक नीचे लिखे प्रमाण में:—

शाक सुविक्रम सत्त शिव अट्ठ अग्ग पंचास।

इसके अट्ठ शब्द पर एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल के एडिटर साहब ने नीचे लिखा है:—

"कि ग्रन्थकर्ता (कविराज) की पुस्तक में हम 'अट्ठ' पाठ देखते हैं, एक दूसरी में पंच, और टाड साहब वाली में भिन्न पाठ हैं।"

क्या चन्द अथवा जाली रासे का बनाने वाला उक्त भिन्न भिन्न पाठों के उत्तर दाता हैं।

११ ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) ने आज के उपलब्ध पृथ्वीराज रासे में जो पृथ्वीराज जी की अंत की लड़ाई के सम्वत् ११५८ की सत्यता की परीक्षा करने में अपनी प्रसन्नता के अनुसार अब्बुलफ़िदा और तबक़ात नासरी नामक दो इतिहास अपने बहुत ही विश्वासी प्रमाण रूप मानकर सर्व साधारण को रासे में लिखित सम्वत् मिति अशुद्ध होने के लिये सचेत किये हैं, परन्तु उनका प्रथम प्रमाण अब्बुलफ़िदा नामक उनके अभिप्राय के अनुकूल पूर्ण रूप से साक्षी नहीं देता; क्योंकि कविराज जी स्वयम् कहते हैं कि "वह पृथ्वीराज की लड़ाई के विषय में कुछ नहीं लिखता है।" अतएव हम हमारे कविराज जी के इस अब्बुलफ़िदा नामक नाम-मात्र के प्रमाण को अस्पर्शित ही एक ओर रखते हैं। और तबक़ात नासरी नामक दूसरे प्रमाण के विषय में विचार करते हैं। तबक़ात नासरी का ग्रन्थकर्ता मिन हाज् इ-सराज शहाबुद्दीन के राज्य शासन के वर्णन में एक स्थान पर तो इस लड़ाई का संवत् हिजरी ५८८ ईस्वी ११६२ लिखता है; परन्तु एक दूसरे स्थान पर वह कहता है कि इस सम्वत् में शहाबुद्दीन सुलतान शाह से लड़ा था। इसी तरह सम्वत् हिजरी ५८१ ईस्वी ११८५ में तो वह लिखता है कि शहाबुद्दीन ने फिर लाहौर पर चढ़ाई कियी और खुसरो मालिक के वर्णन में वह स्वयं कहता है कि शहाबुद्दीन ने लाहौर पर केवल दो वार ही चढ़ाइयें कियीं अर्थात् प्रथम हिजरी ५७७ और दूसरी जब कि लाहोर विजय किया हि० ५८२ में यदि कविराजजी

मेजर रैवर्टी साहब कृत तबक़ात नासरी का अंग्रेज़ी भाषान्तर उनकी अमूल्य टिप्पणों के साथ अवलोकन करने का परिश्रम करेंगे तो हम को निश्चत है कि वे यह जान लेंगे कि उनका यह प्रमाण वैसा निर्दोषी नहीं है, जैसा कि उन्होंने उसे समझ रक्खा है; क्योंकि उसका कर्ता मिनहाज इ-सराज प्रायः ऐसी-ऐसी भूलें करता है कि जो उस समय के ग्रन्थ रचनेवाले के लिये एक बड़ी शोक की बात है और यह भी विदित है कि उसकी स्मरण शक्ति ऐसी बुरी है कि वह किसी एक स्थान पर तो कुछ लिखता है और दूसरे स्थान पर अपने अगले लिखे को स्वयं खंडित करता है। उसने अपने बाप के क़ाज़ी नीयत होने का वर्णन एक स्थान पर तो किया है; परंतु जहाँ सब काज़ियों की एक फ़िहरिस्त लिखी है, वहाँ हमको उसका नाम ही नहीं मिलता। शहाबुद्दीन ने कैसी अयोग्य रीति से उच्चाह को प्राप्त किया कि इस बात को उसने बिलकुल ही छिपाया है। इसी तरह जहाँ कि उसने शहाबुद्दीन की जीत साफल्यता और धर्म-युद्धों की गणना कियी है, वहाँ बहुत सी उसने भूलें कियी हैं। वह एक बड़ा बाबदूक अर्थात् बढ़बोला भी है कि वह लिखता है कि गजनी के खज़ाने में ठीक १५०० पंद्रै सौ मन केवल हीरे थे और उसी के साथ वह हमको अन्य जवाहर का भी इसी के अनुसार विचार कर लेने को निर्देश करता है। यदि हम उसके मन को तबरीज़ मन होना भी समझें कि जो अंग्रेज़ी दो पांउंड अर्थात् एक सेर के बराबर होता है, तो भी उसका वर्णन बहुत ही असंभव है। हम नहीं जानते कि हमारे कविराजजी ने उस समय के इतिहास लिखने वाले हसन निज़ामी आदि का तिरस्कार कर के केवल इस मिन हाज-इ-सराज को ही क्यों प्रसन्न किया है? क्या इसका यह कारण नहीं है कि वे इन बातों में असम्मत हैं? जो कि कविराज जी ने अपने लेख में यह स्वयं स्वीकार कर लिया है कि तबक़ात नासरी के ग्रन्थ कर्ता ने नामों में बहुत सी भूलें कियी हैं। अतएव हम उनको अपने खडन में नहीं लेते। हम आशा करते हैं कि हमारे पाठकों को यह भले प्रकार ज्ञात है कि शहाबुद्दीन के राज्य समय का वर्णन मिनहाज़-इ-सराज़ का लिखा हुआ इस विवाद विषय में सुनी हुई साक्षी है। क्योंकि वह हिज़री ५८६ में उत्पन्न हुआ था और उसने अपनी पुस्तक में स्वयं लिखा है कि हिज़री ६२४ में उसने प्रथम ही हिन्दुस्थान में पैर रक्खा था। हम पृथ्वीराज जी की आख़िरी लड़ाई का संवत् १२४८/४६ केवल तबक़ात नासरी के ही प्रमाण पर अंगीकार

नहीं करते; परंतु फारसी इतिहासों की बहु सम्मति और संप्रत शोधनों के प्रमाण पर स्वीकार करते हैं। अब हम को यह कहना बाकी है कि हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) को यह मानना अयोग्य न था कि अक्रित्रिम चंद कवि ने रासे में सही संवत् मिती लिखे थे, परन्तु वे इतने अतिकाल में भिन्न२ संस्करण करने वालों की भूलों से अशुद्ध हो गये हैं (जैसा कि बहुत से विद्वान् लोग इन भूलों को संख्या दोष सम्बन्धी समझते हैं) वा जो कुछ हमने हमारे निगमन में सतर्क प्रकाश किया है।

१२ हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) कर्नेल टोड साहब पर अपने नीचे लिखे वचनों के द्वारा आक्षेप करते हैं:—कर्नेल टोड साहब ने अपनी 'राजस्थान' पुस्तक में सम्वत् १२४६ विक्रमी शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की लड़ाई के वास्ते लिखा है; पर उन्होंने पृथ्वीराज रासा में लिखे हुए सम्वत् ११५८ के अशुद्ध होने का कारण कुछ नहीं लिखा। अर्थात् उसको अशुद्ध ठहराने के लिये कोई सबूत या दलील नहीं लिखी "

यदि कविराज जी ने जैसा कि उनको उचित था, कर्नेल टोड साहब की पुस्तकों को अच्छी तरह अवलोकन करके कि जो केवल उनकी प्रीत का एक परिश्रम है और उनमें रत्न रूपी संग्रहीत प्रत्येक विषय की सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना कियी है, अपनी सम्मति को स्थिर कियी होती तो वे ऐसी एक दैवाधीन वृत्तान्त-व्याख्या न करते। हम उनको नीचे लिखी कर्नेल टोड साहब कृत राजस्थान भाग २ के पृष्ठ ४२० टिप्पण २ सूचन करते हैं:—

"हाड़ाओं का वंश वर्णन करने वाला (अस्तिपालजी का) सम्वत् ६८१ कहता है; परन्तु आश्चर्य की बात है कि चौहानों की सब शाखा वाले १०० वर्ष की एक सी भूल से अपने सम्वत् अगले लिखते हैं। जैसे वीसल देवजी के अनहलपुर पट्टन प्राप्त करने का सम्वत् १०८६ के स्थान में ६८६ लिखते हैं। परन्तु यह भूल चन्द में भी प्रवेश हो गई है कि जो पृथ्वीराज का कवि था, जिसका जन्म संवत् १२१५ के स्थान में १११५ कर दिया गया है, और सर्वरीत्या सम्भव है कि किसी कवि की अज्ञानता के द्वारा यहीं से भूल प्रारम्भ हुई है।"

क्या हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) इस टिप्पण से पृथ्वीराज रासे में लिखे सम्वतों की सत्यता के विषय में टोड साहब की क्या सम्मति थी, यह नहीं अनुमान कर सकते ?

१३ कर्नेल टोड साहब ने लिखा है कि रावल समरसी जी के पौत्र राणा राहपजी ने विक्रमी सम्वत् के तेहरवें शतक में राज्य किया। परन्तु हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) उनका राज्य समय चौदहवें शतक के चौथे भाग में स्थापना करते हैं। परन्तु जब तक यह मिस्टर जोन बिम्स, डाक्टर होर्नली और डाक्टर आर॰ मित्र महाशय जैसे विद्वानों की साक्षी से समर्थन न हो, तब तक मैं उनके इस कहने को विश्वास कर मान नहीं सकता। क्योंकि मेवाड़ के महाराणा महाशयों की वंशावली वर्णन करने की जिस भूमि पर हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराज) चलते हैं, वह बहुत नाजुक और फिसलनी है। उन्होंने एक अपनी मनमानी वंशावली बना रक्खी है। मुझे संदेह है कि वे जैसी उसे मानते हैं, वैसी वह वास्तविक बहुत ही शुद्ध नहीं है। अतएव जब तक उसके गुणदोष की परीक्षा होकर उसे विद्वान् अंगीकार न कर लें, तब तक मुझे संतुष्ट होने का कोई योग्य कारण नहीं है और विशेष करके इससे भी कि वह कर्नेल टोड, डाक्टर हंटर और मिस्टर फोर्बस् साहब की लिखित वंशावली के संवतों से सम्मत नहीं है। यदि यह भी मान लें कि इन विद्वान् महाशयों ने भूल कियी है, तथापि इससे यह सारांश नहीं निकल सकता कि रासा आद्योपान्त जाली है।

१४ यह विलक्षण बात है कि पृथ्वीराज रासे ने ही सब इतिहासों और बड़वा भाटों के लेखों में भूल डाल दी हैं; क्योंकि जो कुछ अंग्रेजी तवारीखों में लिखा है, वह केवल पृथ्वीराज रासे से ही लेकर नहीं लिखा गया है; किन्तु अन्य मूलों से बहुत विचार और शोध करके सब वृत्त लिखे गये हैं। यह भी नहीं है कि राजपूताने के राजाओं के घरानों के निज इतिहास भी सब रासे के प्रमाण से ही लिखे गये हैं। किसी बड़वा भाट अथवा चारण से पूछो और वह तुमको नीचे लिखे प्रमाण एक सरल और अकृत्रिम उत्तर देंगे कि "बापजी, यह सम्वत् मिती और वंशावली जैसे हमारे बापदादे लिखते आये हैं, वह हाजिर है। इनको एक बार आगे कर्नेल टोड साहब ने भी देखे थे और उन्होंने अमुक २ स्थानों में भूलें बतलाई थीं। यदि कहीं कोई भूल हो, तो उनको आप शुद्ध कर लीजिये।" जो

कुछ हमारे रासे की पुस्तकों में भूलें होंगी उनका उत्तरदाता उसका ग्रन्थकर्ता नह है; किन्तु लेखकों ने भूल की हैं और असूया वाले मनुष्यों ने अपने किस अभिप्राय के सिद्ध करने को संवतों में फेरफार कर दिया होगा।

१५ ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) ने बीजोली की प्रशस्ति सम्वत् १२२६ क कि जिसमें सोमेश्वर के पीछे किसी अजमेर के चौहान राजा का नाम नहीं लिख है, उससे जो तात्पर्य निकाला है कि तब तक पृथ्वीराज जी राज गद्दी पर नह बैठे थे, वह असत्य है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीराज जी इसके पहिले ह दिल्ली चले गये थे और तँवर राजाओं के कुल में गोद रह गये थे। इसलिये उनका नाम यथार्थता से अजमेर वालों की नामावली में नहीं लिखा गया है ग्रन्थकर्ता (कविराज) का यह अनुमान है कि पृथ्वीराज जी मेनालगढ़ क की प्रशस्ति लिखी सम्वत् १२२६ के चैत्र कृष्णा १५ के पीछे ४२ दिन के अवस में दिल्ली की राजगद्दी पर बैठे होंगे। मेरी सम्मति में बिलकुल ही असत्य है क्योंकि पृथ्वीराज जी के राज्य शासन समय की एक प्रशस्ति कर्नेल स्किनर साह को सन् १८१८ ई० में हाँसी में से सम्वत् १२२४ की मिल चुकी है कि जिसको उन्होंने हिन्दुस्थान के गवर्नर जनरैल लोड हेस्टिङ्गस साह बहादुर के नजर करी थी। इस प्रशस्ति का कुछ अंश रौयल एशियाटि सोसाईटी लंडन के ट्रैन्जैक्शन्स पुस्तक १ में छप चुका है। इसके सिवाय ए प्रशस्ति संवत् १२२० की दिल्ली में फीरोजशाह के महल में से प्राप्त हुई है। इ प्रशस्ति को कई एक प्राचीन शोधों के अनुरागी विद्वान् शोधकों ने बहुत सूक्ष्म विचा और गुणदोष की परीक्षा के साथ मनन कर के पृथ्वीराज जी के राज्याभिषेक क संवत् १२२० निर्णय किया है। इन प्रशस्तियों के प्रमाणों के साथ कर्नैल टो साहब के राजस्थान पुस्तक १ पृष्ठ ८० में के नीचे लिखे वचन भी मेरे कहने क पुष्ट करते हैं:—

"दिल्ली जिसका प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ है, उसे युधिष्ठिर ने स्थापन किय था और उसका आठ शतकों तक निर्जन पड़ा रहना ख्याति वर्णन करती है इसक अनंगपाल तँवर ने सं० ८४८ (ई० ७९२) में पुनश्च स्थापन किया और बसायी उसके पीछे इस घराने में राजा हुए जिनमें अंतिम राजा स्थापन करने वाले के ना

का अनंगपाल नामक ही हुआ कि जिसने सं० १२२०=ई० ११६४ में राजपूतों की रीति के विरुद्ध अपने संतान रहित होने के कारण अपनी पुत्री के पुत्र चौहान पृथ्वीराज को राज देकर छोड़ दियी।"

१६ यह एक विचित्र बात है कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) यह नहीं मानते कि समरसीजी का बादशाह पृथ्वीराजजी की बहन पृथाबाई से विवाह हुआ था। इसमें वे असंदिग्ध प्रमाण उनके विपक्ष में होते हुए भी हठ से अविश्वास करते हैं। उनके स्वमताभिमान का यह कारण मालूम होता है कि वे चाहते हैं कि रासा जाली सिद्ध होकर निष्फल सिद्ध हो। यदि वे उनके विवाह का होना सत्य मान लें तो उनका पक्ष झूठा हो जाय; क्योंकि तब तो फिर समरसी जी का पृथ्वीराज जी के समय में होना प्रमाण होजाय। अब देखिये कि राजसमुद्र पर की प्रशस्ति जो महाराणा राजसिंहजी के आज्ञानुसार बनाई गई है, वह पृथाबाई का विवाह समरसी जी से होने की नीचे लिखी साक्षी देती है:—

ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्यभूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यति हार्दतः॥

जो कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने उक्त प्रशस्ति में अभी तक दोष नहीं निकाला है, अतएव मैं विचारता हूँ कि वे उसे प्रामाणिक मानते होंगे, परन्तु मुझे डर है कि वे उसे अपने पक्ष को प्रतिपादन करने वाली न देखकर पृथ्वीराज रासे की तरह झूठी होना न प्रकाश करें। दूसरे सनावड अर्थात् सनाढ्य ब्राह्मण आदि को मेवाड़ में बसने का एक दूसरा वृत्तान्त कभी असिद्ध और त्याग नहीं हो सकता कि वे प्रथम ही पृथाबाई के दायजे में आकर राजपूताने के इस भाग में बसे हैं और उनके संतान अब तक जागीरें खाते हैं।

१७ समरसीजी न तो पृथ्वीराजजी के समय में हुवे और न उन्होंने उनकी बहन से विवाह किया, यह ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) का मान लेना ही इस बात का कारण है कि वे पृथ्वीराज रासे का जाली होना और मेवाड़ तथा हिन्दुस्थान की अन्य प्रान्तों के इतिहासों में भूलों का हो जाना सिद्ध और प्रकाश करते हैं। उन्होंने कई एक प्रशस्तियों की साक्षी पर यह सिद्ध किया है कि समरसीजी सम्वत् १३३० से सं० १३४४ तक के समय में हुवे होंगे। अब मैं उनकी प्रशस्तियों के

प्रमाणों में दोष दिखा कर कितनेक प्रतिष्ठित सरदार, उमराव; पंडित, भाट और चारण, जो कि ग्रन्थकर्ता के जाति बन्धु हैं उनको सम्मति से यह सिद्ध कर बताऊँगा कि समरसिंहजी अपने साले पृथ्वीराजजी के समय में हुए थे।

१८ चित्तौड़ के किले के नीचे बहने वाली गम्भीरी नदी के पुल में की प्रशस्ति सम्वत् १३२४ की में केवल महाराज तेजसिंह का नाम लिखा होने ने ही ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) को भ्रम में डाल दिये हैं और इन महाराज तेजसिंह को रावल समरसीजी के पिता सहसा कर ठहराने में उन्हें भुला दिये हैं यदि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने सावधानता और गम्भीरता से उक्त नाम के सम्बन्धित सब बातों को पक्षपात रहित निर्णय करने के लिये विचार किया होता तो वे ऐसी आकस्मिक सम्मति से धोखा न खाते। अब हमें उस नाम के पहिले के विशेषण महाराज को एक क्षण भर विचारना चाहिये; क्योंकि केवल महाराज शब्द का किसी प्रशस्ति में किसी महाराणा साहब मेवाड़ के नाम के पहिले प्रयोग हुवा नहीं पाया जाता है। यदि हम यह भी मानलें कि कहीं २ ऐसा भी हुवा है, तथापि हम वहाँ उस नाम को महाराणा साहब के घराने के अन्य निज विशेषणों से विभूषित पाते हैं कि जिससे यह जानने में कठिनता नहीं रहती कि अमुक कौन से महाराणा हैं। इसके सिवाय यह प्रशस्ति जो विवाद में है, वह एक बड़ा विचित्र है; क्योंकि वह वैसी नहीं है कि जैसी सब प्रशास्तियाँ हुआ करती हैं और न उससे प्रशस्ति विषयक कुछ निमित्त स्पष्ट मालूम हो सकता है। अतएव जब तक अन्य प्रशस्ति से यह समर्थन न हो, तब तक मैं समरसीजी के होने के सर्वमान्य समय को मिथ्या मानने को उसे पूर्ण प्रमाण रूप नहीं स्वीकार कर सकता।

१९ अब हम अन्य तीन प्रशस्तियों की परीक्षा करेंगे कि जिनको ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने प्रमाण में दियी हैं। प्रथम तो वह जो गंभीरी नदी के पुल में संवत् १३-२ के ज्येष्ठ शुक्ला १३ का मिली है, दूसरा सं० १३३५ के वैशाख सुदी ५ गुरुवार की और तीसरी वैद्यनाथजी के मंदिर को धरती भेंट हुई उसकी संवत् १३४४ के वैशाख सुदी ३ की। मालूम होता है कि यह प्रशस्तियें भी अनादर किये गये पृथ्वीराज रासे के मानने की ही हैं! क्योंकि रासे में तो संवत् मिती सत्य संवतों की अपेक्षा एक शतक पहिले के हैं और इन में एक सौ वर्ष पीछे के हैं इन प्रशस्तियों के अंतर के विषय में मेरे एतद्देशीय प्रतिष्ठित और ज्ञाता

पुरुषों से निश्चय करने पर मुझे यह कारण मालूम हुआ कि किसी असूया वाले ने दो २ के अंक को तीन ३ बनादिया है। मुझे इस सम्मति के अविश्वास करने को कोई कारण नहीं है क्योंकि इतने ही परिवर्तन के मान लेने से समरसीजी का ठीक समय आय मिलता है और दूसरे एतद्देशीयों के इस सतर्क कहने के आगे हमारे ग्रन्थकर्ता और शोधक का कहना अयुक्त है। मेनाल में के समरसा के मंदिर को प्रशस्ति सं० १२-२ की इनको सं० १२३२. १२३५ और १२४४ की होना प्रमाण करती और विश्वास दिलाती है। इसके सिवाय यह प्रशस्तियें सुरह मालूम देती हैं और सुरहों पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता है; क्योंकि बहुत सी सुरह और ताँबापत्र जमीन प्राप्त करने के लिये अर्थी लोगों ने जाली बना रक्खे हैं। हमने यह मान लिया कि कविराजजी की प्रमाण में दियी प्रशस्तियें झूंठी नहीं हैं; तथापि हम यह मानेंगे कि इनके सवत् मिति असत्य हैं और वे उनमें लिखे वर्तमानों के बहुत दिन पाछे लगाई गई हैं।

२० अब हमको आबू पर्वत पर के अचलेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति की परीक्षा करना बाकी रहा है। इसके सम्वत् मिति अर्थात् सम्वत् १३४२ मृगशिर शुदी १ के विषय में सब एतद्देशीय प्रतिष्ठित पंडित और भाटों का सम्मत होकर यह कहना है कि यह सम्वत् मिति महाराणा समरसीजी के मन्दिर के जीर्णोद्धार कराने का नहीं हैं; किन्तु प्रशस्ति के लगाये जाने का है। इन लोगों के कहने पर ही संतुष्ट न होकर मैंने मेरे विद्वान् मित्र काशी के पंडितों से भी इस विषय में सम्मति लियी तो मेरे निर्णय करने का फल एतद्देशीयों के ही कथन का समर्थन करना है। यदि पक्षपात रहित होकर निर्धार किया जावे तो मेरे तर्क और अनुमान जो अब तक मैंने वर्णन किये हैं और अब आगे कहूँगा, उनकी संगती मिलाकर विचार करने से मालूम होगा कि मेरे एतद्देशीय मित्रों का कहना सत्य है। प्रशस्ति को ४६ वें श्लोक से अन्त पर्यन्त पढ़िये, आपको मालूम हो जावेगा कि उसमें लिखा सम्वत् प्रशस्ति लगाने का सम्वत् है; क्योंकि प्रशस्ति कृत यह वाक्यखण्ड मेरे इस कहने का पुष्ट करता है। ऐसा होना असामान्य नहीं है कि कोई स्थान कभी बनता है और उसकी प्रशस्ति कई वर्ष पीछे लगाई जाती है। इसके सिवाय यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उसका संवत् क्षेपक न हो और ऐसी दशा में वह उक्त तीन प्रशस्तियों के प्रकार की न हो। इसके साथ यह

मैं स्वीकार करता हूँ कि इस प्रशस्ति के संवत् मिती अशुद्ध होने और उसके ४६ वें श्लोक के उपलब्ध्य के विषय में जो नीचे लिखी सम्मति डाक्टर होर्नली साहब की है, वह असत्य नहीं है; किन्तु बहुत ही संभवित है। उक्त डाक्टर साहब कहते हैं कि:—

"रावल समरसी का एक पुरानी संस्कृत प्रशस्ति में वर्णन है कि जो उनके राज्य शासन समय में लिखी गई होना विदित करती है और वह उनके आबूपर्वत पर के बनाये एक मंदिर के स्मरणार्थ लगाई गई है। इस प्रशस्ति का एच० एच० विलसन साहब कृत एक निरूपण और अनुवाद एशियाटिक रिसर्चेज़ पुस्तक १६ पृष्ठ २८४ तथा २६१ से २६८ तक अक १० में प्रकाश हुआ है उसके ४६ वें श्लोक में समरसी का तुरुष्कों की सेना के हाथ से गुर्जर देश को बचाना लिखा है। संभव है कि यह हवाला शहाबुद्दीन की गुजरात की निष्फल हुई चढ़ाई सन् ११७८ ई० का है, जब कि वह भीमदेव से पराजित हुआ था; कि जो उस समय अपने भाई गुजरात के राजा मूलराज के हाथ नीचे पाटवी कुँवर था (देखो फोर्बस साहब कृत रासमाला पुस्तक १, पृष्ठ २०३) और मालूम होता है कि उसने समरसिंह के लिये बहुत ही पीछे का है। इसमें ठीक १०० वर्ष की भूल है; क्योंकि ई० सन् ११८५ उनके लिये बहुत ठीक होगा। संभव है कि प्रशस्ति का संवत् १२४२= ११८५ अवश्य होगा (देखो डाक्टर होर्नली साहब कृत पृथ्वीराज रासे का अंग्रेजी अनुवाद, भाग २, अंक १, पृष्ठ ३१, टिप्पणी १८७)।

२१ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) की प्रमाण में प्रवेश कियी हुई प्रशस्तियों में तो जो ऊपर कह आये, वह टंटा है, पर अब हम हमारे कहने को सिद्ध करने के लिये बिना टंटे के नीचे प्रमाण देते हैं:—

[क] मेनाल में समरसी का एक मन्दिर है, उसकी प्रशस्ति का सम्वत १२-२ है। उसमें समरसी और अर्णोराज का प्रशंसा है और पृथ्वीराज का भी उसमें वर्णन है। इसका नीचा लिखा प्रमाण कर्नैल टोड साहब कृत राजस्थान भाग २ के पृष्ठ ६८६ में हमारे पाठकों को नाम मात्र का भी परिश्रम न होकर प्राप्त हो सकता है:—

"समरसी के मन्दिर में हमको एक प्रशस्ति का जीर्ण टुकड़ा सम्वत् १२-२ का मिला। उसमें समरसी और अर्णोराज, देश के मालिक की प्रशंसा है और

और उसमें पृथ्वीराज का भी नाम है कि जिसने यवनों का नाश किया और वह नानंतसिंह के नाम पर अन्त हुई है।"

(ख) राजसमुद्र पर की बड़ी प्रशस्ति सम्वत् १७२२ के माघ शुदी १५ की जो मेवाड़ राज्य के आज्ञानुसार लगाई गई है उसमें नीचे लिखे श्लोक हैं के जिसकी सत्यता पर अभी तक न तो ग्रन्थकर्ता ने और न किसी अन्य महाशय ा प्रश्न किया है:—

ततः समर सिंहाख्याः पृथ्वीराजस्य भूपते ।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यति हार्दतः ॥ २४ ॥
गौरी साहिबदीनेन गज्जनीशेन संगरं ।
कुर्वतोऽखर्व गर्वस्य महा सामंत शोभिनः ॥ २५ ॥
दिल्लीश्वरस्य चौहान नाथस्यास्य सहाय कृत् ।
सद्वादश सहस्रैः स्ववीराणां सहितो रणे ॥ २६ ॥

(ग) एक भीखा रासा नामक पुस्तक में समरसिंहजी का पृथ्वीराजजी ः समय में होना और उनकी बहन पृथाबाई से विहाना और अपने साले की ाहाबुद्दीन गोरी के साथ लड़ाई में सहायता देना लिखा है। मैंने इस ऐतिहासिक ़स्तक की बड़ी खोज की, परन्तु दुःख है कि मेरा परिश्रम सफल न हुआ। ाश्चर्य है कि राजपूताने के चारण और भाट इस पुस्तक के होने से नटते ़। पर मुझे स्मरण है कि मैंने यह पुस्तक सरजोन म्योर साहब के ास उनके भतीजे कर्नेल जे० डबल्यू० जे० म्योर साहब पोलीटीकैल एजेन्ट हाडोती ौर टोंक के कहने से झालावाड़ में एक भाट के पास से रु० १५) में मोल लेकर ेजी थी। मैंने जो कुछ समरसीजी के विषय में ऊपर लिखा है, वह उसमें पढ़ा ा। मेरे इस पुस्तक के प्राप्त न होने के शोक में भाग्यबल से उसके नाम का ीचे लिखा हवाला राजसमुद्र का प्रशस्ति में मिल गया:—

बध्वा गोरिपतिं दैवात् स्वर्यातः सूर्य बिम्ब भित् ।
भीखारासा पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥

(घ) मेवाड़ में हरेक क्या बड़े और क्या छोटे क्या धनवान और क्या निर्धन जानते हैं कि पृथाबाई महाराणा समरसिंहजी को बियाही थी और नीचे लिखी जातियें उनके साथ दहेज में आई:—

१– सनावड़ अथवा सनाढ्य ब्राह्मण
२– दैपुरा महाजन
३– राजोरा राव आदिक

इन घरानों को संतान अब तक उनके पुरुषाओं के मेवाड़ में बसने के कारण से जागीरें खाते हैं। यदि कोई उनके पृथाबाई के दहेज में आने के विषय में प्रश्न करै, तो वे उससे बुरा मानते हैं—वे इसको एक प्रतिष्ठा की बात समझते हैं। अतएव मैं इसको समरसिंहजी के पृथ्वीराजजी के समय में होने का एक सर्वसाधारण मान्य प्रमाण मानता हूँ।

(ङ) इसी तरह मैं कर्नेल टोड साहब के लिखने को ऐतिहासिक और प्राचीन शोध सम्बन्धी बातों में प्रमाण रूप मानता हूँ। वे समरसीजी का जन्म सं० १२०६ में लिखते हैं कि जो मेनाल की प्रशस्ति से मिलता हुआ है। वे समरसिंहजी का सविस्तर जीवन चरित्र लिखते हैं। यदि उनके मन में थोड़ासा भी संदेह हुआ होता और कोई टंट रूपी बात उनको मिली होती तो वे सब प्रशस्तियों को उलटे बिना कभी संतुष्ट न हुवे होते। शोक है कि आज कर्नेल टोड राजपूताने की तवारीख लिखने को नहीं है!

(च) मेरे कहने को पुष्टि करने वाला एक दूसरा प्रमाण कर्नेल टोड साहब के लेख का यह है कि जो वे अपनी निज वार्ताओं में पुस्तक २ के पृष्ठ ६८२ में ता० २१ फरवरी के दिन अपने वार्षिक पर्यटन के अवसर में खास मोके पर मेनाल में पहुँच और वहां के स्थानों को देखकर उनका वृत्तान्त लिखते हैं। उन्होंने जो संक्षिप्त वृत्तान्त पृथ्वीराजजी और समरसीजी के महलों का लिखा है, वह हम नीचे उद्धृत कर लिखते हैं। क्या यह समरसिंहजी के पृथ्वीराजी के समय में होने का प्रौढ प्रमाण नहीं है?

"कंदरा के शृङ्ग के ठीक किनारे पर एक दूसरे से सटे हुवे मंदिर और रहने के स्थानों का एक वृन्द झुक रहा है कि जो पृथ्वीराज के नाम को धारण

करता है। इसी के सामने की ओर वैसा ही एक वृन्द चित्तौड़ के समरसी के नाम से प्रसिद्ध है कि जो दिल्ली और अजमेर के चौहान बादशाह का बहनेऊ था और जिसकी स्त्री पृथाबाई को चंद ने उसके पति और भाई के साथ अमर की है। यहाँ, जहाँ कि उन दोनों के बीच में यह एक बड़ी कंदरा है, यह दोनों घरानों के राजपूत अपने इन अंतिम गढों में अपने-अपने परिवार सहित मिलकर रहते थे और परम प्रीति पूर्वक अपने दिन व्यतीत करते थे कि जिससे उस समय की हिन्दुस्थान की पोलिटीकैल दशा निस्सन्देह बड़ी ही प्रौढ थी। यदि हम चंद की साक्षी पर विश्वास करें, और उसके न विश्वास करने के लिये हमें कोई कारण नहीं प्राप्त होता, कि जो पृथ्वीराज हिन्दुओं के यूलिसिस् की सलाहों को ध्यान देकर मानता तो मुसलमान हिन्दुस्थान के अधिपति न होते।"

२२ कविराजजी जयपुर, जोधपुर, बूँदी के राजाओं के सम्वतों में जो अन्तर पड़ता है, उसके विषय में बड़ा चाव करते हैं। परन्तु जो प्राचीन शोधन करने के अनुरागी विद्वान् लोग मेरे निगमन में कहे हुए प्रकार और सब वंश लिखने वालों की सम्मति को ग्रहण और अंगीकार करलें, तो यह बड़वा भाट और चारणों के सब लेखों में सौ वर्ष का एकसा अन्तर पड़ता है, उसका लेखा लग जावे।

२३ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) कहते हैं कि रासे में लेखक दोष अथवा किसी कवि के शोधन करने के दोष सम्बन्धी भूलें चार तर्कों से नहीं हो सकती। यद्यपि यह तर्क अयुक्त और झट खडन हो सकने जैसे है, तथापि हम उनके सन्तोष के लिये उनकी नीचे विवेचना करते हैं:—

(क) यदि हम नीचे लिखे छन्दों में केवल तर्क के लिये मानली हुई उक्त भूलों को शुद्ध कर पढ़ें तो छन्द बिलकुल नहीं टूटता है—

जैसे इसको	**जैसे यह पढ़ो**
एकादश से पंच दह	दुवादश से पंच दह
संवत इक्क दस पंच अग्ग	संबत दुक्क दस पंच अग्ग
एकादश संवतह	दुवादस संबतह
ग्यारह से अठतीस भनि	बारह से अरु बीस भनि

बारह से अठतीसा मानं	बारह से अरु बीसा मानं
ग्यारह से चालीस	बारह से चालीस
ग्यारह से इक्यावने	बारह से चालीस इक्क
एकादश से सत्त	द्वादस से सत्त
अट्ठ पंचास अधिक तर	अट्ठ चालीस अधिक तर

(ख) यदि हम शिव और हर को लेखकों वा क्षेपक मिलाने वालों की भूलें होना मानें; किन्तु उनको परम प्रसिद्ध चंद कवि की नहीं मानें और उनके स्थान में रवि बारह के वाचक को लगावें तो भी छंद नहीं टूटता है।

जैसे इसको	जैसे यह पढ़ो
संवत हर चालीस	संवत रवि चालीस
शाक सुविक्रम सत्त शिव	शाक सु विक्रम सत्त रवि

[ग] ग्रन्थकर्ता का यह कहना तो सत्य है कि रासे की सौ दो सौ वर्ष की और हाल की लिखी पुस्तकों में सं० ११०० सो का ही पाठ मिलता है; परन्तु सम्वत् की यह समानता और अविरोधता ग्रन्थकर्ता के रासे को जाली सिद्ध करने के तात्पर्य को सिद्ध नहीं कर सकती है। क्योंकि जैसे ग्यारह सौ का पाठ एक सा है, वैसे अंग्रेजी सम्प्रत शोधों के अनुसार अन्तर भी सौ वर्ष का एक सा ही है। सो जब कि हम पृथ्वीराजजी के समय की दो प्रशस्ति सम्वत् १२२० और १२२४ की शोधक विद्वानों को मिल जाना देख चुके हैं, तो फिर इन संवत् मिती की भूलों को किसी लेखक वा कवि वा संस्कार करने वाले के पल्ले लगाने में क्या हानि है ?

(घ) यदि पृथ्वीराजजी की जन्म पत्री में लिखे सवत् मिती आदि गणित करने से ठीक नहीं मिलें, तो इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि रासा जाली है। क्योंकि जब यह मान लिया गया है कि पृथ्वीराजजी का जन्म संवत् अशुद्ध है, तो उसी भूल से हम कुशलता पूर्वक ठीक २ विचार सकते हैं कि उनके जन्म दिन महीने, ग्रहस्थिति और इष्ट आदि में भी भूल होगी। क्योंकि जब प्रश्न ही अशुद्ध है तो फिर उसका उत्तर भी स्वतः वैसा ही होगा। इसमें पं० नारायण देवजी शास्त्री का कुछ दोष नहीं है। क्योंकि जब उनको अशुद्ध प्रश्न दिया गया है, तब उत्तर कैसे शुद्ध निकले, जो कदाचित् कविराजजी ने पंडितों से जन्म पत्री की भूलें शुद्ध करवाई होती तो यह अत्युत्तम हुआ होता।

२४ यह बड़े शोक की बात है कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) इस बात की
गह अड़ करते हैं कि चंद न ता सोमेश्वरदेवजी और न पृथ्वीराजजी का कविराज
गा, वरुक अपनी हिन्दी की मूल पुस्तक में इतना विशेष लिखते हैं कि चन्द बरदाई
का होना भी केवल पृथ्वीराजरासे से ही प्रसिद्ध है—अतएव मैं लाचार होकर
ग्रन्थकर्ता के जड़मूल सहित नष्ट करने वाली वृत्तान्त व्याख्या के विरुद्ध परम प्रसिद्ध
प्राद्र-कवि सूरदासजी कृत दृष्ट कूट की टीका के नीचे लिखे अंतिम पद इस विषय
के प्रमाण में प्रवेश करता हूँ। क्या यह पद यह बात सिद्ध नहीं करते कि चंद
पृथ्वीराजजी का कविराज था ?

पद

प्रथम ही प्रथ जगात में प्रगट अद्भुत रूप ।
ब्रह्मराव बिचारि ब्रह्मा राव नाम अनूप ॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय ।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय ॥
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन ।
तासु वंस प्रसिद्ध में भौ चन्द चारु नवीन ॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हैं ज्वाला देस ।
तनय ताके चार कीन्हों प्रथम आप नरेस ॥
दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचन्द सरूप ।
वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप ॥
रन्तभौर हमीर भूपत सङ्ग खेलत आय ।
तासु बंस अनूप भौ हरिचंद अति विख्याय ॥
आगरे रही गोपचल में रही ता सुत वीर ।
पुत्र जनमें सात ताके महाभट्ट गम्भीर ॥
कृष्णचन्द उदारचन्द जु रूपचद सुभाइ ।
बुद्धिचन्द प्रकाश चोथो चंद में सुख दाइ ॥
देवचन्द प्रबाध संसृत चंद ताको नाम ।
भयो सप्तो नाम सूरजचन्द मंद निकाम ॥

मा समर करि स्याहि सेवक गए विधके लोक।
रह्यो सूरजचन्द दृगतें हीन भर बर सोक॥
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार
सातएं दिन आई जदुपति कीन आपु उधार॥
दियौ चखदै कही सिसु सुनु मांग वर जो चाइ।
हों कही प्रभु भगति चाहत सत्रु नाम सु भाइ॥
दूसरो ना रूप देखो देखि राधास्याम।
सुनत करूना सिन्धु भाखो एव सस्तु सु धाम॥
प्रबल दच्छिन विप्र कुलतें सत्रु ह्वै हैं नास।
अखित बुधि विचारि विद्या मान मानें सास॥
नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुश्याम।
भए अंतर धान वीते पाछलो निसि जाम॥
मोहि पनसों रहे ब्रज की बसे सुख चित थाप।
थपि गोसांई करी मेरी आठ मद्धे छाप॥
विप्र प्रथ जगात को है भाव भूरि निकाम।
सूर है नँद नन्द जूको लयो माल गुलाम॥

इसके सिवाय फ़ारसी और जम्मू की तवारीख भी इस बात की साक्षी देती है कि चंद हमारे हिन्दुओं के अंतिम बादशाह का परम प्रिय कविराज और सहचर था। यदि हम उन पुस्तकों का मूल उद्धृत कर के यहाँ प्रमाण में प्रवेश करें तो ग्रन्थ के बहुत बढ़ जाने का भय है। अतएव हम मेजर रैवर्टी साहब की एक टिप्पणी को उद्धृत कर प्रमाण में इस अभिप्राय से देते हैं कि हमारे पाठकों को इस विषय का अनुभव एक थोड़ी सी पंक्तियों से ही हो जाय। नीचे लिखी थोड़ी सी पंक्तियां केवल यही नहीं सिद्ध करती हैं कि चंद कवि पृथ्वीराजजी के समय में हुआ था, परन्तु रासे में लिखे कतिपय और वृत्तान्त भी कुछ फेरफार के साथ सिद्ध करती हैं।

(मेजर रेवर्टी साहब कृत तबकात नासरी पृष्ठ ४८६)

"हिन्दु लोग एक भिन्न वृत्तान्त लिखते हैं कि उसी को अब्बुलफजल ने और जम्मू की तवारीख वाले ने भी थोड़े से फरक़ के साथ वर्णन किया है।

यद्यपि फारसी इतिहासवेत्ता लिखते हैं कि राय पिथोरा तलावरी (तराई) पर लड़ाई में मारा गया और मुईजुद्दीन दमयक में एक खोखर के हाथ से मारा गया कि जो इसी काम के लिये उतारू हो रहा था, और ऐसे ही वृत्तान्त का अवलंब तबक़ात अकबरी और फरिश्ता के ग्रंथकर्ताओं ने किया है; तथापि हिन्दू भाटों के मुख ज़बानी वर्णन से, कि जो प्रत्येक नामांकित साखे की ख्यातों के भंडार हैं और जो पीढ़ियों तक कंठस्थ वृत्तान्त एक दूसरे को उपदेश करते आये हैं, यह वर्णन किया गया है कि राय पिथोरा के लड़ाई में कैद हो जाने और गज़नी को ले गये। पीछे एक चंद जिसे कोई चाँदा कर के भी लिखते हैं कि जो राय पिथोरा का स्तुतिपाठक और विश्वासी सहचर था, कोई ग्रन्थकर्ता उसे राय पिथोरा का कविराज करके भी लिखते हैं, वह अपने अच्छे प्रयत्नों के बल से प्रबन्ध कर सुलतान मुइज़ुद्दीन का सेवा में प्राप्त हुआ और बंदीगृह में राय पिथोरा के साथ बातचीत करने में भी सफल हुआ। यह दोनों किसी एक युक्ति पर सम्मत हुवे और एक दिन चंदा ने अपने छल-बल के द्वारा सुलतान के मन में राय पिथोरा की बाण विद्या में परम कुशलता देखने की नितान्त इच्छा उत्पन्न की और उसको चन्दा ने इतनो सराही की सुलतान का मन उसे देखे बिना न रहने लगा। निदान बंधुआ राजा सम्मुख लाया गया और उससे उसकी बाण विद्या की परम कुशलता दिखाने की विनती की गई। उसके हाथ में एक धनुष और बाण दिये गये। उसने अपनी स्वीकृत युक्ति के अनुसार जो निशाना सुलतान ने नियत कराया था उसे छोड़कर खास सुलतान के ही बाण मारा कि वह वहीं मर गया और सुलतान के पास वालों ने राय पिथोरा और चंदा को काटकर टुकड़े २ कर डाले।

जम्मू की तवारीख वाला लिखता है कि राय पिथोरा अंधा कर (देखो टिप्पण १, पृष्ठ ५६६) दिया गया था और जब वह बंदीगृह से बाहर लाया गया और उसके निज धनुष और बाण उसे दिये गये। यद्यपि वह अंधा था, तथापि उसने बाण चढ़ाकर और साधकर सुलतान के शब्द के अनुसंधान और चन्दा की सूचना के अनुसार सीधा ऐसा मारा कि वह सुलतान के जाकर लगा। बाक़ी का वृत्तान्त तदनुसार ही है।

२५ ग्रन्थकर्ता कविराजजी ने लिखा है कि जिस समय उदयसिंहजी मारवाड़ वाले अकबर के दरबार में रहते थे, उस समय में मारवाड़ के कवियों का दिल्ली में अधिक आना-जाना होने लगा और कितनेक हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जैसे तुलसीदास, केशवदास, सूरदास, ईश्वरदास, बारठलक्खा और नरहरदास आदिको ने उन्नति पाई। ग्रन्थकर्ता इन सब कवियों को बड़े २ कवि होने का जो एकसा विशेषण देते हैं, हम उससे असम्मत हैं; क्योंकि सूरदासजी, तुलसीदासजी और बारेटलक्खा एवं नरहरदास के काव्य-रचन विषायक गुण-शक्ति में बड़ा अन्तर है। हमको आशा है कि यह नीचे लिखा दोहा ग्रन्थकर्ता के जानने में होगा:—

दोहा

सूर सूज तुलसी ससी, उडगन केसोदास।
और कवि खज्जोत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास ॥

इसके सिवाय ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) के कहने के अनुसार यह सब कवि एक समय में ही उन्नति को प्राप्त नहीं हुवे थे। अतएव अब हम सूरदासजी का समय केवल उदाहरण के लिये निर्णय करते हैं श्रीमद्वल्लभसम्प्रदाय के ग्रन्थों से स्फुट है कि श्रीमद्वल्लभाचार्यजी का व्रज में प्रथम हा प्रथम सं० १५४८। ४६ में श्रीनाथजी को गिरिराज पर्वत पर प्रकट करने के लिये पधारना हुवा। वे मथुरा को आते समय गौ घाट पर ठहरे कि जो मथुरा और आगरे के बीच में है। वहाँ सूरदासजी का आश्रम था। अब तक वे बहुत से शिष्य कर चुके थे और उनके महा-आर्द्र कवि होने का यश भरत खंड भर में सर्वत्र प्रसिद्ध था। इस स्थान पर दोनों गोस्वामियों की भेंट हुई और सूरदासजी अपने शिष्य वर्ग सहित श्रीवल्लभाचार्यजी के शिष्य हुए। तदनन्तर वे सूरदासजी को अपनें साथ गिरिराज ले गये और श्रीनाथजी का प्रागट्य करके उन्होंने सूरदासजी को अष्ट-छाप अर्थात् अष्ट आर्द्र कवियों में मुख्य नियत किये। इसके थोड़े दिन पीछे श्री वल्लभाचार्यजी का सं० १५८७ में लीला विस्तारना हुवा और उनके थोड़े समय पीछे यह महा आर्द्र-कवि भी श्री कृष्ण की नित्य लीला में पधार गये। अब यह लक्ष करने लायक बात है कि सूरदासजी औरों सदृश शुष्क कवि तो थे ही नहीं; किन्तु महा आर्द्र-कवि थे और वे गायन विद्या के गुण की एक अनूठी शक्ति सम्पन्न साधु पुरुष थे। जिस समय में श्रीवल्लभाचार्यजी से मिले उस समय उनकी वय ५०

पचास वर्ष के लगभग अवश्य होगी और जो उसमें ५० पचास वर्ष और भी जोड़ दें तो भी ग्रन्थकर्ता का प्रतिज्ञा किया हुवा समय सं० १६३६ का अशुद्ध है। इस तरह जब कि यह स्पष्ट है कि सूरदासजी सं० १६०० के पहिले ही हुवे, तो ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) का हिन्दी के कवियों के काव्यों में फ़ारसी शब्दों के प्रयोग होने के विषय में प्रतिज्ञा कर कहना भी असत्य है। हमारे पाठकों को सूरदासजी के नीचे लिखे पदों की परीक्षा कर देखने से तुरन्त ज्ञात होगा कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) के प्रतिज्ञा किये सं० १६३६ के पूर्व ही हिन्दी भाषा के काव्यों में कितने फ़ारसी शब्द प्रयोग होते थे अर्थात् फ़ारसी शब्दों का प्रयोग सं० १६३६ से पहिले ही होने लग गया था:—

राग भैरव

चलना रे प्रभु के दरबार, कालबली ठाड़ो चोबदार।
इह हजूर में याद तिहार, चलने की कछु करो तयार॥
जिसमें हुरमत रहै तुमार, ऐसी करनी कर लै यार।
जिसको खांविंद पकड़ बुलावै जतन कर कछु बन नहीं आवै॥
बिन मरज़ी कोई रहन न पावै, क्या गरीब क्या साह कहावै।
जब जम आवै कछुन बसावै, छिन में बांध पकर ले जावै॥
तब तौ तू कहू कौन छुडावै, ढिग बैठा कलपै कलपावै।
मोजूदात की तयारी कीजै, दरसन तलब बेग चल लीजै॥
जो खांविंद तोहि देख पसीजै, कंठ लगाय रंग में भीजै।
करनी का कर कमर कटारा, सील सिपर तप तेग़ तुमारा॥
धरै तोप कर ध्यान पियारा, ज्ञान घोड़ हूजै असवारा।
जो तू ऐसा होय चलैगा, मालिक मन में बहुत खिलैगा॥
काम क्रोध मद लोभ मोह मद, यह संसार सपन दहैगा।
निसवासर हरि नाम उचार के रसना जपले परम पद लहैगा॥
सूरदास सुख जो तू चाहे, गोबिन्द के गुण ज्यो तू गावै।
पतित सुधार बिरद कहावै, चरण शरण नति ध्यावै॥१५॥

२६ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) की पृथ्वीराज रासे के जाली सिद्ध करने में बड़ी बलवान तर्कों में से एक यह है कि रासे में दस भाग में एक भाग के फ़ारसी

शब्द हैं। उनकी इस प्रतिज्ञा की परीक्षा करने के लिये हमने डाक्टर होर्नली साहब के मुद्रित किये हुवे रासे के देवगिरि समय के सब शब्द गिनें तो सब समय के २६७३ शब्दों में नीचे लिखे मीरबंदा, सुरतान, सिल्लह, गज्जनेश, गोरी, साहिबखां, हुसैन, दरबार और फ़रमान जैसे ३० शब्दों के लगभग मिले। अब देखना चाहिये कि ३० का २६७३ में १:६६-१ वां भाग-जो बहुत ही अल्प है। इस गणना से हमारे पाठक ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) के तर्क का मूल्य जाँच लेंगे। इसके सिवाय हम उनसे पूछते हैं कि इन शब्दों के स्थान में चंद को कौन से शब्द प्रयोग करने योग्य थे?

२७ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने नीचे लिखे छंदों के प्रमाण पर अनुमान करके रासे का जाली बनाना संवत् १६४० से १६७० के बीच में ठहराया है:—

कलंकिया राय केदार।
पापियां राय प्रयाग॥
हत्यारां राय वाणारसी।
मदवान राय राजानरी गंग॥
सुलतान ग्रहण मोखन।
सुलतान मान मलन॥

उनका यह कहना कि इन छन्दों में राणा संग्रामसिंहजी का उपलक्ष्य अर्थात् हवाला है और पृथ्वीराजजी के समय के रावल समरसीजी का नहीं है—यह अनुमान एक अत्यन्ताभाव का किया हुआ और कवि के निज अर्थ के बिलकुल विरुद्ध है:—क्योंकि भला कवि समरसीजी की प्रशंसा करते हुए सांगाजी की प्रशंसा क्यों करता—कि जो कई शतक पीछे उत्पन्न हुवे थे। मुझको आश्चर्य है कि इन छन्दों में हमारे विद्वान् गुणदोषान्वेषी को ऐसी क्या बात दीखी कि जिससे उन्होंने सहसा सिद्धान्त का करना यथार्थ समझ लिया और रासे को सोलहवें शतक का जाली होना सिद्ध किया। देखो, सब साक्षी के विरुद्ध पक्ष में होने की विद्यमानता में छन्दों के स्पष्टार्थ की विद्यमानता में, जिसमें भी एक वह अर्थ कि जो छन्दों के ऊपरि भाग पर स्थित है—समय और स्थान के अविरोध की विद्यमानता में वे (कविराजजी) इतने धैर्य से अपनी कल्पना के एक बड़े अति—प्रयत्न के द्वारा उक्त छन्दों के उपलक्ष्य अर्थात् हवाले का विपरीतार्थ अमर-रासे को जाली सिद्ध

करने लिये करते हैं। राजपूताने के राव भाट और चारणादि जा हमारे गुण-दोषान्वेषी ग्रन्थकर्ता के सदृश नहीं हैं, वे कोई यथार्थ तर्क इस बात की नहीं देखते कि यह छन्द जो वास्तव में रावल समरसीजी की प्रशंसा में निर्माण किये गये हैं, वे राणा संग्रामसिंहजी पर क्यों घटाये जावें? यदि हम यह भी मानलें कि कविराजजी का अर्थ सत्य है, तथापि उनको तर्क का हेत्वाभास हमको चमत्कृत करता है—क्योंकि यह छन्द किसी पीछे के कवि को लेखनी से लिखे गये कहे जा सकते हैं, परन्तु तब भी वे पृथ्वीराज रासे की अकृत्रिमता ही सिद्ध करते हैं।

अब नीचे लिखे दोहे के विषय में कि जिसमें भविष्यवाणी कही गई है, ग्रन्थकर्ता को तर्क में सत्याभास का एक आडम्बर है। प्रथमतः इस दोहे[1] का अर्थ व्याकरण के अनुसार एक साधारण दृष्टि देनेवाले के निकट स्पष्ट है कि उसमें एक भविष्य बात कही है। यह हो सकता है कि कोई कवि अत्याभिलाष और अत्यानुराग से उन्मत्त होकर कभी-कभी कोई असंगत वाक्य रचना भी कर देता है। यह जो झगड़ा हमारे सम्मुख है, उसमें हम इस भविष्योक्ति को मिथ्या करके उसका तिरस्कार कर सकते हैं; क्योंकि उसकी कविता में चंद की कविता का सा लावण्य और लालित्य नहीं पाया जाना स्वतः सिद्ध है। दूसरे कविराजजी का न्याय शास्त्र सम्बन्धी अनुमान हमको आश्चर्य कराता है; वे कहते हैं कि "कवि यह एक भविष्य बात कहता है कि चित्तौड़ के राजा दिल्ली विजय करेंगे। अतएव स्पष्ट सिद्ध है कि यह दोहा और इसलिये रासा सम्वत् १६७७ के पहिले किसी समय बना है।" ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) का यह कहना हमारी समझ और यथार्थ तर्क के नियमों को गँवाता है—कैसे यदि किसी वस्तु का एक भाग अशुद्ध है, तो वह सब की सब अशुद्ध है-ग्रन्थकर्ता के दृढ़ निश्चय करने का प्रकार विदित करता है कि वे एक भाग को सम्पूर्ण के बराबर होना मानते हैं, यह विचारण के इतिहास में एक अद्भुत अपूर्व तर्क है, अब ग्रन्थकर्ता के माने हुवे सिद्धान्त के अनुसार हमको यह विचार करना सीखना चाहिये कि शाही रुपिये अर्थात् कलदार रुपये में कुछ कांसा है

---

१. दोहा—सोरह से सत्तोतरे विक्रम साक बदीत।
दिल्ली धर चित्तोडपत, ले खग्गां बल जीत॥ १॥

अतएव वह सब रुपिया कांसे का है। परम विद्वान् डाक्टर राजेन्द्रलालजी मित्र कृत उड़ीसा के प्राचीन शोधों के पुस्तकों में के एक अथवा दो वाक्य खंड अशुद्ध हैं। अतएव सब पुस्तक—नहीं जी वे दोनों पुस्तक बिल्कुल अशुद्ध हैं। जबकि हमारे ग्रंथकर्ता (कविराजजी) इस भविष्य कहने वाले दोहे में चित्तौड़ शब्द होने के कारण अपनी प्रसन्नता के अनुसार अपना तात्पर्य निकालते हैं, तो फिर कोई मेवाती टोड़ साहब वाली पुस्तक में चित्तौड़ के स्थान में मेवात शब्द होने के कारण अपना एक भिन्न तात्पर्य क्यों नहीं निकाल सकता है। इसी तरह गुजरात देशान्तर्गत, कच्छ राज्य भी नीचे लिखी भविष्यवाणियों के छंद उस देश में उपलब्ध होने वाले पृथ्वीराज रासे में होने के आधार से वर्तमान समय के बड़े २ अनुभवी और प्रमाण रूप विद्वान शोधकों के सन्मुख अपनी प्रसन्नता पूर्वक यह दावा करके डिग्री प्राप्त कर सकता है कि रासे को उसके पुत्र चारणों ने संवत १६४२ में कृत्रिम बनाया है:—

(१) छंद

कच्छ ही देश सिन्धु ममध्य, चत्रसेन इक पर्वत सनध्य।
संवत् अठार ओगनीस साई, कल्पांत इक संग्राम होइ॥

पासेर भार सव्वा प्रमान, नरहे पपान चहुआन रान।
संवत् अठार छत्तीस जान, कच्छ ही सिन्धु डोलत निधान।
पर सिंधु बंध कारन प्रमान, इह सुनहि बात चहुआन रान॥

कच्छ ही देश भूपाल होई, शूद्रहि कर्म करि होत कोइ।
षट दरस तास न माने अजान, गोहत्या बहोत करिहे निधान॥

संवत् अठार इकताल सोइ, अदभुत भयकर काल होई।
आगे सुकाल केते सराहे, इकता० समो कोर काल नाहे॥

सतताल बरस कारन सकोई, कच्छ देश भूप पृथिराज होइ।
राजान राज करिहे निधान, इह सुनहि बात चहुआन रान॥

---

१. देखो आत्माराम केशवजी द्विवेदी कृत पृथ्वीराज चौहान गुजराती भाषा में द्वितीय बार संवत् १६४१=ई० १८८४ का छपा पृष्ठ १२६।

एकीस बरस इक पुत्र होय, तपवंत ताहि नवघनति कोइ।
नवघनह सुत पंगार होय, संग्राम मध्य मृत्यु काल होइ ॥
वरसहि तास आयस प्रमान, पच्चास इक होइ गे निदान।
पंगार राज भूपाल होइ, संवत तास ओगनीस सोइ ॥
वेहेंताल इक अतिकाल होइ, ... ।
गढ रयन भूप संग्राम जान, तास पुत्र इक लखपत प्रमान।
परधान इक त्रिबंध होइ, जगबीर नाम बाको सकोइ ॥
नवधना सुत खंगार होइ, लखधीर संग ए मंत्र होइ।
सिधहि राज करि हेति कोइ, सामथवंत भूपाल होइ ॥

२८ ग्रंथकर्त्ता (कविराजजी) पृथ्वीराजरासे के जाली होने के प्रमाण में कहते हैं कि उसमें लिखे संवत्, मिति, कथा, और मनुष्यों के नाम फ़ारसी तवारीखों में नहीं मिलते। परन्तु यह कैसे ज्ञात हुआ कि इन फ़ारसी तवारीखों में लिखे सब वृत्त बिलकुल सही हैं ? क्या उनमें कुछ भूल नहीं है ? क्या उनके ग्रन्थकर्ता कहीं नहीं भूले हैं ? यदि उनमें सत्य और असत्य दोनों का मेल है, तो फिर वे यह कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि पृथ्वीराजरासा एक निरा जाली ग्रंथ ही है ? ऐसा एक विचित्र सिद्धान्त कर लेने पहिले हमारे ग्रंथकर्त्ता (कविराज) को योग्य था कि वे प्रथम पृथ्वीराज रासे में लिखे हुए मनुष्यों के नाम और कथा और अन्य सब बातों का भले प्रकार प्रयत्न कर पता लगाते कि जैसे मेरे मान्यवर शिक्षक डाक्टर होर्नली साहब बड़ा ही परिश्रम कर कितने ही नामादि के पता लगाने में सफल हुए हैं। अब हम उक्त डाक्टर साहब के लगाये हुवे थोड़े से; किन्तु बड़े उपयोगी पतों को हमारे पाठकों और उन विद्वानों के विचारार्थ प्रमाण में प्रवेश करते हैं कि जो कविराजजी के आक्षेप और मेरी इस संरक्षा का न्याय करने को सुशोभित होंगे। उक्त डाक्टर साहब ने जो कुछ लिखा है, यदि उसका अनुवाद यहाँ पर लिखा जावे, तो बहुत स्थान चाहिये। अतएव हम उनके लेख में से उपयोगी वचनों का अनुवाद करके नीचे लिखते हैं और जिन पाठकों को उनका लिखा पूरा-पूरा पढ़ना आवश्यक हो, वह मेरी रचित अंग्रेजी भाषा की संरक्षा में पढ़ लेवें:—

१ हिन्दूखां—यह ख्वारज्म शाहियाह वंश का था; मलिकशाह का बड़ा बेटा ख्वारज्म और खुरासान के सुलतान तक़िश का पोता था इसका कुछ हाल तवक़ात नासरी में लिखा है (देखो मेजर रेवर्टी साहब कृत तबक़ात नासरी २५१ और २५६।

२ वजीरीखां=यह वजीरखां वजीरिस्तान का रहनेवाला मलिक असाद् उद्दीन शेर मलिक वजीरो था कि जिसका नाम शहाबुद्दीन के सरदारों की फैरिस्त में लिखा है (देखो मेजर रेवर्टी साहब कृत तबकात नासरी पृष्ठ ४६१ ।

३ साहिजादा और महमूद=शहाबुद्दीन के बड़े भाई गियाजुद्दीन का बेटा महमूद कि जिसको उसके बाप के मरने पर बस्त, इसफिज़ार और फराह के इलाकों का मालिक किया था। (देखो उक्त तबक़ात नासरी पृष्ठ २५८, ३८६, ३६४, ३६६, ४६०, ४१६, और ५२३)

४ खिलचीखां=खळजी गयाजुद्दीन इवज़ नामक शहाबुद्दीन के बड़े सामंतों अर्थात जनैलों में था कि जो पीछे लखनावती का सुलतान हुआ था (देखो तबकात पृष्ठ ४८६ और ५८०) अथवा एक दूसरा खळजी महम्मद नामक महमूद का बेटा शहाबुद्दीन की सेवामें था कि जिसका पृथ्वीराज की आख़िरी लड़ाई में होना स्पष्ट लिखा है (देखो तबकात पृष्ठ ५४६)

५ तातार मारूफ=मुसलमानी इतिहासों के अनुसार उस समय के साखों में कुतुबुद्दीन ईवक नामक शहाबुद्दीन का प्रसिद्ध सामंत खलजियों के साथ बराबर समाप सम्बन्ध में वर्णन किया गया है। देखो तबक़ात ४८६ और ५५१ पृष्ठ कुतुबुद्दीन तातार शाखा का एक तुर्क था। यह नाम उसकी पद्वी का नाम है ईवक उर्फी नाम है। अतएव मारूफ़ उसका निज नाम होगा। मुसलमानी इतिहास वेत्ताओं के अनुसार शहाबुद्दीन के सामंतों में मुख्य सामंत कुतुबुद्दीन था और चं के लेखानुसार मारूफ खां।

६ हब्बास खां, हब्बासी हुजाव=अमीर-इ-हाजिब, हुसैन-इ-मुहम्म हसन नामक तबकात की फेहरिस्त में लिखा है (देखो पृष्ठ ४६१) कोई लिखित पुस्तकों में हसन के स्थान में हवाशी लिखा है।

७ हजरती और सजरती खां=मलिक इख्तियार-उद्दीन खरबार औ मीर-इ-हाज़िब हुसैन इ सुर्ख नामक तबकात की फैरिस्त में लिखे हैं (पृ० ४६१ खरबर और सुर्ख के अनेक पाठांतर होते होते इन हिन्दी नामों से मिलते हुए गये हैं और इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि फ़ारसी पाठ बहुत खराब है।

८ हुसैन खां=इसका चन्द ने सुलतान शहाबुद्दीन की परम प्यारी बड़ी स्वरूपवती पासवान चित्र रेखा नामक का भगा लाने वाला और उसकी सविस्तर कथा लिखी है सो यह नासीर-उद्दीन-हसन नामक था ! इसके चलन के विषय में तबक़ात नासरी में यह लिखा है कि 'वह युवा स्त्रियों और कुँवारी कन्याओं का बड़ा कामी था और वह सुलतान के रणवास में से अनेक सहेलियों और दासियों को ले भगा था," (देखो तबक़ात पृष्ठ ३६४) ।

२६ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) अपने लेख के अन्त में मिस्टर बी० ए० स्मिथ साहब के इस कहने से सम्मत होते हैं कि "रासा जैसा आज विद्यमान है, वह मार्ग भुलाने वाला और इतिहास वेत्ताओं के कार्य के लिये निष्फल है।" परन्तु यह बात बड़े शोक और आश्चर्य की है कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) जिनका अपने लेख को सोसाइटी के जर्नल में प्रकाश करने से यह अभिप्राय था कि सर्व-साधारण लोग जो आज तक मिथ्या विश्वास करते हैं उनको सचेत करें कि रासा चन्द अथवा उस समय के किसी अन्य कवि का बनाया हुआ नहीं है । उन्होंने न जाने कैसे अपने सम्मत हुवे वचन पर का उस एशियाटिक सोसाइटी के एडिटर की नीचे लिखी टिप्पणी को छिपाकर पाठकों को भ्रमाया है:—

"चन्द कृत महाकाव्य अभी तक ऐसा बिलकुल सिद्ध नहीं हुआ है कि यह पाटी-माँजने वाला वचन समर्थन हो सके ।"

क्या इस टिप्पण का मूल वचन के साथ नहीं लिखना सोसाईटो के जर्नल के जो ग्राहक नहीं हैं, उनके चित्त पर एक मिथ्या विश्वास अंकित नहीं करता और जबकि उनको सत्य विदित होगा, तब क्या वे यह नहीं समझेंगे कि ग्रन्थकर्ता की सम्मति और विचार पक्षपात सहित हैं ?

निगमन

३० अब मैं पृथ्वीराज रासे के विषय में अपने विचार अनुमान और सिद्धान्तों को प्राचीन विद्याओं के परिज्ञाता विद्वानों के मनन करने के लिये प्रकाश करता हूँ ।

(क) विद्यमान पृथ्वीराज रासा दिल्ली और अजमेर के अंतिम चौहान बादशाह पृथ्वीराज जी के कविराज चंद बरदाई का बनाया हुआ है ।

(ख) मैं मिस्टर जौन बिम्स साहब मिस्टर एफ० एस० ग्राऊज़ सा० सी० एस० एम० ए० और डाक्टर होर्नली साहब एल०एल०डी० आदि जैसे प्राचीन विषयों के शोधक और ज्ञाता विद्वानों से इस बात में सम्मत हूँ कि रासा बारहवें शतक का बना है।

(ग) इसमें कुछ संदेह नहीं है कि यह रासा बहुत सी क्षेपक वृद्धि और परिवर्तन से भ्रष्ट हुआ है। मेरे मान्यवर शिक्षक डाक्टर ए०एफ०आर० होर्नली साहब की जो यह उक्ति है कि इस रासे के आज तक तीन बार भिन्न २ संस्कार हुवे हैं, वह मेरे ध्यान में बहुत ही सत्य प्रतीत होती है और मैं उक्त डाक्टर साहब से बिलकुल सम्मत हूँ। क्योंकि मैंने मेरे पंदरह वर्ष के लगभग राजपूताने के कई एक राज्यों में रहने के समय में इस बात का अन्वेषण किया तो मुझे मालूम हुवा कि चारण कवियों और राव-भाट बड़वा आदिकों में कई एक पीढ़ियों से अनबन है। कोई २ समय मुझे इन लोगों के प्रबल विवाद देखने का भी अवसर मिला है कि जिसमें इन्होंने एक दूसरे को निन्दा और दोष प्रकाश किये हैं। मैंने चारण कवियों में असूयावालों के नाम सुने हैं कि जिनको राव लोग रासे में क्षेपक मिलाने के दोष लगाते हैं और चारणों के पक्ष में भी मुझे न्याय रीत्या कहना आवश्यक है कि रावादि ने भी उसके बदले में इन लोगों के ग्रन्थ नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं। चारण कवियों में जो लोग हमारे ग्रंथकर्ता की अपेक्षा अधिक विद्वान् धनवान और मान्यवर हैं उनकी सम्मति ग्रंथकर्ता की सा नहीं है कि यह रासा जो चंदकृत करके प्रसिद्ध है वह पंदरहवीं अथवा सोलहवीं सदी में बना जाली है। परन्तु उनकी सम्मति संप्रतकाल के प्राचीन विद्या के शोधक विद्वानों से मिलती हुई है कि वर्तमान पृथ्वीराज रासा क्षेपक अंग से बहुत भ्रष्ट हो गया है।

३१ भाट और बड़वा लोग जो संवत् अपने लेखों में लिखते हैं, उसमें और शास्त्रीय संवतों में सौ १०० वर्ष का अंतर है। अब मैं यह विदित करूँगा कि मैं किस तरह इन बड़वा भाटों के संवत् से परिज्ञात हुआ। पृथ्वीराजरासे का बनारस में डाक्टर होर्नली साहब के पास देखे पीछे मैं कुछ समय तक उसकी भाषा की अप्रशंसा ही नहीं करता रहा, बरुक उसको तुच्छ समझ कर अनादर करता था। जब से मैं राजपूताने आया, मैंने इस ग्रन्थ को यहाँ के

सब राजा और उमराव सरदारों को बड़े मान और प्रेम के साथ पढ़ते और सुनते देखा। यहाँ रहने के कुछ दिनों तक भी मैं इस ग्रन्थ को अपसन्द करता था और हमारे प्रिय मित्र ग्रन्थकर्ता कविराजजी की सी दृष्टि से ही देखता था। इस ग्रन्थ को राजपूताने में सर्व प्रिय और सर्व मान्य देखकर मुझे भी उसके क्रमशः पढ़ने और उसकी उत्तमता की परीक्षा करने की उत्कंठा हुई। जब कि मैं कोटे में था, मैंने उसका थोड़ा सा भाग उस राज्य के उन प्रसिद्ध कविराज चंडीदानजी से पढ़ा कि जिनके बराबर आज भी कोई चारण संस्कृत भाषा का विद्वान् नहीं है। उसके पढ़ते ही मेरे अन्तःकरण में एक नया प्रकाश हुआ और रासा मेरे मन के आकर्षण का केन्द्र हुआ और मेरे मन के सब सन्देह मिट गये। तदूनन्तर बूँदी और अन्य स्थलों के चारण और भाट कवियों के आगे उसमें लिखे सम्वतों के विषय में उन कविराजजी से मेरा एक बड़ा वाद हुआ। उसका सारांश यह हुआ कि चंडीदानजी ने सप्रमाण यह सिद्ध किया कि जब विक्रम सम्वत् प्रारम्भ हुआ था, तब वह सम्वत् नहीं कहलाता था; किन्तु शक कहाता था। परन्तु जब शालिवाहन ने विक्रम को बँधुआ करके मार डाला और अपना सम्वत् चलाना और स्थापन करना चाहा, तब सर्व साधारण प्रजा में बड़ा कोलाहल हुआ। शालिवाहन ने अपने सम्वत् के चलाने का दृढ प्रयत्न किया, परन्तु जब उसने यह देखा कि विक्रम के शक को बन्द कर मेरा शक नहीं चलेगा; क्योंकि प्रजा उसका पक्ष नहीं छोड़ती और विक्रम को वचन भी दे दिया है, अर्थात् जब विक्रम बन्दीगृह में था, तब उससे कहा गया था कि जो तू चाहता हो, वह माँग कि उसने यह याचना कियी कि मेरा शक सर्व साधारण प्रजा के व्यवहार में से बंद न किया जावे। यह बात ग्लैड़विन्स साहब की अनुवादित आईन अकबरी में भी यों लिखी है:—

यह प्रसिद्ध है कि "कौमार शालिवाहन नामक ने विक्रमादित्य पर चढ़ाई करी और उसे युद्ध में पकड़ लेने पीछे, उससे पूछा कि तू जो चाहता हो वह मांग? विक्रम ने उत्तर दिया "कि मेरी केवल यही वांछा है कि मेरा शक सर्व साधारणों के सब व्यवहारों में से बंद न किया जावे।" शालिवाहन ने उसकी याचना अंगीकार करली परन्तु उसी अपने राज्याभिषेक के समय से अपना एक पृथक शक चलाया।"

तदनन्तर शालिवाहन ने आज्ञा कियी कि उसका संवत् तो "शक" करके और विक्रम का "संवत्" कर के व्यवहार में प्रचलित रहे। पंडित और ज्योतिषियों ने तो जो आज्ञा दी गई थी उसे स्वीकार कियी। परन्तु विक्रम के याचकों अर्थात् आज जो चारण भाट राव और बड़वा आदि नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके पुरुषाओं ने इस बात का अस्वीकार कर विक्रम की मृत्यु के दिन से अपना एक पृथक् विक्रम शक माना। इन दोनों सम्वतों में सौ १०० वर्षों का अन्तर है। शालिवाहन के शक और शास्त्रीय विक्रमी सम्वत् में १३५ वर्षों का अन्तर है। इन दोनों के अन्तरों में जो अन्तर है, उसका कारण यह है कि भाट और वंशावली लिखने वालों ने विक्रमी की सब वय केवल १०० सौ वर्ष की ही मानी है। यह लोग नहीं मानते कि विक्रम ने १३५ वर्ष राज्य किया और न उसके राजगद्दी पर बैठने के पहिले भी कुछ वय का होना, जो सम्भव है, वह मानते हैं। इस प्रकार विक्रम के उस समय के दो सम्वत् प्रारम्भ हुए, उनमें से जो पंडित और ज्योतिषियों ने स्वीकार किया, वह "शास्त्रीय विक्रमी सम्वत्" कहलाया और दूसरा जो भाटों और वंश लिखने वालों ने माना वह "भाटों का-सम्वत्" करके कहलाया। आदि में ही इस तरह मतान्तर हो गया और दो थोक इतने शीघ्र उत्पन्न हो गये। भाटों ने अपने शक का प्रयोग अपने लेखों में किया। यह भाटों का शक दिल्ली और अजमेर के अन्तिम चौहान बादशाह के राज्य समय तक कुछ अच्छा प्रचार को प्राप्त रहा और उसका शास्त्रीय विक्रमी सम्वत् से जो अन्तर है, उसका कारण भी उस समय तक कुछ लोगों को परिज्ञात रहा। तदनन्तर इसका प्रचार तो प्रतिदिन घटता गया और शास्त्रीय विक्रमी सम्वत् का ऐसा बढ़ता गया कि आज इसका नाम सुनते ही लोग आश्चर्यसा करते हैं। इस भाटों के शक का दूसरे राजपूतों के इतिहासों में प्रयोग होने की अपेक्षा चौहान शाखा के राजपुतों में अधिक प्रयोग होना देखने में आता है। यदि हम रासे में लिखे सम्वतों की भाटों के विक्रमी शक के नियमानुसार परीक्षा करें तो सौ १०० वर्ष के एक से अन्तर के हिसाब से वह शास्त्रीय विक्रमी सम्वत् से बराबर मिल जाते हैं और जो हम रासे के बनने के पहिले और पिछले सम्वतों को भी इसी प्रकार से जांचे तो हम हमारी उक्ति की सत्यता के विषय में तुरन्त सतुष्ट हो-जाते हैं, जैसे-उदाहरण के लिये देखो कि हाड़ा राजपुतों की वंशावली लिखने वाले

हाड़ाओं के मूल पुरुष अस्थिपालजी का असेर प्राप्त करने का सं० ६८१ (१०८१) और बीसलदेवजी का अनहलपुरपट्टन को प्राप्त करने का सं० ६८६ (१०८६) वर्णन करते हैं। भाटों का यह एक अपना पृथक शक मानता सत्य और योग्य है; क्योंकि किसो का नाम वंशावली में मृत्यु होने पर ही लिखा जाता है और सब सम्वत् जो आज तक जाने गये हैं, वह किसी न किसी स्मरण रखने योग्य बड़ी घटना के उपस्थित होने से ही प्रारम्भ हुवे हैं। जैसे कि किसी राजा अथवा प्रसिद्ध पुरुष का जन्म और मरण, मत-मतान्तर विषयक परिवर्तन, किसी राजा का राज्यभिषेक और राज्यच्युत् होना और किसी भूम्कप अथवा प्रलय का होना। इस मेरे कहने को ग्लैडविन्स साहब की अनुवादित आईन अकबरी नीचे लिखे प्रमाण पुष्ट करती है।

"प्रत्येक देश के लोग अपना शक किसी स्मरण में रखने लायक बड़ी घटना के उपस्थित होने से ही प्रारभ करते हैं, जैसे कि मत का बदलना, किसी एक वंश के च्युत् होने पर किसी एक दूसरे का राजगद्दी पर बैठना; किसी बड़े भूकंप अथवा प्रलय का होना।"

३२ चंदकृत महाकाव्य में जो भाटों के संवत् लिखे हैं, उनकी इकाई और दहाई के अंकों में अज्ञात कवियों ने तीन बार के भिन्न-भिन्न शोधन अर्थात् संस्करण समय अशुद्धियें कर दी हैं। अब हम उक्त कोटे वाले कविराजजी के बताये हुवे प्रकार के अनुसार उनका लेखा लगाते हैं।

(क) चदकृत छन्दों में यह पंक्तियें हैं:—एकादश से पचदह, संवत् इक्क दस पंच अग्ग। इनसे संस्करण करने वाले कवियों ने चंद का अर्थ संवत् ११.१५ समझा है और संप्रतकाल के कवि भी ऐसा ही अर्थ समझते हैं। इस अशुद्ध अर्थ ने ही तराई को अतिम लड़ाई का संवत् ११५८ अशुद्ध कर दिया है। क्योंकि मालूम होता है कि तीन बार के संस्करण समय में कवियों ने पृथ्वीराजजी की उमर "चालीस तीन तिन वर्ष साज" के अनुसार ४३ वर्ष की को उनके जन्म संवत् १११५ में जोड़ कर संवत् ११५८ अशुद्ध कर दिया है। परन्तु चंद का वास्तविक अर्थ कुछ भिन्न मालूम होता है। इन एकादश से पंच दह और संवत् इक्क दस पंच अग्ग" से चंद कवि का अभिप्राय संवत् ११०५ का है। यदि हम

पृथ्वीराजजी के इस जन्म संवत् ११०५ में ४३ वर्ष उनकी उमर के जोड़ दें, तो उनकी आखिरी लड़ाई का भटायत विक्रमी संवत् ११४८ ठीक मिल जाता है। अब हमारे इस कहने की सत्यता के विषय में कोई यह शङ्का करे कि "दश" से शून्य का ग्रहण क्यों किया जाता है ? तो उसके उत्तर में हम कहते हैं कि यहाँ 'दश' शब्द के यह दोनों अर्थ हो सकते हैं और इन दोनों में से किसी एक अर्थ का प्रयोग करना कवि के अधिकार की बात है। सब गूढ़ सूक्ष्म और संदिग्ध स्थलों में कि जो प्राचीन विद्याओं के शोधक विद्वानों के आगे बड़ी-बड़ी कठिनताओं का उपस्थित करते हैं और जो याथार्थ्य गणित के सूक्ष्म प्रकार से सिद्ध होने योग्य होते हैं, उनका लिखावट और सम्वत् मिती में यदि कोई भूल भी हो, तथापि उनको छोड़ देकर कवि के सम्भव अर्थ के अन्वेषण करने में परिश्रम उठाना और सब बातों की परम बुद्धिमत्ता से विवेचना करना विद्वानों का एक साधारण मार्ग है। यदि सम्वत् ११०५ में ४३ जोड़ने से हमको शुद्ध सम्वत् प्राप्त हो जाता है, अर्थात भटायत सम्वत् ११०५ + ४३ = ११४८; तो फिर हमको ऐसी गणना करके कि ११९५ + ४३ = ११५८ चन्द बरदाई की क्यों भूल काढ़नी चाहिये ?

(ख) इसी तरह संशोधन करने वालों ने पृथ्वीराजजी के कन्नौज जाने के संवत् को भी अशुद्ध कर दिया है। जब वे कन्नौज को गये थे, तब उनकी उमर 'बरस तीस छः अग्गरौ' के अनुसार ३६ वर्ष की थी। संशोधन करने वालों ने बिलकुल अशुद्ध गणना की है। जैसे कि ११९५+३६=११५१ कि जो शुद्ध संवत् नहीं है, परंतु चंदकवि का अवश्य यह अभिप्राय था कि ११०५+३६=११४१ कि जो एक शुद्ध संवत् है।

(ग) पृथ्वीराजजी की पहली लड़ाई के संवत् ११४० में कुछ भूल नहीं है। संशोधन करने वालों ने उस समय हिन्दुओं के अंतिम बादशाह की उमर की गणना में ही भूल की है। वे कहते हैं कि उस समय पृथ्वीराजजी २५ वर्ष के थे अर्थात ११९५+२५=११४०, परन्तु वास्तव में उनकी उमर ३५ वर्ष की थी; जैसे कि ११०५+३५=११४० विदित करते हैं।

(घ) संशोधन करने के समय में संशोधकों ने पृथ्वीराजजी की दिल्ली गोद जाने और राजगद्दी पर बैठने के विषय में एक बड़ी गड़बड़ की है। संशोधकों

ने अपनी अज्ञानता से इस समय पृथ्वीराजजी की उमर २३ वर्ष की अनुमान की है और उन्होंने दृढ होकर मूल रासे की पुस्तक में संवत् सुधार दिया है। अर्थात् १११५+२३=११३८। परन्तु हमारे अनुमान के अनुसार कि जिसकी पुष्टि नीचे लिखा दोहा करता है, पृथ्वीराजजी की उमर उस समय ८+६=१४ वर्ष की थी; क्योंकि ११०५ में १४ जोड़ने से १११६ का संवत् कर्नल टोड साहब के लिखित संवत् १२२० के लगभग आ मिलता है:—

दोहा

सिद्[1] छ् अग्ग सामं सजी, बलि त्रिघोष सुनंद।
सोमेसर नन्दन अटल, दिल्ली सुबस नरिंद॥

३३ अब हम हमारे सिद्धान्त के अनुसार ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) के अपने प्रमाण में दिये हुए छन्दों को शोधकर वह पाठ नीचे लिखते हैं कि या तो ये ही अकृत्रिम पाठ चन्द के थे। अथवा इस आशय के पाठ उसने अपने मूल ग्रन्थ में लिखे थे।

एकादश से पंच दह।
सम्वत् इक्क दस पंच अग्ग।
चालीस तीन तिन वर्ष साज।

---

१. पृथ्वीराज रासे की जो पुस्तकें आज मिलती हैं, उन सब में सित शब्द का पाठ मिलता है; परन्तु एक सं० १७७० की लिखित पुस्तक में सिद पाठ मिलता है कि जो मुझको संस्कृत सिद्धि शब्द आठ के वाचक का अपभ्रंश होना मालूम होता है। यदि हम सित पाठ को सत्य होना मानलें तो पृथ्वीराजजी की वय २ + ६=८ अथवा २६ की होती है। परन्तु यह दोनों गणना बहुत ही अयुक्त और असम्भव है।

एकादश संवतह अट्ठ अग्ग हति ईस[1] भनि ।
ग्यारह से अठ ईस[1] भनि ।
ग्यारह से अठ ईसा[1] मानं ।
सम्वत् हर चालीस ।
ग्यारह से चालीस ।
ग्यारह इकतालीसवें अथवा ग्यारह से चालीस इक

शाक सुविक्रम सत्त शिव, अध्र[2] उन्न[2] पंचास ।
एकादश से सत्त अट्ठ चालीस अधिक तर ॥

२४ मैं इसको निष्कलंकी होना मानता हूँ कि रावल समरसीजी अपने साले दिल्ली और अजमेर के बादशाह चौहान पृथ्वीराजजी के समय में हुए थे। जो प्रशस्तियें ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने अपने आक्षेप लेख के प्रमाण में प्रवेश कियी है, उनमें लिखे संवतों की सत्यता मुझको उन्हें सत्य मानने के लिये संतुष्ट नहीं करती है। बरुक वे मेरे इस अनुमान को पुष्ट करती हैं कि कोई स्वार्थी

---

१. सब पुस्तकों में 'तीस' पाठ है; परन्तु मालूम होता है कि संशोधकों ने 'ईस' के स्थान में 'तीस' पाठ भूल से कर दिया है। इस 'ईस' शब्द से चन्द ने 'दिल्लीदान' समय के ३०वें छन्द में ग्यारह का वाचक प्रयोग किया है। जैसा कि नीचे लिखे पदों से स्पष्ट विदित है:—

'संवत् ईस तीसरु अट्ठ । चलि नृप हेम गहि कर कट्ठ ।'

इस हमारे दिये प्रमाण के पादों में उन संशोधकों ने एक और भूल करी है कि 'ईसरु' के स्थान में 'तीसरु' कर दिया है। अतएव शुद्ध पाठ यह है:—

'संवत् ईस ईसरु अट्ठ, चलि नृप हेम गहि कर कट्ठ ।'

२. संशोधन के समयों में अध्र शब्द कि जो संस्कृत 'अधः' शब्द का अपभ्रंश है राजपूताने के लोगों के अशुद्ध उच्चारण और अशुद्ध लिखने से बहुत भ्रष्ट हुआ है। इसका पाठ "अब्द्र" जो लोग शुद्ध लिखने और बोलने से परिज्ञात नहीं है, उनको भ्रमाता है।

इसके सिवाय 'उन्न' शब्द भूल से भ्रम हो गया है; क्योंकि इस देश के लोग उ तथा ई के स्थान में 'अ' भी लिख देते हैं।

पुरुषों ने समरसीजी की मृत्यु के बहुत दिन पीछे उन्हें खुदवा ला हैं। उनमें संवत् मिति या तो विस्मृति से लिखे गये हैं अथवा बूँदी राज्य के एक दूसरे राव राजा समरसीजी के संवत् मिती दोनों एक नाम के होने के कारण भूल से बदल कर लिखे गये हैं। जिस समय की यह प्रशस्तियें ग्रन्थकर्ता ने प्रमाण में प्रवेश की हैं, वह समय इन समरसीजी का है कि जो अपने नामराशी मेवाड़ वालों के ४५ अथवा ४६ वर्ष पीछे हुए हैं। हमारे पाठकों के विचारार्थ में इन बूंदी के राव राजाजी का संक्षिप्त वृत्तान्त वर्णन करुँगा। इन एक नाम के दोनों का होना कोई आश्चर्यदायक बात नहीं है। क्योंकि यह नाम मेवाड़ के सभा और संग्राम में महाशूरवीर समरसीजी के होने के कारण रक्खा गया होगा। बूँदी के श्रीमान राव राजाजी श्री रामसिंहजी बहादुर जी० सी० एस० आई० कि जो एक संस्कृत विद्या में परम व्युत्पन्न, राज्य शासन सम्बन्धी कठिनताओं में पैंसठ वर्ष के समय की दक्षता सम्पन्न; और राजपूताने की प्राचीन ऐतिहासिक ख्यात और शोधों के एक स्वयं कोषरूप हैं— उनका मुझे अपने राज के ऐतिहासिक पुस्तक[1] और ऐतिहासिक सूचना प्रदान करने के कारण मैं बहुत ही आभारी हूँ। हाड़ा-राजाओं की वंशावली से मुझे ज्ञात हुवा है कि सं० १२६३ में देवराजजी के एक समरसीजी नामक कुंवर उत्पन्न हुवे थे। उन समरसीजी के पिता ने उन पर परम प्रेम होने के कारण अपने सब राज्य के दो विभाग करके प्रथम को तो बंबावदा नामक राज्य स्थापन कर आप रक्खा और शेष दूसरे बूंदी नामक को उनको देकर सात वर्ष की उमर में उन्हें संवत् १३०० में राजा कर दिया। सं० १३१० में इन समरसीजी के नापाजी नामक एक महाराज कुमार उत्पन्न हुवे और सं० १३२० में उन्होंने बूंदी नगर को विस्तृत किया। सं० १३२१ में कोटा बसाया और संवत् १३२८[2] में जबकि दिल्ली के बादशाह ने चित्तौड़ पर चढाई करी, तब मेवाड़ का मांडलगढ़ नामक इलाका छीन लिया। संवत् १३३२[3] में वे अपने बाप देवराजजी के साथ जो दिल्ली के बादशाह को लड़ाई हुई, उसमें मारे गये।

---

१. वंशप्रकाश और वंशभास्कर।

२. किसी ख्यात में सम्वत् १२३८ भी है।

३. किसी ख्यात में १२६२ भी है।

अब यह स्वीकार करना चाहिये कि एक दूसरे समरसीजी का प्रकट हो जाना हमारे ग्रन्थकर्ता की प्रतिज्ञा को उनकी प्रशस्तियों के समय तक के लिये अस्थिर और संशयस्थ कर देता है, क्योंकि उन्होंने प्रायः मेवाड़ के प्राचीन राज्य के कोई-कोई इलाके दबा लिये थे और उनके साथ झगड़े भी किये हैं। इसके सिवाय मेवाड़ राज्य की वंशावलीयें जो ख्यात करके कहाता हैं और मेवाड़ राज्य के हरेक भले आदमियों के घरानों में मिलता है, उनमें लिखा है कि रावल समरसीजी सं० ११०६ में गद्दी पर बैठे और सं० ११४८ में मारे गये। अब कविराजजी का यह कहना कि पृथ्वीराज रासे ने ही हिन्दुस्थान भर का सब तवारीखों में भूल और वंशावलियों में अशुद्धता डाल दी है, जो हम सत्य करके मानलें तो भी हम ऐसा मान लेने की फिर भी असत्यता देखते हैं कि वर्तमान पृथ्वीराजरासा, जिसमें समरसीजी के मरने का सं० ११५८ लिखा है, वह कैसे सब में अशुद्धता डाल देने का अपराधी हो सकता है। ठीक समय का निर्णय करने के लिये या तो सैंकड़े के एक के अंक का भूल से होना; क्योंकि संस्कृत और हिन्दी में एक और दो के अंकों में झट भूल हो जाती है, अथवा सैंकड़े के फरक को भटायत सम्वत् मानना चाहिये।

३५ मैं इस ग्रन्थ का पृथ्वीराज रासे के प्रति कर्नैल टोड साहब ने जो परम आदर के रसाले वचन कहे हैं, उनको नाचे लिखे प्रमाण स्मरण किये बिना बहुत अच्छी तरह से समाप्त नहीं कर सकता हूँ:—

"चन्द का महाकाव्य जिस समय में उसने लिखा था, वह उस समय का एक सर्व सम्बन्धी इतिहास है। उसके ६९ समयों में पृथ्वीराजजी के चरित्रों के एक लक्ष छन्द हैं कि जिनमें से राजस्थानों के प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने वाले अपने-अपने पुरुषाओं के कुछ न कुछ इतिहास उपार्जन कर सकते हैं। इसलिये राजपूत नामका कुछ भी अभिमान रखने वाली जो जातियें हैं, उन सब के प्राचीन पुस्तकादि संग्रहों में यह पुस्तक अवश्य कर रक्खी जाती है। जब हिमाचल से हिन्दुस्थान के मैदानों तक युद्ध के बादल झोंका खाते थे, उस समय किर्मान के कठिन मार्गों में युद्ध की तरंगों का पानी पीने वाले जो ऐसे इन राज-पुत्रों के पुरुषा थे, उनके विषय के शोध उनको इस महाकाव्य में से प्राप्त हो सकते हैं। पृथ्वीराजजी के युद्ध उनकी मित्रता उनके आधीन अनेक और बलवान राजा, उनके स्थानक

और वंश चरित्रादि की कथा इस ग्रन्थ में है। इसलिये यह ऐतिहासिक और भूगोल सम्बन्धी विषयों का एक अमूल्य स्मारक संग्रह और ख्यातों रीतभातों और मनुष्य के मन के इतिहासों का कोष-रूप है। इस कवि के काव्य को पढ़ना मान मिलने के मार्ग पर चलना है। मेरा निज गुरु इसमें ऐसा कुशल था कि उसके जाति वाले भी उसको सब में उत्कृष्ट होना कहते थे। जैसे वह बाँचता गया वैसे मैंने शीघ्रता से ३०,००० तीस हजार छन्दों का अनुवाद कर लिया। जिस भाषा में यह पुस्तक लिखी है, उसमें मुझको अच्छा परिचय होने से मैंने ऐसा भी मान लिया है कि कितनी ठिकाने उस कवि की छटा मेरे भाषान्तर में आई है। परन्तु जो मैं यह कहूँ कि उसको सब सौंदर्यता में ला सका हूँ अथवा उसके उपलक्ष्यों का गांभीर्य में बहुत समझ सका हूँ तो वह केवल एक मिथ्याभिमान है। परन्तु उसने यह किसके लिये लिखा था वह मैं जानता हूँ। उसने जिनके पराक्रम का वर्णन किया है उनके संतान मेरे आसपास रहने वाले मनुष्य हैं कि उनके मुख से सदा इस कवि की बड़ी साधारण धारणा और स्फूर्तियां मेरे सुनने में आती थीं। इसी से जिस ठिकाने कविता की विद्या में मेरे से अधिक कौशल्य संपन्न मनुष्यों को उस कवि के मन का भावार्थ समझने में नहीं आता था, उसको समझने को मैं शक्तिमान हुआ और मेरा गद्य-रूप भाषान्तर में कुछ रसयुक्त कर सका।"

मूल गुजराती लेखक—श्री गोवर्द्धन शर्मा
भारतीय विद्याभवन, बम्बई

महाकवि चंद और पृथ्वीराज रासो

अनुवादक—श्री मोहनलाल व्यास शास्त्री

(प्रथम संस्करण—ई० १९४७)

(१)

पूर्व भूमिका

अपने यहाँ महाकवि चंद बरदाई और पृथ्वीराज रासे के सम्बन्ध में अभी अभी कितने ही इतिहासज्ञों ने नवीन ऐतिहासिक शोध के नाम से बहुत ही उटपटांग और अनैतिहासिक असत्य प्रकट करने वाली असंगत बातें लिख डाला हैं। ये इतिहासकार कवि चंद और रासो ग्रंथ की प्रामाणिकता में संशय प्रकट करते हैं कि "रासो पृथ्वीराज के समकालीन किसी कवि के द्वारा रचित ऐतिहासिक महाकाव्य नहीं है, और कदाचित् इस नाम का कोई कवि हुआ हो तो उसने रासो महाकाव्य वि० सं० १६०० के आसपास लिखा हो। वास्तव में यह एक झूठा महाकाव्य है'[१]।"

शताब्दियों से आज भी लोक हृदय में इतना अधिक प्रसिद्ध है कि 'पृथ्वीराज रासो' यह पृथ्वीराज के समय का ऐतिहासिक ग्रंथ है, जिसकी रचना पृथ्वीराज के सम्मानित सामंत निजी मित्र और राजकवि चंद बरदाई ने पृथ्वीराज के यशोगान के लिये की थी। लोकवाणी की इस सिद्ध बात का कितनी ही ऐतिहासिक

---

१. देखिये—"ऐतिहासिक संशोधन" दुर्गाशंकर शास्त्री कृत नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, अंक १-२।

सामग्री और साहित्य भी इसका समर्थन करता है[२]। इसके अतिरिक्त रासो की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उसकी प्राचीनता को प्रकट करने वाली प्राप्त हो चुकी हैं। अतिरिक्त इसके वि० सं० १४०३ में लिखी हुई एक पुस्तक से भी पूर्ति होती है। इसके उपरान्त प्राचीनता का उल्लेख पुरातत्व पुस्तकों में अनेक स्थानों पर हुआ है। ऐसा उल्लेख और समर्थन करने वाले विद्वानों में मुख्य-मुख्य मुनि श्री जिनविजयजी, डॉ० दशरथ शर्मा एम० ए०, प्रो० मीनाराम रंगा एम० ए०, प्रो० मूलराज जैन एम० ए०, डा० कुलनर, श्री भँवरलाल नाहटा, प्रो० बनारसीदास चतुर्वेदी, मुनि कान्तिसागरजी, डा० अल्लामा अब्दुल्लाह युसुफअली, सी. बी. इ. एम. ए एल.एल. एम., साहित्याचार्य पं० श्री मथुराप्रसाद दीक्षित, प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी एम० ए०, डा० होर्नले, डा० मोतीलाल मेनारिया एम ए०,[३] सरजान ग्रिअर्सन, आदि भाषा साहित्य और पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। अतः उक्त महाकवि चंद और रासो सम्बन्धी कथन इतिहास के संगीन सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, और वह विपरीत कथन है। इतिहास के जिज्ञासुओं को भ्रमात्मक मार्ग में लेजाने वाला अनिष्ट रूप है। क्योंकि इस कथन में देश्य भाषा के ज्ञान का और ऐतिहासिक सत्य दृष्टि का सर्वथा अभाव है।

इसलिये महाकवि चन्द और पृथ्वीराज रासो का प्राचीनता के लिये सत्य लक्षी दृष्टि से रासो की मिल जाने वाली प्राचीन प्रतियों और ऐतिहासिक साधनों का विशद विश्लेषण एवं तटस्थ विचारों से अनुशीलन करना विशेष रूप से आवश्यक है: क्योंकि एसे अनुशीलन से जनता के समक्ष इतिहास की वास्तविक सत्यता प्रकट होती है।

इसके पूर्व हम विद्वानों एवं इतिहास प्रेमी जनता का लक्ष्य, एक बात पर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहेंगे और वह यह कि आज तक रासो सम्बन्धी जिन २ विद्वानों ने विरोधी विचार प्रदर्शित किये हैं—वे केवल रासो की प्रचलित और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रति के आधार पर ही हैं। इसका प्रति लिपि काल सम्वत् १७३२ है और उसका कलेवर पीछे से वृद्धिगत

२. देखिये—"आल्हा खंड" विलियम वाटर फिल्ड द्वारा सम्पादित ओक्सफोर्ड आवृत्ति (१९२३)।

किये हुए असंख्य क्षेपकों से भ्रष्ट बना हुआ है, इस प्रति में असली रासो के सत्य या वास्तविक स्वरूपों का समझना या निकालना सर्वथा असंभव है। क्योंकि अन्य प्राप्त होने वाली रासो की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में भाषा, भाव, घटना और आकार में नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति की अपेक्षा सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है। अतः सत्य वस्तु-स्थिति जानने के लिये अन्य हस्तलिखित प्रतियों का अवलोकन करके ही रासो के सम्बन्ध में वास्तविक निर्णय किया जा सकता है और इसके लिये रासो की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों को देख लेना आवश्यक और अनिवार्य है। ऐसा नहीं होने से ही इसके लिये गड़बड़ खड़ी होने लगी है।

(२)

रासो की प्राचीन हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ

पृथ्वीराज रासो की प्राचीन प्रतियों की शोध खोज करते अभी तक निम्न-लिखित प्रतियों का पता लग चुका है :

(१) बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी में आठ प्रतियाँ।
(२) बृहद् ज्ञान भण्डार बीकानेर में एक प्रति।
(३) श्री अगरचंद नाहटा की एक प्रति।
(४) पंजाब युनिवरसीटी लाहौर में चार प्रतियाँ
(५) भाण्डारकर ओरियटल इन्स्टीट्यूट पूना में दो प्रतियाँ
(६) रोयल एशियाटिक सोसाइटी, बंबई शाखा में तीन प्रतियाँ
(७) जोधपुर सुमेर लाइब्रेरी में दो प्रतियाँ
(८) उदयपुर विक्टोरिया मेमोरियल हॉल लाइब्रेरी में एक प्रति
(९) आगरा कॉलेज आगरा में चार भागों से विभाजित एक प्रति
(१०) कलकत्ता निवासी स्व० श्री पूर्णचन्द्र नाहर की एक प्रति
(११) बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में कुछ प्रतियाँ
(१२) नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी कुछ प्रतियां
(१३) किशनगढ़ स्टेट लाइब्रेरी की कुछ प्रतियाँ।
(१४) अलवर स्टेट लाइब्रेरी की कुछ प्रतियाँ।
(१५) यूरोप के विभिन्न पुस्तकालयों की प्रतियाँ।

(१६) साहित्याचार्य पं० मथुराप्रसाद दीक्षित की प्रति।
(१७) मुनि कान्तिसागरजी की मध्य प्रांत वाली एक प्रति।
(१८) चंद के वंशधर श्री नेनूराम भट्ट की दो प्रतियाँ।
(१९) फार्बस गुजराती सभा, बम्बई की दो प्रतियाँ।
(२०) बूँदी राज्य पुस्तकालय की एक प्रति।
(२१) कवि मोहनसिंह राव की देवलियावाली एक प्रति।

थ्वीराज रासो के तीन वाञ्चन

इन प्रतियों का निरीक्षण कर प्रो० मूलराज जैन एम० ए० का मत क अभी तक पृथ्वीराज रासो के पाठ अपने यहाँ तीन वाञ्चनाओं में पाये हैं। इनमें से (१) वृहद् वाञ्चन (२) मध्यम वाञ्चन और (३) लघु चन है [१]। वृहद् वाञ्चना में ६४ से ६६ तक समय (सर्ग) और १६-१७ र पद्य हैं। इसका परिमाण एक लाख श्लोकों का माना जाता है। परन्तु तव में ३५ हजार श्लोक ही हैं। यह वही वाञ्चन है कि जिसे नागरी प्रचारिणी ा ने सम्पूर्ण और कलकत्ता की रोयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ने थोड़े ों के रूप में छापी थी। विद्वानों ने रासो सम्बन्धी ऊहा-पोह केवल मात्र । वाञ्चन के आधार पर किया था।

(२) मध्यम वाञ्चना में ४० से ४५ समय (सर्ग), और उसका परि- ण ७ से १० हजार तक श्लोक हैं।

(३) लघु वाञ्चन में १९ समय और दो हजार के लगभग पद्य हैं सका परिमाण तीन हजार पाँच सौ श्लोकों का आता है। इस वास्तविकता का ज्ञान प्रथम डा० टेसीटोरी को १९१३ में हुआ था और उसने इस वाञ्चन के बन्ध में विद्वानों का ध्यान सबसे पहिले आकृष्ट किया था।

ऐसी वाञ्चना डॉ० टेसीटोरी ने भी की थी।

देखिये—डिस्क्रीप्टिव केटलॉक ऑफ् बार्डिक एन्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्टस्, भाग २

वाञ्चनाओं का विषय-क्रम—

रासो की वाञ्चना में अनेक स्थलों पर लघु वाञ्चना का विषय क्रम मध्यम अथवा वृहद् वाञ्चना की अपेक्षा अधिक समुचित दिखाई देता है। वृहद् तथा मध्यम वाञ्चना में प्रथम समय में मंगलाचरण और पीछे पृथ्वीराज के जन्म का वर्णन है और पीछे दूसरे समय में दशावतार वर्णन है; परन्तु लघु वाञ्चना के प्रथम समय में ही मंगलाचरण और दशावतार वर्णन है और दूसरे समय में पृथ्वीराज के जन्म का वर्णन है—और ऐसा ही होना भी चाहिये। क्योंकि दशावतार वर्णन—यह मंगलाचरण ही का रूपान्तर है और सदा मंगलाचरण ग्रंथारम्भ में ही होता है। लघु वाञ्चना में नायक पृथ्वीराज के जन्म वृत्तान्त के पीछे तीसरे समय में संयोगिता जन्म का वृतान्त आता है: परन्तु मध्य और वृहद् वाञ्चना में इन घटनाओं के मध्य में कितने ही समयों का अन्तर रहता है। वृहद् वाञ्चना में कन्नौज खंड के आरम्भ में पृथ्वीराज का संयोगिता के लिये तड़पना और एक वर्ष पर्यन्त प्रत्येक ऋतु में भिन्न २ रानियों द्वारा संयोगिता की प्राप्ति में विघ्न डालना, कवि को षट्ऋतु के वर्णन का अवसर दिलाता है परन्तु लघु और मध्यम वाञ्चना में यही वर्णन पृथ्वीराज का संयोगिता को दिल्ली लेकर आने पर आता है और यही घटना क्रम सरल और सुसंगत प्रतीत होता है। क्योंकि यदि पृथ्वीराज को संयोगिता की सच्ची लगन लगी हो तो वह एक वर्ष पर्यन्त कदाचित उसे प्राप्त किये बिना नहीं बैठ रहता।

बढ़ती हुई अनैतिहासिकता—

लघु वाञ्चना की अपेक्षा मध्यम में और मध्यम वाञ्चना की अपेक्षा वृहद् में अनैतिहासिक घटनाओं का प्रमाण विशेष रूप से दिखाई देता है जैसे कि लघु वाञ्चना में पृथ्वीराज का शाहबुद्दीन के साथ तीन लड़ाइयों का वर्णन है—जब कि मध्यम में आठ का और वृहद् में बीस का है। वास्तव में देखते हुए तो उसके साथ पृथ्वीराज के केवल मात्र दो ही युद्ध हुए थे। इस प्रकार भीम द्वारा सोमेश्वर वध, जयचंद का मेवाड़ पति समरसी (समतसी) तथा गुजरात के राजा के साथ युद्ध, अग्निकुंड में से चौहान वंश की उत्पत्ति आदि अनेक अनैतिहासिक घटनाओं का वर्णन मध्यम अथवा वृहद् वाञ्चना में आता है, लघु वाञ्चन में नहीं। यह

संभव नहीं कि चंद बरदाई ने स्वय अपनी रचना में ऐसी अनैतिहासिक घटनाओं का समावेश किया हो। क्योंकि यह पृथ्वीराज का मित्र एवं समकालीन पुरुष था। इससे यह अधिक उचित जान पड़ता है कि कविचंद के पीछे उसके परवर्ती कवियों ने ऐतिहासिक क्रम की ओर बिना ध्यान दिये पृथ्वीराज की महिमा गाने के लिये इन अनैतिहासिक घटनाओं का समावेश किया है।

उपयुक्त विचार धारा के आधार पर हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि आरंभ में पृथ्वीराज रासो मूलरूप में बहुत ही छोटा होगा, पर पीछे से कालान्तर में प्रक्षेपों के मिल जाने से उसका कलेवर बढ़ गया है। रासो की आज पर्यंत प्राप्त होने वाली वाचनाओं में लघु वाचना शेष दो की अपेक्षा विशेष प्राचीन और प्रामाणिक है।[1]

इन प्रतियों में से कुछ प्रतियों का समावेश:

इन प्राचीन प्रतियों में से हमारे परिचय में आई हुई प्रतियां इस प्रकार हैं:-

१—नागरी प्रचारिणी सभा बनारस द्वारा प्रकाशित।

२—फार्बस गुजराती सभा के पुस्तकालय की प्रतियाँ।

३—सोलन निवासी साहित्याचार्य प० मथुराप्रसाद दीक्षित की प्रति।

४—बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी की रामसिंहजी के समय की प्रति।

५—मुनि श्री कान्तिसागरजी की मध्यप्रान्त वाली प्रति।

(१) नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो की हस्तलिखित प्रति का लिपि संवत् १७३२ है और आज यह रासो काव्यरूप में प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ का सटीक संपादन श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या और बाबू श्यामसुन्दरदास ने किया। इसमें ६९ समय (सर्ग) हैं तथा छंद संख्या लगभग सौलह हजार और तीन सौ है।

(२) फार्बस गुजराती सभा बंबई की इस हस्तलिखित प्रति में उसके लेखक ने न तो रचना संवत् दिया है, और न लिपि संवत्। परन्तु इस प्रति को स्व० श्री

---

१. देखिये—"प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ", प्रो० मूलराज का लेख, पृष्ठ ३०३ में।

फार्बस साहब ने साणंद बीजापुर के ब्रह्मभट्टों से उतरवा कर मँगवाई थी, इस प्रकार उसके एक नोट से सूचित होता है। रासो की यह प्रति नागरी लिपी में लिखी हुई है[1]। इसकी अनुक्रमणिका के बाईस समय हैं और प्रथम समय का प्रारम्भ दशावतार के वर्णन से प्रारम्भ होता है। इस प्रति में पृथ्वीराज के जन्म सम्बन्धी वर्णन में निम्न दोहा लिखा हुआ है—

एकादश में पंचप (द१) ह, विक्रम शक आनंद।
तिहि रिपु पुर जै हरन को, हुय प्रथिराज नरिंद॥

(३) यह प्रति मोलन रियासत निवासी साहित्याचार्य श्री पं० मथुराप्रसाद जी दीक्षित की है, जिसके एक समय को उन्होंने सटीक छपवा कर प्रकाशित किया है: इसके आमुख में श्री दीक्षित बताते हैं कि रासो की पुरानी प्रतियों की शोध में मुझे यह प्रति मिला है और कवि स्वयं भी छंद संख्या का उल्लेख करता हुआ बताता है कि:

सत्त सहस रासो सहस, सकल आदि सुभ दिष्ष।
घटि बढ़ि मर्तेय काई, मोहि दुषन न विसिष्प॥

इससे इतना तो सिद्ध होता है कि छपे हुए रासो में प्रक्षेप अधिक हैं और प्राचीन पुस्तक के साथ इसे मिलाते हुए जिन २ घटनाओं का उल्लेख कर श्री ओझाजी रासो को झूठा और निर्मूल ग्रंथ कहते हैं, ये सब घटनाएँ प्राचीन हस्तलिखित प्रति में किसी भी स्थल पर देख नहीं पड़ती। इस प्राचीन ग्रंथ के आधार पर ही मैंने इस प्रथम समय का संशोधन एवं संपादन किया है, जिसमें केवल मात्र सात हजार श्लोकों की संख्या है।[2]

इस प्रति में प्रथम समय (सर्ग) मंगलाचरण से प्रारम्भ होता है। इसमें गणेश स्तुति, पीछे कवि अपनी अपूर्व लघुता से उच्छिष्ट कथन कहने की संज्ञा कहता है। इसमें भुजंगी ब्रह्मा, महाभारतकार भारती भगवान वेद व्यास, शुकदेवजी, श्री हर्ष "नैषध काव्य" के रचयिता, कालीदास सेतुबंधन के रचयिता, दंड माली,

१. देखिये—फार्बस गुजराती हस्तलिखित पुस्तकों की सूची।

२. देखिये असली पृथ्वीराज रासो

जयदेव आदि कवियों की वन्दना करते हुए लिखता है कि इन महापुरुषों के काव्य के समक्ष कुछ भी बच नहीं रहता, फिर भी मैं कवि चन्द उनकी उक्तियों का पद्य-रूप में वर्णन करता हूँ। इसके पश्चात् कवि कथानक में पृथ्वीराज-जन्म, पृथ्वीराज का संयोगिता-हरण, शाहाबुद्दीन गोरी के साथ तीन युद्धों आदि का मुख्य रूप से वर्णन करता है।

(४) यह प्रति बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी में रामसिंहजी के समय की है। इस प्रति में श्लोक संख्या ४००४ है और १६ खंडों (समयों) में है। प्रथम समय का वर्णन गणेश-स्तुति से आरंभ होता है। इसके पश्चात् इसी समय में सरस्वती की स्तुति, दशावतार-वर्णन आदि आते हैं। दशावतार-वर्णन इस प्रति में कृष्ण-चरित्र, कंस-वध तक ही है। फिर उपर्युक्त तीसरी प्रति के समान इस प्रति में भी नैषध-काव्य रचयिता श्री हर्ष, भरत, कालीदास, दंडमाली, जयदेव आदि कवियों की वन्दना की गई है।

चौहानों की वंशावली

इसके बाद इस प्रति के दूसरे समय में चौहान वंश का वर्णन है, जिसमें ब्रह्मा के यज्ञ से उत्पन्न (क) चौहान माणिकराय (ख) अनेव, (ग) धर्माधिराज, (घ) बीसल, (ङ) आनल्ल, (च) जयसिंह (छ आनंद (ज) सोम, (झ) पृथ्वीराज है।

इस पुस्तक में वशिष्ठ के अग्निकुंड में से चौहानों के उत्पन्न होने की बात नहीं है। इसी प्रकार चौहान राजाओं का वर्णन भी अति सूक्ष्म रूप में किया गया है। गलत रीति से इस पुस्तक में राजाओं के नाम नहीं भरे गये हैं और हमें यह भी सन्देह है कि 'अनेव' और 'धर्माधिराज' राजाओं के नाम नहीं हैं, पर संक्षिप्त वर्णन में 'धर्माधिराज' माणिकराय का विशेषण और 'अनेव,' अनेक का पर्यायवाची प्रतीत होता है और पुस्तक के आधार पर चौहानों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार होती है—

१ अनेक अनुज सहित धर्माधिराज माणिकराय
|
२— बीसल
|
३— आनल्ल [पृथ्वीराज प्रथम]
|
४— जयसिंह [जयराज]
|
५— आनंद [अर्णोराज—आना]
|
६— सोमेश्वर
|
७— पृथ्वीराज

इस प्रकार बीसल को विग्रहराज तृतीय मानना चाहिये, जो 'प्रबन्ध-कोश' के अंत में दी हुई वंशावली के अनुसार ही होगा। उसे लम्पट बतलाया है। अतः बात दीपक के समान स्पष्ट हो जाती है; क्योंकि शिलालेखों आदि की वंशावली इस प्रकार है—

रासो का कथानक

इस प्रकार इन वंशावलियों की तुलना करते हुए इस प्रति के आनल्ल को

पृथ्वीराज प्रथम माना जाय तो वंशावली बराबर मिल जाती है। आनंद यह अर्णो-राज का भ्रष्ट रूप है।[A1]

इसके पश्चात इस प्रति में संयोगिता की उत्पत्ति, जैन अमरसिंह द्वारा कैमास-वशीकरण, चन्द द्वारा दुर्गास्तुति, जयचन्द द्वारा यज्ञारम्भ, संयोगिता की पृथ्वीराज से विवाह करने की प्रतिज्ञा आदि का वर्णन है। इसके बाद कैमास-वध, पृथ्वीराज का संयोगिता के लिये कन्नौज पहुँचना, जयचन्द के यहाँ कविचन्द का जाना, जयचन्द द्वारा कवि चन्द का स्वागत, कर्णाटकी प्रवेश, पृथ्वीराज का परदा करना, पृथ्वीराज-संयोगिता का पारस्परिक दर्शन तथा विवाह आदि घटनाओं का वर्णन आता है। जयचन्द का पृथ्वीराज को पकड़ने का प्रयत्न सात सामन्तों का मारा जाना, भयानक युद्ध, पृथ्वीराज का संयोगिता सहित दिल्ली प्रवेश आदि का ११ वें सर्ग में वर्णन है और यह युद्ध तीन दिन तक चलाथा यह सूचित होता है।

इन घटनाओं के वर्णन के पश्चात् इस प्रति में शेष समयों में जैत खंड का आरोपण-धार पुण्डार द्वारा शाहबुद्दीन का कैद होना, चामुण्डराय का बंध-बिमोचन, शाहबुद्दीन गोरी और पृथ्वीराज के बीच घोर युद्ध, शूर-सामन्त पराक्रम-वर्णन, पृथ्वीराज का शत्रु के हाथ में कैद पकड़ा जाना, जालंधरीदेवी के स्थानक में कवि चन्द की वीरभद्र के साथ भेट, कवि चन्द का पृथ्वीराज के लिये गजनी जाना, बाण वेध आदि घटनाओं का मुख्य रूप से वर्णन है।

---

१. देखिये:—'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' नवीन संस्करण अंक ४ वर्ष ४५, डा० दशरथ शर्मा एम्० ए० का लेख।

A स० टि०—आनल्ल को पृथ्वीराज प्रथम मान लेना कल्पना मात्र ही है; क्योंकि ये दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं और शिलालेख आदि में वीसल (तृतीय) के बाद पृथ्वीराज स्पष्ट नाम है। आनल्ल का आनन्द या अर्णोराज तो नाम हो सकता है, पृथ्वीराज नाम नहीं। जयसिंह को जयराज अथवा अजयराज मान लेने की युक्ति चल सकती है; परन्तु जो कथाएं रासे में जयसिंह के सम्बन्ध में बतलाई हैं, उनका संबंध जयराज या अजयराज से हो सकता है, या नहीं विचारणीय बात होगी। वस्तुतः रासो की प्रतियों के पाठों में इस प्रकार दूषित पाठ हो जाने से ये भ्रान्तियां उत्पन्न हुई हैं।

रासो की यह पुस्तक वि० स० १६४७ की है और इसका प्रक्षिप्तांश एवं भाषा को देखते हुए इतना स्पष्ट हो जाता है कि उस समय पृथ्वीराज रासो लोक में भली प्रकार विख्यात हो जाना चाहिये। कविचन्द के जिन प्राचीन पद्यों का मुनि श्री जिनविजयजी ने 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में होने का उल्लेख किया है, ये पद्य इस प्रति में भी हैं। केवल मात्र उसकी भाषा का स्वरूप बदला हुआ है[1] सम्भव है कि प्राचीनतम प्रतियों में ये पद्य उसके असली रूप में ही मिल आवें। जिन-जिन घटनाओं का उल्लेख कर आज रासे को बनावटी कहा जाता है, उन सब घटनाओं का इस पुस्तक में सर्वथा अभाव है।

पृथ्वीराज रासो की सचित्र प्रतिः—

(५) अब अन्तिम प्रति मुनि श्री कान्तिसागरजी की मध्य प्रान्त वाली है, जो आज तक समुपलब्ध पृथ्वीराज रासो की हस्तलिखित प्रतियों में अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक है। इस पुस्तक की पुष्पिका में उसका लिपि सम्वत् १४०३ कार्तिक सुदी पंचमी दी गई है।[2] B

रासो की यह प्रति विशेषकर छप्पय छन्दों में गुम्फित है और उसके विहंगावलोकन से विदित होता है कि भाषा अपभ्रंश प्राकृत है। इस पुस्तक में कई स्थलों पर तो इतना भाषा का काठिन्य प्रतीत होता है कि मूल के प्राकृत होने का विभ्रम हो जाता है। कठिन कठिन स्थलों पर किसी अध्येयता ने कहीं कहीं टिप्पणियाँ भी लिख दी हैं, जो भाषा शास्त्र की दृष्टि से बड़ी ही मूल्यवान है।

---

१. देखिये—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २० अंक ३, दशरथ शर्मा का लेख।

२. देखिये विशाल भारत, भाग ३८, अंक ५ मुनि कान्तिसागरजी का लेख।

B स० टि० मुनि कान्तिसागरजी द्वारा संग्रहीत प्रति वि० स० १४०३ कार्तिक सुदी ५ की है। उपर्युक्त हिसाब से सब से प्राचीन प्रति होनी चाहिये यदि वह प्रति इतनी ही पुरानी हो, एवं उसमें लिखा हुआ वर्णन किसी भी दृष्टि से विरोध जनक न हो, तो रासो का महत्त्व सहज में सिद्ध हो सकता है; किन्तु अब तक इस पर विद्वानों द्वारा विशद रूप से प्रकाश नहीं डाला गया है।

इस प्रति की प्रतिलिपि का प्राचीन होना विश्वसनीय है। क्योंकि वह पड़ी मात्रा में है। इसके अतिरिक्त यह प्रति ४५ तिरंगा चित्रों से विभूषित है, जो रासो की विभिन्न घटनाओं पर प्रकाश डालती है। उसमें एक चित्र का परिचय तीसरे पृष्ठ पर दिया गया है, जो इस प्रकार है - महाराज पृथ्वीराज अपनी राजसभा के विशाल सिंहासन पर विराजमान है। दाहिनी ओर एक खास आसन पर महाकवि चन्द अधिष्ठित है। दोनों ओर विशिष्ट श्रेणी के सरदार श्रीमन्त आदि प्रतिष्ठित सज्जन बैठे हुए हैं, जिनमें पृथ्वीराज का काका कन्हराय भी आँखों पर सुवर्ण पट्टिका बाँधे हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। चित्र की पृष्ठ भूमि गुलाबी होने से सजीवता का अनुभव होता है[1]।

शेष चित्रों में खास-खास सभ्यों के नाम भी दिये हुए है, जिनमें 'रामदे' जैसा एक प्रमुख जैन गृहस्थ था। संयोगिता हरण, शाहबुद्दीन गौरी, पृथ्वीराज संयोगिता विलास, पृथ्वीराज की मृगया, युद्ध-क्षेत्र, कवि चन्द आदि के तिरंगे चित्र महत्त्वपूर्ण होने के अतिरिक्त प्राचीन चित्रकला के अद्भुत नमुने है। इन चित्रों का चित्रकला की दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि उनकी रचना काँगड़ा परिपाटी के आधार पर की गई हैं। चक्षुओं का विकास, अंग-विन्यास मुख्य कृति की मादकता, शारीरिक सुबद्धता पारदर्शक—वस्त्र, सीमित आभूषणों का विकास-रंगों का विभाजन और रेखाओं की विलक्षणताओं से परिपूर्ण मरोड़-तरोड़ किस कला प्रेमी को आकर्षित नहीं करे? जिन पर मुगल कालीन चित्रकला का सर्वथा प्रभाव ही नहीं पड़ा। प्रति के बाजू पर हाशिये-पर जंगली जानवर और पुष्पलताओं का मनोहर प्रदर्शन सिद्ध-हस्त कला-कौशल्य का स्मरण कराये बिना नहीं रह सकता। इस प्रति के लेखन एवं कला-प्रेमी श्री हेमपाल जैसे गर्भ श्रीमन्त व्यक्ति के लिये ही यह सम्भव और सुलभ था। इस प्रति से इतना अवश्य सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज रासो का रचना काल वि० सं० १४०३ के पूर्व होना चाहिये। क्योंकि वि० सं० १४०३ में तो इसकी सर्वसाधारण जनता में प्रसिद्धि हो चुकी थी।

---

१. इस चित्र के लिये मुनि श्री कान्तिसागर जी को, श्री भँवरलाल नाहटा ने इसी प्रकार के अन्य चित्र जैसलमेर के जैन उपाश्रय में होना सूचित किया था।

अन्य कवियों द्वारा रासो में कथित महिमागान

ऊपर की हस्तलिखित प्रतियों के विवरण को देखने पर और पद्य रचना का परिमाण निहारते इतना निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि असल में रासो महाकाव्य, कवि चन्द ने बहुत ही छोटा बनाया होगा। परंतु पीछे से कालान्तर में उसमें प्रक्षिप्तांश मिलते २ उसका वर्तमान वृहद् कलेवर बनगया है और इसका मुख्य कारण रासो काव्य की अतिशय लोकप्रियता है। इस लोकप्रियता को देखकर उसमें अनेक कवियों ने अनेक स्थलों पर इस प्रकार उनके वर्णन और अनैतिहासिक घटनाओं को जोड़कर उसके प्राचीन स्वरूप का सर्वथा नष्ट कर डाला है। अतः यह भी संभव है कि उसकी प्रसिद्धि को देखकर कितने ही राज्याश्रित चारणों और भट्ट कवियों ने अपने आश्रय दाताओं के महिमागान इधर-उधर जोड़ भी दिये हों। इस बात को भाषा की दृष्टि से देखने पर संपूर्ण समर्थन मिल जाता है, जो इस प्रकार है—

रासो और पुरातन प्रबन्ध संग्रह

'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' नाम के पाटन के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार में से प्राप्त जैन धर्म के प्राकृत भाषा के पुरातन ग्रन्थ की प्रामाणिकता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इसका सम्पादन विख्यात पुरातत्वविद् और भाषा के विद्वान् मुनि श्री जिनविजयजी ने किया है[1]। इसका रचना-काल वि० सं० १२९० और लिपि सम्वत् १५२८ है। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में उसका रचना सम्वत् इस प्रकार उल्लिखित है—

---

१ सिरिदधुपाल नंदण मंतिसर जयंतसिंह भणणत्थ।
नागिंद गच्छ मंडण उदयप्पह सूरि सिसेणं॥
जिण भद्दे ण य विक्कम कालाउ नवइ अहि बारसए।
नाणा कहाण पहाणा एस पबंधावली रइआ॥

पृष्ठ १.३६. 'पुरातन प्रबंध संग्रह'
सिन्धी-जैन ग्रन्थमाला। ग्रन्थांक २

"नागेन्द्रगच्छ के आचार्य उदयप्रभ सूरि के शिष्य जिनभद्र ने मन्त्रीश्वर वस्तुपाल के पुत्र जयसिंह के अभ्यास के लिये वि० सं० १२९० में इस छोटे से कथानक प्रधान प्रबन्धावली की रचना की।" इस कथन को देखते हुए उसकी प्राचीनता में शंका का कोई स्थान ही नहीं रह जाता है।

इस प्राचीन ग्रन्थ में कविचन्द के द्वारा रचित चार पद्य मिलते हैं, जो अपभ्रंश प्राकृत (देश्य) भाषा में है। जिनमेंसे तीन का रूपान्तर नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो में तथा बीकानेर फोर्ट लाईब्रेरी की प्रति में मिल जाता है अतः ये पद्य तो कविचन्द के ही बनाये हुए हैं जो इस प्रकार है—

मूलपाठ (१)

इक्कुबाणु पहु वीसु जु पइँ कइँ बासह मुक्काओ,
उर भितरी खडहडिउ धीर कक्खतरि चुक्कउ।
बीअ करि संधीउँ भँमेमइ सुसर नंदण।
एहु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दई सइंभरि वणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जांणउ चंदबलदिउ कि न वि छुट्टइ इह फलह॥

पुरातन प्रबन्ध. पृष्ठ ८६. पद्यांक २७५।

रूपान्तर (१)

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्र थरहर्‍यौ वीर कष्षतर चूक्यौ॥
बियोबान सधान हन्यौ सोमेस्वर नंदन।
गाढौ करि निग्रह्यौ षनिव गडयौ संभरि धन॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाडयौ गुन ग्रहि आगरौ।
इम जंपै चंद वरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ॥

नागरी प्रचारिणी सभा, रासो पृष्ठ १४६६, पद्य २३६।

मूलपाठ (२)

अगहु म गहिदाहिम ओ रिपुराय खयँ करू
कूडु मंत्र ममठ ओ एहु जँबूय(प ?)मिली जग्गरू।

महनामा सिक्खउं जइ सिक्खविउ बुज्झइं ।
जंपइ चंद बलिद्दउ मज्झ परमक्खर सुज्झइं ।
पहु पहु विराम संइभार धनी सयँभरि सउणइ समिरिसि ।
कइंबास विआस विसट्ट विणु मच्छि बंधि बद्धओ मरिसि ।।

पु० प्र० सं०, प० ८६, पद्यांक २७६ ।

रूपान्तर (२)

अगह मगह दाहिमौ देव रिपुराइ षयंकर
क्रूर मंत जिन करौ मिले जंबू वै जंगर ।
मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै
अख्यै चंद बियौ कोई एह न बुज्झै ।।
प्रथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिसि
कैमास बलिष्ठ बसीठ बिन म्लच्छ बध बँध्यौ मरिसि ।।

नागरी प्र० सभा, रासो पृष्ठ २१८२, पद्य ४७६ ।

मूलपाठ (३)

त्रिरिण्ह लक्ख तुषार सबल पाखरि अइँ जसु हय
चउदसय मयमत्त दंति गज्जंति महामय ।।
वीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर
ल्हूसडु अरू बलुयान संख कु जाणइ तांह पर ।।
छतीस लक्ख नराहिवइ विहि विनिडिओ हो किम भयउ ।
जइ चन्द न जाणउ जल्हू कइ गयउ कि मूउ कि धरि गयउ ।।

पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ ८८, पद्यांक २७७ ।

रूपान्तर (३)

असिय लष्ष तोषार सजउ पष्पर सायद्दल ।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरूअ गज्जंति महाबल ।।
पंच कोटि पाइक्क सुफर पारक्क धनुद्धर ।
जुध जुधान बार बीर तोन बंधन संद्धन भर ।।

छत्तीस सहस रन नाइबौ विही क्रिम्मान ऐसो कियौ ।
जै चन्द राइ कवि चन्द कहि उदधि बुड्डि कै धर लियौ ॥
नागरी प्र० सभा,रासो पृष्ठ २५०२, पद्य २१६ ।

मूलपाठ (४)

जइत चन्दु चक्कवइ देव तुह दुसह पयाणउ
धरणि धसविउद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ ।
सेसुमणिहिं संकियउ मुक्कु हयखरि सिरि खंडिओ ।
तुट्टओ सोहर धवलु धूलि जसुचियतणि मंडिओ ॥
उच्छहरिउ रेणु जसग्गगय सुकवि ब (जं) लहु सच्चउ चवइ ।
वग्ग इन्दु विन्दु भुयजु अलि सहस नयण किण परि मिलइ ॥
(पुरातन प्रबंध-संग्रह-पृष्ठ ८८-८६, पद्य २७६)

कवि चंद के द्वारा रचित ये चार पद्य और उनका रासो ग्रन्थ में मिल जाना और भाषा की दृष्टि से भ्रष्ट-रूपान्तर यह निर्विवाद रूप से सिद्ध करता है कि मूल रासो-ग्रंथ, कवि चंद द्वारा अपभ्रंश प्राकृत अथवा देशी भाषा में लिखा गया हो, न कि प्रचलित डिंगल भाषा में। अपभ्रंश-प्राकृत संवत् १००० से १४०० तक भारतवर्ष की साहित्यिक लोक-भाषा थी और इससे इतना तो अवश्य सिद्ध होता है कि रासो का रचना काल वि० सं० १६०० के आसपास नहीं है, पर विक्रम की १२ वीं सदी का प्रतीक है c ।

इन प्राचीन पद्यों का उल्लेख करते पुरातन-प्रबंध के प्रास्ताविक वक्तव्य में मुनि श्री जिनविजय जी सूचित करते हैं कि 'यहाँ मैं विद्वानों का एक बात पर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ और वह बात यह है कि इस संग्रह में पृथ्वीराज और जयचंद विषय के प्रबंधों में से मुझे विदित हुआ है कि चंद कवि रचित पृथ्वीराज रासो नामक हिंदी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य के कर्त्ता और काल के विषय में जो कितने ही पुरातत्वविद् विद्वानों का मत है कि यह ग्रन्थ समूल ही

c. सं. टि. रासो ग्रन्थ को १२ वीं शताब्दी विक्रमी का प्रतीक कहना ठीक नहीं है । रासो का मुख्य नायक पृथ्वीराज तृतीय है और जब कि उसकी प्रशंसा में यह ग्रन्थ निर्माण हुआ तो रचनाकाल तैरहवीं शताब्दी विक्रमी होगा ।

बनावटी है, और १७ वीं सदी के आसपास बना हुआ है।' यह मत सर्वथा सत्य नहीं है। इस संग्रह के ऊपर कहे हुए प्रकरणों में जो तीन चार प्राकृत भाषा के पद्य उद्धृत किए हुए मिल गये हैं, और उनका पता मैंने रासो में लगाया है और इन पद्यों में से अभी तक विकृत रूप में होने पर भी रासो में मिल गये हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि कवि चंद निश्चित रूप से एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिन्दु-सम्राट पृथ्वीराज का समकालीन और सम्मानित राजकवि था। इसीने पृथ्वीराज की कीर्ति-कलाप का वर्णन करने के लिये देश्य अर्थात् प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी, जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मैंने इस महाकाय रासो ग्रन्थ के कितने ही प्रकरण इस दृष्टि से बहुत ही मनन के साथ पढ़े, तो मुझे कितनी ही प्रकार की भाषा और रचना पद्धति का भास हुआ। भाषा और भाव की दृष्टि से उसमें कितनेक ऐसे पद्य अलग दिखाई दिये—जैसे छाछ में मक्खन दिखाई देता है............विदित होता है कि चन्द कवि की मूल कृति बहुत ही लोक-प्रिय बन गई और इसीलिए जैसे २ समय बीतता गया, वैसे २ चारण और भट्ट कवि नये-नये पद्य बना कर जोड़ते गये और इस काव्य का कलेवर बढ़ा दिया। दूसरा कण्ठानुकण्ठ उसका प्रचार होते रहने से मूल पद्यों की भाषा में भी बहुत ही परिवर्तन होता गया और परिणाम में आज कवि चन्द की मूल रचना विलुप्त हो गई प्रतीत होता है। परन्तु कोई भाषा विद्, विचक्षण-विद्वान् यथेष्ट साधन सामग्री के साथ पूर्ण परिश्रम करे, तो इस कूड़ेकर्कट में से रत्न के जैसे रासो के असली पद्य शोध कर उसका पाठोद्धार कर सकता है'।

इस प्रकार भाषा की दृष्टि से देखते हुए रासो वर्तमान डिंगल भाषा का काव्य ग्रन्थ नहीं है, पर प्राचीन अपभ्रंश-प्राकृत (देश्य) भाषा का ग्रन्थ है। इसके विश्वास के लिये इस समय की भाषा और साहित्य के साथ तुलना करना आवश्यक है।

(३)

पृथ्वीराज रासो की भाषा और बारहवीं शताब्दी का भाषा साहित्य

अपभ्रंश-प्राकृत (देश्य भाषा का समय—

पृथ्वीराज रासो की भाषा की दृष्टि से तुलना करने के पूर्व अपभ्रंश भाषा का ऐतिहासिक दृष्टि से समय देख लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि इस बोल-चाल

१. देखिये-'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' पृष्ठ ८ से १०।

की लोक भाषा से ही आज की वर्तमान प्रांतीय भाषाओं-गुजराती, हिन्दी, मराठी बंगला आदि-का जन्म हुआ है। भाषातत्वज्ञों का मन्तव्य है कि विक्रम की तीसरी शताब्दी में प्राकृत को, लोक-भाषा के बोलचाल के स्थान से पदच्युत कर, अपभ्रंश ने साहित्यिक-अपभ्रंश का रूप धारण किया[१]। इस प्रकार समय की दृष्टि से साहित्यिक अपभ्रंश का शैशवकाल विक्रम की तीसरी शताब्दी, किशोर-काल विक्रम की चौथी शताब्दी और पाँचवी शताब्दी के पीछे से ही, उसका विकसित यौवनकाल माना जा सकता है।

इस अपभ्रंश के यौवनकाल का प्रबल प्रभाव और प्रचार केवल अकेले राजस्थान में ही नहीं हुआ था, पर समस्त उत्तर भारत में पश्चिम से लेकर पूर्व में मगध तक और गुजरात सौराष्ट्र आदि प्रदेशों में था; जिनका अस्तित्व ठेट विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक रहा है।

अपभ्रंश का आभूषण—

इस प्रकार जब से प्राकृत बोलचाल की भाषा ही नहीं रही, तब से अपभ्रंश का आविर्भाव हुआ[२]। यह भाषा जब तक जन साधारण में बोलचाल में व्यवहृत थी; तबतक यह देश्य भाषा अथवा देशी भाषा कही जाती थी। परन्तु जब से उसका साहित्य में व्यवहार होने लगा, तब से वह अपभ्रंश प्राकृत के रूप में पहचानी जाने लगी, जिसका उपयोग विशेषकर जैन, बुद्ध और सिद्ध शाखाओं के विद्वानों ने किया है और इसका साहित्य भी विपुल है। अन्त में इतना ही कहना है कि इस समय में अपने देश में सर्वत्र एक ही भाषा थी, जो अभी केवल मात्र साहित्य में ही सुरक्षित है। इस प्रकार अपभ्रंश अखंड भाषा है और वह इस समय की राष्ट्रभाषा है[३] जो संस्कृत और प्राकृत की एक तीसरी बहिन है। इन तीनों बहिनों में पारस्परिक सद्भाव और प्रगाढ़ संपर्क होने से एक की शोभा दूसरी और दूसरी की शोभा तीसरी में दिखाई देती है। ऐसा होने से ही ललित विस्तार के प्राञ्जल संस्कृत-प्रवाह में इन अपभ्रंश पद्यों की शोभा ओत-प्रोत हो गई है।

---

१. देखिये-'गुजराती भाषा की उत्क्रान्ति' पृष्ठ १७२, अध्यापक श्री बेचरदास दोसी कृत, बंबई युनिवरसीटी द्वारा प्रकाशित।

२. देखिये-हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत ना. प्र. स. द्वारा प्रकाशित।

३. देखिये-गुजराती भाषा की उत्क्रान्ति पृष्ठ १७६।

भाषा के सौष्ठव के लिए ऐसी शोभा का सब कोई आश्रय लें यह जानी हुई बात है। इसका नमूना इस प्रकार है:—

निष्कान्तु शरो यद विदु बोधिसत्वो
नगर विबुद्ध कपिलपुर समभ्रम ॥
मन्यन्ति सर्वे शयनगतो कुमारो
अन्योन्य हृष्टाः प्रमुदित आलभन्ते ॥
ललित विस्तार अभिनिष्क्रमण परिवर्त पृ० २२९-३०

मुक्ताहार विहारसार सुबुवा अब्भा बुधा गोपना
सेतं चीर सरीर ? गहिरा गौरी गिरा जोगिनी ।
वीना पानी सुवानि जानि दधिजा हंसारसा आसिनी
लंबोजा चिहुरार भार जघना विघ्ना घना नामिनी ॥
असली रासो पद्य २

देश्य भाषा के लक्षण

इस प्रकार सर्वशक्तिशालिनी संस्कृत भगिनी के आभूषण अपभ्रंश ने बड़ी उदारता से अपना लिये, जो लोकव्यापक बने हुए थे, इससे रासो की भाषा में होने वाला संस्कृत भाषा का आभास भाषा-दूषण नहीं, प्रत्युत उसकी शोभा है। यह लोक भाषा जनता में 'देशी' अर्थात् देश्य भाषा के नाम से पहचानी जाने लगी, जिसका 'देसी सद्द संगहो' नामक अपने रचे हुए शब्दकोष में आचार्य हेमचन्द्र सूरि इस प्रकार उल्लेख करते हुए देशी भाषा का लक्षण बताते हैं—

देस विदेस पसिद्धीइ भण्णमाणा अणंतया हुंति ।
तम्हा अणाइ पाइय पयट्ट भासा विसेसओ देसी ॥

[अर्थात् 'अमुक शब्द अमुक देश में प्रसिद्ध है, अतः वह देशी है' ऐसा विचार कर भिन्न२ देश, प्रसिद्ध शब्दों का संग्रह करें तो यह नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसे शब्द अनन्त हैं। इसलिये अनादि काल से चलती आई हुई विशेष प्रकार की प्राकृत भाषा को ही यहाँ देशी के रूप में समझना चाहिए।]

ऊपर लिखे अनुसार बारहवीं शताब्दी में आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने देशी भाषा का उल्लेख किया, तदनुसार 'विशेष प्रकार की प्राकृत' यह संकेत स्पष्टतया

अपभ्रंश प्राकृत के लिये ही किया गया है। इससे स्पष्ट विदित होजाता है कि देश्य अर्थात् देशी भाषा यह कोई दूसरी भाषा नहीं, पर अपभ्रंश प्राकृत है, जिसका व्यवहार ठेठ १२ वीं शताब्दी में भी प्रचलित था, जिससे गुजराती हिन्दी आदि प्रान्तीय भाषाओं का जन्म हुआ है।

प्रान्तीय भाषाओं का प्रारम्भिक काल

इस प्रकार इतना तो अनुभव किया जा सकता है कि उस समय केवल संस्कृत और प्राकृत भाषा के विद्वान् ही केवल काव्य-रचना नहीं किया करते थे- पर जनसाधारण की बोली में गीत, दोहे, आदि साहित्य में प्रचलित थे और ऐसी काव्य-रचना ठेठ राज सभाओं तक भी पहुँच गई थी। उस समय राज सभाओं में दो प्रकार की अलग २ मंडलियाँ बैठती थी। एक संस्कृत पंडितों की और दूसरी भाषा के विद्वानों की। [१] इसलिये इस समय में जनसाधारण की भाषा में काव्य रचना होती थी इसमें शंका का कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार राजसभा में में सुनाये जाने वाले शृँगार और नीति आदि के पद्य दोहों में बनाये जाते थे और वीर रस छप्पय में। जैनी कवि विशेषकर राज्याश्रित होते थे। ये राज्याश्रित कवि अपने २ राजाओं के शौर्य, प्रताप, और पराक्रम का वर्णन अनोखी उक्तियों के साथ अपभ्रंश प्राकृत में करते थे। अतः ऐसे राज्याश्रित कवियों की कविता सुरक्षित रखने की विशेष सुलभता भी थी और उसकी परंपरा ब्रह्मभट्ट एवं चारण कवियों ने साहित्य में बचा रखी है। इससे इस रक्षण परंपरा की साहित्य-सामग्री अपनी २ प्रान्तीय भाषाओं के प्रारंभिक काल में विपुल रूप से प्राप्त होती रही है।

बारहवीं शताब्दी का साहित्य

भारत के इतिहास का यह वही समय था, जब कि पश्चिमोत्तर दिशा से मुसलमानों के सतत आक्रमण हुआ करते थे, जिसका प्रभाव विशेषकर पश्चिम के राज्यों पर होता था। ऐसे युद्ध-काल की अवस्था में काव्य या साहित्य के भिन्न भिन्न अंगों की पूर्ति और समृद्धि का सामूहिक प्रयत्न सर्वथा कठिन बन गया था। उस समय तो मेघों की गर्जना के समान शौर्य रस पूर्ण काव्य तथा वीर गाथाओं की उन्नति संभव थी। फलतः ऐसी शौर्य गाथाओं से साहित्य के इतिहासमें दो स्वरूप

१. देखिये —राजशेखर सूरि कृत 'काव्य मीमांसा।'

होगये । एक छूटे मुक्तक के रूप में, दूसरा प्रबंध-काव्य के रूप में । साहित्य की गणना में इन मुक्तकों को फुटकर काव्य-रचना के रूप में जानते हैं, जब कि साहित्यिक प्रबंध-रचना के रूप में जो सबसे प्राचीन ग्रन्थ मिलता है, वह यही पृथ्वीराज रासो है, [१] जिसके मूल-पद्य पूर्व पृष्ठों पर अंकित किये गये हैं। इस प्रकार सामयिक साहित्य की दृष्टि से जो सामान्य मुक्तकों एवं काव्यों में रचना मिलती है, उनकी की दृष्टि से नमूने इस प्रकार हैं—

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कन्तु ।
लज्जेजं तु वयंसि अहु, जइ भग्गा घर एन्तु ॥

हे बहन ! अच्छा हुआ कि मेरा कन्त मारा गया। यदि वह भागकर मेरे घर आता तो मुझे सहेलियों में लज्जित होना पड़ता।

जइ सो न आवइ दुइ घरु काइँ अलोहोमुहु तुज्झु ।
वयणु ज खंडइ, सहि ए, सो पिउ होइ न मुज्झु ॥

······! वे घर नहीं आते तो तेरा मुख ऐसा (उदास) क्यों होता। सखि ! जो वयन (वचन) भंग करता है, वह मेरा पति नहीं। श्लेष में दूसरा अर्थ-इस प्रकार का पति मुख को चुम्बन द्वारा क्षत करता है, वह मेरा प्रिय नहीं।

जे महु दिएणा दिअहड़ा—दइएँ पवसंतेण ।
ताण गणंतए अंगलिउँ जज्जरियाउ नहेण ॥

प्रियतम ने प्रवास में जाते समय जितने दिन दिये थे (बताए थे) उनको गिनते-गिनते मेरी अंगुलियां जर्जरित होगई (घिस गई)।

ये दोहे 'हेमचन्द्र शब्दानुशासन' नामक विख्यात जैन आचार्य हेमचन्द्र सूरि के व्याकरण ग्रन्थ के हैं, जिसका रचना काल संवत् ११६६ से १२३० के बीच होना चाहिए। इसके अतिरिक्त संवत् १३६१ में होने वाले प्रसिद्ध जैनाचार्य मेरुतुंग रचित भोज-प्रबंध' नामक ग्रन्थ में प्रयुक्त अपभ्रंश के नमूने वह इस प्रकार हैं—

झाली तुट्टी किं न मुउ, किं हुएउ छरपुंज ।
हिंडइ दोरी बधीयउ, जिमि मंकड़ तिम मुंज ॥

---

१. देखिये—देश्य भाषा काव्य—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २५ से २६

टूट पड़ती आग (बिजली) में क्यों न मरा? (तुझ पर बिजली क्यों न पड़ी?) क्षार-पुञ्ज क्यों नहीं बन गया (तेरी राख की ढेरी क्यों नहीं होगई?) डोरी से बाँधे हुए बंदर के समान ही मुञ्ज तू है

मुंज भणइ मुणालवइ, जुब्बण गमु न झूरि
जइ सक्कर सय खंड थिय तोइ समीठी चूरि ॥

मुंज कहता है—हे मृणालवति! बीते हुए यौवन के लिये पश्चात्ताप नहीं कर। जैसे शक्कर को तोड़ने पर सौ टुकड़े हो जाते हैं, तो भी उसमें उसकी मिठास तो ज्यों की त्यों रहती है।

जा मति पच्छइ संपजइ, सामति पहली होइ।
मुँज भणइ मणालाइ! विघन न बेढइ कोइ ॥

मुञ्ज कहता है कि हे मृणालिनि! जो मति पीछेसे आती है, वह जो पहले ही सूझती हो तो किसी पर आपत्ति या विघ्न नहीं आ सकते।

इसके पीछे की काव्यरचना आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि रचित 'देसी सद्द संगहो' नामक ग्रन्थ है, जिसमें ग्रन्थकर्त्ता ने संस्कृत काल के पीछे के उस युग के गुजरात में प्रचलित प्राकृत-भाषा के शब्दों का संग्रह किया है। अतः भाषा संबंधी दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ ऐतिहासिक महत्त्व का है, जिसकी काव्य रचना इस प्रकार है-

किं रिद्धि पत्ता पिसुणा जे पणइणो वि ताविति।
कवय-कलंबूउ वर कमिय-करोडीए दिंति जे छाहिं ॥ १३१ ॥

जो स्नेहियों को भी सन्तप्त करते हैं वे ऋद्धि को प्राप्त पिशुन—हरामखोर किस काम के हैं? इसकी अपेक्षा तो बिल्ली का टोप और नलिका नाम की बेल अच्छी है कि अपने पास में आई हुई कीड़ियों को भी छाया देती है।

भक्खंतेण गोमं णत्था रहिअ-वसहेण व समग्गं।
णव्व! तए णोव्वाणं अन्नाण वि भंजिओ मग्गो ॥ २८५ ॥

गाँव के मुखिये? बिना नाथ के साँड़-बैल के समान सम्पूर्ण गाँव का भक्षण करते हैं वे अन्यान्य का मार्ग भी अवरुद्ध कर देते हैं।

दच्छतवं केण कयं दंते सहि दरदयम्पि को पडिओ ।
जो दडिमंडियउरो मदसेर दवसरं तुम रमइ ॥ (३००)

हे सखि ! दाँतों से तीक्ष्ण तप किसने किया है ? आधे पानी में कौन पड़ा है ? जो कनक सूत्र से (सोने के डोरे से) शोभित हृदयवाला, सोने के डोरे वाली और गद्-गद् स्वरवाली तुझ से रमण करता है । [1]

इसके बाद तीसरी काव्य रचना का नमूना वि० सं० १२४१ का है, जिसके रचयिता राजगच्छीय वज्रसेन सूरि के शिष्य सूरि श्री शालिभद्र जी हैं । इस काव्य का नाम 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' है, जिसकी हस्तलिखित प्रति विजय धर्म सूरि भंडार, बड़ोदा सेन्ट्रल लाइब्रेरी में है ।

रिसह जिणेसरपय पणमेवी, सरसति सामिणि मनि समरेवी
नमवि निरंतर गुरु चरण ।
भरह नरिंदह तणउ चरित्तो जे जगि वसुहींडो बदातो ।
वार वरसि बिहुँ बधवहँ ॥ १ ॥
हउ हिव ण भणिसु रासह छंदिहि, तं जहमणहर मण आणं दिहि ।
भाविइं भवीयण सांभणउ ।
जंबूदीवि उवारा उर नयरो, घण कण कचणिहिं पक्रो ।
अवर पवर कि हि अमर पुरो ॥ २ ॥

इस प्रकार १२ वीं शताब्दी के अंतिम और १३ वीं शताब्दी की प्रारंभिक काव्य रचना के साथ रासो की प्राचीन काव्यभाषा की तुलना करने पर उसमें कुछ विशेष तुलनात्मक दृष्टि से फेरफार नहीं दिखाता । पर उल्टी स्वाभाविक समानता दिखाई देती है, जो रासो की प्राचीनता को प्रामाणित करती है और मुनि श्री जिनविजयजी के कथन में रहा हुआ सत्य, प्रामाणिकता के रूप में दिखाई देता है कि रासो मूल अपभ्रंश प्राकृत या देश्य भाषा की रचना है, जो उस समय साहित्य एवं बोलचाल की लोकव्यवहारी भाषा थी । इसके अतिरिक्त रासो की प्राचीन प्रतियों में जहाँ कहीं संस्कृताभाव कराने वाले स्तुति पद्यादि खाई देते, हैं जो भाषा या व्याकरण की दृष्टि से कोई विकृति नहीं है ।

---

१. देखिये—'देशी सद संग हो' । अध्यापक बेचरदास दोशी द्वारा सम्पादित, फार्बस् गुजराती-सभा द्वारा प्रकाशित ।

परन्तु अपभ्रंश प्राकृत अर्थात् देश्य भाषा की काव्य रचना की एक प्राचीन-विशिष्टता और शोभा है। यह शोभा केवल रासो-ग्रन्थ में ही नहीं है, पर अन्य अपभ्रंश प्राकृत साहित्य के ग्रन्थों में भी है, जिसका उल्लेख 'ललित विस्तार' के प्रमाण के साथ पहले करके बता दिया है।

रासो की भाषा और उसका रचना काल—

इस प्रकार समसामयिक काव्य का अवलोकन कर उसकी भाषा को रासो की भाषा के साथ तुलना करने पर उसमें विशेष अंतर नहीं दिखाई देता और इससे इतना तो निर्विवाद रूप से निश्चित होता है कि पृथ्वीराज रासो की रचना कविचन्द ने वर्तमान समय में प्रचलित डिंगल या पिंगल में से उत्पन्न ब्रजभाषा में नहीं की, पर संवत् १२०० के आसपास जन साधारण में प्रचलित साहित्यिक भाषा-अपभ्रंश प्राकृत अर्थात् देश्य भाषा में होनी चाहिये, जिसका वैज्ञानिक ढंग से डॉ० दशरथ शर्मा एम्. ए. डि. लिट. तथा प्रो० मीनाराम रंगा एम्. ए. ने रासो के पद्यों को अपभ्रंश में परिवर्तित करके समर्थन किया है।[1] उसके प्रमाण में मुनि श्री जिनविजय जी द्वारा संशोधित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' के पद्य हैं। रासो की भाषा भ्रष्ट है'-ऐसा कहने वाले—इतिहासकार न तो पुरातन भाषाविद् हैं और न प्राचीन साहित्य के विद्वान् E। अतः उनका भाषा संबंधी कथन सर्वथा निर्मूल और निराधार है इससे उनके कथन को सत्य रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इस संपूर्ण विवरण से स्वयं सिद्ध होता है कि रासो की भाषा अपभ्रंश-प्राकृत अर्थात् देश्य है, जो यह सिद्ध कर देता है कि 'पृथ्वीराज रासो' की रचना कवि-चंद ने शताब्दियों पूर्व, मुगल साम्राज्य की संस्थापना के पूर्व, अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के शासन काल में की थी। सम्राट पृथ्वीराज चौहान के शासन-काल में संवत् १२२५ से १२४६ है। अतः रासो की रचना कविचन्द ने

---

१. देखिये-राजस्थान भारती भाग १, अंक १।

E स० टि:—'पुरातन प्रबन्ध' में दिये हुए चार पद्यों का रूप अवश्य ही प्राचीन है और उन्हीं पद्यों का रासो में दिया हुआ रूप भिन्नता लिये हुए हैं। अतएव स्पष्ट ही रासो की भाषा आक्षेप-युक्त बन गई है। ऐसी अवस्था में किसी भी आलोचक को हेय दृष्टि से देखना नीति संगत नहीं कहा जा सकता। प्रायः रासो के सब ही समर्थकों ने भी वर्तमान रासो को प्रक्षिप्तांश से भरा हुआ माना है, जो उसकी वास्तविकता के लिये घातक ही है।

१२४६ के पूर्व की होनी चाहिए, जिसका प्रमाण सं० १२६० में 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में लिखे हुए चंद कृत रासो के पद्य हैं।

(४)

रासो और सुर्जन चरित ऐतिहासिक काव्य

सत्य पर डाला हुआ तिमिरावरण—

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और प्राचीनता का सबसे प्रबल प्रमाण देनेवाला ऐतिहासिक संस्कृत महाकाव्य 'सुर्जन चरित' है, जिसकी रचना बंगाली कवि चन्द्रशेखर ने वि० सं० १६३५ में की है। इस काव्य का विषय-विश्लेषण और सारांश डा० दशरथ शर्मा एम्.ए०. ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकट किया है।

इस संस्कृत महाकाव्य की ऐतिहासिकता सर्वत्र प्रसिद्ध है और उसकी प्रामाणिकता रासो के विरोधी मतवाले श्री गौरीशंकर जी ओझा ने भी स्वीकार की है।[१] अतः इस सम्बन्ध में शंका के लिये कोई स्थान नहीं है। क्योंकि उसमें दी हुई चौहानों की वंशावली अपनी वंशावली से मिलती आ रही है। उसके लिये वे मौन धारण कर गये हैं। अतः अब 'सुर्जन चरित' में लिखी हुई रासो संबंधी घटनाओं चन्द कवि का तथा का उसके रचयिता द्वारा किया हुआ उल्लेख देखना चाहिए।

'सुर्जन चरित' में कविचद का स्पष्ट उल्लेख —

सुर्जन चरित महाकाव्य बीस सर्गों से लिखा गया है। उसका नायक इतिहास प्रसिद्ध श्री हम्मीर के वंशज राव सुर्जनहाडा हैं,जो अकबर के समय में रणथभोर का राजा था। इस काव्य में हाड़ा चौहानों की वंशावली दी हुई है। उसका वर्णन सातवें सर्ग से प्रारम्भ होता है, जो पुरोहित के द्वारा किया गया है, जिसमें चाहमान अथवा चौहान की उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ कुंड से बताई गई है। इसके पश्चात् दसवें सर्ग में पृथ्वीराज का उल्लेख किया गया है। उसमें उसे विभूति का इच्छुक बताया गया है। इसी सर्ग के ११ वें श्लोक से कान्य कुब्जेश्वर की पुत्री के साथ पृथ्वीराज के प्रेम का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् पृथ्वीराज अपने बन्दिराज कवि चद को प्रधान बनाकर कन्नौज जाता है। वहाँ उसका गंगातट

---

[१] देखिये—'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग १०, अंक १-२।

पर संयोगिता के साथ मिलाप होता है। इसके पीछे पृथ्वीराज संयोगिता अपहरण कर दिल्ली लौट आता है। पीछे२ आते हुए शत्रु–सैन्य को उसके सामन्त रोक रखते हैं और अन्त में वह सुरक्षित दिल्ली में प्रवेश करता है। यह वर्णन १२८ वें श्लोक में पूरा होता है। इसके बाद १२९ वें श्लोक से उसके दिग्विजय के वर्णन का का आरम्भ होता है, जिसमें पृथ्वीराज म्लेच्छराज शहाबुद्दीन को २१ बार हराता है और पकड़ कर छोड़ देता है। अन्त में पृथ्वीराज हारता है और उसे शाहबुद्दीन पकड़ कर गजनी लेजा कर उसकी आँखे फुड़वा कर नेत्र-हीन बना देता है। इस बात को जानकर पृथ्वीराज का बन्दीराज कविचंद गजनी जाता है। वहाँ शब्द भेदी बाण का प्रयोग कर शाहबुद्दीन का पृथ्वीराज द्वारा खून करवाता है। यह वर्णन १६८ वें श्लोक में पूरा होता है। तत्पश्चात पृथ्वीराज के पुत्र प्रह्लाद का वर्णन आता है। F.

इस प्रकार 'सुर्जन चरित' काव्य में और रासो की बीकानेर कोट लाइब्रेरी की प्रति में कुछ भी विशेष अंतर नहीं पड़ता। उल्टा रासो में उल्लेखित घटनाओं का ऐतिहासिक सत्य को सम्पूर्ण समर्थन मिलता है।...इसके अतिरिक्त 'सुर्जन चरित' और बीकानेर की प्रति में यह बात भी स्पष्टतया स्पष्ट होजाती है कि चौहान वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ-कुंड से होती है और इन दोनों काव्यों में दी हुई चौहानों की वंशावली भी एक समान है अतः यही स्पष्ट कर देता है कि रासो एक सत्य ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

रासो के विरोधी मतवाले संयोगिता–हरण और पृथ्वीराज तथा जयचन्द के बीच होनेवाली घटनाओं को अनैतिहासिक बतलाते हैं, जो उपर्युक्त रासो युद्ध की प्रति तथा 'सुर्जन चरित' काव्य ऐतिहासिक सत्य घटनाओं का होना सिद्ध करते हैं। अतः इन घटनाओं में भी शंका का कोई स्थान नहीं रहता, पर ऐतिहासिक सत्य दीपक के समान स्पष्ट दिखाई देता है।

---

१. देखिये: नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४६ अंक ३।

F सं० टि०–श्री ओझाजी के मत से रासो ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६०८ के आस–पास की है एवं सुर्जन चरित वि० सं० १६३५ में निर्मित हुआ। इस बात को देखते हुए 'रासो' सुर्जनचरित के पूर्व की रचना है, एवं उसमें कन्नौज युद्ध, शहाबुद्दीन गोरी के साथ २१ युद्ध करना, अंतिम युद्ध में पराजय प्राप्त करना, शहाबुद्दीन का पृथ्वीराज को बंदी करके

(५)

रासो का महोबा समय और लोकवाणी में जीवित आल्हा

पृथ्वीराज रासो के महोबा समय (सर्ग) में आने वाली कथा की प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता का प्रबल प्रमाण लोक गीतों में जीवित आल्हाखण्ड है।

गज्जनी लेजाना, वहां नेत्र विहीन होना, चंद का गजनी जाना, बाणवेध का कर्तब दिखलाने के बहाने शहाबुद्दीन को मारने तथा चंद और पृथ्वीराज की मृत्यु का उल्लेख रासो की छाया ही होना चाहिये। श्री ओझाजी ने अपने निबंध में सुर्जनचरित को दो स्थानों पर ग्रहण किया है, एक प्राचीन वंशावली के परीक्षण में और दूसरा सोमेश्वर का विवाह कुंतल देश की राजकुमारी से होने के समर्थन में--

शकुन्तलामां गुणरूपशीलैः
सकुन्तलानामाधिपस्य पुत्रीम्।
कर्पूरधारां जनलोचनाना
कर्पूरदेवीमुदुवाह विद्वान ॥ ४ ॥ सर्ग ६।

जो प्रसङ्ग पश्चात् का है। सुर्जनचरित सम्बन्धी प्राचीन इतिहास सारा ही प्रामाणिक हो, कोई भी नहीं कह सकता है। वंशावली के नामों में उन्होंने स्पष्ट रूप से शिलालेखों आदि की वंशावली से केवल सात नाम ही मिलना बतलाया है। डा० दशरथ शर्मा डी० लिट् ने सुर्जन चरित श्री ओझाजी से ही प्राप्त किया और वे उस पर मन्त्र मुग्ध होगये हैं तथा आरंभ में ही उन्होंने सुर्जनचरित की परीक्षा में लिखा है--"महाकाव्य के नायक इतिहास प्रसिद्ध श्री हंमीर के वंशज राव सुर्जन हाड़ा हैं"। (ना० प्र० प० बनारस न० सं०, वर्ष ४६, सं० ३ पृ० २०५, कार्तिक सं० १६६८)। यह कथन सुर्जनचरित के कथन से ही बिल्कुल विपरीत है। उपर्युक्त का० प्र० पत्रिका में प्रकाशित डा० शर्मा के लेख से हमने महा० पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) की वंशावली का मिलान किया तो प्रकट हुआ कि बूंदी का राव सुर्जन पृथ्वीराज के पुत्र प्रल्हाद का वंशधर न होकर सोमेश्वर के छोटे भाई माणिक्यराज का वंशधर था और सुर्जन तक निम्न पीढ़ियें हुई--

गंगदेव
|
सोमेश्वर (कुंतलेश्वर की पुत्री कर्पूरदेवी को ब्याहा)

- पृथ्वीराज
  - प्रह्लाद (रणथंभोर की शाखा) ।
  - गोविंदराज
  - वीरनारायण
  - वाग्भट्ट
  - जैत्रसिंह
  - राव हम्मीर (अलाउद्दीन खिलजी के मुकाबले में रणथंभोर का पतन होने पर वीरगति पाई) ।

- माणिकराज (बूंदी का राजवंश)
  - चण्डराज
  - भीमराज
  - विजयराज
  - रत्नसिंह (रत्न) ।
  - कोल्हण
  - पंग
  - देव
  - समरसिंह
  - नरपाल
  - हम्मीर
  - वरसिंह
  - भारमल्ल
  - नरबद
  - अर्जुन
  - सुरजन (सुरजन चरित का नायक और सम्राट् अकबर का समकालीन) ।
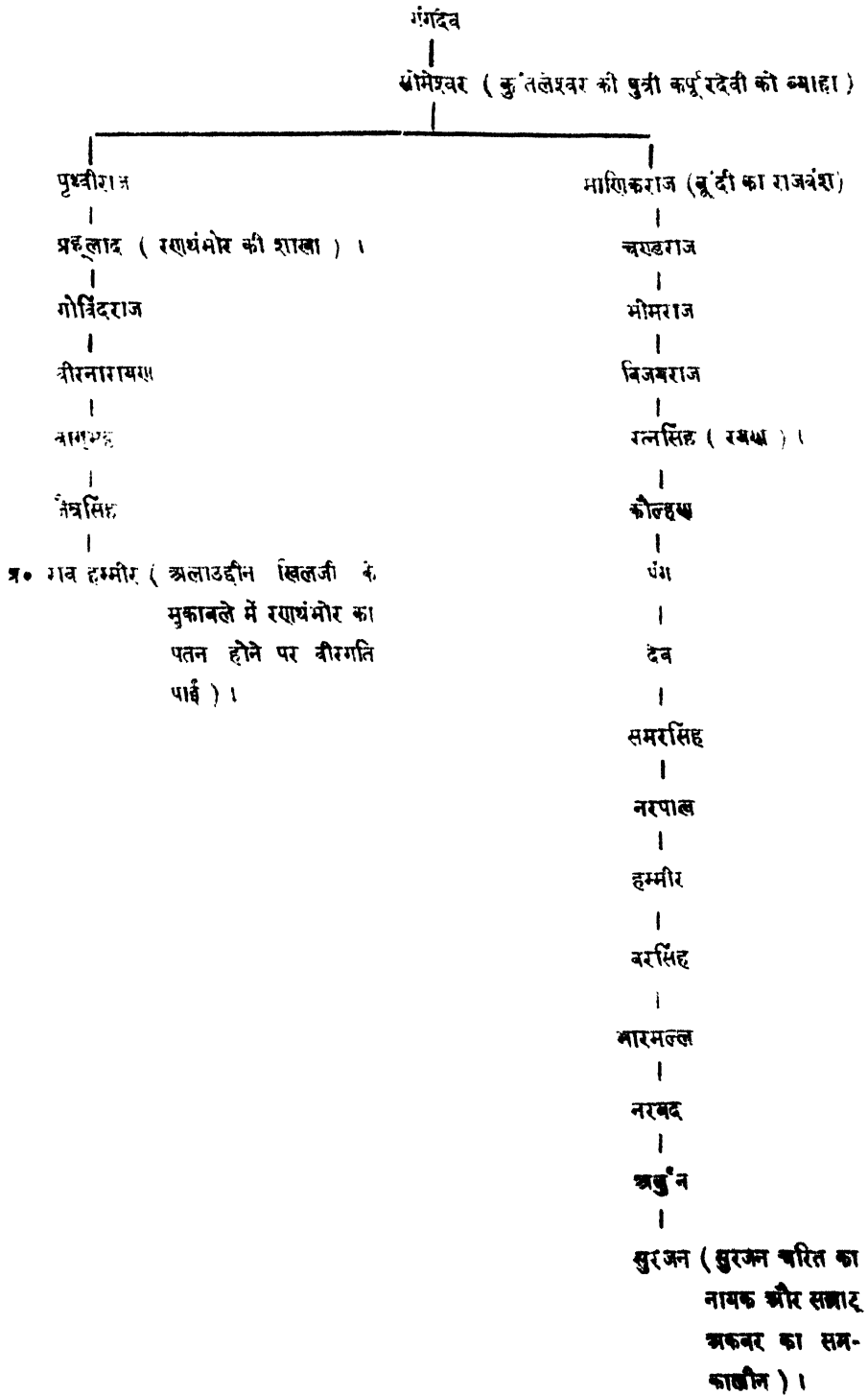
बूंदी के प्रसिद्ध महाकवि श्री सूर्यमलजी मिश्रण ने रासो की कथा को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वंशभास्कर में ग्रहण करते हुए सबसे प्रथम पृथ्वीराज रासो के रचनाकार महाकवि चन्द के वर्णन-विषय में उल्लेख किया है, जो पठनीय है। उसके पीछे कविराजा मुरारिदान और श्यामलदासजी ने रासो का मनन कर अपना मत प्रकट किया है। मानलें कि चारण कवि और भट्ट कवियों के बीच दीर्घकालीन वैमनस्य रहा हो, इसलिये दुराग्रह वश रासो को जाली ग्रन्थ मान लिया हो। किन्तु प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता कर्नल टॉड को तो कोई दुराग्रह नहीं था, फिर उसने रासो के उल्लिखित सम्वतों के लिए क्यों शंका की? आज से ८५ वर्ष पूर्व अंग्रेज विद्वान् डा० बूलर को काश्मीर से पृथ्वीराजविजय महाकाव्य की भोजपत्र पर लिखित प्राचीन प्रति प्राप्त हुई। उसको पढ़कर तो उपर्युक्त विद्वान् की रासो पर से एक बार ही श्रद्धा मिट गई। इसके बाद विद्वानों में वाद-विवाद प्रत्यक्ष रूप से होने लगे और स्व० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने रासो के समर्थन में कलम उठाई। नागरी-प्रचारिणी सभा बनारस से रासो छपना प्रारम्भ हुआ और यह सब की मान्यता होगई कि क्षेपकांश अधिक मिल जाने से रासो का रूप विकृत होगया है। उदयपुर के बाबू रामनारायण दूगड़ (स्वर्गीय) ने भी मनन पूर्वक रासो की कथाओं पर विचार कर अपने 'पृथ्वीराजचरित्र' ग्रन्थ की भूमिका में उस पर प्रकाश डाला है। सन् १९३० तक रासो पर श्री ओझाजी के कोई विचार प्रकट नहीं हुए; क्योंकि यह सम्पूर्ण रूप से मनन का विषय था। उन्होंने रासो के प्रमाण में प्रस्तुत पट्टे-परवानों तथा रासो की कथाओं, भिन्न-भिन्न विद्वानों के कथनोपकथन पर विचार करते हुए 'अनंद विक्रम संवत् की कल्पना' और 'पृथ्वीराज रासो का [illegible]' [illegible] इस विषय पर विशद् प्रकाश डाला, जिससे रासो के विषय में अधिक खोज की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। निःसन्देह यह शुभ चिह्न है और सिद्ध हो गया है कि रासो वर्तमान रूप में न था।

सुर्जन-चरित की सारी कथाएं इतिहास की कसौटी पर ठीक-ठीक बैठती हैं या नहीं; पर उसने पृथ्वीराज की माता कर्पूरदेवी को कुंतलेश्वर की पुत्री बतलाया है, जिसको पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य और हंमीरमहाकाव्य भी मानते हैं। यह बात किसी प्राचीन पुस्तक के आधार पर ही होगी, जिसको सुर्जन चरित के रचनाकार ने ग्रहण किया। वंशभास्कर की रचना के समय तक यह ग्रन्थ अन्धकार में ही विलुप्त रहा, इस कारण से वंशभास्कर के रचनाकार स्व० श्री सूर्यमलजी भी बड़वाओं की वंशावलियों पर ही निर्भर रहे और उन्होंने ख्यातों की उल्लिखित वंशावलियों को स्थान दिया। नीचे हम वंश भास्कर से सांभर-अजमेर तथा हाड़ा नरेशों की वंशावली उद्धृत करते हैं, जिससे विद्वान् स्वयं निर्णय करेंगे कि पंड्याजी ने पृथ्वीराज

रासो की संरक्षा में हाडा नरेशों की वंशावलियां आदि पर बल दिया है, वे कितनी उपयोगी हैं और क्या वे इस शोध के युग में इतिहास की कसौटी पर कसी जाने पर मान्य हो सकेंगी ?

१६० लोहधार	१५९ दामोदर
१६१ धर्मधार	१६० नृसिंह
१६२ वैरिसिंह	१६१ हरिवंश
१६३ विबुधसिंह	१६२ हरिजस
१६४ भागसूर	१६३ सदाशिव
१६५ चंद्रराज	१६४ रामदास
१६६ कृष्णराज	१६५ रामचन्द्र
१६७ हरिराज	१६६ भागचन्द्र
१६८ विल्हनराज	१६७ रूपचन्द्र
१६९ पृथ्वीराज (छिहुर)	१६८ मंडन
१७० धर्माधिराज	१६९ आत्माराम
१७१ बीसलदेव	१७० आनन्दराज — जयराज (सोमेश्वर का आश्रित)
१७२ सारंगदेव	१७१ हंमीर — गंभीर
१७३ अनलदेव (विग्रहराज)	१७२ रगधवल
१७४ जयसिंहदेव	१७३ सरदार
१७५ आनन्द	१७४ जोधराज (६ नाम)
१७६ सोमेश्वर	१७५ रत्नसिंह (रैनसी)
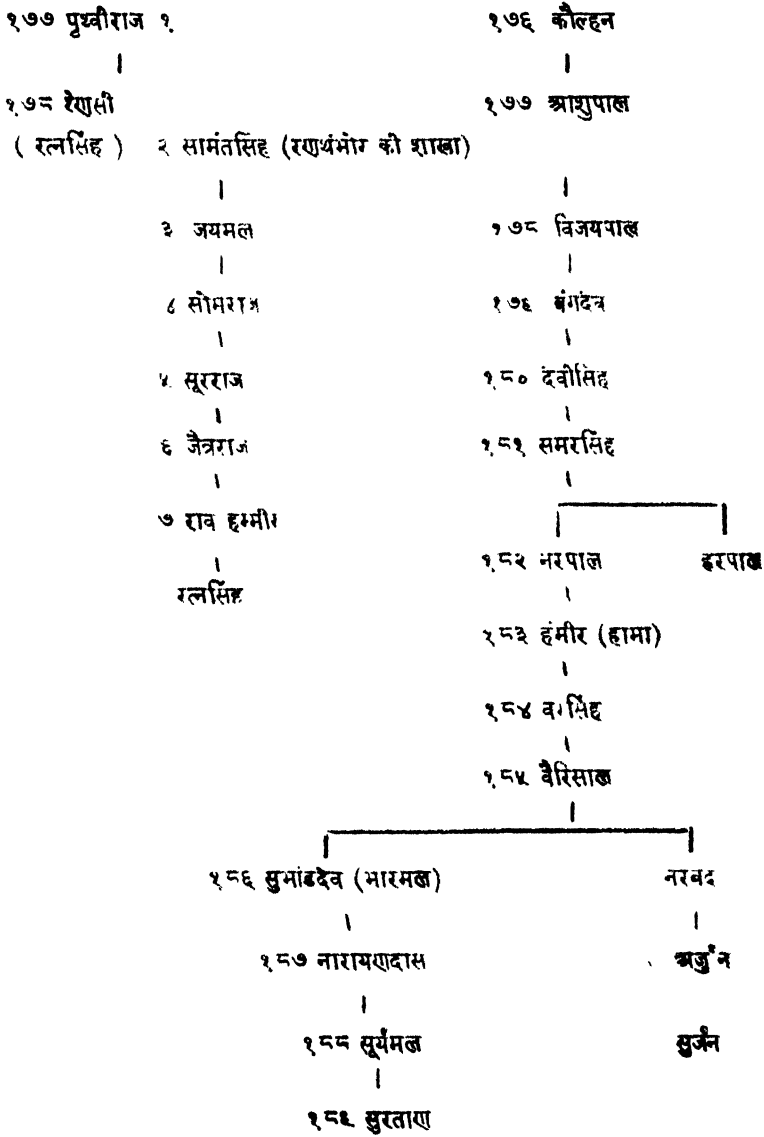
इस वंशभास्कर के वंशवृक्ष से तो स्पष्टतः प्रकट है कि रणथंभोर का प्रसिद्ध राव हमीर ही महाराजा पृथ्वीराज तृतीय का वंशधर था, न कि बूंदी का हाडा राव सुरजन एवं वंश भास्कर के लेखन–काल तक 'सुरजन चरित' अदृश्य ही था। इसलिये, महाकवि सूर्यमलजी को बड़वों की वंशावली तथा ख्यातों पर ही निर्भर रहना पड़ा। यदि उस समय तक यह ग्रन्थ प्रकाश में आता तो वे उसका आश्रय अवश्य ग्रहण करते। सुरजन चरित को साक्षर वर्ग में प्रकाश में लाने का श्रेय श्री ओझाजी को ही समझ कर उनका उपकृत होना चाहिये कि इसमें इस गूढ समस्या को सुलझाने में श्री गोवर्द्धन शर्मा ने श्रम किया है।

इस आल्हाखंड का रचयिता कालिंजर का चंदेल राजा परमाल (परमर्दिदेव) का राजकवि जगनायक भट्ट अथवा जगनिक है, जिसमें सम्राट पृथ्वीराज चौहान और परमाल के बीच में होने वाले युद्ध का, और इस युद्ध में वीर-गति को प्राप्त होने वाले आल्हा-ऊदल नाम के दो राजपूत शूरवीरों की वीर-गाथा है। यह काव्य लोगों में इतना लोकप्रिय बना है कि वह आज भी वहाँ लोक-गीतों के रूप में जीवित है और आल्हा नाम से विख्यात है। ये आल्हागीत आज भी संयुक्त प्रांत में वर्षा ऋतु में वहाँ के लोगों के घर-घर और गली-गली में गाये जाते हैं, जिससे कोई भी संयुक्त प्रांतवासी अज्ञात नहीं। यह कवि जगनायक भट्ट की अपूर्व काव्य-रचना की लोकप्रियता है।

आल्हा गीतों में वर्णित कथा

(१) महोबा (कालिंजर) के राजा परमाल का आल्हा नामक एक सेनापति था। कहा जाता है कि इस आल्हा ने पृथ्वीराज आदि को गौरी के आक्रमण के समय सहायता कर अपनी शूरवीरता का परिचय बाल्यावस्था से ही दे दिया था। आल्हा की स्त्री का नाम माचलदेवी, पुत्र का नाम ईदल, भाई का नाम ऊदल माता का नाम देवलदेवी और पिता का नाम दशरथ था।

इस समय परमाल राजा का मंत्री उसका साला माहिलदेव नामक था। माहिलदेव और परमाल में किसी कारण वश वैमनस्य होगया; परंतु आल्हा के रहते हुए वह परमाल का कुछ भी कर नहीं सकता था। क्योंकि आल्हा परमाल की सहायता के लिये सदा तैयार रहता था, इसलिये आल्हा को दूर करने के लिये माहिलदेव ने एक युक्ति की योजना की और एक समय, जब आल्हा का पुत्र ईदल, परमाल के प्रिय घोड़े पर बैठा, तो उसकी चुगली परमाल को कर आल्हा, ऊदल और ईदल को राज्य सीमा के बाहर निकलवा दिया।

(२) इस समय कन्नौज का राजा जयचंद था। जयचंद के सभी सरदार और सामंत उससे नाराज़ होगये थे और ये लोग अपने प्रान्त का कर जयचंद को नियमानुसार नहीं देते थे। जब आल्हा तथा ऊदल परमार से रुष्ट होकर कन्नौज गये; तब जयचंद ने इन वीरों को अपने सामन्तों को ठिकाने लाने के काम के लिये रोक लिया। ये दोनों भाई वीर तो थे ही और इन्होंने जयचंद के सामंतों को उनके अधिकार में लाकर ही छोड़ा। इससे जयचंद आल्हा-ऊदल पर अत्यंत

ही प्रसन्न हुआ और उन्हें कन्नौज के पास रायकोट नाम का परगना इन भाइयों को बसाने के लिये दिया।

इस प्रकार माहिलदेव ने इन दोनों भाइयों को राज्य-सीमा से बाहर निकलवा दिया और चन्देलों के राज्य को नष्ट करने में प्रवृत्त हुआ उसने चंदेला की सेना को किसी बहाने से दक्षिण में भेज दिया और दिल्लीश्वर सम्राट् पृथ्वीराज को चन्देलों के राज्य पर आक्रमण करने को आमंत्रित किया।

(४) उस समय चौहान पृथ्वीराज साँभर (अजमेर) में था। जब उसने सुना कि चन्देलों की सेना दक्षिण में गई हुई है; तब उसने चन्देलो के राज्य पर आक्रमण करने के अवसर का लाभ उठाया। इस आक्रमण का प्रारम्भ प्रथम उसने सिरसा पर किया। यह स्थल झांसी के पास पहोज नदी के तट पर है, जहाँ चन्देलों का मलखान नामक स्थानिक शासक रहता था। यह मलखान आल्हा का मौसेरा भाई था जब मलखान ने पृथ्वीराज की विशाल सेना को देखा, तो उसने परमाल राजा को अपनी सहायता के लिये कहलवाया। परन्तु माहिलदेव ने कोई सहायता नहीं दी और सूचित किया कि मलखान स्वयं ही अपने प्रान्त की रक्षा करने में शक्तिशाली और समर्थ है।

(५) परिणाम में मलखान को अपने राजा की ओर से कोई कुमुक (सहायता) नहीं मिली और स्वय उसने अकेले ही पृथ्वीराज की सेना का सामना किया। पृथ्वीराज और मलखान की सेनाओं में भयकर युद्ध हुआ और अन्त में मलखान मारा गया। मलखान के पीछे उसकी स्त्री सती हुई।

(६) इसके बाद पृथ्वीराज ने मलखान के भाई अजखान को वहाँ का स्थानीय शासक नियुक्त कर महोबा की ओर आगे बढ़ आक्रमण किया। इस समय परमाल की सेना महोवा में नहीं थी। वरंच मसराही नामक स्थान पर थी, जो बेतवा नामक नदीG के तट पर आया हुआ है। पृथ्वीराज ने महोबा के पास

सं.टि G, बेतवा—यह उत्तरी भारत की नदियों में एक बड़ी नदी है। भोपाल जिले के कूमरी नामक गाँव से इसका निकास उत्तर पूर्व में होता है। भोपाल प्रान्त में ५० मील तक बहकर फिर भेलसा के पास ग्वालियर प्रान्त में प्रवेश करती है। इसके उत्तर प्रदेश में दक्षिण पश्चिमी कोण पर ललितपुर तहसील (जिला झांसी) के पास बहकर उत्तर पूर्व में झांसी और ग्वालियर की सीमा बनाती है। फिर यह झांसी से उत्तर में ओरछा के प्रदेश में बहती हुई जमुना में मिलती है।

में आकर पड़ाव डाला और इसकी सूचना माहिलदेव ने परमाल को दी। परमाल इस बात को सुन कर सहसा घबरा गया और उसने अपने दोनों पुत्र ब्रह्माजीत और रणजीत को कालिंजर के किले में रक्षा के लिये भेज दिया और स्वयं मनियादेवी की शरण में गया। उस समय उसका द्वारभट्ट जगनायक भट्ट था। उसने उसे आल्हा ऊदल को अपनी रक्षा के लिए बुलवाने को हिरनागर अश्व पर एकदम रवाना किया। इस बात की खबर माहिलदेव ने गुप्त रूप से पृथ्वीराज को दी।

(७) पृथ्वीराज को हिरनागर अश्व अत्यन्त प्रिय था—वह उसे चाहता था। अतः उसने जगनायक भट्ट से उस घोड़े को प्राप्त करने लिए मनुष्य भेजे। पर जगनायक पृथ्वीराज के लोगों को थप्पी देकर आगे निकल गया और कोरहट के राजा का स्वयं महमान बन गया। वहाँ से यह कन्नौज पहुँचा। कन्नौज में जगनायक भट्ट का आल्हाऊदल ने प्रेम से स्वागत किया और जगनायक ने परमाल तथा उनकी रानी का उन्हें संदेश कह सुनाया।

(८) संदेश सुनकर पहले तो आल्हा-ऊदल को क्रोध आया और उन्होंने सहायतार्थ जाने के लिये सर्वथा इन्कारी करदी: पर जगनायक भट्ट ने उन्हें समझाया और कहने लगा—"आल्हा के पिता दशरथ के बँधवाये सरोवर को पृथ्वीराज ने तोड़ डाला है, जहाँ तुम कसरत करते थे, वहाँ अब स्वयं पृथ्वीराज कसरत कर रहा है।" अन्त में आल्हा की माँ ने भी आल्हा को महोबा जाने को समझाया, अतः पृथ्वीराज के साथ लड़ने का निश्चय किया। आल्हा महोबा जाने के लिये जयचंद के पास आज्ञा लेने को गया, पर पहले जयचन्द ने इन्कार कर दिया, इससे उसने आज्ञा का भंग कर जाने की इच्छा प्रकट की। अतः जयचन्द ने उसे आज्ञा देदी और आल्हा की सहायता में अपनी थोड़ी सी सेना भी भेज दी। इस आल्हा की सेना में जयचन्द ने अपने कुछ तमाम सेना-नायकों का भेज दिया, जिसमें राणा लखण आदि मुख्य थे।

(९) जब आल्हा सेना समेत महोबे में आया, तब तक पृथ्वीराज और परमाल राजा के बीच काम चलाऊ सन्धि हो गई थी, जिसका भंग पृथ्वीराज की सेना के कितने ही सरदारों ने आल्हा की विशाल सेना को देखकर किया और वे आल्हा की सेना पर अचानक टूट पड़े। आल्हा की सेना में इस समय भग हो गया, पर आल्हा की माता देवलदेवी ने सेना को उत्साहित किया।

(१०) इसके पश्चात् परमाल और पृथ्वीराज की यह काम चलाऊ सन्धि एक वर्ष तक रही और आखिर में उसका अन्त हुआ। अन्तिम युद्ध निश्चित समय पर उरई के मैदान में हुआ। इस भयंकर युद्ध को देखकर परमाल अपने प्राणों को बचाने के लिये कलिंजर के किल्ले में घुस गया, जब कि उसकी सेना और सामन्त युद्ध-क्षेत्र में काम आये। केवलमात्र आल्हा रहा और कहा जाता है कि वह पृथ्वीराज की सेना को चौमासे के घास के समान काटने लगा। अन्त में मैहर की शारदा देवी ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे संहार करने से रोका। इसके बाद आल्हा का कुछ भी पता नहीं।[1]

आल्हा की कथा को शिलालेखों का समर्थन

यह है-आल्हा गीतों में सुरक्षित वीर गाथा का सारांश। इस कथा में उल्लिखित चंदेल राजा परमाल (परमर्दिदेव) और पृथ्वीराज चौहान के बीच होने वाला युद्ध-यह एक ऐतिहासिक घटना है। क्योंकि वि० सं० १२३९ में परमाल के पास से महोबा पर पृथ्वीराज ने अधिकार जमाया था। यह बात महोबा के पास से मिले हुए परमाल राजा के वि० सं० १२३९ के शिलालेख से भी स्पष्ट हो जाती है कि सम्राट पृथ्वीराज और परमाल राजा के बीच युद्ध हुआ था। यह एक निःशंक घटना है।

रासो के महोबा-समय की कथा में सम्पूर्ण ऐतिहासिकता

पृथ्वीराज रासो के महोबा समय में भी पृथ्वीराज और चंदेल राजा परमाल के साथ घटित युद्ध का वर्णन है। और इस वर्णन में भी परमाल के वीर सरदार आल्हा के शौर्य की प्रशंसा की गई है। महोबा समय में आने वाले नाम आल्हा, ऊदल, परमाल और उसके राजकवि जगनायक, कन्नौजपति जयचन्द आदि नाम शुद्ध और समकालीन ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इन सब वास्तविकताओं को देखते हुए रासो आल्हाखंड और शिलालेखों में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता, अपितु केवल एक ही प्रकार की सिलसिलेवार जुड़ी हुई ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख प्रतीत होता है और यही रासो की ऐतिहासिकता, प्राचीनता

---

१ आल्हा खंड विलियम वोटरफिल्ड द्वारा सम्पादित और ओक्सफोर्ड संस्करण (१९२३)। 'बुन्देलखंड का इतिहास' पं० गोरेलाल तिवारी कृत और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

और प्रामाणिकता का स्पष्ट प्रमाण है, जिसे कई जानकार इतिहासकारों ने इसको स्वीकार किया है।[1] अतः महोबा समय की कथा में सम्पूर्ण ऐतिहासिकता है। अनैतिहासिकता तो आज के इतिहासकारों की मानसिक उपज प्रतीत होती है।[2]

(६)

पृथ्वीराज रासो और संस्कृत काव्य 'पृथ्वीराज विजय' की समानताएँ

महाकवि चंद की रचना पृथ्वीराज रासो को अनैतिहासिक बताते हुए आधुनिक इतिहासकार बतलाते हैं कि "पृथ्वीराज विजय" संस्कृत काव्य और "पृथ्वीराज रासो" इन दोनों ग्रन्थों में रासो पृथ्वीराज के समय में नहीं लिखा गया और ऐसा होता, तो इन दोनों ग्रन्थों में इतना बड़ा अन्तर नहीं होता, पर समानता प्रकट होती।[3] यह कथन भी अन्वेषण की दृष्टि से ढाल की एक ही बाजू बतलाती है। 'पृथ्वीराज-विजय' की वर्तमान में केवल एक ही प्रति मिली है, जिसकी दशा सर्वथा खण्डित और अपूर्ण है। अतः वास्तव में उसकी स्थिति भी जानना आवश्यक है।

'पृथ्वीराज विजय' की वर्तमान दशा

'पृथ्वीराज विजय' काव्य की एक अधूरी और खण्डित प्रति डा० बूलर को काश्मीर से संस्कृत पुस्तकों की खोज में मिली थी, जो अभी पूना के डेक्कन कॉलेज के पुस्तकालय में है। इसके अतिरिक्त इस काव्य की अभी तक एक भी दूसरी प्रति नहीं मिली और जो विद्यमान है, यह दुःख का विषय है कि स्थान-स्थान पर खंडित और अपूर्ण है। अतः संपूर्ण ग्रंथ कितना बड़ा था, यह बताना कठिन है। "यदि पृथ्वीराज की विजय के उपलक्ष्य में यह काव्य बनाया गया होता तो उसका वर्णन भी इसमें होता। इस ग्रन्थ से उसके रचयिता का भी पता नहीं मिलता। इस ग्रन्थ

---

१ देखिये—मध्यकालीन भारत की सामाजिक व्यवस्था, डा० अल्लामा अब्दुल्लाह युसुफअली ओ० बी० ई० एम० ए०, एल० एल० एम०।

२ देखिये—महोबा समय की कथा के लिये—'पृथ्वीराज रासो' फार्बस गुजराती सभा की प्रति, तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रति।

३ देखिये—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अंक १–२

४ संभव है, यह विजय शाहबुद्दीन के साथ तिरोरी के युद्ध में मिली होगी।

के साथ उसकी एक टीका मिली है उसके आधार पर टीकाकार का नाम जोनराज और रचयिता का नाम जयानक जान पड़ता है ।

अभी जो इस ग्रन्थ की एक प्रति मिली है, उसका क्या हाल है ? यह जान लेना आवश्यक है । यह प्रति भोजपत्र पर शारदालिपि में लिखी गई है । प्रारंभ में श्री गणेशाय आदि का पता नहीं है । प्रथम दो पन्ने नहीं ग्रन्थ को देखने पर अपूर्ण और अधूरी टीका के दर्शन होते हैं । एक भी सर्ग या अध्याय, काव्य या काव्य की टीका नहीं, जिसमें काव्य का या टीका के श्लोकों का भाग नष्ट नहीं हुआ हो । पहले तथा दूसरे सर्ग में प्रर्याप्त श्लोक विन्यास है । तीसरे सर्ग में ३८ श्लोक हैं ।

इसके अतिरिक्त इसके दो तीन पत्ते एक दम गल गये हैं और उसमें लिखे हुए विवरण मिल नहीं सकते । इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के कुछ पत्ते ऐसे हैं कि उनका स्थान ग्रन्थ में कहाँ होगा—यह जानना अशक्य है । उदाहरणार्थ चौथा सर्ग का प्रथम पत्ता । पांचवें सर्ग में श्लोक संख्या विशेष है और ऐतिहासिक दृष्टि से वह महत्त्व का है । छठें सर्ग के अन्तिम ३-४ पत्ते गल गये हैं । सातवें सर्ग का प्रारम्भिक भाग नष्ट हो गया है । आठवें सर्ग से ग्यारहवें सर्ग तक ग्रन्थ की दशा ठीक है परन्तु बारहवाँ सर्ग जहाँ से पृथ्वीराज के चरित का आलेखन प्रारम्भ होता है, वह एकदम खण्डित है । ग्रन्थ सर्वथा नष्ट और अपूर्ण है । इस परिस्थिति में 'पृथ्वीराज विजय' का सम्पूर्ण ऐतिहासिक काव्य किस प्रकार माना जा सकता है ।[1]

"पृथ्वीराज विजय" का संक्षिप्त सारांश

(१) प्रथम सर्ग में संस्कृत पण्डितों की परिपाटी के अनुसार अतिशय वर्णनात्मक शैली से इस काव्य के श्रोता पृथ्वीराज और उसके वंशज हैं, ऐसा

---

१. देखिये—नागरी प्रचारिणी पत्रिका—भाग ५ अंक दो ।

"It is a great pity that the old Ms. is mutilated and in suct a condition as to make the work of reading it difficlut. The begining is wanting. The leaves which contains canto I—X have broken in the middle by the friction of the thick string used for sewing the volume. Further the lower portions of considerable number of leaves have been lost, and as the lower left-hand side of the Margin, on which

प्रतीत होता है। इसके पश्चात् कवि ने काव्य और विद्या का महत्त्व समझाते हुए कितने ही अभिमानी कुपंडितों की बड़ी निन्दा की है। इस समय जैन, बुद्ध आदि धर्मों के प्रभाव से लोगों में अत्यन्त ही निरुत्साह और अकर्मण्यता व्याप्त हो रहा थी, ऐसा विदित होता है। ऐसे समय में ब्रह्मा के यज्ञ कुण्ड में से सूर्यवंशी चाहमान (चौहान) वीर की उत्पत्ति बताई गई है। (श्लोक संख्या ७५)

(२) दूसरे सर्ग में कवि पहले के समान ही बड़ी २ उपमाओं और अलंकारों से वर्णन करता हुआ चाहमान के वंश में वासुदेव राजा का वर्णनकर वहाँ से चौहानों की वंशावली का यथावत् प्रारम्भ करता है। (श्लोक संख्या ८२)

(३) तीसरे सर्ग में कवि वासुदेव राजा की कीर्ति का अपार वर्णन कर उसकी धर्म-प्रियता प्रकट करता है। पीछे इस सर्ग के पन्ने गल गये हैं-खण्डित हैं। (श्लोक संख्या २८)

(४) चौथे सर्ग में वासुदेव राजा की मृगया खेलने की कथा कह कर जंगल में उसके विद्याधर नाम के विद्वान् ब्राह्मण के साथ मिलाप और उसके वंशज 'शाकम्भरीश्वर' कैसे कहलाये, उसका सविस्तार उल्लेख करता है। (श्लोक संख्या ७६)।

(५) पाँचवें सर्ग में कवि वासुदेव के पीछे के अन्य राजाओं की नामावली देकर अजयराज के राज्य-काल का वर्णन करता है जिसने अपने नाम से अजमेर नगर बसाया था तथा उसकी सोमलदेवी नाम की एक रानी थी। अजमेर बसाने के बाद यह राजा अपने पुत्र अर्णोराज को गद्दी पर बैठाकर स्वर्ग सिधारता है। (श्लोक संख्या १६३)।

(६) इस छठे सर्ग का प्रारंभ का भाग नहीं मिलता। जो प्रथम श्लोक मिलता है, उससे विदित होता है कि इस राजा के समय में प्रथम बार यवनों ने अजमेर पर

---

stood the figures numbering the leaves, has also been broken off, it is impossible to determine the connection of upper and lower halves by any other means than by the sense."

—डा० जी० बूलर कृत डिटेइल्ड रिपोर्ट ऑफ ए टूर इन् सर्च ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रीपट्स इन् काश्मीर, राजपूताना और मध्य हिन्द।

आक्रमण किया था। बाद में इस राजा ने गुजरात के राजा जयसिंह की पुत्री काञ्चनदेवी और मारवाड़ की कन्या सुधवा के साथ लग्न किया था। सुधवा से तीन पुत्र और काञ्चनदेवी से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सोमेश्वर रखा गया था। यहाँ गुजरात के राजा जयसिंह को अपनी पुत्री कंचनदेवी के पुत्र होने का अत्यंत आनंद और उत्साह होना कवि प्रकट करता है और वह ज्योतिषियों के मुख से सोमेश्वर के वहाँ राम जन्म लेगा, यह बात सुनकर कंचनदेवी को सोमेश्वर के साथ अपने यहाँ बुला लेता है (श्लोक संख्या ११२)

(७) इस सर्ग में भी प्रारंभ के कई श्लोक नहीं है। बाद में सोमेश्वर का बालपन गुजरात के राजा कुमारपाल के यहाँ बिताता है तथा वह कुमारपाल के साथ दक्षिण में मल्लिकार्जुन के साथ होनेवाले युद्ध में जाता है और उसकी तलवार छीन कर वध करता है—आदि उल्लेख हैं। बाद में वहाँ त्रिपुरी के राजा तेजल की पुत्री कर्पूर देवी के साथ लग्न करता है (श्लोक सं० ५१)।

(८) यहाँ आठवें सर्ग में कवि पूर्ववत् वर्णन कर सोमेश्वर के यहाँ दो पुत्र पृथ्वीराज और हरिराज का जन्म होना बताता है। बाद में अजमेर के सामंत आदि आकर सोमेश्वर को पुत्र सहित अजमेर की गद्दी पर आरूढ़ होने के लिये लेजाते हैं। जब तक सोमेश्वर गुजरात में होता है, तब तक अजमेर की गद्दी उसके सौतेले भाइयों की संतान के अधिकार में होने का कवि उल्लेख करता है। फिर अजमेर या सपादलक्ष जाने के पीछे सोमेश्वर की मृत्यु होती है (श्लोक संख्या ११२)।

(९) नवम सर्ग में सोमेश्वर की मृत्यु के पीछे राजकाज उसकी विधवा रानी कर्पूरदेवी के हाथ में आता है, जिसे मंत्री कदम्बवास (कैमास) की सहायता से चलाने का उल्लेख है।

(१०) दसवें सर्ग में कवि कथा-नायक पृथ्वीराज के वर्णन पर आता है और उसके यौवनकाल का वर्णन करता है, जिसमें पृथ्वीराज के लोकोत्तर यौवन को सुनकर अनेक राज-कन्याएँ उसमें अनुराग अनुभव करती हैं, (जिसका श्लेषार्थ अनेक लग्नों से है)। अनेक प्रकार के युद्धों का वर्णन है। बाद में पश्चिमोत्तर दिशा से गजनी के म्लेच्छों का आक्रमण सुनकर उनके नाश करने की पृथ्वीराज प्रतिज्ञा करता है और नाडोल पर असुरों का आक्रमण सुनकर पृथ्वीराज प्रकुपित होजाता है। यहीं पर यह सर्ग समाप्त होजाता है (श्लोक संख्या ५१)।

(११) इस ग्यारहवें सर्ग में पृथ्वीराज की सभा में गुजरात के दूत का आगमन तथा उसके राजकवि पृथ्वीभट्ट का उल्लेख है और वह पृथ्वीराज को सूचित करता है कि "राजन्! आपके पास कदम्बवास जैसा कार्यसाधक मंत्री है, यह आपका अहोभाग्य है और यही बताता है कि तिलोत्तमा जैसी यह पृथ्वी अर्थात् राजलक्ष्मी आप में अनुरागिणी है।" यह सुनकर पृथ्वीराज पूछता है कि "तिलोत्तमा कौन है?" कवि के शब्दों के अनुसार पुनरावृत्तज्ञान में व्यास जैसा विद्वान् पृथ्वीभट्ट तिलोत्तमा का वर्णन करता है। यह अपूर्व वर्णन सुनकर पृथ्वीराज के हृदय में उसके लिये कामना उत्पन्न होती है (श्लोक संख्या १०५)।

(१२) बारहवें सर्ग में पृथ्वीराज की तिलोत्तमा में आसक्ति और उसकी विह्वलता का वर्णन है, जिसमें वह अपनी सुध-बुध भी गुमा देता है। इससे पृथ्वीभट्ट उसकी ऐसी दशा देख कर अत्यन्त ही पश्चात्ताप करता है और उसकी सुध-बुध के लिये उपाय सोचता हुआ अपने घर जाता है। वहाँ उसे इस काव्य के रचयिता कवि जयानक का विग्रहराज के मंत्री पद्मनाभ द्वारा एक श्लोक सुन कर परिचय होता है। यहाँ पृथ्वीभट्ट कवि को अपना देश छोड़ कर वहाँ आने का कारण पूछता है। बस यहीं से यह काव्य अपूर्ण है। न जाने आगे कवि ने क्या वर्णन किया होगा? (श्लोक संख्या ७८)।

दोनों ग्रन्थों की तुलना में विचार का अभाव

इस काव्य के बारह उपलब्ध सर्गों के पाठ को देखते हुए इतना तो स्पष्ट विदित होता है कि अभी तक काव्य का विस्तार आगे और होगा। 'पृथ्वीराज विजय' का जितना भाग अभी तक मिला है, वह तो केवल "पृथ्वीराज विजय" की भूमिका है। बारहवें सर्ग में जहां कवि काव्य के नायक पृथ्वीराज के चरित का प्रारम्भ करता है, वहीं से काव्य समूल अधूरा और अपूर्ण है और उसमें पृथ्वीराज की एक भी महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख हुआ हो—नहीं दिखाई देता। उसका जीवन सम्बन्धी समस्त इतिहास अन्धकार में ही रहता है। इससे वस्तुतः विचारा जाय, तो 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के जीवन चरित का विद्यमान प्रति में सर्वथा अभाव है—उसके इतिहास का अभाव है—यह भी कहें, तो अनुचित नहीं होगा। फिर 'पृथ्वीराज रासो' और 'पृथ्वीराज विजय'–इन दोनों ग्रन्थों में परस्पर भिन्नता देखी जाय, तो इसमें आश्चर्य क्या है?

वास्तव में देखें, तो यह भिन्नता, उपर्युक्त दोनों काव्यों में देखी जाती है वह अनैतिहासिक नहीं। परन्तु यह पुरातत्त्व की दृष्टि से सर्वथा सुसंगत और स्वाभाविक बात है। क्योंकि एक ग्रन्थ (पृथ्वीराज रासो) में सम्पूर्णतया कथा-नायक के चरित का सुन्दर वर्णन आलेखित है, तो दूसरे ग्रन्थ (पृथ्वीराज विजय) में उसका सर्वथा अभाव है और इस अभाव का दोष ग्रन्थकार का नहीं, पर समय और संयोगों का है; जिसका विचार अपने आधुनिक इतिहासकार इन दोनों ग्रन्थों की तुलना करते सर्वथा ही भूल गये हैं, या किसी कारण वश उन्होंने किया ही नहीं। इसीलिये उनकी दृष्टि में यह भिन्नता भयंकर लगती है और रासो को वे अनैतिहासिक कहकर व्याकुलता के भाव व्यक्त करने लगे हैं।

'पृथ्वीराज विजय' और 'रासो' की समानताएँ

फिर भी उपर्युक्त काव्य 'पृथ्वीराज विजय', 'रासो' के समर्थन में इतनी समानताएँ बताता है, जो इस प्रकार हैं—

(१) रासो में दी हुई संयोगिता की कथा, तथा पृथ्वीराज विजय के त्रुटित सर्ग में मिलने वाली तिलोत्तमा की कथा।

(क) संयोगिता अप्सरा रम्भा का अवतार थी और 'पृथ्वीराज-विजय' की राजकुमारी तिलोत्तमा का अवतार।

(ख) पृथ्वीराज इन दोनों में बिना देखे ही अनुरक्त हुआ था।

(ग) इस अनुराग के पहिले 'रासो' और 'विजय' पृथ्वीराज के अन्य कितने ही विवाहों का उल्लेख करता है।

(घ) दोनों ही काव्यों की नायिकाओं का सम्भवतः गगा के तट पर आये हुए किसी स्थान के साथ सम्बन्ध था।

(ङ) दोनों लग्न किसी अनभिमत पुरुष के साथ निश्चित हुए थे।

यह देखते प्रतीत होता है कि 'रासो' की संयोगिता ही 'विजय' की राजकुमारी तिलोत्तमा है, जिसकी रसमयी कला का ज्ञान अबुलफ़ज़ल को भी था, जिसका चाहमान वंशाश्रित इतिहासकार कवि चन्द्रशेखर ने 'सुर्जन चरित' में भी सुन्दर वर्णन किया है[१]।

---

१ देखिये—'राजस्थान भारती' भाग १, अंक २–३, डॉक्टर दशरथ शर्मा, एम०ए०डि०,लिट् का संयोगिता नामक लेख।

(२) महम्मद गोरी के साथ का संघर्ष[१]।
(३) ब्रह्मा के कुण्ड में से सूर्य वंश की उत्पत्ति[२]।
(४) पृथ्वीराज चौहान की राजसभा के ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख।
(क) 'रासो' में पृथ्वीराज के मन्त्री का नाम कैमास है। 'विजय' में कदम्बवास[३]।
(ख) रासो में पृथ्वीराज की राजकवि बन्दीराज का नाम बरदाई चन्द भट्ट है—'विजय' में बन्दीराज पृथ्वीभट्ट[४]

इन घटनाओं के समानता ही बता देती है कि रासो एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। समानता में अन्तर इतना ही है कि दोनों काव्य-कर्त्ताओं ने अपने काव्य की भाषा के अनुकूल उनके नामों का उल्लेख किया है। संस्कृत काव्य में संस्कृत नाम, देश्य भाषा के काव्य में देशी नाम (बोलचाल के नाम) का प्रयोग किया है। मंत्री कदम्बवास के बोलचाल का नाम कैमास है, जिसे 'विजय' में संस्कृत बना कर 'कदम्बवास' लिखा है। जब कि राजकवि पृथ्वीभट्ट के बोलचाल का नाम वरदाई चन्दभट्ट है, जिसे संस्कृत बना कर बन्दीराज पृथ्वीभट्ट लिखा है, जिससे स्पष्ट विदित होता है कि पृथ्वीराज की सभा में मंत्री कैमास और मागध, बन्दीराज या राजकवि (Court poet) पृथ्वीभट्ट था। इस राजकवि पृथ्वीभट्ट का परिचय 'विजय' के रचयिता कवि जयानक ने विग्रहराज के मंत्रीश्वर पद्मनाभ को करवाया था। यह भी सम्भव है कि वह (जयानक ?) पृथ्वीराज की सभा में पृथ्वीभट्ट की सहायता से पहुँचा हो; क्योंकि बारहवें सर्ग के अन्तिम श्लोक में पृथ्वीभट्ट और जयानक का परस्पर वार्तालाप दिया गया है; उसमें से पृथ्वीभट्ट जयानक को काश्मीर से दिल्ली आने का प्रयोजन पूछता है।

---

१ देखिये—'पृथ्वीराज विजय' सर्ग १०।

२ देखिये—'पृथ्वीराज विजय' सर्ग १ तथा 'पृथ्वीराज रासो' समय १ (पृष्ठ ५१)।

३ ततः कदम्बवासेन धैर्यवासेन मंत्रिणा।
विज्ञप्तसत्यदासेन समाव्यासेन पार्थिवः॥ पृथ्वीराज वि० सर्ग ११, श्लोक ३।

४ कृतमांगलिकादिकाह्निकः प्रतिमुच्य क्षितिपं शनैः शनैः।
तरणेस्तरूणिम्नि तेजसा, शिथिले वन्दिपतिर्विनिर्ययौ॥
पृ० वि० सर्ग १२ श्लोक ४१

संस्कृत कवि जयानक के द्वारा वर्णित पृथ्वीभट्ट का व्यक्तित्व

इसके अतिरिक्त भी 'पृथ्वीराज विजय' में उसका रचयिता कवि जयानक, पृथ्वीभट्ट का परिचय देता हुआ, उसके व्यक्तित्व का वर्णन करता है कि- 'बन्दीराज पृथ्वीभट्ट पुनरावृत्तज्ञान में व्यास के समान प्रतिभाशाली विद्वान् था और दूसरों के गुणों को प्रकट करने में सूर्य जैसा तेजस्वी तथा दोषों को ढाँकने में महान् अंधकार।"[1] यह वास्तवकता ही बता देती है कि बन्दीराज पृथ्वीभट्ट पृथ्वीराज चौहान की सभा में कोई सामान्य व्यक्ति नहीं था, पर असाधारण व्यक्तित्ववाला विद्वान् और सम्मानित, पदासीन राजकवि था।

इस प्रकार पृथ्वीराज के राजकवि का इस काव्य में वर्णन देख कर स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यह राजकवि बन्दीराज कौन है ? जिसका चौहान पृथ्वीराज के समय के किसी भी इतिहास या प्रबन्धों में उल्लेख नहीं। पृथ्वीराज के इतिहास में और उसके समय की अन्य ऐतिहासिक सामग्री में उसके राजकवि बन्दीराज का उल्लेख मिलता है। पर उसका नाम तो चन्दभट्ट है; जबकि 'विजय' में पृथ्वीभट्ट। इस प्रकार इन नामों में रही हुई भिन्नता ने इतिहासकारों को सूक्ष्म विचार के अभाव में भ्रम में डाल रक्खा है। वे दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति होने का अनुमान करते हैं, जो युक्ति संगत नहीं है, पर यह केवल हेत्वाभास है। क्योंकि इस समय में एक राजा के यहाँ एक ही बन्दीराज (राजकवि) रहता था, दो नहीं, जो जाति से भट्ट-ब्राह्मण था और वह इतिहास तथा पुनरावृत्त ज्ञान रखता था।

---

१. इतिहासशताभ्यासव्यासः क्ष्मावास (सन्निधौ।)
इतिहासशुचि बन्दी भूयोप्युदहरद्गिरम् ॥
पृथ्वीराज विजय सर्ग ११ श्लोक १७।

पृथिवीभटमुक्तवन्तमित्यवदन्मानधरो महत्तमः।
मिहिरो [न्यगुणप्रकाशने] पर दोषावरणे महत्तमः ॥
पृथ्वीराज विजय सर्ग १२ श्लोक ६२।

'पृथ्वीराज विजय' का 'पृथ्वीभट्ट' ही बरदाई चंदभट्ट है।

इस प्रकार चौहान पृथ्वीराज के बन्दीराज (राजकवि) के नाम में दिखाई देने वाली भिन्नता, यह कोई खास दो व्यक्तियों की भिन्नता नहीं, पर उस पर सूक्ष्मता से विचार करने पर उसकी एकता को प्रकट करता है, जिसका ऐतिहासिक अनुसंधान और निराकरण 'पृथ्वीराज विजय' में दिये हुए बन्दीराज पृथ्वीभट्ट के व्यक्तित्व के वर्णन से ही होता है। वैसा ही समानता दर्शक वर्णन 'पृथ्वीराज रासो' में है, 'सुर्जन चरित' काव्य और जैन प्रबंधों में भी है और इन प्रबन्धों में रही हुई एक सी समानता ही बरदाई चंद भट्ट के व्यक्तित्व को प्रकट करतो है। अतः यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्ध होता है कि 'पृथ्वीराज विजय' बन्दीराज पृथ्वीभट्ट ही रासो का बरदाई चंदभट्ट है। क्योंकि 'बरदाई' यह संस्कृत को अपभ्रंश शब्द है, जिसे संस्कृत पंडित ने संस्कृत रूप देकर 'बन्दीराज' लिखा है और 'पृथ्वी' तो रासो के रचयिता कवि का मूल (असली) नाम है, जिसका उल्लेख 'विजय' के कर्त्ता संस्कृत पंडित ने एक वचन द्वारा किया है। इसके समर्थन में नीचे की युक्ति और भी सुसंगत और विश्वसनीय प्रतीत होती है।

रासो के रचयिता कवि चंद की वंशावली देखने से उसके अनेकानेक वंशजों के नाम के अंत में 'चन्द' शब्द (जो आगे वंशावली में देखेंगे) आता है तथा उसके पिता का नाम भी राव वेणीचंद (बेनो चंद्र) है, जिससे इस महावंश परम्परा में 'चंद' शब्द अति प्रचलित है, यह सिद्ध होता है। इससे इसी वंश के रासो के रचयिता कवि का मूल नाम केवल 'चंद' होना सर्वथा असंभव जान पड़ता है। अतः अवश्य ही उसका मूल (असली) नाम अन्य होना चाहिये, जिसका स्पष्ट उल्लेख 'पृथ्वीराज विजय' संस्कृत काव्य में कवि जयानक ने किया है—और वह नाम है—पृथ्वीभट्ट। इससे ऐसा मानने का यह सम्पूर्ण कारण रहता है कि रासोकार कवि का मौलिक पूरा नाम बरदाई चंद भट्ट नहीं, परन्तु बन्दीराज पृथ्वीचन्द्र भट्ट होना चाहिये।

बरदाई 'चंद भट्ट' यह मुहावरे का नाम है।

जिसका उल्लेख 'पृथ्वीराज रासे' में स्वयं कवि ने केवल बरदाई चंद भट्ट किया है और लोक-प्रसिद्ध नाम भी यही है। रासो के रचयिता कवि को ऐसा करने का एक कारण यह भी संभावित होता है कि अपना और राजा का नाम

'पृथ्वी' होने से परस्पर के व्यक्तित्व में गड़बड़ होने के भय से स्वयं कवि ने अपना मूल नाम पृथ्वीचन्द्र में से 'पृथ्वी' शब्द का त्याग कर केवल 'चन्द्र' इतने छोटे मुहावरे के नाम से परिचित होना योग्य माना हो। क्योंकि 'रासो' यह लोकभाषा का काव्यग्रन्थ है। अतः उसके रचयिता ने बोलचाल के नाम का ही केवल उल्लेख किया है, जब कि 'पृथ्वीराज विजय' संस्कृत भाषा का काव्यग्रन्थ है। अतः उसमें उसके कर्त्ता ने संस्कृत नाम का उल्लेख किया है।

इस संपूर्ण विवरण से यह सिद्ध होता है कि रासोकार बरदाई चंदभट्ट का मूल पूरा नाम बन्दीराज पृथ्वीचंद्र भट्ट है, जिसका प्रकट उल्लेख संस्कृत काव्य 'पृथ्वीराज विजय' में किया गया है, जब कि उसका लोकप्रसिद्ध बोलचाल का नाम बरदाई चंद भट्ट है।[1]

(७)

महाकवि चन्द की वंशावली और 'भविष्य पुराण'—

रासोकार महाकवि चन्द की प्राचीनता को प्रमाणित करने वाला एक विशेष समर्थन उसकी वंशावली है, जिसे उनकी सत्ताईसवीं पीढ़ी में होनेवाले वंशधर नागोर निवासी श्री नेनूराम ब्रह्मभट्ट ने प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ महामहोपाध्याय पं० श्री हरप्रसाद शास्त्री एम० ए० को दी थी और उन्होंने उसे बंगाल रोयल एशियाटिक सोसाइटी के जनरल में प्रकट की है।
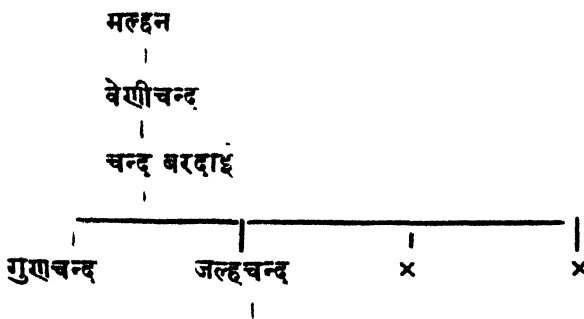
१. आज भी अपने यहाँ पुरुषोत्तमदास, धर्मदास आदि नाम होते हैं, जिसे बोलचाल में केवल 'दास' कह कर बुलाते हैं। इसके अतिरिक्त पंजाबियों में भी महेरचंद, गोकुलचंद आदि नाम देखे जाते हैं। जब कि चंद भी पंजाब का निवासी था। अतः संभव है कि उसका नाम 'पृथ्वीचंद्र' होना चाहिये।

सीताचन्द
वीरचन्द
हरिचन्द
रामचन्द
विष्णुचन्द उद्धरचन्द रूपचन्द बुद्धचन्द देवचन्द सूरदास(सूरजचन्द)
खेमचन्द
गोविन्दचन्द
जयचन्द
मदनचन्द शिवचन्द बलदेवचन्द
चौथचन्द
बेनीचन्द
गोकुलचन्द बसुचन्द लेखचन्द
कर्णचन्द
गुणपंगचन्द
मोहनचन्द
जगन्नाथ
सोमेश्वर
गंगाधर
भगवानसिंह
कर्मसिंह
माधुरसिंह
बा॰ गोविन्दसिंह
मानसिंह

इस वंशावली का ऐतिहासिक दृष्टि से अनुशीलन करने पर महाकवि चंद की समकालीनता और प्राचीनता के लिये यह एक ठोस प्रमाण सिद्ध होता है। क्योंकि कवि चंद का अवसानकाल ही पृथ्वीराज का अवसानकाल है शिलालेखों के अनुसार सिद्ध पृथ्वीराज का मृत्यु संवत् १२४९ है। अतः कविचंद का मृत्यु समय भी १२५९ ही मान लेवें, तो उसमें कुछ भी आपत्ति-जनक नहीं है। इस प्रकार विचार करते चंद के सत्ताईसवें वंशज श्री नेनुराम ब्रह्म भट्ट का जन्म संवत् १९१६ में से चन्द के मृत्यु संवत् १२४९ को घटा लेने से २६ पीढ़ियों के लिये ६६७ वर्ष का अंतर आता है। जिसे (६६७÷२६=२५ वर्ष ७ मास २७ दिन) छब्बीस से भाग देने पर प्रत्येक पीढ़ी के लिये लगभग २५ वर्ष ७ मास और २५ दिन आते हैं, जो एक पीढ़ी के आयुष्य के लिये पर्याप्त समय माना जा सकता है। अतः इस वंशावली के अनुसार भी महाकवि चंद, पृथ्वीराज चौहान का समकालीन ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त इस वंशावली में से एक अन्य प्रमाण भी उपलब्ध होता है और वह है, सत्तरहवीं शताब्दी में होने वाले सुप्रसिद्ध भक्त-कवि सूरदासजी, जिनका समर्थन उस समय में लिखा हुआ धार्मिक साहित्य, पुराण और साहित्य लहरी भी करती है।

---

१. देखिये—Preliminary Report on the operation in search of Mss. of Bardic Chronicles (1913)

'भविष्य पुराण' में महाकवि चन्द भट्ट का उल्लेख—

ऊपर की वंशावली में बताए अनुसार प्रसिद्ध भक्तकवि सूरदासजी महाकवि चन्द के वंशज हैं, जिनका प्रामाणिक समर्थन 'भविष्यपुराण' करता है, जो इस प्रकार है—

सूरदास इति ज्ञेयः कृष्ण-लीला-करः कविः ।
शम्भुर्वै चन्द्र भट्टस्य कुले जातो हरिप्रियः[1] ॥

महाकवि चन्द और उनके सातवें वंशज भक्त सूरदासजी

इसके अतिरिक्त स्वयं सूरदासजी ने 'साहित्य लहरी' नामक अपने ग्रन्थ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

प्रथम ही पृथु यज्ञ ते भे प्रकट अद्भुत रूप ।
ब्रह्मराव विचारी ब्रह्मा राखु नाम अनूप ॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय ।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय ॥
परि पायँन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन ।
तासु वंश प्रसंस में भौ चन्द चारु नवीन ॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देश ।
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेश ॥
दूसरे गुन चन्द ता सुत सीलचन्द सरूप ।
वीर चन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप ॥
रंथंभौर हमीर भूपति संगत खेलत जाय ।
तासु वंश अनोप भो हरिचन्द अति विख्याय ॥
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत बीर ।
पुत्र जनमे सात जाके महाभट गंभीर ॥
कृष्णचन्द उदारचन्द जु रूपचन्द सुभाई ।
बुद्धिचन्द प्रकाश चौथे चंद भे सुखदाई ॥
देवचन्द प्रबोध संसृतचन्द ताको नाम ।
भयो सप्तमो नाम सूरजचन्द मंद निकाम ॥

---

१ देखिये—भविष्य पुराण, प्रति सर्ग पर्व, अध्याय २२ श्लोक ३० वाँ ।

इस पद्य में सूरदासजी के द्वारा बताये हुए अपने परिचय पद्यों में वे महाकवि चन्द के सातवें वंशज हैं। पद्य की वंशावली और आगे बताई हुई वंशावली में कोई विशेष फेरफार नहीं पड़ता। केवल मात्र सूरदासजी जो वंश गुणचन्द का बताते हैं, उस वंश वृक्ष में जल्ह का वंश है। इसके अतिरिक्त वंशावली बराबर मिलती आ रही है और इसका ऐतिहासिक अनुशीलन करते वह भी कवि चन्द और पृथ्वीराज की समकालीनता प्रकट करता है।

भक्त कवि सूरदासजी का जन्म सम्वत १५४० और मृत्यु संवत् १६२० है। है। इन सम्वतों को निहारते हुए कवि सूरदासजी की आयु ८० वर्ष की होती है। शिलालेखों अनुसार सिद्ध हुआ है कि पृथ्वीराज का मृत्यु सम्वत् १२४६ है। इस सम्वत् को भक्त कवि सूरदासजी के जन्म सम्वत् में से (१५४०–१२४६ = २६१) घटाने से ६ पीढ़ियों के लिये २६१ वर्ष का अन्तर आता है। इस अन्तर के २६१ वर्ष को ६ से भाग देने पर (२६१ ÷ ६ = ४८ वर्ष, ६ मास) ४८ वर्ष ६ मास आते हैं, जो एक पीढ़ी की आयु के लिये बराबर सप्रमाण आयुष्य माना जा सकता है और यही बात कवि चन्द की प्राचीनता तथा पृथ्वीराज की समकालीनता सिद्ध करती है, यद्यपि लोकवाणी में प्रचलित प्रचार नहीं, पर इतिहास और पुरातत्व का संगीन प्रमाण है।

(८)

पृथ्वीराज रासो और अनंद सम्वत्

पृथ्वीराज रासो की प्रकाशित प्रति में निर्दिष्ट सम्वतों के सम्बन्ध में आज के इतिहासकार शंका किया करते हैं, जो वास्तव में रासो की भाषा और काव्य के गूढ़ार्थ को समझने की उनकी अशक्ति और अज्ञान प्रदर्शित करता है। रासो के इन संवतों का, उसके टीकाकार श्री विष्णुलाल पंड्या तथा श्री बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० 'अनद सम्वत्' नाम से परिचय देते हैं, जो वास्तव में भाषा और काव्य में रहे हुए दृष्टि कूट को देखते इतिहास का एक प्रत्यक्ष सत्य है, जिसे काव्य-रचना की परिपाटी पर कस कर देखते हुए प्रामाणिक एवं सत्य सिद्ध होता है। रासो में सम्राट् पृथ्वीराज चौहान का जन्म सम्वत् इस प्रकार है—

एकादस सै पंच दह विक्रम साक अनंद।
तिहि रिपु जय पुर हरन को, भय प्रिथिराज नरिंद॥

जिसका अर्थ ग्यारहसो पंद्रह विक्रम के अनंद शाक में शत्रु पर विजय-पाने और देशदेशांतरों को जीतने केलिये पृथ्वीराज नरेश ने जन्मलिया। यहाँ 'विक्रम साक अनंद में 'अनंद' शब्द विक्रम शाक का संज्ञा शब्द है और इस संज्ञावाचक 'अनंद' में रहा हुआ गूढ़ार्थ चन्द कवि की काव्यरचना का लाघव प्रदर्शित करता है। 'अनंद' शब्द इस प्रकार बना हुआ है-अ+नंद=अनंद। अ=रहित, नंद=नव (जिस प्रकार संस्कृत में ऋषि शब्द का अर्थ सात होता है उसी प्रकार) अब सौ में से ९ को घटाने पर बाकी ९१ रहते हैं, जिन्हें कवि ने नवनंदों का राज्यकाल मान कर प्रचलित विक्रम संवत् में से घटाये हैं। क्योंकि नंद संकर जाति के अकुलीन थे और इसीसे कवि ने विक्रम संवत् की इस प्रकार गणना कर, उसका 'अनंद शाक'-नाम से परिचय करवाया है।[1] ऐसा करने का कवि का मुख्य हेतु था, जिसे वह स्वयं दूसरे पद्य में लिखता है-

एकादस से पंच दह, विक्रम जिम ध्रमसुत्त।
त्रतिय साक प्रथिराज कौ लिष्यौ विप्र गुनगुप्त॥

जिसका अर्थ इस प्रकार होता है-जैसे विक्रम और युधिष्ठिर शाक है, उसी प्रकार ग्यारहसो पन्द्रह पृथ्वीराज के तीसरे शाके का, जो ब्राह्मण के गुप्त गुण से से प्रेरित होकर लिखा है।

इस प्रकार रासो की पंक्तियों को देखते हुए महाकवि चंद ने स्वयं अपने यजमान और मित्र का इस पार्थिव सृष्टि में गौरव बढ़ाने के साथ उसकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिये प्रचलित विक्रम संवत् में से ९१ वर्ष कम करने की पद्धति स्वीकार की है। ऐसा करने का उसका हेतु भी उसने स्पष्ट कर दिया है। अतः संवतों में शंका करने का कोई स्थान ही नहीं है, पर इस प्रकार उसने विक्रम संवत् और शाक संवत् से भिन्न एक तीसरा नवीन संवत्सर का प्रारंभ किया है, जिसका रासो के टीकाकारों ने 'अनंद संवत्' के रूप में स्पष्ट परिचय दिया है। H.

---

१. देखिये-'पृथ्वीराज रासो' नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

H.स.टि. 'अनंद सम्वत्' का रासो के अतिरिक्त अन्यत्र बहुत कम प्रयोग होना पाया जाता है। औरङ्गजेब के समय के दर्बारी कवि जैत्रसिंह (ब्रह्मभट्ट) ने निम्नलिखित छप्पय में 'अनंद-सम्वत्' का उल्लेख किया है, जिससे प्रकट होता है कि वि० सं० और 'अनंद-सम्वत्' के बीच १०० वर्ष का अन्तर है—

इसके अतिरिक्त अनंद संवत सबन्धी एक विशेष मत [1] पृथ्वीराज रासो के व्याख्याता उदयपुर निवासी कविराव मोहनसिंह का है, जो इस प्रकार है—

"अनंद संवत् पृथ्वीराज के पूवज, जिसका नाम अनंदराज होना चाहिये, उसके पुत्र धर्मसुत आदि ने उस अनदराज के नाम पर शाके के उपलक्ष्य में चलाया

सोरहसय बाईस हतेउ संवत् अनंद तब।
माघ मास वदि तिथि व भण्ड त्रोदसी सोम जब ॥
दिण्ड पुत्र सिर छत्रु साहिजहान तजेउ वपु।
चढ़ि विमान सुरलोक गए मिस्नी निवास तपु ॥
छिति रहेउ छाइ कीरति प्रबल, जगत विदित मानहु किहसि।
जिमी उडि कपूर वासनाहि तजि बास रहिय वासनाहिं बसि ॥

आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा० हस्तलेख सं० ६२

उपर्युक्त छप्पय में शाहजहां के निधन का सम्वत् १६२२ दिया है, जो इतिहास सम्मान नहीं; परन्तु उसके आगे 'अनद सम्वत्' दिया है, जिसको 'अनंद–संवत्' मानना चाहिये, जो विक्रम सम्वत् से एक दूसरा भिन्न सम्वत् है। शाहजहाँ की मृत्यु वि० स० १७२२ में होना सिद्ध है। इस अवस्था में यह पूरे १०० वर्ष का अन्तर, विक्रम संवत् और अनंद संवत् के बीच का अन्तर ही प्रकट करता है। इस छप्पय का रचयिता दर्बारी कवि था और वंश परंपरा से उसका शाहीदर्बार से सम्बन्ध था। उसने शाहजहाँ का दर्बार भी देखा था, ऐसी अवस्था में वह शाहजहाँ का निधन जान–बूझ कर अशुद्ध लिखे, ऐसा कोई नहीं कहेगा। अस्तु, यह अनंद संवत की प्रामाणिकता का पुष्ट प्रमाण है। परन्तु यहाँ पर यह गड़बड़ी बनी ही रहेगी कि अनंद संवत् और विक्रम सम्वत् के बीच जो ९०–९१ वर्ष का अन्तर विद्वान् बतलाते हैं, वह उपर्युक्त छप्पय को देखते माननीय है अथवा नहीं। इस पर विचार होकर निर्णय होना आवश्यक है; किन्तु विद्वानों का इस ओर ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है।

१. आधुनिक युग में रासो के जानकारों में मुख्य उदयपुर निवासी कविराव मोहनसिंह हैं। २५ वर्षों के कठिन परिश्रम पूर्वक अध्ययन के पश्चात् उन्होंने रासो का मार्मिक तथा आन्तरिक अध्ययन किया है, ऐसा अन्य किसी विद्वान् ने नहीं किया। अभी इन्होंने रासो का नये सिरे से सटीक संपादन किया है।

इसी प्रकार इनके अनुयायी प्रो० मीनाराम रंगा हैं और वे नागरी प्रचारिणी सभा के लिए रासो का संशोधित सम्पादन कर रहे हैं।

हो, यह रासो से सिद्ध होता है। 'अनंद विक्रम संवत्'-यह केवल पंड्याजी की उपज है। यह 'अनंद-संवत्' दिल्ली संवत् भी कहाता हो-ऐसा अनंगपाल के कुतुबुद्दीन की मस्जिद के प्रांगण में रहे हुए लोह-स्तंभ से भी यही सिद्ध होता है। प्रचलित विक्रमी संवत् में से ९१ वर्ष की भूल रासो में दिये हुए सभी संवतों में है। इसी प्रकार लोह-स्तंभ के लेख के संवत् में भी है। अतः यह भूल संवत् की संख्या में जोड़ने से बराबर मिल जाती है।

यह संवत् कुछ समय तक 'अनंद संवत्' और 'दिल्ली संवत' के नाम से चला हो-यह प्रतीत होता है। अनंद का विकृत रूप अनाल, आनाल, अरणोदराज लेखों और कई प्रतियों में भी मिल जाता है। इससे हमारा अनुमान है कि चौहान वंश के मूल पुरुष का नाम आनल, अनंद आदि रासो में है। I. अतः संभव है कि चौहान जाति के उद्भव होने का संकेत पृथ्वीराज के जन्म संवत् पर महाकवि चंद बरदाई ने इस समय के ज्योतिषियों द्वारा तलाश करवा कर ही किया हो और चंद की लेखनी इस बात को स्पष्ट रूप से कह रही है कि विक्रमी और शक संवत् से यह संवत् सर्वथा भिन्न तीसरा संवत् है। क्योंकि कवि ने स्वयं तीसरा संवत् लिखा है। यदि हम तीसरे संवत् को नहीं समझ सकते, तो यह अपनी बुद्धि-मन्दता है-कवि की नहीं।"

इतिहास में उपलब्ध अनेक संवत्

इस प्रकार नया संवत् प्रारम्भ करने की प्रथा भारतवर्ष के इतिहास में कोई आश्चर्य प्रकट करने वाली नवीन घटना नहीं है, पर सर्वथा सामान्य घटना है। इतिहास के भूतकालीन पृष्ठों का अवलोकन करने से ऐसे कितने ही राजाओं के संवत् दिखाई देते हैं, जिनको उन्होंने किसी विजय के उपलक्ष्य में अथवा अपने राज्या-

---

I. सं.टि.—अनंदराज के नाम से 'अनद विक्रम सम्वत्' कल्पना निरर्थक नहीं है; परन्तु रासो में जो चौहानों की प्राचीन वंशावली दी है, उसमें आनंदराज नाम के व्यक्ति का आदि पुरुष रूप में होना प्रकट नहीं होता। कविराव मोहनसिंहजी ने तो अपने सम्पादित रासो में प्राचीन वंशावली को स्थान ही नहीं दिया है और उसको क्षेपकांश समझ कर निकाल दिया है। वंशभास्कर में जो विस्तृत वंशावली चौहान वंश की दी है, उसमें भी आदि पुरुष या संवत् प्रवर्तक के नाम से आनंदराज का कहीं नाम नहीं मिलता। इस अवस्था में पंड्याजी की भांति यह भी एक क्लिष्ट कल्पना ही है।

रोहण के समय अपने शासनकाल में प्रारम्भ किये हुए हैं; जो दीर्घकाल तक व्यवहार में प्रचलित नहीं रहे, पर उनके शासनकाल पर्यन्त चलते रहे और पीछे प्रचार का अन्त हो गया। ऐसे संवतों में (१) गुप्त संवत् (२) हर्ष सम्वत् और गुजरात का सिंह संवत् विशेष उल्लेखनीय है।

इतिहास के पृष्ठों में दिखाई देनेवाले इन संवतों में सिंह सम्वत्' का प्रारम्भ गुजरात के सोलंकी वंश के राजाओं में सिद्धराज जयसिंह ने किया था।[1] J जबकि

---

१ देखिये–"The glory that was gurjaradesa" By st. K. M. Munshi.

J.सं.टि.–प्राचीन इतिहास के अनुसंधान में विक्रम सम्वत् के अतिरिक्त भारत में अन्य कितने ही संवत्सरों के प्रचलित होने का पता चला है। जिस विक्रम संवत् का आज भी भारत के अधिकांश भाग में प्रचलन है और वह सार्वदेशिक माना जाता है, उसका प्रवर्तक कौन था? यह विषय विवादग्रस्त है और अब तक उसके प्रवर्तक का ठीक-ठीक निश्चय नहीं हुआ है एवं यह भी सही रूप से नहीं बतलाया जासका है कि वह किस वंश का नायक था। इस वि. संवत् को पहले के लेखों में और मध्य कालीन युग के लेखों में 'मालवा-सम्वत्' नाम से सम्बोधित किया है, जिसको विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। गुप्त सम्वत् की वल्लभी सम्वत् में भी परिगणना हुई है। इनके अतिरिक्त गांगेय संवत्, कलचूरि संवत्, हर्ष संवत्, चालुक्य वि०सं०, भाट्टिक संवत आदि भी हैं। सिंह संवत् का प्रवर्तक गुजरात का चौलुक्य (सोलंकी) नरेश सिद्धराज जयसिंह होना गुजराती विद्वान् मानते हैं, जिनमें डा० भगवानलाल इन्द्रजी, डा० देवकृष्ण रामकृष्ण भाण्डारकर और श्री के० एम०, मुन्शी प्रमुख हैं। इन विद्वानों की मान्यता के अनुसार मानलें कि 'सिंह संवत्' का प्रवर्तक सिद्धराज-जयसिंह (गुजरात का चौलुक्य नरेश) हो; परन्तु जयसिंह के उत्तराधिकारी एवं क्रमानुयायी कुमारपाल तथा भीमदेव के कुछ लेख तथा दानपत्र मेवाड़ तथा वागड़ में हमारे भी देखने में आये हैं, जिनमें 'सिंह संवत्' नहीं दिया है और केवल वि० सं० ही उल्लिखित हैं।

हर्ष संवत् का प्रारम्भ विक्रम की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सम्राट् हर्षवर्द्धन ने किया था,[1] जो उनके शासनकाल में प्रचलित रहा और अब काल कवलित होगया है। इसी प्रकार रासो के 'अनंद संवत्' की भी दशा हुई है, जो पृथ्वीराज के अवसान के पीछे व्यवहार में नहीं रहा।

इतिहास में अनंद संवत् की उपयोगिता—

भारतीय इतिहासज्ञों में कई विद्वानों ने रासो के इस 'अनंद' संवत् को स्वीकार किया है और उसकी ऐतिहासिक उपयोगिता को प्रकट किया है, जिससे उनको अन्य राजाओं और उनके समय की घटनाओं के काल-निर्णय करने में सरलता मिली, जिसकी सचाई नीचे के एक ही प्रमाण से प्रकट होती है—

आमेर के कच्छवाहों और राव पज्जून तथा राव किल्हण के समय का निर्धारण करते श्री हरिशरणसिंह चौहान सूचित करते हैं कि—"इस प्रकार 'अनंद संवत्' का समर्थन करना उचित लगता है।[2]"

जब रासो के संवत् को स्वीकार नहीं करने में श्री ओझाजी अकेले हैं और वे उसका कारण 'अनंद संवत्' और शास्त्रीय संवत् के बीच ९१ वर्ष का अन्तर बताते हैं, जो उनकी एक सच्चे इतिहासकार या पुरातत्वविद् के रूप में तटस्थता नहीं, पर केवल व्यर्थ हठाग्रह ही है। क्योंकि जिस विक्रम संवत् और ईस्वी सन् के बीच ५६-५७ वर्ष का अन्तर तथा शक संवत् और विक्रम संवत् के बीच १३५ वर्ष के अन्तर को बिना किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के स्वीकार करते हैं, तो फिर 'अनंद संवत्'

इस स्थिति में 'सिंह संवत्', कोई सार्वदेशिक संवत रहा हो, ऐसा कोई नहीं मान सकता। आश्चर्य नहीं कि रासो में पृथ्वीराज तृतीय के संबंध के जितने भी संवत् दिये हैं, वे पृथ्वीराज प्रथम के संवत् हों, जो वि. सं० ११६२ तक तो निश्चित रूप से विद्यमान था। संभव है कि मूल रासो में (जो अब तक अप्राप्य है) संवत् क्रम न हो और क्षेपक रूप में पिछले संस्करणों में उनके कर्त्ताओं ने पृथ्वीराज एक ही व्यक्ति मान कर दिये हों।

१— देखिये—'हर्षवर्धन', प्रो० गिरिजाशंकर चेटरजी ए० एम० कृत।

२ देखिये— नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, अंक १-२, श्री हरिशरणसिंह चौहान का लेख—'आमेर के कछवाहा राव पज्जून और किल्हण।

के अन्तर को स्वीकार करने में क्या हानि हो सकती है ? जिसके लिये रासो में स्पष्ट प्रमाण दे दिया गया है।

फिर भी श्री ओझाजी की विद्वत्ता को ध्यान में रखते हुए उनके मत के साथ सहमत होवें; परन्तु ऐसा करने पर उनका 'बीकानेर का इतिहास' नामक ग्रन्थ निषेध करता है। इस ग्रन्थ में श्री ओझाजी ने एक सच्चे इतिहासकार के धर्म के विरुद्ध जाकर बीकानेर राज्य की कितनी सत्य ऐतिहासिक घटनाओं पर पटाक्षेप कर दिया है। ऐसी घटनाओं में मुख्य बीकानेर की राज्य कन्याएँ इस्लामी बादशाहों के साथ विवाह करने की है।K [1] जिसका प्रकट उल्लेख बीकानेर राज्य के अपने गजट में भी किया गया है। जबकि इतिहासकार ओझाजी ने उसे अपने लिखे 'बीकानेर के इतिहास' में सर्वथा अनुल्लेखनीय रक्खा है। इस वास्तविक बात को देखते श्री ओझाजी के मत में शंका करने का शत प्रतिशत स्थान रहता है। अतः केवल उनके अकेले मत को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। क्योंकि इनके ऐतिहासिक

K स०टि० इतिहास में अनंद संवत को कहीं मान्यता नहीं दी गई है। केवल वे ही विद्वान् जो रासो को प्रामाणिक मानते हैं, एवं ख्यातों की वंशावलियों को विश्वस्त समझते हैं, वे उसको इतिहास से जोड़–तोड़ बिठलाने की चेष्टा करते हैं। बूंदी के श्री हरिचरणसिंहजी चौहान इस प्रकार के ही विद्वान् हैं, जिन्होंने अपनी विलक्षण युक्तियों से यहाँ संगति बिठलाने का यत्न किया है; पर उसके पीछे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, जो सर्व मान्य हो। श्री चौहान के तर्क के अनुसार कछवाहा राजा वज्रदामा (वि० सं० १०३४) के १३ वें वंशधर पज्जून का समय १६ वर्ष के औसत से महाराजा पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के राज्यकाल आदि से मिल जाता है। श्री ओझाजी २० वर्ष के औसत से पज्जून का समय लगभग वि० सं० १२६४ मानते हैं; किन्तु सब ही स्थानों पर बीस वर्ष का औसत काम नहीं देता। इस बात को ध्यान में रखते हुए पज्जून को पृथ्वीराज तृतीय का समकालीन मान लेने में इतिहास की कोई हानि नहीं होती; क्योंकि अब तक पज्जून के कोई शिलालेख आदि साधन उपलब्ध नहीं हुए हैं एवं शोध से कोई ऐसा साधन उपलब्ध न हो, तब तक प्रचलित विचारधारा की उपेक्षा करना हमारे दृष्टिकोण से भी उचित नहीं है। जब पज्जून के विषय का कोई लेख आदि मिल जायगा, स्वतः यह समस्या सुलझ जायगी।

१ देखिए– 'श्री ओझाजी का लिपि पोता अर्थात् 'बीकानेर का इतिहास' श्री पं० अंबालाल कल्ला, बी०ए० कृत।

विधान शोध के नाम से सर्वथा पक्षपात पूर्ण और निजी स्वार्थ के राहु से घिराये हुए हैं। L.

L. सं०टि०'अनंद संवत्' या 'अनंद वि० सं०' को थोड़े ही वर्षों से रासो के समर्थकों ने अपनी नवीन सूझ-बूझ से इतिहास के क्षेत्र में लाकर खड़ा किया है। पहले उन्होंने उसके और वि० सं० के बीच में १०० वर्ष का अन्तर होना बतलाया। किन्तु इतिहास में जब उसकी सर्वत्र सङ्गति नहीं बैठी, तब अपना विचार बदल दिया और ९०-९१ वर्ष का अन्तर होना प्रकट कर रासो की घटनाओं की संगति बिठलाने का यत्न किया। इससे आक्षेपकों को मौन हो जाना पड़ा। वर्तमान समय के हिन्दी भाषा के बहुत कुछ विद्वान अब 'अनंद संवत्' का अस्तित्व मानने के लिए सहमत होगये हैं; परन्तु कहना पड़ेगा कि ज्योतिष आदि अन्य दृष्टि बिंदुओं से इस पर विचार नहीं हुआ है। अस्तु, समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है।

इस निबन्ध के लेखक श्री गोवर्द्धन शर्मा अपनी युक्ति और तर्क से रासो की कथाएं सर्वथा सत्य होने पर बल देते हैं और मान्यवर ओझाजी पर बीकानेर के इतिहास में मुगल कालीन विवाहों की घटनाओं पर लीपा पोती करने का आक्षेप करते हुए, उनके 'अनंद संवत्' विषयक कथन को सन्देह जनक मानकर स्वीकार नहीं करते। इसमें हमें कोई आग्रह नहीं, पर यह तो अनादिकाल से चला आता है कि विद्वान् लेखक सर्वत्र एकसा नहीं लिखते और उनमें मौलिक रूप से मतभेद हुआ ही करता है। वर्तमान समय में भी यह परिपाटी बनी हुई है और घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत की जाती हैं, इसके सैकड़ों उदाहरण विद्यमान हैं। विद्वानों की विचार-धारा को मनन करते हुए हम यह निःसंकोच कह सकते हैं, कि रासो के समर्थकों ने भी रासो में अधिकांश भाग क्षेपकांश होना स्वीकार किया है और मुनि श्री जिनविजयजी के दिये हुए पद्यों के नमूनों से तो उसका वास्तविक रूप दूसरा ही ज्ञात होता है। जब मूलरूप बिगाड़ कर उसका भ्रष्टरूप प्रस्तुत किया जाय तो निर्णायक उसको किसी भी प्रकार से सही होना नहीं मानते। यह न्याय परिपाटी है, जिसको न्यायालय भी मानता है। श्री गोवर्द्धन शर्मा, अपने इस निबन्ध में स्पष्टतः रासे को मूल रूप में होना नहीं मानते हैं, तथा पृथाकुंवरी का विवाह समरसिंह से न होकर सामन्तसिंह से होना मानते हैं, जो श्री दूगड़ और ओझाजी की विचारधारा के अनुसार है। जब एक स्थान पर वे श्री ओझाजी की विचारधारा और प्रमाणों पर चलते हैं तो दूसरी तरफ हे उनको लाञ्छित करते हुए नहीं चूकते। हमारी दृष्टि से यह श्री शर्मा की अन्तर्वेदना है, जो रासो के कर्ता के प्रति

शिलालेखों में उपलब्ध अनंद संवत्: —

इसके अतिरिक्त रासो के संवत् का उल्लेख शिलालेखों में भी मिल आता है। दिल्ली के तंवर शासक अनंगपाल का नाम दिल्ली के कितने ही स्तंभों पर उपलब्ध होता है, परन्तु उनमें भो संवत् नहीं है। केवल कुतुबुद्दीन ऐबक की मस्जिद के प्रांगण में, जो लोह स्तंभ पड़ा है, उसके ऊपर उसके विषय में संवत् का उल्लेख इस प्रकार है—"संवत् दिल्ली ११०६ अनंगपाल बही।" जिसका अर्थ आज तक विद्वानों ने यह किया है कि वि० सं० ११०६ में अनंगपाल ने दिल्ली को को बसाया। पर यह अर्थ ठीक नहीं। क्योंकि संवत् संख्या के पीछे संवत् के अंक नहीं आये हैं। 'संवत् दिल्ली' लिखने के पीछे संवत् के अंक आये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि "दिल्ली संवत् ११०६ में इसे (दिल्ली को नये ढंग पर जीर्णोद्धार के रूप में) बसाया। उसमें बसाये हुए स्थान का उल्लेख नहीं, आया है, पर जहाँ यह लेख है, वही अपने बसने का स्वयं समर्थन करता है। यही दिल्ली वाला संवत् रासो का 'अनंद सम्वत्' है, जिसमें स्व० विष्णुलाल मोहनलाल पंड्या के मत के अनुसार ६१ वर्ष का अंतर जोड़ने पर वि० सं १२०० में अनंगपाल का दिल्ली संवत् होना सिद्ध होता है।'

अगाध श्रद्धा को प्रकट करती है, पर उनको यह ध्यान में रखना चाहिये कि अनंद सम्वत् के विषय में अभी तक मतभेद समाप्त नहीं हुआ है और रासो के समर्थक भी भिन्न २ मत रखते हैं, जैसा कि ऊपर श्री कविराव मोहनसिंहजी ने बतलाया है—"अनंद संवत् केवल पंड्या जी की उपज है"। इस अवस्था में सर्व मान्य सिद्धान्त रूप से इसको कोई स्वीकार नहीं करेगा कि वि० सं० या शक संवत् की भांति अनंद संवत् कोई सार्वदेशिक संवत् रहा हो। केवल रासो तथा उस ही के सदृश ख्यातों से उसका अस्तित्व मान लेने से ही वह सर्वमान्य और सार्वदेशिक संवतों में नहीं गिना जा सकता। यथार्थ में यह विषय शोध का है और इसका अन्त नहीं है। अतएव शोधक बुद्धि विद्वानों को किसी प्रकार का दुराग्रह न रखते हुए शोध की प्रवृत्ति रख निजी मत प्रकट करना चाहिये।

"'सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते ।
मूढःपरःप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥

१ देखिये—राजस्थानी भारती भाग १, अंक २, श्री कवि मोहनसिंह राव का लेख और 'पृथ्वीराज चरित' श्री रामनारायण दूगड़ कृत।

अतः इन सब बातों को देखते हुए 'अनंद संवत्' यह एक नवीन संवत् सिद्ध होता है, जो पृथ्वीराज के समय में उसने प्रचलित किया था, जो रासो, बहियों एवं शिलालेखों में मिल आता है, जिसे एक व्यक्ति के सिवाय अन्य इतिहासकारों ने उसकी यथार्थता को समझ कर स्वीकार किया है। इसलिये 'अनंद संवत्' यह केवल कल्पना नहीं; पर एक ऐतिहासिक सत्य है। इतिहास का यह सत्य समझ में आवे, इसके लिये इस संवत् के लिखने वाले का कोई दोष नहीं; पर ऐसे इतिहासकार में रही हुई बुद्धिमत्ता के अभाव का ही दोष है।

(६)

पृथ्वीराज रासो की कुछ घटनाएँ

वर्तमान में प्रचलित और बनारस नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो में वर्णित कुछ घटनाओं को कुछ इतिहासकार ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य और कल्पित मानते हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) चौहान वंश की उत्पत्ति की कथा।

(२) पृथ्वीराज की माता कमला और दिल्ली अनंगपाल के यहाँ पृथ्वीराज का गोद जाना।

(३) गुर्जरपति भीमदेव द्वितीय और पृथ्वीराज चौहान के संघर्ष की कथा।

(४) संयोगिता स्वयंवर और जयचंद के साथ युद्ध।

(५) मेवाड़ के रावल समरसी (सामंतसिंह) के साथ पृथाबाई के विवाह की कथा।

इन घटनाओं को असत्य मानकर जिन २ इतिहासकारों ने रासे को बनावटी कहा है, उनके कथन में सरासर इतिहास का एकदम असत्य और रासो सम्बन्धी गंभीर ज्ञान का सर्वथा अभाव प्रतीत होता है। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से इन घटनाओं की जाँच करने पर उनमें संपूर्ण सत्य होना प्रतीत होता है, जिसका विश्लेषण यहां विगतवार किया जाता है।

रासो के प्रक्षिप्तांशों में निगूढ वास्तविक सत्य

[१] प्रचलित रासे में चौहान-वंश की उत्पत्ति-कथा में उसे अग्नि वंशी कहा है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि रासे की अन्य हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों में चौहान वंश को 'सूर्य वंशी' कहा है। इसके अतिरिक्त चौहान वंश सम्बन्धी अन्य

प्राचीन ग्रंथों और शिलालेखों के अनुसार भी चौहान वंश 'सूर्य वंशी' है। यह समानता ही बतला देती है कि रासो की प्रचलित प्रति की "अग्निवंशी' कथा पीछे से जोड़ी हुई-क्षेपक भाग है, जिसका विस्तार ही उसको सार शून्यता को प्रकट कर देता है। इस विस्तृत वर्णन का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर तुरन्त ही उसमें रहे हुए रासो के चन्द-कृत असली पद्य और ऐतिहासिक तथ्य प्रकट होता है, जिसमें चन्द ने स्पष्टतया चौहान वंश की उत्पत्ति, ब्रह्माजी के यज्ञ कुण्ड में से 'सूर्य वंशी' होना बताया है, जो इस प्रकार है—

रासो में वर्णित चौहान वंश की उत्पत्तिः—

"ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये जब मण्डप की रचना की, तब असुरों ने निःसंकोच इस स्थान को भ्रष्ट करने की इच्छा की। यह देख कर ब्रह्मा ने मन में ही निश्चय किया कि स्वयं सूर्य को ही इन लोगों के नाश के लिये रण-संचालक योद्धा के रूप में प्रकट करना चाहिये। इससे ब्रह्मा ने यज्ञ कुण्ड को अग्नि से सुसज्जित कर आसन बिछा यज्ञ का आरम्भ किया और वे तत्वयुक्त मंत्रों से स्तुति का उच्चारण करने लगे। पीछे कमण्डल में से हाथ में जल लेकर उसे छिड़कते हुए बोले—"आओ-आओ—इन दुष्टों को भगादो।"—उनका ऐसा कहना था कि चौहान आकर उपस्थित होगया। यज्ञ के समय इस स्थान पर अवतरित हो, उसने बाण-वर्षा से असुर समूह को नष्ट किया और ब्रह्मा के यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त किया।"[१]

इससे सिद्ध होता है कि मूल रासोकार कवि चन्द ने चौहान वंश का प्रादुर्भाव ब्रह्म-यज्ञ के समय सूर्य से होना माना है और वह चौहान वंश को 'सूर्य वंशी होना मानता था, जिसके प्रकट करनेवाले उल्लेख रासो ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर

---

१ जब चतुरानन जग्य कजि, सजि मंडप सुस्थान।
तब आसुर अनसंकि सह, किय उच्चिष्ट उत्थान॥
चतुरानन मन-ध्यंति, असुर वध अवनि विचारिय।
जग्य जिट्ट उच्चिष्ट करै कातर-कृत-हारिय॥
सुरणि अंश संग्रहे हव्य नहं हव्य हवे नह हव।
सो उपाइ संचिये जोई संचरे असुर सह॥
निम्मो सु 'सूर-संग्राम भर अरि अलंग खंडे' खलह।
सम धरै जग्य कारण सु कलि विमल सुद्धि सुम्भई सकळ॥

मिल जाते हैं।[1] इससे रासो में वर्णित मूल घटना ऐतिहासिक सत्य है और उस पर प्रक्षेपों के ढँके हुए आवरण के कारण रासो की भाषा से सर्वथा अज्ञात, आज के इतिहासकारों को उसमें रहा हुआ सत्य क्यों कर दिखाई दे ? ऐसा करने के लिये तो अभ्यास और सतत परिश्रम की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त बाकानेर फोर्ट लाइब्रेरी की हस्तलिखित रासो की प्रति में तथा राव मोहनसिंहजी की देवलिया की प्रति में केवल चौहान वंश को सूर्य वंशी और ब्रह्मा के यज्ञ कुण्ड से उत्पन्न होने का उल्लेख है, जिसे पहले देख चुके हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण रासो को प्राप्त हस्तलिखित प्रतियाँ है, जो सिद्ध करती हैं कि रासो में वर्णित घटनाएँ सर्वथा सत्य हैं। उपर्युक्त भ्रम फैलानी वाली घटनाओं का दोष तो उसमें पीछे से जोड़े गये क्षेपकों व के कारण है, न कि कवि चंद का, जिसका दर्शन रासो की भाषा और पाठ के ज्ञान से सर्वथा अज्ञात श्री ओझाजी और शास्त्रीजी जैसे इतिहासकारों को कहाँ से हो ? अन्त में इतना ही कहना है कि रासो में मूल कवि चंद द्वारा वर्णित चौहान वंश की घटना सर्वतोभावेन ऐतिहासिक सत्य है, जिसका समर्थन चौहानों के शिलालेख करते हैं। अतः आज के इतिहासकारों की मान्यता सर्वथा निमूल है।

[२] रासो में वर्णित संशयात्मक घटनाओं में दूसरी घटना पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना है और उसकी माता का नाम कमला है। इस घटना के सबंध में इतिहासकार श्री ओझाजी का कहना है कि—"इस समय दिल्ली पर अनंगपाल नाम का कोई शासक ही नहीं था। क्योंकि चौहान विग्रहराज (वीसलदेव) पहले

रासो, देवलियावाली प्रति, राव मोहनसिंहजी की।

इसके अतिरिक्त देखिये—

रासो प्रकाशित समय १, पृष्ठ ५१, छन्द २२५

" " " " ५५ छन्द २८०

तथा इस प्रति के इस पृष्ठ के ऊपर छन्द २८२ की प्रथम पंक्ति

—"ब्रह्मान जग्य उत्पन्न सुर, चहुवान अनल अरि मूलन सूर।"

१. "उपज्यौ ब्रह्म कुण्ड अनूप" देखिये-प्रकाशित रासो पृष्ठ ३४६ समय ७ वाँ।

से ही दिल्ली राज्य को अपने राज्य में मिला चुका था। इसी प्रकार पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी है; जो त्रिपुरी के राजा तेजल की पुत्री थी, तोमर अनंगपाल की पुत्री नहीं।" इतिहासकार और रासो के विरोधी विद्वानों के इस कथन में भी ऐतिहासिक सत्य का समूल अभाव है। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से अन्वेषण करने पर रासो का कथन सत्य प्रतीत होता है, जो इस प्रकार है—

इस समय दिल्ली चौहानों के शासन में नहीं, पर साम्राज्य में था

रासो में वर्णित मूल पद्यों को देखने पर विदित होता है कि निःसन्देह विग्रहराज चतुर्थ ने दिल्ली पर आक्रमण किया था, और उसके तँवर शासकों का अपने अधीन कर जागीरदार बना लिये थे,जिसका प्रमाण वि०सं०१२२०का विग्रहराज का मिला हुआ शिलालेख है[1], जिसमें विजयी राजाओं का 'करद' अथवा जागीरदार बनाने का उल्लेख है। रासो और शिलालेखों की यह समानता ही प्रकट कर देती है कि दिल्ली पर चौहानों का प्रभाव था, शासन नहीं और यदि शासन होता तो अवश्य विग्रहराज, सोमेश्वर आदि पृथ्वीराज के पूर्ववर्ती राजाओं का अपने शाकम्भरीश्वर के साथ दिल्लीश्वर के रूप में अवश्य ही उनका परिचय दिया होता। परन्तु उनके प्राप्त शिलालेखों के अनुसार उन्होंने ऐसा नहीं किया। यही बता देता है कि दिल्ली पर उनका कोई करद अन्य शासक होना चाहिये।

इन सब बातों से सिद्ध होता है कि दिल्ली का सिंहासन श्री ओझाजी के कथनानुसार चौहानों के सीधे शासन में नहीं था, पर उनके साम्राज्य के अंतर्गत था; जिसका अंत पृथ्वीराज के समय में हुआ। अर्थात् पृथ्वीराज को वि०सं० १२२६ में वह सपूर्ण रूप से दिल्ली प्राप्त होगई।

अब हमें देखना है कि वि० सं० १२१३ से लेकर वि० सं० १२२६ तक दिल्ली पर कोई अनंगपाल नामक शासक था या नहीं ?

अनंगपाल का नाम दिल्ली के कई स्तभों पर मिल जाता है,पर उनमें एक के भी साथ संवत् नहीं है। केवल कुतुबुद्दीन ऐबक की मस्जिद के प्रांगण में एक लोह स्तंभ पड़ा हुआ है, उस पर उसके विषय में संवत् का उल्लेख है, जो 'दिल्ली संवत' ११०६ है। यही 'दिल्ली संवत्' उस रासो में उल्लेखित अनंद संवत प्रतीत होता है,

---

१ देखिये—'पृथ्वीराज चरित' श्री रामनारायण दूगड़ पृ० ४४–४५.

जिसमें अन्तर के ६१ वर्ष जोड़ देने से वि०सं० १२०० में दिल्ली पर अनंगपाल का होना सिद्ध होता है[1]

इसके अतिरिक्त दूसरा प्रमाण जिनपाल कृत 'खरतर गच्छ-पट्टावली' है, जिसमें इस समय दिल्ली के राजा का नाम मदनपाल दिया गया है। मदनपाल यह अनंगपाल का पर्यायवाची नाम है और उसके साथ तुलना करते चौहान विग्रहराज, सोमेश्वर और पृथ्वीराज का समय बराबर मिल जाता है[2] कि वि० सं० १२२६ के पूर्व दिल्ली पर तँवर अनंगपाल नाम का राजा था और कोई नहीं, जिसने अपनी पुत्री कमला का चौहान सोमेश्वर के साथ विवाह किया था और उसके गर्भ से उत्पन्न कुमार पृथ्वीराज को अपनी दिल्ली की गद्दी वारसे में दी थी. इसमें शंका करने का कोई स्थान नहीं है। क्योंकि उस समय बहु विवाह की प्रथा थी और संभव है कर्पूरदेवी के साथ सोमेश्वर ने विवाह किया हो। इससे अन्यान्य ग्रन्थों में कर्पूरदेवी के उल्लेख से विदित होता है कि विमाता होने के कारण ही भ्रम में पड़ कर उनके लेखकों ने माता का उल्लेख किया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है।

वस्तुतः पृथ्वीराज का जन्म तो कमला से हुआ था. कर्पूरदेवी से नहीं, जिसका प्रमाण इस प्रकार है—

पृथ्वीराज की माता

पृथ्वीराज विषयक पुस्तकादि साधनों में वर्णित वृत्तान्तों से विदित होता है कि रासो में दिये गये प्रमाण के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म वि०सं० १२०५-६ है[3]। परन्तु इतिहासकार तो 'विजय' के अनुसार कर्पूरदेवी के साथ सोमेश्वर का विवाह वि०सं०१२१८ में मानते हैं। अतः ऐसा मानने में संपूर्ण कारण है; पर पृथ्वीराज का जन्म कर्पूरदेवी से नहीं, पर कमलादेवी से हुआ था; क्योंकि उसका जन्म तो उसकी अपर माता के लग्न के पहले ही हो चुका था और इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज की माता कर्पूरदेवी नहीं, पर कमला है, जो दिल्ली के राजा तँवर अनंगपाल की पुत्री थी।

---

१. देखिये- 'राजस्थान भारती' भाग १, अंक २, ३ पृ० ४१।

२ देखिये- वीणा वर्ष १६, अंक ६, डॉ० दशरथ शर्मा की प्रवेशिका।

३ देखिये- 'राजस्थान भारती' भाग १ अंक २-३।

(३) रासो की सन्देहात्मक घटनाओं में गुर्जरपति भीमदेव द्वितीय और पृथ्वीराज के बीच संघर्ष की घटना है। इस घटना के मिथ्या होने के इतिहासकारों के कथन में भी ऐतिहासिक सत्य का सर्वथा अभाव है। क्योंकि इस घटना को रासो के अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक प्राचीन सामग्री के साथ तुलना करने पर वह सत्य सिद्ध होती है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

प्रह्लादन कृत 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' नामक नाटक मिल जाने से विद्वानों को इस बात का विश्वास हो गया है कि पृथ्वीराज चौहान और भीमदेव द्वितीय का परस्पर युद्ध हुआ था, जिसका कारण आबू का परमार राजा धारावर्ष था; जो पृथ्वीराज का विरोधी था। इसके अतिरिक्त गुर्जरपति भीमदेव द्वितीय का माण्डलिक था। इस बात का उल्लेख जिनपाल कृत 'खरतर गच्छ पट्टावली' भी करती है कि वि०सं०१२४४ के पहले चालुक्य और चौहान के बीच संघर्ष की समाप्ति हो गई थी[१]। जिसका प्रकट प्रमाण काठियावाड़ के वेरावल में से मिल गया है। भीमदेव द्वितीय का अपूर्ण शिलालेख और बीकानेर स्टेट के चरलू नामक गाम से मिल जानेवाले वि०सं० १२४१ का शिलालेख हैं।

चरलू के शिलालेख में उल्लिखितों चौहान-चालुक्य संघर्ष

इन चरलू शिलालेखों में से एक शिलालेख वि०सं० १२०० का है, दूसरा सं० १२३४ का है और तीसरा वि० सं० १२४१ का है। ये लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं और इन लेखों में के तीसरे लेख द्वारा यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि चौहान और भीमदेव द्वितीय के बीच युद्ध हुआ था, जिसका प्राङ्गण नागोर था और इस युद्ध में मोहिल (चौहान) सरदार वीर गति को प्राप्त हुए थे[२], जिनकी स्मृति में ये लेख लिखे गये हैं। 'मोहिलवटी' स्थान इस समय पृथ्वीराज चौहान के राज्य के अंतर्गत था और संभव है कि ये वीर चालुक्य भीमदेव द्वितीय के साथ

---

१. देखिये—'पृथ्वीराज रासो संबंधी कुछ विचार' डॉ० दशरथ शर्मा एम० ए० डि० लिट और प्रो० मीनाराम रंगा कृत।

२ देखिये-'राजस्थान भारती' अंक १, भाग १, डॉ० दशरथ शर्मा एम० ए० डी० लिट का लेख।

के युद्ध में मारे गये हों, जिनका वर्णन पृथ्वीराज रासो मेंविस्तार पूर्वक किया गया है, जो रासाकार कवि की कोरी कल्पना नहीं, पर संगीन ऐतिहासिक सत्य है।

[४] रासो की कथित अनैतिहासिक घटनाओं में मुख्य घटना संयोगिता स्वयवर और जयचन्द के साथ पृथ्वीराज का संग्राम है: जिसका आधुनिक इतिहासकार "हम्मीर महाकाव्य" और "रम्भा मंजरी" नामक ग्रन्थों में उल्लेख नहीं होने से ऐतिहासिक सत्य रूप में अस्वीकार करते हैं और उसे केवल रासोकार कवि की कल्पना मानते हैं।

'इतिहासकारों की अयुक्त युक्ति'

इतिहासकारों की इस मान्यता का आधार केवल एक अयुक्त युक्ति है। क्योंकि अमुक ऐतिहासिक घटना के लिये अमुक ग्रन्थ मौन है। अत: यह असत्य है; यह मानना उचित नहीं है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त सम-सामयिक ग्रन्थ उसका उल्लेख करते हैं, जिनका पहले 'पृथ्वीराज विजय' काव्य' के प्रकरण में विवरण कर दिया गया है। अत: इस कथा में अवश्य ऐतिहासिक सत्य है, जिसका वर्णन रासोकार कवि चन्द ने सम्पूर्णतया अपने ग्रन्थ में किया है।

इसके अतिरिक्त अब एक ही बात रही-पृथ्वीराज और जयचन्द के बीच होने वाले युद्ध की। इसका प्रमाण जयचन्द और पृथ्वीराज के सम्बन्ध में सं० १२६० में लिखे गये जैन-साहित्य के प्रबन्ध हैं[१]। अत: इससे सिद्ध होता है कि जयचन्द और पृथ्वीराज में युद्ध हुआ था और युद्ध का कारण संयोगिता का अपहरण था, जो माना जा सकता है। इससे रासा में वर्णित यह घटना भी एक ऐतिहासिक सत्य है। असत्य तो इतिहासकारों की अयुक्त युक्ति है।

रावल सामन्तसिंह और पृथ्वीराज की समकालीनता

[५] रासा की संशयात्मक घटनाओं में अन्तिम घटना रावल समरसी अर्थात् सामन्तसिंह के साथ पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के विवाह की बात है, जिसके प्रतिकार में इतिहासकार बताते हैं कि 'सामन्तसिंह रावल नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ'-इतिहासकारों का यह कथन भी सर्वथा निर्मूल है। यह उनके ऐतिहासिक अज्ञान को प्रकट करता है। क्योंकि

---

१ इस सम्बन्ध में देखिये—'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' मुनि श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित।

इस सामंतसिंह के वंशज आज भी राजपुताना में डूँगरपुर रियासत पर विराजमान हैं। इसके अतिरिक्त रावल सामन्तसिंह के समय के शिलालेख भी मिल गये हैं, जो वि०सं० १२२८ और १२३८ के हैं। सं० १२३१ के लगभग इस राजा ने गुजरात के सोलकी राजा मूलराज के साथ युद्ध कर उसे परास्त किया था। इसके अतिरिक्त कुम्हलगढ़ से मिलने वाले सं० १५८७ के शिलालेख से विदित होता है कि सामन्तसिंह नाम का राजा हुआ था, जिसने मेवाड़ की गद्दी को खो देने पर वर्तमान डूँगरपुर राज्य की स्थापना की थी और मेवाड़ की गद्दी उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने पुनः प्राप्त की थी, जिसके वंशज आज भी उसका उपभोग करते हैं।

और इन सब तथ्यों से सिद्ध होता है कि मेवाड़ की गद्दी पर सामंतसिंह नामक राजा हुआ था।

पृथाबाई के विवाह का ख्यातों में उल्लेख

अब पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के साथ सामंतसिंह के विवाह की बात रही, जिसका प्रकट प्रमाण ख्यातों में है। इन ख्यातों में सामंतसिंह का समरसी लिखा गया है और उनमें समरसी का विवाह संभरी नरेश चौहान के यहाँ होना बताया गया है। यही बात पृथाबाई के विवाह का सब विदित प्रमाण है। क्योंकि सामतसिंह और समरसी नामों में विशेष अन्तर नहीं है। रासो में भी इस सामंतसिंह को समरसी लिखा गया है। यह सामंतसिंह अवश्य ही सोमेश्वर और पृथ्वीराज तृतीय का समकालीन राजा था, यह शिलालेखों से भी सिद्ध होता है और यही बता देता है कि सामंतसिंह का विवाह पृथाबाई के साथ हुआ था,[1] जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन पृथ्वीराज के राजकवि चन्द बरदाई ने पृथ्वीराज रासो में किया है, जो सम्पूर्णतया ऐतिहासिक सत्य है। असत्य तो इतिहासकारों का असंगत विधान है।

उपसंहार

इस प्रकार इन सब घटनाओं की ऐतिहासिक जाँच पड़ताल और समीक्षा से ये सब सत्य सिद्ध होते हैं और यह विदित होता है कि रासो एक सम्पूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसकी रचना कथा-नायक के राजकवि चन्द बरदाई ने की थी और

---

१. देखिये 'राजपुताने का इतिहास' श्री जगदीशसिंह गहलोत कृत।

इसीलिये अन्य ग्रंथों से उसमें विशेष वर्णन और वास्तविकता के दर्शन होते हैं, जिन्हें यह असत्य और अनैतिहासिक लगता है, वह तो केवल रासो के द्वेषी इतिहासकारों की निरी कल्पना है, जो भारत के इतिहास और साहित्य के लिये एक भयंकर अनिष्ट है।

(१८)

कवि चंद और रासो का प्राचीन उल्लेख—

पृथ्वीराज रासो की प्राचीनता को प्रकट करने वाले कई प्रकीर्ण उल्लेख भी मिल जाते हैं, जिनमें मुख्य ये हैं—

(१) मेवाड़ के रावल समरसी (सामन्तसिंह) के पट्टे परवाने, जिनमें महाकवि चंद और उसके पुत्र जल्हन का स्पष्टतया उल्लेख किया गया है। रावल समरसी (सामन्तसिंह) का शासन काल, उसके प्राप्त शिलालेखों के अनुसार सं० १२२८ से १२३६ तक माने गये हैं, जिसके साथ पृथ्वीराज चौहान की बहिन पृथाबाई का विवाह किया गया था तथा उसका गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल द्वारा पराभव हुआ था।[1] इसके पश्चात् उसने बागड़ में डूँगरपुर राज्य की स्थापना की और उसके वंशज आज भी उसका उपभोग करते हैं। मेवाड़ की गद्दी उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने राव कीतू को हरा कर प्राप्त की थी।

'चंद छंद वर्णन की महिमा'

(२) मुग़ल सम्राट् अकबर के समय में रचित 'चंद छंद वर्णन की महिमा' नामक ग्रन्थ में भी रासो का स्पष्ट उल्लेख है। इस पुस्तक का रचनाकाल वि० सं० १६२७ है, जिसमें अकबर ने अपने दरबारी कवि गंगभट्ट से पृथ्वीराज रासो सुना था। इससे सिद्ध होता है कि रासो अकबर के समय में शीघ्र ही लोक-प्रिय बन चुका हो।[2]

राजसमुद्र की सं० १७२२ की प्रशस्ति

(३) उदयपुर के राजसमुद्र की संवत् १७२२ की महाराणा राजसिंह

---

1. the glory that, was Gurjardesa part III by K. M. Munshi.
   'राजपुताने का इतिहास', श्री जगदीशचन्द्र गहलोत कृत।

२. देखिये—हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का विवरण, भाग १, नागरी प्र० सभा द्वारा प्रकाशित।

(राजसिंह के) समय की संस्कृत प्रशस्ति में पृथ्वीराज रासो का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है—

ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः ।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः ॥२४॥
गोरी शाहबुद्दीनेन गज्जनीशेन संगरम् ।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामंतशोभिनः ॥ २५ ॥
दिल्लीश्वरस्य चौहाननाथस्यास्य महायकृत् ।
स द्वादशसहस्रैः स्ववीराणां सहितो रणे ॥ २६ ॥

अर्थात्—समरसिंह ने जो भूपति पृथ्वीराज की बहन पृथा का पति होने (साले बहनोई) के कारण बड़े प्रेम से अपने १२ हजार सैनिकों के साथ चौहान-नाथ पृथ्वीराज दिल्लीश्वर को जो बड़े-बड़े सामन्तों से शोभित था,-गजनी के बादशाह शाहबुद्दीन गोरी के संग्राम में सहायता दी ।

अजमेर के केसरगंज की चाँदा बावड़ी

(४) रासो की ऐतिहासिकता का प्रत्यक्ष प्रमाण रासो है, उसी प्रकार चन्द की प्राचीनता का प्रत्यक्ष प्रमाण अजमेर के केसरगंज की चांदा (चन्द) बावड़ी है, जो अजमेर के ब्रह्मभट्टों के अधिकार से टोंक के नवाब के अधिकार में रही थी । बाद में वह एक मोची को दे दीगई थी, जो अभी वहाँ के म्युनिसिपल के अधिकार में है और उसने उसके चारों ओर की दीवारों का जीर्णोद्धार करवाया है । बावड़ी के आसपास पहले एक बगीचा था; पर अब वहाँ बस्ती बस गई है । इस बावड़ी में नीचे उतरते हुए बाईं ओर एक शिलालेख का स्थान है, जिसका शिलालेख कर्नल टॉड साहब ले गये—यह बात वहाँ के वृद्ध बताया करते हैं । इस बावड़ी के मुख्य द्वार पर दो कमल के पुष्प उत्कीर्ण हैं; जो शिल्पशास्त्र की दृष्टि से उसकी प्राचीनता प्रकट करते हैं और यह महाकवि चंद की असली प्राचीनता है ।[१]

(११)

उपसंहार और निष्कर्षः—

इस प्रकार 'महाकवि चंद और पृथ्वीराज रासो' संबंधी विस्तृत विवरण, इसके लिये समुपलब्ध प्राचीन अनुसंधान, और इसमें भी विशेष कर 'पुरातन

---

१ देखिये—'पृथ्वीराज रासो'—भाग १
नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

प्रबंध संग्रह' में उद्धृत किये गये महाकवि चंद के द्वारा रचित पद्य, जो प्रस्तुत ग्रंथ में संवत् १२६० में लिखे गये हैं, रासो की हस्तलिखित प्रतियों में, फोर्ट बीकानेर लाइब्रेरी की प्रति, तथा रासो की अन्य विद्वानों से की गई तीन वाच्चनाओं में से अन्तिम लघु वाच्चना, 'सुर्जन चरित' तथा 'पृथ्वीराज विजय' आदि संस्कृत काव्य, बारहवीं शताब्दी का भाषा साहित्य, परमर्दिदेव के शिलालेख, कवि चंद के वर्तमान वंशधरों के द्वारा प्रकाशित वंशावली, जन-श्रुति में सतत सजीव बना हुआ आल्हाखंड आदि साधन प्रामाणिक रूप से सिद्ध करते हैं कि महाकवि चंद अंतिम हिंदु सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की राजसभा में उनका सम्मानित सामन्त,सखा,और राजकवि था, जिसने सम्राट् पृथ्वीराज के कीर्ति-कलापों को वर्णन करने के लिये इस समय की लोक-भाषा (देश्य; अपभ्रंश प्राकृत) में एक महाकाव्य की रचना की थी,जो पृथ्वीराज रासो के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई। इससे अब महाकवि चद की समकालीनता और रासो की प्रामाणिकता के लिये शंका का कोई स्थान ही नहीं रहता।

फिर भी अपने रासो के विरोधी विद्वानों के मत को घड़ी भर सत्य रूप में स्वीकार कर लेवें कि रासो संवत् १६०० के आसपास बना हुआ अनैतिहासिक और झूठा ग्रंथ है, तो यहाँ स्वाभाविक इतने प्रश्न उपस्थित होते हैं—

(१) गुजरात के इतिहास में प्रसिद्ध मंत्रीश्वर वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह के अभ्यास के लिये संवत् १२६० में रासो के चंद कृत पद्य कहाँ से आये ?

(२) बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी की रासो की प्रति में दी हुई चौहानों की वंशावली और अन्य सिद्ध और प्रामाणिक मानी जानेवाली वंशावली में भिन्नता के बदले समानता कहाँ से आई ? इस समानता में रहा हुआ मूलभूत तथ्य क्या प्रकट करता है ? रासो की प्राचीनता या अर्वाचीनता ?

(३) चंद के वर्तमान वंशधरों के द्वारा प्रकाशित वंशावली और सम्राट् अकबर के समय में विद्यमान भक्त कवि सूरदासजी की 'साहित्य लहरी' में दी हुई वंशावली तथा भविष्य पुराण में उसका स्वीकृत कथन क्या प्रकट करता है ?

(४) यदि रासो गलत है तो 'प्राचीन प्रबन्ध' और 'सुर्जन चरित' जैसे संस्कृत काव्य में और रासो में वर्णित घटनाएँ कहाँ से आईं ?

(५) 'पृथ्वीराज-विजय' जैसे प्रामाणिक ऐतिहासिक काव्य में पृथ्वीराज के बन्दीराज पृथ्वीभट्ट का विस्तृत उल्लेख है जो वह 'पुनरावृत्तज्ञान में व्यास जैसा विद्वान् था-'यह उल्लेख सम्राट् पृथ्वीराज की राजसभा में कोई राजकवि ही नहीं था, तो कहाँ से आया ?

(६) रासो की प्रति जैसी प्राचीन है, वैसी ही घटनाक्रम में इतिहास की दृष्टि से प्रामाणिक और विश्वसनीय है तथा जैसी अर्वाचोन है, वैसी ही असंगतता से पूर्ण और भ्रष्ट है ? इस भिन्नता का कारण क्या है ? क्षेपक या अन्य कुछ ?

(७) यदि चन्द हुआ ही नहीं तो अजमेर की केसरगंज की पुरानी चन्दा बावड़ी के नाम से वह कैसे प्रसिद्ध हो गई ? इस प्रकार विचार करते अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं ।

जिनका उत्तर रासे को अर्वाचीन और झूठा ग्रन्थ कहनेवाले आधुनिक इतिहासकार ही दे सकते हैं, जो इतिहास में संशोधन के नाम से और निजी स्वार्थ से ऐतिहासिक असत्यों को ही प्रस्तुत किया करते हैं । इसके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रश्नों का संतोषजनक समाधान नहीं हो सकता ।

अन्त में इन सब आधारों और प्रामाणों से इतना तो निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि रासो के कितने ही मानेजाने वाले इतिहासकारों द्वारा आरम्भिक ऊहापोह सर्वथा निर्मूल और निराधार है और रासो सम्बन्धी उनका ज्ञान, निरंतर अज्ञान ही प्रकट करता है; जो भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पटल पर एक कलंक की कालिमा है और वह इतिहास का सत्य नहीं, पर प्रकट असत्य है ।

इसी से हम विद्वानों का इस वास्तविकता पर लक्ष्य आकर्षित करना चाहते हैं कि अवश्य महाकवि चन्द एक ऐतिहासिक पुरुष था, जो दिल्लीश्वर अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की राजसभा का सम्मानित सामन्त, सखा और राजकवि के गौरवपूर्ण पद पर सुशोभित था, और इसी ने पृथ्वीराज के यश को गाने के लिये 'पृथ्वीराज रासो' नामक महाकाव्य की उस समय की लोकभाषा अपभ्रंश प्राकृत (देश्य भाषा) में रचना की थी । उसमें वर्णित घटनाएँ सच्चे घटित इतिहास की सत्य घटनाएँ हैं, पर कालान्तर में अन्य चारण भट्ट आदि राज्याश्रित कवियों ने अपने २ आश्रय दाताओं के महिमागान के क्षेपकों को जोड़ देने

से उसका वर्तमान कलेवर एकदम सर्वथा भ्रष्ट बन गया है, फिर भी उसकी बुनियाद तो असली है।

वास्तव में यह भ्रष्टता इस महाकवि चंद की इतिहास सम्बन्धिनी अपरिचितता नहीं है; परन्तु उसमें पीछे से पद्यों को जोड़ने वाले उनके परवर्ती कवियों का ही अज्ञान है, जिनका स्पष्ट और प्रत्यक्ष-दर्शन रासो के पाठ का मनन करने से होता है। बाकी रासो निःशंक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है और उसमें वर्णित कथानक अपने मध्यकालीन इतिहास का उज्ज्वल सत्य है, जिसे इस समय के किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ की अपेक्षा रासो ने ही भली प्रकार सुरक्षित रख छोड़ा है।

जिस सच्चे इतिहास का उल्लेख इस्लामी इतिहासकारों ने भी नहीं किया प्रामाणिक समझे जानेवाले 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में भी नहीं किया गया, इससे संबंधित सम्पूर्ण वास्तविकता अन्धकार ही में है, उन पर केवल पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ ही एक मात्र प्रकाश डालता है और यही उसकी विशेषता है। अतः रासो अवश्य ही अपने मध्यकालीन इतिहास के लिये अत्यंत ही महत्त्व का ऐतिहासिक ग्रन्थ है और इस सत्य को आज के नवीन इतिहास के अभ्येताओं को भूल नहीं जाना चाहिये।

इतिहास अपने सांस्कृतिक जीवन का एक अत्युत्तम वारसा है। उसमें ऐसे इतिहासकारों के कलुषित मानस के दर्शन करानेवाले अनिष्ट नहीं होना चाहिये और इसीलिये इस वास्तविकता के प्रति भारतीय संघ के शिक्षा विभाग को ध्यान देना आवश्यक है, जिससे स्वतन्त्र भारत की भावी सन्तान अपने सांस्कृतिक वारसे से विमुख नहीं बनें, पर उसकी वास्तविकता को पहिचान कर अपने आदर्शों का निर्माण करें और इसीलिये इतिहास में से ऐसी विकृतियों को दूर करना अत्यंत आवश्यक है।

महाकवि चंद बरदाई

[जीवन और काव्य]

द्वितीय भाग

(१)

कवि का प्राथमिक परिचय

जगत् के किसी भी कवि की कविता जानने से तो अवश्य लाभ होता है, पर उससे भी अधिक लाभ उस कवि को जानने से होता है। कविता कवि की कीर्ति है—इसके सद्गुणों की मधुर स्मृति और सम्पत्ति है, जो सदैव अपने पास बनी रहती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतः जितना कविता का परिचय आवश्यक है; उतना ही सच्चे साहित्य-जिज्ञासु के लिये उसकी कविता का परिचय आवश्यक हैं। क्योंकि इससे किन २ गुणों के द्वारा इसने कीर्ति सम्पादित की है, यह समझा जा सकता है और इसीलिये काव्य की अपेक्षा विशेष रूप से कवि के जीवन को जानना जिज्ञासु जनता के लिये आवश्यक है।

कवि और कविता

जिस देश में अमर काव्य-सम्पत्ति की अगाध सुवास को छोड़ कर जानेवाले सुकवियों ने जन्म लिया है; यह देश का सौभाग्य है। क्योंकि कवि तो चल बसा है; परन्तु उसकी अक्षय कीर्ति रूपी कविता की सुवास आज भी इस देश के लोगों की रसवृत्ति को प्रफुल्लित बनाती रहती है। उनके जीवन में किसी अपूर्व चेतन का सिञ्चन करती है। ऐसे अमर रसनिधियों में से एक है—'पृथ्वीराज रासा'; जिसे आज सैंकडों वर्ष व्यतीत हो गये, फिर भी संसार याद करता है, जिसका नाम सुनते ही महाकवि चंद बरदाई और भारत का अन्तिम हिन्दुसम्राट् पृथ्वीराज चौहान स्मृति में विराजमान हो जाते हैं और इस स्मृति के साथ भारत का भूतकाल

हमारी दृष्टि के समक्ष उसकी अस्मिता के साथ तरंगित हो उठता है, जिसमें अपने मध्यकालीन संस्कार और शौर्य, साहस और औदार्य अनेक रूपों में चमकने लगते हैं। यह है – महाकवि की कविता! इसमें सन्निहित प्रबल शक्ति! और कवि की अमर कीर्ति! यह कीर्ति उसने किन किन गुणों से प्राप्त की? इसे प्राप्त करने में कौनसी-कौनसी मानव-सुलभ ऊर्मियों की आहुति दी गई? यह तो केवल कवि का जीवन ही बता सकता है। इसीलिये कवि का जीवन प्रेरणादायी है।

कवि और कवि का जीवन

कवि का जीवन प्रेरणादायी है। अतः यह मानव-जीवन से भिन्न जीवन नहीं। इसका जीवन भी अपने समान सांसारिक बन्धनों से बँधा हुआ होता है। इसे भी अपने समान सुख-दुःख होते हैं और इन सबके बीच रह कर यह अपनी कल्पना के अनुकूल हृदय के अन्तरस्थल में से समुत्थित ऊर्मियों को रूप देकर किसी अपूर्व जीवन का निर्माण करता है। यही इसकी विशिष्टता है। यह विशिष्टता केवलमात्र कल्पना ही नहीं होती, पर उसमें रही हुई वास्तविकता और अनुभव की ज्ञानशक्ति भी होती है. जो इसे अपनी अपेक्षा इतनी उच्च महानता पर पहुँचा देती है। यही कवि के जीवन की वास्तविक महत्ता है और ऐसी अनेक महत्ताओं को अपने जीवन में सुसाध्य किया हुआ होता है।

कोमल होने पर भी कठोर कवि हृदय

यह साधना भी कितनी विकट और विराट् होती है, जिसमें यह सत्य की आराधना करता है और असत्य का उच्छेदन करता है। यह शान्ति को चाहता है और अशान्ति का उन्मूलन करता है। परमार्थ की आराधना करता है और स्वार्थ की आहुति देता है। कवि किसी अदृश्य चेतन की उपासना करता है और सादृश्य रूप को मूर्त करता है। कवि का गीत अदृष्ट होता है, फिर भी इसमें रही हुई वेदना और व्याकुलता सुषुप्तों को जाग्रत करती है और विराट् की जाग्रति ही कवि की कविता की वास्तविक विजय है।

यदि सच पूछा जाय, तो कवि के सहृदय कोमल जीव के जीवन की मंजिल कठोर होती है। यह पग-पग पर ठोकरें खाता है और ठोकरें खाकर इसका हृदय कठोर बन जाता है, जो मनुष्य की कल्पनाओं को कुचल डालता है– भावनाओं को भचड डालता है, फिर भी कोई प्राकृतिक आर्द्रता इसके हृदय को भीतर से

कोमल बनाये रखती है। कवि अपनी इस यात्रा में एकाकी होता है। केवल सत्य ही इसका साथी होता है, श्रद्धा इसकी सवारी होती है, भावना इसका वेग होता है और कल्याण इसकी मंजिल होती है। इस मंजिल पर पहुँचने के लिये कवि को क्या करना पड़ता है और क्या नहीं करना पड़ता? और इसीलिये कवि का जीवन अपने जीवन से कुछ भिन्न ही होता है। रोमांचक होना चाहिये, रंगीन होना चाहिये, सुन्दर होना चाहिये, सुरूप और करुण भी होना चाहिये। फिर भी यह निर्विवाद है कि कवि का जीवन मनुष्य के जीवन की अपेक्षा कुछ भिन्न होना ही चाहिये और होता है और इसीसे यह कवि है—महाकवि है!

भारतवर्ष की भूमि पर ऐसे अनेक महाकवियों ने जन्म लिया है, जिनमें अनमोल रत्न सा एक महाकवि चन्द है, जिसे आज कौन नहीं जानता? जिसके नाम को भारत जानता है, पाश्चात्य विद्वान् इतिहासकार जानते हैं और इतिहास इस कवि की अप्रतिम कार्य-दक्षता से उज्ज्वल बना है। फिर भी आज ऐसे समुज्ज्वल कमनीय कीर्ति वाले महापुरुष के जीवन की संगीन घटनाओं का अपने साहित्य में अभाव है।

और इस अभाव को पूर्ण करने वाला यदि कोई आधारभूत साधन हो सकता है, तो वह केवल 'पृथ्वीराज रासो' है। रासो में कवि ने अपने कथानायक के चरित के साथ यथावकाशानुकूल बनकर अपने जीवन के कितने हीं प्रसंगों और अनुभवों को पूर्णतया गूँथ ही डाला है. जिसमें न तो आत्मदर्शन का अतिरेक है या अयुक्त आत्म प्रशंसा। केवलमात्र है तो काव्य के कथानक को बहलाने वालीं, स्वयं कवि के द्वारा देखी हुई और अनुभवित सत्य घटनाएँ, जो इस समय के राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के साक्षात् चित्र को हमारी आँखों के समक्ष समुपस्थित कर देती हैं।

(२)
कविचंद का जीवन और काव्य

कुछ लोगों का कहना है कि कविचंद राजस्थानी था, जब अपने यहाँ परम्परा से जनश्रुति चली आरही है कि चन्द पंजाब का निवासी था। इन दोनों में से जनश्रुति की बात को रासो समर्थन करता है और उसमें कवि स्वयं सूचित करता है कि—"चंद उपजै लाहोरह"—अतः अवश्य सिद्ध होता है कि कवि की जन्म भूमि पंजाब की हरी भरी भूमि ही है। इसका जन्म किस संवत् में हुआ, यह निश्चित रूप

से नहीं कहा जा सकता। फिर भी कवि चंद स्वयं रासो में बताता है कि वह स्वयं और उसका आश्रयदाता और मित्र पृथ्वीराज चौहान दोनों एक ही दिन जन्मे थे।[1] अतः कवि के इस कथन से पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् वही महाकवि चन्द का जन्म सम्वत् है। 'रासो' में पृथ्वीराज का जन्म सम्वत्, अनन्द सं० १११५ वैशाख वदि २ दिया हुआ है, जिसमें ९१ वर्ष जोड़ देने से वि० सं० १२०६ आता है। वि० सं० १२०६ इतिहासकारों से मान्य किया हुआ पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् है। इससे सिद्ध होता है कि कवि चन्द ने वि० सं० १२०६ के वैशाख वदि २ के दिन जन्म लिया था। कवि जन्म से पंजाबी था, पर निवासी राजस्थान का था। क्योंकि अजमेर के चौहानों के यहाँ इसकी यजमान-वृत्ति थी।

चन्द कवि का मूल नाम

इस महाकवि का लोक-प्रसिद्ध नाम कवि चन्द बरदाई है, परन्तु मूल नाम पहले बताये गये प्रमाणों के अनुसार पृथ्वीचन्द्र है। कवि के पिता का नाम राव वेणीचन्द्र है और विद्यागुरु का नाम गुरुप्रसाद है; जिसके पास उसने षट् भाषा, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, मन्त्रशास्त्र, पुराण आदि अनेक विद्याओं का अभ्यास किया था और इसीलिये कवि का बनाया हुआ ग्रन्थ 'रासो' विविध रस और ज्ञान का अद्भुत परिचय कराता है।

चौहान वंश का परम्परागत सम्बन्ध

चौहान वंश के साथ चन्द कवि का परम्परागत सम्बन्ध होने से बाल्यावस्था में ही पृथ्वीराज के साथ उसकी घनिष्ठता हो गई थी। युवावस्था को प्राप्त होने पर वह पृथ्वीराज का राजकवि, सम्मानित सामन्त, अभिन्न हृदय सखा और प्रधान मन्त्री बन गया। पृथ्वीराज के समान कवि चन्द भी महावीर एवं समरपटु था। अश्वारोहण में, शब्द वेधी बाण चलाने में तथा असि संचालन में उस समय चन्द कवि एक महान् सिद्धहस्त माना जाता था। इसके अतिरिक्त रणदुन्दुभि बजने पर वीर-रस से पूरित हो, उत्साह प्रेरिका ओजस्विनी कविताओं के द्वारा अपने आश्रयदाता और उसके सैनिकों में बिजली संचारित कर देने की इसमें अपूर्व शक्ति थी और समय आने पर शत्रु के साथ संग्राम में अपनी रण-दक्षता भी कवि चन्द पूर्ण रूप

---

१. इक्क दीह ऊपन्न इक्क दीह समाय क्रम, 'पृथ्वीराज रासो'

से प्रकट करता था। इसके अतिरिक्त वह एक कुशल राजनीतिज्ञ, स्वदेश-प्रेमी, समाज-प्रेमी, धर्मानुरागी और विचारक था। अन्त में वह एक कवि था एवं कैलाश सा दुर्द्धर्ष योद्धा भी था।

कवि चन्द का परिवार

परिवार में कवि चन्द की वाटिका लहलहाती हरी भरी थी। सन्तान में दस पुत्र और एक पुत्री थी। चन्द कवि ने अपने जीवन में दो बार विवाह किये थे। इसकी प्रथम पत्नी का नाम कमला और उपनाम मेवा था;—तो दूसरी पत्नी का नाम गौरी उपनाम राजोरा था। इन दोनों पत्नियों से इनको ग्यारह सन्तान की प्राप्ति हुई थी, जिसका उल्लेख रासो काव्य में कवि ने स्पष्ट रूप से किया है; जो इस प्रकार है[1]—सूरचन्द, सुन्दरचन्द, जल्हचन्द, बल्हचन्द, बलिभद्र, केहरीचन्द, वीरचन्द, अवधूत अर्थात् योगराज, गुणचन्द और पुत्री का नाम राजबाई था। इन सब में कवि की प्रीति उसके चौथे पुत्र जल्ह पर विशेष हो, यह स्पष्ट प्रतीत होता है। क्योंकि यह विशेष योग्य, प्रतिभाशाली और गुणाढ्य था।

कवि चन्द का दाम्पत्य जीवन

आज पाश्चात्य और पौर्वात्य संस्कृति के संक्रांति-काल में कविचंद का दाम्पत्य-जीवन एक आदर्श उदाहरण उपस्थित करता है। सैंकड़ों हजारों वर्ष पूर्व भी भारत में स्त्री शिक्षण कितना विकसित था—अपने यहाँ स्त्रियाँ कितनी सुशिक्षिता और सुसंस्कृता होती थीं, उसकी एक साक्षात् सम्पूर्ति कवि चन्द की पत्नी गौरी है। क्योंकि गौरी ही कवि चन्द के रासो काव्य की श्रोता है और यही कवि के काव्य में सबसे विशेष रस लेने वाली हो,—यह कवि के 'रासो' के प्रारंभिक कथन से विदित होता है। रासो के कथानायक के संबंध में गौरी प्रश्न करती है और उसके

---

१ दहत्ति पुत्र कवि चन्द कै, सूर सुन्दर सुजानं।
जल्ह, बल्ह, बलिभद्र, कविय केहरी बष्षानं॥
वीरचन्द अवधूत, दसम नंदन गुनराजं।
अप्प अप्प क्रम जोग बुद्धि भिन भिन करि काजं॥
जल्हन जिहाज गुन साज कवि चंद छंद सायर तिरन।
अप्पौ सुहत्ति रासौ सरस, चल्यौ अप्प राजन सरन॥

उत्तर में कवि समय समय पर लिखे हुए अपने पद्यों को उसे सुनाता है। कवि की पत्नी काव्य में शंका करती है और कवि शांति पूर्वक उसका समाधान करता जाता है। यह वास्तविकता ही बता देती है कि कवि चद का दाम्पत्य-जीवन कितना रसिक, शान्तिमय और सख्यतापूर्ण होगा ?

आज हमारे यहाँ स्त्री शिक्षा की इति, केवल अक्षर ज्ञान से ही हो जाती है। तब इस मध्य कालीन युग में चन्द कवि की विदुषी पत्नी गौरी रासो जैसे महाकाव्य में रस लेती थी– विद्वान् पति की विद्वत्तापूर्ण काव्य-रचना की आलोचना-समालोचना करने में आनन्द का अनुभव करती थी। पेक्षित या अपेक्षित रूप में पति के विकास और प्रगति को वेग प्रदान करती थी। यही बात प्रकट कर देती है कि इस विदुषी सन्नारी का शिक्षण और बौद्धिक विकास कितना उच्च कक्षा का होगा ! जिसका अनुमान लगाना अभी कठिन है। फिर भी उसकी साधारण झांकी इस इस विदुषी सन्नारी के निम्न लिखित प्रश्न ही करा देते हैं —

एक दिन रासो काव्य सुनने में तल्लीन बनी हुई चंद की पत्नी गौरी सहसा कवि से प्रश्न करती है कि—

संसार में कौन ऐसा दानव, मानव और नरेन्द्र है कि जिसकी कीर्ति, कविता में गाने योग्य है ?

चन्द—संसार में केवल परमात्मा और उसकी कीर्ति ही काव्य में गाने योग्य है। क्योंकि उसकी भक्ति के बिना मुक्ति नहीं।

गौरी—तो फिर देव ! आप हरि के गुण क्यों न गावें, चौहान के गुण गाने से यह भव पार नहीं किया जा सकता।

चंद—यह बात सच है सखि ! पर मैं तो इस प्रकार चौहान के मुझ पर चढ़े हुए ऋण को उतारता हूँ।

गौरी—इस प्रकार आप अपने आश्रयदाता राजा के ऋण को उतारते हैं, तो फिर आपको उत्पन्न करने वाले—जगत् पिता का ऋण क्यों नहीं उतारते ?

चन्द—सखि ! मैं तो केवल कमलासन को देख कर ही व्याकुल बना हुआ हूँ. उसमें केवल भक्ति का ही विलम्ब है। संसार में जो कुछ सर्वव्यापी है– वह केवल कमलासन ! और मैं उसकी उपमा देकर ही पृथ्वीराज के गुण गाता हूँ।

गौरी—भूलते हैं देव ! ब्रह्म को ब्रह्म में ही देखें। जो इसे देखता है, उसे ही यह देखता है। नर की कीर्ति गाने का अपेक्षा आप नारायण की गावें, जिससे इस भव को तो सार्थक बना सकें।

चन्द—यह सत्य है सखि ! पर जिसके अंग अंग में हरि रूप रस व्याप्त है, जिसका रोम रोम हरि को पुकारता है, उसे फिर बाह्य स्मरण की क्या आवश्यकत है ?

गौरी—देव ! यह बात तो सच है, पर इस कलिकाल में यह तत्व की बात कैसे मानी जा सकती है ? और ऐसा ही है, तो फिर इस दासी को इस अंग प्रत्यंग में व्याप्त हरिरस के दर्शन का लाभ करा देवें तो क्या बुरा है ?

इसके प्रत्युत्तर[1] में रस विभोर चन्द कवि ने अपनी रसिका पत्नी के मन की जिज्ञासा तृप्ति के लिये, हरि रस से इसके हृदय को रंजित करने के लिये आत्मा ही परमात्मा है, उसकी पूर्ति के रूप में ईश्वर के दशावतारों का अपूर्व ढंग से दार्शनिक वर्णन कर सुनाता है। इस दशावतार की कथा को सुन कर इस विदुषी सन्नारी की सुसंस्कृत आत्मा को संतोष होता है, इसके मन का समाधान होता है।

आज अपने यहाँ अपने समाज में दशावतार की कथा के मर्म को समझने वाली कितनी गृहिणियां हैं ? क्या इनकी ऐसी मानसिक अवस्था भी है ? और स्त्री जीवन के ऐसे मानसिक विकास के लिये आज कितना ध्यान रक्खा जाता है ?

कवि चन्द के जीवन में गौरी जैसी गृहिणी थी- प्रेयसी थी- प्रियतमा थी, उसी प्रकार मन्त्रिणी भी थी और इसीलिये कवि चंद अपनी अल्प आयु में इतनी अधिक उज्ज्वल और अबाधित कीर्ति प्राप्त कर सका था। चन्द कवि था, तो गौरी उसकी कविता थी और इस कविता ने ही उसे महाकवि बनाया था कवि चन्द के जीवन और व्यक्तित्व में जितना स्थान कविता का है, इससे विशेष और अति उच्चतम स्थान उसकी सुसंस्कृता पत्नी गौरी का है। चन्द के जीवन में यदि गौरी जैसी गृहिणी नहीं हुई होती तो अपने साहित्याकाश में चन्द के समान तेजस्वी महाकवि का प्रकाश नहीं होता, जिसका उदाहरण अपने आधुनिक समाज को ग्रहण करना चाहिये। कि 'नर में से नारायण को उत्पन्न कर सके, वही सच्चा नारी है।'

---

१. देखिये- 'पृथ्वीराज रासो' रूपक ७८१।

कवि चन्द का सच्चा व्यक्तित्व

इतिहास में कवि चन्द का व्यक्तित्व विक्रमशील विविधरंगी और भव्य है, जिसकी वास्तविक झाँकी रासो कराता है। कवि चन्द जन्म ही से कवि था। क्योंकि यह कवि-कुल में ही उत्पन्न हुआ था। जैसा वह वीर था, वैसा ही साहसी भी था। इसके अतिरिक्त षट्-भाषा, व्याकरण, साहित्य, छन्दशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत और पुराण तथा कुरान में पारंगत था। हमारे आधुनिक विद्वान् कुरान के ज्ञान के लिये शंका करते हैं; पर वे यह बात भुला देते हैं कि कवि की जन्म-भूमि लाहोर थी उनके जन्म के १०० वर्ष से इस्लामी शासन के कारण इस्लामी संस्कृति से प्रभावित बन चुकी थी। अतः संभव है कि कवि जैसे विचारक ने जिज्ञासा में उसका अभ्यास किया हो।

इन सब गुणों के कारण जहाँ जाते, वहाँ उस पर सम्मान की वर्षा होती थी। यह सम्राट् पृथ्वीराज की सभा का भूषण था, शूर वीरों का शिरोमणि था और कवियों का मुकुटमणि था। यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं था, पर असाधारण व्यक्तित्व रखने वाला उस युग का एक महान् पुरुष था।

चन्द कवि संग्राम में जैसा समरपटु था, वैसा ही शासन में सर्वोत्तम राजनीतिज्ञ था और साहित्य में वैसा ही कलम का धनी था, जिसका प्रकट पूरक रासो ग्रंथ है, जिसे उसने समय समय पर अपने बनाये हुए रासो के पद्यों को केवल ६० दिन में ही पुस्तक बद्ध कर जालंधारी देवी के मन्दिर में शाहबुद्दीन के साथ होने वाले पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध के समय बना दिया था, इसके पश्चात् तो यह पृथ्वीराज के बन्दी हो जाने के समाचार को सुन कर गजनी जाने को चल पड़ा था।

कवि के पुत्र और रासो की समाप्ति

पहले बता चुके हैं कि कवि के दस पुत्रों में सबसे विशेष योग्य और प्रतिभाशाली उनका चौथा पुत्र जल्ह था, जिसकी योग्यता को देखकर सम्राट् पृथ्वीराज ने अपनी बहिन पृथाबाई को उसके लग्न के समय दहेज में गुरु के रूप में दे दिया था। इसका स्पष्टीकरण रावल सामन्तसिंह (समरसिंह) के खत पत्रों में भी मिल आता है। उस समय राजा लोग अपनी कन्याओं को हीरे और जवाहरात के समान अपने राज्य के उत्तम और गुणी व्यक्तियों को

ही देदिया करते थे; जिसका उल्लेख रासो में कवि ने भी पृथाबाई-विवाह के समय (सर्ग) में किया है। जल्ह पर कवि की प्रीति भी विशेष प्रतीत होती है। क्योंकि कवि उसके लिये स्वयं कहता है—

दहति पुत्र कवि चन्द कै, सुन्दर सुन्दर रूप सुजान ।
इक्क जल्ह गुन बावरौ, गुन समंद ससि भान ॥

अतः निस्सन्देह यह भी पिता के समान प्रतिभा-शाली होना चाहिये, जब कि दूसरे पुत्रों की योग्यता के संबंध में कवि ने कुछ भी विशेष नहीं कहा है, यही प्रकट करता है कि जल्ह उसका सबसे विशेष प्रीतिपात्र और उसकी प्रतिष्ठा को निभानेवाला पुत्र था।

इसके अतिरिक्त अपने यहाँ कादम्बरी के संबंध में यह कहा जाता है कि बाण भट्ट के अवसान के पश्चात् अपूर्ण रही हुई कादम्बरी की कथा को कवि बाण भट्ट के पुत्र ने पूर्ण की थी। उसी प्रकार वास्तव में 'पृथ्वीराज रासो' के लिये भी हुआ है। शहाबुद्दीन गोरी ने सम्राट् पृथ्वीराज पर अंतिम आक्रमण किया; तब कवि चंद काँगरा के राजा हम्मीर की सहायता प्राप्त करने के लिये काँगरा गया हुआ था। वहाँ अंतिम युद्ध के दिनों में कांगरा की जालंधरी देवी के मंदिर में उसे बंदी की अवस्था में रहना पड़ा— और पहले के उल्लेख के अनुसार वहीं उसने रासो ग्रन्थ के पद्यों को पुस्तक का रूपक बना दिया था।

वहाँ से कवि चंद के मुक्त होने पर और सम्राट् पृथ्वीराज के बंदी होने के समाचार सुनते ही उसने रासो ग्रन्थ अपने पुत्र जल्ह को सौंप दिया था, जिसने ग्रन्थ के अपूर्ण रहे हुए कथानक को स्वयं रचकर संपूर्ण कर दिया था। इसकी वास्तविकता के सम्बन्ध में स्वयं कवि चंद इस प्रकार कहता है—

आदि अन्त लगि वृत्त मन, वृन्नि गुनी गुनराज ।
पुस्तक जल्हन हथ्थ दे, चलि गज्जन नृप काज ॥
रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरीय जिम ।
प्रथिराज सुजस कवि चंद कृत, चंद नंद उद्धरीय इम ॥

इससे प्रतीत होता है कि पिता के द्वारा आरंभिक अपूर्ण रचना कार्य को उसके सुयोग्य पुत्र जल्ह ने पूर्ण किया था, एवं उसने रासो काव्य के अंतिम भाग की रचना कर ग्रन्थ के कथानक को संपूर्ण और सुवाच्य बना दिया था। जल्ह की यह

काव्य-रचना कविचन्द की काव्य रचना के साथ दूध में शक्कर के समान घुल-मिल गई है और यह वास्तविकता सिद्ध कर देती है कि जल्ह भी कविचंद के समान एक प्रखर विद्वान् और उस समय की लोक-भाषा का उत्तम कवि था। जल्ह की यह योग्यता और विद्वत्ता देखकर ही पृथ्वीराज चौहान की बहिन पृथाबाई उसे अपने साथ चित्तौड़ दहेज में लेगई, जहाँ जल्हन का स्थान कवि के अतिरिक्त सम्मानित राजगुरु का था[१]।

कविचंद के इस सुपुत्र जल्ह के वंशज आज भी राजस्थान में बसते हैं, जिनके पास उसकी लिखी हुई रासो की एक हस्तलिखित प्रति भी है।

कवि का धार्मिक अवलम्बन—

अपने यहाँ कितने ही लोगों का मानना है कि कवि चन्द शक्ति पंथ का अनुयायी और उपासक था, पर उनकी इस मान्यता में अधिक सत्य नहीं है। क्योंकि रासो ग्रन्थ के आरम्भ में ही वह ब्रह्मा को नमस्कार करता है।

साटक (शार्दूलविक्रीडित)

ओं—आदि देव प्रनम्य नम्य गुरयं, वानीय वंदे पयं।
शिस्ट धारन धारयं वसुमती, लच्छीस चर्नाश्रयं॥
तं गु तिष्ठति ईस दुष्ट दहनं, सुरनाथ सिद्धिश्रयं।
थिर्चर्जंगम जीव चन्द नमयं, सर्वेस वर्दोमयं॥
रूपक १

इसके अतिरिक्त रासो में अनेक हिन्दु-धर्म के प्रसिद्ध देव, देवियों और अवतारों की कवि ने स्तुति की है। यह बात ही प्रकट कर देती है कि कवि चन्द शुद्ध सनातन आर्य-धर्म का अवलम्बी था। किसी एक पंथ में श्रद्धा रखने वाला अन्ध श्रद्धालु नहीं था। उसकी धार्मिक सहिष्णुता सब धर्मों में एक समान थी।

कवि का उपास्य देव और उसका वरदान—

इसके अतिरिक्त इतना तो अवश्य है कि वह भगवान शंकर का उपासक था। इसका प्रमाण कवि चन्द के प्राचीन चित्रों में उसके भव्य भाल पर शोभित

---

१. देखो रावल समरसिंह के पट्टे परवाने।

त्रिपुण्ड्र तिलक और रासो ग्रन्थ में किये गये उल्लेख हैं। कवि चन्द को उनके उपास्य देव शंकर का वरदान मिला था और उनकी सेना में वीरभद्र नामक शंकर का एक गण सदा उपस्थित रहता था। इसी से कवि चन्द वरदायी अर्थात् लोक में बरदाई कहे जाने लगे[1]।

रासो की भाषा से अपरिचित कितने ही लोग बारहठ आदि शब्दों को बरदाई, वरदायी के पर्यायवाची मानते हैं, यह उनका सर्वथा भ्रम है।

बारहठ और बरदाई तो, बारहठ और विरुद के पर्यायवाची शब्द हैं; जब कि वरदायी का अर्थ वर पाया हुआ होता है और उसका वास्तविक सच्चा अर्थ यही है। क्योंकि चन्द को भी देव का वरदान मिला था और इसीलिये वे वरदायी कहे जाने लगे और रासो में भी उनके रचित मूलपद्यों में 'भट्ट चन्द बलहिउ' अर्थात् भट्ट चन्द बरदाई उल्लेख देखा जाता है और यही इस बात के मूल में रहा हुआ असली वास्तविक सत्य है।

देव के इस वरदान के ही कारण लोग कविचन्द को कोई अलौकिक शक्ति—सम्पन्न महासिद्ध पुरुष मानते थे। इस शक्ति का उपयोग उसने अपने कल्याण के लिये ही किया था, जिसका एक प्रसंग इस प्रकार है—

चालुक्य चौहान संघर्ष और कवि चंद—

गुजरात के चालुक्य राजा (सोलंकी) के साथ चौहान पृथ्वीराज का संघर्ष-युद्ध हुआ था। यह शिलालेखों से सिद्ध बात है। अतः इस संबंध में शंका का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता। इस युद्ध में चौहान सेनापति और पृथ्वीराज के अमात्य कैमास पर, चालुक्यों के जैनतांत्रिक अमरसिंह सेवरा ने वशीकरण किया था—उसकी विवेक बुद्धि और विचारों को अपने वश में कर लिया था। इससे इस युद्ध में चौहानों के पराभव होने का पूर्ण संभव था। इसकी सूचना कवि चंद को मिलते ही वह अपनी वरदायी शक्ति और सात्विक मन्त्र-शक्ति के द्वारा सेवरा के मैले कलुषित वशीकरण का विनाश किया—कैमास को उसके

---

१. कढ्ढियय वर कैमसं । देव वरदायं चन्दं भट्टायं ।
असतिन चवै असेसं । सत्यं रूप सत्य अवतारं ॥
रूपक ६१ रासो

वास्तविक भान में लाया—जाग्रत अवस्था में लाया और स्वयं युद्ध संचालन अपने हाथ में लेकर इस युद्ध में चौहानों को विजय दिलवाई।

इस विजय के उपलक्ष्य में कवि चंद ने अनहिलपुर-पाटन, सोमनाथ-पाटन, और द्वारिका की यात्रा की थी और वहाँ ब्राह्मण आदि याचकों को विपुल स्वर्ण और रजत का दान दिया था।

इसके अतिरिक्त चालुक्य चौहान संघर्ष के संबंध में लोगों में एक दूसरी भी दन्तकथा प्रचलित है, जिसमें चन्द कवि ने पाटन जाकर वहाँ के राजा भोला भीम को चौहानों से युद्ध करने या उनको पराधीन करने को कहा था। जब चन्द कवि पाटन गया, तब भोला भीम ने उसके द्वार भट्ट को सामने भेज कर उसका सम्मान किया था। इस समय कवि चंद के पास खड्ग के अतिरिक्त कुदाली निसरणी, जाल और दीपक आदि थे--जिनको देखकर चालुक्य के मंत्री ने कवि चद को पूछा—'कविराज! तुम भट्ट हो, इसलिये खड्ग आदि शस्त्र अपने साथ रखते हो, पर यह कुदाली और जाल आदि को क्यों रखते हो?" इसका उत्तर चन्द ने दिया-"सभरीपति और दिल्लीश्वर तुम्हारे सामने आया है, इससे कदाचित् भयभीत हो तुम आकाश में चढ़ जाओ, तो इस निसरणी के द्वारा तुमको पकड़ कर लायें। यदि पानी में प्रविष्ट हो जाओ, तो जाल को मछलियों के समान खींचलाने, धरती में उतर जाओ तो कुदालो से खोदकर निकालने और किसी गुफा में छिप जाओ तो दीपक से ढूँढकर निकालने को रख छोड़े हैं।"

कवि चंद का यह उत्तर उसकी अपूर्व स्पष्टवादिता एवं अद्भुत निर्भीकता को प्रदर्शित करता है। यही-नहीं इसके अतिरिक्त उसकी तीव्र तार्किक शक्ति और अनुपम कल्पना-शक्ति को प्रकट करता है।

(३)

कवि चन्द के जीवन के उल्लेखनीय प्रसंग

मध्यकालीन युग के एक राजद्वारी महापुरुष के रूप में कविचन्द के जीवन में छोटी-मोटी अनेक घटनाएँ घटित हो गई हैं, जो चन्द कवि के शान, स्वभाव और चारित्र्य की विक्रमशीलता का विविध प्रकार से परिचय कराती हैं। इन सब के ऐतिहासिक मूल्यांकन करने का अवकाश नहीं है, फिर भी इन सब में विशेष महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय प्रसंग इस प्रकार हैं—

(१) कैमास वध और उसकी स्त्री का सती होना।

(२) पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई का रावल समरसिंह (सामन्तसिंह) के साथ विवाह होना।

(३) कन्नौजपति जयचन्द राठोड़ का राजसूय यज्ञ और संयोगिता हरण।

(४) शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध और बाण वेध आदि प्रसंग हैं, जो कवि चन्द के हृदय की कोमलता, स्वभाव की सत्यता और वीरोचित पराक्रमों का परिचय कराते हैं।

मन्त्री कैमास का शत्र और कवि चन्द

(१) कवि चन्द के जीवन में निजी मित्रों में सम्राट पृथ्वीराज के बाद दूसरा स्थान मन्त्री कैमास दाहिमा का था, जो चौहान-साम्राज्य का एक दृढ़ स्तम्भ रूप था। पृथ्वीराज की विद्यमानता या अविद्यमानता में राज्य का शासन-भार यही सम्भालता था, जिसका चातुर्य, मध्यकालीन-युग में बेजोड़ है। यह शूरवीर और चतुर मन्त्री था। चालुक्य का पराभव करने के पीछे वहीं से कुसंग का रंग लगने लगा और स्वयं राजा के हाथ से यह चौहानों का प्रबल-स्तम्भ काट डाला गया, उसके वध का वृत्तान्त इस प्रकार है—

गुजरात के इतिहास से इतना तो प्रसिद्ध है कि बहुत समय से दक्षिण में कर्णाटक के साथ सोलंकियों का संबंध था। इस समय चालुक्यों के राज्य में कर्णाटकी नाम की एक अति सुन्दर गणिका थी। इस गणिका को पृथ्वीराज सोलंकियों पर विजय प्राप्त करने के पीछे अपने साथ ले आया था, जिसने अपना प्रभाव चौहान पृथ्वाराज और उसके राज्य पर अतिशय जमा दिया था। पृथ्वीराज अपने समय का अधिक काल उसके पास ही बिताता था। पृथ्वीराज पर कर्णाटकी का प्राबल्य परिणीता की अपेक्षा भी विशेष बढ़ गया था यहाँ तक कि पृथ्वीराज की अविद्यमानता में भी वह उसकी सत्ता का उपभोग करती थी। चौहान राज्य को यह अनिष्टरूपा उसके सामन्तों के और रानियों के हृदय में खटकती थी, किन्तु सत्ता के आगे उनका सयानापन भी क्या करे ?

इस परिस्थिति में कमास को कर्णाटकी के संपर्क में आना पड़ता था। इस सम्पर्क ने ही इस चतुर पुरुष का वध करवा दिया। कर्णाटकी चंचल स्वभाव की

विषयासक्त गणिका थी। उसकी आँख में कैमास का कसा हुआ पौरुषेय बस गया वह इस पर मोहित हुई और इस संयमी पुरुष को अपने इन्द्रजाल में फँसा लिया। इस बात की सूचना पृथ्वीराज की परमार रानी इच्छिनीकुमारी को और उसने इस अनिष्ट के उच्छेदन के लिये षड्यंत्र रच लिया। शिकार खेल अचानक लौट कर आये हुए पृथ्वीराज के आँखों देखा कर्णाटकी कैमास सम्बन्ध बताया। यह देख कर पृथ्वीराज के हृदय में आग-आग लग गई और अग्नि की ज्वाला में पृथ्वीराज ने कन्धे से कमान उतार कर, एक बाण संधान ऐसे जोर से मारा कि जो कैमास की छाती को आर पार वेध कर निकल गया पृथ्वीराज दूसरा बाण चढ़ाता ही था कि उसको राणी ने हाथ में से धनुष कम छीन लिया और कहने लगी— "नीच पर आपका यह निशाना शोभा नहीं देता— कह कर उसे दूसरे खंड में ले चली गई। कर्णाटकी इस प्रसंग को समझ रातोरात वहाँ से भग गई।

आखिर यह घटना नगर में फैल गई। राज्य के एक प्रबल स्तंभ चल बसने से लोग और स्वयं पृथ्वीराज शोक में मग्न होगये। सामन्तों में पृथ्वीर के इस कृत्य से असंतोष उत्पन्न हुआ। प्रातः काल कैमास की स्त्री कवि चंद पास गई और अपने पति का, उसके मित्र कवि के पास जाकर कैमास के मस्त को दिला देने की प्रार्थना की। कैमास और कवि में स्नेह था। अतः इन्कार नहीं सका। पर पृथ्वीराज के पास जाकर कैमास के मस्तक को माँगने की प्रार्थना कर उसे विचित्र और भयप्रद लगने लगा।

फिर भी कविचंद मित्र स्नेह के कारण इस दिन की राज-सभा में और वहाँ पृथ्वीराज से कैमास के मस्तक की स्वयं माँग कर कहने लगा—"ब ताहि बिसारदे" कैमास की स्त्री एक सती है, उसे सत चढ़ा है। अतः सती उसके स्वामी का शव सौंप दीजिये और उसकी सन्तानों को शरण दीजिये।

कवि चंद मंत्री कैमास के शव को कंधे पर रख कर स्मशान में गया बड़े धूमधाम से यमुना नदी के तट पर चन्दन की चिता बना कर कैमास के को उस सती स्त्री की गोद में रख दिया। सती ने बरदायी चंद कवि को आशी दिया और 'जय अम्बे' की ध्वनि के साथ अपने दाहिने अंगूठे से अग्नि जला जयघोष, ढोल और सहणाई के स्वरों के बीच अग्निदेव के आधीन होगई जल गई।

इस प्रकार कवि चंद ने अपने राजद्रोही मित्र का यथायोग्य सम्मान किया और उसके शव की अंतिम संस्कार—विधि सम्पन्न करवाई।

चौहान परिवार के साथ चन्द कवि का व्यक्तिगत सम्बन्ध—

(२) सांभर के चौहान परिवार-राजकुटुम्ब के साथ चन्द कवि का कैसा सम्बन्ध था, उसको बताने वाला प्रसंग रावल सामन्तसिंह और पृथाबाई का विवाह है। पृथ्वीराज की बहिन पृथावाई के लिये योग्य वर खोज कर सम्बन्ध करवाने का काम कवि चन्द को सौंपा गया था। कवि चन्द ने इस समय में विख्यात क्षत्रियवश बापा रावल के वंशज रावल सामन्तसिंह को पसन्द कर उसके साथ पृथा की सगाई की थी। यह बात ही कवि चन्द और चौहान के साथ अन्तरंग सम्बन्ध के महत्त्व और विशिष्टता को बता देती है कि कवि चन्द चौहान परिवार का एक आश्रित राजकवि ही नहीं, पर सभ्य भी था।

इस विवाह में ही पृथावाई ने कवि चन्द के सुयाग्य पुत्र जल्ह को अपने साथ दहेज में ले जाने की इच्छा प्रकट की थी और अपने यहाँ अर्थात् सामन्तसिंह के यहाँ जल्ह का स्थान दिल्ली में पृथ्वीराज के वहाँ जो कवि चन्द का था, वही था। इस रावल सामन्तसिंह ने गुजरात के चालुक्यों के संग्राम में शिकस्त प्राप्त करने के पश्चात् चित्तौड़ का अधिकार खो दिया था, जिसे उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने पुनः प्राप्त किया था, जब कि रावल सामन्तसिंह ने पृथ्वीराज का सहायता से बागड़ में अर्थात् विद्यमान डूँगरपुर राज्य की स्थापना की थी; जहाँ अभी भी उसके वंशज राज्य करते हैं। M

कहा जाता है कि गुजरात को यात्राओं से पीछे फिरते हुए कवि चन्द चित्तौड़ में रावल सामंतसिंह के वहाँ महमान बने थे। उस समय पृथाबाई ने सगे भाई के

Mसं.टि.—पृथ्वीराज की सहायता से सामन्तसिंह ने डूँगरपुर राज्य की स्थापना की थी—इसका इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता। दूसरी बात यदि यह भी मानलें तो पृथावाई के दहेज में दिये जाने वाले आश्रितों के अर्थात् ऋषिकेश आदि के वंशज डूँगरपुर में अवश्य होते और उनकी जागीर भी डूँगरपुर में ही होती न कि मेवाड़ में। आज भी ऋषिकेश के वंशज पीपली गाँव (मेवाड़) में विद्यमान हैं। यदि वस्तुतः सामन्तसिंह ने पृथ्वीराज चौहान की सहायता से डूँगरपुर राज्य की स्थापना की होती तो, रासो में उल्लेख होता, जो नहीं है, इससे श्री गोवर्धन शर्मा की यह मान्यता स्वीकार नहीं हो सकती।

समान कवि चंद का स्वागत किया था। पृथाबाई स्वयं ही भोजन बना कर परोसती थी। उनका सामाजिक सम्मान भी पृथाबाई पृथ्वीराज के समान ही रखती थी। ये सब बातें कवि चन्द के संयम, शील और चारित्र्य-बल के अद्भुत प्रमाण हैं। कवि चंद की यह अपूर्व नैतिक सिद्धि ही इसके उन्नत कल्याण गामी मार्ग का सबसे सुदृढ़ सोपान था। आज कितने कवियों के पास नैतिक मनोबल और संयम की सिद्धि है ?

रणक्षेत्र का केसरीसिंह और रसमन्दिर का रस योगी

कवि चंद जिस प्रकार रणक्षेत्र में उछल कर कूद लगाने वाला केसरीसिंह था, उसी प्रकार रसमन्दिर का रसेन्द्र–रसयोगी भी था। यह संग्राम में घूमता उसी प्रकार सौन्दर्यशालिनी राज-रमणियों के रण-वास में भी जाता। उनका सान्निध्य प्राप्त करता। फिर भी यह सान्निध्य कवि के चित्त में शिथिलता को उत्पन्न नहीं कर सकता था। कवि जाज्वल्यमान रूप-यौवन के अगाढ़ संपर्क में रहता, पर इसके शील पर रूप–यौवन का विष नहीं चढ़ सकता था। इसके विपरीत यह नवयौवना राजपूत रमणियों को ज्वलन्त जौहर पर चढ़ाता। अन्त में कहा जाय तो मदमत्त यौवन का आकर्षक विष कवि के वज्र कच्छ-ब्रह्मचर्य से सैकड़ों कोस दूर रहता था, यही कवि के विक्रमशील व्यक्तित्व की सच्ची विजय का, सच्चे कवि की— रसयोगी की रस-समाधि थी।

कवि अर्थात् प्रजा की प्रेरणा ! यह प्रेरणा अर्थात् कविता ! जैसे कनक काटा नहीं जा सकता, वैसे सच्ची कविता भी काटी नहीं जासकती—यह सनातन, शाश्वत और चिरञ्जीव है।

आज के कवि और गत काल के कवियों में आकाश पाताल का अंतर है। गत काल का कवि रस योगी था, जब कि आज का कवि रसभोगी है। योगी की दृष्टि–कविता ऊर्ध्वगामिनी होती है, जब कि भोगी की अधोगामिनी और इस भिन्नता को देखते हुए विदित होता है कि आज की प्रजा में शिथिलता हो—सयम का अभाव हो, तो इसमें आश्चर्य ?

इससे प्रतीत होता है कि गत–काल का कवि प्रजा के जीवन–निर्माण का महान् विधायक होता था और इसीलिये इसका स्थान लोकहृदय में उन्नत और पूजनीय होता था, जबकि आज का कवि और उसकी कविता को कलुषितता का जंग लगा हुआ होता है। फिर लोगों में शील और संयम कहां से हो ?

सेवक और स्वामी–

इसके पश्चात् कवि चद के जीवन की विशेष उल्लेखनीय और ऐतिहासिक महत्त्व का घटना संयोगिता-हरण और जयचंद का राजसूय यज्ञ है। यह बात इतिहास प्रसिद्ध है कि इस समय की दो प्रबल शक्ति–चौहान और राठौड़ राजवंशों में वैमनस्य चल रहा था। पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द राठौड़ दोनों ही राजा, विभूति के इच्छुक थे। पहले बता चुके हैं, उसके अनुसार कैमास का वध होज ने के पश्चात् गणिका कर्णाटका-दिल्ली से भगकर कन्नौज जयचंद के आश्रय में चली गई थी और जयचंद ने उसे अपनी एक मात्र अति रूपवती सुशील कन्या संयोगिता को संगीत-नृत्य का शिक्षा दिलाने के लिये रोक ली थी। इस गणिका कर्णाटका ने यहाँ भी अपने भाव को व्यक्त किया। उसने अप्रत्यक्षरूप में पृथ्वीराज के रूप, गुण और पराक्रम की प्रशंसा कर संयोगिता के हृदय में पृथ्वीराज से ही विवाह करने का मनोरथ जगाया। एवं पृथ्वीराज ने परोक्षरूप में सयोगिता के हृदय-सिंहासन पर अचल स्थान प्राप्त कर लिया।

संयोगिता पृथ्वीराज के अनुराग में विह्वल बन गई और उसके हृदय में चौहान से ही विवाह करने का अभिलाषा है—यह बात एक द्राविडी ब्राह्मण ने कर्नाटकी को सूचना से दिल्ली आकर एकान्त में पृथ्वीराज से कही और उसके हृदय में भी जयचद जैसे अपने प्रतिस्पर्धी की पुत्री के साथ विवाह कर उसके गर्व को खण्ड-खण्ड कर देने का अभिलाषा उत्पन्न हुई। जयचंद ने राजसूय यज्ञ के अवसर पर ही संयोगिता के स्वयंवर का योजना की थी और उसमें प्रत्येक देश के राजा को आमन्त्रित किया था, पर पृथ्वीराज ने तो उसका स्पष्ट रूप से अनादर कर जयचंद की विजयी सेना को मार भगाई था। अतः वह स्वयंवर में जा सकने की स्थिति में नहीं था।

इन सब संयोगों में पृथ्वीराज ने कवि चन्द को, जयचन्द की कन्या का किसी भी प्रकार हरण करने की अपनी आंतरिक इच्छा और आग्रह व्यक्त किया। कवि चन्द ने पृथ्वीराज को अनुमति देते हुए सूचित किया कि ऐसे कार्य के लिये मेरे अकेले की अनुमति से काम नहीं चल सकता। अतः आप अपने सब सामन्तों और सुभटों को अनुमति लेलेवें और सामन्तों के अभिप्राय के लिये कविचन्द ने उनकी सभा बुलाई।

इस सभा में सामन्तों के सन्मुख कविचन्द ने पृथ्वीराज चौहान की इच्छा प्रकट की और उनकी अनुमति चाही। सामन्तों ने निश्चय किया कि जयचंद जैसे प्रबल राजा की कन्या का अपहरण सरलता से नहीं होगा। इसके लिये कुटिलता का भी आश्रय लेना पड़ेगा। अतः राजा ने पूछा कि हमें किस प्रकार कन्नौज जाना चाहिये ? तब सामंतों ने बताया कि स्वयंवर के अवसर पर अनेक द्वार-भट्ट कन्नौज जाते हैं, अतः आपने कविचंद को भी बड़े सैनिक रसाले के साथ कन्नौज जाना चाहिये और रसाले के लोगों में हम सबको और चौहान को साथ जाना चाहिये। यह योजना सबको अच्छी लगी और चन्द कवि को कन्नौज जाने के लिये तय्यार किया।

कन्नौज जाते समय कवि चंद के साथ रसाले में गुप्तरीति से ११००० हजार चौहान राजपूत थे, स्वयं पृथ्वीराज चौहान कविचन्द का जलधारी (पानेरी) बना हुआ था।

कवि चन्द के कन्नौज जाते ही जयचन्द ने अपने द्वार भट्ट को सामने भेज कर उसका सम्मान किया और कवि को मिलने के लिये अपने एक खास तम्बू में बुलाया। चन्द ने वहाँ जाकर उसे आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात् बातें करते-करते पृथ्वीराज की बात निकल पड़ी और वहाँ चन्द ने पृथ्वीराज की प्रशंसा की। इससे जयचन्द को कवि चन्द के लिये भ्रम हुआ। "इसो राज प्रथीराज" शब्दों को सुनकर उसे पृथ्वीराज के वहीं होने का सन्देह हुआ और इतने में पृथ्वीराज की पासवान रही हुई गणिका कर्णाटकी वहाँ आ गई। उसने पानेरी के वेश में पृथ्वीराज को देखते ही मुख पर घूँघट निकाल लिया। चन्द कवि ने सहसा उसकी ओर देखा वह चतुर स्त्री एकदम प्रसंग को ताड़ गई, उसने मस्तक से घूँघट हटा दिया। इससे जयचन्द की शंका और भी बढ़ गई और उसने कर्णाटकी को पूछा कि "तू सिर पर कभी ओढ़ती नहीं और आज कैसे ओढ़ लिया, और फिर क्यों हटा दिया इसमें अवश्य कुछ भेद है ?" विचित्र छटा से अपने बुद्धि-चातुर्य को प्रकट करती हुई कर्णाटकी ने उत्तर दिया कि 'अन्नदाता ! क्षमा करें ! मैं संसार में एक ही पुरुष का आदर करती हूँ और वह पृथ्वीराज का ! और आपके पास पृथ्वीराज का राज-कवि बैठा है और वह उसके एक अंग के समान है। अतः मैंने इसके सम्मान में आधी लाज की है।" कर्णाटकी के इस उत्तर को सुनकर कवि चन्द प्रसन्न हुआ; पर जयचन्द का मन घबरा गया और

उसके हृदय की शंका प्रबल बन गई, तथा उसने चन्द कवि के आस पास-अपने हिरते-फिरते जासूस छोड़ दिये।

अन्त में जयचंद की शंका ठीक निकली। चंद कवि और कर्णाटकी की चतुराई ने इस गंभीर प्रसंग को जैसे-तैसे बिताया। पर अन्त में यह निश्चित् रहा— कि चंद का जलधारी पृथ्वीराज चौहान ही था। जो चंद के पहरेदारों के बीच रह कर भी कर्णाटकी के प्रयत्न से पृथ्वीराज संयोगिता से मिला और उसके साथ स्नेह संपर्क बढ़ाया। यही-नहीं, उसकी वरण करने की अभिलाषा को जान लिया। संयोगिता तो उससे, लग्न करना चाहती है—यह बात भी पृथ्वीराज ने कवि चंद को कही। अतः इस वर-कन्या के अभिमत विवाह को सफल बनाने के लिये चन्द कवि ने भी इस प्रसंग के योग्य ऐसी ही योजना की। इस योजना के अनुसार छिपे हुए चौहान सैनिक कन्नौज के किले में और बाहर जम गये। पृथ्वीराज कविचंद के संकेत मिलते ही स्वयंवर में से संयोगिता को अपने अश्व पर उठाकर दिल्ली की ओर रवाना होगया।

इस प्रकार संयोगिता को चौहान द्वारा उड़ा लेजाने का – उसके हरण करने का समाचार भी कवि ने राठौड़ राजा जयचंद को दे दिया, जिसे सुनकर जयचंद सहसा प्रकुपित हो उठा और पृथ्वीराज को पकड़ने के लिये अपनी समस्त सेना और सरदारों के साथ उसके पीछे पड़ा। चंद कवि और उसके साथ के चौहान सैनिकों ने पृथ्वीराज के सुरक्षित रीति से दिल्ली पहुँच जाने तक, राठोड़ सेना को मार्ग में आगे बढ़ने से रोक रक्खा।

यह है—चंद कवि की एक राजनीतिज्ञ के रूप में कुशलता और रण दक्षता, जिसके कारण इसने अपने स्वामी के सम्मान और गर्व का अपूर्व प्रकार से संरक्षण किया था—जयचद जैसे प्रबल और पराक्रमी राजा को उन के घर में ही लोहेके चने चबवा कर परास्त किया था। यह प्रसंग पृथ्वीराज चौहान की शासन-सत्ता में सब से श्रेष्ठ और अंतिम विजय थी। इस प्रसंग पर यदि चन्द कवि ने अपनी कुशलता और प्रसंग को समझ लेने की क्षमता प्रदर्शित नहीं की होती तो प्राप्त की हुई विजय पराजय में परिवर्तित हो जाती। इस अवसर पर स्वामी सेवक बना था, पर अन्त में सेवक ने स्वामी और उसके सन्मान की रक्षा कर अपना कौशल भी बता दिया। यह है—कवि चंद के प्रति चौहान की श्रद्धा और विश्वास की सार्थकता!

अन्तिम युद्ध के समय चौहान साम्राज्य की परिस्थिति—

(४) कवि चन्द के जीवन में उसको कठोर परीक्षा का और भारत के मध्यकालीन इतिहास का विशेष उल्लेखनीय प्रसंग, शहाबुद्दीन गोरी के साथका अंतिम संग्राम है। इसे अन्तिम संग्राम—इसलिये कहा है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के अनेक युद्ध हुए थे, जिनमें पृथ्वीराज ने विजय ही प्राप्त की थी; जिनकी स्वीकृति उस समय के शत्रु-प्रचारक, इस्लामी इतिहासकार भी दे चुके हैं। इस संग्राम ने भारत की उज्ज्वल अस्मिता और स्वतन्त्रता को पराधीनता और अन्धकार में परिवर्तित कर दिया था। इसके मुख्य कारणों में एक तो पृथ्वीराज का विजयोन्माद, विषयासक्ति और उस समय के राजपूत राजाओं का आपसी ईर्ष्या-द्वेष, अदूरदर्शिता एवं मिथ्याभिमान था।

इसके परिणाम स्वरूप चौहान पृथ्वीराज स्वयं अपनी सुदृढ़ बनी हुई साम्राज्य की नांव को ही खोदने का प्रयत्न करने लगा—सैनिकों और सामन्तों की एकता को अघटित कार्यों के द्वारा छिन्न भिन्न करने लगा। एक ओर उसका शहाबुद्दीन गोरी जैसा प्रबल शत्रु आँख जमा कर बैठा था, तब उसने संयोगिता का अपहरण कर जयचन्द जैसे प्रबल शत्रु की द्वेषाग्नि को प्रज्वलित कर दिया। यही नहीं इसने अपनी पश्चिमोत्तर सीमा के संरक्षक हाहुली हम्मीरराय को भी अपमानित कर प्रकुपित बना दिया।

पृथ्वीराज का गृह-कलह—

इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज ने अपने यहां गृह-कलह का प्रारम्भ तो कभी से कर दिया था। उसने अपने मंत्री कैमास का वध कर सामतों एवं सैनिकों को रुष्ट कर दिया और घोर असंतोष का भाजन पहले से ही बन गया। ऐसी स्थिति में उसने अपने साम्राज्य के सेनापति और सामन्त चामुंडराय को एक क्षुद्र अपराध के लिये बेड़ियाँ डालकर कारावास में डाल दिया। पृथ्वीराज के इन दुष्कृत्यों से उसकी सामंत-मंडली और संपूर्ण साम्राज्य सहसा कम्पित हो उठा। उसके साम्राज्य में धीरे-धीरे यह अग्नि एकदम भड़क उठी, जिसका भान उसके विषयासक्त और मदोन्मत्त स्वभाव को नहीं हुआ और वह स्वयं साम्राज्य की देख-रेख और प्रत्येक विषय को एक ओर रख, नवविवाहिता रानी संयोगिता के सतत सहचार विषय-वासना और भोग-विलास में लीन रहने लगा। अन्त में पृथ्वीराज की यह

विलास-लीला इतनी पराकाष्ठा को पहुँच गई कि उसने अपने अभिन्न मित्र कवि चन्द और गुरुप्रसाद से मिलना भी छोड़ दिया। सच कहा जाय तो पृथ्वीराज संयोगिता के अंतःपुर में उसके एक पालित तोते के समान बन कर रहने लगा था, और प्रजा के दुःख-दर्द की पुकार को सुनने वाला राजधानी में कोई नहीं रहा।

इस अंधेर परिस्थिति को दूर करने के लिये नगर के कितने ही धनी-मानी, सेठ-साहूकार और प्रजाजनों ने एक साथ मिल कर कवि चंद और हाहूलीराय हम्मीर को अपना प्रतिनिधि बनाया और उन्होंने चौहान को नगर की सच्ची परिस्थिति से अवगत कराने के लिये संयोगिता के विलासभवन को भेजा।

प्रजा के प्रतिनिधियों का अपमान—

प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में कवि चन्द आर हाहूलीराय हम्मीर दोनों ही संयोगिता-भवन को गये, पर उनको संयोगिता की आज्ञा से उसकी सेविकाओं ने अन्दर नहीं जाने दिया। अतः कवि ने एक कागज पर निम्नलिखित पद-पंक्ति लिखकर परिचारिका द्वारा अन्दर भेजी। 'तुं गोरी पर रत्तियं, अरु ता घर गोरी तक्कीयं'—

इन शब्दों को पढ़कर संयोगिता ने पत्र को फाड़कर पृथ्वीराज को बतलाया तथा चंद कवि और हाहूलीराय को अपमानजनक शब्द कहकर वहां से निकलवा दिया। इससे कवि चंद और हाहूलीराय सहसा क्षुभित बन गये। कवि चन्द अपने अपमान को विषघूंट के समान पीगया, पर हाहूलीराय तो क्रोध से भड़क उठा और अपने अपमान का बदला लेने के लिये गज़नी की ओर चल पड़ा।

हाहूलीराय को कवि चन्द और गुरुराम ने ऐसा करने से रोका और समझाया, पर वह नहीं मानकर सीधा अपने परिवार एवं परिजनों के साथ रवाना हो गया।

कवि को आत्म-विलोपन के लिये तैयारी और गौरी का आत्मबोध—

कवि चन्द ने अपने मित्र और राजा के दुष्कृत्यों से क्षुभित एवं खिन्न हो अपने आत्मविलोपन का निश्चय कर ही लिया। क्योंकि अपमान से खिन्न बना हुआ उसका हृदय कहीं मित्र के सामने विद्रोही नहीं बन जाय। अतः उसने इस उद्विग्नता में ही अपने आप पर विद्रोह करने का निश्चय किया। घर पर आकर

वह अपने आराध्य देव भगवान् शंकर को अपना मस्तक अर्पण कर कमलपूजा की तैयारी करने लगा [1]

कवि को कमलपूजा का अनुष्ठान करते देख कर उसकी पत्नी गौरी भी क्षण भर के लिये दिग्मूढ सी बन गई; पर अन्त में स्वस्थता प्राप्त कर वह पति को शास्त्र के प्रमाण बतला कर आत्महत्या करने से रोक कर कहने लगी—"देव! तुम्हारे आत्म-विलोपन से चाहान की विपदाओं के मेघ छिन्न-भिन्न नहीं किये जा सकते। विलास में शून्य बनी हुई उसकी विवेक बुद्धि पुनः आजाय—इसके लिये यदि आपको अपने हत् बुद्धि बने हुए उन्मत्त स्वामी और मित्र को जगाना हो तो आत्म-विलोपन की अपेक्षा कुछ वास्तविक मार्ग ढूँढ़ना चाहिये। निष्क्रिय बने रहने की अपेक्षा कुछ सक्रिय प्रवृत्ति को स्वीकार करें, जिससे मस्तक पर मँडराया हुआ संकट दूर हो।" इस उपदेश से कवि ने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया, पर इससे उसके हृदय का भार दूर नहीं हुआ। वह सतत चिन्ताग्रस्त अवस्था में रहने लगा।

कवि का चित्तौड़ गमन

इतनेमें इस बात की सूचना पुरोहित गुरुराम को मिली। गुरुराम और गौरी ने कवि को हतोत्साही नहीं होने के लिये समझाया और पृथ्वीराज की अवदशा से रावल सामन्तसिंह (समरसिंह) को परिचित करने और उन्हें बुला लाने के लिये उनके पास भेजा।

ऐसी हीन परिस्थिति की प्रतीक्षा ही में, पृथ्वीराज का सबसे प्रबल शत्रु शहाबुद्दीन गोरी आक्रमण करने की तैयारी में भारत की सीमा पर अपने असंख्य सैनिकदल के साथ पड़ाव डाल कर बैठा था। वहीं पर अपने अपमान की अग्नि

---

१. कवि के आराध्य देव भगवान् शंकर थे और उसके ही ये बरदायी थे, जिसका उल्लेख 'रासो' में इस प्रकार है—

बोली चन्द संकर बरदाय।
अहे रहै ज्यौं मनसा धाय॥

छंद १६८ रासो।

में प्रज्वलित और प्रकुपित बने हुए हाहूलीराय ने पृथ्वीराज की अवदशा के समाचार कह सुनाये और उसे आक्रमण करने को प्रोत्साहित किया।

राजपूतों की इस निर्बलता का लाभ उठाने के लिये आतुर शहाबुद्दीन ने अपने सबल सैन्य के साथ भारत को सीमा को पार किया। इस समय सीमा-रक्षक हाहूलीराय ने शहाबुद्दीन का सामना करने के बदले उसका ही साथ दिया।

सामन्तसिंह का आगमन—

शहाबुद्दीन के आक्रमण के समाचार सुनते ही रावल सामन्तसिंह दिल्ली आये। दिल्ली के कोट के बाहर उन्होंने तीन दिन तक पड़ाव डाल कर पृथ्वीराज की प्रतीक्षा की, पर पृथ्वीराज मिलने को नहीं आया अतः चन्द कवि और गुरुराम पुरोहित की अनुमति से सामन्तसिंह ने एक पत्र लिख कर और तीर पर चढ़ा कर संयोगिता के महल में तीर फैंक दिया। तीर के आते ही कामोन्मत्त पृथ्वीराज चमका और पत्र उठा कर पढ़ने लगा। पत्र में पृथ्वीराज को सामंतसिंह ने अनेक उपालंभ दिये थे। अतः पृथ्वीराज अत्यंत ही लज्जित बन गया और युद्ध के वस्त्रों से सुसज्जित हो महल के बाहर आकर सामन्तसिंह से मिला। सामन्तसिंह ने भला बुरा कहा और पृथ्वीराज विनय के साथ सुनता रहा। अन्त में दोनों शत्रुओं के द्वारा किये गये आक्रमण का सामना करने की तैयारी में लग गये।

चामुण्डराय की बन्दीगृह से मुक्ति—

पृथ्वीराज ने सामन्तसिंह के रणाधिपत्य में चौहान सैन्य की तैयारी का प्रारम्भ किया और सामन्तसिंह के कहने से चामुण्डराय को बन्धन से मुक्त करने के लिये कवि चन्द को भेजा। कवि चन्द और गुरुराम चामुण्डराय के पास गये। चामुण्डराय ने चन्द को सूचित किया कि—"कवि ! अब मेरे बन्धन विमोचन से क्या लाभ ? ऐसे उद्धत स्वामी के लिये मैंने लोहशस्त्र पकड़ने के शपथ खाये हैं।" अतः कवि ने चामुण्डराय को समझाया और कहा कि—"स्वामी अपने बन्ध का विमोचन करता है, तो तुम्हें अपने शपथ का विमोचन करना चाहिये; क्योंकि अभी तक अपने को उसके ऋण का विमोचन करना शेष रह गया है।"

"तो कवि जाओ. मैं इस ऋण विमोचन करने को संग्राम में एक ही बार शस्त्र चलाऊँगा, दूसरी बार नहीं" कहते हुए चामुण्डराय पृथ्वीराज के पास जाने को तैयार हुआ। पृथ्वीराज अपनी की हुई भूल के लिये पश्चात्ताप करने लगा।

दूसरी ओर शहाबुद्दीन के चिनाब नदी को पार करने के समाचार भी पुण्डीर ले आया। अतः चौहान सैन्य ने शत्रु का सामना करने के लिये पानीपत के मैदान में पड़ाव डाला और पृथ्वीराज ने अपमान से रुष्ट बने हुए हाहूलीराय-हम्मीर को मनाने के लिये कवि को काँगरा गढ़ भेज दिया।

काँगरा में कवि का कैद होना—

पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध हाहूलीराय का प्रकट विद्रोह होने पर भी कवि चन्द उसे समझाने के लिये उसके पास काँगरा गया। हम्मीर को अनेक प्रकार से समझाया, पर अपमान की अग्नि से प्रज्वलित हम्मीर तनिक भी नहीं माना और उलटी पृथ्वीराज का शक्ति को कम करने के लिये कवि चन्द को जालंधरी माता के मन्दिर में ले जाकर कैद कर लिया, जिससे संग्राम के समय कवि चन्द पृथ्वीराज की सहायता नहीं कर सका और हम्मीर स्वयं पृथ्वीराज के सामने लड़ने को शहाबुद्दीन की सेना में जा मिला। इस प्रकार अकस्मात् द्रोह से जालंधरी देवी के मन्दिर में बन्दी बने हुए कवि चन्द को क्या करना चाहिये? कुछ भी सूझ नहीं पड़ा और बड़ी भारी दुविधा और दुःख में निरुपाय बन कर कवि इस कारावास में 'रासो' के कण्ठस्थ पद्यों को पुस्तक रूप बनाने में प्रवृत्त हो गया।

जब पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन की सेना को सहसा अपने समीप आती हुई देखी, तब अपने समस्त सैन्य के साथ काँगरा नदी तक सामने गया और वहाँ आमने-सामने दोनों सेनाओं का संघर्ष होने लगा। दोनों के बीच तुमुल युद्ध हुआ। इस युद्ध में पृथ्वीराज के पास उसके ६४ सामन्तों में से केवल मात्र तीन ही शेष रह गये थे। । एक चामुण्डराय, चन्द कवि और सामन्तसिंह। इनमें से चन्द कवि तो काँगरा गढ़ में पहले से ही कैदी बन गया था। चामुण्डराय ने लोह-शस्त्र पकड़ने के शपथ लिये थे और केवल मात्र सामन्तसिंह अकेला ही शत्रु सैन्य का अद्भुत वीरता से सामना कर रहा था। अतः प्रथम दिन ही पृथ्वीराज को आधी सेना के सैनिक मार डाले गये।

दूसरे दिन युद्ध में शत्रु के लिये महाकाल स्वरूप सामंतसिंह भी हरोल के भंग हो जाने से मारा गया और सैन्य में निराशा तथा शोक के बादल छागये। तीसरे दिन चामुंडराय ने एक बार लोहशस्त्र के उपयोग करने का निश्चय किया। उसने अपने एक ही अचूक शर-सन्धान के द्वारा शहाबुद्दीन के प्राणों को लेलेने की

तयारी की, पर अदूरदर्शी पृथ्वीराज ने उसे ऐसा करने से रोका और इस बाण को शत्रु पक्ष की ओर से लड़ने वाले देशद्रोही हाहुलाराय को छोड़ने को कहा। ऐसा करने से पहले चामुण्डराय ने पृथ्वीराज को समझाया कि "महाराज! रहने दीजिये, हम्मीर से पहले अपने शत्रु शहाबुद्दीन को मारने दें।" फिर भी दुराग्रही पृथ्वीराज माना नहीं। 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' के अनुसार चामुण्डराय के एक ही तीर से हम्मीर रण में धाराशायी हुआ और दूसरे ही क्षण शहाबुद्दीन के तीर से चामुण्डराय के प्राण निकल गये।

पृथ्वीराज का पराभव

इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के साथ कवि चन्द का एक पराक्रमी पुत्र भी जो उसके साथ रह कर शत्रु का संहार और पृथ्वीराज को रणोत्साहित करता रहता था। इतने में शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज के सामने आकर लड़ने लगा। शत्रु को सामने देख कर उसका संहार करने के लिये क्रोध से ज्योंही पृथ्वीराज ने शर-सन्धान किया, वहीं उसका धनुष सहसा टूट गया और पास में खड़े हुए कविचन्द के पुत्र के मुख से ये शब्द निकल पड़े—

"दिन पलट्यो पलटी घड़ी, पलटी हथ्थ कमान।
पीथल एहौ पारखू दिन पलट्यो चौहान॥

इतने में तो शहाबुद्दीन के सैनिकों ने पृथ्वीराज को पास आकर घेर लिया। पृथ्वीराज की सेना में भगदड़ मच गई। चन्द का अकेला पुत्र जो रण में जूझता था, घायल बन कर रण में गिर पड़ा और पृथ्वीराज निःशस्त्र अवस्था में अकेला अद्भुत पराक्रम से जूझने लगा। पर अन्त में शहाबुद्दीन के सैनिकों के हाथ में आगया। चौहान को तुर्क सैनिकों ने पकड़ कर कैद किया।

पृथ्वीराज के पकड़े जाते ही उसके रहे सहे मनुष्यों का उत्साह भी क्षीण हो गया और वे रणभूमि को छोड़ कर भागने लगे। युद्ध में गोरी शाह विजयी हुआ और पराजित पृथ्वीराज को कैद कर अपने साथ गजनी ले गया, जहाँ शहाबुद्दीन ने क्रूरता से, पृथ्वीराज की आँखें नष्ट करवादीं।

इसकी सूचना कवि चंद को पूरे ६० दिनों के बाद कारावास में से छूटते ही मिली। अतः वह सीधा अपने घर आकर अपूर्ण रहे हुए ग्रन्थ को अपने पुत्र

जल्ह को सौंप दिया और स्वयं पृथ्वीराज की दुर्दशा सुनकर उसकी मुक्ति के लिये गौरी (चंद का स्त्री) की अंतिम आज्ञा लेकर घोड़े पर सवार हो तीव्र गति से गज़नी की ओर रवाना हुआ।

चन्द का गजनी प्रयाण

कवि चंद रात-दिन सतत यात्रा करता हुआ गजनी पहुँचा और वहाँ शहाबुद्दीन के यहाँ कारावास में पड़े हुए अपने मित्र और स्वामी पृथ्वीराज से मिलने की युक्तिपूर्वक प्रार्थना की। वह पृथ्वीराज से भी मिला। कारावास में स्थित पृथ्वीराज, चन्द की आवाज को सुनकर उस पर अत्यंत ही प्रकुपित हुआ और कहने लगा—"क्या मेरी दुर्दशा को देखने यहाँ आया है ?" और तब चन्द ने उत्तर दिया 'नहीं, इसका अंत लाने के लिये ! यदि भविष्य का विचार होता तो काँगरा ही क्यों जाता ?[१]" फिर कवि ने संकेत द्वारा अपने स्वामी पृथ्वीराज को शत्रु गोरी शाह के समूल विनाश की योजना कह सुनाई, जो पृथ्वीराज को भी अच्छी लगी।

बाण वेध और शत्रु संहार का अंतिम दाव

यह योजना—बाणवेध—तीरंदाजी थी। कवि चंद ने पृथ्वीराज चौहान की तीरन्दाजी को देखने के लिये शहाबुद्दीन गोरी को तैयार किया और कहा—"पृथ्वीराज आँखों की ज्योति से विहीन कुरूप (अन्धा) है। फिर भी तीर चलाने में उतना ही अचूक है। वह आवाज को पहिचान कर निशाने को गिरा सकता है।" शहाबुद्दीन को कवि के शब्दों में केवल मात्र व्यर्थ अभिमान ही मालूम दिया और इस प्रतिस्पर्धा में उसे आनन्दाश्चर्य होने लगा। अतः उसने लोहे के सात तवे बनवाकर, सातवें तवे की आड़ में स्वयं बैठकर स्वयं आवाज करे और इस आवाज पर पृथ्वीराज का तीर किस प्रकार काम आता है—इसे देखने की इच्छा व्यक्त की इसका इस इच्छा के विरुद्ध उसके कुछ सामन्तों ने कवि का जाल बता कर विरोध किया। इससे शहाबुद्दीन गोरी का भी कविचंद जैसे पराक्रमी कवि

---

१. भवित न सुझयौ मोही पै, हों क्यों काँगर जाँउ।
हम तुम छैहो इह भयौ, भावी देवह थाँउ॥

के इस कार्य में शंका हुई और स्वयं सचेत होगया और बाण वेध के समय अपने स्थान पर बादशाही पोशाक पहनाकर अपनी लोह की मूर्ति रखदी।[१]

बाण वेध का निश्चित समय आया। कवि ने पृथ्वीराज को समय नहीं चूकने का संकेत कर शाहबुद्दीन को आवाज देने के लिये कहा और उसने लोह मूर्ति के पीछे से हुँकार किया। इस हुँकार की ध्वनि पर पृथ्वीराज ने शर सन्धान किया और उसका तीर जहाँ से आवाज आई थी, उस लोह मूर्ति पर कडिंग करता हुआ लगा। लोह मूर्ति धड़ाम से नीचे गिर पड़ी और गौरी सुल्तान के मनुष्यों में हाहाकार होने लगा। N

अन्तिम दाव में निष्फलता और दोनों मित्रों का आत्मघात

लोह मूर्ति के नीचे गिरते ही कविचंद को शत्रु को संहार करने की योजना एकदम सबको जान पड़ी। कवि ने अपने स्वामी के सम्मान की रक्षा के लिये और शत्रु का विनाश करने के लिये इस अन्तिम दाव की परीक्षा की थी, वह भी निष्फल गया। इससे निराश बने हुए कवि ने शत्रु के हाथ से मरने की अपेक्षा, अर्थात् आत्म समर्पण करने से आत्म-हत्या करना ही उचित समझा और एकदम अपनी कटार निकालकर पहले स्वयं और पीछे पृथ्वीराज—इस प्रकार दोनों मित्र परस्पर कटार खाकर वहीं धराशायी हो गये।

जिस प्रकार पृथ्वीराज और कविचंद एक साथ उत्पन्न हुए थे, जीवित रहे थे, उसी प्रकार उनका अन्तकाल भी एक साथ आया। एक मित्र के में रूप ऐसा संयोग किसी विरले को ही प्राप्त हो सके।

---

१ पुरातन प्रबन्ध संग्रह पृ० ८७ देखिये।

N. सं.टि.—रासो में महाराजा पृथ्वीराज चौहन द्वारा बाण वेध के समय शहाबुद्दीन गोरी का मारा जाना लिखा है। अस्तु, शहाबुद्दीन गोरी की लोह की मूर्ति बना कर पृथ्वीराज का शर संधान करने का कथन विचित्र सा ही जान पड़ेगा। परन्तु श्री गोवर्द्धन शर्मा, इस कथन के पीछे पुरातन प्रबन्ध की साक्षी देते हैं जो मान्य है और श्री शर्मा के इस कथन से स्पष्ट है कि बाण वेध से शहाबुद्दीन नहीं मारा गया। इन दोनों कथनों में कौन सा सत्य है, इसका निराकरण करने के लिए एक न एक कथन को अमान्य करना होगा। यदि पुरातन प्रबन्ध की बात ठीक होना सभी विद्वान् मानलें तो स्वतः रासो की कथा प्रक्षिप्त हो जायगी और यह समस्या सुलझ जायगी।

मध्यकालीन इतिहास में कविचंद की स्वामी-भक्ति, जिस प्रकार अपूर्व है, उसी प्रकार इसका स्व-गौरव और स्वाभिमान भी अद्वितीय है। जिसकी रक्षा के लिये उसने किसी भी प्रकार त्रुटि नहीं की। यह तो केवल अपने उदात्त ध्येय की ओर ही लक्ष्य देकर आगे बढ़ता रहा और इसीलिये वह आज मर जाने पर भी अमर है! जीवित है।

कविचंद की अवसान-तिथि रासो के अनुसार पृथ्वीराज की अवसान-तिथि है; जो अनंद संवत् ११५८ है, जबकि इतिहासकार पृथ्वीराज की अवसान-तिथि वि० सं० १२४६ मानते हैं। रासो के अनुसार अनंद सम्वत् में ६१ वर्ष का अन्तर जोड़ देने से वह बराबर वि० सं० १२४६ होता है। इससे सिद्ध होता है कि वि० सं० १२४६ में ४३ वर्ष की युवावस्था ही में परलोक सिधार गया था।

(४)

कवि चन्द की काव्य-रचना

महाकवि चन्द की काव्य-रचना विख्यात महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो', जो भारत के अंतिम हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज चौहान का जीवन-चरित और मध्य-कालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजकीय व्यवस्था का सजीव आलेखन करता है। इस महाकाव्य की भाषा का प्रथम काव्य और हिन्दी भाषा का आदि-काव्य माना जाता है। 'रासो' काव्य की मूल रचना कवि चन्द ने उस समय की लोक-भाषा, अपभ्रंश-प्राकृत (देश्य) में की थी, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण कवि की निम्नलिखित पंक्ति है।

पय सकरो सुभत्तौ। एकत्तौ कनकराय भायसो ॥
कर कंसो गुज्जरीयं। रब्बरियं नैव जीवंति ॥

अर्थात् जिस प्रकार राज-भोज्य दूध शक्कर की मिठाई है और जिसे श्रीमान् लोग सुवर्ण के पात्रों में लेकर खाते हैं, उसी प्रकार गरीब लोग (उस समय की एक जाति-गूजर) लोगों के लिये रबड़ी (राबड़ी) है, जिसे कांसे के पात्र में लेकर खाते हैं। इस प्रकार मेरे पूर्व कवियों की कविता राज श्री के समान संस्कृत में है। जब कि मेरी कविता राबड़ी के समान लोक-भोज्य श्री है—जन-समुदाय की अपनी अपनी बोली में है।

लोक-दृष्टिधारी प्रथम युगद्रष्टा कवि —

इससे सिद्ध होता है कि कवि चंद मध्यकालीन युग का लोक दृष्टि धारक प्रथम क्रांतिकारी युगद्रष्टा कवि था, जिसने संस्कृत जैसी पुस्तकीय भाषा का परित्याग कर जनता के व्यवहार की भाषा में अपने काव्य की रचना की थी। कवि का यह प्रथम चरण उस समय की दृष्टि से अवश्य प्रगतिशील और उसमें रही हुई एक युग द्रष्टा की उदात्त भावना का सुन्दर प्रति बिंब है।

कवि चंद रचित रासो की श्लोक संख्या—

आज रासो महाकाव्य प्रक्षेपों और क्षेपकों से परिपूर्ण बन कर एक महाकाय बन गया है, जिससे कवि रचित श्लोक संख्या का अनुमान लगाना भी कठिन होगया है और कितने ही लोग रासो में एक लाख श्लोक संख्या होना मानते हैं। इसके अतिरिक्त कितने ही विद्वान् कवि के बनाये हुए तीन चार हजार पद्यों का होना उनके पास की प्रतियों के आधार पर सूचित करते हैं; परन्तु इन सब में वास्तविक सत्य का सर्वथा अभाव है। क्योंकि अब तक प्राप्त रासो की सर्व प्राचीन प्रतियों में, प्रतिपांश के लिये नीचे लिखा कवि का यह उल्लेख मिल जाता है।

सत्त सहस नष सिस सरस,
सकल आदि शुभ दिष्य।
घटि बढ़ि मत्तँह कोई पढ़ै,
मोहो दुसन न बसिष्य॥

अर्थात् रासो की श्लोक संख्या सात हजार है, न्यूनाधिक नहीं, कदाचित् कोई अधिक या न्यून प्रमाण में पढ़ें तो इसमें मुझे दोष नहीं देवें और यही वास्तविकता बतला देती है कि रासो की पद्य संख्या सात हजार होनी चाहिये। प्रचलित और प्रकाशित रासो में श्लोक संख्या १६००३ है और इससे विदित होता है कि इसमें से पीछे से अन्यन्य कवियों के द्वारा बढ़ाया गया क्षेपक भाग विशेष है। जिस-जिस पद्य में 'कविराज' शब्द का प्रयोग आता है, वह कवि चंद द्वारा रचित नहीं है, पर. पीछे से बढ़ाया हुआ भाग है।

रासो काव्य का प्रधान कथितव्य—

रासो काव्य में कवि चन्द ने विशेष कर उसके कथितव्य में इस प्रकार कहा है—

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं ।
षट्भाषा पुराणंच कुरानं कथितं मया ॥

अर्थात् भक्ति, धर्म, राजनीति, नवरस, षट्भाषा पुराण और कुरान के तत्व को मैंने इसमें बतलाया है ।

अन्त में कहना होगा कि निःसन्देह कविचन्द एक महान कवि था। उसकी कविता बहुत ही सबल, भाषा अतीव प्रौढ़ और रचना-पद्धति, शैली सर्वथा स्वाभाविक है। कवि के रासो काव्य में वीर रस प्रधान हैं और अन्य रस गौण हैं। फिर भी उनमें एक उच्च कोटि के महाकाव्य के सर्व गुण, पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। कविचन्द की कल्पना शक्ति अपूर्ण और अद्भुत् थी। इससे उसने कविता में जिस विषय को स्पर्श किया है; उसका ऐसा विस्तृत सजीव और भव्य वर्णन किया है कि वह अपनी आँखों के समक्ष मूर्तिमान बनकर नर्तन करने लगता है। काव्य कला की दृष्टि से रासो के सर्वोत्तम स्थल यह है- जहाँ महाकवि चन्द्-रूप-वर्णन, सैन्य वर्णन और युद्ध वर्णन करता है। इनमें से कुछ स्तुति पद्यों के उदाहरण हम नीचे देते हैं, जो वर्तमान समय में लोगों में 'चन्द-छन्द' के नाम से पहचाने जाते हैं।

चंद की पत्नि गौरी के प्रश्नोत्तर में कवि द्वारा (दशावतार)

ब्रह्म स्तुति—

भुजंगीO

न रूपं न रेषं न सेषं न सापा,
न चन्द्रं न तारा, न भानं न भाषा ।

O सं०टि०—कविवर राव मोहनसिंहजी ने पृथ्वीराज रासो का पूर्ण रूप से अध्ययन कर यह सिद्ध किया है कि महा कवि चंद ने अपने ग्रन्थ को दोहा, गाहा, साटक कवित्त (छप्पय) और दोहों में रचना की थी, जिसके लिए रासो में उल्लेख है—

छन्द प्रबंध कवित्त मति, साटक गाह दुहत्थ ।
लघु गुरु मंडित खंडि यह, पिंगल अमर भरत्थ ॥ प्रथम समय ।

इससे सिद्ध हुआ कि भुजंगी आदि छन्द मूल छन्द की रचना के नहीं है और प्रक्षिप्त रूप में है। क्योंकि 'पुरातत्व प्रबंध संग्रह' में दिये हुए पद्यों की भाषा से भी इनका मिलान नहीं होता है, जिसके उदाहरण 'रासो और पुरातन प्रबन्ध संग्रह' शीर्षक में दिये गये है।

अविद्या न विद्या, न सिद्ध न सादी,
तुही अे तुही अे तुही अेक आदी ॥
न अभं न रंभं, न रद्धा, न पाया,
न सेतं, न नीलं न पीतं न गाया ।
न काया न माया न पाया छाया,
तुही देव सद्देव सिद्धे न पाया ॥
तु ही सर्व माया दिषाया न माया,
तु ही सर्व माया तुही धाम छाया ।
न बंभा न रंभा न रुद्रे न देहं,
न मद्रे न माया न राया न गेहं ॥
न मैलं न गैल न तापं न छाया,
न गाहा न गीतं न श्रोता न ताया ।
न पृथ्वी न पालं म्रजादं न मादं,
न तारी न वारी न हारी न नाद ।
नवे सेष रेपंन भूरी न भारी,
न वे ध्यान भानं न लग्गे न तारी ।
न लोकं न सोकं न मोहं न मादं,
तु ही अे तु ही अे तु ही अेक आदं ॥
तहां पै न तारं न बारं न बीरं,
नयं दट्ठ मट्ठं न ध्यान न धीरं ।
नहं जोति हस्तं न वस्तं सरष्षं,
तहां तू लंतहां तू तहां तू गुरष्षे ॥
प्रकृतं प्रथमं त्रये तत्त जोई,
तहां नम्भ तेता सरोजं न सोई ।
न माया न काया न हाबा न होई,
तुही देव सादेव साधा न सोई ॥
तुही अंबुजा अंबुका मिन्निकायं,
तुही तत्त कै तत्त रामं न रामं ।
तुही दीप सूरं सिरं नम्भ तेरै,

भूजा इन्द्र तुही नभं नाम फेरै ॥
सुयं सायरं पेट सा मुष्ष अग्गी,
तुही तेज ब्रह्मांड सासीस लग्गी ।
तुही बाल वृद्धं तुही अेक आदी,
तुही तंत्र मंत्रं कवि चंद वादी ॥
तुही राग जंत्रं जगत्रं बजावै,
तुही सार, पंचै सु पंचै चलावै ।
भगव्वांन जंत्री सु बज्जनि लोई,
सुर राग बंधै, बंधौ आप सोई ॥
प्रलै अंभ अंबं तु ही अन्य बोधै,
तहां मोहि अग्या सु सिष्टं समोधै ॥

साटक

कि सन्मान ससेव देव रजयं, दुष्टान उस्सामयं,
कि सुप्पानि दुपानि सेवन फलं, आयस भूमि मयं
कि ईसं सुरेश सेस सनकं, ब्रह्मा जान लहं
कि रंनं छितया छितं मुकल बंदे सदा विप्पय ॥

भूजंगी

वपू वीर बीरं धृतं धृत्त सारं, दीठं दुष्ट दाने कलं कोल कारं ।
वरं तुंड तुंगं विसालंत नैंनं छिनं छीन लोकं, जुरे दूत सेनं !
रूधि फट्टि वध्जंग वज्जे विनूरं, गनं आंन कंतं बज पंच पूरं ।
श्रवं सोर भारं भिरे भूर भारी, तिनं मेक मानी–अकाली असारी ।
घटे घोष छीनी बलं छीन नूर, धरे सुद्ध उध्धं दिनं संम जूरं ।
धरे दंत धारा वरं सेष ओपं, मयं कंक लंकं कियं कठ लोपं ।
[illegible]यं जोगधारी महापान पानं हयं ग्रीव नंपे तिनं तोरि तानं ।
करे तुंड तुंडं, वितारंत तारं, तियं लोक सोकं, विलोकन्न पारं ।
सुरे सूर कंतं जयं जो करालं, सम गुछ्छ अछ्छं करंजूल जालं ।
चवै चद चंडी नमो वेद चारं, नमो देव कोलं, वरं रूप सारं ।
वही तत्त त्रैलोक संसार सारं, वही तारनं [illegible] भौ सिंघ पारं ।
जगन्तं, अधारं, नीराधार बोही, वही अब्बदा, संपदा, नित्य सोही ।

वही भेद मंत्रं, गजानंत लोयं, वही पूरनं ब्रह्म संसार भोयं ।
नवं भत्ति कौ संव ही छत्र धारी, भम्यौ ब्रह्म ब्रुन्यो, वही सिद्ध तारी ।
जगत्तं सुरत्तं, वहीं हैं निनारं, वही वासना वासुदेवं प्रकारं ।
वही मत्त हथ्थं, नचयौं कपिमानं, वहीयै वहीयै वहीयै निधानं ।
इकं एक आवज्ज कीनें गुसांई, चवै चन्द जा रंग गोव्यंद पाई ।
वही की उपम्मा करै कित्ति भासौं, वही सव्व संसार मभ्भै प्रकासौं ।
वही अंतरंगी, सुरंगी, निनारं, वहे राज राजीव लोचन्न सारं ।
धरें गेन सीस, चले बेद रीसं, गदा मुद्गरं, दंत पारंत चीसं ।
पगं पिट्ठ नट्ठं कमट्ठं डरानं, थके वेद ब्रह्मा कमट्ठं भजानं ।
भगे जोग जोगं, छुटे थांन थानं, छुटे विश्व लोकं महालोक जानं ।
फटे कन्नरानं, प्रथोलोक जानं, चितं रक्त लोकं, ध्रमं लोक मानं ।
पुले पित्र लोकं ब्रहं लोक देवं, × × × × ×
सिवं कूट थानं हरं थान लाकं जू रश्त लाकं परे सत्य सोकं ।
परे दिव्य लोकं सुरंगं, सु पालं ब्रहं राषिसं लोक भग्गेस कालं ।
परे निट्ट तट्ठं, कमट्ठं रहानं, चले दैत संषं जुटे, बेद रानं ।
हम्मा भजानं, नजानं कि जानं, धरंजा फटानं ग्रहं निट्ठ भानं ।
परे लोक सोकं, करे देव कूक्कं, डकं डक्क बज्जी करें ईस डक्कं ।
ग्रहे ब्रहम लिद्धं, धरै बेद मुष्षं, गजे जोग सट्ठी हुवं दैत दुष्षं ।
करे मच्छ रूपं, धरैं धार भूपं, छिले सत्तयं सायरं अंधकूपं ।
परे छोनि छक्कं विछक्कं बरानं, करे कुंभ नद्यं विहद्यं सुनानं ।
तहां म्पनं, पानि संषा सुरानं, नहीं पाव संषं प्रलंबं बरानं ।
धजा धूमरं अंमरं, अंब दभ्भी, तिनं मभ्भ षोडष्कला अप्प सूभ्भी ।
धरे गेन पानं, लरे आवधानं मनों आसुरं वासुरं सत्त पानं ।
करक्कंत मच्छि कटि, कट्टि मच्छं, मनों आवधं बज्जि जौं बज्र बच्छं ।
धपे पानि लद्धं फटे पारि छेदं, कढे पेट मभ्भं सुरं वेद वेदं ।
धरे अप्पं पानं चले ब्रह्म थानं, किये जैत बज्जं पुरानं सुरानं ।
करी विष्टि कूलं सुरंसिद्ध देवं, मुभ्रं ब्रह्म जप्यं कियं अप्प सेवं ।
मुषं वेद विद्धं न लै पानि ब्रहमं, जलैं षोलि पानं, धजै भ्रांति भ्रंमं ।
दियं चारनं भट्ट बेदं सु पानि, रहे ब्रह्म ग्यानं हरी सिध्धि रानी ।

अपं इंद्र आपं भगं कोरि कोरं, फिरं मच्छ रूपं छुटे बेद रोरं ।
कहूं अम्ब विद्रुम्म सीतल्ल छाया, कहूँ वृष्ष वदं निहट्टं सिलाया ।
कहूँ कीर कोकील्ल नादं सुलीनं, कहूँ कलि कप्पोत से बोल भीनं ।
कहूँ बीय बिज्जौर पीयूप भारं, जुटी भूमि लुट्टि मनों हेम तारं ।
कहूँ दाडिमीचूवं चिचन चंपी, मनों लाल मानिक्क पीरोज थप्पी ।
कहूँ सेवं देवं करंनं कलापं, कहूँ पंष पारेव सारो अलापं ।
कहूँ नीव नाली अकली षजूरी पूले काम भंडे सुहल्लै हजूरी ।
कहूँ ताल तुंगे सुचंगे सुचारं, कहू काम लष्षे सुदप्पे विहारं ।
कहूँ चंप चंपो सु कंपीय वातं, कहूँ जबु जंभीर गंभीर गातं ।
कहूँ नागवेली निवेली निवेसं, कहूँ मालची घेरी भौंरं सुवेसं ।
कहूँ पांडरी डार पाछै विहारं, कहूँ सेव तीसेव जेनी सुभारं ।
कहूँ अष्यरोटे निहट्टे तिबेली, कहूं बील विद्राम कादंब केली ।
कहूं केतकी फूल दल्ली विगस्से, कहूँ वंस विश्राम गंठी निकस्से ।
कहूँ वेर बद्रीव पंषी पुकारं, कहूँ मीर टेरी सुफेरी विहारं ।
कहूं सार संसारि सारन्न सोरं, मनों पावसी वुट्टि दादुल्ल रोरं ।
कहूं संसिषंडा सुपंडान फूल्ली, कहूं लुब्भि लोंगी रही बेली फूल्ली ।
कहूं अष्प आसोक तें सोक हीन, दिषे आसिपं रूप ताम्रं प्रवीनं ।
कहूं दाडिमी पिंड षजूर फुल्ली, कहूँ मालची मल्ल भर भार भल्ली ।
हसे श्याम वलभद्र अक्कूर फुल्ली, जहां कूबरी रूप पेषंत भुल्ली ।
दई मालिया आनि सौदाम दानं, भयं रंजकं सब्ब सु हाल कानं ।
रची मंडली गोप व्रजलोक वासी, गए जग्गसाला तहां धनुष त्रासी ।

— वेली भूजग —

अहो देव देवेस देवाधि देवं, तुही अलख् अप्पार पावै न भेवं ।
अभेदं अछेवं तुहीं सर्व वेदं, तुहीं सर्व विद्या, विनोदं, सुभेदं ।
तुहीं ज्ञान विज्ञान सोज्ञान कर्ता, तुहीं बुद्धि कर्ता तुही बुद्धि हर्ता ।
तुहीं धरनि आकास है पौन पानी, तुहीं सर्व में एक अन्नेक बानी ।
तुहीं जोति संसार सारं सरूपं, तुहीं अध्धकालं, अकालं अरूपं ।
तुहीं कोटि सूरज्जमें तेज साजै, तुहीं चन्द्रमा कोटि सातं विराजै ।
तुहीं कोटि ब्रह्मा महादेव जेते, तुहीं कोटि कंदर्प, लावण्य ते ते ।

तुंहीं हेत संतोष आनंद कारी, तुंहीं शोक संताप सर्वं प्रहारी।
तुही जोग जोगेश जोगी सु भोगी, तुंही भेद अभ्भेद संदेश सेभी।
तुही मानव देव दानव सिधानं, तुंही कोटी ब्रह्मादि अंतर-समानं।
जिती थावरं जंगमं, षांन च्यारौ, तिनी आपरी आप तें भेद धार्यो।
करे जे गुसांई अगे रूप ते ते, कहैं अन्नि को देव रिष् नाग जेते।
कियो मच्छ औतार पैले अनुपं गयौ बेद लै दैत्य सागर अलूप।
हते स्वामि संषासूरं बेद लीने, सुतै आनि तत्काल ब्रह्मादि दीने।
महा पिष्ठ के धार धारी धरत्ता, करी त्रंमलं कश्यय रूप कत्ति।
बली बामनं पावनं किति राजै, पगं नप अंग्रं सु गंगा विराजै।
सबै पंडि पित्री सुता विप्र तामं, महापुष्य समक्रूर सकै फर्सरामं।
श्रियं राम रघवीर लीनौ-वतारं, कियौ रावनं कुंभकर्नं संहारं।
वसुदेव ग्रेह गह्या कृष्ण वासं, हते दुष्ट सवे कियौ कंस नासं।
करे जग्य लीयं धरा ध्रमं सुद्धं, प्रगटयौ कलिकाल अवतार बुद्धं।
जुगं अंत सो सत्ति ह्वै हैं कलंकी, इ है बात सांची सदा देव अंको।
जितें सैंल सुरुहेंत सुरपति कीने, तिते सेस गन्नेस जाएँ न चीने।
सबैं दुष्ट भंजे सु सेवक उगारे, करे काम निज धाम नरहर पधारै।

कवि चंद द्वारा भगवान शंकर नी स्तुति—

—भुजंगी—

नमो आदि नाथं स्वयंभू सनाथं, नहीं मात तातं न को मंगिवातं।
जटा जुठयं सेषरं चंद्र भालं, उरं हार उध्धारयं रुंड मालं।
अनीलं असन्नं उपब्बीत राजं, कलं काल कूटं करं सूल साजं।
वरं अंग ओभूत विभ्भूत आपं, प्रलै कौटि उग्रंसि कालं अनोपं।
करी चर्म कंधं हरि परिधानं, वृषं वाहनं वास कैलास थानं।
उमा अंग वामं सुकाल पुरष्पं, सिरं गंग नेत्रं त्रयं पंच मुष्षं।
नमः संभवायं सरव्वाय पायं, नमो रूद्रदायं वरद्वाय सायं।
पसुपत्तए नित्तए मुग्गयाए, कपर्द्दी महादेव भीमं भवाए।
भषघ्नाय ईसानए त्रंबकाए नमो ध्रम्मए घातए अध्वकाए।
कुमारो गुरव्वे नमो नील ग्रीवे, नमो व्याघ्रए बाघए दिच्छजीवे।

नमो लोहिते नील सिष्षं डएतं, नमो शूलिने चक्षुषे दिव्यएतं।
बसूरेतवे सब्वदेवस्तुतेवं, नमो पिंग जाट्टिल्लए देव देवं।
नमो तप्प मानाय ब्रष्षं धुजाए नमो ब्रह्मचारी त्रयं ब्रह्मकाए।
सिवं चातमे चातगे स्वर्गघाए, नमो विश्वमावित्तए विश्वराए।
नमस्ते नमस्ते नमोसीतताए, नमो सर्वबत्कायने शंकराए।
नमो ब्रह्मवत्काय भूतं पिताए, नमो वाचपे विश्वपे भूपताए।
नमो सीस साहस्त्रए नीतएसं, सहस्त्रंभुजा नैन साहस्त्र तेसं।
नमो पाद साहस्त्र आसबकर्नें, तमो वन्हि होरन्य हीरन्यवर्नें।
नमो भकित आकंपनं संभुदेवं, चिरं रिद्धि दाता मनं बञ्च सेवं।
प्रसन्नो भवो इस तब्बै न कब्बै, तनं ताप विन्नासए चित्त तब्बै।

साटक

त्रै नैनं त्रिजटेव सीस त्रितयं, त्रैरूप त्रीसूलमं
त्रदेव त्रिदिसा त्रिभु त्रिभुनयं, त्रिसंधि वेदत्रयं
त्रैरग्नि त्रयलच्छि काल त्रितयं, ग्रामंत्रय त्रैवयं
गंगा त्रे त्रिपुरारि भासित तनुं सोय नमः संभवे ॥

भुजंगी

नमो वाय भूताय थानं भयानं, जटा मांहि गंगा जलक कै प्रमानं।
त्रयं नेत्र ज्वाला जलं चंद्र भाल, विषं कंठ माला रुलै रुंड माल।
महा आदि मुद्रा नषं सिंगि नादं सिधं देव देवं कथं साथ साधं।
धरा धूरि धूसं विभूतं धसंते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते।
गजं चर्म आछादितं भ्रमं वासं, रहै वोर भैरों गनं आस पासं।
पदम्मासनं पुष्ठि नंदी प्रचंडी, चवं वेद आमोद चौसट्ठि चंडी।
बजै डक्क डौंरू डमंकं तड़क्कै, धकै भेरू धुजै हके गैन हक्के।
धनूकं पिनाकं धरै बाम हस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते।
सिधं साध आराधयं शूलपानी, सिया ध्रंम साधेति के साथ जानीं।
नरं किन्नरं गंधर्वं नग्ग जष्षं, सुरं आसुर अच्छरी हूर रष्ष।
सनक्कादिकं सप्तर्षी बाल काल, प्रथीवायुगेनाय तेजंस लाल।
नमो भान चंद्रं नवं ग्रह समस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते।

भिट्टै संकटं बाट घाटं विघट्टं, रटै नाम तो कोटि काटै कसट्टं।
षरं षेचरं भूचरं जत्र मंत्रं, जपै व्याधि आसाधि भाजै अनंतं।
महादीं पुरुषं महिमा मुरारी, नवं कौनं तो सौ निपातिक परारी।
गिरा गौरी अर्धं कैलास वस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते।

—:*:—

चंद द्वारा भगवती गंदाका आह्वाहन—

भुजंगी

नमो देवि गंगे जयो मात गंगे द्रवै रूपका मंडलं ब्रह्म संगे।
त्रयं पथ्थ त्रेयं गुन ते निवासं, वरं वृंद वृंदारका सेव जासं।
हिमं सैल भेदे सु भेदे धरायं, सजै रूप-कायं सुरायं नरायं।
मधू छेदनं पाय प्रावेस कारी, संतं मुष्ष सामुष्ष सामुद्र धारी।
हली सेत जल्ली जलध्धी समुद्दं, अवै सेष षीरं सु मानै समुद्दं।
धराचल्लि भागीरथी विश्व भागं, मिटै अध्ध ओधं तनं दुष्ष दागं।
सुभं उच्च अंदोल बीचं विराजं, मनो-स्तुग्ग आरोह सोपान साजं।
नरं नीच नीरं तटं श्रोन प्रभ्भं, तब्बै अग्ग देवं गुनं अब्ब अम्भं।
परै मज्ज, कल्लेवरं धंषी छुट्टि, भषी कावलं गिद्धि गोमाय लुट्टि।
तट श्रोन जल्लै थल वारि हल्लै, षिनं भज्जि अदोल बीचं वहल्लै।
विनं आतमं देह आनूप धारै, वरं उर्वसी चामरं बंज नारैं।
धर ध्यान भावं तिनं दुख्ख दब्बै मिटै मज्जन अध्ध साजंम सब्बै।
जलककंत गंगा तनं तेज सोहै, मनो दाहनं दाह दाहन्न जो है।
सुयं गंग गंगे सु गंगा भकारं, हरै नाम गंगा जमं किं करारं।
त्रिपथ्थी त्रिमागी विराजंत गंगा, महास्त्राग लोकं नरं नारि अंगा।
रहट्टं धैरी जयौं फिरै तीन लोकं, महा दिव्य धुन्नी तबं निग्गम लोकं।
कलाली गुहीरं गुफा झारि नागं, प्रगट्टोय मातंगि मानुष्य भागं।
रही नष्ष अष्षी सुयं ताप भजै, महा वहराजं दिवं दुर्ग रंजै।
भयं भीषमं मात बहु पाप षंडै, जमं ज्वाल ज्वालं तमं तेज चंडै।
रहं रोह रंगी हरं सीस गंगे, महा मोहनी मात दुग्गा उतंगे।
वरं काल काला जलं खेत रूपं, तहां उपन्नी मात आभंग नूपं।

भई गाम सद्द सु हामुद्द मेतं, डस्यौ नाम गंगा बत्तंगा विहेनं ।
हरद्वार द्वारं कला तूं प्रगट्टी, करो मुक्ति गग्गं महा पापमट्टी ।
तिनं नाम लिन्नै कियं तोय पीजै, कियं संभ्रनं दैव सज्यान कीजै ।
कियौं गाहि तें पंथ उग्गाहि साजं, तुंही तापिनी तेज तूं तेज राजं ।
तुंही मध्य वारानसी गोत्त दैनी, कली काल दुप्पं कटग्न कुपैनी ।

दूहा—जब लगि रज तन मातकी, रहै अंग सो लाइ ।
तब लगि काल न संपजै, कुम्भ पाप सब जाइ ॥

—:०:—

सरस्वती स्तुति—

—भुजंगी—

नमो तुं नमो तुं नमो तुं कुमारी, नमो तुं नमो तुं संसार सारी ।
नमो तुं अभष्षी नमो बीज कष्षी, नमो रिष्व पूजंत सज्जंत सष्षी ।
नमो तुं रटै राज राजं रजाई, नमो तुंज संसार तें सिद्ध पाई ।
नमो तंत जालं विकालंत राई, नमो विश्वथानं गिरजा गिराई ।
नमो सस्सिपालं अकालं अभष्पी, नमो काल जन्मं न कालं न सष्पी ।
नमो एक भग्नी भरत्तार पंचं, नमो कोरिकारं करत्तार सचं ।
नमो सिद्ध तुं रिद्ध तुं दृद्धि पानी, नमो काल तुं भाल तुं सात रानी ।
नमो कित्ति तुं मंत्र तुं गीत गानी, नमो आदि तुं अंत तुं जोग जानी ।
नमो विश्व तुं भिन्त तुं भार भारी, नमो जोग तुं जीव तुं जुग्ग चारी ।
नमो भूमि तुं धूम तुं अब पानी, नमो तप्प तुं ताप तुं अट्ठरानी ।
नमो बाल तुं वृद्ध तुं हाल चाली, नमो भान तुं मान तुं मुक्ति माली ।
नमो व्याघ्र तुं सार तुं वाग वद्दं, नमो मुंड मुंडं तुहीं पारिसद्दं ।
नमो पत्र तुं छत्र तुं छित्ति धारी, नमो वृद्ध तुं धृत्त तुं अध्घहारी ।
नमो रूप तुं रंग तुं राग रत्ती, नमो भील तुं भाव तुं सील सत्ती ।
नमो भत्त तु वृत्त तुं चारू बानी, नमो चंद चंडी सदा चारू मानी ।

—:※:—

पुस्तक की संपूर्णता के लिये कवि चंद की प्रारंभ की हुई और उसके पुत्र कवि जल्ह द्वारा पूर्ण की हुई देवी स्तुति ।

— भुजगी —

उंकार नमौ कल्यानी सु कमला, कला रूपिनी काम दाई सु विमला।
कुमारी करुन्ना कमंखा कराली, जया विज्जया भद्र-काली कंकाली।
शिवा शंकरी विष्णु विमोहनीयं, वराही चमंडा दुग्गा जोगिनीयं।
महा लच्छमी मंगला रत्र अंषी, महमाई पारवती ज्वालमुषी।
तुहीं गंग गोदाबरी गोमतीयं, तुहीं नर्मदा जमना सरस्वतीयं।
तुही द्वारिका मथुरा ग्नप काशी, तुहीं तीरथं अब्ब मध्धे निवासी।
तुहीं कोटि सूरिज्ज लीई प्रकासा, तुहीं चंद कोटेक आनन्न भासा।
तुहीं कोटि सामुद्र हीयै गंभीरा, तुहीं कोटि प्राकुम्म लीयै समीरा।
तुहीं कोटि आकास विस्तार धारा, तुहीं कोटिक सुम्मेर छाया अपारा।
तुहीं कोटि दावानलं ज्वाल माला, तुहीं कोटि भैभोन जम कराला।
तुहीं कोटि सिंगार लावन्य कारी, तुहीं राधिका रूप रीजे मुरारी।
तुहीं विश्वकर्ता तुहीं विश्वहर्ता, तुही थावरं जंगमं मै प्रवर्ता।
तुहीं पातिक नासिका नारसिंघी, तुहीं जग्गमाता अनेकं सुरंगी।
तुहीं साकिनी डाकिनी रूप धारे, तुहीं आप लग्गे तुहीं यै उबारे।
तुहीं तौहि जाने सुतेरे किरत्तं, कहां लग्गि चंदं लषे तो चरित्तं।
अज्जमेर थानं सिकारं भुलायौ, तहां बिर बावन्न सिद्धं मिलायौ।
पहिल्ले उमा कामती भट्ट किन्नों, बलं भैवरा मंत्र छंडाय दिन्नौ।
वदे वाद आयौ सुद्रुग्गा केदारं, तहां अंबिका अंत्र रष्षौ अपारं।
बिना षून पर्छै किए एह बालं, गयौ रूक्कि साद्रोह मज्जे दिवालं।
पठायो नृप कंगुरानो पुकारं, उठी आहरं ठाहरं भेरी धारं।
सकत्ती हरी तै सकत्ती सुभट्टं, भयो मेछ साईन पुल्लै कपाटं।
गयौ गज्जनै पाति की पत्ति लीयैं, करुन्ना न आई षल दुष्ट हीयैं।
असं पत्ति कट्टो कुपे पिथ्थ अंषी, पर्यौ पंजरै जानि बहाल पंषी।
दई गत्ती राजं गती कौन जानै, कहा लेष लेष्यौ अजू चाहुआनै।
जिनै हथ्थलं सिंघ हस्ती निपातै, तिनै घेरि मारै कुरंगी सुलातै।
जिनै बाज सिक्कार पिल्ली लवा की, तिनै चष्ष लावै दिषावै दवा की।
ईसी गत्ति तेरी अलष्षं कहानी, कहां लों गिनाऔं कहौं बागवानी।
करौ राव तैं रंक रकं सुरावं, कहा हाथ आवै किए ए सुभावं।

पराक्रम्म छन्ते अछन्ते भए क्यों, दिलीपत्ति से वंधि के मा दए क्यों ।
हुए अन्ज वैरीन की जित्ति दिष्यौ, किना चाहियै सेवकं कीन पिष्यौ ।
बुरे पुष्प वारें लुंगूरें सुहानै, सुरं सारिषे सूर सामंत भानै ।
करं जोरि जंपौ सुनौ श्री भवानी, भलो किन्न साहाय संसार जानी ।
करों पुस्तकं पूरनं अब्ब जी लौं, विघन्नं हरौ संभरी राव तौलौं ।
निराधार विद्या देवी देहि चंदं, जपौ तुंज तूंहीज तूंही प्रबंधं ।
कहां साहि गोरी असंमान सूरं, कहां भट्ट इक्कीर लोटंत भूरं ।
कहां राज अंधान बंधं बिछायं, कहां कोस कम्मान आवैन दायं ।
जंही बान आतम्म मातग भारो, तुहीं बीर रूपी विराजी करारी ।
तुंही सत्य सत्यं बदै बेद मंत्रं, तुंही भेद अभ्भेद जायासि तंत्रं ।
तुंही तेज सूरज्जि सो वेलि चंदं, तुही आसमानं तुही भीमनंदं ।
तुंही प्रकृति पारं अपार सुरष्यं, तुंही अंजै अरधंग अजयादि सिष्षं ।
करामति कंधं करत्तार काया, तुंही कामनी काम संसार जाया ।
कली काल चालंत चामंड माली, तुंहा बाल जोवन वृद्धंति काली ।
रटं नाट रागं विराजी विराली, हरै मोह रंगं बजै वज्जि ताली ।
हरै सत्रु बुद्धि कमित्रं जयती, जपै तोत्र सायं प्रलो लागि यंती ।
बध्यौ तप्प तेजं जपौ अध्ध मंडं अजै वा विजै वा सही देह छंडं ।
धरी पंचली देविको निग्ग देष्यौ, सती साहसी सिद्ध तुंही विसेष्यौ ।
धरो ध्यान देषी बढ़ी बीर रूपं, चढ़ी जोति देषी बिमानं अनूपं ।
जमी अंत सोहत जालंधरानी, सरै सब्ब काजं बरदाय बानी ।
उमा मो विसासी परत्तीत पाई, जहां अब्बि सासी तहां देवि नाई ।
नियं देह देषै विरूपं रिसानं, तजै मोह माया गई आसमानं ।
निसा पग रगी अरंगी सुजायं, सुभं सुभ्भ जावै लियै हथ्थ हायं ।
सुकुन्ने जनंने मरन्ने विहाने, बजै दुदुंभी देवि भूमी निसाने ।
नमोहं नमोह सुचंडी, सुथानं त्रिसंचं सभू पंच मंडी ।
निकारं अकारं सकारं सरूप, महा तत्त सौ तत्त चोबीस नूपं ।
त्रयं मंज त्रेयं गुजं त्रेय थानं, त्रयं पाय बानंन त्रेय किसानं ।
कला षोडष रूप षोडस्स राया, दुअं त्रीस रूपं हलंछं पराया ।
रुचं पंच बानं दहंसं समीरं, दह नारि दुंधारो वाहं समीरं ।
ऊंकार सार श्रींकार सज्जै, ह्रींकार हूंकारि सारूप रज्जै ।

किलंकार ब्रूंकार कुंकार कारो, जीकार जूकार श्रींकार सारी।
श्रीं कार छूंकार सामात्र भाई; नमस्ते नमस्ते नमो जग्ग जाई।
जहां संगटं दुघ्घटं निज्ज सेवं, नहीं मात तातं नहीं बंध देवं।
नहीं को सहायं जहां कोन त्रायं, तहां तौ अरध्धै निज सेव सायं।
हरो मुञ्ज चिता तनं तप्पि भारी, चितता संध सायंकुमारी।
नमो देव देवंस वीराधि बोरं, स्वयं जाषिनोकं स्वयं न कमीरं।
त्रयं काल रूअं त्रिगुन्नं त्रिधामं, दुअं कारनं कित अन्नैक नामं।
रूअं लघ्घु, चुलं सु आर्यास तूलं, बरं अग्र काली स्वरं सद्धिमूलं।
सदा भैरवं रूप बोरं बिराजं, बरं अग्र काही सुधारी सुकाजं।
जहां संकटं सेव मानै अपारं, तहां आप आयं नियं काम सारं।
नमै बीर लोकं त्रिलोकं त्रिसूलं, गदाचक्र बाहं हथं धंनु जूहं।
मदग्गं त्रिसूलं, परीधं, सुषासं, ग्रहै बह्म संक्रीति संगी दुरासं।
कनै कुत कत्ती पुरस्सो कुठारं, धरै सब्बलं शेल गाली कनारं।
हनं मूसलं भिंडि पाली फरीक्का, रुयं दट्ठ निट्ठं परस्सं छुरिक्का।
धरै आवधं ऐक अन्नेक नामं, जहां संक सेवं तहां आय कामं।
अह सकटं आग लग्यौ अनूपं, करौ आज काजं अम्हं आय जूपं।
करौ आज माया प्रगट्टं सरूपं, महा मोहनं आसूरं शब्ब नूपं।
सुने आईयं बीर अस्तुत्ति चंदं, भई आसुरानं सबै बुद्धि मंदं।

कविराव मोहनसिंह, उदयपुर

पृथ्वीराज रासौ पर की गई शंकाओं का समाधान

[यह लेख 'शोध पत्रिका' त्रैमासिक भाग २ अंक ३ तथा ४ (प्रकाशन सन् १६५१) से अविकल रूप में लिया गया है । इनके सम्पादन कार्यकाल में कुछ और संशोधित विचार ज्ञात हुये हैं, जिनका उल्लेख आगे कर रहे हैं ।

—सम्पादक]

पृथ्वीराज-रासौ अपने समर्थकों और महत्त्वरत्तकों का तो अनुगृहीत है ही; किन्तु अपने विरोधियों और आक्षेप-कर्त्ताओं का भी इसलिए ऋणि है कि यदि वे शंकाएँ नहीं करते तो प्रक्षिप्त अंश के मिलजाने के कारण इसमें जो भ्रान्तिकारी दोष आगया है, वह प्रकाश में नहीं आता । उनकी शंकाओं के फलस्वरूप ही साहित्य-संसार अरसेसे इसके गुणों और दोषों की आलोचना कर रहा है । यद्यपि एक पक्ष ने इसे कूड़े-करकट में डालने जैसा कहकर इससे पूर्ण मनो-मालिन्य कर लिया है, फिर भी दूसरा पक्ष इसके मंडन पर तुला हुआ है । यह पक्ष अब तक विचार करके इसी परिणाम पर पहुँचा है कि रासौ की यह दशा उसमें प्रक्षिप्त अंश मिलने के कारण ही हुई है ।

हमें बहुत समय से रासौ का आलोचनात्मक अध्ययन करने का अवसर मिला है । अपने दीर्घकालीन अध्ययन से हमें ज्ञात हुआ कि रासौ के प्रक्षिप्त और मूल अंशों का पार्थक्य कर देने वाली कुंजियाँ रासौ के भीतर ही विद्यमान हैं । उन्हें ढूंढ लेने पर हम सहज ही इस महान् साहित्यिक कोश में प्रवेश पा सकते हैं, और यदि अपनी परखने वाली शक्ति का समुचित उपयोग कर सकें तो इस रत्न-

राशि में मिश्रित झूठे-सच्चे-पद्य-रत्नों का सुगमता से विभाजन कर इस अमूल्य थाती को पुनः मूल रूप दे सकते हैं।

अपने दीर्घ-कालीन गंभीर अध्ययन के फल स्वरूप इसके रहस्य को खोलने वाली जो कुंजियां हम खोज पाये हैं, वे सब पूर्ण रूप से तो तभी प्रकट हो पावेंगी, जब समस्त ग्रन्थ का संपादन हो चुकेगा और तभी विद्वान् बता सकेंगे कि हमारा श्रम सार्थक हुआ या नहीं, तब तक रासौ पर लिखित अपने विस्तृत निबंध का यह संक्षिप्त रूप हम साहित्य-मर्मज्ञों के समक्ष उपस्थित करते हैं जिससे भी हमारी खोजी हुई कई एक कुंजियां स्पष्ट हो सकेंगी। यदि वे रासौ के क्षेपक और मूल अंश का विभाजन समझने में विद्वानों को कुछ भी लाभप्रद हुईं तो हम अपना श्रम सफल समझेंगे।

निबंध के इस प्रारम्भिक भाग में रासौ के सम्बन्ध में कीगई शंकाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसमें हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि रासो के जो चंद-कृत मूल पद्य हैं, वे कहीं इतिहास के प्रतिकूल नहीं जाते।

शंकाएं और उनके उत्तर

शंका १—रासो में चहुआन वंश को अग्निवंशी लिखा गया है। यह ठीक नहीं। चहुआन वंश से सम्बन्ध रखने वाली प्राचीन पुस्तकों और लेखों के अनुसार यह वंश ब्रह्मयज्ञ के समय सूर्यमंडल से अवतरित (उतरे हुए) दिव्य पुरुष का सन्तान और सूर्यवंशी है।

उत्तर—हमने रासौ की जिन हस्तलिखित प्रतियों को देखा, उन सभी में वे पद्य उपस्थित हैं, जिनमें ब्रह्मा द्वारा यज्ञ होने का उल्लेख है। वशिष्ठ द्वारा यज्ञ होने वाली कथा और उससे सम्बन्ध रखने वाली अन्य कथाएँ, बाद में क्षेपक लिखने वालों ने जब २ रासौ में मिलाई, तब वे ब्रह्मयज्ञ वाले पद्य कुछ यथा-स्थान रह गये और कुछ आगे पीछे होगये। फिर भी वे पद्य रासौ में ज्यों-के-त्यों बने रहे। यद्यपि संग्रहकर्त्ताओं ने असावधानी से या जान-बूझ कर वशिष्ठ द्वारा यज्ञ होने वाली कथा में उन पद्यों को मिला दिया है। फिर भी ये ब्रह्मयज्ञ वाले पद्य क्षेपक कथा में पूरी तरह नहीं मिल पाते। विचारने पर वे अपना सम्बन्ध ब्रह्मयज्ञ विषयक वर्णन से ही बतलाते हैं। अस्तु, ब्रह्मा द्वारा यज्ञ किये जाने का और उस समय चाहुवान के प्रकट होने का वर्णन रासौ में जिन पद्यों द्वारा किया गया है, उनका आशय इस प्रकार है—

ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये जब मण्डप की रचना की तब असुरों ने आकर निस्संकोच उस स्थान को भ्रष्ट करना चाहा[1]। यह देख कर ब्रह्मा ने मन ही मन निश्चय किया कि इनके नाश के लिए स्वयं सूर्य को रण-संचालक योद्धा के रूप में प्रकट करना चाहिए[2]। अतएव ब्रह्मा ने अग्निकुण्ड को अग्नि से सुसज्जित (या अग्निदेव को स्थापित) करके आसन बिछा यज्ञ आरम्भ किया और तत्वयुक्त मन्त्रों के साथ स्तुति का उच्चारण करने लगे। पश्चात् कमण्डलु से हाथ में जल लेकर छोड़ते हुए बोले आ! आ! इन दुष्टों को भगा दे। उनका ऐसा करना था कि "अनल चाहुआन" आ उपस्थित हुआ[3]।

---

१ जब चतुरानन जग्य कजि, सजि मण्डप सु स्थान।
तब आसुर अनसंकि सह, किय उच्छिष्ट उत्थान॥

२ चतुरानन मन च्यंति, असुर वध अवनि विचारिय।
जज्ञ जिष्ट उच्छिष्ट करे कातर-क्रत-हारिय॥
सुरणि अंश संग्रहे हव्य नहैं हव्य हुवे वह।
सो उपाइ संचिये जोइ संघरे असुर सह॥
निम्मो सु "सूर-संग्राम भर" अरि अलग खंडे खलह।
सम धरे जग्य कारण सु कलि विमल सीष्टि सुम्भइ सकल॥

रासौ, हस्तलिखित प्रति, देवलिया से प्राप्त समय १, पृष्ठ ७-८।

३ "अनल कुण्ड किय अनलसज्जि" उपगार सार सुर।
कमलासन आसन-मंडि जग्योपवित्त जुर॥
चतुरानन स्तुति सद्द मंत उच्चार सार किय।
सु करि कमंडल वारि जुजित आह्वान थान दिय॥
जाजन्नि पानि अव अहुति जजि भजि सु दुष्ट आह्वान करि।
उपज्यो अनल चहुवान तब चव सु बाहु असि बांह धरि॥

(समय १ पृ० ५१)

यज्ञ समय उस स्थल पर अवतरित होकर उसने बाण वर्षा से असुर समूह को नष्ट कर ब्रह्मा के यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त किया [1]

नामावला वाले छन्द के प्रारम्भ में भी लिखा है कि शत्रु समूह के नाश के लिये अनल "चाहुआन" साक्षात् सूर्य ही था, जिसकी उत्पत्ति का मूल ब्रह्मयज्ञ है [2]। तदुपरान्त रासो में स्पष्ट रूप से चाहुआनों को सूर्यवंशी लिखा है 'ससि व्रतासमय' में चाहुवान और कमधज (राठौड़) वीर के वर्णन में कवि लिखता है—

घण्ट निनाद होते ही नक्कारे निशान बजने लगे। दोनों सेनायें शस्त्रों से सुसज्जित होकर दिशाओं को दबाती हुई रणस्थल की ओर बढ़ी। उस युद्ध-वारिधि में शशिव्रता मोहिनी-स्वरूप थी। दोनों सूर्यवंशी क्षत्रिय (चौहान और कमधज) देव-दानववत् रण-सिंधु को मन्थन करने लगे। इस रण का हेतु एक गुप्त छद्म पत्र (शशिव्रता-लिखित) था। अन्ततः वह छद्म गुप्त न रह सका। क्रोध-रूपी वाड़वा-नल को लपटें उठने लगीं। दोनों (कमधज और चौहान) के बीच में यादव कुमारी (शशिव्रता थी और दोनों सिंहों की शस्त्र द्वारा झपट (भिडंत) थी [3]

---

१ अनल कुण्ड आभंग, उपजि "चहुवान–अनिल" थल।
सुकर संठि करिवार, धनुष संग्रह्यो वान–बल॥
तिन रक्खिस–परिवार, धार मुख धरनि निघट्टिव।
खल जु खित्त संमुहे, तिनह सिर सरअन तुट्टिय॥
बंभान जग्य निर्विघ्न किय, पुहप वृष्टि सुर सीस रजि।
रक्खी सुधरनि खग भुज्ज वर, रिष्ट निवारिय इष्ट भजि॥

(स० १, पृ० ५५)

२ बम्भान जग्य उत्पन्न सूर।
"चहुवान–अनल" अरि मलनसूर॥

(स० १, पृ० ५५)

३ सुनि बज्जी घरियार लाग निस्सानन बज्जिय।
इक दिन दोऊ सेन; चंपि चावद्दिसि सज्जिय॥
महन–रंभ सा जग्य मध्य मोहन–ससिव्रत्त।
असुर स सुर मिलि मथहिं "सूरवंशी" रजपूर्त॥

समय ६१ में कन्ह चौहान के अन्तिम युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है-

पहर पर पहर बीत गयीं, सिरत्राण पर तलवार बजती रही। बख्तरपाखर शस्त्रों के प्रहार से टूट गये। सिद्ध-किन्नरों ने आविद्ध शरीर को ग्रहण किया। इतने अस्त-व्यस्त होते हुए भी, हे वज्री कपाट (वज्र से वक्षःस्थल वाले) तूने दधीचि से बाजी मार ली। हे हरि-वंश-हंस (सूर्यवंश के सूर्य नरनाह कन्ह)! तूने स्वर्ग प्राप्त कर देवाङ्गनाओं से भेंट की। किन्नरों और कमंधों की तंत्रा (वाद्य और बोल) बंद कर दी। उस (कन्ह चौहान) का ऐसा अपूर्व शौर्य देख कर हर्ष से जयचन्द प्रफुल्लित होगया अर्थात् खिल पड़ा।[१]

इससे स्पष्ट है कि मूल रासौ-कार (चंद) चाहुवान का प्रादुर्भाव ब्रह्म यज्ञ के समय सूर्य द्वारा होना और चाहुवान वंश को सूर्य-वंशी होना ही मानता था।

आरम्भ पत्र मंड्यो कपट, कपट मुक्कि कढ्ढिय लपट।
दूहूँ बीच जहौं कुँवरि, उभयसिंह सारह झपट॥

(स० २५ पृ० ८२४)

१. पहर एक पर पहर, टोप असि वर वर बज्जिय।
बखर पखर जिन सार, पार वट्टन तुटि तज्जिय।
रोम रोम वर विद्ध, सिद्ध किन्नर विन्निय वर।
अस्त वस्त वज्री कपाट, दद्धीच हार हर॥
रुद्धि मंस "हंस—हरि—वंश नर" दिव दिवंग आ भिल्लत।
किन्नर कमंध यटि तंति तिन, सुवर पंग दिक्खिय खिलत॥

(स० ६१ पृ० १६१८—१६)

रासौ में चालुक्य और प्रतिहार वंश को अग्नि वंशी जिन पद्यों में लिखा है, वे पद्य भी वशिष्ठ द्वारा यज्ञ किये जाने वाली क्षेपक कथा से ही सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि रासौ के अगले खण्डों में चालुक्यों को ब्रह्म—चालुक्य (ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न) बताया है—

"लरं मधि ब्रह्म सु चालुक राव।
ब्रह्म चालुक्क ब्रह्म चार, ब्रह्म विद्या वर रक्खिय।"

शंका २— रासो में लिखी चाहुवानवंश की नामावली वि० सं० १०३० से १६३५ तक के चाहुवानों के लेखों और पुस्तकों से नहीं मिलती। उसके नाम कुछ नामों को छोड़ कर कृत्रिम हैं।

उत्तर—रासौ-कार चन्द अपने ग्रन्थ (रासौ) के प्रत्येक विषय को स्पष्ट करने के लिए स्व-रचित छंदों की जाति, भाषा, शैली और परिमाणादि का इस तरह उल्लेख कर गया है। वह लिखता है- मेरे रचे प्रबन्ध काव्य (रासौ) के खंडों में संस्कृत पद्यों के अतिरिक्त जितने पद्य हैं- उनकी जाति कवित्त (षटपदी) साटक (शार्दूलविक्रीडित) गाहा (गाथा) और दोहे हैं। उनका मात्रादि नियम पिंगल (छंद शास्त्र के-आचार्य) के अनुसार, और अमरवाणी (सस्कृत) के पद्यों का भरत के मतानुकूल है [१]। मेरा काव्य न अधिक गहन, और न अधिक स्पष्ट है। उसे आप शैवाल से आच्छादित जल के समान समझिये। सुवर्ण सुशोभित गले का हार भी आप इसे कह सकते हैं। इसमें अमरवाणी (संस्कृत) और श्रेष्ठ बोल—चाल की (शुद्ध रूप से निकट) भाषा है। श्रोताओं के मनोविनोदार्थ इसमें वाग्विलास

इसी प्रकार प्रतिहारों को रघुवंशी लिखा है।

"कड्ढेति लोह परियार ते, सुनहु सूर सूरन व्रनन"।

"उभै बंध हम्मीर—खेत बंधे रघुवंशी"

चालुक्यों का ब्रह्मा के चुल्लू से होना (ब्रह्मा द्वारा इस वंश का प्रादुर्भाव होना) चालुक्य राजा "राज-राज" के दानपत्र से और कश्मीर के प्रसिद्ध पण्डित विल्हण रचित "विक्रमांक-देव चरित" नामक पुस्तक से जो चौलुक्य राजा विक्रम (राजराज) के ही समय में लिखी गई थी, स्पष्ट है और प्रतिहारों को रघुवंशी लिखा जाना भी इतिहास के अनुकूल ही है।

प्रतिहारों को रघुवंशी लिखने के प्रमाण में जो ऊपर पद्य उद्धृत किये हैं, वे हाहुली-हम्मीर के वर्णन में लिखे गये हैं; (हम्मीर को) प्रतिहार क्षत्री माना है। उसके दोनों भाइयों को भी रण-स्थल में प्रवेश होने के वर्णन में, रघुवंशी लिखा है।

१ छंद प्रबंध कवित्त जति [१] साटक गाह दुहत्थ।
लहु गुरु मंडित खंडि यहि पिंगल अमर [२]-भरत्त॥

(स० १, पृ० २२)

---

(१) जितने या विश्राम। (२) अमर वाणी।

भी मिलेगा। पर मुझ अल्पज्ञ की उक्ति आप प्रायः अयुक्ति संगत ही देखेंगे, युक्ति संगत नहीं। सयुक्ति अयुक्ति चाहे कुछ भी हो मैंने बयन (बोल चाल की) भाषा में प्रयुक्त छंदों का ही इस ग्रन्थ में प्रयोग किया है। मात्राएं सब नियमानुसार हैं, न्यूनाधिक नहीं। यदि पाठक इसे विचार पूर्वक न पढ़ेंगे तो इसका दोषी मैं (चंद) नहीं[1]। इसमें वर्णित छद अर्थ-हीन, वर्ण-हीन और वृत्त-हीन नहीं है[2]।

मैंने इस ग्रन्थ में सूक्तियें उच्च धर्म, राजनीति नवरस, छै भाषाओं में पुराण शैली को सामने रख कर लिखा है। साथ ही विषयोचित यावनी (कुरान की) भाषा का भी प्रयोग किया है[3]। इसमें मुनि (कोई मुनि या-चंद के गुरु) के गुरु मंत्र (उपदेश) से संनियमित-सरस कुल छंद (या श्लोक परिमाण ७००० हैं) नौसिखियों (या नये शिष्यों) को चाहिए कि मुझे दूषित करने को पढ़ते समय इसमें कमी बेशी न करें।[4]

---

१ अति ढंक्यो न उघार सलिल जिमि सिक्खि सिलावह ।
वरन वरन सोभंत हार चतुरंग विशालह ।।
विमल अमल १ वानी विशाल बयन वानी वर व्रन्नन ।
उक्ति न वयन विनोद मोद श्रोतन मन हन्नेन ।।
युत अयुत जुक्ति विचार विधि, वयन छंद छुट्यो न कह ।
घटि बढ्ढि मत्ति कोई पढई चन्द दोष दीज्यो न वह ।।
(स०६८, पृ०२६)

२ अर्थ हीन ब्रन हीन छन्द हीनो नन गावय ।
(स० ६८, पृ० २५०६)

३ उक्ति धर्म विशालस्य राज नीति नवं रसाः ।
षड् भाषा पुराणंच कुरानं कथितं मया ।।
(स० १ पृ० २३)

४ सत्त सहस नख सिख सरस, सकल आदि मुनि २ दिक्ख ।
घट बढ़ मत ३ को पढो मुहि दूषण नव सिक्ख ।।
(स० १ पृ० २५)

---

(१) अमरवाणी। (२) मुनि के गुप्तमन्त्र से। (३) नहीं, राजस्थान-आदि में ही प्रयोग होता है।

इससे निश्चय है कि संस्कृत पद्यों के अतिरिक्त प्राचीन कवियों द्वारा प्रयोग होने वाले छंदों में से उपरोक्त ४ जाति के छंद ही चंद-रचित हैं[1]। मूल (चंद-रचित) पद्यों की भाषा संस्कृत के अतिरिक्त श्रेष्ठ बोल चाल की भाषा है। अर्थात् वह (भाषा) शुद्ध रूप के निकट, सरलता और स्वाभाविकता को लिए हुए हैं और बनावटीपन तथा क्लिष्टता से दूर है. जिसमें षड् भाषाओं का पुट होते हुए भी उन से वही शब्द इसमें ग्रहण किये गये हैं, जो प्रचलित थे। विषयोचित मुसलमानी भाषा को भी इसमें स्थान दिया है। रचना में आर्थिक, वर्णिक और छन्द विषयक दोष नहीं है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय सम्राट् पृथ्वीराज का चरित्र है, किन्तु साथ ही इसमें वाग्विलास, सूक्तियें, मनुष्योचित उच्चधर्म राजनीति और नवरसों का भी संचार हुआ है। शैली इसकी प्राचीन (या पुराण ग्रन्थ सी) है।

अस्तु, उपरोक्त बातें रासो का अध्ययन करने वालों को लाभ-प्रद होने से यहाँ बतलाई गई हैं। अब हमको देखना है कि वंशावली सम्बन्धी शंका कहां तक ठीक है। जब कि चन्द रचित छंदों (षट्पदी, शार्दूलविक्रीडित, गाथा और दोहों) की जाति से वंशावली वाला छंद भिन्न (पद्धरी) है। उसे चन्द की रचना कैसे कहा जा सकता है ? और जब यह अंश चंद-रचित नहीं; किन्तु प्रक्षिप्त है, तब इसके लिए चंद दोषी किस प्रकार ठहराया जा सकता है[2]।

---

[1]ज्ञात रहे प्राचीन काव्य-ग्रन्थों में कथानक रूप से वर्णित चौपाई और अरिल्ल छन्द भी देखे गये हैं तथा एक आध कवि ने पद्धरि (पाधड़ी) भी लिखा है, लेकिन चन्द ने स्व-रचित छन्दों की जाति नाम देकर स्पष्ट रूप से बतला दी है। इसलिए मूल रासों में हम अन्य छन्दों को स्थान नहीं दे सकते। रासौ में चन्द पुत्र गुनचन्द आदि की रचना होने का भी पता हमें रासौ ही में मिला है, लेकिन अभी तक उनके पद्यों का जांच द्वारा निश्चय करना बाकी है। तदुपरान्त यह निश्चय है कि रासौ में प्रक्षिप्त अंश है तो हमें चद के संकेतों से और इतिहास से जांच करके, यदि प्रक्षिप्त प्रतीत हुए तो रासौ से निकाल देना पड़ेगा। क्योंकि क्षेपक लिखने वालों ने भी मूल छन्दों के समान रूप देने की कोशिश की है।

[2]यद्यपि नामावली वाला छन्द (पद्धरी) हम चंद रचित नहीं मानते फिर भी

शंका—रासो में पृथ्वीराज की माता का नाम कमला लिखा और उसे दिल्ली के अनंगपाल की तँवर की पुत्री बतलाया सो गलत है, क्योंकि पृथ्वीराज विजय, हम्मीर काव्य और सर्जुन चरित्र में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी लिखा है, और वह त्रिपुरी के हैहय वंशी राजा तेजल की पुत्री थी। तदुपरान्त उस समय दिल्ली पर अनंगपाल नाम का या अन्य कोई तँवर शासक ही नहीं था, दिल्ली तो चाहुवान विग्रहराज (चतुर्थ) के पहले से ही अजमेर के अधीन कर ली थी।

उत्तर—रासो में वर्णित (दिल्ली किल्ली कथा वाले) मूल पद्यों से ज्ञात

हमने नामावली की जांच की तो शंकाकर्त्ताओं के कथनानुसार उस (रासौ) में ४६ नाम नहीं, (अर्थात् १६ नाम जो उन्होंने माने वे नाम नहीं, विशेषण हैं) ३० ही नाम हैं, जो संख्या की दृष्टि में अन्य लेखकों की नामावली से मिल जाते हैं। उपाधि सूचक नामों का खयाल रखने से उनमें ६ नाम यथाक्रम मिलते हैं। २ नाम ऊपर नीचे हैं। इस तरह रासौ में वर्णित नामा-वलियों से विशेष भिन्न नहीं, अतः यह नामावली भी विचारणीय है।

देखा गया है कि प्राचीन समय में मुख्य नरेश को स्वामी मानते हुए भी राजवंश का प्रत्येक व्यक्ति राजा, महाराजा, रावल, राणा आदि उपाधियां अपने नाम के साथ भी लगाता था, बल्कि जनता उनको भी अपना स्वामी ही मानती थी। आज भी शेखावाटी (जयपुर) में मोटे और छोटे राजा हैं। मेवाड़ में भी बड़े छोटे रावलऊ (ठाकुर) कहलाते हैं। वे अपने पट्टे परवानों में राजा, महाराजाधिराज आदि लिखते हैं। इसलिए पूर्वकालीन शैलियों का विचार रख कर प्रमुख वंश और छोटे वंश की जांच न हो पावे तब तक जिस किसी की प्रशस्ति मिली और उसे वहां का प्रमुख राजा मान कर नामावली संग्रह करना तथा कोई इस प्रकार की नामावली लेखों में आई हो, उसे विश्वस्त मान लेना, ठीक नहीं। इससे धोखे की सम्भावना है। एक सज्जन द्वारा ज्ञात हुआ है कि हाल में एक लेख ऐसा मिला जिससे विद्वानों द्वारा

होता है कि विक्रम की १३ वीं सदी में दिल्ली पर अनंगपाल तँवर शासक था। उसने तँवर वंश के स्थायित्व के लिये ज्योतिषी द्वारा गाड़ी हुई कीली को उखेड़ दिया। तिस पर ज्योतिषी ने उसे (अनगपाल को) भविष्य कह सुनाया-तूने बेसमझी से कीली को उखेड़ दिया, यह बुरा किया। इस दुर्घटना के कारण से चाहुआन (विग्रह चतुर्थ) अड़ेगा और तुरक्कों का विच्छेद होगा, किन्तु फिर भी तुम (तँवर) जोश में आकर गृह (दिल्ली) को मंडित (बनाये रक्षित) रक्खोगे। इसके १६ वर्ष पश्चात् बलि-विक्रम के समान मेवात का पति (अजमेर राज्य जहाँ मेव या मेर अधिक रहते हैं, वहाँ का स्वामी) दिल्ली पर एकच्छत्र राज्य करेगा[1]। हे अनंगपाल! तू भविष्य बूझता है तो सुन (चाहुवानों के पहले हमले में तुम दिल्ली को बचा लोगे तो क्या हुआ)। अन्त में चाहुवानों का (दिल्ली पर) राज होगा, यह स्पष्ट दीख रहा है। सब तँवर अपने बने रहने के लिए लड़ेंगे, लेकिन लोह की धार (शस्त्र प्रहार) से धरा नष्ट हो जायगी और वे (तँवर) सांसारिक बधन से छूट कर मुक्ति को प्राप्त करेंगे। मेरे निषेध करने पर भी यह दुर्घना घटी, इसमें किसका दोष है। भविष्य नहीं मिटता और होता वही है, जो विधि ने निर्माण कर दिया है[2]। (उपरोक्त प्रथम आक्रमण के) १६ वर्ष बाद

निश्चत की हुई मेवाड़ राजबंश की नामावली में संशोधन करना आवश्यक हो गया है।

अस्तु, चहुवान वंश की नामावली पर हम इस दृष्टि से विचार नहीं कर पाये हैं; क्योंकि अब तक हम उसे क्षेपक मानते हैं और आगे को किसी कारण से इसे रासौ में स्थान देना आवश्यक समझेंगे, तो हम फिर से इस पर विचार करेंगे।

१ अनंगपाल चक्कवे बुद्धि जो इसी उकिल्लिय।
भयो तुँवर मति हीन, करी किल्लिय ते ढिल्लिय॥
कहे व्यास जग ज्योति, अगम आगम हों जानो।
तोंअर ते चहुवान, अन्त व्है है तुरकानो॥
तुँवर सु अवट्टि मंडव धरह, इक्कराय बलि विक्कवै।
नब सत्तअन्त मेवात पति, इक्क छत्त महि चक्कवै॥

(स० ३, पृ० २६१)

२सुनि अनंगेश नरेश, मोहि इह आगम बुज्झै। अंत राज चहुवान, मोहि इह आगम सुज्झै।
सब तूँवर खग मग्ग, भिरिग मंडव आहुट्टै। सार धारधर धूगि, मुगति पै बंधन छुट्टै॥

फिर (चाहुवान ही) दिल्लीश्वर होगा, वह मुसलमानों की तलवार छीनेगा (पराजित करेगा) और दिल्ली की धरा पर तपेगा। वह मेवात (अजमेर) की मही का स्वामी- द्वीपों-द्वीपों पर सैन्य सजेगा। कितने ही उसके चरणों की शरण ग्रहण करेंगे। कितने ही उसके खड्ग द्वारा नष्ट होंगे। इस प्रकार पृथ्वीराज इस (दिल्ली की) भूमि को प्राप्त करेगा। यह मैंने कहा सो प्रमाण युक्त है[1]।

फिर ज्योतिषी पृथ्वीराज के भविष्य को भी कहता है। इस (पृथ्वीराज) के लिए भी यही बात (शासन का नाश होना) निश्चित् है। मैंने उसके पतन का भविष्य देखा वह संक्षिप्त से कहता हूँ, उसे भी सुनो। म्लेच्छों के वर (सौभाग्य) से उस (पृथ्वीराज) का सत और निकटवर्तियों का धर्म कम होगा और वह पृथ्वीराज रस (विलास) में रत (लीन) हो जायगा। यह बात उसके दिल्ली पाने के १६ वर्ष बाद होगी। ध्रुव, रवि, मर्यादा और यश टल जाय, किन्तु मेरे वचन टलने के नहीं। ये सब अयान सत्ता (शासन की अदृश्य बातें) मेरे विचारने पर और तेरे इस कीली के निकालने से दृष्टिगोचर हुई है। अतः अब तू प्रभु के चरण की शरण ग्रहण कर[2]।

इह दोष राज दिज्जै नहीं, मैं बहु बार बरज्जियो।
भवतव्य बात मिटै नहीं, होय सु ब्रह्म सज्जियो॥
(स० ३, पृ० २६४)

१ नव सत्तै वर अन्त (वरसंत), बहुरी दिल्ली पति होई।
खग्ग खोद (खोस) खुरसान, पहुमि चक्कवै सु जोई॥
महि मेवात महीप, दीप दीपनी दल मंडे।
किक्क रहे पय आय, किक्क खल खंडनी खंडे॥
मंडे सु पुहुमि पृथ्वीराज जिमि, सत्त बत्त जोतिक जपिय।
मंनी सु सत्ति करि सबनि,इह व्यास वचन व्यासह थपिह॥

२ तिहि जय वत्त प्रमान, सुनहिं दिठ तुच्छ सु अन्तं।
बर म्लेच्छनि सत घटहि, धम्म पारस रस रत्तं॥
हुव नव सत्त प्रमान, ध्रूव टरई रवि टरई।
टरै न व्यास वचन्न, मान जस ते अनु (जु) टरई॥
ये सब अजान सत्ता जुई, परी इच्छ मच्छी मुई।
परि पै प्रसन्न परतीनि (ति) करि, तब काढ़त आवई जुही॥
(स० ३, पृ० २६४-२६५)

इससे स्पष्ट है कि चाहुवान विग्रहराज (चतुर्थ) के दिल्ली पर हमला करने का वर्णन रासौ में विद्यमान है। भविष्य कथन के अनुसार पृथ्वीराज का दिल्ली से शासन वि० सं० १२४६ में नष्ट हुआ। उसके पूर्व संयोगिता का वरण करने पर वि० सं० १२४५ के आसपास से ही वह (पृथ्वीराज) विलासी हो गया, जिसके कारण उसका सर्वनाश हुआ। उसके (वि० सं० १२४५ के निकट) विलासी होने के १६ वर्ष पूर्व वि० सं० १२२६ में उसे (पृथ्वीराज को अनंगपाल द्वारा) दिल्ली का राज्य मिला। इनके १६ वर्ष पूर्व अर्थात् वि० सं० १२१३ के निकट विग्रहराज चतुर्थ के समय (चतुर्थ विग्रह का समय वि० सं० १२०७ से १२२० तक निश्चित है)। चाहुवानों (स्वयं विग्रह) का प्रथम हमला दिल्ली पर हुआ और म्लेच्छों का विच्छेद होकर दिल्ली विजय हुई। लेकिन फिर भी दिल्ली किसी तरह तँवरों के ही अधीन रही।

चाहुवान विग्रहराज (चतुर्थ) का वि० सं० १२२० वाला लेख भी यही बतलाता है[1] कि उस (विग्रह) ने म्लेच्छों का विच्छेद किया और विजीत देशों को करद (कर देने वाले) किया। सम्भव है विग्रहराज

---

१ "ॐ सं० १२२० वैशाख शुति (दि) १५ शाकंबरी भूपति श्रीमदान्नलदेवात्मज श्रीमद्वीसल-देवस्य"।

आविंध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसंगा—

दुद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत—कंधरेषु प्रसन्नः

आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छ-विच्छेदनाभि—

र्देवः शाकम्भरींद्रो जगति विजयते बीसलः क्षोणिपालः ॥

ब्रूते सम्प्रति चाहमान तिलकः शाकंभरी भूपतिः

श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मजः

अस्माभिः करदं व्यधापि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः।

शेष-स्वीकरणायमस्तु भवतामुद्योग शुन्यं मनः ॥ २ ॥

संवत् श्री विक्रमादित्ये १२२० वैशाख शुति (दि) १५ गुरौ लिखितमिदं राजादेशात्

ज्योतिषिक श्रीतिलक राजप्रत्यक्षं गौडान्वयः कायस्थ माहव पुत्र-श्रीपतिना अत्र समये महा मंत्री राजपुत्र श्री सल्लक्षणपालः।

(देखो पृथ्वीराज चरित्र, पृ० ४४–४५ लेखक रामनारायणजी दूगड़)

चतुर्थ की चढ़ाई के समय दिल्लीपति के (तंवर शासक) ने भी कर (प्रति वर्ष या एक मुश्त) देकर अपने मुख्य स्थान (दिल्ली) को बचा लिया हो। चाहुवान सोमेश्वर (पृथ्वीराज के पिता) के समय का वि० सं० १२२६ वाले बिजोलियाँ के लेख में विग्रहराज (चतुर्थ) द्वारा दिल्ली और हांसी को विजय करने का जो उल्लेख हुआ है, इसका भी तात्पर्य यही समझना चाहिये कि विग्रहराज ने दिल्ली और हाँसी के युद्ध में विजय प्राप्त की और वहां के स्वामी को करद किया। क्योंकि स्वयं विग्रहराज चतुर्थ को, उपरोक्त लेख विजित देशों को करद करना ही बतलाता है।

इस तरह यह तो सिद्ध हुआ कि दिल्ली-राज्य वि० सं० १२१३ के निकट चाहुवानों (चतुर्थ विग्रहराज) द्वारा करद किया गया और वि० सं० १२२६ में वह (दिल्ली का राज्य) सम्पूर्ण रूप से पृथ्वीराज को प्राप्त हो गया।

अब यह देखना है कि वि० सं० १२१२ से लेकर १२२६ तक दिल्ली पर अनंगपाल नामक तँवर शासक था कि नहीं ? अनंगपाल के नाम दिल्ली के कई स्तम्भों पर उपलब्ध हैं, लेकिन उनमें संवत् नहीं है। केवल कुतुबुद्दीन ऐबक की मसजिद के अहाते में जो लोहस्तंभ पड़ा हुआ है, उसी पर उसके विषय में संवत् का उल्लेख इस प्रकार है "संवत् दिल्ली ११०६ अनंगपाल बही", जिसका आशय अब तक विद्वानों ने यह निकाला है कि वि० सि० ११०६ में अनंगपाल ने दिल्ली को बसाया, किन्तु यह आशय ठीक नहीं जचता, क्योंकि संवत् लिखने के पश्चात् ही संवत् के अंक नहीं आ गये हैं, "संवत् दिल्ली" लिखने के पश्चात् अंक लिखे हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि "दिल्ली के संवत् ११०६ में इसे (दिल्ली को नये सिरे से या जीर्णोद्धार के रूप में) बसाया"। उसमें बसाने के स्थान का नाम नहीं आया, परन्तु जहां यह लेख लगा है, वह स्थान ही अपने बसने की पुष्टि स्वयं कर देता है। यह दिल्ली वाला संवत् कौनसा था, इस पर विचार किये जाने से निश्चित है—वही दिल्ली वाला रासो में लिखा अनंद संवत् ही है। जिसमें स्वर्गीय पंड्या मोहनलालजी के मतानुसार ६१ वर्ष विक्रमी संवत् से जो कमी हैं वे, जोड़ देने से वि० सं० १२०० में अनंगपाल का दिल्ली पर होना सिद्ध होता है।

---

१ (देखो पृथ्वीराज चरित्र, पृ० ५० लेखक रामनारायणजी दूगड़)

जिनपाल रचित खरतरगच्छ-पट्टावली का अनुसरण करते हुए श्रीयुत् अगरचन्द नाहटा, डाक्टर दशरथ शर्मा आदि विद्वान् भी वि० सं० १२२३ के लगभग मदनपाल नामक राजा का नाम दिल्ली के शासन रूप में होना लिखते हैं[1]। मदनपाल, अनंगपाल का पर्यायवाची है। अस्तु इससे भी अनंगपाल का समय चाहुवान विग्रह (चतुर्थ) सोमेश्वर और पृथ्वीराज से आ मिलता है।

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी अमर ने अपने मित्र रहीम को जो पद्य लिखे[2] उनसे भी निश्चय है कि तँवर और राठौर

---

१ देखो— (१) मणिधारी जिनचंद्रसूरि (लेखक—अगरचंद नाहटा, भँवरलाल नाहटा), पृ० १५ तथा उसी की डॉक्टर दशरथ शर्मा लिखित प्रवेशिका, पृ० ४–५ (२) वीणा) (मध्य–भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर), जुलाई, सन् १६४३ ई०, वर्ष १६, अंक ६, पृ० ६२४।

२ अमर ने कहलाया—

तँवरां सूं दिल्ली गयी, राठोड़ां कनवज्ज।
कहिजो खाना खान नै, ऊ दन दीसै-अज्ज॥
गौड कछावा राठवड़, गोखां जोख करंत।
कहिज्यो खानाखान नै (म्हैं) बनचर हुआ फिरंत॥

रहीम ने उत्तर दिया—

धर रहसी, रहसी धरम खप जासी खुरसाण।
अमर बिसंभर ऊपरै, राखौ नहचौ राण॥

अमर और रहीम के इन पद्यों का भावार्थ स्पष्ट ही है, लेकिन हमने इनके गूढ़ार्थों पर विचार किया तो "अमर" के प्रारंभिक पद्य के तीन अर्थ होते हैं, जिन सब से सिद्ध होता है कि चाहुआनों से पूर्व दिल्ली पर तँवरों का ही शासन था और तँवर वंश से कन्नौज एक ही समय (२२ वर्ष के अन्तर्गत ही) छूट गये थे और यदि इन पदों के गूढ़ार्थों पर विचार किया जावे तो "अमर" पर विचलित होने का जो दोष लगाया जाता है वह भी दूर हो जाता है; किन्तु स्थानाभाव से उन गूढ़ार्थों का स्पष्टीकरण यहाँ नहीं किया गया है।

वंश के मुख्य स्थान दिल्ली और कन्नौज का एक ही समय (२२ वर्ष के अन्तर्गत-ही) में नाश हुआ।

अस्तु, चाहुवानों से पूर्व दिल्ली का शासक तँवर ही था और वह था अनंग-पाल तँवर ही।

जबकि उपरोक्त प्रमाणों से और लोक-प्रसिद्धि से अनंगपाल तँवर का उस समय होना सिद्ध है, तो उसकी पुत्री कमला से पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का विवाह होने में कोई शंका नहीं होना चाहिये और बहुविवाह की प्रथा होने से कर्पूरदेवी भी सोमेश्वर की रानी रही हो और विमाता होने से उसको भी पृथ्वी-राज की, माता लिखा गया हो यह सम्भव है। रासो में भी पृथ्वीराज के नाना के रूप में अनंगपाल के अतिरिक्त तेज (तेजल) का उल्लेख हुआ है[1]; किन्तु पृथ्वीराज का जन्म कमला से हुआ, कर्पूरदेवी से नहीं, इस विषय में भी प्रमाण देने की आवश्यकता है।

पृथ्वीराज विषयक अन्य पुस्तकादि में लिखे गये उसके जीवन वृत्तान्त पर खूब सोचने से पृथ्वीराज का जन्म रासौ में लिखे अनुसार वि० १२०५-६ में होना ही मानना पड़ता है[2]। परन्तु विद्वानों ने सोमेश्वर का

---

[1]—"आनन्द तेज राजा अनंग" (तेजल राजा और अनंग राजा को प्रसन्नता हुई) देखो नाहर राय समय पृ० ३३५ छंद २६।

[2]पृथ्वीराज के जन्म समय पर हम विचार विस्तारपूर्वक आगे प्रकट करेंगे। यहां केवल दो प्रमाण देकर इतना ही बतलाते हैं कि सोमेश्वर की मृत्यु वि० स० १२३६ के आसपास हुई। तब पृथ्वीराज बालक नहीं था। इसलिए पृथ्वीराज का जन्म कमला से ही माना जा सकता है।

(१) 'पृथ्वीराज-विजय' के लेखानुसार सोमेश्वर की मृत्यु पर व्यावहारिक रूप में पृथ्वीराज को बालक लिखा जाकर, नवमें सर्ग में लिखा है कि राज्याभिषेक के बाद पृथ्वीराज ने इतनी उत्तमता से राज्य संचालन किया, जिससे प्रजा ऐसा मानने लगी, मानो राम-राज्य फिर लौट आया हो।

(२) तदुपरान्त उसमें यह भी उल्लेख हुआ है कि गुजरातियों से गौरी का पराभव हुआ, उस समय (वि० सं० १२३२ से १२३५) पृथ्वीराज युवा हो चुका था और कई राजकुमारियों से शादी भी कर चुका था।

विवाह कर्पूरदेवी के साथ वि० सं० १२१८ के बाद होना माना है[1] अतः पृथ्वीराज का कर्पूरदेवी के गर्भ से उत्पन्न होना संभव नहीं।

पृथ्वीराज का जन्म कमला से होना मानने का एक और कारण है। वह है रासौ का तत्कालीन वर्णन। पृथ्वीराज की जावनी के लिये अन्य पुस्तकें और लेखादि इतनी सामग्री नहीं रखते जितनी रासौ रखता है। रासौ का वर्णन प्रतिदिन के विवरण के रूप को लिये हुए है। उसमें चरित्रनायक के चरित्र के सिवाय उसके सामन्त, मन्त्रिमंडल, कर्मचारियों तथा उसके विपक्षी समुदाय का उल्लेख पूर्ण-रूप से हुआ है। युद्ध-हेतु और युद्ध का अन्तिम परिणाम भी जैसा कुछ हुआ वैसा भली-भांति से बतलाया गया है। अन्य पुस्तकों और लेखादिकों में केवल माता-पिता आदि के नामों का वास्तविक या कल्पित जैसे भी हों बहुत संक्षेप में उल्लेख भर किया हुआ मिलता है; लेकिन रासौ में पृथ्वीराज के सामन्तादिकों का वर्णन उनसे कई गुणा विस्तार युक्त है, जिसकी पुष्टि सहृदय विद्वानों ने कई मुसलमानी और हिन्दू ग्रन्थों से खोज करके की है[2] ऐसी हालत में रासौ का लेख ग्रहण करने योग्य है[3]।

---

(२) हम्मीर—महाकाव्य के लेखानुसार सोमेश्वर की अन्तिम आयु के समय पृथ्वीराज सर्व शस्त्र-शास्त्र-विद्या में कुशल और राज्यकार्य में निपुण हो चुका था। मुलतान पर शाहाबुद्दीन का अधिकार हुआ, उस समय पृथ्वीराज न्यायपूर्वक प्रजा पालन करने और शत्रु को भयभीत रखने योग्य था। उसी समय उसने शाह को कैद किया और बाद में भी कई मर्तबा बन्दी बनाया।

(देखो पृथ्वीराज-चरित्र, रामनारायण दूगड़ लिखित)

१ देखो नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) द्वारा प्रकाशित कोषोत्सव स्मारक ग्रन्थ ओझाजी का "रासौ का निर्माणकाल नामक" लेख।

२ स्वर्गीय पंड्या मोहनलालजी ने रासौ की संरक्षा में लिखा है कि तबकाते नासिरी में भी, रासौ की भांति ही, मुसलमान सैनिकों के नाम हिन्दूखां, वजीरीखां, शाहजादा महमूद तातारखां, अब्बासखां, सिजरतीखां, हुस्सेनखा इत्यादि दिये हैं। रासौ के अनुसार, हुस्सेनखां के स्त्री-लंपट होने का भी उल्लेख हुआ है।

३ जैन-साहित्य और रासौ-साहित्य के सुप्रसिद्ध अन्वेषक श्रीयुत् अगरचंद नाहटा के अनुसार भी पृथ्वीराज का जन्म सं० १२२० के काफी पहले होना चाहिये।

शंका ४—पृथ्वीराज रासौ में मेवाड़ का राजा समरसिंह जो तेजसिंह का पुत्र और रत्नसिंह का पिता था, उसकी शादी पृथ्वीराज चौहान की बहिन पृथा कुंवरी से होना और पृथ्वीराज की अंतिम लड़ाई जो वि० संवत् १२४६ में गोरी शाह के साथ हुई थी, उसमें उस (रावल समरसिंह) का मारा जाना लिखा हुआ है. ये दोनों वृत्तान्त कल्पित है, क्योंकि रावल (समरसिंह) के लेख वि० सं० १३३० से १३५८ तक के प्राप्त हैं, कहे जा सकते हैं।

उत्तर—रासो में जिस चित्तोड़ पति रावल समर का वर्णन है. उसके नाम के स्थान पर उपनाम या उपाधि सूचक नाम-विक्रम-रावल-पराक्रम-रावल, पराक्रम राज केशरी-नारेन्द्र और समर-साहस, (समर विक्रम) लिखे हुए मिलते हैं। रासोकार (चंद) अपने काव्य का चरित्र नायक पृथ्वीराज को मानता है; किन्तु साथ में चितौड़ पति रावल समर-विक्रम के प्रति भी वही भाव प्रकट करते हुए प्रारम्भ में ही वह लिखता है।

जैसे—विक्रम (रावल समर-विक्रम) और राज (राजा पृथ्वीराज) दोनों समान हो वीर हैं. और मुझ कवि चंद में भी वैसी ही वर्णन शक्ति (ईश्वर दत्त) है। अतः इन्होंने अब तक जो कार्य किये तथा जो कर रहे हैं और करेंगे, उनका वर्णन मैं अपूर्व ढंग से करता हूँ।[1]

धनकथा नामक समय में एक स्थान पर वर्णन करते हुए आया है कि पराक्रम रावल (समर विक्रम) के बहुत से अच्छे अच्छे योद्धा थे जो कूर्म और नृसिंहावतार के सदृश जाग उठे (क्रोधकर उठे) और इस प्रकार वे रघुवंशी अपनी अत्यधिक ख्याति कलियुग में फैलाने लगे।[2]

भीम-बँध समय में एक स्थान पर मुक्तक रूप से लिखा है कि विक्रम

---

१ विक्रम राज सरीस मो, बुद्धि वृंनन कविचंद ।
भूत भविष्य, वृत्तमन, कहत अनूपम छंद ॥

पहिला समय पृ० १४७ छन्द ७०३

२ अति "प्राक्रम-रावर-सुभर", कूरमनरसिंह जग्गी ।
रघुवंशी अति क्रम्मगुर, कत्थ करन कलि लग्गी ॥

समय २४ पृ० ७०६ छन्द १६७

विक्रम (समर विक्रम) और पृथ्वीराज दूसरों के भूभाग पर सिक्का जमाने वाले हैं, और इस कुसमय (जब कि हिन्दू साम्राज्य की अवस्था डांवाडोल है) में हिम्मत करने वाले ये ही व्यक्ति हैं और इन दोनों के कन्धे पर ही आज हिन्दुओं का राज्य है।[1]

समय ६६ में रावल समर-विक्रम के दर्शनों की प्रशंसा करता हुआ कवि लिखता है, "रावल समर-विक्रम", "कलंक कप्पन" (कलंक नाशक) "जीह किल" निश्चयात्मक भाषण करने वाले), कित्रिय लग्गा (कितीं से लगे हुए, कीर्तिरत), "आहुट्टा मभ्भमि (आहड़ों का माझी, मुखिया), छत्त-छत्ती-पर मानम (क्षत्रियों के छत्र स्वरूप), हिन्दवान तुरकान सरिस (सरसि) उग्गे जिमि भानम (हिन्दुओं और तुरकों पर समान रूप से सूर्य तुल्य तपने वाले), औधूत राय (राजर्षि), माया अडरु (माया से निडर, माया रहित), गोरक्ख-रा गौरक्ख जिम (गौओं की रक्षा करने वाले-गोपाल स्वरूप), वर-तित्थ-तित्थ (तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ स्वरूप) माररूप भंजन (कामदेव के रूप को भंजन करने वाले-शिव स्वरूप), विक्रम (विक्रम उपाधि या नामधारी)।[2]

समय ५६ में लिखा है-जयचंद से भिड़ते हुए रावल को उसके द्वादश सामन्तों ने (ये योद्धा राजवंशी थे, इसलिये इन्हें भी रावल लिखा है) घायल अवस्था में झूमते हुए और दबे हुए-देखा, तब उन्होंने उसे रणस्थल से बड़ी कठिनाई से निकाला, किन्तु ऐसी अवस्था में भी वह वहाँ जम कर शत्रु समूह को तलवार से काटने लगा। उस समय दो पहर तक वीर रस उसके सामने नट के

---

[1] विक्रम अरु चहुवान पर धरती शक बन्ध।
असम समय साहस करन, हिन्दु राज दुव कन्ध॥
समय ४४, पृ० ११०२, छं० २४,

[2] आज हनन्दे पाप, दर्शि रावर वर मग्गा।
कप्पन-विरद-कलंक, जीह किल, कित्तिय लग्गा॥
आहुट्टा-मभ्भमि, चत्त चत्ती परमानम्।
हिन्दवान-तुरकान सस्सि, उग्गे जिम भानम्॥
औधूतराय, माया अडरु, गोरक्ख रा गोरक्ख जिम।
वर तित्थ तित्थ रावर समर, मार रूप भंजन विक्रम॥
स० ६६ पृष्ट २१६६ छं० ४००

समान नृत्य करता रहा और अभग दल में डट कर उसने शत्रुओं का संहार किया. उस "प्राक्रम" (विक्रम रावल) को देख कर देवता भी चकित हो गये और जटा को धारण करने वाले (शंभु) उसके सिर के लिये घूमने लगे।[१]

हाँसी के युद्ध में लिखा मिलता है कि (इस युद्ध में दिल्ली से पृथ्वीराज आया उससे पूर्व ही) इधर से रावल समर-विक्रम यथा समय पहुँच गये और विजय प्राप्त कर ली. जिसकी प्रशंसा में लिखा है। युद्ध में खवास खाँ पड़ा, इधर हाँसी का रक्षक गोर, सागर पति प्रताप, एक वीर चंदेला राजा नवभान, महनसी मोरी और कछवाहे वीर के पास ही प्रमार वीर एक प्रहर तक तलवार चला कर खेत पड़ गये और केशरी नरिंद (रावल समर विक्रम केशरी) के केशरी के समान "प्राक्रम" के कारण कीर्ति की लहर उसकी तलवार को चिन्तते (इच्छने) लग गई।[२]

देवगिरी समय में लिखा है कि समर (युद्ध) की सूचना का पत्र पढ़ कर "समर साहस" (समर विक्रम) रावल ने आये हुए दूत द्वारा वापस कहलवाया, हे श्रेष्ठ नृपति ! तुम्हारे मन्त्रीगण, मन्त्रणा (विचार विमर्ष) नहीं करना जानते।

---

[१] सवर सूर रजपूत पत्ति, देख्यो भ्रमत घट।
समर समर बिच चपत, नीठ कढ़ियो द्वादस भट॥
बीच धत्त सों मढ्ढि, खग्ग खल रुक्कि भंजियट।
वीर रंग त्रिपहर सरस, संमुह सुभग्यो नट॥
अनभंग भंग दल भग किय, अटिल टाट ढिल्लिय सुभट।
"प्राक्रम्म" पिक्खि भम्मेव सुर, सीस कन्ज भ्रमि धार जट॥
समय ५६ पृष्ठ १४६२ छंद १००

[२] परिग खान खावास, गोर हांसीपुर धारी।
परि प्रताप सागर नरेन्द्र, रसूणर विभारी॥
परयो कहे चन्देल, परयो राजा नव भानम्।
परि मोरी—महनंग, जंग जीते जुग जानम॥
पावार परिग कूरम्म पह, पहत एक मारत्थ करि।
केशर—नरेन्द्र केशर बलह, तेग चिन्ति कीरति लहरि॥
समय ५२ पृष्ठ १३६६ छं० १६५

हमारी नेक सलाह तो यह है कि आप दिल्ली को मत छोड़िये, और गौरीशाह से जा भिड़िये। उसके बाद अनंगपाल को फिर राजा बनाइये और आप अपने कुछ सामन्त हमारे साथ कर दीजिये, ताकि युवराज रणसिंह (रावल विक्रम केशरी का कुँवर कन्नौज पति को युद्ध में रोकें। इसी नेक सलाह में गृह कुशल है[1]।

सामंत पंग प्रस्ताव में लिखा है कि—मन्त्री जयचन्द से कहने लगा कि तुम्हारी इस यज्ञ रूपी बेलि को चारों ओर से चौहान रूपी हाथी ने दबा लिया है उसे बचाने के लिये आहड़ों (गुहिलातों) के मुखिया समर-साहस (समर विक्रम), (चित्रंगी चित्तौड़पति) को, जो बंधित को बधन रहित करने वाला, चिन्तन शील (दूरदर्शी), सुन्दर स्वामी, तलवार में लीन, मोह रहित, राजर्षि, अमोघ रस के तत्व को जानने वाला, सुव्रष धारी और अच्छी गात का साधक है उसे अपनी ओर करलो[2]। (मिलालो)

पृथा विवाह समय में भी लिखा गया है कि—किसी से नष्ट नहीं होने वाला,

---

१. बंचिय कग्गद समर, "समर–साहस" उच्चारिय।
तत्र सुमन्त वर नृपति, मंत जाने न विचारिय॥
हम सुमन्त जो करें, राज दिल्ली मति छंडो।
इह (गहि) गोरी सुलतान, अनंग पालह फिर मंडो॥
सामंत देहु हम संग वर, 'रन' रूँधें पहु पंग नर।
आरंभ महन रंमह मतो, इह सुमंत कुशलंत घर।

समय ६६ पृष्ठ ८७४ छं० ५५

२ आहुट्टा मभभाम, "समर–साहस" चित्रंगी।
निर्विद्ध बंध बंधे अबंध, साध्रम्म सुअंगी॥
चिंतानी कलपत्त, रूक–रत मोह अरत्ता।
सिद्धानी मोघ रस, भेष सम सद्ध सुगत्ता॥
चहुवान चंपि चवदिसि करिय, जग्गि–बेलि जिमि उद्धरे।
चित्रंग राव रावर समर, मिल जीवन जिहिं उब्बरे।

समय ५५ पृष्ठ १४२२ छं० २७

आहड़ों का मुखिया रावल समर-साहस (समर-विक्रम)[1]

इसी तरह इतर छंदों में भी यथा स्थान लिखा हुआ है कि—समर-साहस (समर-विक्रम) नरेन्द्र को सामन्तों ने अपने बीच में इस तरह किया जिस तरह तारागण चन्द्र को, देवता इन्द्र को और गिरि-श्रेणी सुमेरु पर्वत को बीच में करते हैं[2]।

उपरोक्त प्रमाणों से रासो में वर्णित रावल-समर वही हो सकता है, जिसके उप या उपाधि सूचक नाम, विक्रम, पराक्रम, केशरी और समर-साहस (समर-विक्रम,) हों।

इसके अनुसार जब हम इतिहास पर भी दृष्टि डालते हैं तो रासो वाला वीर केशरी समर-विक्रम, शिला लेखों में लिखा विक्रम-केशरी ही सिद्ध होता है।

इसी तरह हम मेवाड़ राजवंश को नामावली को, जो एक ओर राज-प्रशस्ति में तथा दूसरी ओर इतिहासज्ञों द्वारा निश्चित की हुई है, सामने रख कर प्रसिद्ध वीर बापा से क्रमशः संख्या मिलाते हैं तो रासो वाले समर-विक्रम की संख्या के स्थान पर विक्रम-केशरी ही आता है। रासो वाले समर-विक्रम के वर्णन में राजप्रशस्ति वाला उसके पुत्र का नाम कर्ण (रणसिंह) बतलाता है। इससे भी (कर्णसिंह) के पिता ही रासो में वर्णित रावल सवर-विक्रम निश्चित होते हैं। नामों के पर्यायवाची, उप या उपाधि सूचक और विकृत रूपों का खयाल रखने से भी विक्रम ही रासो के समर-विक्रम हैं। हमारे रासो वाले समर-विक्रम के पिता का नाम भी तेजसिंह ही था, जिसे पर्याय रूप में शिला लेखकोंने चंड्या चौंड (तेज का पर्याय रूप चंड या चौंड) सिंह तथा उसके पुत्र रत्न को भाषा के विकृत रूप में रणसिंह (रत्न का विकृत रूप रण, रयण, रैण होता है) लिखा है[3]।

---

१. बर आहुट्ठ नरेश समर—साहस अनभंग।

समय २१ पृष्ठ ६४३ छं० ४

२ भगं विट्टियं, समर—साहस नरिन्दं,,

मनो विंढियं उडगनं अभ्भ चंदं।

किधों इद्र पासं सबै देव राजे, किधों मेरु तरं सु पब्बे विराजे।

समय २४ पृष्ठ ६४६ छं० २८

३ नामावली की संख्या का मिलान—

इस तरह नामों के विकृत रूप कर देना प्रायः प्राचीन शैली कही जा सकती है।

राज-प्रशस्ति में वर्णित	गौरीशंकर ओझा द्वारा संग्रहीत
१ बापा *	कालभोज (बापा)
२ खुम्माण *	खुमाण
३ गोविंद	मत्तट
४ महेन्द्र	भर्तृभट्ट
५ आलू	सिंह
६ सिंहवर्मा	खुमाण (द्वितीय)
७ शक्तिकुमार	महायक
८ शालिवाहन	खुम्माण (तृतीय)
९ नरवाहन	भर्तृभट्ट (द्वितीय)
१० अंबाप्रसाद	अल्लट, अल्लट
११ कीर्तिवर्मा	नरवाहन
१२ नरबर्मा	शालिवाहन
१३ नरपति	शक्तिकुमार
१४ उत्तम	अंबाप्रसाद
१५ भैरव	शुचिवर्मा
१६ पुंजराज	नरबर्मा
१७ कर्णादित्य	कीर्तिवर्मा
१८ भावसिंह	योगराज
१९ गात्रसिंह	वैरट
२० हंसराज *	हंसपाल (वंशपाल)
२१ योगराज	वैरीसिंह
२२ वेरड़	विजयसिंह
२३ वैरीसिंह *	अरिसिंह
२४ तेजसिंह *	चौंड (चण्ड) सिंह (पर्यायरूप)
२५ समरसिंह (रासो वाला)	विक्रम केसरी विक्रमसिंह पर्याय, (उपाधि रूप में)
२६ रतनसिंह (रासो वाला रत्न)*	रणसिंह (कर्ण-विकृत रूप)

नामावली के मिलान में उपनाम या उपाधि सूचक नामों के कारण मूल नामों के रूप भले ही बदले हों, परन्तु संख्या में कमी बेशी नहीं हुई है। मुख्य-मुख्यराजाओं के नाम उसी क्रम पर मिल जाते हैं, जिन्हें समझने के लिये नामावली के सामने हमने पुष्पाकार*चिन्ह कर दिये हैं। दोनों नामावलियों पर विचार करने से कुछ नाम उप और उपाधि सूचक भी प्रतीत होते हैं। यहाँ हमारा ध्येय केवल यही है कि बापा से २४ वीं संख्या पर रासो वाले समर-विक्रम के

रासोकार भी रावल समर-विक्रम के राजघराने के योद्धाओं का जहां वर्णन करता है उसमें महणसिंह आदि के उल्लेख के साथ रणसिंह का उल्लेख भी है, वही रणसिंह युवराज रत्न हैं[१]। रासो वाले समर-विक्रम के पिता और पुत्र के नामों को पर्याय और विकृत रूप देने का शिला-लेखकों का मुख्य हेतु यह है कि वे रासो वाले समर-विक्रम (विक्रम-केसरी) के वंशधर (जो आठ पीढ़ियां बाद हुए), आहड़-नागदा की रावल शाखा वाले द्वितीय-समरसिंह का वर्णन अपने लेखों में करते, जिसके पिता-पुत्र का नाम भी क्रमशः तेजसिंह और रत्नसिंह ही था। अतः वे अपने समय के नरेश के वर्णन में संदिग्धता नहीं आने देना चाहते थे, इसलिये पूर्ववर्ती समर-विक्रम को उपाधि रूप में विक्रम और उसके पिता तेज को 'चड' और पुत्र रत्न को 'रणसिंह' लिखा। तदुपरान्त एक प्राचीन ख्याति से दुग्गड़ रामनारायणजी को भी इस बात का पता चल गया था कि रणसिंह पृथा कुँवरी का पुत्र और चौहान पृथ्वीराज का

पिता तेज (चण्ड) सिंह है। २५ वीं संख्या पर स्वयं विक्रम और केसरी उपाधि-धारी रासो में वर्णित रावल समर-विक्रम है। २६ वें स्थान पर रासो वाले समर-विक्रम का पुत्र रण (रत्न) सिंह है। रणसिंह को पीछे से एकलिंग माहात्म्य और राज-प्रशस्ति में भ्रम से करण लिख दिया, किन्तु उससे पूर्व के लेख रणसिंह लिखते हैं। यह ठीक रत्न का ही विकृत रूप है। रणसिंह से पहले मेवाड़ का राजवंश रावल कहलाता था। रणसिंह से ही रणावत (राणावत) कहलाने लगे हों। रत्न का 'रयण', 'रण' और 'रेण' प्राचीन भाषाओं में होता आया है।

१ एक पुष्पदत नामक जैनी-लेखक की पदवी "काव्य रत्नाकर" थी, उसे विकृत रूप में "कव्व रयण रयणायर" लिखी गई। (देखो जैन साहित्य और इतिहास ले० नाथूरामजी प्रेमी, पृष्ठ ३०७)।

रत्नसिंह सूरी को जैन ग्रन्थो में, "सिरी रयणसिंह सूरी" के रूप में लिखा गया (देखो—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४६ वाँ, अंक ३। कार्तिक सन् १९२८, विषय वीरगाथा-काल, जैन भाषा साहित्य—ले० श्री अगरचन्दजी नाहटा।

वंश भास्कर में श्री सूर्यमलजी मिश्रण भी लिखते हैं—

"पेन देन चाहो, पर रैन (रत्न) देन चाहों ना"

२ रासोकार राजघराने के योद्धाओं में रणसिंह का उल्लेख करता है—

"रूपराम, रत्नसिंह, देव दुज्जन दावानल"।

स० ५६, पृ० १४६३, छं० १०७

भानजा था[1]।

अस्तु, रणसिंह के पिता विक्रमसिंह ही रासो के समर-विक्रम हैं, जिस समरसिंह के वि० सं० १३३० से १३५८ तक शिलालेख उपलब्ध हैं, वे समरसिंह उससे भिन्न हैं और इन शिलालेखों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

शंका ५-रासो के वर्णन में गुर्जरेश्वर भीम (द्वितीय) द्वारा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का और पृथ्वीराज द्वारा भीम का मारा जाना लिखा हुआ है. वह ठीक नहीं;—क्योंकि सोमेश्वर की मृत्यु वि० स० १२३६ में हुई थी, तब भीम बालक था और पृथ्वीराज द्वारा भीम का मारा जाना भी इसलिये नहीं माना जा सकता कि वि० सं० १२४६ में पृथ्वीराज की मृत्यु हो चुकी थी और भीम वि० सं० १२६६ तक जीवित था, जैसा कि उस (भीम) के लेखों से विदित होता है।

उत्तर—रासो में भीम के द्वारा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का मारा जाना नहीं, बल्कि उसके सामन्तों द्वारा मारा जाना कतिपय रासो के पद्यों से सिद्ध होता है। पृथ्वीराज द्वारा भीम का मारा जाना भी हमारे मत के अनुसार पद्यों में नहीं लिखा गया है। उनमें लिखा है—

"पिता (सोमेश्वर) की मृत्यु पर पृथ्वी को धारण (छत्र-धारण) करने से पहले पृथ्वीराज ने ८००० गायें, शृंगों और खुरों का स्वर्ण से मंडित करके ब्राह्मणों को प्रदान की, और नाना-विधि से षोड़श प्रकार का दान किया। पश्चात् पिता की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय किया और प्रतिज्ञा पूरी न हो, जहाँ तक घृत नहीं खाऊँगा, तथा पगड़ी नहीं बाँधूँगा और उसने यह भी कहा कि जिस दिन भीम के सामन्तों को नष्ट कर भीम को बन्धन में लूंगा, उसी दिन मैं अपने आपको पिता के ऋण से मुक्त समझूँगा[2]।"

---

१ देखो—रामनारायणजी दुगड़ "राजस्थान रत्नाकर" पृ० ६०, ६२ (इस बात का पता हमें उदयपुर निवासी पुरोहितजी श्री देवनाथजी द्वारा मिला)।

२ अट्ठ सहस दिय धेनु, तब्ब पृथ्वी विधि धारिय।
हेम शृंग खुर हेम, तोल द्वादस हिम सारिय॥
जुगति जुगति विधनान, दान षोड़श बिस्तारं।
तात बैर संग्रहन, लेन पृथिराज बिचारं॥
घृत मुक्कि पाग बंधन तजिय, सु पन वीर लीनो विषम।

इस प्रतिज्ञा को सुन कर उसके सामन्तों ने एकत्रित होकर कहा कि-ज्योतिषी को बुलाकर मुहूर्त साधा जाय और उस पर चढ़ाई की जाय, ताकि विजय हो।

व्यास ने आकर लग्न देखा और मुहूर्त का निश्चय करके कहा, इस समय चढ़ाई की जाय तो अवश्य विजय होगी[1]।

हे नृपति (पृथ्वीराज)! मेरा कथन प्रमाण युक्त है, गुर्जरेश्वर की गुर्जरी सेना ने सोमेश्वर से वैर किया, परन्तु यह मुहूर्त ऐसा है कि यदि एक लक्ष शत्रु भी सामना करें तो भी वे तलवार से रोक दिये जायेंगे और गुर्जरेश्वर कर बद्ध हो जायगा—इस तरह गुजरात पर विजय हो सकती है। इन बातों में से यदि एक भी सिद्ध न हो तो मैं हाथ में पत्रा लेना छोड़ दूँ[2]।

चालुक्य-भीम-भर गंजि कै, कढ़ौं तात उदरह सुलम ॥

समय ३९, पृ० ११८८, छं० १२४

'उनिंदु-भीम-संग्रहौं, सोम उग्रहौं तदिन रन (रिन)।'

स० ४४, पृ० १२००, छं० ६

१ करि प्रनाम सामंत सब, बोलिय जोतिग राइ।
सद्धि महूरत चड्ढिये, जिम आगे जीताइ ॥

स० ४४, पृ० १२०१, छं० १८

व्यास आन दिक्खिय लगन, घी महूरत जोइ।
इन समये जो सज्जिये, सही जैत तो होई ॥

समय ४४, पृ० १२०१, छं० १९

२ कहे व्यास जग जोति, राज चहुआन प्रमानिय।
गुज्जर गुज्जर-सयन, वैर सोमेसर ठानिय ॥
एक लक्ख आरहहि, लक्ख लक्खन खग रुँधइ।
होय जैत चहुआन, पानि भीमंग सुबंधइ ॥
गुजरात होय तुव मोहनिय, एक बत्त संपुह मँडों।
जो मिटै बत्त इह जोग कोइ हत्थह पत्तह छंडों ॥

समय ४४, पृष्ठ १२०, छंद २१

इसी मुहूर्त फल के अनुसार चढ़ाई करने पर पृथ्वीराज ने पिता का बदला लेकर जय-पत्र प्राप्त किया और दिल्ली को लौटा। संसार में उसकी कीर्त्ति फैली. राजा (पृथ्वीराज) के उद्देश्य को सामंतों ने माना, उसी के मार्ग का उन्होंने अवलम्बन किया और एक ही (वीर) रस को भोगा। इस प्रकार पंचमी रविवार को इन्द्रयोग नक्षत्र में उसने अपनी सेना, गज, अश्व, सामन्तादि द्वारा विजय प्राप्त की[1]।

इससे स्पष्ट है कि पिता की मृत्यु पर पृथ्वीराज ने भीम के सामन्तों को नष्ट करने की ही प्रतिज्ञा की थी। ज्योतिषी द्वारा मुहूर्त भी विजयार्थ दिखलाया गया था, ज्योतिषी ने भी मुहूर्त फल में विजय होना ही बतलाया है, उसीके अनुसार विजयी पृथ्वीराज ने जय-पत्र प्राप्त किया। अस्तु, रासो के कतिपय मूल पद्यों से सोमेश्वर का भीम के सामन्तों द्वारा मारा जाना और पृथ्वीराज द्वारा चालुक्य की सेना का परास्त होना तथा पृथ्वीराज का जयपत्र प्राप्त करना ही सिद्ध होता है।

अब हम भीम को बालक लिखे जाने के विषय पर अपने विचार प्रकट करते हैं—

रासो में यत्र-तत्र भीम को, "बालुक्क" और "अयाना" लिखा है। अयाना शब्द बच्चे के लिये प्रयुक्त होता ही है। संभवतया बालुक्क शब्द का प्रयोग भी बच्चे के लिए किया हो, तथा बालुक्क (बालुकाराय, बालराय, बालिकानाथ) वल्लभेश्वर उपाधि का विकृत रूप भी हो सकता है।[2] प्रसिद्ध

---

१ तात वैर संग्रह्यो, जीति जै-पत्त सु लिन्नो।
ढिल्ली पत्तो राज, कित्ति संसार सभिन्नो॥
नृप सम्बन्ध सो उदर, सोइ सामन्तनि रक्खिय।
एक मग्ग उग्रहे, एक मग्गह रस भक्खिय॥
पंचमी दिवस रविवार वर, इन्द्र जोग तहां बरित तिथ।
दिन चढे राज पृथिराज जय, जै, हय गय नर भर समथ॥

समय ४४, पृष्ठ १२२७, छंद २०

नोटः—इन पद्यों में संग्रह्यो, संग्रहों, संग्रहिय, आदि का प्रयोग रासो में पकड़ा और पकड़ो के लिये हुआ है। यहाँ भी यही अर्थ करना चाहिये।

२ "अप्पाने घर बैठि, रीस कीनी चालुक्का।

इतिहासज्ञ स्व० पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा भी "राज विलास" के निम्न पद्य 'नगर वल्लिका नाथ" का अर्थ करते हैं, 'इससे बाल-का नाथ, का अर्थ या तो बाल (भाल) क्षेत्र (काठियावाड़) का राजा या वल्लभी का राजा होना चाहिये।" इससे बालका शब्द गुर्जरेश्वरों के लिये उपाधि रूप में भी होना कहा जा सकता है[१]।

तदुपरान्त घांतोड़ (जयसमुद्र-मेवाड़) से प्राप्त दान पत्र, जो गुहिलोत (अमृतपाल) का वि० सं० १२४२ का है, उसमें वह अमृतपाल अपने को अपने ही दान-पत्र में चालुक्यों से विरोधी वंश का (चालुक्यों और गुहिलोतों का विरोध इतिहास प्रसिद्ध है) होते हुए भी भीम द्वितीय) के आतंक से ही प्रभावित होकर अपने को उस (भीम) का कृपापात्र लिखता है। इस वाक्य पर विचार करें, तो भीम वि० सं० १२४२ के निकट शत्रुओं पर आतंक फैलाने योग्य था, यही निश्चय होता है, जिससे वह सोमेश्वर की मृत्यु के समय बालक नहीं भी माना जा सकता है, क्योंकि १२३५-३६ के निकट उस (भीम) को बिलकुल बालक माने तो, इस दान पत्र के समय उसकी अवस्था ६-१० वर्ष की होती है, जो शत्रु पक्षीय (गुहिलोत वंश) के वीर पर प्रभाव डालने के योग्य नहीं मानी जा सकती[२]।

"हीय खटक्के माल, बात संभरि बालुक्का॥"

स०४०पृ०११४३ छं०४

"बालुक्का-हिन्दू, कमध और सु गौरी साहि॥"

स०४१पृ०११५७ छं०१

"आइ खबर चहुआन-सुदल बालुक्कराय सजि।"

स०४१पृ०११५७ छं०२

१ देखो– उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १, पृ०८४

टि०न०१, लेखक श्री गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा

२ ओम् स्वस्ति श्री नृप विक्रम कालातीत संवत्सर द्वादश शतेषु द्विचत्वारि शदधिकेषु अंकतोपि संवत् १२४२ वर्षे कार्तिक सुदी १५ रवौ अद्येहं श्री मदणहिल पाटकाधिष्ठित परमेश्वर परम भट्टारक श्री उमापति वर लब्ध प्रासाद राज्य लक्ष्मी स्वयं वर प्रौढ प्रतापी श्री चौलुक्य-कुलोद्यान मार्तण्ड अभिनव सिद्धराज श्री महाराजाधिराज श्रीमद् भीमदेव कल्याण विजय राज्ये ·········
····························अस्यैव परम प्रभोः प्रासाद पत्तलायां भुज्यमान बागड़

इससे सोमेश्वर की मृत्यु के समय उसे बालक मानने में शंका भी हो सकती है और यदि बालक हो तो भी रासो में उसके लिये बालुक्का और अयाना प्रयोग होने से उसमें इतिहास के विरुद्ध वर्णन नहीं कहा जा सकता। विजय पराजय का श्रेय सेना को नहीं मिलता; स्वामी को ही मिलता है। इसलिये इन युद्धों में भीम को ही श्रेय दिया गया हो, ऐसा होना संभव है। अन्य ग्रन्थों में भी ऐसा हुआ है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में बाल मूलराज के बालक होते हुए भी उसकी माता द्वारा विपक्षियों से युद्ध करने में विजय का श्रेय बच्चे (बाल मूलराज) को दिया गया था। भोले भीम के इस युद्ध के पूर्व के युद्ध भी उसमें सामंतों द्वारा होना पाया जाता है इसका स्पष्टीकरण हमारे द्वारा होने वाले रासो के संपादित ग्रन्थ में पाठक देख सकेंगे। तदुपरान्त सोमेश्वर की मृत्यु का समय संदिग्ध है। केवल १२३६ के आसपास के प्रमाण पृथ्वीराज के राजपद युक्त होने के लिखने से ही, सोमेश्वर का मर जाना निश्चय नहीं होता। क्योंकि पिता की उपस्थिति में ही वह दिल्ली जैसे विशाल राज्य का स्वामी हो चुका था। अतएव राजा लिखा जा-सकता था। पिता की उपस्थिति में सिंहासनारूढ़ कर देने का वर्णन पृथ्वीराज विजय और हम्मीर महाकाव्य में भी हुआ है, फिर भी रासो के पूर्ण संपादित होने पर हम निश्चित कर सकेंगे।

शंका ६—रासो में पृथ्वीराज का ११ वर्ष से ३६ वर्ष की आयु तक १४ विवाह होना लिखा जाना निम्न ५ विवाहों के समान निर्मूल हैं—

(१) मंडोवर के नाहरराय परिहार की पुत्री से पृथ्वीराज की ११ वर्ष की अवस्था में प्रथम शादी होना इसलिए नहीं माना जा सकता कि वह (नाहरराय) तो कई सौ वर्ष (सं० ८९४ से) पूर्व हो चुका था और उस समय (सं० १२०० से पूर्व ही) मंडोवर पर प्रतिहारों का शासन भी नहीं था।

(२) आबू के राजा सलख की पुत्री से भी शादी होना इसलिये नहीं माना जा सकता कि सलख जैत्र नाम का कोई राजा हुआ ही नहीं, आबू पर उस समय (सं० १२२० से १२७४ तक) जो राजा था, उसका नाम धारावर्ष था।

(३) दाहिमा चावण्ड की बहिन से पृथ्वीराज का विवाह होना और

वट पद्रक मण्डले महाराजाधिराज श्री अमृतपाल देवीय राज्ये.................. ....शासन पत्रमि लिख्यते यथा।

नोटः—इस दान पत्र में जो जो विशेषण भीम के लिये दिये गये, वे विचारणीय हैं। इनमें से कुछ विशेषण ऐसे हैं, जो बाल नरेश के लिए शायद ही शोभा देते हों।

क्रमशः

उससे युवराज रैणसी का होना भी गलत है; क्योंकि पृथ्वीराज का पुत्र गोविन्दराज था और वही पृथ्वीराज के बाद अजमेर का राजा हुआ। उसका अपने चाचा हरिराज से बिगाड़ होने पर वह रणथंभोर में जाकर रहा।

(४-५) देवगिरी के यादव राजा भान और रणथंभोर के यादव राजा भानराय की पुत्रियों से पृथ्वीराज का विवाह होना भी कल्पित है, क्योंकि देवगिरी पर भान नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ और रणथंभोर पर कभी यादवों का राज्य ही नहीं रहा। रणथंभोर चोहानों के ही अधिकार में था।

उत्तर—रासौ के पढ़ने से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज के १४ रानियाँ नहीं बल्कि दस ही रानियाँ थी। इतर छन्दों में पृथ्वीराज के जन्म लग्न के वर्णन में ज्योतिषी कहता है कि यह (पृथ्वीराज ८ और २) दस रानियाँ ब्याहेगा।[1]

शुक चरित्र में भी दस ही रानियों का उल्लेख हुआ है। बड़ी लड़ाई के प्रस्ताव में युद्ध के लिये विदाई करते समय का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है, दसों रानियाँ राजा (पृथ्वीराज) के आसपास इस प्रकार फिरीं जैसे भ्रमर पुष्प के आस पास फिरते हों।[2] बड़ी लड़ाई के अन्त में जहाँ वीरांगनाओं का सती होना लिखा, वहाँ भी लिखा है कि स्वामी के निधन पर पृथा कुँवरी और राजा (पृथ्वीराज) की दसों रानियाँ सती होने को तैयार हुई।[3] इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के दस रानियाँ थीं। रासौ में विवाह समय निरर्थक प्रतीत होता है, क्योंकि रानियों का वर्णन प्रस्तावों में यथास्थान हो चुका है। तब कवि को इस प्रकार विषय दोहराने की आवश्यकता नहीं थी। इसीलिये चार विवाहों के प्रति हमें शंका है। किन्तु पृथ्वीराज के समस्त विवाहों को निर्मूल मानना हमारी समझ में ठीक नहीं जँचता और जिन पाँच विवाहों के लिये शका की गई उनका वर्णन भी रासौ में शंकाओं के विरुद्ध इस प्रकार हुआ है।

(क) [नाहराय की पुत्री के वर्णन में]

---

१. बरनी सु अष्ट दुय लेइ ब्याह ।

समय १. पृष्ठ १.४७ छंद ७१.१.

२ दह रवन्नि दह घटति, फिरिग कुसुमंग भँवर जिमि ।

स० ६६ पृ० २१५० छं० २८३.

३ पृथा सत्य सह गवन, रवनि साजिय सुराज दह ।

स० ६६ पृ० २२७०-७१ छं० १६२१.

जिस समय पट्टन पर ब्रह्मक्षत्रिय चालुक्य भीम, अब्बू (अब्बूआ-आबू राजवंशी) जैत्र प्रमार, मेवाड़ पर रावल समर, दिल्ली पर अनंगपाल था; उस समय नाहरराय प्रतिहार भी था, जिसके विरुद्ध मंडोवरराय और मारू मरद थे।[1]

जब पृथ्वीराज आठ वर्ष का था, तब अपनी ननिहाल दिल्ली को गया। उसका नाना अनंगपाल था, जिसका शासन मारवाड़ (मंडोर, नागौर आदि) सिंध, जलमार्ग पैसोर, लाहौर, काशी, प्रयाग और देवगिरी (देवगढ़ या गिरी) के नरेश भी मानते थे। तथा सीमा पर रहने वाले सब उसकी सेवा करते थे।[2] उस (अनंगपाल) की सेवा को स्वीकार करके उसके चरणों में नाहर-

---

१. उत पट्टन भीमंग, ब्रह्म चालुक्क लोह लुअ ।
अब्बु जैत पंवार, लोह लगि जानि अचल धुअ ॥
समरसिंघ मेवार, दंड देवार अजर जरि ।
दिल्ली पति अनंग, लरन अड्ढो सु लोह लगि ॥
परिहार नाह नाहर नृपति, इतन बीच अप बल रहै ।
मंडोवराइ, मारू मरद, बर विरद बंके बहै ॥

समय ७ पृष्ठ सं० ३३४ छं० २४,

२ बरस अट्ठ प्रथिराज, गयौ मूसाल दिल्ली थह ।
राजकरे अनगेस, सेव मरु धरा करे सह ॥
मंडोवर नागोर, सिन्धि जल वट्ट सु पुट्ठे ।
पैसौरां लाहोर, धरा कंगुर लगि कट्ठे ॥
कासी प्रयाग गढ़ देवगिर, इत्तौ सेव आज्ञा धरै ।
सीमानहियाँ संके सुपहु, अत अनंग सेवा करै ॥

समय ७ पृष्ठ ३३५ छं० २५

नोटः—(ऊपर के पद्य में आये हुये देवगिर स्थान का स्पष्टी करण) जैन साहित्य से ज्ञात होता है कि दौलताबाद (मलखेड़ा इलाका-निजाम) भी देवगिरि कहलाता था। रासो से देवगिरी (देवास मालवा) भी देवगिरी कहलाता हो ऐसा

राय आया, जिसने अद्भुत नूर वाले पृथ्वीराज को देख कर उसके गले में माला पहना कर कहा–मैंने अपनी पुत्री रुक्मांगी इन्हें दी, यह सुन राजा तेज (विमाता का पिता, नाना तेजल) और अनंगपाल को प्रसन्नता हुई। किन्तु जब दस वर्ष (सम्बन्ध किये या पृथ्वीराज की दुय अट्ठ १६ वर्ष का आयु हो गई) हो गये तब वह बदल गया।[१]

कवि कहता है, शनिश्चरी दृष्टिवश से परे है। जिसके कारण दुर्जनों के घर का नाश होता है। इसी तरह परिहार का नाश करने वाला प्रमार, यादव और चौहानों का वैर है। वह गिरनारी (गिरनार प्रान्त का रहने वाला) प्रतिहार (नाहरराय) समस्त कलाओं में कुशल होते हुए भी अपने नाश के कारण युद्ध की ओर (भावी युद्ध के परिणाम को) नहीं देखा और बाला (पुत्री के कारण घर में तिगुना वैर बसाया। सच है स्त्री के कारण किस किस के राज्य नहीं गये।[२]

नाहरराय के इस प्रकार बदलने पर सोमेश्वर और पृथ्वीराज की ओर से

मालूम होता है। अस्तु यह देवगिरी कैसा है निश्चय नहीं होता या यहाँ देवगढ़ और गिरि दो स्थान भिन्न हों यह भी संभव है। नाहरराय के वर्णन में "सोजती" भी लिखा है; अत सोजत्री (गुजरात–भड़ौंच) से उसका तात्पर्य है। मारवाड़ के सोजत स्थान से नहीं जान पड़ता (देखो जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ ३४६)।

[१] आयो नाहरराय, मंत्र आदाय दिलेसर।
दिक्खि कुँवर प्रथिराज, नूर अद्भूत नरेसर॥
अम्बर माला इक्क, अंक पहिराइ कह्यो इह।
मैं दिन्हीं रुकमंगि, सबै उच्छाह किया गृह॥
आनन्द "तेज" राजा "अनँग," पृथ्वीराज आयौ घरह।
दुय अट्ठबरस जब बीति गय, ब्याहुं कह्यौ देवह गिरह॥

समय ७ पृष्ठ ३३५ छं० २६

[२] दिश्टी दिष्ट सनीचरी बस हिनो, हन्नोपि दुज्जं घरम।
पावारा परिहार वैर गुरयं, जद्दौरु चौहानयम॥
सो गिरनारि समस्त संयुत कला, मारत्य नो द्रिष्टयम।
सा बाला बर बैर गेह तिगुना, कै कै न गे राजयम॥

समय ७ पृष्ठ ३३१ छं० १६

उसे पत्र लिखा गया, वह उसके पास पहुँचा, जिसे उसने दूसरे दिन जगने पर पढ़ा, जो आबू राजवंशी सलखानी द्वारा गिरिनारी बोली (गिरिनारवासी होने से उसकी भाषा) मेंलिखा गया। १

गिरिनार का श्रेष्ठ राजा, सिन्धु वट्टी, (हट्ट वट्टी, सेखा वाटी, इसी तरह सिन्धु वट्टी शब्द का रूप है, जिसका अर्थ होता है सामुहिक देश या रास्ते) का शाह, तेज का समूह, शत्रुओं को हाथों से नष्ट करने वाला, गुजरात का सहायक, शस्त्र बल से संसार की अगेला रूप, प्रतिहारों के स्वामी नाहरराय ने दूत के आने पर अपने दूत चौहान (सोमेश्वर और पृथ्वीराज) के पास पठाये, जिससे दोनों में द्रोह, जरा योवन के समान बढ़ गया और एवं सामंतों में असंतोष छा गया (सब लड़ने को तैयार हुए)। २

पक्षी को देखकर बाज, मृगों को देखकर मृगराज, गाओं को बन बन में हाँकने को ग्वाल, दूसरी शाखा पर लगने को जैसे मुहाल (मधुमक्खी) और हवा के बल से जैसे बदल चलते हैं; उसी प्रकार नाहरराय (नाहरराय के बदलने) को देखकर युद्ध के लिये पृथ्वीराज सब्र नहीं कर सका, अर्थात् अपने कार्य के लिये चल पड़ा और लंका के त्रिकूट की शंका देने वाले भारी गिरिन्दगढ़ (गिरिनार

---

१. भयौ प्रात जागत दुतिय, वंचि सु कग्गद पानि।
आबूरा सलखानि लिखि, वर गिरिनारी बानि॥

समय ७, पृष्ठ ३३२, छंद १६

नोट—ऊपर के दोहे में सलखानि द्वारा पत्र लिखे जाने का उल्लेख है उसका तात्पर्य यह है कि, प्रमार क्षत्रियों का बागड़ और गुजरात से सम्बन्ध रहा है। संभव है आबू राजवंशी सलख जैत्र उधर की भाषाओं से जानकारी रखता हो, इसलिये उससे पत्र लिखवाया गया हो।

१. बर गिरिनारि नरेश, सिन्धु बट्टी सुरतानम्।
तेज तुंग तप तेज, बैर भजे अरि पानम्॥
बर गुज्जरवैसाहि, जगत अड्डो सु शस्त्र बल।
तिन मुक्कलि दिय दूत, राज संभरिय खित्ति खल॥
परिहार नाह नाहर नृपति, दुह वड्यो इक इक अग।
जानेकि जरा जुब्बन दुवन, सामन्तां संतोष भग॥

समय ७ पृष्ठ ३३२ छंद २१

गढ़) को गिरा कर निरर्थक करने का विचार किया।[1]

अष्टमी रविवार को जब योगिनी आठों दिशाओं पर सहायक थी, बारहवें स्थान पर सूर्य, अनिष्ट स्थान पर मंगल, चौथे गृह पर चन्द्रमा था, तब दूत आगे बढ़े और पृथ्वीराज शकुन मना कर पिता की आज्ञा ले उनके चरणों में वन्दन करके वज्रभुअ (श्री कृष्ण के पौत्र वज्र दामन का शासन द्वारिका पर रहा इसलिए उस ओर की पृथ्वी को वज्रभू लिखा गया, या कठोर पृथ्वी) की ओर प्रयाण किया। उधर अपने सामन्तों को बुला कर नाहरराय कहने लगा, आखेट के बहाने युद्ध के लिए पृथ्वीराज सजा है, यह बात दूत सुन कर आये हैं, अतः अब अपने को असावधान नहीं रहना चाहिये और भूमिधर (गिरी, गिरिनार या पहाड़ों) को दृढ़ गहना चाहिये। क्योंकि सोमेश्वर के प्रेम के कारण ही पृथ्वीराज को माला पहनाई थी और उनमें व हमारे में भेदभाव नहीं था, किन्तु अब तो कुछ ओर ही बात हो गई है।[2]

---

१. चलत पंख पिखि बाज, पिक्खि मृगनिमन।
गोधन धरत गुवाल, हंकि लै चलत बननि बन॥
मधु तजि चलत मुहाल, अन्य तरु शाख लगन कहँ।
बद्दल बिमद्द विशाल, चलत वसि पवन गगन महँ॥
तिमि नाहरराय नरिंद पिखि समर (सबर) सहिन सक्कहि सकज।
गिरि लंक संक सम गढ़ गरुअ, मिरिदैं पारि किज्जै अफज॥
स० ७ पृ० २३४॥ छंद सं० २

२ दिन अष्टमि रविवार; राज शुभ मण्डि प्रस्थानम्।
अष्ट दिशा जोगनिय, भई सहाय सु ध्यानम्॥
अष्ट च्यारि भय भान, राज दे अर्घ बधाइय।
इनमें भौम अनिष्ट, चंद चौथे ग्रह आइय।
चल्ले नरिंद धप (धमि) दूत तब, मन आनन्द सु चंद हुअ।
पृथिराज तात अग्या सगुन, चर वन्दि चलि वज्ज भुअ॥
स० ७ पृ० २४० छं ५

३ सुभट सकल लिय बोलि, पुच्छि परिहार तिनहिं मत॥

इधर पृथ्वीराज ने आगे बढ़ने के लिये यौवनराय को नियुक्त किया और कहा को मरुधर के अगुए (उपाधि रूप में मरुधर का अगुआ नाहरराय को कहा गया) के गुजरात खण्ड में जो ग्राम हैं, उसके रास्तों की जाँच करता हुआ आगे बढ़ना, अब उस (नाहरराय) का सम्बन्ध स्वप्न तुल्य है, इसलिये हमें चढ़ाई करना आवश्यक है। परन्तु वहां के रास्ते अंध-प्रकृति के समान टेढ़े मेढ़े हैं और वन पंक्ति युक्त तथा बिना देखे (बिना जांच किये) नहीं देखे जा सकते, जिनके आडे पर्वत (पहाड़ और पर्वतराय) हैं। अतएव बिना भेद लिये काम नहीं चलेगा[1]।

जोबनराय ने सूचित किया कि, सत्य है गुजरात के आडी पर्वत श्रेणी है। लोहाना आनाजबाहु ने वहां के पल्ली (भील मीणों आदि के निवास स्थान) मार्ग को रोका है, किन्तु नाहरराय तिरछा होकर निकल गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह नहीं मिला[2]। उधर जंगली जाति का जहाँ निवास था, उस

चाहुवान पायान, कहत आखेट जुद्ध बत ॥
तनक भनक सी कान, दूत इत्तह सुनि आये।
अप्प अचेत न रहो, धरो "धरभूमि" सदाये ॥
सोमेस हमहिं कछु है नहीं, तिन सु हित्त माला दई।
तब तो सनेह कछु और हो, अब तो कछु औरै भई ॥
स० ७ पृ० ३२१ छं० ६५

[1] तबै सु जोबनराइ, सूर साह्यौ चहुवानम्।
तुम गुज्जर वै खण्ड, ग्राम मुरधर अगिवानम् ॥
पंथ पंथ परवान, धाइ अगिवानी किज्जै।
सगा सपन जंपिये, हमनि आरोहि सु लिज्जै ॥
वामान पंथी अंधी प्रकृति, बिन दीट्ठे दिट्ठे न कछु।
वन पंत अद्दु प्रब्बत रहे, भेद बिना जाना हिं न कछु ॥
स० ७ पृ० ३४२ छं० ७०

[2] तब्ब सु जोबनराय, बत्त जम्पै चहुआनम् ॥
अट्ठ पंथ परवत्त, सत्त गुज्जर धर मानम् ॥
लोहानों आजान, पंथ बंध्यो चालुक्की।
नाहरराय नरिंद, गयो तिरछी भुव मुक्की ॥

पर्वतीय घाटे (नाके) पर वह नाहरराय का भेजा हुआ पर्वतराय, पर्वत के समान होकर डट गया[1]।

युद्ध के बाद नाहरराय ने भाग कर पट्टन के कोट में प्रवेश किया। आगे देव दशमी के दिन पट्टन नगर में पृथ्वीराज का अभिषेक (विजयोत्सव) हुआ, तब गुरु रवि नवम पाँचवें, शशि ग्यारहवें, मंगल तीसरे, और शुक्र सातवें था। तथा केन्द्राय बुद्ध और राहु ·················· हीन था[2]। नाहरराय युद्ध को छोड़ कर भाग गया और पृथ्वीराज ने विजय करके यश प्राप्त किया। चन्द लिखता है, मल्ल परिहार ने बुरी सम्मति की (यहाँ मल्ल शब्द संज्ञा वाचक मानाजाय तो नाहरराय का नाम मल्ल भी हो सकता है, एक जगह इसी समय में मेलान भी लिखा गया है, उसका अर्थ मल्ल और कूंच करना होता है। मल्ल शब्द संज्ञा वाचक नहीं मानें तो उसका अर्थ "मिलकर" भी होता है। जिससे पूरे चरण का अर्थ 'परिहार' ने मिलकर बुरी सम्मति की) जिसके कारण युद्ध हुआ, किन्तु युद्ध के बाद शादी के लिये पृथ्वीराज ने सु सलाह स्वीकार की, इसलिये पंचमी रविवार की रात्रि को जिस दिन गंज नामक गुरु योग था, उस समय में गिरि (गिरिनार) पर नाम करने को शादी के लिये जिसके हृदय में वीरता का अंश है, ऐसा वीर पृथ्वीराज चढ़ा[3]।

··· तिहि ठाम चूक चित्यौ हुतो, नाहरराइ न पाइया ॥

स० ७ पृ० ३४२ छं० ७१

१ जहँ पब्बय घाटौ हुतो, मीना मेर मवास।
प्रब्बत मों प्रब्बत मंड्यो, अनमी ओधन त्रास ॥

स० ७ पृ० २६२ छं० ७६

२ देव दसमि के दीह, नयर पट्टन चहुआनम।
गुरु पंचम रवि नवम्, सुधर ग्यारह ससि मानम्॥
तीय थान बर भौम, शुक्रसत्तम बल किन्नौ।
केन्द्री बल बुद्ध, राह सब कौद अहिन्नो ॥
आनन्द चंद वरदाइ घन, राज भिषेखन पट्टि करि।
साजन्त भूमि जीते सुभर, तेज तुंग दुज्जन सुहरि ॥

स०७पृ०३६३ छं०१६६

३ नट्टा नाहरराय, खेत छंड्यौ बहु आनम्।

इतर छंदों में भी नाहरराय को चाजुक्य के गृह पट्टन का मुखिया बतलाया है, [1] और इस युद्ध के लिये पृथ्वीराज का अजमेर छोड़कर पट्टन प्रान्त को पहुँचना, [2] चौहानी सेना के समूह इकट्ठे होकर गिरनार और सिन्धुवट्टो (समुद्र-तटीय प्रदेश पर गर्जना, [3] तथा विजय के पश्चात् एकत्रित होकर गिरनार ग्राम में मुकाम करना लिखा है। [4]

उपरोक्त वर्णन से मंडावराय (मडोवरह, "मंडोवर", मंडोवरा) मारू-मरद और मुरधर का अगुआ नाहरराय (मल्ल) के वंश सूचक विरूद थे।

नाहरराय को गिरनारी लिखा जाना, गिरनारी भाषा में उसे पत्र लिखना गिरनार नरेश और सिन्धुवट्टी का शाह उसके लिये कथन किया जाना, उसका अपने वीरों को भूमिधर (गिरि, गिरिनार या पहाड़ों) को दृढ़ गहने का कहना, गुजरात खण्ड में उसके ग्राम होना, उसकी भूमि के आसपास जंगली

राज जीति जस लब्भि, शीश लग्गा असमानम् ॥
तुम "मल्लह" परिहार, मम किन्नो अमित्त जुध ।
वरन वीर संमुहो, राज लग्गो सुमत्त सुध ॥
पंचमो व र रवि रात दिन, गंत नाम वर जोग गुर ।
"गिरि" नाम करन राजन्न वर, चल्यो वीर वीरंस उर ॥

स० ७. पृ० ३६५, छं० १७६

नोट:—इस पद्य में "मल्ल" शब्द संज्ञा वाचक आया है। अतः सम्भव है, इसका मुख्य नाम मल्ल प्रतिहार हो। नाहरराय मुख्य पूर्वज की तुलना की शैली के रूप में लिखा गया हो। इसी तरह महंसो प्रतिहार को भी उसी शैली के रूप में एक दो स्थान पर कवि ने नाहरराय लिखा है।

१ चालुक्का परधान गृह पट्टन नाहरराय ।

स० ७, पृ० ३४४, छंद ७३

२ मुक्की सु भूमि अजमेर राज, पत्तो सु जाय पट्टन समाज ।

स० ७, पृ० ३४८, छं० ६६

३ गिरिनार देश अरु सिंधु वट्ट, गज्जें सु गाज सजि थट्ट-थट्ट ।

स० ७, पृ, ३४८, छं० ५७

४ सब सत्थ तत्थ हुअ एक ठाम, मुक्काम कीन गिरिनार ग्राम ।

स० ७, पृ० ३६४, छं० १७२

जाति का निवास बतलाना, युद्ध के बाद पट्टन के कोट में उसका शरण लेना तथा पृथ्वीराज का गिरिन्दगढ़ (गिरि, गिरिनार) को ध्वंस करने का विचार करना और वक्र भू (द्वारिका के ओर की पृथ्वी) को जाना, जुव्वन (यौवन) राय से पृथ्वीराज का कहना कि शत्रु की भूमि के रास्ते विकट हैं, तिस पर यौवनराय का सूचित करना कि गुजरात के आड़े पर्वत हैं, वहाँ के पल्ली भागे को लोहाना आजान-बाहु ने रोका, लेकिन शत्रु निकल गया।

युद्ध के बाद पृथ्वीराज का पट्टन में विजयोत्सव मनाना और गिरि (गिरिनार) पर शादी होना लिखा जाना, तदुपरान्त इतर छंदों में भी पट्टन-पति के गृह का मुखिया नाहरराय को कहा जाना, पृथ्वीराज का अजमेर छोड़ युद्ध के लिये पट्टन प्रान्त को जाना। सेना का गिरिनार और सामुद्रिक प्रदेशों पर गर्जना करना और युद्ध के बाद गिरनार ग्राम में मुक्काम होना. इत्यादि विषय नाहरराय का सम्बन्ध गुजरात और गिरनार प्रान्त से बतलाता है और युद्ध भी गुर्जर और गिरिनार भूमि पर ही हुआ, जिसमें चालुक्यों का भी हाथ था. यह सिद्ध होता है। तदुपरान्त शादी भी गिरिनार पर ही होना पाया जाता है।

यह भी निश्चय है कि पृथ्वीराज की प्रथम शादी ग्यारह वर्ष की अवस्था में न होकर, इन प्रमाणों से उसके आठ वर्ष के होने पर सम्बन्ध हुआ और सम्बन्ध के दस वर्ष बाद (या पृथ्वीराज के सोलह वर्ष का होने पर) नाहरराय बदल गया, जिससे युद्ध हुआ और बाद में नाहरराय की पुत्री से पृथ्वीराज को शादी हुई।

(ख) सलख जैत्र के वर्णन सम्बन्ध में—

आबू राजवंशी सलख जैत्र किस स्थान के थे, यह बतलाने से पूर्व रासोकार (चंद) की विविध शैलियों में से एक शैली का यहां दिग्दर्शन कराते हैं। कविचंद प्रत्येक प्रमार क्षत्रिय को आबूपति, धाराधनो और उज्जयनो राव कहता है[1]।

---

१ पावस प्रमार के सम्बन्ध में—"उन्दयो धार धारहधनी"

सं० ७, पृ० २५, छं० १०७

सलख प्रमार के सम्बन्ध में—

"सो झुभ्भ्क पार धारहधनी"

॥ सं० ६१, पृ० १७७० छंद १३०१

जैत्र प्रमार के भाई के सम्बन्ध में— [इतर छंदो में]

"नृमं जैत-बंधं पावो धारनाथम्" ॥ सं० १२, पृ० ५१७ छं० ३६५

प्रतिहार वीर को मंडोवराय;[1] गौर वीर को अजमेर पति;[2] कछवाहे वीर को नरवर-नरेश व आमेर-पति;[3] गुहिलोत वीर को आहुट्ट-नरेश, आहुट्ट पति

जैत्र प्रमार के सम्बन्ध में—

"दइ दुवाह धारहधनी" ॥ सं०६१, पृ०१६६५, छं० ६६

"चढ़े धार धारहधनी" ॥ सं०६६, पृ०२१६०, छं०५०४

"अब्बूपति जप सब्ब किय" ॥ सं०६१, पृ०१६३०, छं०२३६२

सारंगीपुर के प्रमार भीम के वर्णन में—

"वर उज्जैनीराव, जीति पावार सु भीमं" ॥ सं०३२, पृ०६६५, छं० २,

"बंधि लीने उज्जैनी" ॥ सं०३३, पृ०१०२४ ॥ छं०४८,

"वर वीर धार पँवार सेना परे सोम अलुभ्मभ्यम्" ॥ सं०३३,

पृ०१०२४ ॥, [इतर छंद] छं० ४७

१ नाहरराय प्रतिहार के सम्बन्ध में—

उसका सम्बन्ध गुजरात काठियावाड (गिरनार और द्वारिका के आसपास की भूमि) से होते हुए भी उसे मंडोवरह (मंडोवरा), मंडोवरराय, मारू-मरद, मरुधर का अगुआ लिखा गया है, जिसका उल्लेख पहले कर चुके हैं।

२ केहरी गौर के संबन्ध में—

"केहरी गोर अजमेर पति, पर्यो ब्रुभिम्म मन भाइनो" ह० लि० प्रति

(गौड़ क्षत्रीय पहले अजमेर के शासक रह चुके। इसलिये अजमेर-पति लिखा गया)।

गोरंग गोर के सम्बन्ध में:—

"गोरंग गरुत्र अजमेरु पति" ॥ सं०६१, पृ०१८८६, छं०२०६७

३ आमेर पति कछवाहे पज्जून के वर्णन में:—

"नलह वंश नलवर नरेश, ईश दिल्ली दल रख्यौ ॥ छं०५३, पृ०१४०५, छं०२६

(कछवाहों के पूर्वज पहले नरवर पर राज्य करते थे इससे नरवर नरेश लिखा गया)।

और चित्रकूट नरिन्द [1] चालुक्य वीर को पट्टनराय, [2] उनके पूर्वजों और स्थानादि की स्मृति दिलाने को शासक रूप में नहीं, बल्कि विरुद रूप में लिखता है।

इस शैली को चंद या उसके जाति बन्धुओं ने ही अपनाई हो, यह बात नहीं है; बल्कि अन्य जाति के कवि भी अपनाते रहे हैं[3]। आज भी प्राचीन शैली के कविगण इसी शैली का उच्चारण करके राजाओं को आशीर्वाद देते और काव्य रचना में भी उसका उपयोग करते हैं, अस्तु, रासो के प्रेमी पाठकों को केवल पद्य के वाच्यार्थ पर ही खयाल कर अर्थ नहीं करना चाहिये, उन्हें स्थानादि के विषय में गहरे उतरकर पता लगाना चाहिये वाच्यार्थ के अनुसार सलख जैत्र आबूके ही नहीं, धार के स्वामी भी कहे जा सकते हैं, किन्तु हम उपरोक्त शैली से समझ सकते हैं कि वे आबू और धार के राजा नहीं, वहाँ के राजघराने के थे।

अब हम भोराराय समय वर्णित तेजगढ़, आगरगढ़ और नागोर व आबू के आसपास तथा गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत सांजत्री आदि स्थानों पर सलख जैत्र के पक्ष पर पृथ्वीराज के सामन्तों और चालुक्यों के साथ जिस कारण से युद्ध हुए उसको बतलाते हुए सलख जैत्र प्रमार का स्थान कहाँ था, उसे रासो से ही स्पष्ट करते हैं।

---

१. गोइन्दराय गुहिलोत के सम्बन्ध में—

"राज अग्ग गोइन्द, वीर आहुट्ट नरेसर।" स०६१, पृ०१६२४, छं०३८१

"गोइन्दराज आहुट्ट- पति,सुगति मग्ग खुल्लिय दरिय।" स०६१, पृ०१७६७ छं०१७७४

चित्तौड़ पति रावल समर-विक्रम के भतीजे कन्हा के बारे में:—

"चित्रकूट कन्हा नरिन्द।" स०६६ पृ०२११० छं०, २७

२ खुम्बनगढ़ के चालुक्य रणधीर के वर्णन में—

"खबर भई रावर समर, दोर्‌यो पट्टनराय।" स० ६६, पृ० २११०, छं०२३

३ देखो "करहेरिया रायसो;" जिसमें करहेरिया के प्रमार क्षत्रियो का वर्णन करता हुआ वि०सं० १८०० के आसपास गुलाब कवि माथुर चतुर्वेदी आंतरी निवासी ने उन्हें कई जगह "धाराधनी" लिखा है। इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि करहेरिया के प्रमार क्षत्रिय धार के प्रमार राजवंश में थे। ऐसे प्रमाण कई दिये जा सकते हैं, किन्तु स्थानाभाव से यहाँ केवल एक ही उदाहरण दिया गया।

भोराराय समय में लिखा है कि भोलाभीम के अंग स्वरूप वीरों ने जैन धर्मावलम्बी होने से शिवपुरी मारवाड़ में शिवाना या नागोर के समीप संभवतः कोई देवस्थान हो) को जला दिया, जिसकी सूचना सलख जैत्र ने पृथ्वीराज को दी [१]। वह वीर चाहुवान दिल्ली का सूर्य, रानी इच्छिनो का पति, साक्षात् वीर रसावतार, दृढ़ प्रतिज्ञ था [२]।

उधर आबू राज वंशज (सलख जैत्र) भी अभग वीर था [३]। उसने तलवार जमीन पर फटकार कर अपने भाइयों से कहा—"हल्लों (हमला, आक्रमण) और गल्लों (झूठा धमकी) से पृथ्वी देदेने की मूर्खता कैसे की जा सकती है ? भोरा भीम के भ्रातागण पाखण्ड प्रकट करते हैं। उनके यहाँ आकर्षण. मोहन-मंत्र और तंत्र की ही (यंत्र-तंत्रादि की यति और जैन धर्मावलम्बियों में अधिकता मानी गई है) प्रमुखता है। वे मुख्यतः द्रव्य बल से ही देशको वश में करना जानते हैं; किन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं कि मैं उत्तर में (आबू के उतरी भाग पर) अड़ा हुआ हूँ [४]।

---

१ भोरा राय भीमंग, सोर शिवपुरी प्रजारिय।
आरज सांइ सलक्ख, राज संभरि संभारिय ॥

स० १२ पृ० ४४७ छंद १

२ तपै तेज चाहुवान भान ढिल्ली इच्छावर।
वीर रूप उपन्नो, पन्नु रक्खै करि वर कर ॥

स० १२, पृ० ४४७, छंद २

३ "अब्बू नै अनभंग" .... स० १२, पृ० ४४७ छं ३

४ तेग झारि पंमार, जैत जग हथ्थ बत्त किया।
मंगै हैल सु गल्ह, तात अविवेक छिति दिय ॥
भोरा भीम नरिन्द, बंध पाषंड प्रगट्टे।
आकर्षन मोहन मंत्र, जंत्र जुग जुग जे घट्टे ॥
धन द्रव्य देस बलि बल करन, जाने ना उत्तर अरयो।
धाराधिनाथ धारी धराने, बल बेलह नाथह धरयो ॥

सं० १२, पृ० ४५४, छंद ३८

उस वीर सलख जैत्र ने विपक्षी द्वारा अपनी प्रजा को उजाड़ी व जलाई जाने पर युद्ध में रत होकर सामना किया। इसके बाद सामन्तों के स्वामी पृथ्वीराज से मिलकर एकता करने को उद्यत हुआ और उस मरु देश स्थित नागोर प्रान्त निवासी अर्बुद राजवंशीय सलख-पुत्र-जैत्र ने तेजगढ़ पर होने वाले आक्रमणों के उद्धार का भार क्षेमकर्ण और खगार के सिरपर छोड़ा[१]। साथ ही सलख जैत्र के भाइयों में क्षेम करण खंगार महनसी, गोविन्द और त्रिलोचन नामक पांचों भाई पाण्डवों के समान स्वामी की युद्ध जनित आपत्ति को दूर करने वाले थे। उनके सिर पर दुर्ग-रक्षा का भार सौंपा गया। उसमें से गाविन्द-सलखानी, राजा जैत्र की प्रभा बनी रखने जैसा और युद्ध में भ्रम फैलाने वाला था। इन पाँचों भाइयों ने स्वामी धर्म का भली प्रकार पालन करते हुए अपने स्वामी को बड़ी कठिनाई के साथ दुर्ग से विदा किया। वह सलख जैत्र, अर्बुद से उत्तर प्रान्त के दुर्ग का स्वामी आबू नरेश से विलग होकर रहा[२]।

वह विदा होकर पृथ्वीराज के भूभाग की ओर देवना को साक्षी बनाता

घन द्रव्य देस बलि बल करन, जाने ना उत्तर आयौ
धाराधिनाथ भागी धराने, बलह बेल नाथ हथरयौ

स० १२ पृ० ४५४ छं० ३८

१ प्रजा जारी उज्जारि, समहि संमुह रण रत्तिय।
ता पच्छे सामंत नाथ इक्कहि मिलि वत्तिय॥
आरब्ब तेजगढ़ उद्धरण, खीम करण खंगार सिर।
मुर देस सलख सुत जेतसी नव सु कोट नागौर नर॥

देवलिया प्रति ह० लि० छं० ७५

२ खेम करन खंगार, महन गोयन्द त्रिलोचन।
पंच भृत्त पंचौ सुबन्ध, स्वामि संकट रन मोचन॥
लै सुंप्यौ सिर भार, मनो पण्डिवपति पंच सम।
गोयन्द सलख नरिंद, जोति रक्खन भारत भ्रम॥
उत्तरिय गढ़ आबू धनी, रहिय बिनय आबू नृपति।
कढ्यौ सु भृत्त नृप नीठ कै, स्वामि धम्म रक्खन सुमति॥

स० १२ पृ० ४५६ छं० ५०

हुआ आगे बढ़ा और जाते समय उसने अपनी प्रजा को खट्टू की ओर रक्खा। इस प्रकार वीर सलख जैत्र को अपना बल छोड़ते हुए (विपक्षी के कारण दुर्ग छोड़ते हुए) देखकर पृथ्वीराज ने उस (सलख जैत्र) को अपने हाथ से परवाना लिखा। इस परवाने में लिखा कि मुझ सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज को कुमारी इच्छिनी देकर सम्बन्ध जोड़ लो, जिससे आई हुई आपत्ति से बच सको[1]।

इधर राजा के उद्धार के लिये (आपत्ति दूर करने को) क्षेम कर्ण ने दृढ़ता पूर्वक गढ़ को पकड़े रक्खा और कहा—"वीर पुरुष योग-पथ द्वारा मोक्ष को प्राप्त नहीं करते, किन्तु तलवार के रास्ते मोक्ष प्राप्त करते हैं। सिद्ध पुरुष बहुत से साधन कर योग का आरम्भ विचारते हैं; किन्तु हम उपरोक्त साधनों को छोड़ देते हैं और सत, तम, रज के फल को ग्रहण करते हैं। हम क्षमा का भी पालन करते हैं, किन्तु हमारे क्षमा पालन में कोई स्थिरता नहीं रहती (अर्थात् शत्रु की रक्षा के लिए कोई स्थान नहीं)। इसलिए जब हम पाँचों मर कर पृथ्वी पर पड़ जायँगे, तब ही शत्रु हमारी इस पृथ्वी को दबा सकेगा और हमारे बड़े भाई गोविन्द के पड़ने पर ही गुर्जर प्रान्त निवासी तथा आबू वाले की दुहाई हमारे दुर्ग पर फिर सकेगी[2]।

---

१ बध्धौ राव धर्म्मनि, बीर पामर सुर सक्खी।
प्रजा पुलंत नरेश, ग्राम खट्टू दिसि रक्खी॥
वर मुक्कि वीर धारह धनिय, हथ्थ राज परवान लिखि।
सोमेस पुत्र पृथिराज को, दै इंछिनि सगपन सु विखि॥

स० १२ पृ० ४५६ छंद ५२

२ बर उद्धरन नरिंद, खेम कन्नह गढ़ साहिय।
जोग मग्ग लभ्भियन, खग्ग मग्गह मुति पाइय॥
बहुत सिद्ध साधन सुमंडि, जोग आरंभ बिचारिय।
मुक्कि त्रिगुन गुन गहै, छिमा सद्धै क्रम नारिय॥
हम परत भूमि पंचह सुधर, पहिलै मोधर चंपि है।
गोइन्द परै बड गुज्जरै, आबू आनि सु जंपि है॥

स० १२ पृ० ४५६ छं० ५३

वीरों का आदर कर; उनके गर्व पर आसोजें (ओसिया) बेहाने, सोनगिरि, संथार और शिवाने के प्रमारों को दुर्ग छोड़ने का आदेश दिया. वह छत्रपति उनके शरीर को ग्रहण रूप होकर लगा। इस पर राजाओं के गुरू पृथ्वीराज ने क्रोध में आकर तरकस बाँधा[1]। इधर से खट्टू की ओर प्रस्थान करने का साधन कर जैत्र प्रमार ने अपने परिवार को एकत्रित किया और पृथ्वीराज को पत्र लिखा[2]। तिस पर पृथ्वीराज ने मतवाली मेवात भूमि और हिसार उसके खर्च के लिये देकर उसको शरण में रख लिया[3]। इसकी सूचना चालुक्यराय को मिली कि पृथ्वीराज के साथ राजकुमारी इन्छिनी का विवाह कर सलख प्रमार पृथ्वीराज की शरण में चला गया है और उसके भाइयों ने अपने दुर्ग को दृढ़ता पूर्वक पकड़ रखा है। तब उसने मंत्री को सजने के लिये कहा। भयंकर बाजे बजने लगे[4]।

सलख जैत्र के भू भाग पर पहुँचने पर पूरी अर्द्ध रात्रि भी न हो पाई थी। उस समय उसके (भारा भीम के) सामंतगढ़ में प्रवेश कर गये। जिससे हल चल मच गई यह सब कार्यवाही भेद नीति से हुई, जिससे प्रमारों का बल नष्ट होगया,

---

१ आसोजे रागिग, राइ पर्वत बेहानै ।
सोनगिरी संथारि राइ स त्रंत सिवानैं ॥
चारुवक्कि चालुक्क, राउ भोरा भुव पत्तिय !
कढ़ि अफौं पामार, पिंड लग्गो छत्र पत्तिय ॥
आरध उधाई मंडली, गुज्जर राइ ग ज्जियौ !
प्रथिराज राज राजंग गुरु, तक्कि तरक्कस बंधियौ ॥

सं० १२, पृ० ४५६, छंद ५४

२ सकल परिग्गह एक किय, खट दिस पूजा सद्धि ।
कागर दै चहुआन कौं, पठइय दूत समद्धि ॥

सं० १२, पृ० ४५८, छंद ६१

३ धर मत्ती मेवात, धन्न ह सार सुलंभम् ।

सं० १२, ४५६ छंद ६७

४ गढ़ साखौं सुनि भीम नै, कन्या वर प्रथिराज ।
बोलि मंत्रि सज्जन कह्यौ, दुहुँ बाजयें बाज ॥

सं० १२, पृ० ४५६, छंद ६६

फिर भी वे पाँचों प्रमार (खेम करन, खंगार आदि पाँचों भाई) युद्ध करते हुए पंच तत्व में मिल गये। केवल पराजय का अभिषाप (मिथ्यावाद) पृथ्वी पर रह गया[1]। इस युद्ध में चालुक्यों की विजय हुई और सलख जैत्र के गढ़ पर उनका अधिकार हो गया। गुर्जरेश्वर एक माह पाँच दिन गढ़ पर रह कर अपनी राजधानी पट्टन (अनहलपुर) को चला गया और सलख जैत्र के दुर्ग का भार आबू नरेश के सिर पर छोड़ गया[2]। पट्टन जाकर चालुक्य राज ने पृथ्वीराज से सलख जैत्र को शरण में रखा-उसका वैर लेना चाहा और शहाबुद्दीन गोरी को इस कार्य में साथ देने के लिए दूत द्वारा पत्र भेजा; किन्तु बादशाह चालुक्य से मिलकर पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये मना कर गया और वह गोरीशाह अकेला पृथ्वीराज से युद्ध करने को उद्यत हुआ। इधर से चालुक्यों ने भी सलख जैत्र के प्रान्त नागोर की ओर आक्रमण किये; तब पृथ्वीराज ने कुछ सामंतों के साथ कैमास को नागोर रक्षा का भार सौंप कर[3] स्वयं बादशाह से सामना करने को दिल्ली से रवाना हो गया[4]। कैमास और उसके साथी सामन्तों ने नागोर, सोजत्री, आदि स्थानों पर युद्ध किया और उन जैन धर्मावलम्बी चालुक्यों और चालुक्य नरेश को पराजित किया[5]।

इस से यह स्पष्ट होता है कि, कवि का, जैत्र सलख को, अब्बूवा, अब्बूवै, धाराधिनाथ आदि लिखना शासक रूप में नहीं वरन वंश या पूर्व स्थान सूचक शैली को लिए हुए है। इससे सलख जैत्र को आबू और धार राज वंशज ही मानना चाहिये।

---

१ चल्यो भौर भीमह सुभर, अप्पुरिणी निसिअद्ध। रोरि परी गढ़ उप्परै, भेद सबै बलु रुद्ध ॥
स० १२ पृ० ४६२ छंद ६२

पामार पंच पंचह मिलै, रह्यो इक्कु औसाफ धर। स० १२ पृ० ४६४ छंद १०७

२ एक मास दिन पंच रहि, गढ़ मुक्यौ तिनबार।
पट्टन वै पट्टन गयो, अब्बू वै सिर भार ॥ स० १२ पृ० ४६५ छंद १११

३ मतो मंडि नागोर, राइ कैमास विचारं। ह० लि० प्रति

४ रोकि मुक्ख सुरतान को, चाहुवान दै वान ॥ स० १२ पृ० ४७८ छंद १८४

५ जिन थक्का जरि देव, सेव थक्की मातंगी। स० १२ पृ० ५१० छंद २५६

अर्थात्—वे जैन धर्मावलम्बी देवालयों को जला जला कर थक गये और उसके उत्तर में पृथ्वीराज के वीरों की मस्तानी तलवार विपक्षियों पर चल चल कर थक गई।

"भोराराय समय" में भोरा भीम के योद्धाओं का सलख जैत्र के बंधु-क्षेम कर्ण खंगार आदि के साथ युद्ध होने का कारण राजकुमारी इञ्छिनी नहीं कही जा सकती। इस युद्ध का हेतु इसी समय में चालुक्यों का जैन धर्मावलंबी होने से शिवपुरी (मारवाड़ में शिवाना या नागोर के पास कोई देवस्थान) तथा अन्य देवस्थानों को जलाया जाना बताया जा चुका है। अतः इञ्छिनी के कारण जो युद्ध होना लिखा गया है, उन छंदोंको क्षेपक छन्द ही मानना चाहिये। इञ्छिनी-विवाह समय अलग लिखा गया है। वह भी किसी अन्य कवि द्वारा ही विवाह के विषय वर्णन का विस्तार हुआ है। इसी समय में हम ऊपर बता चुके हैं कि छंद संख्या २ में पृथ्वीराज को इञ्छावर (इञ्छिनी का पति) लिखा जा चुका है। इसी प्रकार छंद संख्या १८ में "कन्यावर पृथ्वीराज" लिखकर कवि संक्षेप में स्पष्ट कर देता है कि सलख जैत्र ने अपनी सहायता के लिये पृथ्वीराज को अपनी कन्या (राज कुमारी इञ्छिनी) ब्याही थी। सलख जैत्र के स्थान के विषय में इस समय द्वारा यही निश्चय होता है कि वह आबू से उत्तरी भूभाग का स्वामी था और नागोर (मारवाड़) के आसपास उसका दुर्ग था; जिसका नाम तेजगढ़ या आगरगढ़ (अग्गर गढ़) था। चालुक्यों ने सलख जैत्र पर ही नहीं, वरन् आसोजे, वेढ़ाने, सोनगिरी, संथार और सिवाने वाले जो कि उमा के बन्धु प्रमार क्षत्रिय थे उनपर भी आक्रमण किया था। अस्तु सलख जैत्र का स्थान नागोर के निकट ही माना जा सकता है और वह आबू राजवंशी होते हुए भी आबू-पति से अलग होकर रहा एवं पृथ्वीराज की शरण में गया। अस्तु शंका-कर्त्ताओं का क्षेपक अंशों के आधार पर सलख जैत्र को आबूपति मानना केवल भ्रम मात्र है। पृथ्वीराज को जो राजकुमारी इञ्छिनी ब्याही गई वह आबू की राजकुमारी नहीं थी, वरन् आबू राजवंश की राजकुमारी थी।

(ग) दाहिमी रानी के सम्बन्ध में:—

जिन सु ब्रह्म साधन खुलै, ।　　　　सं० १२, पृ० ५१० छंद ३५८

अर्थात्:—जैन धर्मावलम्बियों के लिये उन वीरों ने ब्रह्म-सम्पर्क के साधन का द्वार खोल दिया।

"जन सद्दू धरि छत्र, मंत्र निब्बह्यौ मंडि सिर"　　　　स० १२ पृ० ५१६ छंद ३६२

अर्थात्:—प्रत्येक जैनी ने चाहुवानी वीरों की मंत्रणा को छत्र पर धारण किया।

रासो में स्पष्ट होता है कि चावंड और कैमास (कदम्ब वास) दोनों भाई थे। यह दाहिमी रानी उन्हीं की बहिन थी। कैमास पृथ्वीराज का मंत्री था, यह बात इतिहास प्रसिद्ध है। तब कैमास और चावण्ड की बहिन से शादी पृथ्वीराज की शादी होने में कोई शंका नहीं रहती। शंका-कर्त्ताओं ने इस विषय पर शंका करते हुए यहो एक प्रमाण उद्धृत किया है कि पृथ्वीराज के पुत्र का नाम रेणसी नहीं गोविन्दराज था; किन्तु रासो के इतर छंदों से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज के रेणसी के अतिरिक्त और भी संतान थी। अन्तिम युद्ध के समय चित्तोड़पति के आने पर पृथ्वीराज के दोनों पुत्र उससे जाकर मिले थे[१]। अन्तिम युद्ध के लिये प्रस्ताव किया गया, तब उससे पूर्व पृथ्वीराज ने अपने पाटवी (बड़े) पुत्र रेणसी को बुलाया[२]। और उससे कहा कि तुम अपने भाई को नय्यर (अजमेर) पर रक्खो[३]। पाटवी पुत्र राज्य नहीं छोड़ता, अतः तुम यहीं पर (दिल्ली) रहो[४] इससे समझा जा सकता है कि पृथ्वीराज के दो पुत्र थे, जिनमें बड़ा पुत्र रेणसी (चावण्ड और कैमास का भानजा) था। अन्तिम युद्ध में प्रस्थान करते समय पृथ्वीराज बड़े पुत्र से कह गया था कि तुम यहाँ (दिल्ली) रहना और तुम्हारे छोटे भाई को नयर (अजमेर) पर रखना। उसी के अनुसार रेणसी दिल्ली पर रहा और अपने छोटे भाई (सभव है उसका नाम गोविन्दराज हो) को अजमेर का शासक नियुक्त किया। रेणसी पिता के बाद दिल्ली का शासक कुछ ही समय के लिये हुआ अर्थात् पिता के साथ ही उसका भी सर्वनाश हो गया। अजमेर का शासक रेणसी का छोटा भाई गोविन्दराज) हुआ, जिसका संभव है अपने चाचा हरिराज से बिगाड़ हुआ हो। रासो से पृथ्वीराज के भाइयों में हरिसिंह (हरिराय) का वर्णन हुआ है, उसी को हरिराज मानना चाहिये[५]।

---

१. "लगे पायँ कुम्मार दोनों मली।" स० ६६ पृ० २१५३ छं० ३०३

२. "बोले अगर रेन कुमार" स० ६६ पृ० २२०४ छं० ५६४

३. "राखहु बंध (बंधु) नयर शुभ सजं" स० ६६ पृ० २२०४ छं० ५६६

४ "पाटवी पुत्र छंडहीं न रज्ज" स० ६६ पृ० २२०५ छं० ६०६

५ "बली बांह हरिसिंघ, रेह'रक्खे चहुवानय"

स० मीम कैमास युद्ध पृ० १२६, २७, ६० लि० प्र० १७७०)।

अर्थात्— बलवान (पृथ्वीराज) की भुजा स्वरूप (भाई को भुजा व्यवहारिक रूप में कहा जाता है) चौहानों की रीति को रखने वाला हरीसिंह।

(घ) शशिवृत्ता के सम्बन्ध में: —

शशिवृत्ता के लिये रासो में लिखा है कि उसकी सगाई के नारियल लेकर द्विज (पुरोहित) जयचंद के यहाँ गया। उसके आने की सूचना हेजम (अश्वारोही) द्वारपाल ने कन्नौजपति को दी. और वह सामने बुलाया गया। द्विज ने जयचंद से निवेदन किया कि यह सगाई के नारियल 'देवसुगिरा' (देवास गिरी) के राजा के भाई पुंज की पुत्री शशिवृत्ता के हैं और आपके भाई वीरचंद को समर्पण करने के लिये भेजे गये हैं। विवाह के निश्चित तिथि एक महीना पांच दिन (अर्थात् अति ही निकट) है। यह बात एक गंधर्व (गायक) ने सुनी और वह दक्षिण (कन्नौज से दक्षिण की ओर) को देवधर (देवभूमि, देवस्थल, देवस्थान, देववास देवास) की ओर चला[1]। इधर द्विज ने पुंज द्वारा भेजे हुए श्रीफल कमधज्ज को समर्पित किये[2]। उधर हंस रूप में वह (गंधर्व)[3] शशिवृत्ता के पास पहुँचा।

---

१ नालिकेर दुज गहिय, द्वार जे चन्द गयो त्रप (विप) ।
करी खबर हेजमहं. आप अन्दर बुलाइ नृप ॥
नालकेर दुज आनि, कह्यो राजन अब भारी !
देवसु गिरि नृप भ्रात, पुंज शशि—वृत्त कुमारी ॥
सो दइय बंधु नृप बीर कहु लगन माप दिन पंच वर ।
सुनि श्रवन एह गंध्रब्ब कथ, चल्यो सु दच्छम देव धर ॥

स० २५ पृ० ७७० छंद ६६

२ "सोइ श्रीफल कमधज्ज, दियौ सुइ अवध पुंज नृप" ।

स० २५ पृ० ७८८ छंद १६०

३ गंधर्व (गायक) हंस रूप में शशिवृत्ता के पास भेजना कवि कल्पना है, इससे यही समझना चाहिये कि शशिवृत्ता की सगाई वीरचंद से हुई उसकी सूचना शशिवृत्ता को गायक द्वारा मिली ! इसी प्रकार हंस (गायक) का कहना कि, हे शशिवृत्ता तू पहले चित्ररेखा अप्सरा थी, इससे यही मानना चाहिये कि शशिवृत्ता चित्ररेखा सी सुन्दर थी । तदुपरान्त पृथ्वीराज के पास शशिवृत्ता का संदेश लेकर हंस के आने से भी गायक का ही आना समझना चाहिये। इत्यादि कल्पनाएँ कथा को सुन्दर कर देने के लिये की गई हैं, यह शैली प्राचीन ग्रन्थों और पुराणादि में अधिकतर देखी गई ।

तब उससे राजकुमारी शशिवृत्ता ने पूछा, मैं पूर्व जन्म में कौन थी और मेरे इस जन्म में कौन पति लिखा है ? तब हंस (गायक) बोला, हे राजकुमारी तुम पूर्व जन्म में चित्ररेखा नामक अप्सरा थी और तुम में गुण रूप विशेष था। उसका तुझे गर्व होने से इन्द्र द्वारा शापित होकर तान (तवनपाल) दक्षिण नरेश (दक्ष नरेश, या दिल्ली से देवास दक्षिण में है इसलिये वहाँ का राजा) के भाइयों में पुंज है, उसके यहाँ तूने सुमन सदृश अवतार ग्रहण किया १। फिर वह (हंस रूप गायक) पृथ्वीराज के पास पहुँचा और कहने लगा-शशिवृत्ता के पिता पुंज ने अपनी पुत्री को जयचंद के भाई वीरचंद को ब्याहना निश्चित किया है, इसीलिये हे राजन आपके पास देवास की पुंज कुमारी शशिवृत्ता ने यह संदेश देने को मुझे भेजा है। २ यही सूचना चन्द्रोदय नामक नर्तक ने भी दी। वह दक्षिण दिशा (दिल्ली से दक्षिण की ओर) से आया जो मध्य प्रदेश में रहता था। ३ इसलिये पृथ्वीराज ने उससे वहाँ का (मध्य प्रदेश का) वृतान्त पूछा। ४ उसने कहा वहाँ का यादव राजा, तान (तवनपाल) गुणों को प्राप्त करने

---

१ कहे बाल सुन हंस, कवन हम पुब्ब जम्ज कह ।
कवन पत्ति हम लहहिं, लेख बिच्चार लहो इह ॥
तबं हंस उच्चरयो, सुनहि शशिवृत्ता नारी ।
चित्ररेख अपछरी, सुगन (सुगुन) अति रूप धरारी ॥
तिहिं गरभ इन्द्र सम कलह करि, क्रोध देव छण्डी सुरम ।
दच्छिन नरेश नृप तान बँध, पुंज गृहे अवतार सुभ ॥

स० २५ पृ० ७७१ छन्द ७२

२ बीर चंद जैचन्द बंधु, देवसु पुंज कुमारि ।
नृप पठये चंहुआन पै, दे ससिवृत्ता नारि ॥

स० २५ पृ० ७७५ छन्द १०६

३ "दिसि दक्खिन पर देशं, नायक आइ चन्द्रोदय नामं" ॥

स० २५ पृ० ७५१ छन्द ४

४ "पुच्छिय बिगति देश रह मभ्भं" ॥

स० २५ पृ० ७५१ छन्द ५

केलिये अपने शुभ गुण से भेद नीति को विचारता है[१]। ऐसा वह मेरा स्वामी (भान) सोमवंशी है, जिसने देवगिरी बसाया[२] (ग्रन्थ समाप्ति तक देवगिरी बस चुका था। इससे उसका वर्णन होना असंगत नहीं या इसका प्रयोग देवास के लिये किया गया हो।) यह सूचना पाकर पृथ्वीराज के मन में तान (तवनपाल) के राज (देवास) को देखने की इच्छा हुई[३]। पावस व्यतीत होने पर पृथ्वीराज ने दक्षिण दिशा (दिल्ली से दक्षिण की ओर) का जाने का विचार किया[४] और कुछ ही दिनों में शिकार के बहाने स्वयं क्रीड़ा (सैर) करता हुआ मध्य प्रदेश में पहुँचा[५]। उधर प्रातः काल होने पर शशिवृत्ता पूजा के लिये चली। साथ में ढाल, त्र्यम्बक, शहनाई बजाने वाले दो सहस्र बाजित्र थे। पूजा का समय सोचकर पुंज (शशिवृत्ता के पिता) की अनुपस्थिति में चंगी मति के एकता, स्थिरता और सुचित्तता धारण करने वाले यादव और कमधज्ज वीर अरिकुल को विकल करने के लिये शशिवृत्ता के निरीक्षक के रूप में सज धज कर साथ में चल पड़े[६] इतने में शिवकी पूजा के बहाने से वर (वीरचंद) का भी वहाँ (शिवशिवा के स्थान) पर जाना सुनकर शशिवृत्ता के पिता पुंज भी सज्जित होकर सामन्तों को साथ

---

१ "तान मान गुण लहन, भेद शुभ ज्ञान विचारम्" ॥

टिप्पणी १, २ स० २५ पृ० ७६१ छन्द १६

२ तब नट नमिकरि उच्चरिय, सुनहु राज दिल्लीश ।

सोमवंश जद्दव नृपति, देवगिगरि बसि जीस ॥

स० २५ पृष्ठ ७६१ छन्द १५

३ "मन जाने बर अप्प, लग्गिओ तान राज उर" ॥

स० २५ पृष्ठ ७६४ छन्द २४

४ "किय सुमन दिसा दक्खिन करम्म" ॥ ह० लि० प्रति

५ "करन राज क्रीला आखेटं, संक्रमि देश मध्य मन भेंटं" ॥

स० २५ पृष्ठ ७६६ [इतर छन्द]

६ "अरुनोदय उग्गमह, सुच्छ लीने सुबंध भर ।

उभय सहस बाजित्र, ढोल तुम्बक्किसु मत्त गुर ॥

अद्ध सहस नफ्फेरि, सहस सहनाय सुरंगी ।

सुवर वीर पूजा प्रमान, कीनी मति चंगी ॥

बिन पुंज संग सेना सकल, अकल अपूरब बत्तबर ।

में लेकर वहाँ पहुँचा [1]। पूजा के लिये आई हुई शशिवृत्ता का पृथ्वीराज ने हरण किया और युद्धारंभ हुआ। पांच घड़ी दिन शेष रहे यादव ने सलाह की और कमधज्ज (वीरचंद) से मिल कर शकट व्यूह की रचना इस प्रकार की, अपनी आधी सेना पैरों के स्थान पर, जुए के स्थान पर पुंज, दूसरे पहिये के स्थान पर राजा (पुंज का बड़ा भाई) और मध्य भाग में अपने स्वजन और वर (वीरचंद) को पुंज ने स्थापित किया। उस समय लक्ष्मण नामक (कोई) वीर ऐसा शोभित था, मानो राम की सेना का बली लक्ष्मण स्वयं आ उपस्थित हुआ हो [2]। उस विकट युद्ध में पृथ्वीराज, पुंज और वीरचंद की सेना से घिर गया। उस समय वीरों के धड़ धरणी पर थे, किन्तु सिर तलवार की धार पर डोल रहे थे [3]। युद्ध के अन्त में पृथ्वीराज के भाग्य से काका कन्ह बच गया और सामंतों ने पुंज (शशिवृत्ता के पिता) को बाँध लिया, [4] इस

भर सकल बिकल अरि कुलन को, सुचित, मित्त इक्कर सुथिर ॥

स० २५ पृ० ८०४ छं० ३२०

१. चल्यो पुंज नव साज वर, अरु भरतीने सत्थ।
शंभुथान पूजन मिसह, चलिवर आयो तत्थ ॥

स० २५ पृ० ८०६ छं० ३५३

२ घरिग पंच दिन रह्यो मंत जद्दव आरंभिय।
मिलि कमधज्ज नरिंद, सकट व्यूह सु प्रारंभिय ॥
अर्ध सत्थ आपनो, चरन मण्डीय वाम दिसि।
व्यूह चक्र विय पाइ, सत्थ उभौ नरिन्द कसि ॥
उद्धवन भार अंगत सकट, सबर पुंज अप्पनसजिय।
रघुनाथ साथ बलियं बिहँसि, हँकि सु लछिमम तहँरजिअ ॥

स० २५ पृ० ८१३ छं० ३८५

३ चावदिसि नृप विंट्यौ, पुंजुं सेनाय सेनयो वीरम्।
धर धरनी आधारं, साधारं डुल्लयम शीशम् ॥

स० २५ पृ० ८१८ छं० ४३२

४ उब्बर्‍यो कन्ह पृथिराज क्रम, जुम्झि पुंज बंध्यौ सुभट ॥

स० २५ पृ० ८२५ छं० ४६२

प्रकार युद्ध करके पृथ्वीराज ने जय-पत्र प्राप्त किया और शत्रु सेना को मोड़ दिया तथा पुंज को बांध कर यादवों के मुखियाओं को टटोल लिया (परीक्षा करली) लक्ष्मण धराशाई हुआ और घायल अवस्था में कन्ह को उठाया गया तथा रणस्थल में मृत और घायल वीरों को ढूँढ कर उठाये। इतने में सूर्यास्त हो गया और दोनों सेनाओं ने विश्राम किया; किन्तु कमधज वीर (वीरचंद) की मस्ती न मिटी। वह क्रोध रूपी हलाहल से परिपूर्ण हो गया[1]। रासो में शशिवृत्ता के पिता का नाम पुंज होना[2] और इन यादवों का देवास से सम्बन्धित होने का कई जगह अन्यत्र भी उल्लेख है[3]। तथा समय के प्रारम्भ में पट्टन (राजगढ़ रियासत मालवा के पास)[4] और हरसिद्धि (देवास के निकट देवी का

---

१ जीति लियौ जै-पत्त, चारु चतुरंग सु मोरी।
बर बंध्यो नृप पुंज, ढाल जद्दव ढंढोरी ॥
बर लच्छिन परिखेत, कन्ह चहुवान उपारिय।
खेत ढूंढि पृथिराज, सु मृत भोरी करि डारिय ॥
इतनै सु भान अस्तिम भयं, दोउ सेन बर उत्तरिय।
मुक्की न बग्ग कमधज्ज की, रोम गाह विसग्न भरिय ॥

स० २५ पृ० ८१५ छं० ४६४

२ "सुने पुंज राजी, चल्यो बीर बाजी" ॥

स० २५ पृ० ८१३ [इ० छं०] छं० ३८६

"मिले धाय निध्धाय सा पुंज राजे" ॥

स० २५ पृ० ८१५ [इ०छं०] छं० ४००

"देवालय भगवती पुज्जेवं, पुंजयो बालम (पुंज पुत्री)" ॥

स० २५ पृ० ८७५ छं० ४६४

३ "देवस (देवास) भान जद्दव नृपति" ॥

स० २५, पृ० ७७० छं० ६८

"देवास थान तपि भान नृप" ॥ स० २५ पृ० ७८३ छं०१६२

"हो देवस दुजराज" (अहो देवास के द्विज राज)" ॥

स० २५ पृ० ७८६ छं० २०२

४ "बर पट्टने जद्दवन दूत राज पै पठाइय" स० २५ पृ० ७६५ छं० ४७

स्थान)[1] का तथा युद्धके अन्तमें बाणगंगा[2] (एक नदी) और सुठिहार[3] (सुँठालिया) ग्राम का उल्लेख भी हुआ है। इन बातों से स्पष्ट होता है कि शशिवृत्ता के पिता का नाम भान नहीं वरन् पुंज था; जो भान का छोटा भाई था। ये यादव राजा (तवनपाल) के भाइयों में से थे[4]। तवनपाल और उसके पिता के लेख देवास के निकट इगणोड़ा ग्राम से प्राप्त हुए हैं[5]। तान शब्द संज्ञा वाचक है जो तवन का विकृत रूप "तौंन होकर तान" है। शशिवृत्ता के पिता पुंज का बड़ा भाई भान था, जिसने आगे जाकर देवगिरि को बसाया। अन्य विद्वान् देवगिरि के बसाने वाले का नाम भिल्लम मानते हैं[6]। भिल्लम शब्द भी भान का "भानम् भिन्नम्"; होकर भिल्लम बना हो, ऐसा ज्ञात होता है। तदुपरान्त देवस, देवधर शब्द देवास के लिये ही उपयुक्त हुए हैं. तथा स्पष्टतया देवास भी लिखा है। साथ ही नृतक का मध्य प्रदेश से आना तथा पृथ्वीराज का मध्यदेश (मालव) की ओर जाना भी स्पष्ट लिखा गया है। इस वर्णन में पट्टन, हरसिद्धि, बाणगंगा और सुँठालिया का भी उल्लेख हुआ है ये स्थान भी देवास के आसपास मालवे में ही हैं। ऐसी हालत में इस युद्ध का और इन यादवों का सम्बन्ध मालवा प्रान्त से ही माना जा सकता है।

(ङ) हँसावती के सम्बन्ध में:—

इस वर्णन में सर्व प्रथम रणथंभ शब्द पर विचार किया जाता है। रणथंभ शब्द का प्रयोग दुर्ग के लिये किया जाना तो स्पष्ट है ही. किन्तु उपाधि रूप

---

१ "तरसि ऊजल मांधे व्याहन बगनीय थाव हरसिद्धिम्" ॥

सं० २५, पृ० ७८६

२ "खूब खेत विधि गाम, बानगंगा पथ झारिय" ॥

सं० २५, पृ० ८६३, छं०७७७

३ "सुठिहार राज पृथिराज को, धरे सबह चोडोल घर" ॥

सं०२५, पृ० ८६३, छं० ७७७

४ तवनपाल के अठारह भाई होना माना गया है, यह यादव-संभव है, उन्हीं में से हो।

५ देखो राजपूताने का इतिहास भाग १, पृष्ट ५९९-६००, ले० श्री जगदीशसिंहजी गुहिलोत।

६ देखो पृथ्वीराज चरित्र, ले०रामनारायजी दुगड़।

में यादव वीर को रण में स्तम्भस्वरूप भी लिखा गया हो, ऐसा भी अर्थ हो सकता है, जिससे इस समय का सारा अर्थ बदल जाता है और वर्णन में नवीनता आ जाती है [1]। फिर भी विद्वानों के मतानुसार हम रणथंभ शब्द का सम्बन्ध रणथंभोर दुर्ग से ही मानते हैं। यादव भान को रणथंभोर का स्वामी मानने के लिये रासो में हमें कोई मुख्य कारण उपलब्ध नहीं होता। रासो से स्पष्ट होता है कि उस समय यादव भान ने वहाँ आकर शरण ली थी; अतः युद्ध के समय रणथंभोर पर प्राप्त की हुई शरण का परित्याग करके उसने सब

---

१. " राजद्दव रिनथंभ, भान पंचायन भारी " ॥ स० ३६

(रण में स्तम्भ स्वरूप यादव राज भान और पंचायन)

" रणथंभ मुक्कवे दूतं "

(रण में स्तम्भ स्वरूप यादव राजा के पास दूत भेजे)

" रा-जद्दव रिन-भान " (रिनभान यादव राज)

" वर रनथंभ उत्तरी "

(उत्तरी यादव शाखा वाला रन में स्तम्भ स्वरूप यादव राज)।

" रिन थम्भह वर उप्परे " (श्रेष्ठ रणमें स्तम्भ स्वरूप यादव उमड़ा)

" सब तीरथ रनथंभ " (सर्व तीर्थ स्वरूप रणथंभ यादव राज)

" रिन थंभह दिसि थंभ " (रण में स्तंभ स्वरूप यादव की ओर प्रस्थान किया)

" जस वेली रनथंभ नृप " (यश की वेली के समान रण में स्तंभ स्वरूप यादव)

" वर आयो रनथंभह पर " (रण में स्तंभ स्वरूप यादव चढ़कर आया)

" ग्रह रनथंभह काज " (रण में स्तंभ स्वरूप यादव की भूमि के लिये)

" चढ़ि चल्यौ रन राज " (रनराज यादव चढ़कर चला)

" फिरी पंति रायं रनथंभ घेरयों "

(राजाओं की पंक्ति ने रण में स्तंभ स्वरूप यादव को घेरा)

" वर रनथंभ सु काज "

वीरों को लड़ने के लिये कहा [1]। इसी समय आगे युद्ध पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़पति को निमंत्रण देने के लिये कन्ह चौहान भेजा गया, जब कन्ह ने महायुद्ध के आरम्भ होने से वापिस रवाना होने का मन किया, तब वह रावल से कहने लगा, "मेरे प्रस्थान के आठ दिन पूर्व तेरस को पृथ्वीराज ने युद्ध हेतु घर (दिल्ली) छोड़ दिया था, क्योंकि राजा भान का शशिपाल वंशी दबाने लग गया था। यादव की धवल धरा (निष्कलंक देवास धरा) उससे छूटी हुई है। इसलिये क्या वह सहज ही (बिना प्रतिरोध किये) पुत्री (हंसावती) का दान करेगा ? इन बुरे ग्रहों (आपत्ति) के कारण यादव राज ने रणथंभोर को ग्रहण करने (रणथंभोर पर शरण लेने) की सोची, इसकी सूचना हे मित्र ! मैं आपको देने आया हूँ। हे कलंकनाशक ! इस युद्ध में आपका भी सम्मिलित होना आवश्यक है [2]। चित्तौड़पति रावल समर विक्रम ने कहा "कन्ह चौहान ! सुनो ! हम आहड़ों (गुहिलोतों) के घर और वंश की यह रीति हमेशा से है, उसके लिये करोड़ों देवता बल करें तो भी हमने जिसे शरण दे दी

(रण में स्तम्भ स्वरूप श्रेष्ठ यादव के कार्य के लिये)

"दुहुँन बीच रन थंभ"

(दोनों के बीच में रण में स्तम्भ स्वरूप यादव)

"रान (राज) रन भानु उबारे"

(पृथ्वीराज ने रनभान यादव को बचाया)

उपाधि रूप में मानने पर उपरोक्त भाँति से उपरोक्त पद्यों का अर्थ बदला जा सकता है। इन पद्यों को जो देखना चाहे, वह समय ३६ में देखे।

१ "रणथंभ मद्दि छंडी शरन, भिरन कह्यो वर वीर सब"।

स० ३६ पृ० १०५७ छंद १८

२ महन रंभ आरंभ, कन्ह चालत मति मंडिय।
अठ्ठ दीह हम अग्ग, राज तेरसि ग्रह छंडिय॥
वर वंसी ससिपाल, गंज लग्गिय नृप भानं।
धरति धवर नहँ ताम, सेत भिस देही दानं॥
अग्रहन ग्रहन रणथंभ मति, इह सु मित्त आयौ पढन।
कालंकराय कम्पन बिरद, महन रंभ बढ्यौ बढन॥

ह० लि० प्र० कानोड़ स० हं० पृ० १८६, १६०

उससे किनारा नहीं काटते। जो संग्राम से हतोत्साह होकर भाग आता है और छल (शत्रुओं के छल द्वारा) से जिसके छत्र की छाया नम गई है, ऐसे राजपुत्र को हम युद्ध से बचाने को तत्पर हैं, तथा हम धर्म रक्षार्थ (भुजाओं में) बल और नेत्रों में अरुणाई धारण करते हैं। हमारा-कलंक नाशक विरुद इसलिये प्रसिद्ध है कि हम कीर्ति के लिये नवनिधि को भी तुच्छ समझते हैं अस्तु, शरणागत की रक्षा के लिये यह युद्ध हो रहा है, इसलिये हम अवश्य आवेंगे[1]। इससे भी यादव राज का रणथंभोर पर शरणागत ही होना पाया जाता है। वास्तव में रणथंभोर पर पृथ्वीराज का ही शासन था; इसलिये युद्ध के अन्त में पृथ्वीराज अपने वीरों की प्रशंसा करता हुआ कहता है, 'तुमने छापा मारकर (हमारा) ग्राम (रणथंभोर) रख लिया और भविष्य में तुम्हारे कंधो पर ही दिल्लीव नयर (अजमेर) का भार है[2]। अब हम हँसावती के पिता यादव भान (भानराय) के स्थान के विषय को स्पष्ट करते हैं। रासो की हमारे पास जितनी प्रतियाँ हैं उन सब में हँसावती समय के अन्त में इस प्रकार लिखा है कि, हंसराय (यादव भानराय के नाम का पर्याय रूप) की हंसनी (हंसावती) से पाणिग्रहण हुआ। उस खिली हुई नवलतिका का स्थान (पीहर) मालवे का दुर्ग देवास था। आदि धर्म और कर्म के अनुसार कीर्ति के लिये (दहेज में या दान में) हाथी घोड़े आदि दिये गये; उसी (हंसावती) के लिये ही चौहान (पृथ्वीराज) को रणस्थंभोर की ओर प्रीति ने खींच लिया; अर्थात् रणथंभोर

---

१. सुनि कन्हा चहुवान, रीति आहुट्ट ग्रेह कुल।
सरन रक्खि कढ्ढइन, मिले जो कोटि देव बल॥
संग्रामें हर्येन, सुवर खत्री वर आयो।
छन रक्खे रजपुत, छत्र छल छांह नवायो।
दृग रत्त बल्ल बंसै सुबर, वेद ध्रम्म बंध्यो चवे।
कालंकराइ कप्पन विरद, किति काज नव निधि द्रवे॥

स० ३३, पृ० १०६१, छं० २७

२. रक्खियो ग्राम रतिवाह दे, तुम कंध दिल्ली नयर।

स० ३६, पृ० १०६२, छं० २२०

प्रकाशित प्रति में दिये हुए शीर्षक को पढने से (इस युद्ध का) अन्तिम विषय, दिल्ली पर युद्ध होना प्रकट करता है, किन्तु वास्तव में यह युद्ध रणथंभोर पर ही हुआ था। पढते समय विषय को सोचने से उक्त भ्रम नष्ट होगा।

पर युद्ध हुआ, फिर चित्तौड़पति अपने स्थान को गये। यादव (भानराय) भी देव नामक राज (देवराज, देवस्थान, देवास) को गया, इस प्रकार वसन्त व्यतीत हुआ और संसार में अचल कीर्ति फैली[1]।

इससे निश्चय है कि हंसावती के पिता वही देवासवाले भान हैं, जो शशिवृत्ता के पिता पुंज के बड़े भाई थे। उक्त यादव राजा भान (भानराय) को भिन्न मानकर रणथंभोर का राजा मानना भ्रम मात्र है।

शंका ७—पंड्या मोहनलालजी के मतानुसार चालू सम्वत् (विक्रमी) से कमी के ९१ वर्ष जोड़ने पर भी रासौ में वर्णित सम्वत् (अनन्द) अशुद्ध पड़ते हैं।

(क) बीसल के सिंहासनारूढ़ का सम्वत् ८२१ लिखा, जिसमें ९१ वर्ष कमी के जोड़ने से वि० सं० ९११ होता है; किन्तु अजमेर बसने के बाद जो बीसल हुआ, वह चतुर्थ बीसल था। उसके समय से यह सम्वत् नहीं मिलता। उक्त बीसल का युद्ध गुजरात के बालुकाराय से होना लिखा, किन्तु गुजरात में बालुकाराय नाम कोई राजा नहीं हुआ। इससे पाया जाता है कि रासो का लेखक गुजरात के वृत्तान्त से भी अनभिज्ञ था।

(ख) पृथ्वीराज का जन्म अ० सं० १११५ लिखा; जिससे वि० सं० १२०६ होता है; लेकिन १२०६ में तो पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर भी बालक था। उसने वि० सं० १२१८ के बाद कर्पूर देवी से शादी की, जिससे पृथ्वीराज का जन्म १२२० से १२२४ के बीच माना जा सकता है।

(ग) पृथ्वीराज के सामन्त सलख और चामुण्ड का शाहाबुद्दीन को अनन्द सम्वत् ११३६-३८ वि० सं० १२२७-२९ में कैद करना लिखा; किन्तु वि० सं० १२३२ में गोरी ने मुलतान जीत कर भारत पर चढ़ाई की थी। इससे पूर्व वह भारत में नहीं आया, इसलिये यह वर्णन भी कल्पित है।

---

१ हंसराय हंसनिय, पानि-ग्रहनी ग्रह हल्लिय।
मालव द्रुग देवास, वास मुहूत नव वल्लिय॥
हय गय धुर धर भ्रम्म, क्रम्म किती अति दानह।
ता पाछे रनथंभ, प्रीति खींची चौहानह॥
बिभ्रंग राय रावर रमिय, 'देव-राज' जद्दव वहिय।
बितिय बसंत रिति अम्मरिय, अचल एक किती रहिय॥

स० ३६, पृ० १०९७, छंद २१२

(घ) पृथ्वीराज का अ० सं० ११३८ में दिल्ली की गद्दी पर बैठना, उसी वर्ष खट्टू वन से धन निकालना, अनन्द सं० ११३६ में समुद्र शिखर की राजकुमारी से विवाह करना। कर्नाटक देश की सुन्दर वैश्या को प्राप्त करना, जिससे क्रमशः १२१६, १२३० और १२३२ विक्रमी सं० होते हैं, किन्तु कल्पित हैं, क्योंकि उस समय तक तो पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

इसी प्रकार रासौ में दिये हुए सभी सं० कल्पित हैं

उत्तर—रासो में वर्णित अनन्द संवत्, वि० और शक सं० से भिन्न हैं। इस बारे में रासो में ही लिखा है कि पृथ्वीराज के शासन का यह सम्वत् तीसरा (विक्रमी और शक सम्वत् से भिन्न) है[1]। इतर छन्दों से भी स्पष्ट होता है कि "विक्रम बिन" अर्थात् विक्रमी सम्वत् से रहित (भिन्न) सम्वत् बांधने वाला पृथ्वीराज क्रूर रूप से तपता है, जिस प्रकार कलियुग और द्वापर के संधिकाल में संवत् प्रवर्तक युधिष्ठर और उसके बाद विक्रमादित्य हुआ। उसी के पश्चात् उनके समान ही तीसरा सवम्त् बाँधने वाला पृथ्वीराज अवतरित हुआ[2]। पृथ्वीराज के सवत् विषयक पद्यों में भी लिखा है कि—

अनन्द (अनन्दराज) के विक्रम (पराक्रम) के शाक (शाके) को ११९५ वर्ष बीतने पर शत्रुओं के नगरों को जीतने के लिये पृथ्वीराज हुआ[3]।

सम्वत् ११०० (ग्यारा सौ) जो लिखा गया वह विक्रम और युधिष्ठर सम्वत् के समान ही ब्राह्मणों ने गुनकर (गिनकर) गुप्त रूप से बतलाया, वही

---

१ "तृतीय शाक पृथ्वीराज को"। स० १, पृ० १३८, छंद ६६५

२ विक्रम बिन सक बंधी सूरं, तपै राज पृथ्वीराज करूरं।

कलियुग अरू द्वापर की संधी, शाको धर्म-सुतह बल बंधी ॥

ता पाछे विक्रम बर राजा, ता पाछे पिथ्थल नृप साजा।

ह० लि० प्रति

३ एकादश से पंचदह, विक्रम शाक अनन्द।

तिहि-रिपु पुर जेहरन को, हुय पृथिराज नरिन्द ॥

स० १, पृ० ३८, छंद ६६४

प्रथ्वीराज का माना हुआ यह तीसरा संवत् है[1]।

इससे निश्चय है कि यह कोई तीसरा ही संवत् था। कुतुबुद्दीन की मसजिद के अहाते वाले लोह स्तम्भ पर जो अनंगपाल का लेख है, उसमें लिखा हुआ "दिल्ली-वाला-संवत्" भी यही अनन्द संवत् होना चाहिये[2]। तदुपरान्त पिपली (मेवाड़) के आचार्यों के पट्टे परवाने वाला संवत भी यही संवत् है।

इस अनन्द सवत् का सम्बन्ध किसी अनन्दराज नामक व्यक्ति विशेष से है। वह व्यक्ति तँवर या चौहान वंश का होना चाहिये। हमारा जहाँ तक विचार है, यह व्यक्ति चौहान वंश का ही था, क्योंकि इस वंश में अनन्दराज नामक नरेश हुए हैं। आनन्दराज नाम का शिलालेखों में विकृत रूप-अरुणोराज, आना, आनल और अनल लिखा मिलता है[3]। इसी रूप में पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत चौहान वंश के मूल पुरुष चौहान को भी "अनल चौहान[4]" लिखा गया है। उसी "अनल" चौहान (आनन्दराज चौहान) के पराक्रम के उपलक्ष में इस संवत् की रचना हुई हो। यह संवत् अधिक समय तक नहीं चला और प्रचलित संवत् की भांति जनता में व्यवहृत भी नहीं हुआ। इसीलिये संभव है प्रकाश में नहीं आया. किन्तु यह निश्चय है कि पंड्या मोहनलालजी के माने हुए वि० सं० से इसमें ६१ वर्ष की सर्वत्र कमी है जिसके मिला देने से ठीक वि० सं० बैठ जाता है[5]। ऐसा करने से रासो के संवतों में कहीं गड़बड़ मालूम नहीं होती,

---

१. एकादश समये सुकृत, विक्रम जिमि ध्रम-सुत्त।
तृतिय शाक प्रथिराज को, लिख्यौ विप्र गुन गुप्त॥
स०१, पृ० १३८, छं० ६६५

२ देखो शंका नं० ३ का उत्तर।

३ इसमें लिखे विकृत रूपों के लिये चौहानों के लेख और प्राचीन पुस्तकादि को देखना चाहिये।

४ उपउयो "अनल चौहान" तब, चवसु बाहु असि वाह धर"।
स० १, पृ० ५१, छं० २५५
अनल कुण्ड आभंग उपजि, "चहुवान अनल थल॥
स० १, पृ० ५५, छं० २८०

५ संवतों का मिलान।

संवतों के मिलान को जानने के लिये टिप्पणी में दिये हुए विषय सम्बन्धित समयों को देखें।

किन्तु कहीं-कहीं लेख दोष हो या समझने में हमारा दोष हो तो उनका ध्यान रख कर जाँच द्वारा ठीक कर लेना आवश्यक है।

पृथ्वीराज का जन्म अ० सं० ११११५-वि० सं० १२०६

नाहरराय की पुत्री से विवाह-अ०सं० ११३३-वि० सं०१२२४; इस संवत् के उल्लेख में "गुन" और "तीस" के ३६ संख्या नहीं मानकर गुन की संख्या तीन को तीस में मिलाकर कुल संख्या तैंतीस माननी चाहिये। कथा के वर्णन से भी ऐसा करना उपयुक्त है। क्योंकि पृथ्वीराज की शादी उसके १८ वर्ष के होने पर हुई थी।

भीम कैमास युद्ध— अ०सं ११४४ या ११४८ वि०सं० १२३५ या १२३६

दिल्ली दान:— अ०सं० ११३८ या ११४१ वि०सं०१२२९ या १२३२

धन कथा— खट्टू वन में धन प्राप्ति अ०सं० ११४६ वि०सं०१२३७ (इस संवत् की संख्या में सम्पत (सम्पत्ति) आठ प्रकार की मानी गई है,उसकी संख्या ८ मिलानी चाहिये जो कि अब तक छोड़ दी गई है।

करणाटी प्राप्त— अ०सं० ११४१ वि०सं० १२३२

पहाड़राय समय— अ०सं० ११४५ वि०सं० १२३६ इस संवत् की संख्या में "संवत-सर" में सर कामदेव की पंच बाण की संख्या ५ भिन्न मानने पर ११४४ होगी।

कैमास युद्ध — अ०सं० ११४० का अन्त वि०सं० १२३२ का प्रारंभ, शाह का पंजाब तक आना।

राजसूयज्ञ (राजसू यज्ञ विषयक विचार) अ०सं० ११४४ वि०सं० १२३५

इस संवत् में संयोगिता का जन्म होना मानना भ्रम है। कवि ने "विखण्ड" लिखकर उसकी कुल आयु २६ वर्ष का अर्ध भाग कहा है।

कन्नौज समय— अ०सं० ११५१ वि०सं० १२४२ प्रकाशित प्रति में "इक्कानवे" पाठ है; किन्तु हमारे पास देवलिया (अजमेर) वाली हस्तलिखित प्रति में "ग्यारह सै इक्यावन" लिखा सो ठीक है। इसी समय में जयचन्द का देशों को विजय करना अ०सं० ११३४ वि०सं० १२२५ में लिखा गया। अस्तु, यह संवत् जयचन्द के विजय प्रसंग का है, गोरीशाह से युद्ध होने का नहीं है।

(क) बीसल के विषय में संवतों की गड़बड़ बताई गई है, किन्तु देवलिया वाली प्रति जो हमारे पास है, उसमें बीसल के संवत् विषय पर कोई पद्य प्रस्तुत नहीं है, न उसमें गुजरात के बालुकाराव से युद्ध होना ही लिखा गया है। इस बीसल के पौत्र का नाम यत्र तत्र आना लिखा है; किन्तु एक स्थल पर उसे अज्जव (अजयराज) लिखा हुआ है, [१] जो आनल, अनाल, आनन्द के रूप से भिन्न नहीं है। क्योंकि ऐसे भिन्न२ रूप अन्य लेखादि में भी मिलते हैं। इसी आना या अजयराज को अजमेर के जीर्णोद्धार का श्रेय रासो में दिया गया है, जो कि पृथ्वीराज विजय आदि के वर्णन के अनुकूल है। इसलिये यह बीसल तीसरा बीसल होना चाहिये, जो कि अजयराज (उप या विकृतरूप में 'आना' लिखा है) उसका पितामह था। इस बीसल का एक तपस्विनी से बलात्कार करना भी प्रमाण शून्य नहीं है, चतुर्विंशति प्रबन्ध में एक ब्राह्मणी से बलात्कार करना स्पष्ट लिखा है। अस्तु बीसल के विषय में रासो में संवत् बाद में ही लिखे ज्ञात होते हैं। रासो वाला बीसल तृतीय बीसल ही निश्चित है, श्री दशरथ शर्मा भी राजस्थानी

बड़ा युद्ध (अन्तिम युद्ध) अ० सं० ११५८ वि० सं० १२४९।

उक्त संवत्, अंतिम लड़ाई होने और उसमें पृथ्वीराज के मारे जाने का तथा चंद के द्वारा ग्रंथ समाप्ति होने का है। प्रारंभ में ११५८ लिखा उसी प्रकार अन्त में—

"—एकादश सेसत्त, पंच पंचास अधिकतर" लिखा, जिसका आशय यह है कि ११०० पर सेसत (शिशुत्व के रूप या नाम "शिशुत्वं शैशवं बाल्यं त्रयबालत्वे") ३ और पंच ५ पंचास ५० जुमला ५८ अर्थात् अ० सं० ११५८ (वि० सं० १२४९) में अन्तिम युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज मारा गया और ग्रंथ समाप्त किया गया। यदि इसमें "से" और "सत्त" को अलग कर देते हैं तो "से" "सौ" के लिये प्रयोग होना माना जाकर "सत्त" ७ "पंच" ५ "पंचास" ५० रह जाता है, जिससे ग्यारहसो पर ६२ होते हैं; किन्तु प्रारंभ में स्पष्ट रूप में "ग्यारहसौ अट्ठावना" लिखा गया है। अतः अंत को भी ग्यारहसौ अट्ठावन ही मानना पड़ता है, जिससे ऊपर किया हुआ अर्थ ही ठीक जंचता है।

१ "पृथ्वीराज रासौ देवलिया प्रति "प्रथम समय" अथ अज्जब अजमेरि बन" [अर्थात् अजयराज, विकृत-रूप अज्जव, अज्जय, अज्जन, "आना" अजमेर के जंगल में आया]।

भाग ३, अंक ३ जनवरी १६४० ई० "रासो की कथाओं के ऐतिहासिक आधा नामक लेख में तीसरा बीसल ही रासो में होना निश्चित करते हैं।

(ख) पृथ्वीराज का जन्म समय: –

पृथ्वीराज का जन्म संवत् रासो के अतिरिक्त किसी लेख या पुस्तक लिखा नहीं मिलता है। अब तक अनुमान पर ही उसका जन्म संवत् निर्धारित क रहे हैं। पृथ्वीराज विजय में उसे सोमेश्वर की मृत्यु के समय बालक लिखा ज के आधार पर ही शंका कर्ता उसका जन्म संवत् १२२२-२३ मानते हैं; कि ऐसे विषय का अनुमान लगाने से पूर्व ऐसे ग्रन्थ (जिसमें संवतादि न हों) वर्णित जीवन से मुख्य सम्बन्ध रखने वाली ऐतिहासिक घटना, जिसका ठ संवत् सप्रमाण निर्धारित किया जा चुका हो, उससे मिला लेना चाहिये। पृथ्वीर के जीवन का मुख्य सम्बन्ध गोरीशाह से भारत की रक्षा के लिये युद्ध करना है। यद्यपि पृथ्वीराज विजय में ऐसी घटनाओं का अभाव है, फिर भी इस सम्ब की एक घटना का उसमें भी वर्णन हो पाया है,जिससे निश्चय होता है कि पृथ्वीर पूर्णयुवा होकर कई राज-कन्याओं से विवाह कर चुका था, जिसके पश्च (सं० १२३३-३५ में) उसके पास गोरीशाह का दूत आया और गुर्जर देश गोरी की चढ़ाई हुई, उसमें गोरी और उसके साथी पराजित हुए। पृथ्वीराज वि का लेखक इस वर्णन को १० वें, ११ वें सर्ग में इस प्रकार लिखता है—"पृथ्वीर की युवावस्था को सुनकर सब राज-कन्याएँ अनुराग प्रगट करने लगीं और जन्म में वियोग रहने के कारण घबड़ाई हुई सीता ने मानो अपने समान गुणवा अनेक स्त्रियों के बहाने अनेक रूप बनाकर पृथ्वीराज का आलिंगन कर सं पाया (अर्थात् पृथ्वीराज कई विवाह कर चुका)। फिर पृथ्वीराज ने विग्रहर के पुत्र नागार्जुन को परास्त किया। तत्पश्चात् गजनी के स्वामी गोरी आधिपत्य खो जाने से; भारतीय राजमण्डली ही को मानो चन्द्रमण्डल म इसकी शोभा को विनष्ट करने के हेतु राहु बनना चाहा, उसने पृथ्वीराज के प दूत भेजा··· ································ ································

········ दूत की बात सुनकर पृथ्वीराज ने भृकुटी चढ़ाई, सैनिकों ने ध नमाये, शत्रुओं (गोरी और उसके साथियों) के प्रताप को शान्त करने के लि पृथ्वीराज के ललाट पर लालिमा सम्मिलित कालिमा ने मेघरूप धारण किय शत्रुओं के उपद्रव से पृथ्वीराज को क्रोध हो आया। मंत्री (कैमास) ने कहा–आ भाग्यवान् पुरुष हैं, अभी क्रोध करने का अवसर नहीं है। तिलोत्तमा के प सुन्द उपसुन्द नष्ट हुए वैसे ही शत्रु (गोरी और गुजराती) स्वतः (एक दूसरे लड़कर) नष्ट हो जायँगे। मंत्री ऐसा कह ही रहा था, इतने में द्वारपाल आय उसने कहा—गुर्जर मण्डल से पत्र लेकर एक पुरुष आया है, जो प्रसन्नमुख

और हृदय से आनन्द प्रकट कर रहा है। राजा ने उसे भीतर भेजने को कहा, दूत भीतर आया और निवेदन किया कि "गुर्जरों ने गोरियों का पराभव (पराजय) कर दिया है[1]" हमने इस (गोरी और गुजरातियों के) युद्ध का समय वि० सं० १२३३ या१२३५ इसलिये माना है कि पृथ्वीराज की जीवितावस्था में गुजरातियों से गोरीशाह और उसके साथी एक ही बार गुर्जरेश्वर बाल मूलराज के अंतिम शासन या भीम के शासन के प्रारम्भ में परास्त हो पाये हैं। इस घटना का संस्कृत लेखक मूलराज के समय और मुसलमान लेखक भीम (द्वितीय) के समय में होना लिखते हैं, जिसके लिए सूचित करते हुए प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व०पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा इस घटना का समय बाल मूलराज के शासन का अन्त और भीम द्वितीय के शासन का प्रारम्भ (वि० सं० १२३५) मानते हुए संस्कृत और मुसलमान लेखकों के मतभेद का साधन कर पाये हैं[2]। इसके अतिरिक्त वि० सं० १२५२ से १२६२ तक गुजरातियों से स्वयं गोरी ने दो बार और उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ने एक बार युद्ध किया था, जिनमें क्रमशः दोनों गोरी और कुतुबुद्दीन एक बार परास्त हुए। अन्तिम बार गोरी की विजय हुई। किन्तु वि० सं० १२५२ के बाद के युद्धों से पृथ्वीराज विजय में वर्णित युद्ध का कोई सम्बन्ध इसलिए नहीं जान पड़ता कि पृथ्वीराज विजय में वर्णित गोरी और गुजरातियों का यह युद्ध गोरी के प्रारंभिक आक्रमणों में से है, और वि० स० १२५२ से १२६२ तक न पृथ्वीराज ही जीवित था; इसलिए पृथ्वीराज विजय में वर्णित गोरी और गुजरातियों के युद्ध का सम्बन्ध वि० सं० १२३३ या १२३५ में होने वाले युद्ध से ही है। इस युद्ध से पूर्व पृथ्वीराज ही नहीं, उसका छोटा भाई हरिराज भी कवच धारण करने (युद्ध में जाने) योग्य बाल्य यौवन काल की संधि (१७-१८ वर्ष) में आगया था, ऐसा पृथ्वीराज विजय के ९ वें सर्ग में ही लिखा जा चुका है। अतएव इस युद्ध के समय कई राज-कन्याओं से विवाह किया हुआ पृथ्वीराज २८-२९ वर्ष का होना चाहिये। यदि ग्रन्थ में वर्णित आगे पीछे के विषय को नहीं सोचकर हम केवल सोमेश्वर के मृत्यु समय पर पृथ्वीराज को बालक लिखा जाने से ही उसे बालक मान लेते हैं, तो इसी ग्रन्थ (पृथ्वीराज विजय) में लिखी गई घटनाओं में

---

१. यह वर्णन गोरी के भारत पर प्रारंभिक आक्रमणों के समय का है। इससे भी इस घटना का समय वि० स० १२३३ या १२३५ ही ठहरता है।

देखो—पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सर्ग १०-११

२ देखो राजपुताने का इतिहास पहली जिल्द पृष्ठ २४९ लेखकः—गौरीशंकर-हीराचंद ओझा।

कई गड़बड़े मालूम हो पाती हैं ।

अब हम हम्मीर महा काव्यादि से निश्चय करके बतलाते हैं कि पृथ्वीराज अपने पिता की मृत्यु के समय बालक नहीं था और उनमें वर्णित घटनाएं भी उसका जन्म सं० १२२२-२३ में नहो बतलाकर १२०६ के निकट ही बतलाती हैं ।

'हम्मीर महाकाव्य में' लिखा है– "जब पृथ्वीराज सर्व शस्त्र-शास्त्र विद्या में कुशल हो गया, तब सोमेश्वर उसे राज्य सौंप स्वयं योगाभ्यास में लग गया । पृथ्वीराज न्याय पूर्वक प्रजा-पालन करता व शत्रु को भयभीत रखता था । उसी समय शाहबुद्दीन इस पृथ्वी (भारत) को अधीन करने का परिश्रम करने लगा, उसने कई क्षत्रियों को मार करके मुलतान में अपनी राजधानी स्थापित की । इस पर पश्चिम प्रान्त के राजाओं ने आकर अपने अगुए गोविन्दराज के पुत्र चन्द्रराज [हमारे मत से यह चन्द्रराज रासो का चन्द पुण्डीर होना चाहिये, जिसके पिता का नाम हरिराय गोविन्दराज के पर्याय रूप में रासो में लिखा है ।] के द्वारा पृथ्वीराज से निवेदन किया । तिस पर पृथ्वीराज ने शाहबुद्दीन पर चढ़ाई करके उसे बन्दी बनाया । शाह के क्षमा माँगने पर पृथ्वीराज ने उसे छोड़ दिया व सत्कार पूर्वक उसे मुलतान पहुँचा दिया: तथापि अपनी पराजय पर उसे बहुत दुःख हुआ । बदला लेने के लिये उसने सात बार पृथ्वीराज पर हमला किया; किन्तु उसे बारम्बार परास्त होना पड़ा । शाह के इस प्रकार बार बार चढ़ आने पर पृथ्वीराज ने कहा कि शाहबुद्दीन कुबुद्धि लड़के के समान चालें चलता है । मैंने उसे कई बार परास्त कर बिना कष्ट दिये छोड़ दिया, फिर भी वह नहीं मानता । अन्तिम युद्ध में जब घेरा लग रहा था, तब शाहबुद्दीन के एक सरदार ने उससे कहा कि जिस पृथ्वीराज ने आपको कई बार कैद करके आदर सहित छोड़ दिया, मुनासिब है, आप भी उसे एक बार छोड़ देवें ।[1] "

"महोबे के राजा परमर्दिदेव (परिमल, परिमाल) से भी उस (पृथ्वीराज) ने विकट युद्ध किया, जिसमें पृथ्वीराज की विजय हुई । इस विजय का एक लेख युद्ध के पश्चात् वि० सं० १२३६ में लगाया गया, जो मदनपुर नामक ग्राम के एक मन्दिर के स्तंभ पर होना बतलाया जाता है ।[2]

---

१ यह विवरण (हम्मीर महाकाव्य का) रामनारायणजी दुग्गड़ रचित पृथ्वीराज चरित्र से उद्धृत किया है (देखो भूमिका पृ० ६९ से ७२)

२ देखो वही ग्रन्थ पृष्ठ ९०-९१

"प्रबन्ध चिंतामणि में लिखा है कि पृथ्वीराज ने इक्कीस बार म्लेच्छ राजा (गोरी) को हराया [1]।

(घ) पुरातन प्रबन्ध संग्रह में लिखा है-पृथ्वीराज ने ७ बार शाहबुद्दीन को बन्दी बना कर छोड़ा [2]।

उपरोक्त पुस्तकों और लेखादि से ज्ञात होता है कि वह (पृथ्वीराज) युवराजत्व में ही सर्व शस्त्र शास्त्र विद्या में पारंगत व राज्य कार्य करने में कुशल हो गया था। उसके पिता ने उसे अपनी उपस्थिति में ही राजा बना दिया। अन्तिम समय के निकट सोमेश्वर की आयु भी योगाभ्यास (नियमानुसार वानप्रस्था-वस्था ५० वर्ष से प्रारम्भ होती है) करने योग्य हो चुकी थी। मुलतान पर शाहबु-द्दीन का राज्य स्थापित होने के समय (वि० सं० १२३२ में) पृथ्वीराज शासन कर रहा था, जो न्यायपूर्वक प्रजा-पालन करता और शत्रु (गोरी) को भयभीत रखता था। उसने पश्चिम प्रान्त के राजाओं की प्रार्थना पर उसी समय गोरी पर चढ़ाई की और कैद करके छोड़ा। उसके बाद भी शाहबुद्दीन को उसने कई बार परास्त किया और कई बार बन्दी बनाया। उसने महोबे के चन्देलों से वि० सं० १२३९ से पूर्व युद्ध करके विजय प्राप्त की। [3]

यदि पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२२२-२३ वि० मानें तो, शाहबुद्दीन के मुलतान पर राज्य स्थापित करने के समय (वि० स० १२३२ में) उस (पृथ्वीराज) की आयु १० वर्ष के लगभग होती है। इतनी छोटी आयु में पश्चिम प्रान्त के राजाओं की सहायता करना और शाह को बन्दी बनाना किसी प्रकार की युक्ति

१. प्रबन्ध चिंतामणि की रचना वि० सं० १३६१ में हुई। अस्तु यह पुस्तक पृथ्वीराज के शासन समय से ११२ वर्ष बाद की है।

२. यह भी उसी समय के निकट का संग्रह है। श्री मुनिवर जिन विजयजी ने इसमें तीन छप्पय रासो के भी खोज निकाले हैं, वे इस संग्रह को सं० १२९० में लिखा मानते हैं।

३. पिता की उपस्थिति में ही पृथ्वीराज को राज्य पर अभिषिक्त किया जाना पृथ्वीराज विजय और हम्मीर महाकाव्य में लिखा है। रासोकार भी उसे सोमेश्वर की जीवितावस्था में ही राजा संबोधित करता है, हम्मीर महाकाव्य का लेखक सोमेश्वर की अन्तिम आयु के समय पृथ्वीराज को बालक नहीं मानता

संगत नहीं मालूम होता। महोबे का युद्ध भी भयानक युद्धों में से एक था, जिसका विजय सूचक लेख वि० सं० १२३६ में लगाया जा चुका था। यह लेख जिस वर्ष युद्ध हुआ उस वर्ष लगाया गया हो, ऐसा सम्भव नहीं। यह युद्ध वि० सं० ११३५-३६ के लगभग हुआ होगा। यदि पृथ्वीराज का जन्म १२२२-२३ में हुआ हो, तो इस युद्ध के समय उसकी आयु १२-१३ वर्ष से विशेष नहीं होती। ऐसी अवस्था में चन्देलों [परमर्दी]पर विजय पाना असंभव है। प्रबन्ध चिन्तामणि के लेखानुसार गोरी से इक्कीस बार युद्ध करना और अन्य प्रमाणों के अनुसार शाह को सात बार बन्दी बनाना सिद्ध होता है शाहबुद्दान जैसे भयानक शत्रु को कईबार कैद करना और उससे कई बार लोहा लेना साधारण सी बात नहीं है। प्राचीन समय के युद्ध आमने सामने भयानक होते थे। उन युद्धों की तैयारी में भी अधिक समय लगता था और युद्ध के पश्चात् एक दूसरे की परिस्थिति सुधारने में वर्षों व्यतीत हो जाते थे। इससे गोरी और पृथ्वीराज में होने वाले कई युद्धों के लिए समय का अनुमान लगाया जाय, तो कम से कम १८-२० वर्ष की आवश्यकता होती है। शंकाकर्ताओं के अनुमान से पृथ्वीराज की कुल आयु करीब २७ वर्ष की थी, जिसमें से लगभग १८ वर्ष की आयु तो शस्त्र शास्त्र विद्या सीखने में कम से कम लगी ही होगी। इस प्रकार वह वि० सं० १२४० तक युद्ध करने जैसा हुआ होगा; किन्तु इतिहास से ज्ञात होता है कि गोरीशाह के हमले भारत पर वि० सं० १२३२ से ही प्रारम्भ हो गये थे। वि० सं० १२३२ से ४० तक इस ८ वर्ष के अन्तर में भारत की रक्षा किसी दूसरे ने की हो ऐसा इतिहास में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। अतः हम्मीर महाकाव्य के लेखानुसार मानना पड़ता है कि पृथ्वीराज वि० सं० १२३२ से भारत की रक्षा करता रहा। इससे पृथ्वीराज का १२२२-२३ विक्रमी में पैदा होना किसी प्रकार नहीं माना जा सकता है।

तदुपरांत लगभग उसी समय की बनी हुई ऐतिहासिक पुस्तकों में पृथ्वीराज के बाद उसके लड़के का अजमेर की गद्दी पर बैठना और उसका अपने काका (हरिराज) से बिगाड़ होना लिखा है।[१] बिगाड़ तब ही हो सकता है

वह उसे सर्व शस्त्र शास्त्र कुशल न्याय निपुण और शत्रु (गोरी) को भयभीत रखने वाला लिखकर पूर्ण युवावस्था वाला सूचित करता है।

१ देखो पृथ्वीराज चरित्र पृ० ७०-७८ ले० श्री [illegible]नारायणजी दुगड़। यह वृत्तान्त वे ताज्जुल मुआसिर (१) से उद्धृत करते हैं, जिसकी रचना हसन निजामी ने सन् १२२७ ई० वि० सं० १२७४ में की।

जब कि वह शासनादि में हस्तक्षेप करने योग्य हो। यदि पृथ्वीराज की कुल आयु २७ वर्ष के लगभग होती तो अजमेर की गद्दी पर बैठने वाला उसका पुत्र (रासो के इतर छंदों के अनुसार छोटा राजकुमार) उस समय (वि० सं० १२४६-५० में) निरा बालक होता। अतएव संधि विग्रहादि राज्य संचालन का भार उसके काका हरिराज पर ही होता, जिससे परस्पर बिगाड़ होने की कोई संभावना ही नहीं थी, किन्तु बिगाड़ होने के लिए लिखा जाना उस समय उसका वयस्क होना स्पष्ट करता है, यदि उसकी आयु उस समय अधिक नहीं होगी तो भी वह १६ वर्षसे कम आयु का नहीं होगा। उस समय उसको १६ वर्ष के लगभग मान लिया जाने से पृथ्वीराज से जब वह उत्पन्न हुआ, तब पृथ्वीराज की आयु आक्षेप कर्ताओं के अनुमान किए हुए पृथ्वीराज के जन्म संवत् के अनुसार ११ वर्ष की थी, यह सिद्ध होता है। इस प्रकार शंका कर्ताओं का पृथ्वीराज के जन्म संवत् पर लगाया गया अनुमान ठीक नहीं जँचता। इसके अतिरिक्त वि० सं० १२७२ में तो पृथ्वीराज का पौत्र शासन कर रहा था, जिसका लेख मिलने का उल्लेख स्व० कवि क्लान्तजी, स्वरचित "चौहानकल्पद्रुम" में कर गये हैं [१]। इस प्रकार पृथ्वीराज के पुत्र पौत्रादि के विषय में किये गये उल्लेखों से भी पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२२२-२३ नहीं ठहरता।

इत्यादि बातों से निश्चय होता है कि गौरी और गुजरातियों में होने वाले वि० सं० १२३२-३५ के युद्ध से पूर्व ही पृथ्वीराज कई राजकन्याओं से विवाह कर चुका था वह अपने पिता की उपस्थिति में ही राज्य संचालन में निपुण और सवशस्त्र शास्त्र विद्याओं में पारंगत तथा शत्रु (गोरी) पर आतंक फैलाने योग्य हो गया था। उसे सोमेश्वर ने अपने सामने ही राज्य पर अभिषिक्त कर दिया था। सोमेश्वर की आयु भी उसके अन्तिम समय तक ५० वर्ष से ऊपर हो चुकी थी [२]। पृथ्वीराज ने वि० सं० १२३२ से १२४६ तक गोरीशाह को कई बार कैद किया और उससे कई युद्ध किये। उसने वि० सं० १२३५-३६ के आस-पास महोबे के चन्देलों पर भी विजय प्राप्त की। अतएव उसका जन्म वि० सं० १२०६ के लगभग ही हुआ।

---

१ देखो चौहान कल्पद्रुम पृ० ३४, ले० स्व० कवि क्लान्तजी।

२ जब कि पृथ्वीराज विजय के आगे पीछे के विषय पर विचार करने से तथा हम्मीर महाकाव्य के लेख से रासो के लेखानुसार वि० सं० १२०६ में पृथ्वीराज का जन्म होना ठीक जँचता है, तब सोमेश्वर का वि० सं० १२०६ में शंका कर्ताओं द्वारा बालक लिखा जाना किसी प्रकार ठीक नहीं माना जा सकता, फिर भी हम इस विषय को अधिक स्पष्ट किये देते हैं। हम्मीर महाकाव्यानुसार

(ङ) सलक्ष और चावण्डराय द्वारा शाह का पकड़ा जाना—रासो में सलख द्वारा शाह को पकड़े जाने के विषय में लिखा है "ग्यारह सौ पर तीस खट बार
३० ६ ७
(४३ वर्ष)" व्यतीत हुए और शिशिर ऋतु का अन्त हुआ (अर्थात् उस शिशिर

सोमेश्वर की अंतिम आयु योगाभ्यास (वानप्रस्थ धारण) करने योग्य लगभग ५० वर्ष की हो चुकी थी। अतएव वह वि० सं० १२३४-३५ में ५०-५१ वर्ष का होगा; जिससे उसका जन्म संवत् ११८४-८५ वि० के निकट ठहरता है। यही बात उसके नाना सिद्धराज (जयसिंह चालुक्य) और माता कांचनदेवी के जन्म समय का अनुमान लगाने से ठीक मालूम होती है। सिद्धराज का जन्म वि० सं० ११४७ के लगभग निश्चय है। यदि लौकिक नियमानुसार मान लिया जाय कि उसके लगभग बीस वर्ष का होने पर (वि० सं० ११६६ के लगभग) कांचनदेवी का जन्म हुआ, उसी लौकिक नियमानुकूल कांचनदेवी से भी सोमेश्वर उसके १९—२० वर्ष की होने पर वि० सं० ११८४—८५ में हुआ होगा। सोमेश्वर के विषय में विद्वान् यह भी लिखते हैं कि उसके नाना ने अपनी मृत्यु (वि० सं० ११९९) से पूर्व ही उसे अपने पास रक्खा व अपनी उपस्थिति में उसे शिक्षा दिलवाई। बच्चे के शिक्षारंभ का समय बहुधा ७—८ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होता है। अतः वह वि० सं० ११९२—९३ के लगभग नाना के पास बुलाया गया होगा और नाना की उपस्थिति में उसने ६—७ वर्ष शिक्षा ग्रहण की होगी। हम्मीरमहाकाव्य के लेखानुसार इस प्रकार उसके समय का अनुमान लगाने से उसका अंतिम समय योगाभ्यास (वानप्रस्थ) अवस्था में होना तथा अपने नाना जयसिंह (सिद्धराज) के सामने शिक्षा ग्रहण करना उपयुक्त हो जाता है। किन्तु वि० सं० १२०६ में बालक मानने से उस समय उसकी आयु अधिक से अधिक १०—१२ वर्ष की माननी होगी। जिससे उसका जन्म वि० सं० ११९५—९६ ठहरता है। इससे ज्ञात होता है कि वह अपने नाना की उपस्थिती में ३—४ वर्ष का ही हो पाया होगा। क्या तीन—चार वर्ष के बालक को शिक्षा दी जासकती है? नहीं! यह आयु तो माता से बच्चे को हटाये जाने की भी नहीं होती। इस प्रकार नाना के जीतेजी उसे शिक्षा दिलाई जाने का और हम्मीरमहाकाव्य के अनुसार उसके अंतिम समय में उसका वानप्रस्थ आयु होने का विषय असत्य और निर्मूल ठहरता है। तदुपरान्त विग्रह (चतुर्थ) सोमेश्वर का बड़ा भाई था, जिसने वि० सं० १२१० से पूर्व ही सर्व शास्त्रों का अध्ययन करके निपुणता प्राप्त करली थी और इतना अनुभवी हो गया था कि उसने "हरकेलि" नाटक जैसे संस्कृत काव्य की रचना की जो वि० सं० १२१० में शिलाओं पर खुदवा कर लगवाया गया। "बीसलदेव रासो" के लेखानुसार वि० सं० १२१२ के पूर्व ही वह गृहास्थाश्रम में प्रवेश कर

ऋतु ने रास्ता लिया)। तब अ० सं० ११४३ के अंत (और वि० सं० १२३५ के प्रारम्भ) में सलख ने गोरी को पकड़ा[1]। शंकाकर्त्ताओं ने "तीस षट" की संख्या ३६ को ही काम में ली और वार की संख्या ७ को छोड़ दी, जिससे शंका का होना पाया जाता है।

चावण्डराय द्वारा शाह के पकड़े जाने में संवत् का उल्लेख पाया नहीं जाता। शंका कर्त्ताओं ने यह शंका इसलिये की हो, कि उसमें अनंगपाल ने अपने दौहित्र (पृथ्वीराज) को जो दिल्ली दान में दे दी उसे फिर से प्राप्त करने का विचार कर उसने शाह की सहायता ली और युद्ध हुआ जिसमें चावंड द्वारा शाह पकड़ा गया, इसीपर अनुमान लगाया हो कि दिल्ली का दान अ० सं० ११३८ (वि० स० १२२६) में हुआ था, अतः अनंगपालने दिल्ली को दान में देते ही उसी समय पुनः दिल्ली पाने को युद्ध किया होगा; किन्तु यह केवल भ्रम है। अनंगपाल अपने दौहित्र को दिल्ली दान वि० सं० १२२६ या १२३२ में देकर बद्रिका को चला गया और वहाँ ईश्वर भजन करता रहा; उसके बाद कुछ प्रपंची पुरुषों ने जाकर उसे उकसाया तब उसने पृथ्वीराज के पास दिल्ली लौटा देने के लिये कहलवा दिया। किन्तु पृथ्वीराज ने निषेध कर दिया; तिसपर वह बद्रिकाश्रम से लौटकर आया और

पाया था, क्योंकि वि० सं० १२१२ में तो बीसलदेव रासो की रचना हुई थी। उससे १२ वर्ष पूर्व (वि० सं० १२०० में या उसके कुछ बाद ही वि० सं० १२०७–८ में) वह अपनी रानी को राजधानी में छोड़कर तीर्थ यात्रा को चला गया और १२ या कुछ वर्ष बाहर रहा। अस्तु वह १२०६ के पूर्व ही, अनुभव कुशल, शास्त्रज्ञ और गृहस्थ धर्म युक्त था, जिससे उसका जन्म वि० सं० ११८० के आसपास होना पाया जाता है। सोमेश्वर की और उसकी आयु में लगभग ४ वर्ष का अन्तर होना संभव है। यदि सोमेश्वर १२०६ में बालक था तो विग्रह (चतुर्थ) भी उस समय बाल्यावस्था को पूर्णतया पार नहीं कर पाया होगा, जिससे विग्रह द्वारा अनुभव शून्य आयु में ही हरकेलि जैसे संस्कृत काव्य की रचना होना मानने में और बीसलदेव रासो में वर्णित विग्रह के गृहस्थ जीवन विषयक वर्णन में शंका उत्पन्न होती है। अस्तु सोमेश्वर १२०६ में बालक नहीं था। उस समय उसको आयु कम से कम बीस वर्ष के आस पास अवश्य होगी।

१ सिसिर सु मग्गह अन्त, तोस, खट, वार, समद्दर।
३०, ६, ७,
ग्यारह सौ परवान, साहि बंध्यौ गोरी वर॥
स० १३ पृ० ५४१ छन्द ३५८

अपना साथ देने वालों की टोली के बलपर कुछ समय तक दिल्ली को घेरे रहा अन्त में हतोत्साह होकर हरिद्वार चला गया। वहाँ पहुँचने पर फिर से इस विषय में परामर्श हुआ और पश्चात् शाह को लिखा गया। शाह ने भी उसे इस विषय में और भड़काया तथा उसका साथ दिया। पृथ्वीराज ने नाना अनंगपाल को कहलाया-आप गोरी की बहकावट में न आवें, इसे तो सामन्तों ने कई बार पकड़ा है; किन्तु अनंगपाल ने इस पर कुछ भी नहीं सोचा। अन्त में युद्ध हुआ जिसमें चावण्डराय द्वारा शाह पकड़ा गया। अतएव लिखे गये विषय का अनुमान लगाने से यह युद्ध वि० सं० १२२६ या १२३२ में ही हुआ हो ऐसा किसी प्रकार से नहीं जँचता। तदुपरान्त पृथ्वीराज ने अनंगपाल को कहलाया कि गोरी को तो सामंतों ने कई बार ग्रहण किया है, इससे भी सामंतों द्वारा दो तीन बार गोरी के पकड़े जाने के बाद का ही यह वर्णन प्रतीत होता है। रासो के समय (प्रस्ताव) भी ठीक क्रम बद्ध नहीं हैं, जिससे भी धोखा हो जाता है। अतएव उन्हें भी जाँच द्वारा क्रम बद्ध करने की आवश्यकता है।

खट्टू वन से धन निकालना, पद्मावती से विवाह, और करनाटी प्राप्त करना:—

खट्टूवन से धन निकालने के विषय में रासो में लिखा है, (आनन्दराज के) पराक्रम के संवत् ग्यारह सौ पर "तीसरु अट्ठ सम्पत्त" (सम्पत्ति आठ प्रकार की)
३० ८ ८
अर्थात् ४६ वर्ष होने पर (अनन्द संवत् ११४६ वि० सं० १२३७ में) चौहान सोमेश्वर के पुत्र ने अमित लक्ष्मी प्राप्त की १। शंकाकर्ताओं ने यहाँ सम्पत्त (संपत्ति) की संख्या ८ छोड़ दी है और संपत का अर्थ भूल से "जाना" किया हा, अतः धन निकालने का संवत् वि० सं० १२२६ नहीं १२३७ मानना चाहिये।

तदुपरान्त पद्मावती से अ० सं० ११३६ (वि० स० १२२०) में विवाह करना और अ० सं० ११४१ (वि० सं० १२३१) में करनाटी (वश्या) को प्राप्त

१. शाक सु विक्रम इक्क दह, तीसरु, अट्ठ, सम्पत्त।
३० ८ ८
बहुआना नृप सोम सुअ लम्भि वित्त अनमित्त॥
स० २४ पृ० ७३८॥ छन्द ३८७

नोटः—इसमें "सु विक्रम" का अर्थ करना चाहिये। "वही आनन्द राज के पराक्रम का शाक।"

करने में, उस समय पृथ्वीराज का राजा न होना, लिख कर व्यर्थ की शंका की गई है; क्योंकि शादी करने और वेश्या को प्राप्त करने का सम्बन्ध गद्दी प्राप्ति से कुछ भी नहीं है। पृथ्वीराज दिल्ली गोद नहीं गया था, दिल्ली उसे जिस रूप से प्राप्त हुई उस 'समय' का नाम करण ही "दिल्ली दान" किया गया है। अतः दिल्ली का शासक उसे विक्रमी संवत् १२२६ या १२३२ से उसी रूप में मानना चाहिये। रासो में पृथ्वीराज का पाटोत्सव उसके पिता सोमेश्वर की मृत्यु पर ही होना लिखा है। दिल्ली मिलने पर केवल उत्सव मनाया गया था।

शंका ८:—रासो में संवत् ही नहीं घटनाएँ भी अशुद्ध हैं।

(क) पृथ्वीराज अ० सं० ११३८ वि० सं० १२१६ में दिल्ली गोद नहीं गया और न वह अनंगपाल की पुत्री से ही पैदा हुआ। दिल्ली तो बीसल चतुर्थ ने ही ले ली थी।

(ख मेवाती मुगल राजा (मुग्दलराय) के कर नहीं देने पर सोमेश्वर का चढ़ाई करना, वहाँ पर पृथ्वीराज का अचानक आकर मुगल सेना पर विजय पाना, मुगल को बन्दी बनाना, उस युद्ध में मुगल राजा के ज्येष्ठ पुत्र वाजिन्द खाँ का मारा जाना इत्यादि वर्णन रासो में कल्पित हैं। क्योंकि मेवात प्रदेश स्वतन्त्र राज्य नहीं; अजमेर राज्यान्तर्गत ही था। वहाँ मुगलों का तो क्या, अन्य कोई मुसलमान का अधिकार भी नहीं था सोमेश्वर की जीवितावस्था में पृथ्वीराज इतना बड़ा नहीं था कि वह युद्ध में जा सके।

(ग) विजयपाल (कन्नौज पति) का विजय यात्रा पर जाना, अनंगपाल (तंवर) की पुत्री से विवाह करना, जिससे जयचन्द का होना, जयचंद का राजसूय यज्ञ करना, जिसमें पृथ्वीराज का सम्मिलित नहीं होना, तिस पर जयचंद का पृथ्वीराज और रावल समरसी पर दिल्ली के आधे राज्य के लिये आक्रमण करना, किन्तु असफल होना; इसीलिये राजसूय यज्ञ और संयोगिता स्वयंवर में पृथ्वीराज की स्वर्ण मूर्ति द्वारपाल के स्थान पर स्थापित की जाना, संयोगिता का उसी मूर्ति के गले में वरमाला पहनाना, तिस पर जयचन्द का संयोगिता को कैद करना, पृथ्वीराज का कन्नौज पर चढ़ आना, युद्ध करके संयोगिता को लेकर दिल्ली जाना, अन्त में लाचार होकर जयचंद का पुरोहित को दिल्ली भेज संयोगिता का विवाह पृथ्वीराज के साथ करवा देना। इस वर्णन में जयचंद और पृथ्वीराज के समकालीन होने के अतिरिक्त एक भी बात सत्य नहीं है; क्योंकि दिल्ली पर उस समय में अनंगपाल हुआ ही नहीं; न उस समय रावल समरसिंह ही था। जयचन्द ने राजसूय यज्ञ किया होता तो उसके दान पत्रों में उल्लेख होता। जयचन्द और पृथ्वीराज में परस्पर युद्ध और संयोगिता हरण होता तो हम्मीर-

महाकाव्य और रंभा मंजरी (उसका नायक जयचन्द ही है) इन दोनों पुस्तकों में यह बात लिखी जाती।

(घ) रावल समरसिंह का अन्तिम युद्ध (युद्ध बड़े) में जाते समय अपने छोटे पुत्र रत्नसिंह को उत्तराधिकारी बनाना जिससे उसके ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा का दक्षिण में बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जा रहना जो रासो में लिखा गया, यह वृत्तान्त भी गलत है, क्योंकि दक्षिण में मुसलमानों का प्रथम प्रवेश वि० सं० १३५६ में हुआ। वि० सं० १४८७ में बीदर बसाई गई, जहां बहमनी वंश की राजधानी स्थापित हुई।

(ङ) पृथ्वीराज को कैद कर गजनी ले जाना, कवि चंद का वहाँ योगी बन कर जाना, तीरन्दाजी देखने को उत्सुक करके पृथ्वीराज के शब्द भेदी बाण द्वारा शाह को मरवाना, तत्पश्चात् पृथ्वीराज और कवि चन्द का आत्मघात करना। रासो का यह सम्पूर्ण कथन भी ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है क्योंकि शाह की मृत्यु वि० सं० १२४६ में न होकर पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद वि० सं० १२६३ में धमोक के पास नदी के किनारे नमाज पढ़ते समय गक्खरों द्वारा हुई थी।

उत्तरः—जिस समय भारत भूमि चौला बदल कर स्वतंत्र से परतंत्र बनी उस समय जिन भारत के वीरों ने भारतीय वीरता का परिचय देने को रणांगण में रक्त प्रवाहित किया उनकी घटनाओं का प्रमाणभूत रासो ग्रन्थ है। जिसमें वर्णित मूल विषय को हम एकाएक निर्मूल नहीं मानते और न उसका मूल विषय इतिहास के प्रतिकूल ही दीख पड़ता है।

उपरोक्त आठवीं शंका में कुछ शंकाएँ ऐसी हैं जिनका उत्तर पहले दिया जा चुका है, अतः हम यहाँ उन्हीं का उत्तर देकर पिष्ट पेषण नहीं करना चाहते। उनका संकेत मात्र करके नई शंकाएँ जो इसमें होंगी उन्हीं का उत्तर देंगे।

(क) इसका समाधान शंका संख्या ७ (घ) में और शंका संख्या ३ में देखिये।

(ख) रासो में मेवात पति को "मुगल" नहीं "मुंगल" लिखा है।[1]

---

1. "मुंगल दिशा विशाल" (स० ८ पृ० ३७१)
"उत मुंगल महिइन्द" (स० ८ पृ० ३७२)
"शीशनाय मुंगल नरिन्द" (स० ८ पृ० ३७५)
"मुंगल महि गहि कड्ढियो (स० ८ पृ० ३७७)
"दियं कमादं मुंगलं राजथानम् (स० ८ पृ० ३७२)

(इतर छंद)

कहीं कहीं लेख दोष से मुगल पाठ हो गया हो; किन्तु मात्रा की कमी छन्दोभंग दोष को प्रकट करके "मु" को अनुस्वार युक्त "मुं" होना बतलाती है[१]। तदुपरान्त एक दो जगह मुगल लिखा हो, बाकी सर्वत्र मुंगल पाठ हा है। कथा वर्णन से भी वह मुगल मुसलमान हो ऐसा नहीं प्रतीत होता। रासो में उसके हिन्दू होने का वर्णन इस प्रकार है:—"सोमेश्वर ने मेवात पति मुंगल के पास दूत भेजा और पत्र देकर कहलाया कि दण्ड (कर) देकर सेवा करो नहीं तो इस भू भाग को छोड़ दो"। पत्र को पढ़कर मेवात पति (मुंगल) को क्रोध हो आया; उसने लिख भेजा जो इतर छंदों में इस तरह है; अहो नरेश्वर! तुच्छ बात मुँह पर क्यों लाते हो। आप ही कहिये, मैं क्षत्रिय कहला कर दंड देना किस प्रकार स्वीकार करूँ। सेवा करने की लिखी सो आप ऐसा विचार कभी न करें कि मैं आपकी सेवा करूँगा, मेरे तो केवल एक मात्र कमलापति

"खिसियो दल मुंगल भारभरं" (स० ८ पृ० ३८२)

(इतर छंद)

"दिसि मुंगल संभर धनी" (स० १५ पृ० १५४)
"तात मुंगल भजि काजं" (स० १५ पृ० १५४)
"चित्त मुंगल चिन्तयो" (स० १५ पृ० १५४)
"मुंगल नरिन्द मेवात पति" (स० १५ पृ० १५४)
"वर मुंगल सामन्त रन" (स० १५ पृ० १५५)
"आनि मुंगल मुख पग्गिय" (स० १५ पृ० १५६)
"मुंगल नरिन्द चौहान भर" (स० १५ पृ० १५६)

"लिय मुंगल गज मेलि" (यह पाठ हमारी निजी हस्त लिखित प्रति वि० सं० १७७० वाली का है।)

शेष पाठ प्रकाशित प्रति और हस्तलिखित वि० सं० १७७० वाली में समान हैं।

१ "मेवाती मुगल (मुंगल) नरिन्द (स० ८ पृ० ३७०)
"मुगल (मुंगल) रक्खन समर (स० ८ पृ० ३८०)

इन पद्यों में मुगल पाठ है किन्तु छंद टूटता है। हमने कोष्ठक में शुद्ध रूप (मुंगल) लिख दिया है; जिससे छद नहीं टूटता।

(विष्णु) की सेवा है और उन्हीं के चरणों में सदा ध्यान लगा रहता है
तदुपरान्त समय १५ में लिखा है कि, दाहिमा वीर के दो पुत्रियाँ थीं, जिन
एक तो मेवातपति मुंगल को और दूसरी पृथ्वीराज को ब्याही गई [२] ।

इससे स्पष्ट है कि मेवातपति मुसलमान नहीं था। उसका
मुंगल था और वह क्षत्रिय वीर था, तथा रानी दाहिमी के कारण पृथ्वी
का निकट सम्बन्धी (साली का पति) था। बाजिन्दखाँ उसका लड़का
वह पठान जाति का योद्धा था और मुंगल के पक्ष में था,[३] तथा मुंगल के
रहने वालों (खवास शब्द का उसके लिये प्रयोग हुआ है, खवास पास में
वाले के लिये या उपपत्नी से उत्पन्न हुआ हो उसके लिये लिखा जाता
में से था[४] ।

इस युद्ध के समय पृथ्वीराज बालक नहीं था, वह युद्ध करने योग्य
इसके लिये शंका संख्या ७ (ख) के उत्तर को पढ़ना चाहिये ।

(ग) कन्नौज पति विजयपाल के विजयी होने का संकेत, हरिश्च
दानपत्र में मिलता है [५] । (अनंगपाल) तँवर उसका समकालीन था,
शंका का निवारण हमारे इसी लेख की शंका संख्या ३ के उत्तर से किया जा स
है । इस शंका में मुख्य दलील यह है कि जयचन्द ने राजसूय यज्ञ किया

---

१ धरि नाम छत्रि क्यों दंड देइ । इह बत्त मुक्ख क्यों राज लेइ ॥
अरु करन सेव कहि चाहुवान । मन मझ्झ होंम मति राज आन ॥
सेवा सु मोहि श्रीनाथ पाय । उन चरन ध्यान लग्यो सदाय ॥
(स० ८, पृ० ३७०, छं० ९

२ मेवाती मुंगल सुतस्य, पुत्ति इक्कह परनाइय ।
बिय पुत्ती सिरताज, सु तो पृथिराजह व्याहिय ।
(स० ८, पृ० ५७३, छं ९

३ वाम अंग पट्ठान, विरचि बाजिन्द सपिन्नय ॥
(स० ८, पृ० २७६, छं० :

४ "धुकत धरनि खावास"
(स० ८ पृ० ३८० छं० ।

५ अजनि विजयचन्द्रो नाम तस्मान्नरेन्द्रः । सुरपति इव भूभृतत् पक्ष दि
दक्षः । 'देखो, जयमलवंशप्रकाश; ले० ठा० गोपालसिंहजी राठौ (मेरतिया) ब
पृष्ठ सं० ४१, टिप्पणी नं० १ ।

तो जयचन्द के दान पत्रों में उसका उल्लेख अवश्य होता; किन्तु रासो से स्पष्ट है कि राजसूय यज्ञ पृथ्वीराज द्वारा ध्वंस किया जाकर संयोगिता का बलात् हरण किया गया था। इसका उल्लेख जयचंद अपने ही दानपत्रों में करवा कर अपना उपहास कैसे करवाता ? हम्मीर महाकाव्य और रंभा मंजरी में जयचन्द और पृथ्वीराज के परस्पर युद्धों और संयोगिता-हरण का उल्लेख होना भी आवश्यक नहीं है। क्योंकि हम्मीर महाकाव्य हम्मीर के विषय में लिखा गया है, अतः अन्य विषयों का छोड़ देना या ग्रहण करना लेखक की स्वेच्छा पर निर्भर है। रंभा मंजरी नाट्य काव्य है। नाट्य काव्य बहुधा कल्पित होते हैं। उनका ऐतिहासिक तथ्य को लेकर चलना अनिवार्य नहीं। ठाकुर वीरसिंहजी तँवर के लेख से ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व० पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने एक लेख में स्वीकार कर लिया है कि आमेर पति पज्जून पृथ्वीराज के समकालीन थे। वे यह भी लिखते हैं कि कन्नौज के युद्ध में जाने के समय का परवाना जयपुर में तातू के दीवान वालों के यहाँ प्राप्त हो चुका है, तथा कई तवारिखों में राजसूय यज्ञादि कन्नौज विषयक वर्णन उपलब्ध होना भी उन्होंने बतलाया है[1] तथा वि० सं० १५३२ में रचे हुए सुर्जन चरित्र काव्य में जो कन्नौज की राजकुमारी के पृथ्वीराज द्वारा अपहरण करने का वर्णन हुआ है, वह अधिकतर रासो के अनुसार ही है[2]। यह भी सर्व विदित है कि जयचन्द और पृथ्वीराज ऐसे ही वीरों के द्वेष ने भारत को पराधीन किया। पृथ्वीराज के साथ जयचन्द के विरोध का मूल वहा दिल्ली का आधा राज्य था। चित्तौड़ पति रावल समर-विक्रम भी जयचन्द और पृथ्वीराज का समकालीन ही था। इस विषय को जानने के लिये शं० ४ के उत्तर को पढ़ना चाहिये।

(घ) रावल समर-विक्रम और उसके युवराज रत्न (रणसिंह) के विषय को जानने के लिये शं० सं० ४ के उत्तर को पढ़िये। कुंभा का बीदर में जाना हमारे पास की हस्त लिखित वि० सं० १७७० तथा देवलिया प्रतियों में नहीं है। अस्तु सर्व प्रतियों में साम्य वर्णन नहीं होने से यह वर्णन क्षेपक प्रतीत होता है।

(ङ) बाण बेध प्रस्ताव किसी अन्य के द्वारा लिखा जाना ही संभव है। क्योंकि चन्द अपनी मृत्यु का वर्णन मरने से प्रथम ही कर गया हो, यह कदापि

१. देखो कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास पृ० १२, १३, १४ में लिखित टिप्पणियां।

२ देखो नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४३ अंक ३ पृष्ठ २०० से २१४ "सुर्जन चरित्र महाकाव्य" ले० श्री दशरथ शर्मा।

संभव नहीं। यह समय किसने रचा, हम इसका निश्चय नहीं कर पाये हैं; किन्तु इतना निश्चय है कि बाणबेध प्रस्ताव का वर्णन १६ वीं शताब्दी में तो प्रसिद्धि पाचुका था। इसीलिये वि० सं० १६३५ में रचे "सुर्जन चरित्र महाकाव्य" में रासो के अनुसार ही चन्द और पृथ्वीराज की मृत्यु के विषय में वर्णन हुआ है [1]। तथा उसी समय (१६ वीं सदी) की अन्य ऐतिहासिक पुस्तकों में भी यह वर्णन उसी प्रकार लिखा गया है। यह भी हम मानते हैं कि यह रचना संभव है क्षेपक ही हो, क्योंकि रासो के ६६ वें समय में ही बड़े (अन्तिम) युद्ध के अन्त में अपने-अपने स्वामियों के निधन (मृत्यु) पर पृथाकुँवरी और राजा (पृथ्वीराज) की दसों रानियों का सती होना लिखा जा चुका था [2]। यदि ऐसा नहीं होता तो रानियों का सती होना नहीं लिखा जाता। पति की जीवितावस्था में वे जलती तो जौहर करने का उल्लेख होता।

तदुपरान्त अंतिम युद्ध [समय ६६] में ही पृथ्वीराज के स्वर्गवास का वर्णन हो चुका है[3] और ग्रन्थ को समाप्त करके उसका संवत् भी अ. सं. ११५८ ह.

---

१ देखो वही पृ० २१४—१५

२ "निरखि निधन संजोगि, पृथा सज्जिय सु सामि सथ"

(स० ६६, पृ० २३७०, छं० १६२०)

"पृथा सत्य सहगवनि, रवनि सज्जिय राज दह"

(स० ६६, पृ० २३७०—७१, छं० १६२१)

पृथाकुंवरी, (रावल समर-विक्रम की रानी), राजा पृथ्वीराज की दसों रानियां और और पांच सहस्र मृत वीरों की स्त्रियों के सती होने का वर्णन समय ६६, पृष्ठ सं० २३७० से २३७२ छं० सं० १६२० से १६२४ तक विस्तार से हुआ है।

३ "सूर गहन टरि गयो, सूरगह भयो राजतन"।

(स० ६६ पृ० २३६८, छं० १६११)

अर्थः— घायल अवस्था में पृथ्वीराज के पकड़े जाने का अपवाद समाप्त हो गया और राजा का सूक्ष्म शरीर (आत्मा) स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

कवि ने दे दिया है[1] जिससे उसके आगे का वर्णन और बाँणवेध समय आदि स्वतः निरर्थक पड़ जाते हैं।

शंका ६:—

हम्मीर महाकाव्य वि० सं० १४६० में बना और कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति (मामादेव वाली) वि० सं० १५१७ में लिखी गई उनमें रासो में वर्णित विषयों का उल्लेख नहीं हैं इसलिए वि० सं० १५१७ से पूर्व रासो नहीं रचा गया, इसकी सबसे प्राचीन प्रतिलिपि वि० सं० १६४२ की मिली है। अतः रासो की रचना १५१७ और १६४२ के बीच हुई है।

उत्तर—हम्मीर महाकाव्य और कुम्भलगढ़ के लेख में ही नहीं उनसे प्राचीन और अर्वाचीन पुस्तकों तवारिखों और लेखों में किसी न किसी रूप में रासो में वर्णित घटनाओं का अंश इस प्रकार मिलता है। विग्रह (चतुर्थ) के दिल्ली की लाठ पर के वि० सं० १२२० वाले लेख के अनुसार चौहानों का प्रथम आक्रमण दिल्ली पर (उसी के समय में) होना और तुरष्कों का विच्छेद होने का वर्णन रासो में उपलब्ध है, सोमेश्वर के बिजोलियां वाले वि० सं० १२२६ के लेख में विग्रह (चतुर्थ) द्वारा दिल्ली और हांसी को विजय करने का विषय रासो से स्पष्ट होता है अर्थात् बीसल (चतुर्थ) द्वारा दिल्ली और हांसी पर विजय करद रूप में ही पाई थी[2]।

"पृथ्वीराज विजय" में सूर्य से अवतरित दिव्य पुरुष की संतान चौहानों का होना, पृथ्वीराज के भाई का हरिराज (हरिसिंह) नाम होना, पृथ्वीराज का कई राजकन्याओं से शादी करना, सोश्वर की उपस्थिति में उसका राजा होना, अर्थात् वि० सं० १२३३-३५ के पूर्व ही उसे पूर्ण युवा मानना, गौरी और गुजरातियों (चालुक्यों) से उसकी शत्रुता होना उसके मुख्य मंत्री का नाम कदम्बवास (कैमास) लिखना रासो के अनुसार ही है। पृथ्वीराज-विजय में पृथ्वीराज के नाना का नाम तेजल है रासोकार उसके नाना का नाम अनंगपाल लिखता हुआ

---

१. "संपत्तियान सुर सुतिय जुरि, रह सु रब्बि किन्नों विरम"।

स० ६६ पृ० २३७२ छन्द १६२५

अर्थः—इस ग्रंथ की रचना करके सरस्वती भी अपने स्थान को चलती बनी और सूर्य ने भी श्रेष्ठ रास्ते [आकाश मंडल] पर विचरण करने से विराम किया [अर्थात् सूर्यास्त होगया] ग्रन्थ समाप्ति का संवत् शंका संख्या ७ के उत्तर में संवतों के मिलान की टिप्पणी में देखिये।

२. देखो शंका नम्बर और उसका उत्तर।

उसके अतिरिक्त तेज तेजल) को भी नाना के रूप में लिखता है वह उसे (तेजल को) पृथ्वराज के विमाता का पिता, नाना होने का संकेत करता है पृथ्वीराज विजय में गोरी और गुजरातियों के युद्ध (१२३३-३५) में कैमास के कहने पर पृथ्वीराज खामोश रहना लिखा है, रासा में सामंता द्वारा शाह को उसी खामोशी का का संकेत इस प्रकार किया गया हैं कि हे सुल्तान ! "तुम जब चालुक्य के प्रांत पर समूह बद्ध होकर आये थे, तब हम गंभीर बने रहे" उस बात को मत भूलो। पृथ्वीराज विजय में कवि चन्द का नाम "पृथ्वी भट्ट" लिखा है; रासो में भी स्पष्ट रूप और श्लेप रूप में रासोकार अपने को "पृथ्वी कवि और "पहुमिबन्दीजन" (पृथ्वीभट्ट) लिखता है, इससे उसका पूरा नाम पृथ्वीभट्ट या पृथ्वीचन्द होना सिद्ध होता है और कविता में उसने अपने नाम का सूक्ष्म रूप चन्द या भट्ट ही लिखा है। नाम के साथ "चन्द" रासोकार के वंश में पूर्व से लेकर पाछे तक लगता रहा है और "भट्ट" ज्ञाति बोधक है अतः "पृथ्वीराज विजय" और "रासा" रासोकार के नाम में भी विरुद्धता नहा रखते। रासोकार के विषय में पृथ्वाराज विजय का लेखक और भी इस प्रकार स्पष्ट करता है, वह लिखता है "संकड़ों इतिहासों का अभ्यास करने से जो व्यास बन गया है" इस कथन से चन्द और उसकी रचना से ही तात्पर्य है। वह (पृथ्वाराज-विजय का लेखक) संक्षिप्त में सूचित करता है कि पृथ्वीराज का वन्दीजन (पृथ्वीचन्द-पृथ्वीभट्ट) अनेक इतिहासों का ज्ञाता है और उसकी रचना पौराणिक शैलो पर होती है। अतएव यह व्यास के समान है। व्यास ने प्राचीन क्षत्रियों के द्वारा होने वाले युद्धों के वर्णन में महाभारत ग्रन्थ की रचना का, यह भी उसी के समान इस समय वीर क्षत्रियों के युद्ध–वर्णन का रचयिता है। अर्थात् रासो ग्रन्थ की रचना व्यास की रचना के तुल्य है। जयानक के ये वाक्य किसी अन्य बन्दीजन के लिये लिखे गये हों, ऐसा नहीं माना जा सकता। इस बन्दीजन जाति में हो नहीं, लोक प्रसिद्धि से भाषा काव्य में चन्द के समान दूसरा व्यक्ति उस समय में हुआ हो नहीं, जिसे व्यास के समान कहा जाय। पुराण शैली पर अपनो रचना होने का उल्लेख स्वयं कवि चन्द ने रासो में ही कर दिया है और व्यास की समानता पर वही हो सकता है। इसीलिए तो आज विद्वत् समाज उसे हिन्दी का आदि कवि मानता है। अस्तु, 'पृथ्वीराज-विजय' में इस प्रकार चन्द का ही नहीं उसे व्यास की समानता देकर पुराण शैली पर उसके रासो ग्रन्थ का भी संकेत कर किया है। पृथ्वीराज विजय में जिस कुमारी को तिलोत्तमा रूपा में अवतरित किया गया है वही रंभारूप में अवतरित रासो वाली संयोगिता हो सकती है [१]।

---

१. देखो पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सर्ग ६ से १२ तकः—

"प्रबन्ध चिन्तामणि" में २१ बार गौरी शाह से पृथ्वीराज का युद्ध होना लिखना भी रासो ही के अनुसार है। रासो में पृथ्वीराज और गौरीशाह व उनके योद्धाओं के युद्धों की संख्या सम्पूर्णतः २१ ही है [1]।

"पुरातन प्रबन्ध सग्रह" (रचना काल १२६० लिपि संवत् ११२८, विद्वान् मानते है; देखो 'महाकवि चन्द बरदाई अने पृथ्वीराज रासो' ले० श्री गोवर्धन शर्मा पृ० १६-१७) में ७ बार शाह का बन्दी बनाना लिखा है। रासो में शाह को १६ बार बन्दी बनाने का उल्लेख है, जिसमें से सामंतों की शक्ति द्वारा ६ बार और पृथ्वीराज की शक्ति द्वारा ६-७ बार शाह पकड़ा गया था। इस तरह 'पुरातन-प्रबन्ध संग्रह' में शाह को पृथ्वीराज द्वारा ७ बार पकड़े जाने का उल्लेख होना

पृथ्वीराज के विमात्रिज नाना तेजल के विषय में:—देखो शंका संख्या ३ और ६ (क)।

गौरी और गुजरातियों में होने वाले युद्ध में पृथ्वीराज और उसके सामन्त क्षमा युक्त रहे:—देखो अन्तिम युद्ध प्रकाशित प्रति छन्द सं० ७६६ "अट्टां बम्मनवाम पास उतरे गम्भीरां" अर्थात् ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्यों के प्रान्त पर तुम समूह बद्ध होकर हमारे निकट ही उतर पड़े थे; किन्तु हम गम्भीर बने रहे।

रासोकार चन्द का पूरा नाम पृथ्वीचन्द के प्रमाण में देखो समय ४२ प्रकाशित प्रति पृ० ११६५ छंद २ तथा समय ६१ "सत गयन्द रथ रुढ़ साज आसन 'पृथि' रज्जह" अर्थात् सात हाथी जिस रथ में लगे हुए थे, ऐसे रथ (इन्द्र विमान) सुसज्जित आसन पर पृथ्वी (पृथ्वीचन्द या पृथ्वीभट्ट) सुशोभित हुआ।

"मोहि किति नवखंड 'पहुमि-बन्दोजन' जंपहि" अर्थात् पृथ्वीराज कहता है मेरी कीर्ति बन्दिराज पृथ्वीभट्ट (या पृथ्वीचन्द) द्वारा कथित नवों खण्डो में विस्तृत है ('पहुमि बन्दोजन' वाक्य श्लेष में है जिसका अर्थ पृथ्वी भट्ट और पृथ्वी के कवि होता है)। पृथ्वीराज विजय में व्यास (महाभारत पुराणादि के रचइता) की समानता दी उसके लिए देखो—पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सर्ग ११।

पृथ्वीराज विजय में किसी राजकुमारी के लिए तिलोत्तमा की कल्पना की गई। इसके लिये देखो पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सर्ग ११-१२

१. रासो में पृथ्वीराज और गौरीशाह तथा उनके योद्धाओं द्वारा कुल युद्ध—

रासो के अनुकूल ही है। उक्त प्रबन्ध संग्रह में कैमास को पृथ्वीराज ने मारा उस विषयक तथा रासो के वर्णन सम्बन्धी रासो की ही षटपदियां उपस्थित हैं, जिनसे रासो की रचना इस (पुरातन प्रबन्ध संग्रह) के पूर्व की सिद्ध होती है [१]। संयोगिता हरण और जयचन्द की यज्ञ की कथा का उल्लेख पुरातन प्रबन्ध संग्रह में छपे हुए जयचन्द प्रबन्ध में स्पष्ट हुआ है जो रासो के कन्नोज समय के अनुकूल है, पुरातन प्रबन्ध संग्रह में पृथ्वीराज का एक पुराना मंत्री प्रतापसिंह नाम का बतलाया गया है. जिसके कहने से राजा ने सुलतान को एक लोह मूर्ति बनवाई थी, रासो में वह प्रतापसिंह प्रसिद्ध मंत्री कैमास का पुत्र लिखा गया है।

---

१. हुसेनकथा। २ आखेट चूक। ३ सलख युद्ध। ४ माधौ भट्ट कथा। ५ पद्मावती स०। ६ घनकथा। ७ रेवातट स०। ८ अनंगपाल स०। ९ घघर की लड़ाई। १० पीपाप्रतिहार स०। ११ जैतराय यु०। १२ पहारराय स०। १३ कैमास यु०। १४ हांसी यु० (प्रथम)। १५ हांसी यु० (द्वितीय)। १६ पज्जून महोबा स०। १७ पज्जून पातशाह यु०। १८ दुर्गाकेदार स०। १९ कन्नौज स० (जयचन्द के न होने पर शाह का कन्नौज के भू भाग पर हमला करना और पृथ्वीराज का उससे युद्ध करना)। २० धीर पुण्डीर स०। २१ बड़ा अन्तिम युद्ध।

शाह को कैद करने के विषय में—

देखो प्रकाशित रासो के समय सख्या ६, १३, १६, २०, २६, २७, २८, २९, ३१, ३४, ३७, ४३, ५४, ५८, ६१, ६४ में शाह पकड़ा गया, जिसमें से पृथ्वीराज की शक्ति द्वारा ६, ७ बार पकड़ा गया। यह विषय रासो के सम्पादन होने पर स्पष्ट होगा।

शाह ६ या ७ बार स्वय पृथ्वीराज की शक्ति द्वारा पकड़ा गया, जिसके प्रमाण में देखो अन्तिम युद्ध देवलिया प्रति " गहि छन्ड्यौ छटुवार, वेर सो अप्पु अप्पु कर " अर्थात शाह कहता है मुझे जिस पृथ्वीराज ने छः मर्तबा पकड़ कर छोड़ा, उसका बदला मैं अपने हाथों चुकाऊँगा।

"एक वार दुव वार वार-रस एक स वंधिय" अर्थात् शाह के प्रत्युत्तर में कहलाया गया कि तूने सन्धि भंग कर दी। तुझे एक दो बार ही नहीं, मैंने इकल्ले ने ६ बार पकड़ा है (रस के साथ एक की संख्या भिन्न गिने तो सात बार पकड़ा अर्थ होगा।
६ १

१ रासो की षटपदियां पुरातन प्रबन्ध संग्रह जो श्री मुनि जिनविजयजी द्वारा

उक्त प्रतापसिंह कैमास का पुत्र ही था[1]।

नागोर के निकट होने वाले युद्धों की पुष्टि चरलू नामक बीकानेर रियासत के एक ग्राम के शिला लेखों में से आहड और अम्बराक नामक दो चौहान सरदारों के मारे जाने का लेख स० १२४१ वि० वाला करता है[2]।

"खरतर-गच्छ-पट्टावली" में भी पृथ्वीराज और भीम चालुक्य के युद्ध का उल्लेख रासो के साम्यता रखता है और इसमें वि० सं० १२३३ के आस पास दिल्ली का शासक मदनपाल (पर्याय रूप में) लिखा जाना "रासो में लिखे दिल्ली पति "अनगपाल" का होना स्पष्ट करता है[3]।

"पार्थ पराक्रम व्यायोग" से सिद्ध है कि कुमारपाल (चालुक्य नरेश) ने आबू के राजा विक्रमसिंह के पुत्र (संभव है उसका नाम सलख हो) को वि० सं० १२०२ के आस पास आबू की गद्दी से उतार दिया। पृथ्वीराज के समय आबू पर धारावर्ष नामक राजा था। पृथ्वीराज ने भीम चालुक्य के उस मातहत राजा पर आक्रमण किया था। संभव है विक्रम वंशज सलख जेत्र के पक्ष में पृथ्वीराज और धारावर्ष के पक्ष में चालुक्य हो, यह घटना रासो के "भोला-भीम-समय" से सम्बन्ध रखती है[4]।

रासो वाला बोसल यह तृतीय बोसल था. रासो की हमारे पास की देवलिया वाली प्रति में इसके लिये संवतों का उल्लेख नहीं है. न बालुकाराय वाली युद्ध कथा ही है और उसके पौत्र का नाम इसमें एक जगह अज्जव लिखा है, जो अजमेर का जीर्णोद्धार कर्ता अजयराज हो, और आना शब्द भी अज्जव का विकृत रूप (अज्जन, अय्यन) हो, उसका रासो में एक तपस्विनी से बलात्कार करना लिखा है। उसी के अनुसार एक ब्राह्मणी से बलात्कार करना "चतुर्विंशति

सम्पादित हुआ, उसके पृ० ८६, ८८; ८६ में पद्य संख्या २७५, ७६, ७७, ७८ को देखिये।

१ संयोगिता हरण, जयचन्द की यज्ञ कथा और पृथ्वीराज के एक पुराने मंत्री प्रतापसिंह का उल्लेख पुरातन प्रबन्ध संग्रह में होने के प्रमाण में देखिये-राजस्थानी भा० ३ अं० ३ जनवरी १९४० "पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार," ले० श्री दशरथ शर्मा। (रासो में भी प्रतापसिंह के लिये लिखा है) "राजा (राजां) नाम पुँडीर कुल तेनों पुत्र प्रताप" अर्थात् पुण्डीर कुल में उत्पन्न राजां (राज कुमारी) कैमास की स्त्री से उत्पन्न प्रतापसिंह)।

२ देखो वही।

३ देखो शंका नं० ३ और उसके उत्तर और टिपणियें।

४ "देखो—"राजस्थानी" भा० ३ अं० ३ "पृथ्वीराज—रासो की कथाओं का

प्रबन्ध में मिलता है[1] ।

मदनपुर के मदिर के स्तम्भ पर का वि० सं० १२३६ वाला लेख रासो में लिखे महोबे के युद्ध की पुष्टि करता है[2] ।

रासो के कन्नोज युद्ध में जो पांच सामन्त मारे गये, उनमें एक वीर निर्वाण भी था। सम्भव है चहुआनों में निर्वाण शाखा का प्रादुर्भाव इसी निर्वाण के नाम पर हुआ हो, अथवा वह स्वयं निर्वाण शाखा का हो। उस निर्वाण शाखा की पुष्टि खडेले से प्राप्त सं० १४७५ फा० शु० १३ का लेख, जो कालिबाय नामक बावड़ी की दिवार में निर्वाण वंशी रावत नाथूदेव का लगा हुआ है, उससे होती है[3] ।

रासो में पृथ्वीराज के सामन्तों में चन्देले क्षत्रियों की अधिक प्रतिष्ठा रही है, चन्देले वीरों के वर्णन के साथ भोंहा चन्देला वीरसिंह-चन्देले आदि का अधिक उत्कृष्ट वर्णन है, अतः पृथ्वीराज के सामन्तों और सैनिकों में चन्देले क्षत्रियों के होने की पुष्टि रेवासा के सं० १२४३ मृ० शु० ११ खलुवाणां गांम के चन्द्र वंशी सिंहराज के पुत्र नानक चन्देला दुर्लभदेव चन्देला के स्मृति-लेखों से होती है[4] ।

ऐतिहासिक आधार" ले० श्री दशरथ शर्मा पृ० ५ (हमारे मत से चाहुवान विग्रह चतुर्थ के १२२० के अन्त में जो "अत्र समये महामंत्री राजपूत श्री सल्लक्षणपाल:" लिखा, वही रासो वाला "सलख" हो अथवा उसी के वंशज जैत्र आदि की शैली के अनुसार वंश सूचक रूप में सलख या सलखानी रासो में लिखा गया हो) ।

१ देखो शंका नम्बर ७ (क) का उत्तर और उसकी टिप्पणी:—

देखो पृथ्वीराज चरित्र की भूमिका पृ० ३३ ले० श्री रामनारायण दूगड़। "रासो वाले वीसल के पौत्र का नाम" "अज्जय" था, इसे जानने के लिये देखो शंका ७ (क) का उत्तर और उसकी टिप्पणी।

२ "देखो पृथ्वीराज चरित्र" ले० श्री रामनारायण दुगड़, पृ० ६०, ६१ टि० नं० १

श्री चाहुमान वंश्येन पृथ्वीराजेन भू भुजा,
परामर्दी नरेन्द्रस्य देसोयमुदवास्यते,
ओ३म्—अरुणो राजस्य पोत्रेण श्री सोमेश्वर सूनुना,
जे जाक भुक्ति देशोयं पृथ्वीराजेन लूनिता। सं० १२३६

३ "देखो पृथ्वीराज रासो कन्नोज समय
"निर्वान वीर घावर धनी"

देवलिया प्र०,छं० नं० ४१६

देखो 'वरदा' क्रम संख्या १, श्रावण २००२, पृ० १३

४ देखो- "वरदा" क्रम संख्यां १ श्रावण २००२, पृ० १४, १६ ।

रासो के अनुसार ही कन्नौज के स्वामी जयचन्द के पिता विजयपाल (विजयचन्द) को शक्ति सम्पन्न नरेश, हरिश्चन्द्र के दान पत्र में लिखा है[1] ।

जयचन्द के समय के विक्रम सं० १२२६ से १२४३ तक के अनेक ताम्रपत्र उपलब्ध हैं, जिनसे विदित होता है कि दूर-दूर के राजा लोग जयचन्द की सेवा में रहते थे, ताम्रपत्र में यह वर्णन रासो में लिखे गये जयचन्द के आश्रित अनेकों राजाओं के होने की साम्यता रखता है[2] ।

हम्मीर महाकाव्य में चौहानवंश की उत्पति ब्रह्मयज्ञ समय स्वयं सूर्य से अवतरित रण संचालक योद्धा (चौहान) में बतलाना, सोमेश्वर का उसकी अंतिम आयु के निकट योगाभ्यास करने योग्य (५० वर्ष से ऊपर) लिखना, सोमेश्वर की जीवितावस्था में ही पृथ्वीराज को सर्व शस्त्र-शास्त्र कुशल और न्याय निपुण बतलाकर शत्रु (गोरी) पर आतंक फैलाने योग्य लिख कर, उस समय उसे पूर्ण युवक सूचित करना, पिता की जीवितावस्था में ही उसे राजा बनाने की लिखना वि० सं० १२३२ के आस-पास पृथ्वीराज को भारत रक्षा के लिये युद्धों का कर्त्ता मानना, उसका मुख्य सामंत चंद्र (चन्द्र पुण्डीर) होना, पृथ्वीराज द्वारा शाह को कई बार बन्दी बनाना तथा गोरी से कई बार युद्धों का उसके द्वारा किया जाना लिखना, इत्यादि विषय रासो के वर्णन से साम्य रखते हैं[3] ।

रासो में चाहुवान वंश में प्रसिद्ध पुरुष माणिक्यराज का उल्लेख है, उसकी पुष्टि नाडोल के चाहुवान राजा लुण्ढदेव की प्रशस्ति वि०सं० १३७७ की जो आबू पर अलेश्वर के मन्दिर में लगी हुई है, उससे होती है[4] ।

रासो में वर्णित बीर-केशरी-समर-विक्रम को उसके ८वें वंशधर समरसिंह (जो आहड़ नागदा की शाखा में से था) के वि० सं० १३४२ के आबू वाले लेख में विक्रमसिंह लिखकर स्थानाभाव से उसका अधिक उल्लेख नहीं किया गया, किन्तु फिर भी उसके शौर्य को इन वाक्यों "तस्य सूनुरथ विक्रमसिंहो वैरि विक्रम कथा निरमाथीत्" । (अर्थात् उस चौड़सिंह का पुत्र विक्रमसिंह " विक्रम केशरी" हुआ जिसने शत्रुओं के विक्रम की कथाओं का लोप कर दिया) में लिखकर रासो के अनुसार उसे परम शक्तिशाली बतलाना है[5] ।

---

१ देखो शंका नं० ८ (ग) का उत्तर और उसमें दीगई टिप्पणी ।

२ देखो "जयमल वंश प्रकाश" ले० श्री गोपालसिंहजी राठौड़ (मेड़तिया) बदनोर (मेवाड़), पृ० ४१ से ४३ ।

३ देखो शंका ७ (ख) का उत्तर—

४ देखो पृथ्वीराज चरित्र भूमिका पृ० २६, टि०नं०१

५ देखो उदयपुर राज्य का इतिहास— ले० गौरीशंकर ओझा—पृ०१४१, टि०नं०१

कुंभलगढ़ की (मामादेववाली) वि० सं० १५१७ की प्रशस्ति में रासो में वर्णित वीर-केसरी-समर-विक्रम की 'विक्रम" और "केशरी" उपाधि को मिलाकर उसे 'विक्रमकेशरी" लिखा है। और उसी के पुत्र "रत्न" को विकृत रूप में "रणसिंह" कथन करके रासो का अनुकरण किया गया है[1]।

पंडित रामनारायण दुग्गड़ अपने "राजस्थान रत्नाकर" ग्रंथ पृ० ६० ६२, में लिखते हैं कि एक प्राचीन ख्याति में लिखा है कि रणसिंह पृथ्वीराज का भानजा था। अत: उसके अनुसार रणसिंह के पिता विक्रमसिंह (समर-विक्रम, विक्रम-केशरी) प्रसिद्ध चाहुवान पृथ्वीराज की बहिन पृथा कुमारी के पति होते हैं। उक्त ख्याति इस विषय में रासो के अनुकूल है[2]।

कवियों में सूर्य स्वरूप भक्त शिरोमणि सूरदास का जन्म कितने ही विद्वान् वि० सं० १५१५ और कितने ही १५३५ के बाद मानते हैं। वही सूरदास अपने को चंद वंशज लिख कर रासो के अनुसार चन्द को पृथ्वीरज का राज कवि लिखते हैं[3]।

---

१. वही पृष्ठ १४२ टिप्पणी नं० २–६

२. देखो शंका नं ४ का उत्तर और उसमें दी गई टिप्पणी

३ पृथ्वीराज रासो की प्रथमसंरक्षा ले० पं० श्री मोहनलाल विष्णुलाल 'क्या पृ० ३१-३२

प्रथम ही प्रथु जगात (याज्ञिक) में प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राख नाम अनूप॥
पान पय देवी दियो शिव आदि सुर सुख पाय॥
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति किन्ह।
तासु वंश प्रसिद्ध में भौ चन्द चारु नवीन॥

(आगे चन्द के पुत्र गुन चन्द के वंश में अपना होना सूरदास लिखते हैं। और कुए में पड़ने पर ईश्वर का साक्षात्कार होने पर वे मांगते हैं)

सुजेन चरित्र जो १६३०-३२ में चन्द्रशेखर बंगाली द्वारा लिखा गया, उस की रचना (स्वाभाविक भावों में कुछ ही हेर-फेर के साथ) रासो के कन्नौज समय की छाया में हुई है [1]।

अकबर की सभा के प्रसिद्ध कवि गंग रचित "चन्द छन्द वर्णन की महिमा" से रासो ग्रन्थ अकबर के समय प्रसिद्ध था, इस बात की पुष्टि होती है [2]।

राणा रासो हस्त लिखित प्रति सं० १६०५ प्रति लिपि १६४४ में उसका रचयिता दयालदास लिखता है।–"चन्द द्वारा पृथ्वीराज के यश में जो पद्य रचना हुई, उस में स्वयं शारदा ने साथ दिया था; किन्तु राणा रासो को मैं अधिक कलम चलाता हुआ भी उस रूप में कैसे लिख सकता हूँ, क्यों कि शारदा मेरे

"हों कही प्रभु भक्ति चाहत शत्रु नाश सुभाइ"

हे प्रभु। आप की भक्ति और स्वाभाविक शत्रुओं (काम क्रोध मोहादि) का नाश चाहता हूँ "कितने ही सज्जनों ने इस पंक्ति का अर्थ " मेरे भाइयों को मारने वालों का नाश चाहता हूँ" किया है, वह ठीक नहीं। ईश्वर साक्षात्कार करने वाले महात्मा ऐसी साधारण मांग नहीं करते। भगवान ने "सूर" को चक्षु दिये किन्तु "सूरदास" कहते हैं, मुझे इनकी अब आवश्यक्ता नहीं "दूसरी ना रूप देखो देखि राधा श्याम" क्या ऐसे महात्मा प्रभु–मिलन होने पर कभी ऐसे भारी भूल कर सकते हैं।

१ देखो नागरी प्रचारणी पत्रिका वर्ष४६-अंक ३ (नवीन संस्करण) कार्तिक १६६८ "सुजॅन चरित्र महाकाव्य"; ले० श्री दशरथ शर्मा पृ० २०५ से २२२।

२ "खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास" ले० ब्रजरत्न दास बी० ए०, एल० एल० बी०, पृ० १७३ "रास (पृथ्वीराज रासो) बचना पूरा भया। आम खास बरखास हुआ"।

यह "चन्द छन्द" वर्णन की महिमा नामक पुस्तक सं० १६२६ की लिखी हुई है। इसके पीछे महाराणा उदयसिंह के कुंवर शक्तिसिंह (प्रातः स्मरणीय राणा प्रताप के भ्राता) के पंडित विष्णुदत्त ने अकबर के कवि गंग से अजमेर में पढोला वाय के मुकाम पर कवि-चन्द के पिता बैन की एक षट्पदी (कवित्त) और नागा पवकरण का कहा हुआ दोहा जिसका भाव रासो में वर्णित कन्नौज पति की सभा में पृथ्वीराज का कविचन्द के साथ उसके सेवक रूप में

साथ नहीं है" इस से राणा रासो का रचइता, पृथ्वीराज का यश गान करता कवि चन्द और उसकी कृति के होने का समर्थन करता है [१]।

हरिपिङ्गल प्रबन्ध रचना वि० सं० १७२० में कवि योगीदास द्वारा हुई, उसके मङ्गला चरण में प्रसिद्ध कवि कालीदास आदि के नामों के साथ चन्द का भी उल्लेख कर वन्दना की गई है अतः कविवर योगीदास भी चन्द को प्राचीन और प्रसिद्ध कवि होने का समर्थन करते हैं [२]।

उदयपुर राजकीय पुस्तकालय की रासो की हस्त लिखित वि० सं० १७६० वाली की पुष्पि का के अन्त की दो षटपदियें जो किसी कक्का नामक ("कका" शब्द नाम के लिये नहीं लिखकर हमारे मत से काका, चाचा के, लिये प्रयोग किया गया हो, ये "राणा अमर प्रथम" के के चाचा महारा ा "अगर" हो सकते हैं जिनका कविता प्रेमी होना उसके लिए रासो की नकल की जाना है या और किसी के चाचा भी हो अथवा कोई कका नामक कवि भी हो सकता है १। कवि ने लिखी है जिसकी पहली षटपदी श्लेष में लिखी है, जिसके तोन अर्थ होते हैं। रासो के निर्माण काल के पक्ष में २ रासो के समझने की कठिनाई के पक्ष में, रासो का प्रशंसा के पक्ष में। रासो के निर्माण काल के विषय में रासो वाला वही अ०स० ११७२ लिखता है जिसमें विक्रमी संवत् से कमी के ६१ वर्ष जोड़ने से वि०सं० १२६४ होता है अतः कक्का कवि का लिखना है कि रासो ग्रन्थ की रचना चन्द कवि और उसके पुत्रों द्वारा वि० सं० १२६४ तक हुई दूसरी षटपदी में लिखता है कि चन्द द्वारा की गई

जाने का है।

ले कूंजां नृप पीथुला, सांमत चंमू समंद।
बैन नँदन कनवज गमन, चंद करन कइदद॥
देखो–पृथ्वीराज रासो प्रकाशित भा० १ पृ० १२४–१२५ की टिप्पणी इसमें कन्नौज समय की घटना का साम्य है।

१. राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज भा० १ ले० ५० मोतीलाल मेनारिया पृ० ११६

चंद छंद चहुवान के, बोली उमा विसाल।
रान रास अतिहास कूं, दोरे न पलत दयाल॥

२ देखो "हरि पिङ्गल प्रबन्ध" प्रतापगड़ (देवलिया) राज्य का राज्य का राज्य-कोय पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति का मङ्गला चरण आदि पत्र।

रचना के पद्य बिखर गये थे, उन्हें राणा अमर (हमारे मत से महाराणा अमरसिंह प्रथम) ने एकत्रित कर पुनः सुन्दर रूप दिया। ये पट्पदियां केवल चन्द और रासो ग्रन्थ की पुष्टि ही नहीं करती, बल्कि रासा ग्रन्थ के निर्माणकाल की भी पुष्टि करती है[1]।

वालमीक वंदन करूं, बंदू चलण (चरण) बयास।
माघ बाण दंडी सुकव, चंदह कालिदास॥

१. देखो "राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज" भा० १ ले० श्री पं० मोतीलाल मेनारिया पृ० ३२।
१. रासो के निर्माण काल के और इसे समझने की कठिनाई के पक्ष में पद्य का रूप और अर्थ।

मिलि-पंकज-गन उदधि, करद-कागद-कातरनी।
कोटि-कवि-काज-लह-कमल कीटिक-ते-करनी॥
इहि तिथि संख्या गुनित कहै कक्का कवियां ने।
इह श्रम लेखन हार भेद भेदै सोइ जानै॥

इन कष्ट ग्रंथ पूरन करय जन बड्या (बड़या) दुखना लहय।
पालियै जतन पुस्तक पवित लिखि लेखक विनती करय॥ १॥

शब्दार्थ—मिलिपंकजगण-पंकज श्रेणी (श्वेत, अरुण, नील)।

३

उदधि—७। करद कागद कातरनी—कागद को काटने वाली छुरिका की धार (अक्षरशः इकधारी ही होती है)। कोटि कवि काज लह कमल किटेक ते करनी—कमल—रस—मुग्ध भ्रमर सी कवियों की रसिक क्रिया।

१

उपरोक्त संख्या का सुलटा क्रम ३, ७, १, १। काव्य नियम से सम्वत् के लिये उलटा क्रम सं० ११७३ (रासो पर होने से यह रासो वाला अ० सं० है इसमें कमी के ६१ वर्ष जोड़ने से १२६४ विक्रमी होता है)।

अर्थः—अ० सं० ११७३ (वि० सं० १२६४) तक रासो ग्रन्थ की रचना हुई, इसके रचना की तिथि गणित शास्त्र में ही पाई जाती है— ("पन्ना ही तिथि पाइयत" वह तिथि नह, वार प्रति वर्ष आता रहता है किन्तु वैसा कवि और वैसी ग्रन्थ रचना उसके बाद नहीं हुई)। कक्का कवि कहता है, ऐसे ग्रंथ रचना के श्रम को यातो रचयिता या इसमें प्रवेश कर्ता ही जानता है कि कितने कष्ट से ग्रंथ समाप्त हो पाया है किन्तु बड़े आदमी (ऊंचे कवि) ऐसे कष्ट को कष्ट नहीं समझते। (या बड़े आदमी

राजप्रशस्ति महाकाव्य जिसकी रचना वि० सं० १७२३-२६ में हुई, उसमें रासो के समान ही मेवाड़ेश्वर समरसिंह (समर-केशरी, समर-विक्रम, विक्रम केशरी) का पृथ्वीराज की बहिन पृथाकुमारी का ब्याहना और पृथ्वीराज और गोरीशाह में होने वाले अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज के पक्ष में रह कर मारे जाने का उल्लेख हुआ है[1]।

कवि के परिश्रम को नहीं जानते)। ऐसी इस पवित्र पुस्तक को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखनी चाहिए, पाठकों से लिपिकार की यही बिनती है।

२. रासो को समझने की कठिनाई के पक्ष में—
अर्थ—सरोवर में स्थान पाने को कमलों का जैसे (एक पैर पर खड़ा) रहना, और कागद को (ग्रंथरूप पाने को) जैसे छुरि की धार से कटना पड़ता है, उसी प्रकार इस (रासो) में प्रवेश करने को कवियों को कमल रस मुग्ध भ्रमर की सी गति करनी पड़ती है। शेष अर्थ पूर्ववत् है।

३. रासो की प्रशंसा के पक्ष में, पद्य का रूप।

मिजि पंकज गन उदधि, कग्द कागद कातरनी।
कोटि कवि का जलह, कमल कोटिक ते करनी॥
शेष पद्य पूर्ववत्।

अर्थ—"रासो ग्रन्थ" कमलों से सुशोभित सरोवर, काट करने वाली कागज की खड्ग (रासो काव्य कागज पर लिखा हुआ भी बहादुरों के लिए तलवार तुल्य शक्ति वर्धक है) और जिन कवियों की कमलरस मुग्ध भ्रमर की सी गति है उनके लिए कवच तुल्य है। शेष अर्थ पूर्ववत्।

४. ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः॥ २४॥
गौरीसाहिनेतबदीनेन गज्जनीशेन संगरं।
कुर्वतोऽवर्स्वगर्वस्य महासामंतशोभिनः॥ २५॥
दिल्लीश्वरस्य चौहान नाथस्यास्य सहायकृत।
सद्वादशसहस्त्रैः स्ववीराणां सहितो रणे॥ २६॥

देखो—पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा, ले० पं० श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या पृ० २७।

तारीख फिरिश्तः में दिल्ली के हाकिम खांडेराय से मेल करके पृथ्वीराज का मुलतान पर चढ़ाई करना शाह की सेना में अफगानी, खलज; खुरासानी और गोर सरदारों का होना, दिल्ली के हाकिम खांडेराय और कितने ही दूसरे राजाओं का अन्तिम युद्ध में मारा जाना, पृथ्वीराज को पकड़ कर कत्ल किया जाना, रासो के वर्णन के अनुसार ही है। रासो में चावंडराय को उपाधि रूप में खांडेराव लिखा है; पृथ्वीराज ने उसके पैर में बेड़ी डलवा दी थी। अतः अंतिम युद्ध के समय उसकी बेड़ी काट कर उसका सम्मान करके पृथ्वीराज ने उसे प्रसन्न किया। शाही दल में खुरासानी ततारी, अरबी, गोरी आदि मुसलमान योद्धा थे, जिनके साथ युद्ध हुआ। चावंडराय (खांडेराय) और कई सामंत अंतिम युद्ध में काम आये। पृथ्वीराज भी विशेष घायल हो गया था। उस घायल वीर पर मुसलमानों ने शस्त्राघात किये और घायल अवस्था में वह पकड़ा जाकर कुछ ही समय बाद मर गया[1]।

"जामेउल्-हिकायत" में पृथ्वीराज को "कोला" लिखना भी रासो से साम्यता रखता है। रासो में पृथ्वीराज को कहीं २ बाराह वीर भी लिखा है। "बाराह" का दूसरा शब्द "कवल" भी है, जिसका विकृत रूप 'कौल', से ही बाराह राय (कोला) भी था[2]।

---

१ देखो देवलिया प्रति छं० नं० १२७ पिछली लड़ाई [अंतिम युद्ध] "तै बधि सुरतान पर, "खंडै" खंडीपाग।"
[हे खण्डेराव "चावंडराय" ! सुलतान पर टेडी पगड़ी बांधने वाला एक तू ही है] अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज के मारे जाने का वर्णन शंका नं० ८ (ङ) का उत्तर और टिप्पणी को देखिये।
तारीख फिरिश्तः का निर्माण-काल हि० सं० १०१५, ई० १६६० वि. सं० १६६४: देखो पृथ्वीराज चरित्र ले० रामनारायण दुग्गड पृ० ५०–७२।

२ देखो—देवलिया प्रति पिछली लड़ाई (अन्तिम युद्ध) छंद ४५२ "रे बधिकह्य दूव देय बाराह कर्ण भक" अर्थात हिन्दू नरेश बाराह-देव (पृथ्वीराज का भक्षण करने वाले रे वधिक !

छं० सं० ४६७ में भी "बान एक बाराह खान ढाहे धर उप्पर" अर्थात् उस बाराह वीर (पृथ्वीराज) ने एक बाण से अनेकों मुसलमानों को धराशायी कर दिया। 'जामेउल-हिकायत' का निर्माण-काल हि० ६०७ (वि० १२६८) देखो पृथ्वी-राज चरित्र भू० पृ० ७६।

'ताजुलमआसिर' में पृथ्वीराज को कोलाराय लिखा जाना भी रासो में पृथ्वीराज को उपाधि रूप में वाराहराय लिखा गया, उसी का विकृत रूप है। इसमें हिन्दुओं को "जागरु" लिखा, अतः रासो में पृथ्वीराज को जंगल-नरेश लिखा है इसीलिये उसके सैनिकों का इसमें विकृत रूप से जागरू (जांगली वीर) लिखा गया हो। जगल-प्रदेश, बीकानेर आदि पृथ्वीराज के आधीन होने से ही रासोकार भी उसे कहीं २ जगलेश्वर लिखता है तदुपरान्त इसमें लिखा है कि पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के १ वर्ष पश्चात् शाह को आज्ञा से कुतुबुद्दीन कन्नौज की ओर आगे बढ़ा, उधर से सामना करने को जयचन्द चढ़ आया उसके साथ "रेती के दाने का नाई गिनी न जासके, ऐसी बड़ी सेना थी"। यह कथन, "कन्नौज-पति जयचन्द को विशाल-वाहिनी वाला" रासो में लिखा गया, उसी का द्योतक है[१]।

तबकाते नासिरी-में भी पृथ्वीराज को "रायकोला" लिखना वही रासो का "वाराहराय" का रूप है, उसमें दिल्ली के राजा गोविन्दराज का जो उल्लेख है वह चावंडराय (खांडेराय) के लिए नहीं हो सकता। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार पृथ्वीराज (प्रथम) के प्रपौत्र गोविन्दराज के लिये ऐसा लिखा जाना संभव है। क्योंकि वास्तव में तो दिल्लीपति पृथ्वीराज ही था, किन्तु राजवंश का होने से उसे भी दिल्ली का राजा (दिल्ली के राजवंश का) लिखा है। रासो में पृथ्वीराज के सामन्तों में दो गोविन्दराय नाम के थे, जिनमें से एक "गुहलोत क्षत्रिय" और दूसरा पृथ्वीराज के भाइयों में से था। उसके लिए जहां रासो में उल्लेख हुआ वहां "बड़ा गोविन्दराय" या "बाबाकापुत्र" (भाइयों में "चाचा-बाबा" बड़े होते हैं जिनके लिए लिखा जाता है) लिखा है। इसलिए गोविन्दराज के विषय में दोनों का वर्णन साम्य है। तबकातेनासिरी में जम्बू के राजा का शहाबुद्दीन का साथ देना यह वर्णन रासो के राजद्रोहीवीर "हाहुलिराय" की कथा से मेल खाता है। हाहुलिराय उसका उपाधि सूचक नाम था। यह नाम पृथ्वीराज ने ही उसका उस समय रक्खा, था जब एक युद्ध में पृथ्वीराज ने उसे विपक्षीपर आक्रमण करने का का संकेत "हाँ" किया और उक्त वीरने "हल्ल"

---

१. देखो-रासो में यत्र-तत्र-पृथ्वीराज के लिये जंगल-नरेश 'जंगल वै' और 'जंगलेश' लिखा मिलता है।

तआजुलमआसिर का निर्माण काल हि० ६१४ (वि० १२७४,) वही पृष्ट ७७।

देखो-जयमल वंश प्रकाश पृष्ठ ४२-४३, ले० ठा० गोपालसिंहजी बदनोर (मेवाड़)।

(हल्ला) कर दिया अतः राजा ने उसका नाम "हाहुलि" (हांहल्लि) रख दिया, अतः उसके खास नाम के लिए अन्य विद्वान् "विजयदेव" होना अनुमान करते हैं, जो हो सकता है। इस पुस्तक में रासो में लिखने के अनुसार कितने ही मुसलमान योद्धाओं के नाम होना तथा हुसेन का कामी होना, पृथ्वीराज का अंतिम युद्ध में पकड़ा जाकर मारा जाना रासो की रचना के अधिक समीप है [१]।

कन्नौज-पति जयचन्द का राजसूय यज्ञ करना, पुत्री संयोगिता का पृथ्वीराज द्वारा अपहरण होना, अनंगपाल की पुत्री कमला से पृथ्वीराज का और सुन्दरी से जयचन्द का जन्म होना, अनंगपाल द्वारा दिल्ली का शासन पृथ्वीराज का मिलना, कन्नोज युद्ध में पृथ्वीराजके ८४ सामंतों का मारा जाना, कन्नोज के युद्ध में कछवाहे पज्जून का संमिलित होना; संयोगित का पृथ्वीराज की मूर्ति को वरमाला पहिनाना, जिससे जयचन्द का उसे कैद करना, कन्नोज युद्ध में पज्जून का माराजाना, संयोगिता का स्वयंवर होना और पृथ्वीराज का जयचन्द को हरा कर संयोगिता को ले आना, इत्यादि वर्णन रासो के अनुसार क्रमशः तारीख हिन्दुस्तान। मुन्शी शम्शुल्ला मुहम्मदीन जकाउल्ला कृ० भा० पृष्ठ ३९७३, तारीख हिन्द फारसी (भा० १ पृष्ठ २७३, ३७३) मुसलमानी राज्य का इतिहास (भा० १ पृष्ठ २०-२६), तारीख हदो कतुल मकालीन हस्त लिखित

---

१. देखो-गोविन्दराय के लिये रासो में यत्र तत्र "गोविन्दराअ" (वहा) और "बाबारो गोविन्द" लिखा है।

देखो-रासो का पद्य हाहुलि के लिए-"हां करंत दरन करी, हल्लकरी अरिमत्थ"।

श्री दशरथ शर्माजी भी अपने 'पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार' नामक लेख के पृष्ठ १४ में हाहुलिराय हम्मीर के लिये स्वदेश द्रोही जम्बूपति विजयदेव का ही अनुमान करते हैं।

देखो-राजस्थानी भाग ३ अंक ३ जनवरी १९४० ई०।

"रासो के अनुसार तबकाते नासीरी में" कई मुसलमान योद्धाओं के नाम मिलते हैं व हुसेन के कामी होने के विषय में देखो 'पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा' ले० पं श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या पृ० ४०-४१, तथा प्रकाशित रासो (सम्पादित श्याम सुन्दरदास बी०ए० तथा पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या) के नवमें समय के अन्त में दी हुई उपसंहारिणी टिप्पण।

('तबकातं नासीरी', इसका लेखक काजी मिनहाजुद्दीन उस्मान, यह सुलतान शमशुद्दीन अलतीमश के वक्त में था। देखो-'पृथ्वीराज-चरित्र' लेखक रामनारायणजी दुग्गड़ पृ० ७९ भूमिका)।

(भा० १ पृ० १४, १५), दूसरी तारीख उसमानी फारसी व हकानीम (पृ० १८-२०) और तारीख निज़ामी में उपलब्ध [1]।

आइने अकबरी में पृथ्वीराज का उसकी सुन्दर स्त्री (संयोगिता) के वश में होना, शाह का एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण करना इसकी सूचना राजमहलों में जाकर पृथ्वीराज को कवि चन्द का देना और पृथ्वीराज का अंतिम युद्ध शाह से करना इत्यादि वर्णन रासो से मेल खाता है [2]।

अतएव इस प्रकार प्राचीन और अर्वाचीन शिलालेख; पुस्तकें और तवारीखें आदि रासो के अनुकूल हैं और वे उसे पृथ्वीराज के समय की रचना होने की ही पुष्टि करते हैं।

शंका १०-"रासो" की भाषा १३ वीं शताब्दी की नहीं; किन्तु १६०० सौ के आस पास की है हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण, सोम प्रभु के कुमार बोध, मेरु तुंग की प्रबन्ध चिंतामणि तथा प्राकृत पिंगल में दिए हुए रणथंभोर के हम्मीर के प्रशंसात्मक पद्य तथा वि० सं० १५६२ के बीठू सूजा रचित "जैतसी राव के छन्द" का मिलाने से रासौ की भाषा में अंतर मालूम होता है। वीर रस की भाषा बहुधा डिंगल ही होती है।

राजस्थानी (डिंगल) में पहले फारसी शब्द प्रयोग मे नहीं आते थे। पीछे से कुछ आने लगे। रासो में प्रति सैंकड़ा १० शब्द फारसी के पाये जाते हैं। दोहों और कुछ २ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है। छोटे छन्दों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारांत शब्दों की मनमानी भरमार है। उसकी क्रियाएं नये रूपों में मिलती हैं, पर कहीं कहीं साथ ही भाषा अपने असली साहित्य के रूप में पाई जाती है, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ उनके रूप और विभक्तियों के चिन्ह पुराने ढंग के हैं। इस वागजाल के बीच कहां पर कितना अंश असली है इसका निर्णय असंभव है।

---

१ देखो 'कछुवाहों का संक्षिप्त इतिहास' ले० ठा० वीरसिंहजी तंवर पृ० १२ से १४ की टिप्पणी। (ये महाशय कन्नौज युध्द में सम्मिलित होने के प्रमाण में जयपुर में तोतू के दीवान के यहां का रुक्का मिलने का भी उल्लेख करते हैं)।

२ देखो—"पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार" नामक लेख राजस्थानी भाग ३, अंक ३ जनवरी १९४० ई० पृष्ठ १२-१३ लेखक श्री दशरथ शर्मा।

उत्तरः—भाषा विषयक समाधन रासो का संपादन हो जाने पर ही हो सकेगा क्योंकि हमारे संपादन में रासो की जितनी प्रतियां मिल पाई हैं उनको सामने रक्खा जाता है और उनसे जो भी प्राचीन पाठ मिल जाता है वही संपादन में ग्रहण किया जाता है जिससे इसका पुनः प्राचीन रूप बन जाने की संभावना है। और ऐसा होने पर ही इसका शब्दकोष भी तैयार हो सकेगा। और प्रत्येक शब्द को प्राचीन पुस्तकों में आये हुए शब्दों से मिलान कर बतलाया जायगा कि यह शब्द अमुक प्राचीन विद्वान ने अपने साहित्य में काम में लिया है। जिससे पाठकों को इसकी भाषा की असलियत समझ में आ जायगी। सभी विद्वान् इससे सहमत हैं कि रासो में क्षेपक अंश है। इसमें दोहे कवित्त (षटपदी) आदि पद्यों की भाषा तो प्राचीन रूप को लिये हुए हैं और कुछ पद्यों की भाषा में नवीनता है। हमारे संपादन में जिन छंदों (षटपदी आदिक) का भाषा को वे प्राचीन मानते हैं, वे ही पद्य मूल माने जा रहे हैं[1]। और उन पद्यों की भाषा का और भी कई प्रतियों से सुधार होता जा रहा है अतः भाषा विषयक विचार भी हमारा और शंका कर्त्ताओं का विशेष प्रतिकूल नहीं दीख पड़ता। केवल हमारे और उनके विचारों में यहां अंतर है कि वे संतवाणियों[2] से रासो की भाषा को मिलाते हैं और हम रासोकार के लिखने के अनुसार षट्भाषाओं के संमिश्रण सहित श्रेष्ठ बोल-चाल की भाषा ही रासो की भाषा मानते हैं[3]

---

१. देखो शंका संख्या ६ और उसका उत्तर टि० १।

२ संत-वाणी लिखने का हमारा मतलब यह है कि उनमें छंद शास्त्रों के नियमों के अनुकूल पद्य रचना न होकर रचयिता संत के भाव जिस समय जिस लय में निकल गये लिख दिये गये। यद्यपि 'स्वयंभू" आदि की रचना में सुन्दर साहित्य मिलता है किन्तु छंद और रस पोषक भाषा की कमी उनमें भी है। वह साहित्य भी उपरोक्त दो बात की कमी के कारण वाणी रूप में ही है।

३ लोक भाषा के ठीक रूप १२ वीं १३ वीं शताब्दी के शिला लेखों के अन्दर भी इस प्रकार मिलते हैं—

पृथ्वीराज चरित्र–लेखक रामनारायण दुग्गड़, भूमिका पृ०— ४६ टि० नं १.

(क) "स्वस्ति संवत् १२२८ ज्येष्ठ सुदी १० अस्य संवत्सरे मास पक्ष दिन पूर्ववत्"

"समस्त राजा बलि समलंकृत परम भट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर" "परम माहेश्वर श्री सोमेश्वर देव कुशलै कल्याण विजय राज्ये आदि।

जिसमें अर्थहीन (अर्थ में चमत्कार न हो अथवा ऐसे शब्द प्रयोग में लाये जायँ जिससे अर्थ करने में क्लिष्टता हो या अर्थ विषयक असंमति हो), वर्णहीन (ऐसे वर्ण जो रस पोषक न हों, सुख पूर्वक मुख से उच्चारण न होते हों, छंद की गति में बाधक हों और जिनके द्वारा रचना में शितिलता आ जाती हो) और छंद हीन दोष (छंदोंभंग हो, अथवा जिससे रस की पूर्ति नहीं होती हो) भी नहीं होने चाहिये[१]।

संतवाणियाँ हमारे सामने दो रूपों में उपलब्ध है। एक तो जैन और बौद्ध महात्माओं की और दूसरी नाथ–संप्रदाय तथा सनातनधर्मी महात्माओं की। इनमें से जैन और बौद्ध संप्रदाय के महात्माओं की रचना की भाषा लोक-भाषा-से अधिक दूर है और नाथ-संप्रदाय तथा सनातन धर्मी महात्माओं की रचना लोक भाषा के अति निकट है। उनमें से किसी २ की रचना में उनकी देश-भाषा का पुट होते हुए भी उनमें व्रज और खड़ो का स्पष्टतः सम्मिश्रण है कुछ नाथ संप्रदाय

(ख) "स्वति श्री महाराज धिराज श्री सोमेश्वर देव महारायें डोंडरसिंह रा" सुत सिंदुराउदेवी .... सं० १२३४ भाद्रपद सुदि ४ सुकादिने"

(ग) "संवत् १२२६ असाढ़ वदि १२ श्री पृथ्वीराज राज्ये बागड़ो सलखण" पुत्र जल सल .... "

जयमल वंश प्रकाश—ले० ठा० गोपलसिंहजी बदनौर मेवाड़ पृ० ८७—
(जोधपुर नरेश सीहा के साथ उसकी रानी पार्वती सती हुई वि० १३३० लेख बीठू से मिला—

१—ओं सांवछ १३३०

२—कातिक वदि १२ सोम

३—वारे रढडा श्री सेत

४—कवर सुनु सीहो दे

५—वलो कं गतः सो (ल)

६—क पारवतिः तस्या थें दे

७—वली स्थापिना (ता) करपिव सुभ भवक्तु:

(यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो शिला लेखों और ग्रन्थ की पुष्पिकाओं की गद्य इबारत में संस्कृत और लोकभाषा का संमिश्रण वि० संवत् के प्रारम्भ से ही दिखाई पड़ता है)।

१—देखो शंका नं० २ का उत्तर और उसकी टिप्पणियाँ।

और सनातन धर्मी महात्माओं की भाषा अधिक परिमार्जित होने से उनकी रचना और उनके समय के प्रति कुछ विद्वानों को शंका है किन्तु हमारे विचार से उनका शंका करना निरर्थक है। नाथ सम्प्रदाय और सनातन धर्मी महात्माओं का उद्देश्य उनकी रचना को सब कोई स्वयं पढ़ और समझ सके यही रहा है, उनने इस विषय में कृपणता नहीं की। उदारता के साथ उनने अपने उपदेश-भंडार को लोक-कल्याणार्थ समर्पित कर दिया। इसी कारण से उनकी रचना में लोक-सुलभ भाषा सुथरी हुई पाई जाती है। जैन और बौद्ध महात्माओं का उपदेश भण्डार संग्रह की दृष्टि से विशाल है किन्तु उनने अपनी रचना में लोक-भाषा से अति दूर की भाषा को स्थान देकर उनने अपने उपदेश और साहित्य को अपने ही हाथ में रक्खा। उनका धर्मानुयायी जन-समुदाय भी आज तक उस भाषा और उस रचना से अनभिज्ञ है, अर्थात् वह उनको भी सुलभ नहीं है ताकि वे स्वच्छन्दता पूर्वक उसे पढ़ और समझ सकें।

हमारे लिखने का मुख्य तात्पर्य यह है कि भाषा की दृष्टि से दो रूप में हमारे महात्मागण अपने उपदेश साहित्य का सृजन करते रहे हैं जिनमें लोक-भाषा से अति दूर और अति निकट के रूप मिल रहे हैं।

स्थानाभाव से महात्माओं की रचनाओं में जो लोक भाषा से दूर और निकट के रूप हैं, उनके उदाहरण न देकर सूचित किये देते हैं कि पाठक उनकी जानकारी के लिए जैन-बौद्ध साहित्य और गोरखनाथ व उनके समकालीन योगियों तथा ज्ञानेश्वर नामदेव आदि की रचना को पढ़ने का कष्ट करेंगे तो जैन-बौद्ध महात्माओं के शब्द लोक भाषा से कितने दूर जा रहे हैं और नाथ संप्रदाय और सनातन धर्मी महात्माओं की रचनाओं का रूप लोक-भाषा, पिंगल, व्रज और खड़ी के कितना निकट है। बौद्ध और जैन महात्माओं की रचनाओं में उनके रूप उनके पढ़ने की लय को तर्ज पर है। ऐसे रूप बोलचाल की भाषा में मानना असगत है।

उपरोक्त दोनों प्रकार के महात्माओं को रचना को हम संतवाणी ही मानते हैं, इनमें से किसी-किसी ने साहित्य रचना भी की है किंतु वह भी संतवाणी के लय के रूप में ही है। साहित्य रचना में कवि को साहित्य के नियमों का पालन करना आवश्यक है। छन्द और भाषा की दृष्टि से ऐसा उनमें (सन्त-रचना में) नहीं हुआ। उनकी पढ़ने की लय में जो भी चरण बैठ गया उनने उसे लिख दिया। इसीलिए उनकी रचना के चरण कहीं लंबे हैं तो कहीं संकुचित हैं। कोई पद पद्धरी का है कोई उसी छंद में त्रोटक का है इसी तरह अनियमित रचना पाई जाती है। जिससे कहीं २ तो छंदों का पता तक लगाना कठिन हो जाता

है [1] कि यह किस जाति का है। अर्थ लालित्य होते हुए भी उनमें रस पोषक भाषा नहीं, ऐसे ग्रन्थों को देखते समय कवि हृदय से विचार करने पर ही उपरोक्त बातों का ज्ञान हो सकता है।

कवियों की काव्य सृष्टि भिन्न और अलौकिक कही गई है। अतः कवि काव्य-नियमों का पालन करता हुआ, काव्य सौंदर्य की सामग्री का संग्रहकर्ता होता है। उसकी भाषा लोक सुलभ भाषा होते हुए भी रस पोषक शब्दों को विविध भाषाओं से चुन चुन कर उसके द्वारा वह एक सुन्दर रस-सिंधु को परिपूर्ण कर पाता है। उसकी काव्य सृष्टि में भेद भाव का अभाव है। वह अपनी रचना के अनुकूल शब्द किसी भी जातीय विजातीय भाषा से ग्रहण कर लेता है, या नये शब्द को भी जन्म दे सकता है। ऐसे कवियों में सर्व प्रथम महाकवि चंद को ही स्थान मिल पाया है कि जिसने अपनी रचना में मूल आधार लोक-भाषा का देते हुए भी उसने विविध भाषाओं के शब्दों को स्थान देकर हिंदी भाषा के अंकुर को पैदा कर दिया। उसके बाद उसका अनुसरण करने वाले कवियों ने [2] उस अंकुर में रस-सिंचन का काम किया। यही कारण है कि आज हमारी भाषा अधिक परिमार्जित और सुन्दर रूप का प्राप्त करके राष्ट्रभाषा हो पाई है। यदि शब्द ग्रहण करने में धार्मिकता और भेद-भाव बना रहता तथा लोक-सुलभता और सुन्दरता व परिमार्जन का खयाल न रहता तो आज इसका यह रूप नहीं बनता और न यह लोक-प्रिय ही हो पाती, न राष्ट्र भाषा के पद पर ही पहुँच पाती।

महाकवि चंद बरदाई की रचना वीर रस प्रधान है। अतः इसमें ओजपूर्ण शब्द होना स्वाभाविक है। काव्य-नियम से ओज शब्दों की जन्मदात्री परूषा-वृत्ति मानी गई है, जिसमें "ककार" "टकार" आदि कठोर वर्ण तथा द्वित्त वर्णों

---

१. (त्रोटक) "तहि तेहएँ सुदरें सुप्पवहे।

आरण्य-महग्गय-जुत्त रहे"

उसी त्रोटक में पद्धरीः—

"कत्थवि पंचाणण गिरि गुहेहिं। मुत्तावलि त्रिक्खि रंति णहेहिं"

इनमें "तेहएँ' 'सुन्दरे' 'णहेहिं' से मात्राएँ बढ़ती हैं और छंद की गति बिगड़ती है।

देखो—हिंदी काव्य धारा (स्वयंभू द्वारा वन वर्णन) पृ० ४० ले० राहुल सांस्कृत्यायन

२ व्रज भाषा भाषा रुचिर, कहै सुनें सब कोय।

मिले संस्कृत फारसी, पै अति प्रगट जु होय॥

को बाहुल्य होती है, उसी के अनुसार इसमें भी हुआ है। 'पुरातन-प्रबन्ध संग्रह'' से रासो के प्राप्त छंद रासो की प्राचीनता की पुष्टि करते हैं। उन्हें खोज निकालने के प्रयास के लिये हम मुनि जिनविजयजी के आभारी हैं। किंतु हम ओजपूर्ण शब्दों की दृष्टि से उन पद्यों को लिपिकार की निजी (जैन) भाषा से प्रभावित मानते हैं[1]; क्योंकि उनमें से वह वास्तविक ओज जाता रहा है, जिससे छंदो भंग के साथ २ वे निर्जीव से दिखाई पड़ते हैं। अतः उन्हीं पद्यों के विकृत और असली रूपों को आमने-सामने देते हैं, जिससे पाठक स्वतः समझ सकेंगे कि किन चरणों में ओज है ? और किन में से जाता रहा है तथा छंद की गति की क्या दशा होगई है ?

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में रासो के पद्य—	रासो की अन्य प्रतियों में वही पद्य—
इक्कु बाणु पहुवीसु जु,	इक्क बान पुहवी नरेस,
पइँ कइँ वासह मुक्कओ।	कहिमासहि मुक्यउ।
उर भितरि खड़ हडिउ,	उर उप्पर खरहर्यउ,

१. अक्सर लिपिकार की निजी भाषा का प्रभाव उसके द्वारा अन्य भाषा की प्रति लिपि करने में पड़े बिना नहीं रहता। हमारे संग्रह में "सूर" और "केशव" जो ब्रज भाषा के प्रसिद्ध कवि हैं, उनके पद्यों की किसी राजस्थानी ने नकल की, जिससे उनके शब्दों का रूप राजस्थानी बन गया। स्थानाभाव से यहाँ १-२ ही उदाहरण देते हैं:—

शुद्ध केशवदास कृत-	अशुद्ध राजस्थानी
चरन धरत चिंता करत,	"चरण धरत चंता करत,
श्रवनन भावत सार।	नीदन भावन सोर।
सुवरन को ढूँढत फिरत,	सौव्रणकूं ढूंढत फरत,
कवि, व्यभिचारी, चोर ॥ १ ॥	कव, विभचारी चोर ॥ १ ॥
राजत रंचन दोष जुत,	"राचित रंचक दोष जुन,
कविता, वनिता, मित्र।	किवता, विनता, मित्र।
बुंदक हाला परत ज्यों,	बुन्दक हाला होत ज्यूँ,
गंगा—घट अपवीत्र ॥ २ ॥	गंगा—घट—अपीवत्र ॥ २ ॥

धीर कक्खतरि चुक्कउ।
बीअंकरि सधीउँ.
भमई सुमेसर नंदण।
एहुसु गाढ़ दाहिम ओ,
खणई सइँ भरि वणु।
फुड छंडिन जाइ इहु लुब्भिउ,
बारइ पलकउ खल गुलह।
नं जांणउ चद बलदिउ,
किंन विछुट्टइ इह फलह ।। २७५ ।।
अगहुमगहि दाहिम ओ,
रिपुराय खयँ करू।
कूडु मंत्र ममठओ
एहु जबूय (प) मिलि जग्गरू।
सहनामा सिक्खउं,
जइ सिक्खविउ बुज्झई।
जंपइ चंद बलिदउ मज्झ,
मर मक्खर सुज्झइं।
पहु पहुविराम संइभरि धनी,
सयँभरि सउणइ संभरिसि।
कइंबास विआसविठसहविण,
मच्छि बंधि बद्धओ मरिसि ।।

।। २७६ ।।

वोर बाहूँवर चुक्यउ।
वियउ बानु संधानि,
हन्यो सोमेसुर नंदन।
गाढो कै निग्रहयउ,
खनिव गड्यो संभरि धन।
थह छोडि न जाइ अभागरौ,
गालै गिद्धौ गुल खलौ।
इम जंपै चंदु वरद्दिया,
कहा निघट्टै इय प्रलौ ।। २२६ ।।
अगह मगह दाहिमों,
देव रिपुराई खयंकर।
कूर 'मंत झिन करौ'
मिलै जंबूवै जंगर।
मौ सहनामा सुनौ,
एह परमारथ सुज्झे।
अक्खै चद विरह,
वियौ कोइ एह न बुजझै।
प्रथिराज सुनवि संभरि धनी,
इहि संभरि संभारि रिसि।
कैंमास वलीठ वसीठ बिन,
मेच्छ बंध बंध्यो मरिसि ।।

।। ४७६ ।।

त्रिरिएह लक्ख तुखार,
सबल पासरि अहँ जसुहय।
चउदसय मय मत्त,
दंति गज्जति महामय।
बीस लक्ख पायक्क,
सफर फारक्क धणुद्धर।
ल्हु सडु अरु बलुयान,
संख कुं जाणइ तांह पर
छत्तीस लक्ख नराहिवइ,
विहि विनिडिओ हो किम भयउ।

असिय लक्ख तारवार,
सजड पक्खर सायद्दल।
सहस हस्ति चवसट्ठि,
गरुअ गज्जंत महाबल।
पंचकोड पाइक्क,
सुफर पारक्क धनुद्धर।
जुध जुधान बर वीर,
तौंन बंधन सद्धन भर।
छत्तीस सहस नरनाइनें,
विहि त्रिमान ऐसौ कियौ।

जइ चंदन जाणउ जल्हू कइ,	जैचंद राइ कविचंद कहि,
गयउ कि मूड कि धरि गयउ ॥	उदधि वुड्डि कै धर जियौ ॥
२५७ ॥	२१६ ॥

(देखो महाकवि चंदबरदाई अने पृथ्वीराज रासा—ले० गोवर्धन शर्मा (गुजराती लिपि), पृष्ठ सं० १७, १८, १६)।

अतः उपरोक्त पद्यों[1] के पढ़ने से स्पष्ट हो पाया होगा कि जो शिथिलता "पुरातन प्रबन्ध संग्रह" से प्राप्त पद्यों में आगई है, वह रासो की प्रति के पद्यों में नहीं है। उसमें ओज गुण का अभाव नहीं दीखता। समय को देखते हुए चंद का ऐसे ओज पूर्ण शब्दों में रचना करना आवश्यक ही था, क्योंकि उसे युद्ध में वीरों को प्रोत्साहन देना था, यदि वह शिथिल और लोक भाषा से दूर की भाषा के द्वारा उत्साहित करने का प्रयास करता तो निष्फल ही होता।

वीर काव्य रचयिता अक्सर रासो के समान ही ओजपूर्ण शब्दों को काम में लेते रहे हैं, जिसके उदाहरण हमें चंद से पूर्व और उसके बाद के कवियों की रचनाओं में मिलते हैं। शुद्ध ब्रजभाषा का प्रचार हो जाने पर भी कवियों ने जहाँ वीर रस को झलकाया है, वहाँ उन्हें रासो वाली भाषा को ग्रहण करना ही पड़ा। जिसके संक्षिप्त में निम्न उदाहरण हैं—

'आमभट्ट[2] " समय १०६३-११४२-७३"
डरि गइंद डगमगिअ. चंदकर मिलिय दिवायर।
डुल्लिय महि हल्लियहि मेरु, जज झपई सायर।
सुहड़ कोडि थरहरिय, कूर कूरंभ कड़क्किय।

---

१. पुरातन– प्रबन्ध संग्रह से प्राप्त पद्यों के सामने हमारे पास की हस्तलिखित प्रतियों से वेही, छंद उद्धृत किए हैं और जहाँ तक हो सका, उनके पुराने पाठ जो मिल गए, उन्हीं से उनका उपरोक्त रूप किया गया है। ऐसा करने से इन पद्यों में पुराना रूप और ओज बना रहता है और छंद की गति में भी गड़बड़ नहीं होती।

२ इस कवि की रचना में–"अ" " दिवायर" सुहड कोड़ि लिखा है। इनके स्थान स्थान पर "रासो" मे "य" दिवाकर या दिवायर "सुभर" (सुभट) "कोटि" लिखा मिलता है। (हिंदी काव्य धारा, पृष्ठ ३६४ ले० राहुलजी)।

अतल वितल धसमसिअ' पुहवि सहु प्रलथ पलट्टिय ।
गज्जंति गयण कवि आम भणि, सुरमणि फणि इक्क हुअ ।
मगहि मगहि ममगहि मर्गहि, मुंच मुंछ जयसिंह सुअ ॥

"विद्याधर[1] " समय ११८०"

भअ भंजिअ बंगा भग्गु कलिंगा,
तेलंगा रण मुक्कि चले ।
मरहट्टा ढिट्टा लग्गिअ कट्टा,
सोरट्ठा भअ पाअ पले ।
चंपारण कंपा पब्बअ झंपा,
ओत्था ओत्थो जीव हरे ।
कासी सर राआ किअउ पआणा,
विज्जाहर भण मंति वरे ॥

'चंद के पिता" "बैण[2] " समय १२ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध—

अटल ठाट महिपाट, अटल तारागढ़ थानं ।
अटल नग्र अजमेर, अटल हिंदुवअस्थानं ।
अटल तेज परताप, अटल लंका गढ़ डंडिव ।
अटल आप चहुवान, अटल भुम्मी जसमंडिव ।
संभरी भूप सोमेस नृप, अटल छत्र ओपे सु सर ।
कविराज बैन आसीसदे, अटल जुगां रज्जेस कर ।

जज्जल (चंद पौत्र) समय[3] ११६० ई०"

---

१ इसकी और रासो की रचना में "अ" और "य" का अन्तर है, वही पृष्ठ ३६६ ।

२ वेण और चंद की कविता का रूप मिलता हुआ है, केवल योग्यता का अन्तर है । (प्रकाशित रासो पृष्ठ १२४ समय १ टिप्पणी) ।

३ इसकी रचना में "अ" और "य" का फर्क है । (रोयल एशियाइटिक सोसाइटी की रिपोर्त भाग १, पृष्ठ ४४३ । कोषोत्सव पृष्ठ १८४, ले० जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०) ।

पअभरु दरमरु धरणि, तरणि रह धुल्लिय झंपिअ ।
कमठ पिट्ठ टर परिअ, मेरु मंदर सिर कंपिअ ।
कोहे चलिअ हम्मीर, वीर गअजूह सँजुत्ते ।
किअउ कट्ठ हाकंद, मुच्छि मेच्छह के पुत्ते ॥ ९२ ॥

['हरिब्रह्म'[1] समय १३ वीं सदी का उत्तरार्ध]

जहा सरअ- ससि बिंब, जहा हर-हार-हंसठिअ,
जहा फुल्ल सिअ कमल, जहासिरि-खंड खंड किअ ।
जहा गंग कल्लोल, जहा रोसाणिअ रुप्पइ,
जहा दुद्धवर सुद्ध, फेण फँफाइ तलप्पइ ।
पिअ पाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुअ हसइ जह तरुणि जण,
वर मंति चंडेसर कित्तिअ, तत्थ पेक्ख हरि बंभ भण ।

["सोमप्रभ सूरि"[2] समय १२४१ वि० पूर्व]

गयण मग्ग संलग्ग, लोल कल्लोल परंपरु ।
निक्करु णुक्कउ नक्क, चक्क चंकमण दुहंकरु ॥
उच्छलंत-गुरु पुच्छ, मच्छ रिछोलि निरंतरु ।
विलसमाण जाला जडाल, वडवानल दुत्तरु ॥

आवत सयायलु जलहि लहु, गोपउ जिम्बते नित्थरहि ।
नीसेस वसन गण निट्ठवणु, पासनाहु जे संभरहि ॥ २

---

१ इसकी रचना की गति और "य" अधिक शब्द तो रासो से ही मिलते हैं केवल यथा "सरद" और के स्थान पर क्रमशः "जहा "सरअ और "अ" लिखा है । पांचवीं पंक्ति में "ण" को 'न' के स्थान पर काम में लिया है, जो कि जैन और बौद्धों (महात्माओं) की शैली है; किंतु ऐसा करने से इस पंक्ति की गति शिथिल सी हो गई है और "जहा" का आशय "यथा" इसलिये नहीं बैठता कि अंतिम पंक्ति में "तत्थ" शब्द से उसका सम्बन्ध नहीं जुड़ता । इसलिये "जहा" का अर्थ "अत्र" होना चाहिये [हिन्दी काव्य धारा पृ० ४६४-६६ ले० राहुलजी] ।

२ इसमें एक दो जगह 'न' के स्थान पर "ण" तथा जोवत के स्थान पर "जीवंते" लिखा है । किंतु जीवंते लिखने से छंद में दो मात्राएं बढ़ती है । शेष रूप रासो की रचना से मिलता है (खडी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ४२-४३, लेखक-श्री ब्रजरत्नदास ।)

[धरणीवराह की छप्पय[1] का रचना समय ११ वीं सदी का पूर्वार्ध-]

मंडोवर सामंत, हुवो अजमेर सिद्ध सुव ।
गढ़ पुगल गजमल्ल, हुवो लोद्रवे भाँक भुव ॥
अल्ह पल्ह अरवद, भोज राजा जालंधर ।
जोगराज धर घाट, हुवो हाँसू पारक्कर ॥
नव कोटि किराड़ू संजुगत, थिर पंवार हर थप्पिया ।
"धरणीवराह" धर भाइयां, काट बांट जू जू किया ॥

"विद्यापति (कीर्तिलता)[3] सं० १४३७

ठाकुर ठक भए गेल चोरे चप्परिधर लिज्झिय ।
दास गोसाजिन गहिडा, धम्म गए धंध निमज्जिअ ॥
खले सज्जन परि भविअा, कोइ नहिं होहि विचारक ।
जाति अजाति विवाह, अधम उत्तम काँ पारक ॥
अक्खर रस बुज्झन हार नहीं, कइ कुल भमि भिक्खारि भउ ।
तिरहुति तिरोहित सब्ब गुण, रा गणेस जबे सग्ग गउँ ॥

"नल्हसिंह[3] समय १३५७"

ईराण तोरि तूराण असि, खोसिर बंग खंधारि सब ।
बलबंड पिंड हिंदवान हद, चढ़िगवीर विजपाल जब ॥

[कविवर गंग २ दिल्ली वाले समय १५६५ ।]

दलहि चलत हल हलत भूमि थल थल जिमि चल दल ।
पल पल खल खल भलत विकल बाला कर कल कल ॥

---

१ यह रचना साधारण कवि की है । इसलिए रासो की रचना के ओजकी समानता नहीं पा सकती; किंतु भाषा का रूप वैसा ही है । (खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास पृ० ४४ ले० ब्रजरत्नदास) ।

२ यह रचना रासो के निकट ही है और इसमें "चोर" 'खले" ',गग्गउ" में मात्राएँ बढ़ती है। "चोर" "खल" और "गउ" पाठ होने चाहियें । इसी तरह इसमें "जवेस" में मात्रा की कमी है "जब्बेस" चाहिये (ढोला मारूरा दूहा संपादक-रामसिंह, एम० ए०, सूर्य करण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, भूमिका पृ० १५४)

३ रासो के समान ही ओज है, (मिश्र बंधु-विनोद भाग १ पृ० १६७ । २-३-४ इनकी रचना में भी रासो की रचना का ओज है और कई शब्द

जब पट्टह ध्वनि युद्ध, धुद्ध धुद्ध धुद्धव २ हुव ।
अरर २ फटि दरकि. गिरत धस ममति धुकत ध्रुव ॥
भनि गंग प्रबल महि चलत दल. जहाँगीर तुव भार तल ।
फूं-फूं-फणिंद-फण फुंकरत, सहस गाल उगिलत गरल ॥

"महाकवि भूषण ३ समय १७००"

जै जयंति जै आदि सकंति जै कालि कपर्दिनि ।
जै मधु-कैटभ छलनि देवि जै महिष विमर्दिनि ॥
जै चमंड जै चंड मुंड भण्डासुर खंडिनि ।
जै सु रक्त जै रक्तबीज विड्डाल विहंडिनि ॥
जै जै निशुंभ-शुंभ-हलनि. भनि भूषण जै २ भननि ।
सरजा समत्थ शिवराज कहँ, देहि बिजै जै जग जननि ॥

"कुलपति मिश्र आगरावासी सं० १७२७"

दुज्जन मद महन समत्थ, जिमि पत्थ दुहुँनि कर ।
चढ़त समर डरि अमर, कंप थरहर लग्गय धर ॥
अमित दान दे जस वितान, मंडिय महि मंडल ।
चंडभान सम नहिं प्रभान, खंडिय आखंडल ॥
राजाधिराज जयसिंह सुव, जित्ति कियऊ सब जगत बस ।
अभिराम काम सम लसत महि. रामसिंह कूरम कलस ॥

इस प्रकार रासो की रचना के रूप चन्द से पूर्व और बाद के कवियों की रचनाओं में मिलते हैं,जो वीर रस के लिये उपयुक्त हैं । रासो को रचना की समानता पर जो उपरोक्त पद्य दिये गये हैं, उनमें टिप्पणियों में बताये हुए कुछ जो अन्तर हैं वह जैन लेखक के संग्रह का कारण है या रासो में पीछे से 'अ' का 'य' ण, का 'न' आदि लेखकों द्वारा किया गया हो, ऐसा होना साधारण सी बात है ।

यों तो अधिक विचार कर देखा जाय तो कुछ शब्दों को टाल देने पर बौद्ध और जैन भाषा की रचना में भी परिमार्जित भाषा के टुकड़े पड़े हुए हैं, जिनमें लय मात्र कहीं कहीं उनके पढ़ने के तरीके की दिखाई पड़ती । जैसे—

शालि भद्र सूरि (११८४ ई०)

'मंडिय मणिमइ दंड, मेघाडंबर सिरधरिय (७०) 'जिम उदयाचल सूर,

रासो के समान प्राप्त हैं । (ले० क्रमशः शिवसिंह सरोज पृ० ४६ हिंदी नवरत्न पृ० ३४१, मिश्र बंधु विनोद भा० २ पृ० ४७५ ।

तिम सिरि (सिर) सोहइ मणिमुकट ।

(छन्द नियम से "मुकुट" चाहिये) (७१)

(उरवरि (वर) मोतिय हार, वीरवलय करि (कर) झलहलइ । नवल अंग सिणगार खलकए (य) टोडर वाम ए (७३) ।

कंपिय पयभरि शेष रहु ॥ ३५ ॥
राउत राउत वट रहिय ॥ ३८ ॥
अंगि रंगि असवार विचारइँ॥ १२३ ॥
रवि सारथि गाढा ॥ १२४ ॥
लोह लहर वर वीर ॥ ॥ १२४ ॥
रणतूर तार त्रंबक त्रहत्रहिया॥१२५ ॥
रणभेरी भुंकारि भारि ॥ १२५ ॥
झलकइँ सावल सबल सेल ॥ १२५ ॥
कंचण गिरि कंधार, भारि कम कमिय कसक्कइ ॥ १२८ ॥
आभरण किरण दिप्पंत देह॥ ३२ ॥

जिन पद्म सूरि, समय १२०० ई०

चंपय केतकि जाइ कुसुम ॥ १० ॥
सोहइ जासु कपाल ॥ १४ ॥
कोमलु विमलु सुकंठ ॥ १४ ॥
कामदेव अंकुसु जिय राजइ॥ १५ ॥
नव जोवन विलसंत देह नव नेह गहिल्ली ॥ १६ ॥
नेमि दयालु सखि निर दोसु ॥ १० ॥
कोयल टहका करई ॥ २६ ॥
जिठु विरहु जिमि त[illegible]इ सूरु ॥ ३२ ॥

लखण समय १२५७ ई०

भो लंब कंचु कुल कमल सूर ॥
करवाल पट्टि विप्फुरिय जीहु ॥
दंड चंड सुंडाल सीहु ॥
परि वार भार धुर धरण सत्त ॥
गंगा तरंग कल्लोल माल ॥
दया वल्लरी मेह मुक्कंबु धारा ॥
"अज्ञात कवि या कवि वृन्द" (१६ वीं सदी का पूर्वार्द्ध)
ठामां ठामा हत्थि जूहा देखीआ ॥ १३ ॥
वीरा हत्था अग्गे खग्गा राजंता ॥ १३ ॥

हत्थी जूहा सज्जा हूआ पाए भूमी कंपंता ॥
सो रक्खउ संकरू असुर भअंकरु ॥ १०१ ॥
जो वांदिय सिर गंग ॥ १०४ ॥
संकाहरु संकर चरणु ॥ १०४ ॥
भव भअ हरण सूल धरं ॥ १८५ ॥
चन्द कला जसु सीस हि ॥ १०५ ॥
सा तुह संकर दिज्जउ मोक्खा ॥ १०५ ॥
वालो कुमारो स छमुंडधारो ॥ १२० ॥
सौ३ जुहुट्टिर संकट पावा ॥ १०१ ॥
अंब देव सूरि समय-१३१४"
जिम अंधारइ फटिक मणि ॥
किउ कृत जुग अवतारु
कलिजुगि जी वहु बाहु बले (ल) ॥
विश्व कर्म विज्ञानि करिउ धोइउ निय (ज) हत्थो ॥
पातसाहि सुरतांण भीवु तहि राजु करेई ॥
कला करी रजविउ खानु दहु देइ पसाय ॥
मौरि मलिकि मानियइ समरू समरथु ॥
वाजिय संख असंख नादि ।
घोड़े चड़इ सल्लार सार राउत ।
जोड करी असवार माँहि ।
'अज्ञात कवि' समय-१३०० ई०
किया इन लब्भइ पारु ।
सीस धरि जज्इ छतु ॥
एक्कु देव आधारु ॥
जस सहित जेनर हुआ, रवि पहिला उगंति ॥
जोगा जाते दीहडे, गिरि पत्थरा ढलंति ॥
कारति हंदा काटड़ा, पाड़ाया ही न पड़ंति ॥
"राज शेखर सूरि समय १३१४ ई०"
अह सामल कोमल केशु पास' ॥
अद्ध चन्द समु भालु ।
गरुड़ चंचु दाड़िम फल दंता ।
करि कर ऊरि हरिण जंघ पल्लव कर चरणा ॥
संजमु मोक्ख दुआरु ॥

'महेश्वर सूरि (संजम मंजरी) ११ वीं सदी का अंत.

संजम भार धुरं धरह ॥

'धनपाल' (सत्यपुर मंडन महावीरोत्सव) अनुमानतः ११ वां सदी

रवि सामि पसरंतु माहु ॥

जाउ जहिं गयउ न आवइ ।

प्रबन्ध चिन्तामणि ।

जा मति पच्छइ संपजइ. सामति पहिली होइ ।

सायर खाइ लंकगढ़, गढ़वइ दस सिरि राउ ।

दह मुह इक्कु सरीरु ।

विद्यापति कीर्ति लता सं० १४५७

जो अपमाने दुक्खन मानइ,दान खग्ग को मंमन जानइ।

पुव्वे सेना सज्जिअइ, पच्छिम हु अउँ पयान ।

अतः स्पष्ट है कि लोक सुलभ भाषा की रचना उस समय भी थी, स्वयं जैन और बौद्ध महात्माओं ने उस समय के बन्दीजनों की भाषा के माधुर्य धर्म पर प्रकाश डालते हुए उन्हें भ्रमर और नूपुरों (नेवरों) की उपमा दी है [१] । अतः कवियों की भाषा को व महात्मा अपनी रचना से मधुर और रस-मत्त मानते थे। उसी रूप में हमें भी मानना पड़ता है ।

रासो में मुसलमानी शब्द आवश्यकतानुसार ग्रहण किये हैं। वह एक सम्राट का राज-कवि और मंत्री था और लाहौर उसकी जन्म भूमि कही जाती है। वहां मुसलमानों का उस समय प्रचार हो चुका था, और युद्धादि के कारण मुसलमानों से संधि-विग्रहादि विषयक बातें करना पड़ती थी ऐसी हालत में राज-मन्त्री और राज-कवि चन्द का मुस्लिम भाषा की जानकारी रखना असंगत नहीं प्रतीत होता। वह स्वयं क़ुरान की भाषा को भी अपनी रचना में स्थान देने का उल्लेख कर गया है [२] । फिर भी उसने मुस्लिम् भाषा के विषयोचित शब्द ही ग्रहण किये; जो भी अधिकतर जहां मुसलमानों का वर्णन आया है। वहीं पर किये हैं। जैसे- 'रोजा' 'रमजान 'नवाज' 'दीन' 'बादशाह' 'खांन' आदि जो कि करना आवश्यक है। लेकिन फिर भी दशमांश शब्द मुसलमानी भाषा के रासो में होना बतलाना अतिशयोक्ति पूर्ण ही है। क्योंकि एक षट्पदी में चालीस से पचास तक शब्द रासो

---

१ 'अलिमिहुणें हिं वंदिणें हिं पढन्तें हि' । (काव्य धारा पृष्ठ ३०)

'दीसंत चलण णेउर रसंत ।

'णणं महुर-राव वंदिण पठंत' ॥ (काव्य धारा पृष्ठ ५०)

२ देखो शंका नं० २ का उत्तर और टिप्पणी ।

के गिने गये उनमें यदि एक या दो शब्द मुसलमानी हों तो प्रतिशत दो या चार होंगे। लेकिन यह बात भी सर्वत्र पद्यों में नहीं है। रासो का सम्पादन होकर इसका शब्द कोष तैयार होगा तब ही विद्वानों को मालूम होगा कि इसमें मुसलमानी भाषा के शब्द कितने हैं, और वे भी आवश्यक हैं, या नहीं।

मुसलमानों का संपर्क भारत से छट्ठी शताब्दी से ही इतिहासज्ञ मानते हैं, और ११ वीं शताब्दी में तो मुसलमानों और हिन्दुओं का इतना संपर्क हो पाया कि अब्दुर्रहमान नामक एक मुसलमान जैन भाषा में 'सन्नेह रासय, (सदेश रासक) नामक ग्रन्थ तक लिखने में सफल हो पाया[1]। जब कि मुसलमान हमारी भाषाओं के इतने जानकार हो गये थे तो क्या भारतीय इतने अबोध थे कि वे उनकी भाषा से अनभिज्ञ रहे होंगे। यह कदापि संभव नहीं हो सकता। कोई अपनी रचना में किसी भाषा को स्थान दे या न दे यह कवि की इच्छा पर निर्भर है। जिससे यह मान लेना कि मुसलमानों का संपर्क होते हुए भी उनकी भाषा से जानकारी हिन्दुओं को न हो पाई थी यह बिलकुल असगत बात है। तेरहवीं शताब्दी के मध्य में ज्ञानेश्वर हुए उन्होंने लोक भाषा में रचना की, उसमें 'खाक' 'हुकुम' (हुक्म) और 'दस्त' शब्द फारसी के उपलब्ध हैं। जज्जल या किसी अन्य की रचना १२०० के आस पास की जो प्राकृत पिंगल संग्रह में है, उसमें 'तुलक' (तुर्क के) लिए लिखा है। अंबदेव सूरि (सं० १३१४) की रचना में भी पातसाहि (बादशाह) 'सुरतांण' (सुलतान) 'खानु' (खान) 'मीर' (मीर 'मलिकि' (मलिक) 'सल्लार' (सालार) उपलब्ध हैं। शालिभद्र सूरि (११८४ ई०) की रचना में भी सवार का विकृत रूप 'असवार' लिखा है। इस प्रकार भेद भाव रखते हुए भी महात्माओं की रचना में मुसलिम प्रचार के कारण ही शब्द मिलते हैं। किन्तु हम ऊपर कह आये हैं कि कवि, जातीय विजातीय का भेदभाव त्याग, ओज और रस पोषक शब्द ग्रहण करने के आदी होते हैं जिनमें पहला स्थान चंद का है, वह विविध भाषाओं का ज्ञाता था इसलिये उसके लिए यह कोई कठिन बात नहीं थी।

शंका कर्ताओं का लिखना कि वीर रस की भाषा बहुधा डिंगल ही होती है यह समझ में नहीं आता कि उनका ऐसा लिखना किस तात्पर्य को लिये हुए है। साहित्य रूप में डिंगल भाषा पिंगल भाषा के बाद आती है, इस बात को

---

१. देखो काव्य धारा पृष्ठ २६२ (लेखक श्री राहुलसांकृत्यायन)

स्वयं डिंगल नियमों के रूप दाता कवि गण अपनी लेखनी से लिख गये हैं[१]। अतः डिंगल रचना साहित्य रूप में न आई, उससे पूर्व वीर रस किस भाषा में लिखा जाता था, यह उन्होंने नहीं बतलाया। खैर, जो भी कुछ हो, हम उन वाक्यों के रहस्य पर यही समझ पाए हैं कि वे रासो को भी डिंगल काव्य मानते हैं, यह उनका भ्रममात्र है। रासोकार का यद्यपि राजस्थान से सम्बन्ध अवश्य था, इस लिये कहीं कहीं राजस्थानी शब्द भी उसने काम में लिये। किन्तु उनका रूप भी अपनी ओजपूर्ण भाषा में ऐसा मिला दिया है कि वे उसी के अंदर मिल गये। बहुत सोचने पर ही विद्वान् उनका पता लगा सकते हैं। किसी भाषा पर प्रकाश डालने से पूर्व लेखक को उस भाषा की जानकारी ही नहीं, वरन् उस भाषा को काम में लाने जितनी शक्ति उत्पन्न कर लेनी चाहिये, तभी वह उस पर कुछ लिखने में समर्थ हो सकता है। रासो के कुछ चरण नीचे देकर उसी के सामने डिंगल का रूप बताते हैं, जिससे पाठक समझ पाएंगे कि रासो डिंगल में है अथवा अन्य रूप में:—

रासो के पद्य	डिंगल अनुवाद
मुखनि बट्टि हुंकार,	हूँकल बाढी मुखां,
तबल टंकार लाग लगि।	तबल ठैंकारण लागा।
बजि भैरी भंकार,	बाजो भूं भूं भेरि,
धार झंकार खाग खगि।	झणंकी खागां खागां।
छुट्टिय सर संकार,	सोकरड़ों सांठिया,
लुट्टि भंडार धीर मुति।	मोख धन लूट्यो धीरां
झुकिय झुंड झडार,	झंडाला घण झुक्या,
धुकिय सुंडार मार धुति॥	धुक्या सुंडाल अधीरा॥

इस प्रकार दोनों (रासो की भाषा और डिंगल) अपने २ रूप में भिन्न भिन्न अस्तित्व रखती हैं। स्थानाभाव से अधिक रूप नहीं बतलाए गए हैं; किन्तु विद्वान् इस दृष्टि से स्वयं निष्कर्ष पर पहुँच जाएँगे। अतः रासो की भाषा षट् भाषाओं के सम्मिश्रणयुक्त शौरसैनी-प्राकृत से उत्पन्न मुख्यतः ब्रज-पिंगल का प्रारंभिक रूप लिये हुए है। षट् भाषाओं के ज्ञाता महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण अपने ग्रन्थ 'वंश भास्कर' में जहाँ रासो से मिलते हुए रूप की रचना जिन पद्यों में की है, उन पद्यों की भाषा के लिये उनपर 'ब्रज देशाय प्राकृत' होने का शीर्षक

---

१. इसकी जानकारी के लिये कविवर योगीदास (देवलिया प्रतापगढ़) रचित हरि पिंगल, प्रबंध, (१७२०) की हस्तलिखित प्रति प्रतापगढ़ के राज्य पुस्तकालय और मंछ कवि रचित 'रघुनाथ रूपक' को देखना चाहिये।

दिया है। अतः वह मान्य है। उसी रूप में रासोकार से पूर्व 'आम भट्ट' आदि और पीछे से 'जज्जल' आदि की रचना रासो की रचना से मेल खाती है, जो 'प्राकृत, पैंगल' और फुटकर संग्रह आदि में विद्वानों ने खोज निकाली है। यों तो रासो की प्रतियों को देखने से पाठों में भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं, जो नकल कर्ता के निज देशीय व निज धर्मीय भाषा के रूप उसी द्वारा बने मालूम होते हैं। हाल ही में हमें श्री पन्यासजी भींडर (मेवाड़) द्वारा १८ अठारा पन्ने रासो के मिले हैं, उनकी लिपि पड़ी मात्रा की है। पन्यासजी व लिपि विषयक जानकारी रखने वाले एक दो विद्वानों को वे पन्ने बतलाये गये तो उन्होंने चउदवीं शताब्दी में लिखे जाने का निश्चय किया है।

परयूँ गूंज गहिलोत, नाम गोयंदराज वर।
दाहिमूं नरसिंघ परयूँ नागवर जाशधर ॥
पर्यो चंद पुंडोर, वदन पिरख्यौ मारंतौ।
सोलकी सारंग, परयूँ आसवर भारतु (भारंता) ॥
(कूरमीराय) कूरमाराय पाल्हंनदे, बंधन तीन निहट्टिया।
कनवज्ज राडि पहिली दिवस, सुंभी सत्त निघट्टिया ॥६२॥
अरुण वरण उग्यौ अरक, उदिग उदंग भुज।
सह उप्परि सांखुला, खुल्यु खंडिन उडंग दुज ॥
हय गय नर आररिउ, राह बबरी बर तोरयूँ।
सार सार संभार, बीर बवरि भंजोरयूं ॥
पह-पंग शमुद उरद्ध अध सुर मुनि सिर सारह हनिअ।
दनु-देव नाग जिज्ज करहिं, रवनि रुद्र रुद्रह भनिअ ॥११२॥

उपरोक्त पद्यों में, परयुँ, 'गूंज' 'दाहिमूं' (कूरमाराय) 'राडि' 'पहिली' 'सुंमि' 'खुल्यु' खंडिन 'उडंग' 'तोरयुँ' 'भंभोरयुँ' 'समुद' 'हनिअ' 'जिजि' 'भनिअ' शब्दों का प्रयोग हुआ है, उनके स्थान पर वर्तमान (उपलब्ध) रासो की प्रतियों, में क्रमशः 'परचौ' 'गंजि' दाहिमा' 'कूरंभराय' 'रारि' 'पहिले' 'सौमे' 'खुल्लि' खंडो' उदंग' तारयौ' 'भंभार्यौ' 'समुद' 'हतिय' 'जै जै' 'भनिअ' हैं। इन दो रूपों के शब्दों के मिलाने से पन्यासजी से प्राप्त पन्नों के पद्यों के रूप में प्राचीनता और वर्तमान रासो के पद्यों के रूप में कुछ नवीनता दीख पड़ती है। संभव है, यह लोकप्रिय ग्रन्थ होने से विद्वानों के हाथ चढ़ता रहा और ज्यों-ज्यों भाषा परिमार्जित रूप में आगे बढ़ती गई, त्यों-त्यों इसकी भी लिपि प्रतिलिपि में लेखकों द्वारा

नवीनता आनी गई हो, किन्तु शब्द में भिन्नता न आकर शब्द के रूप में भिन्नता आई हो. ऐसा होना स्वाभाविक है [1]; या इसमें भी लिपिकार की निज भाषा का प्रभाव हो। अतः इस समय रासो की भाषा पर हम हमारे विचार ही विद्वानों के समक्ष प्रकट कर रहे हैं। भाषा विषयक रासो का निर्णय इसका सम्पादन हो जाने पर ही विद्वानों की सेवा में उपस्थित कर सकेंगे।

शंका–११–चन्द्वंशज जदुनाथ ने "व्रतरत्नाकर" ग्रन्थ वि० सं०१८०० के आस-पास लिखा, जिसमें रासो की श्लोक संख्या १,०५,००० लिखी है। इसलिए क्षेपक अंश भी रासो में नहीं माना जा सकता।

उत्तर— ओझाजी रासो के निर्माण काल वाले लेख में 'व्रत रत्नाकर' में जदुनाथ द्वारा पृथ्वीराज रासो के श्लोक परिमाण का उल्लेख करते हुए जिस पद्य में (व्रतरत्नाकर में) परिमाण का उल्लेख हुआ, उसे दबा गए हैं; किन्तु उन्होंने जिस निबन्ध में 'व्रतरत्नाकर' और उसके रचयिता चन्द वंशज कवि जदुनाथ पर प्रकाश डाला है वह पद्य उसमें इस प्रकार है—

"एक लक्ष रासो कियौ, पंच सहस परिमाण ॥
पृथ्वीराज नृप को सुयस, जानत सकल जहान ॥"

उपरोक्त पद्य के ऊपर के अर्द्ध चरण का ओझाजी ने गलत अर्थ लगा कर ही रासो की श्लोक संख्या १०५००० लिख गये हैं. लेकिन बीच में "कियौ" शब्द एक लक्ष और पांच सहस सख्या को भिन्न करता है; उस पर विचार किया जाय तो 'व्रतरत्नाकर' जैसे ग्रन्थ का रचयिता जदुनाथ कवि ने "कियौ" शब्द बीच में लाकर परिमाण संख्या में संदिग्धता कैसे आने दी होगी ? वह चाहता तो इस चरण के स्थान पर 'एकलक्ष अरु पँच सहस रासो कियौ बखान' या ऐसा ही अन्य कुछ भी लिख सकता था, जो उसके लिए कोई कठिन बात नहीं थी। अतः

---

१. रासो की हस्तलिखित प्रतियों को देखा गई, तो प्रत्येक प्रति में 'औ' और 'ऐ' की मात्राएँ अधिक काम में ली हैं, जिससे उनके उच्चारण का रूप भिन्न हो जाता है:—

'करयौ' (करयऊ) 'करै' करई (करई) इत्यादि। अतः प्राचीन रूप उपरोक्त ब्रिकेट वाले रासो की मूल प्रति में रहे हों और उसका शुद्ध रूप लिपिकारों द्वारा हुआ हो, यह भी संभव है।

लेखक के 'किया'' शब्द को बीच में लाने का कारण विचारने पर उपरोक्त सारे पद्य के सही दो अर्थ हो सकते हैं—

१—जो रासो ग्रन्थ पांच सहस परिमाण का था, किंतु उसमें सम्राट् पृथ्वी-राज चहुआन का संसार प्रसिद्ध यश होने से अन्य कवियों ने उसके (पृथ्वीराज के) पराक्रम से प्रभावित होकर उसी रासो ग्रन्थ को बढ़ा कर एक लक्ष परिमाण का रूप देदिया।

२—प्राचीन भाषा ग्रन्थों में और बोल-चाल में देखा गया है कि "लक्ष्य" के स्थान पर 'लक्ष' लिखते और बोलते हैं। अतः 'लक्ष' को 'लक्ष्य' का अपभ्रंश रूप मान कर अर्थ किया जाय तो अर्थ होता है—

महाकवि चंदबरदाई का एक मात्र ध्येय जगत् प्रसिद्ध पृथ्वीराज का यश वर्णन करना ही रहा और उसने पृथ्वीराज के यश-वर्णन में पंच सहस परिणाम का रासो ग्रन्थ लिखा (अर्थात् उसने अन्य कोई रचना नहीं की।

रासो की जितनी प्रतियाँ हमारे पास हैं, उनमें रासो के परिमाण विषयक पद्य में "सत्त सहस" लिखा है, जिससे सात सहस्र परिमाण ठहरता है; क्योंकि रासो में बहुधा 'सत्त' शब्द सात संख्या के लिए लिखा है, जैसे "सत्तसिंधु" "सत्तऋषि" इत्यादि। किन्तु देवलिया प्रति में सत्तसहस के स्थान पर पच सहस लिखा हुआ है और हमारे द्वारा रासो का सम्पादन हो रहा है, जिसमें भी रासो के जो मूल पद्य जांच द्वारा सम्पादन से स्थान पा सकेंगे, उनकी भी संख्या लगभग ५ सहस्र हो आती है। इसलिए रासो के मूल पद्यों की संख्या पांच सहस्र होना मानना ही सप्रमाण और युक्ति संगत है

स्वयं व्रतरत्नाकर वाला पाच सहस परिमाण का रासो मानता है और उस (रासो की परिमाण संख्या) में अन्य कवियों द्वारा वृद्धि होना लिख रहा है, एवं इस समय का विद्वत् समाज भी बहुमत से रासो में क्षेपक अंश मानता है। ऐसी दशा में इसमें मूल पद्य ५००० के, अलावा प्रक्षिप्त होना स्वतः सिद्ध है।

शंका १२—पृथ्वीराज के बन्दीराज (कवि) का नाम चन्द न होकर 'पृथ्वीराज विजय' के लेखानुसार 'पृथ्वीभट्ट' था।

उत्तर—इसका समाधान शंका नं० ६ का उत्तर और टिप्पणियों के पढ़ने से हो सकेगा।

———

"रासो सम्पादन के बाद नये विचार"A

रासो के मेरे सम्पादन कार्य के बाद मुझे कुछ तथ्यों के बारे में और भी विचार प्रकट करने थे; क्योंकि मैं यह अनुभव करता था कि पूर्व में जहाँ-जहाँ-रासो के ऊपर लेख लिखे गये हैं-पूर्ण सामग्री के अभाव में वे स्पष्टतया सम्पूर्ण भावों और दृष्टिकोणों को प्रकट नहीं कर सके हैं, जैसे—

चाहुवान विग्रह चतुर्थ के १२२० के लेख में उसके द्वारा विजित देशों को करद (कर देने वाले) करना लिखा है, अतः उसी (करद) रूप में दिल्ली पर भी उसने विजय की होगी; वे उससे उसका आशय यही लगा पाये कि विग्रह चतुर्थ का दिल्ली पर पूर्णरूप से आधिपत्य होगया था। इसी प्रकार एकलिंगमाहात्म्य में "एकाराउल नाम्नि,राणानाम्निपरामहती" लिखा; जिससे रावल शाखा से राणा शाखा बड़ी (प्रमुख) थी, लेकिन वे रावल शाखा को बड़ी मान बैठे थे। अतः उनका ध्यान "महती" शब्द की ओर गया हो नहीं, इसी ग्रन्थ में आगे—

"रावल शाखा के केवल जितसिंह (जैत्रसिंह), तेजसिंह, समरसिंह (१४ वीं शताब्दी के लेखों वाले) के नाम ही किसी रूप में चित्तौड़ पर आधिपत्य रहने से उपरोक्त तीनों का ही उल्लेख किया है; किन्तु उनकी धारणा, रावल शाखा बड़ी थी. यह होने से खेमसिंह, मथनसिंह, पद्मसिंह, आदि को भी मेवाड़ के स्वामी मान लिए, जिनके शिलालेखों में उन्हें आहड़, नागदा के अतिरिक्त कहीं पर मेवाड़ेश्वर या चित्तोड़ के स्वामी नहीं लिखे गये हैं इसी ग्रन्थ में आगे रावल कर्णसिंह (रणसिंह) के मरने पर राहप ने ही राणत्व प्राप्त किया (राजा बना), किन्तु वे अपने विचारों से बाधित हो इसको भी स्पष्ट न कर सके,राज प्रशस्ति में राणागढ़ लक्ष्मणसिंह के वर्णन के साथ २ रावलशाखा का रत्नसिंह, जो पद्मिनी का पति था, को उसका छोटा भाई (छुट भाइयों में) होना लिखा है, किन्तु उसे भी वे संभव

A. सं. टि.—रासो के समर्थन सम्बन्ध में कवि राव मोहनसिंह जी ने अपने जो विचार उपर्युक्त 'पृथ्वीराज रासो की शंकाओं का समाधान' तथा इस लेख में अभिव्यक्त किये हैं, जो इनका अपना स्वतन्त्र मत है। इन पर 'पृथ्वीराज रासो की विवेचना' ग्रन्थ-द्वितीय भाग में विस्तृत रूप से सम्पादकीय मत प्रकट किया जायगा कि कविराबजी के विचार कहां तक इतिहास के अनुकूल हैं।

है: (आक्षेप कर्ता) अपने विचारों के प्रतिकूल होने से प्रकाश में न लाये। यद्यपि रामनारायणजी दुग्गड़ को एक प्राचीन ख्याति से पता चल गया था कि चित्तोड़पति रावल रणसिंह पृथ्वीराज चाहुवान का भानजा था (जो पृथाकुमारी का पुत्र माना जा सकता है);किन्तु उनके विचार भी रासो के विरुद्ध बन बैठे थे। अतः वे आगे जाकर रासोवाले समर-विक्रम को नहीं, रावल शाखा के सामन्तसिंह को ही पृथाकुमारी का पति होने का अनुमान लगा बैठे, जो सामन्तसिंह केवल आहड़-नागदे का अयोग्य शासक था, जिससे उसके साथी भी अप्रसन्न थे। नाडोल का स्वामी कीतू चाहुवान, जिसके केवल १२ ग्राम अधिकार में थे, उसने उस पर विजय प्राप्त कर आहड़ नागदा से निकाल दिया, यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता। १२ ग्रामों के स्वामी कीतू ने मेवाड़ या मेवाड़ेश्वर पर विजय प्राप्त की हो। आगे जाकर उसी सामन्तसिंह ने बागड़ प्रदेश पर अधिकार किया: किन्तु वहां भी अधिक टिक नहीं सका, इससे आगे का हाल इतिहास उसके लिये कुछ भी नहीं बताता, लेकिन रासो से पता चलता है कि सम्भव है वह चौहान पृथ्वीराज की सेवा में चला गया हो और अन्तिम युद्ध में वह (सामन्तसिंह) चित्तौड़ेश्वर रावल समर-विक्रम के पक्ष में सामन्त-रूप में होकर लड़ा था, तथा रयणसी युद्ध में भी वह शरीक था, उसे रयणसी युद्ध में "सामन्त सी गुहिलात, महण सुव मथन महण रम्भ" लिखा है। शिलालेखों में उसे "महणसिंह कनिष्ठ भ्रातृ क्षेमसिंहस्तत सुनू' लिखा है, जिससे वह महणसिंह के छोटे भाई क्षेमसिंह का पुत्र ठहरता है। लेकिन महणसिंह उसका बड़ा बाप था। इसलिये रासो में उसे महणसिंह का पुत्र लिखा जाना असंगत प्रतीत नहीं। रासोवाला वीर, धीर, साहसी, परमयोगी, शास्त्रों का ज्ञाता गुणज्ञ एवं नीतिज्ञ था—पृथ्वीराज भी जिसका सम्मान करता था, एवं उससे डरता था—की तुलना में अनुमान से सामन्तसिंह को रासोवाला समरसी मान लेना असंगत है।

रासो वाला समर-विक्रम दीर्घायुषी नरेश था। पृथाकुमारी उसकी पांचवीं रानी थी। उससे पहले वह चार रानियों से शादी कर चुका था। अतः उसके युद्धों में अन्य रावलों (राजवंशजों) के साथ २ कुमार रणसिंह के अतिरिक्त महणसिंह, सामन्तसिंह, जैत्रसिंह का भी उल्लेख हुआ है। अतः वे उसके सामन्त रूप में साथ थे, जिन्हें भी रावल लिखा गया है, जो राज घराने के योद्धा थे।

गुर्जरेश्वर कुमारपाल का लेख चित्तौड़ दुर्ग पर लगा हुआ होने से इतिहासज्ञों का अनुमान लगाना कि चित्तौड़ पर उस समय कुमारपाल का अधिकार था। यह बात उसी लेख से गलत ठहरती है। उसमें लिखा है कि कुमारपाल ने यह लेख चित्तौड़ेश्वर के मंदिरों के मध्य में इस उद्देश्य से लगाया कि वह सुरक्षित रह सके[१]। अतः चित्तौड़ेश्वर कोई अन्य ही था और वह (अन्य) रासो वाला समर-विक्रम ही हो सकता है।

यहां रासो वाले समर-विक्रम को अन्य पुस्तकों से भी स्पष्ट किये देते हैं:—

हमारे लेख से स्पष्ट हो गया है कि रासो वाला समर-विक्रम, शिला-लेखों में वर्णित विक्रम-केशरी (विक्रमसिंह) ही था, जिसका पुत्र युवराज रणसिंह था। युवराज रणसिंह का उल्लेख रासो के 'देवगिरि' समय एवं 'समरपंग' युद्ध में हुआ है। यही बात अन्य ग्रन्थों से भी जानी जाती है—

(१) एकलिंग माहात्म्य जो महाराणा कुम्भा के समय में लिखा गया था, में लिखा है कि रणसिंह (कर्णसिंह) से गुहिल वंश में दो शाखाएं समुद्भूत हुईं। एक तो रावल शाखा जो पहले ही से यह वंश रावल कहलाता था और बाद में भी रावल कहलाता रहा। किन्तु रणसिंह (कर्णसिंह) की सन्तान राणा कहलाई। गुहिल वंश में यह राणा शाखा बड़ी (प्रमुख) थी।

> अथ कर्ण भूमि भर्तुः शाखा द्वितो (त) यं विभाति भूलोके।
> एका रावलनाम्नीराणानाम्नी परामहती ॥ ४० ॥

टॉड के लेखानुसार रावल समर (समर-विक्रम) और उसके १२-१३ सहस्र साथी, सम्राट पृथ्वीराज चौहान की सहायता करते हुए शहाबुद्दीन गोरी के साथ हुए अंतिम युद्ध में मारे गए। कुछ समय बाद समर-विक्रम के पौत्र राहप के छहों वंशज (राणा) भी गया तीर्थ के महत्व की रक्षा के लिए युद्ध करते हुए काम

---

१. देखो—टॉड राजस्थान का हिन्दी अनुवाद भाग १, पृ० ६६७-६६८, अनुवादक पं० बलदेव-प्रसाद मिश्र मुरादाबाद, प्रकाशक खेमराज कृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

आए[1]। संभव है उस संहार से प्रमुख बड़ी) राणा शाखा की सैन्य शक्ति कम हो गई हो। यही कारण है कि कुछ अरसे तक छोटी शाखा (रावल) में से जितसिंह (जैत्रसिंह), तेजसिंह, समरसिंह (१४ वीं शताब्दी के लेखों वाले) का अधिकार कुछ समय तक किसी रूप में रहा हो। अतः एकलिंगमाहात्म्य के लेखक ने अन्य रावलों के नाम न लिखकर उपरोक्त तीनों रावलों का ही उल्लेख किया है—

> अद्यापि यां (यस्यां) जितसिंहस्तेजसिंहस्तथासमरसिंह ।
> श्रीचित्रकूटदुर्गे भुपन्जितशत्रवोभूपाः ॥ ५१ ॥

आगे माहप राहप को प्रमुख महीपाल मानता हुआ कर्णसिंह (रणसिंह) की मोक्षप्राप्ति पर राहप को राणत्व प्राप्त करना (राजा होना) लिखता है—

> अपरस्यांशाखायांमाहपराह(प)प्रमुख महिपालः ।
> यदुवंशंनरपतयोगजपतयःछत्रपतयोऽपि ॥ ७० ॥
> श्रीकर्णनृपतित्वंमुक्तादेवेड़ला ( ) मथप्राप्ते ।
> राणत्वंप्राप्तः सन् पृथ्वीपतिराहपोभूपः ॥ ७१ ॥

(२) हमारे द्वारा लिखे गए शोधपत्रिका-लेख की शंका ६ में हमने राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ३ श्लोक २४–२५–२६ टिप्पणी में देकर स्पष्टकर दिया है है कि रासोवाले रावलसमर (समर विक्रम) पृथाकुमारी के पति थे। पृथ्वीराज के पक्ष में रहकर शहाबुद्दीन गोरी से लड़ते हुए मारेगए। आगे राजप्रशस्ति में लिखा है कि उस समरसिंह (समर विक्रम) के कर्णसिंह (रणसिंह) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

> तस्यात्मजाभून्नृपकर्णरावलः ॥२८॥

कर्णसिंह (रणसिंह) का प्रथम पुत्र माहप था, जो डूंगरपुर का स्वामी बना और दूसरा राहप, जो पिता का आज्ञाकारी था, शक्ति प्रदर्शित करके कर्णसिंह (रणसिंह) के बाद चित्तौड़ेश्वर हुआ—

> कर्णात्मजामाहपरावलोभवत्सडूंगराद्येतुपुरेनृपोबभौ ॥२८॥

---

१. देखो—टॉड राजस्थान का हिन्दी अनुवाद भाग १, पृ० १२६, अनुवादक पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, मुरादाबाद। प्रकाशक खेमराज कृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

कर्णस्य जातस्तनयो द्वितीयः श्री राहपः कर्णनृपाङ्गयोग्रः ॥२६॥
श्री चित्रकूटे बल लब्ध राज्यं चक्रेस्ततो राहप एव वीरः ॥३१॥

आगे राणा गढ़ (दृढ़) लक्ष्मणसिंह के वर्णन के साथ २ रावल शाखा वाले रत्नसिंह का भी उसमें उल्लेख हुआ है; जिसमें उसे राणा का छोटा भाई (सगोत्रीय छुट भाई में) होना लिखा है, जो रानी पद्मिनी का पति था—

लक्ष्मसिंहस्त्वेष गढ़मंडलीकाभिधोस्यतु ।
कनिष्ठोरत्नसीभ्राता पद्मिनीर्नात्प्रियाभवत् ॥३२॥

(३) 'राणारासा' कवि दयालदास द्वारा रचित है। आज जो प्रति हमारे सामने है, वह वि० सं० १६७६ में की गई प्रतिलिपि से वि० सं० १६४४ में की-गई नकल है । उसमें लिखा है कि रावल समरसी (समर-विक्रम) का ससुराल दिल्ली था अतः वह पृथ्वीराज के पक्ष में होकर शहाबुद्दीन के साथ हुए पृथ्वीराज के युद्ध में मारा गया। उसी समरसी का पुत्र रयनसी (रणसिंह, रत्नसिंह) तदनन्तर चित्तौड़ेश्वर बना। कवि ने यहाँ भ्रम से पद्मिनी की कथा को जोड़ दिया है। किन्तु आगे के वर्णन में वह सम्भल गया और रयणसी (रणसिंह, रत्नसिंह) के पुत्रों को माहप और उसके बाद राणा राहप को ही मेवाड़ेश्वर बताया है।

गज्जनेसु प्रिथिराजु काज प्रिथिमी के जुट्टे ।
अगनित दल आवट्टि कट्टि बहु बिरियां खुट्टे ॥
तहँ रावलु समरसी, हुतो ससुरारि नारिरस ।
चढ़ि चंचल गोरासहावु, आयो ऐसा सकस ॥
चहुवान कही सनमानि बहु, माने नहीं खुमान प्रभु ।
मन सुद्ध जुद्ध करि जुज्झयो: उद्धलोक गयनंबि नभु ॥६५॥
नाखि सपतपुर सुरनिके, हरिपुर किये विलास ।
धर रखवारो रतनसी, बसी नऊ निधि बास ॥६६॥
वसे वास चित्तोर राना रयंनं । मना देह धारी धरा पै मयंनं ॥६७॥
भुव पर राना रतनसो, ध्रुव समान धरयंदु ।
ता सुतु महि माहपु भयो, अहंकार दसकंधु ॥ १२६ ॥
दसकंधर सो धरयंधु भुवं । हुव राहपु ता घर सार सुवं ॥ १२७ ॥

(४) 'राजविलास' ग्रन्थ मानकवि द्वारा रचित है। यह कवि महाराणा राजसिंह (प्रथम) का समकालीन था। ग्रंथ की रचना वि० सं० १७३४ में हुई। महाराणा के वर्णन में उसने प्रारम्भ में वंशावली दी है, जिसमें रासो वाले समर (समर-विक्रम) को पृथाकुमारी का पति, एवं उसका शहाबुद्दीन के साथ हुए युद्ध में पृथ्वीराज के पक्ष में रह कर मारा जाना लिखा है—

समरसिंह रावर जस सारह। श्री प्रथीराज राजसू विचारह ॥
प्रथा सोम चहुआन सु पुत्तिय। पानिग्रहन संभरि पुर पत्तिय ॥ १२ ॥
दालिय युद्ध जयचंद पगदल। समरसिंह रावर दल संकुल ॥
संपत्ते दिल्लीस सहाइय। प्रथीराज चहुवान सु पाइय ॥ १३ ॥

पृ० ३६ : राजविलास
(प्र० काशी नागरीप्रचारिणी सभा)

आगे कुछ नाम-क्रम अक्रम से दिये हैं, जिसमें रत्नसिंह का वर्णन वही पद्मिनी वाला दिया है; किंतु रावल कर्णसिंह (रणसिंह) के वर्णन से पुनः वह (कवि) इतिहास के अनुकूल चल पड़ता है और उसके पुत्रों का नाम राहप, माहप लिखता है।

करन पुत्र दुय कहिय, जिट्ठ राहप त्रिभुवन जस।
माहप द्वितिय माहिन्द, बाध रिपु करन अप्प बस ॥२३॥ पृ० ३८ (वही)

(५) स्वर्गीय राज पुरोहित पंडित नानजी पुरुषोत्तम उर्फ 'क्रांत कवि' निवासी जवास द्वारा रचित 'चाहुवान कल्पद्रुम' पुस्तक में लिखा है—

"चाहुवान राजा विग्रह (वीसल तृतीय) ना वखत मां मुसलमानो हर वखत भारत भूमि ऊपर हुमला करता हता. आ वखते मेवाड़ ना पाय तख्त ऊपर रावल वीरसिंहना उत्तराधिकारी रावल तेजसिंहजी हता. तेमना ऊपर मुसलमाना आक्रमण करयुं, ए बात नी जाण साम्भरना चौहाण राजा वीसलदेव थतां, भारतवर्ष ना वेरी मुसलमानों ए दंड देवा पोता ना पितृ-वधनो शोक भूली गई स्वदेश प्रेमना स्वर्गीय मंत्र थी विद्वेष भाव थी निवृत्त थई पोताना पित्ही का घातकना उत्तराधिकारी रावल तेजसिंहजी नी सहायता करवा माटू लश्कर जमावी त्यां गयो अने देशभक्ति अर्थे रावल तेजसिंह थीं गाढ मैत्री करी. हिन्दू द्वेसी यवनोंनी तीव्र गति रोकवा समर भूमि मां केशरियां करी चौहान सैन्यती कूदी पड्यो"

इस घटना का प्रमाण टिप्पणी में इस प्रकार देते हैं:—

"आ लड़ाई नो विशेष हकीकत जोवा माटे जुवो:—

"हम्मीर महाकाव्य" नी अन्दर विगत वार वर्णन आपेलुं छं० पृ० १५ १६."

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि गुहिल वंश में राणाशाखा बड़ी थी और कर्णसिंह (रणसिंह) के पुत्र माहप, राहप थे। कर्णसिंह के बाद राहप राजा बना। कर्णसिंह (रणसिंह) का पिता समरसिंह पृथाकुमारी का पति था और गोरीशाह के साथ हुए पृथ्वीराज के युद्ध में मारा गया। गुहिलवंश में रावल शाखा छोटी थी। अतः अल्लाउद्दीन के साथ महाराणा लक्ष्मणसिंह का जो युद्ध हुआ, उसमें रावल शाखा का रत्नसिंह जो पद्मिनी का पति एवं लक्ष्मणसिंह के छुट भाइयों में से था—भी संभवतः सम्मिलित हुआ हो। अस्तु रासोवाला समर-विक्रम, कर्णसिंह (रणसिंह) का पिता एवं राहप, माहप का दादा था।

'चाहुवान-कल्पद्रुम' के रचयिता स्व० कवि क्लान्तने अपने ग्रन्थ की रचना का आधार अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त 'हम्मीर महाकाव्य' को अधिक बनाया है; क्योंकि टिप्पणियों में यत्र-तत्र 'हम्मीर महाकाव्य' का ही अधिक उल्लेख मिलता है। अतः बीसल (तृतीय) का समकालीन चित्तौडेश्वर रावल तेजसिंह का उल्लेख भी वे 'हम्मीर महाकाव्य' में होना मानते हैं। यदि यह बात ठीक हो तो समर-विक्रम से पूर्ववर्ती रावल तेजसिंह के लिये एक नवीन प्रमाण उपलब्ध होता है।

शिला लेखों में देखा गया है कि पितामह और पौत्र का नाम एक ही रूप में लिखा जाता रहा है। उदाहरणार्थ चित्तौड़ेश्वर खुम्माण के पौत्र का नाम भी खुम्माण अंकित है। इस तरह तीन खुम्माणों के नाम अति निकट लिख दिये गये हैं। यही दशा चौहानों के लेखों में है। जैसे गोपेन्द्र (गोविन्दराज) और उसके पौत्र का नाम भी गूवक (गोविन्दराज)। तदनन्तर उसी (गूवक) के पौत्र का नाम गूवक ही मिलता है। यह प्रथा लौकिक रीति के विरुद्ध है। क्योंकि पितामह का नाम पौत्र के लिये प्रयुक्त किया जाना असंगत है। कारण कि प्रायः हिन्दू महिलाएँ

का नाम नहीं लिया करती हैं[१]। तब फिर दादी की जीवितावस्था में उसके का नाम जो अपने पति ही का है, कैसे ले सकती है? यह सर्वथा असंभव तो क्या?

हिन्दू रीति के अनुसार ७ पुश्त बाद अभिहित नाम की पुनरावृत्ति होने विधान है। यदि किसी हेतु से ऐसा हुआ भी तो वह प्रयुक्त नाम उपाधिरूप लेया जा सकता है। जबकि इतिहासज्ञ इतने निकट पुश्त में ही उन्हीं नामों होना स्वीकार करते है, तब रासो वाला एक और पूर्ववर्त्ती समर-विक्रम को सिंह मान लेने में उन्हें कौन सी आपत्ति का सामना करना पड़ता है? १४ वीं शताब्दी के शिलालेखों वाले समर से ७-८ पुश्त पूर्व हो चुका था। प्रकार पर्याय रूप में चन्द्रराज का नाम ससिनृप, गूवक (द्वितीय) का न्द्रराज ही नहीं गुर्जर, वाक्पतिराज का वत्सराज तथा विश्वपति, विग्रहराज › सं० १०३० वाले का) विजयराज, अजयराज का आल्हदेव एवं (मेवाड़ ंश की नामावली में) हंसराज का वंशराज आदि नाम मान लेने में उन्हें आपत्ति नहीं हुई: किन्तु पर्याय रूप में (मेवाड़ेश्वर) तेजसिंह को चौड़सिंह ोपति अनंगपाल को मदनपाल, (चौहान के मूल पुरुष) आनल या अजय-(प्रथम) का आनन्दराज मान लेने में उन्हें कौनसी बाधा आती है? नहीं मानने से हम यही कह सकते हैं कि वे जान कर रासो के विरूद्ध हैं।

यही बात अनंद संवत् के प्रति मिलती है। अन्य कई संवत् तो उन्हें मान्य किन्तु रासो वाला संवत् उन्हें अखरता है यह क्यों? दें हम अपने 'शोध ा' में दिये गए लेख में बता चुके हैं कि यह अ० सं० युधिष्ठिर एवं विक्रम से भिन्न है, जिसका उल्लेख स्वयं रासोकार कर गया है। पद्मावती समय से 'शाखसंवत्" चौहानों का "सगोत्रीय संवत्" लिखा है। अतः यह

१. देखिये स्मृति-वचनः—

> आत्मनाम गुरोर्नाम नाम वै पितरस्य च।
> श्रेयस्कामो न गृण्हीया ज्येष्ठापत्य कलत्रयोः॥

जिस प्रकार पति को स्त्री का नाम न लेने का विधान है, उसी तरह स्त्री भी पति म नहीं ले सकती है। "गुरोर्नाम" में 'पति' अर्थ का भी समावेश समझना चाहिये।

चौहानों के मूलपुरुष आनल (अनन्दराज) तथा अजयपाल (प्रथम)[1] के पराक्रम के शाके (प्रसिद्ध युद्ध) की स्मृति में व्यवहृत हुआ था, जो चौहान नरेश्वर के शासन काल में चलता रहा। प्रसिद्ध कवि नरहरि महापात्र के पौत्र ने भी शाहजहां की मृत्यु पर इसी अनंद संवत् का प्रयोग किया है किन्तु अरसे के बाद उसने इस संवत् का प्रयोग किया, जिससे उसने १०० वर्ष कमी वि० सं० से मानी है। लेकिन रासो में सर्वत्र ९१ वर्ष की कमी है। इसलिए पूर्व कथित प्रमाण ही मानने योग्य है। रासो से यह बात स्पष्ट नहीं होती कि प्रचलित संवत् से किस मास और किस तिथि से वर्ष भर में यह संवत् प्रारंभ होता था जिससे चालू संवत् से इस संवत् में एक वर्ष आगे-पीछे होने की सम्भावना हो सकती है जैसे वि० सं० चैत्र शु० १ से प्रारंभ होता है, किन्तु राजकीय मेवाड़ी संवत् श्रावण से आरंभ होता था। श्रावण तक उस वर्ष के लिए पहले वाली संख्या ही लगाई जाती रही है। पृथ्वीराज के जन्म विषयक दोहे में "विक्रम शाक अनंद" लिखा गया, उसका हमारे मतसे "अनदराज के पराक्रम का संवत्" और स्व० पंड्याजी के मत से "विक्रम संवत् नंद (९) रहित (१०० वर्ष से ९ कम) अर्थ होता है। अतः हमारे द्वारा लगाया गया अर्थ संवत् के प्रादुर्भाव को तथा पंड्याजी द्वारा किये गए अर्थ वि० सं० ९१ वर्ष की कमी होने को स्पष्ट करता है। अतः यह पंक्ति कवि ने श्लेष में लिखी है। ऐसे अर्थों के लिए क्लिष्ट कल्पना करना लिखनेवालों को सोचना चाहिए कि रासोकार के संकेतानुसार रासो ग्रंथ गौण अर्थका लिए हुए है। उसे समझने के लिए तद्नुरूप बुद्धि का उपयोग होना चाहिए। साधारण विचारने से वास्तविक अर्थ का पता लगना असंभव होता है।

चौहानों के मूल पुरुष, "चौहान" से सम्राट् पृथ्वीराज चौहान तक ३० राजाओं का होना ही पर्याप्त नहीं माना जा सकता। क्योंकि इतिहासकार प्रत्येक नरेश का औसतन २० वर्ष होना मानते हैं, जिससे ३० राजाओं का समय ६०० वर्ष होता है। अतः मूलपुरुष चौहान का ब्रह्मयज्ञ के समय सूर्य मण्डल से अवतरित

---

१. अजयपाल (अजयराज) का दूसरा नाम आल्हणदेव (आनल) आक्षेप कर्ताओं ने भी माना है। इसी प्रकार "चाहुवान कल्पद्रुम" में भी अजयपाल का दूसरा नाम अनंदराज होना स्व० कवि कल्लांतजी मानते हैं।

ाने का समय ७ वीं शताब्दी के प्रारंभ में निश्चय होता है; किन्तु सातवीं शताब्दी
ं मानव-सृष्टि की उत्पत्ति इस प्रकार नहीं मानी गई। इस प्रकार की उत्पत्ति
दिक एवं पौराणिक युग में ही हुई है। संस्कार-प्रथा भी विक्रमादित्य से कई सौ
र्ष पूर्व की होना विद्वान मानते आए हैं। अत एव चौहान वंश की उत्पत्ति प्राचीन
। शिलालेखों आदि में जो चौहान वंश की नामावली उपलब्ध है, वह भी अपूर्ण
ी प्रतीत होती है। मूलपुरुष चौहान को रासा में "चतुर्भुजा चहुवान" लिखना
'विष्णुरूप चतुर्भुज सूरे" का ही संकेत है।

रासो की पद्य संख्या हमारे द्वारा लिखे गए 'शोधपत्रिका' वाले उपरोक्त
ाख में सात सहस्र मानी है। लेकिन संपादन में हमने महाकवि चंदवरदाई द्वारा
चित पद्य ५ सहस्र ही माने हैं जिसका आधार देवलिया (अजमेर) वाली तथा
गरचंदजी नाहटा द्वारा प्राप्त प्रतियां हैं, जिनमें "सत सहस" के स्थान
र 'पंच सहस' ही पाठ है। चंद के वंशज यदुनाथ ने भी अपने ग्रंथ 'वृत्तरत्नाकर' में

"एक लक्ष रासो कियो, पंच सहस परिमान।
पृथीराज नृप का सुजस, जाहर सकल जहांन॥"

लखा है। जिसका आशय आक्षेपकर्त्ताओं ने रासो के एक लाख पांच हजार
द्य होना, लगाया है। लेकिन "कियो" शब्द ऐसा अर्थ करने में स्वतः बाधक
। इस पद्य का उचित अर्थ इस प्रकार है—जिस रासो ग्रंथ की मूल पद्य
ंख्या ५ सहस्र थी, उसको, पृथ्वीराज का संसार प्रसिद्ध यश होने से
ेपक कर्त्ताओं ने एकलक्ष पद्यों का रूप दे दिया।" अथवा 'लक्ष' शब्द
ा अर्थ लक्ष्य भी होता है। तदनुसार अर्थ होगा—"महाकवि चंद वरदाई का
एक ही लक्ष्य (उद्देश्य) पृथ्वीराज के विश्व-प्रसृत यश वर्णन का रहा।
सीलिए उसने पांच सहस्र पद्य-संख्या में रासो ग्रंथ की रचना की।"
ागे जाकर कवि चंद के पुत्रों ने विषय-रोचकता की दृष्टि से दो सहस्र पद्य और
चे, जिससे पद्य-संख्या में भी वृद्धि की गई। अतः चंद द्वारा मूल रासो-रचना
सहस्र पद्य-संख्या में ही पूर्ण है।

रासो ग्रंथ से स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज के रयणसी के अतिरिक्त छोटा
ाजकुमार (सभवतः गोविन्दराज) का जन्म हुआ, जिसका उल्लेख धन-कथा में
आए नंद उछाह घर" किया है। अर्थात् पुत्र जन्म के उत्सव पर पृथ्वीराज

खट्टू वन से धन निकाल चुकने पर दिल्ली लौट आया। संभवतः यह पुत्र रानी इच्छिनी से उत्पन हुआ हो; क्योंकि पृथ्वीराज के राज-प्रासाद में आने पर उसकी बहिन पृथाकुमारी एवं पृथ्वीराज की रानियां आईं। "दाहिम्मी पृथु भट्टी पुंडीरी आइ नृपढिग्ग"। परन्तु अगवानी करने आई हुईं रानियों में पट्टरानी इच्छिनी का उल्लेख नहीं मिलता है। अतः संभव है, वह उस समय प्रसूति-गृह में हो।

रासो में कन्नौजपति जयचन्द का एक जगह उपपत्नी के अधीन होने का भी संकेत है, जो इतिहास संमत है। पृथ्वीराज ने गुरु राम पुरोहित से विद्याध्ययन किया था। अतः वह विद्वान् था! एक समय मंत्री कैंमास के न होने पर पंडितों की सभा में वह स्वयं निर्णायक बना था।

रासो में वर्णित हुस्सैन को तबक़ातेनासिरी में नासरुद्दीन हुस्सैन लिखा है रासोकार भी हुस्सैन कथा में एक जगह उसे "नासारिय" लिखकर उसका पूरा नाम नासरुद्दीन हुस्सैन होना प्रकट करता है।

शोधपत्रिका वाला जो हमारा उपरोक्त लेख है, उसमें शंकासंख्या ३ के उत्तर में जो अनंगपाल द्वारा किल्ली उखाड़ देने पर ज्योतिषी ने भविष्य कथन किया। उसके प्रमाण में हमने टिप्पणी देकर स० ३ पृ० २६१ वाला पद्य उद्धृत किया है। उसकी चतुर्थ पंक्ति 'तोंअर ते चहुवान, अन्तह्वै है तुरकाना" गलत छपगई है, अतः शुद्ध पाठ "तों अरते चहुआन, अतंह्वै है तुरकानों" पढ़ना चाहिए। इसी प्रकार शंका ६ (ख) के उत्तर में हमने रासो में वर्णित "इंच्छनी विवाह समय" को भ्रम से क्षेपक मान लिया था; किन्तु संपादन में कई प्रतियों से मिलान करने पर स्थान देना आवश्यक समझ स्थान दिया गया है। अतः उसे रासो के अन्तर्गत की कथा ही मानना चाहिए। इसी तरह शंका ८ के उत्तर की टिप्पणी में रासो के २१ युद्धों के प्रमाण में प्रबन्धचिन्तामणि में भी पृथ्वीराज द्वारा कुल २१ युद्ध होना बतलाया है, वे संपादन के बाद इस तरह से हैं—

१ हुसैन कथा, २ आखेट चूक, ३ सलख युद्ध, ४ माधोभट्ट कथा, ५ पद्मावती समय, ६ धनकथा, ७ रेवातट, ८ अनंगपाल, ९ घघर की लड़ाई, १० पीपा प्रतिहार, ११ जैत्रराय, १२ पहाड़राय, १३ कैमास युद्ध, १४ हांसी प्रथम युद्ध, १५ हांसी द्वितीय युद्ध और, १६ दिल्ली पर आक्रमण करते हुए शहाबुद्दीन को

रोकना, १७ पज्जून महोबा, १८ पज्जून गतशाह, १६ दुर्गा केदार, २० धोरपुंडीर, २१ अंतिम युद्ध।

शोधपत्रिका में हमारे उपरोक्त लेख में शंका संख्या ६ (ख.घ) के उत्तर का रूप संपादन के बाद निम्न हुआ है—

शंका ६ (ख) के उत्तर में प्रत्येक क्षत्रियों को उनके प्राचीन स्थानों की स्मृति में स्वामि रूप में उल्लेख करने की शैली के आगे पढ़िए—

अब हम भालाराय समय से ही सलख जैत्र के स्थानादि के विषय को स्पष्ट करते हैं इस समय में होने वाली घटना अ० सं० ११४४ (वि० सं० १२३५) की है। इससे स्पष्ट होजाता है कि यह युद्ध सलख-जैत्र की पुत्री इच्छिनी के कारण नहीं हुआ, किन्तु जैन धर्मावलम्बी चालुक्यों द्वारा शिवपुरी (संभव है, मारवाड़ स्थित शिवाना) के देव मन्दिरों पर उत्पात मचाने के कारण हुआ था।

शिवपुरी (शिवाना) को चालुक्यों द्वारा जला देने पर सलख ने पृथ्वीराज को सूचना दी। सामन्तों और कैमास मंत्री ने भी पृथ्वीराज से कहा कि प्रमारों ने अपनी धरा पट्टन वालों के अधीन में गई समझ कर (अपना आबू राज्य धारा वर्ष आदि के स्वार्थी होने से पट्टन राज्य के अधीन सोचकर) अपने बांकेपन को मन में छिपाते हुए आपको सूचित किया है; क्योंकि आपने दुष्टों को कई बार मारा है[1]।

१ चोवालीसा शुक्रवार, चेत पुक्खह अगबारिया।
भोराराइ भीमंग, सोर शिवपुरी प्रजारिय॥
आ.ज सौंइ सलख्ख, राज संभरि संभारिय।
चाहुवान सामंत, मत कयमास पुकारिय॥
धर जान पवारह पट्टनह, बोलै बंक दुराइ दिल।
कैबार कथ्थ नथ्थह तनी, खंगै राज क्रिपान खल॥ १॥

देखो पृथ्वी राज रासो भाग २, हमारे द्वारा संपादित तथा साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर द्वारा प्रकाशित पृ० ४१

हे इच्छिनी के पति, दिल्ली के सूर्य स्वरूप चाहवान नरेश्वर ! आप जैसे प्रतापवान हैं वैसे ही सलख जैत्र भी कीर्तिवान है (उनका साथ देने से) वे आपके भू भाग को ध्रुव तुल्य अटल रखने जैसे समर्थ हैं ।[१]

उधर कलियुग के प्रभाव से भोरा भीम की कीर्ति और बुद्धि की इति श्री होगई । उसने अपनी स्थापित की हुई पुरातन प्रीति को हाथों से उलट दिया (अजमेर और पट्टन का जो पुरातन सम्बन्ध था, उसे तोड़ दिया)[२] ।

मरु प्रदेश (आबू और वहाँ के राजा (धारा वर्ष) को जो बल (उस समय) प्राप्त था, वह एक मात्र भोरा भीम का ही था[३] ।

उस (भोरा भीम) के प्रधान के आने पर सलख जैत्र ने उस का सम्मान किया । उसने कहा कि गुर्जरेश्वर ने तुम्हें राजा माना है और प्रेमोपहार भेजा है ।[४]

जिस भोरा भीम का (ईश्वर तुल्य) स्मरण कर (प्रताप देख, सोचकर) वर्तमान आबू पति (धारावर्ष) हाथी घोड़ों सहित अपना प्रताप युद्ध में समर्पित कर चुका है । इस बात को सोचते हुए तुमको भी चाहिये कि तुम दोनों (सलख-जैत्र) भी उसी के समान प्रेम रखोगे तो वह (भोरा भीम) तुम्हारे पर भी वैसा ही प्रेम रखता हुआ तुम्हें चाहेगा (कृपा रखेगा)[५] ।

---

१ तपई तेज चहुवान, भांन दिल्ली इच्छावर ।
किनी अनत सलखेज भुत्र, ध्रुव प्रमान धर रक्खई ॥
देखो वही पृ० ४२० छं० २ ।

२ कलि काल किति मित्ती इतिय, पलटि प्रीति कत जुग करन ।
देखो वही, पृ० ४२० छं० ३

३ मुर–खंडं जं बलयं, सा बलयं भीमयंराजं ॥
देखो वही, पृ० ४२१, छं० ४

४ रस रमाल गुज्जरह, नरिंद रायंगन थप्पो ।
देखो वही, पृ० ४२१, छं० ५

५ अब्बूवै गै समर, समर समप्पन तेज ।
समर उभै सम रंग करि, सम रखु पुज्जै हेज ॥
वही पृ० ४२२ छं० ६

यह सुनकर सलख-जैत्र, जो भार स्वरूपी आबूपति (धारावर्ष) को दबाने वाला था । वह न तो नम्र, न विचलित ही हुआ[1] ।

जैत्र ने कहा (भोरा भीम) गल्हों (असत्य प्रचार) तथा हल्लों (व्यर्थ के कोलाहल) द्वारा पृथ्वी की मांग करता है और हमारे भाई (धारावर्षादि) ने उसे अपने अविवेक से सरलता पूर्वक पृथ्वी देदी (आबू राज्य अधीन कर दिया) । इस प्रकार भोरा भीम ने हम भाइयों में पाखंड फैलाया । उसके प्रान्त में आकर्षण, मोहन मन्त्र और तन्त्र (जैनी और यतियों के तान्त्रिक जाल) की ही प्रमुखता है । किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि मैं उत्तर में (आबू के उत्तरी भूभाग पर) अड़ा (डटा) हुआ हूँ [2] । उसने भोरा भीम को यह भी सदेश दिया कि जानते नहीं पृथ्वीराज के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है (पृथ्वीराज हमारे जामाता हैं) । तत् पश्चात् मरुप्रदेश स्थित नवदुर्गों में से नागोर के शासक सलख-जैत्र ने अपने गढ़ के उद्धार का भार तीव्र गामी अरबी घोड़ों एवं खेम करण तथा खंगार के सिर पर दिया [3] ।

---

१ जै अब्बू वै भार, लाज अब्बू गैंज रख्यौ ।
वही पृ० ४२२, छं० ७

२ तेग झारि पमार, जैत्र जगहत्थ बत्त किय ।
मंगै हैल सु गल्ह, तात अविवेक छित्ति दिय ॥
भोरा भीम नरिंद, बन्ध पाखण्ड प्रगटै ।
आकर्षन मोहन सु मंत्र, जंत्र जुग्गहि जै पट्टै ॥
धन द्रव्य देसु बसि बल करन, जानै ना उत्तर अर्यौ ।
धाराधिनाथ धारी धरनि, बहल बेल नाग्रह धर्यौ ॥
वही, पृ० ४२३, छं० ८

३ भोगराइ दिसान, सैंध सगपन को कथ्थिय ।
आरब्ब-तेज गढ़ उद्धरन, खेम करन खंगार सिर ।
मुरदेस सलख सुत जैतसी, नवसु कोटि नागौर नर ॥
वही, पृ० ४२५ छं० ११

ईश्वर का स्मरण कर वह (सलख-जैत्र) बोला-"जिस ईश्वर ने भक्ति स्थापना के लिये देव स्वरूपी ब्राह्मणों को ज्ञान और हमारे हाथों में तलवार दी है। उस भक्ति और शस्त्र गौरव को बनाये रखने के लिए हमारा मरण शोभाप्रद है, अतः हमें देवस्वरूपा ब्राह्मणों की (जैन धर्मावलंबी चालुक्यों से) शीघ्र रक्षा करनी चाहिये[१]।

बाद में उन पृथ्वीराज के संबंधी प्रमारों (सलख-जैत्र) ने अपने परिवार को एकत्रित कर खट्टू की ओर प्रस्थान किया और पृथ्वीराज के पास दूत भेजे[२]।

पृथ्वीराज ने उनकी अगवानी के लिये अपने मंत्री को भेज कर आदर सहित अपने पास बुला लिया[३] (लौट कर आये हुए प्रधान द्वारा)। जब भीम ने सुना कि सलख जैत्र ने उसके संदेश को ठुकराते हुए, धमकी दी है कि जानते नहीं; मेरी कुमारी (इन्छिनी) का पति दिल्लीश्वर पृथ्वीराज है। यह सुनते ही उसने सलख-जैत्र के दुर्ग को अधीन करने के लिये चढ़ाई करदी[४]।

भीम और उसके साथी चालुक्यों ने प्रमार क्षेत्र में यह आदेश प्रचारित किया कि सद्गुरूज्ञान को नष्ट करके वेद धर्म की उपासना न कर, जैन धर्म को मुख्य रूप से मान कर चलें[५]।

---

१. जिन रक्खी हरि भक्ति वर, दै हथ्थह हम तेग।
दुहुन भंति मंडन मरन, सुरनर रक्खौ वेग॥
वही पृ० ४२६ छं० १३.

२. सकल परिग्गह एक किय, खट दिस पूजा सद्धि।
कागर है चहुवान कौं, पठइय दूत समद्धि॥
वही पृ० ४२८ छं० १७.

३. आदर संजुत बालि, मुक्कि मंत्री अगिवानं॥
वही पृ० ४२६ छं० १६

४. गढ़ साह्यौ, सुनि भीम ने, कन्यावर पृथ्वीराज।
बोलि मंत्रि सज्जन कह्यौ, दुंद बजावै बाज॥
वही पृ० ४२६ छं० २३

५. ठानिज्जै मानिज्ज मत, हानिज्जै गुर ग्यान।
वेद धर्म जिन भंजए, जैन ध्रंम परिमान॥
वही पृ० ४३२ छं० २५

उसके बाद अर्द्ध रात्रि भी व्यतीत न हो पाई थी कि उसी समय (हम्मीर नामक) किसी व्यक्ति से भेद लेकर भोरा भीम. सलख जैत्र के गढ़ पर चढ़ गया; जिससे गढ़ में हलचल मच गई। उस भेद ने ही प्रमारों के बल को नष्ट कर दिया[१]।

भेद दाता हम्मीर नामक व्यक्ति पर दुर्गरक्षक खंगार ने हुँकार की (या-उसको ललकार कर आगे कर लिया) और कहा: हे गँवार! देखता हूँ, अब कोई चालुक्य गढ़ पर कैसे चढ़ सकता है? मैं सावधान हो गया हूँ[२]।

यह कह कर प्रमारों ने युद्ध किया और उनमेंसे क्षेमकर्ण, खंगार, उद्धरण, बलराय और वीरसिंह पंचतत्व में मिल गये (मारे गये)[३]।

सलख-जैत्र के दुर्ग पर अधिकार कर पट्टनपति (भोरा भीम) एक मास और पांच दिन वहाँ रहा। तत्पश्चात् उस दुर्ग की रक्षा का भार आबूपति (धारावर्ष) के सिर पर छोड़ कर पट्टन की ओर प्रस्थान किया[४]।

इसी समय के अन्त में लिखा है कि वे जैनी (जैन धर्मावलंबी चालुक्य) देव मन्दिरों को जलाते हुए, रणचंडी उनके कर्मों का उत्तर देती हुई[५], यम

---

१. चढ्यो भीम भोरा सुमर, अप्पूरणि निसि अद्ध।
गौरि परी गढ़ उप्परे, भेद सवै वलु खद्ध॥
वही पृ० ४३३, छं० २६

२. हंकारयों खंगारणो, रे हंमीर गँवार।
चालुक्का चढि को सकै, मैं सुधि लही अबार॥
वही, पृ० ४३३, छं० २७

३. पांमार पंच पंचौ मिलै, रह्यौ इक्कु औसाफु धर॥
वही पृ० ४३४, छं० २९.

४. एक मास दिन पंच रहि, गढ़ मुक्यौ तिन बार।
पट्टनवै पट्टन गयौ, अब्बूवै सिर भार॥
वही पृ० ४३५, छं० ३१

५. जिन थक्का जरि देव, सेव थक्की मातंगी।
वही पृ० ४६०, छं० १३८

स्वरूपी जैत्र प्रमार और रामराय बड़गुज्जर उन शत्रुओं को दलदल में फंसाते हुए नहीं थके[१]।

अतः स्पष्ट है कि आबू पर उस समय अन्य प्रमार क्षत्रिय (धारावर्ष) का शासन था और वह भोरा भीम को अधीनता स्वीकृत कर चुका था। सलख जैत्र का शासन मारवाड़ स्थित नागौर प्रान्त पर था। इस युद्ध घटना से पूर्व ही पृथ्वीराज, सलख-जैत्र की पुत्री इच्छिनी से शादी कर चुका था। सलख जैत्र को "अबूवै" आदि लिखा जाना इनका आबू राजवंशी होना ही प्रकट करता है।

(ब) शशिवृत्ता समय में लिखा है—पृथ्वीराज के पास (दिल्ली से दक्षिण दिशा में स्थित (मालवे) प्रांत से चंद्रोदय नामक एक नर्तक आया[२]।

राजा ने उसका यथोचित सम्मान किया। वह मध्यप्रदेश का रहने वाला था, इसलिये उससे वहाँ का वृत्तान्त पूछा[३]।

नर्तक ने कहा—हे दिल्लीश्वर ! जिसकी बसही (बस्ती) देवगिरि (देवास) है, वहाँ का राजा चन्द्रवंशी यादव क्षत्रिय है, जिसका नाम तान (तवनपाल) है, उसने श्रेष्ठ गुण प्राप्त किये हैं[४]।

---

१. थक्का न जैत जज्जर बली, कलिन राम गुज्जर अरी।

वही पृ० ४६०, छं० १.३८

२. ग्रीषम त्रित्तिय कालं, आगम पावस दीह मझ्झेनं।
दिसि दक्खिन बर देशं, नाइक आइ चंद्रोदयं नामं ॥

वही, पृ० ५६६, छं० २

३. सभा विराजित राजं, तहां नट आइ पत्र-संगीतं।
मिलत मान दिय राजं, पुच्छिय विगति देस रह मझ्झं ॥

वही, पृ० ५६६, छं० ४

तब नट नमि करि उच्चरिय, सुनहु राज दिल्लीस।
सोम वंश जद्दव नृपति, देवगिरि बसि जीस ॥

वही, पृ० ५६६, छं० ५

४. तान सु गुन्न लहन, भेद सुभ ग्यान विचारं।

वही, पृ० ६००, छं० ६

पृथ्वीराज ने कहा—मध्यप्रदेश में ऐसा कौन राजा है, जो हमारे योग्य हो और जिसके यहाँ हमारा विवाह होना ठीक माना जा सके[1]।

नर्तक ने कहा, हे नरेश्वर ! राजकुमारी शशिवृत्ता अति सुन्दर है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अतः मुझसे हो सका तो आपकी अभिलाषा पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा[2]।

यह कहकर वह नर्तक हरि का चरण-स्पर्श (तीर्थ) करने को कुरुक्षेत्र की ओर चलता बना।

पश्चात् शशिवृत्ता की अभिलाषा में पृथ्वीराज शिकार खेलता हुआ मध्य-प्रदेश की ओर चल पड़ा[3]। वहीं पर यादव राजा का भेजा हुआ दूत शाम होने पर पृथ्वीराज के पास आया[4]। उसने पृथ्वीराज से निवेदन किया— कन्नौजेश्वर) जयचन्द के भाइयों में से एक वीरचन्द नाम का है, उससे यादव राजा के भाई पुंज ने अपनी कुमारी शशिवृत्ता का विवाह करना निश्चित् किया है। इसीलिये यादव राजा ने मुझे आपके पास कुमारी शशिवृत्ता को समर्पित करने के लिये भेजा है[5]। आपको संदेश देने का कारण भी यही है कि कुमारी शशिवृत्ता ने भी

---

१. कहि संभरि नृप राजं, हो नट राइ सुनहु बर बचनं।
किहि व्याहन बर संगं, को राजैन–कवन धर–मभ्भं॥

वही, पृ० ६०१, छं० ८

२ पुनि नटवर यों उच्चरिय, फिरि कहि हों राजिंद।
जो मुझ कीयौ होइ है, तो करिहौं नृपइंद॥

वही, पृ० ६०२, छं० १३

३ कुछ–दिन अन्तर क्रमियं, राजन क्रीलंत आप धर मभ्भं।

वही, पृ० ६०६, छं० २२

४ संझ सपत्तौ न्रपति पै, दूत सु जद्दवराइ।

वही, पृ० ६११, छं० ३१

५ बीरचंद जैचंद बँधु, दें वरु पुंज कुंआरि।
न्रप पठये चहुआन पै, दै शशिव्रत्ता नारि॥

वही, पृ० ६१६, छं० ४१

(आपको वरण करने की ही) दृढ़ प्रतिज्ञा करली है[1] । पृथ्वीराज ने कहा कुमारी ने हमारे गुणों को किस प्रकार सुना और उसे श्रोतानुराग कैसे हुआ । दूत ने कहा—हमारे राजा के आनन्द चन्द नामक एक खत्री (वैश्य) मन्त्री है, उसकी बहिन का नाम चंद्रिका है । उसे ही सार में एक प्रमुख खत्री को विवाही गई । उसका पति कुछ दिनों बाद मृत्यु को प्राप्त हुआ । तब उसे उसका भाई अपने यहाँ ले आया और रात-दिन वह दुःखी रहने लगा । वह चंद्रिका विद्या में अति प्रवीण और अच्छे साज-बाज के साथ लय के साथ गाने वाली है ।

उसी के द्वारा शशिवृत्ता का विद्याध्ययन प्रारंभ हुआ । उसीने आपके समस्त पराक्रम का वर्णन सुनाया; जिससे कुमारी का श्रोतानुराग हुआ और आपकी श्रेष्ठ ख्याति सुनकर उसने आपको वरण करने का व्रत लिया[2] । ब्याह करने को वीरचंद देवगिरि (देवास) आने वाला हैं । (जयचंद की मदद से) उसके साथ चतुरंगिणी सेना है[3] । पृथ्वीराज ने कहा हमारे आने के लिये यादव-कुमारी का संकेत (मिलन) स्थान कौनसा है[4] । दूत ने कहा-माघ मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को हरसिद्धि नामक स्थान पर आपको वरण करने के लिये आने का कहा है[5] । पृथ्वीराज ने कहा-हे देवास निवासी द्विजराज ! जिस

---

१. अब जद्दों वृत-सिर चढिय, दीनी ईम अगीस ॥

वही, पृ० ६१६ छं० ४७

२. जे जे सु पराक्रम राजकिय, मोइ कहै खित्रिनि ममथ ।

श्रोतान राग लग्यौ उअर, तो वृत्ता लीनौ मुकथ ।

वही, पृ० ६३२, छं० ७७

३ सज्जि सेम चतुरंग बर, देवगिरि कज व्याह । वही, पृ० ६३८, छं० ६१

४ कह संभरि बर हंस सुनि, कहि जद्दों संकेत । वही, पृ० ६३८ छं० ६२

५ कहि इय दुज संकेतं, हो राज्यंद बीर ढील्लीसं । वही, पृ० ६३६ छं० ६३

संकेत स्थान के लिये तुमने हमें कहा, वही स्थान हमारे मिलन का निश्चित है [१]। तुम जाकर यह सब कुमारी से कह देना। पृथ्वीराज ने दूत को विदा कर दस सहस्र संख्या की सेना को सजाई और देवगिरि (देवास) की ओर चल पड़ा। पृथ्वीराज से पूर्व ही, कमधज वीरचंद बारात सज कर आगया। पृथ्वीराज भी जा पहुँचा; उस समय ऐसा दिखाई देता था, मानो दो सिंहों के बीच में उनका भक्ष्य (मांस) हो। पुंजबाला (पुंजपुत्री) ने उसी समय देवी के मंदिर में पूजा करने का जानेकी इच्छा की [२] एवं उसने देवालय के समीप जाकर पालकी से उतर प्रदक्षिणा करके (शिव-शिवा से) वंदना की।

युद्ध की सम्भावना सोच कर पीछे से शशिवृत्ता के पिता पुंज भी देवालय को ससैन्य जा पहुँचे [३]। देवालय की सीढ़ियों को लांघते ही शशिवृत्ता को पृथ्वीराज ने पकड़ कर घोड़े की पीठ पर चढ़ा ली। उस समय मानो यादवों और कमधजों ने पीछा किया एवं युद्ध छिड़ा। उस समय ऐसा ज्ञात हुआ मानो दोनों सूरवंशी (सूर्यवंशी राठाड़ और चाहुवान) देव दानवों के समान (युद्ध) सिन्धु-मंथन कर रहे हों [४]। अंत में चाहुवान कन्ह पृथ्वीराज के भाग्य से बच गया और शशिवृत्ता के पिता पुंज पकड़े गये [५]। फिर यादवों ने पृथ्वीराज के विपक्ष में रह कर युद्ध करना बन्द कर दिया; किन्तु कमधज वीरचंद युद्ध से नहीं हटा। आगे होने वाले युद्ध का स्थान बानगंगा बतलाया गया है [६]। युद्ध के

---

१. तब राजन फिरि उच्चरै, हो देवस दुजराज।
जो संकेत सु हम कहिय, सो अक्खौ त्रिय काज॥
वही, पृ० ६३६, छं० ६४

२ देवालय भगवती, पुजैव पुंजयो बालं। वही, पृ० ६५२ छं० १२४

३ चढ्यौ पुंज नव साज बर, अरुभर लिन्ने सथ्थ॥
वही, पृ० ६६४, छं० १५३

४ असुर सु सुर मिली मथहि, सूर बंसी रजपूतं॥
वही, पृ० ६६६, छं० १६४

५ उबर्यौ कंन्ह प्रथिराज क्रम भुभिभ पुंज बंध्यौ सुभट॥
वही, पृ० ६८६, छं० २१६

६ खूब खेत विधि-गाम, बान गंगा पथ झारिय॥
वही, पृ० ७३५, छं० ३२४

अन्त में पृथ्वीराज और उसके घायल सामन्तों को सुठिहार (मध्य प्रादेशान्तर्गत सुंठालिया) के राजा ने अपने यहां रखा (उपचार किया)[१]।

पश्चात् राजा पृथ्वीराज कुमारी शशिवृत्ता को लेकर दिल्ली पहुँचा और शशिवृत्ता से विधिपूर्वक व्याह किया।

अतः स्पष्ट है कि कुमारी शशिवृत्ता मध्य प्रांत स्थित देवास के यादव राजा तान (तवनपाल, एवं भान) के भाई पुंज की पुत्री थी। दक्षिण स्थित देवगिरि से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

इसी प्रकार सम्पादन के बाद कहीं २ शोध पत्रिका में छपे हुए हमारे लेख के बाद जो भिन्न रूप हुए हैं, उनसे जानकारी करने के लिए 'पृथ्वीराज रासो' भाग १-२-३-४ जो हमारे द्वारा सम्पादित एवं साहित्य संस्थान, राजस्थान-विद्यापीठ, उदयपुर द्वारा प्रकाशित हैं, में दिये गए सम्पादकीय लेखों एवं चारों भागों को पढ़ना चाहिए।

आक्षेप कर्ता जिनको आधार मान कर रासो को कल्पित बताते हैं, उनमें वर्णित कुछ बातों का उल्लेख करते हैं:—

'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' का लेखक कर्पूरदेवी के गर्भाधान विषयक, जो लौकिक रूप में गोपनीय है, उस पर तो ग्रह लग्नादि का उल्लेख करता है; लेकिन पृथ्वीराज के जन्म पर ग्रहलग्न संवतादि के विषय पर प्रायः मौन है; जिससे उसके ऐसे वर्णन पर शंका हुए बिना नहीं रहती। तदुपरान्त जिस ग्रंथ का "पृथ्वीराज विजय" नाम है, उसमें पृथ्वीराज के विजय सम्बन्धी वर्णन का अभाव है, अर्थात् अपूर्ण है। "हम्मीर महाकाव्य" के लेखक ने अन्तिम युद्ध के विषय में लिखा है कि—मुसलमानों ने पृथ्वीराज के अश्वशाला के अधिकारी को अपनी ओर मिला लिया। उसने युद्ध-समय राजा की सवारी के लिये नर्तक घोड़े को तय्यार कराया। युद्ध छिड़ने पर रण-वाद्य बजते ही वह घोड़ा नृत्य करने लग गया; जिससे राजा पृथ्वीराज शत्रुओं पर आक्रमण न कर सका और पकड़ा जाकर मारा गया। उसका यह वर्णन काल्पनिक ही है। उस समय के राजागण

---

१. सुठिहार राज पृथिराज कौं, धरे सबह चौडोल धर ॥

वही, पृ० ७३५, छं० ३२४

अपने घोड़े और शस्त्र को ही अपना बड़ा भारी साथी मानते थे। वे उनका निरीक्षण एवं हिफाजत अपनी देखरेख में करते थे। अपनी सवारी के घोड़ों की गति-विधि को वे स्वयं अच्छी तरह जानते थे युद्ध समय में उनकी सवारी के कितने ही घोड़े उनके साथ रहते थे, जिन पर चाबुक सवार चढ़े रहते थे। यदि घोड़ा काम नहीं देता तो उसी समय दूसरे घोड़े पर चढ़कर युद्ध छेड़ देते थे। पृथ्वीराज जैसे वीर से ऐसी भूल होना कदापि सम्भव नहीं। अतः 'हम्मीर-महाकाव्य' का लेखक इस विषय में जानकारी नहीं रखता हो, यही मानना पड़ता है[1]।

"जामेउल हिकायत" का यह उल्लेख काल्पनिक सिद्ध होता है। उसमें लिखा है कि पृथ्वीराज के हाथियों से शाही सेना के घोड़े चमकते थे। इसलिये रात्रि को खेमे पर कुछ पुरुषों को छोड़ अग्नि प्रज्वलित करने की आज्ञा देकर शेष सेना साथ में ले पृथ्वीराज के पड़ाव की ओर बादशाह रवाना हुआ। रात्रि भर सफर कर प्रातः काल होने पर पृथ्वीराज के पड़ाव के पीछे जा पहुँचा तथा आक्रमण कर पृथ्वीराज को बंदी बना लिया-इत्यादि विषय इसीलिये काल्पनिक हैं कि युद्ध के लिये तैयार हुए घोड़े हाथियों से तो क्या तोपों से भी नहीं डरने योग्य ट्रेण्ड (प्रवीण) किये जाते थे। खेमे में आग जलती हुई रखने और साथ ही रात्रि भर सफर कर पृथ्वीराज के पड़ाव तक पहुँचने को लिखने में भी बनावटीपन व्यक्त होता है। अग्नि जलाई रखने का उद्देश्य पृथ्वीराज के पड़ाव वालों को शाही पड़ाव होने का धोखा देना है। अतः आग जलती हुई दृष्टिगत होती रहे। उतनी ही दूर पर पड़ाव होना चाहिये; लेकिन रात्रिभर बादशाह ससैन्य सफर कर पृथ्वीराज के

---

१. उदयपुर में महाराणा की अश्वशाला राज महलों से दूर है; किन्तु महाराणा की सवारी के प्रमुख १० घोड़े उनके महल के झरोखे (गवाक्षी) के ठीक नीचे बँधते थे; उस स्थान का नाम दसों की पायगा (प्रमुख १० दस घोड़े बाँधने का स्थान) नाम से आज भी प्रसिद्ध है। महाराणा हर समय उन घोड़ों का निरीक्षण किया करते थे। महाराणा फतहसिंहजी के त्यौहारों एवं शिकारी जुलूस को देखने वाले आज भी मौजूद हैं और मैंने देखा है कि उनके जुलूस में उनकी सवारी के ८, १० घोड़े उनके आगे रहते और उन पर चाबुक सवार चढ़े रहते थे। यदि घोड़ा बेकाबू हो जाता तो महाराणा स्वयं वृद्धावस्था में भी उसे काबू में कर लेते थे; नहीं तो उसी समय दूसरे घोड़े पर सवार हो जाते थे। उन्हें यह भी ज्ञात था कि कौन घोड़ा किस जुलूस के उपयुक्त है। ऐसे विषयों को समझने के लिये जानकारी की आवश्यकता है।

पड़ाव तक पहुँचा हो तो कम से कम पंद्रह या बीस कोस की दूरी पर दोनों पड़ाव होने चाहिये; इतनी दूरी पर अग्नि जलती हुई दिखाई देना और उस जमाने में प्रायः गुप्तचर रखे जाते थे। उनसे यह धोखे की बात छिपी रहना असंभव है, जिससे यही कहना पड़ता है, इसमें उल्लिखित वर्णन ठीक नहीं है।

पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के लिए 'ताजुल मुआसिर में पृथ्वीराज को बंदी बना उसे प्राणदान देना, पश्चात् उसके विद्रोही होने पर मस्तक कटा देना, तबकाते नासिरी' में शहाबुद्दीन का प्रथम युद्ध में बुरी तरह हारना एवं खांडेराय (रासो के अनुसार चावंडराय) द्वारा घायल होने पर एक खिलजी प्यादे द्वारा घोड़े पर उठा कर ले भागना, दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज की सेना में १५० राजा होना, युद्ध होने पर पृथ्वीराज का हाथी से उतर घोड़े पर चढ़ कर युद्ध-भूमि से भागते हुए को क़त्ल करना लिखा है।

इस प्रकार मुसलमानी तवारीखें एक दूसरे से विपरीत हैं। दबी जबान से उन्हें एक-दो बार शाह का पराजित होना अवश्य स्वीकार है, घायलावस्था में पृथ्वीराज के पकड़े जाने पर भी यवनों का अत्याचार करना भी उन्हें स्वीकृत है। पृथ्वीराज को विशेष पराक्रमी और उसकी सैन्य शक्ति को भी उन्होंने प्रबल माना है लेकिन यवन शक्ति की विशेषता बतलाने के लिए ही उन्होंने पृथ्वीराज के अन्तिम अवस्था में पकड़े जाने और मारे जाने में उसके शौर्य को एकदम गिरा दिया है। अतः उनका ऐसा लिखना एक पर्याय है और यवन योद्धाओं की प्रशंसा में उनमें बहुत कुछ अतिशयोक्ति है, किन्तु पृथ्वीराज और उसके सामन्तों के विषय में प्रायः चुप हैं। अर्थात् तवारीख भी कल्पना से वंचित नहीं है।

रासो में एक पक्ष को लेकर रचना नहीं की है। उनमें जैसा हिन्दू वीरों की वीरता पर प्रकाश डाला है वैसा ही विपक्षी वीरों के लोहास्त्र का भी सम्मान हुआ है और रासो ग्रन्थ से भी हम पृथ्वीराज एवं उसके सामन्तों के पराक्रम की जानकारी पा सकते हैं एवं देश-द्रोही कन्नौजपति जयचन्द तथा गुर्जरेश्वर भोरा भीम के जैसे चरित्र से हिन्दुओं की इर्ष्या के तांडव नृत्य का भी हम दिग्दर्शन कर सकते हैं। वीरांगनाओं के उच्च विचार और साहित्य-सामग्री के साथ साथ उस समय के सच्चे इतिहास का पता भी हमें इसी से मिल सकता है।

———

पृथ्वीराज रासो की विवेचना

विभाग तृतीय

वर्णित विषय

पाश्चात्य विद्वानों की कतिपय संमतियाँ

गार्सां द तासी(१)

इस्तवार द ला लितरात्यूर एंदूई ए एन्दुस्तानी । द्वितीय संस्करण, प्रथम भाग, पेरिस, पृ० ३८२-८६ ।

"चन्द या कविचंद और चंद्र भट्ट (चन्द्र भट्ट) एक अति प्रसिद्ध इतिहासकार और हिन्दी कवि है, जिसने दिल्ली के अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज का चरित्र (इतिहास) लिखा है । इस पद्य-बद्ध इतिहास में राजपूताना का उस युग का इतिहास है, जिसमें कवि ने एक प्रमुख भाग लिया । अति प्राचीन हिन्दी की यह एक निश्चित रचना है चन्द पिथौरा या पृथ्वीराज का कवि था, जिनका अन्य राजपूत परिवारों सहित उसने गुणानुवाद किया है अस्तु वह बारहवीं शताब्दी के अन्त में वर्तमान था ।

कवि के ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति लन्दन की एशियाटिक पुस्तकालय के मैकेंजी संग्रह का एक श्रेष्ठ प्रति है, जिसे प्रदान करने का गौरव मेजर काल फील्ड को है । राबर्ट लेंज नामक एक रूसी विद्वान् ने उसके एक भाग का अनुवाद किया था, जिसे सेन्ट पीटर्स बर्ग पहुँच कर सन् १८३८ ईस्वी में वह प्रकाशित करना चाहता था; परन्तु इस युवक की असामयिक मृत्यु ने पूर्वी भाषा तथा साहित्य के विद्वानों को उसका कौशल देखने से वंचित कर दिया । रायल एशियाटिक सोसाइटी की प्रति का फारसी शीर्षक जिसका भाव है 'पिंगल भाषा (भारतीय पद्य) में पृथ्वीराज का इतिहास कवि चन्द वरदायी कृत ।' जेम्स टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास की सामग्री का अधिक भाग इसी काव्य से लिया है । उन्होंने इसके बड़े भाग का अनुवाद भी किया था; परन्तु उनकी मृत्यु उसकी समाप्ति और

प्रकाशन में बाधक बन बैठी। वे इस ऐतिहासिक काव्य के एक उल्लेखनीय स्थल का अनुवाद मात्र 'संयोगिता नेम' के नाम से प्रकाशित कर सके, जिसकी प्रतियाँ उन्होंने केवल कुछ मित्रों को दी थीं। यह अनुवाद एशियाटिक जर्नल की नवीन माला भाग २५ में पुनः प्रकाशित हुआ था। इस काव्य के रचयिता के विषय में उनका कथन इस प्रकार है—

'चन्द का ग्रन्थ अपने युग का पूर्ण इतिहास है। पृथ्वीराज के शौर्य चरित्र का वर्णन करनेवाले एक लाख पद और ६९ समय वाले इस ग्रन्थ में राजस्थान के प्रत्येक उच्च वंश को अपने पूर्वजों का कुछ न कुछ वृत्तान्त अवश्य मिलेगा। इसीलिये राजपूत नाम से कुछ भी सम्बन्ध रखनेवाली सारी जातियों के संग्रह में यह ग्रन्थ पाया जाता है। ·····पृथ्वीराज के युद्धों, उनकी मैत्रियों, उनके अनेक शक्तिशाली सहायकों तथा उनके निवासों और वंशावलियों के कारण चन्द की रचना इतिहास, भूगोल; पौराणिक गाथाओं तथा प्रथाओं आदि की दृष्टि से अमूल्य ठहरती है। इसीलिये उसके ग्रन्थ का नाम 'प्रिथुराज-राजसू' अथवा 'पृथ्वीराज विशाल बलिदान' है।

श्री वार्ड ने 'हिस्ट्री ऑव लिटरेचर ऐन्ड माईथोलोजी ऑव दि हिन्दूज' नामक अपनी पुस्तक के द्वितीय भाग, पृष्ठ ४८२ पर इस ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए उसे कनौजी भाषा में लिखा बताया है।

मेरा अनुमान है कि यह वही ग्रन्थ है, जिसे कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रिथिवीराजवासा (भाषा) नाम दिया गया है अथवा उक्त सोसाइटी की पुस्तक-संग्रह-सूची में जिसे प्रिथी अथवा वियाना (आगरा प्रदेश के नगर) प्रथम सम्राट 'पृथ्वीराज की विजयों का वर्णन' शीर्षक में किया गया है। यह जैसा कुछ भी हो, सोसाइटी के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ का जो भाग संगृहीत है, उसका शीर्षक है 'पृथ्वीराज रासो पद्मावती खण्ड'।

उपर्युक्त विवेचना के अतिरिक्त अपनी प्रस्तावना में हिन्दी की प्रारम्भिक स्थिति पर मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें मैं इतना जोड़ना चाहूँगा कि इस काव्य में ६० गीत हैं तथा 'आइने अकबरी' में इसकी प्रशंसा की गई है। कर्नल टॉड ने सर्व प्रथम लन्दन की रायल एशियाटिक सोसाइटी के ट्रैंजेकशन्स के प्रथम भाग में इस काव्य के कुछ अंश प्रकाशित किये थे तथा पेरिस के एशियाटिक जर्नल की टिप्पणी

का श्रेय भी मेरे अनुमान से उन्हीं को है। इस काव्य में भारत के मुस्लिम आक्रमणकारियों से लोहा लेने वाले हिन्दू सम्राट् का वर्णन है। पृथ्वीराज के समकालीन उत्तर भारत के कई राजाओं के विस्तृत वर्णन जो और कहीं नहीं मिलते, इस काव्य में पाये जाते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बारहवीं शताब्दी के भारत का पूर्ण चित्र है। दुर्भाग्य से इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों में जो भारत वर्ष में मूल्यवान् और दुर्लभ हैं, अत्यधिक पाठ भेद पाये जाते हैं। श्री एफ० एस० ग्राउज ने जे० आर० ए० एस० बी० भाग १५०, नवीन माला में बनारस की हस्त लिखित प्रति के विषय का विस्तृत परिचय देकर उसमें प्रथम गीत का अनुवाद प्रकाशित किया है।

श्री एस० एम० फैलन को अजमेर में एक दिन एक अपढ़ ऊँटवाह मिला। उसने कंठस्थ किये हुए चंद की रचना के दीर्घ अंश सुनाये, जिन्हें अन्य भारतीयों को गाते सुन कर उसने याद किया था। एक निरक्षर निम्नश्रेणी के व्यक्ति ने इस प्रसिद्ध राजपूत काव्य के छंद पूर्ण उत्साह और जोश के साथ गाये—यह इसका प्रतिपादक है कि अस्त्र-शस्त्रों के शौर्य की वह गाथा जिसका रंगमंच रजवाड़ा था, अभी भी जनता की स्मृति में था।

यद्यपि चन्द का काव्य हिन्दवी या प्राचीन हिन्दी में लिखा है, फिर भी इसमें अरबी फारसी शब्द मिलते हैं, जिनका हिन्दी में प्रवेश हो चुका था; जैसे आतश मारूफ, सिताब, सरदार, कोह आदि।

यह कहा गया है कि राजपूत जाति का यह काव्य भारत में कहीं प्रकाशित हो चुका है, परन्तु यह कहना अधिक उचित होगा कि इसका प्रकाशन होने जारहा है और हिन्दी साहित्य का यह अभीष्ट (ग्रन्थ) बीम्स जैसे विद्वान् द्वारा पूरा होगा। इस स्तुत्य कार्य को वे सफलता पूर्वक समाप्त करें-तथा इतिहास और भाषा-विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण इस सम्पूर्ण काव्य का अनुवाद भी वे कर सकें, यही हमारी कामना है।

कविचंद का लिखा 'जयचन्द्र प्रकाश' (जयचन्द्र इतिहास) नामक एक अन्य ग्रन्थ भी कहा जाता है। पहले काव्य के समान यह भी कन्नौजी में लिखा है, जिसके उल्लेखकर्ता वार्ड महोदय हैं स्वर्गीय श्री एच० इलियट का अनुमान था कि चन्दकृत 'जयचन्द्र प्रकाश' कोई भिन्न ग्रन्थ नहीं, वरन् पृथ्वीराज-चरित्र का कन्नौज या कन्नौज खण्ड मात्र है, जिसका अनुवाद टॉड ने 'संगोप्ता नेम' नाम (संयोगता नेम) से एशियाटिक जर्नल में प्रकाशित किया है"
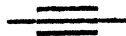
(२) जेम्स मोरिसन—

विवना ओरियंटल जर्नल, भाग ७, १८९३ के पृ० ११८–९२ में श्री जेम्स मोरिसन ने 'समअकाउन्ट आव दि जीनिओलॉजीज़ इन दि पृथ्वीराजविजय' शीर्षक अपने लेख में चंदवरदायी और पृथ्वीराज रासो के विषय में इस प्रकार लिखा था—

"पृथ्वीराज के इतिहास के विषय में अन्य प्रचलित प्रमाणों को कतिपय शब्दों में समाप्त किया जा सकता है। उनके और उनके वंश के लिये सुप्रसिद्ध तथा सूचना का प्रधान स्रोत चन्दवरदायी कृत प्राचीन हिन्दी का पृथ्वीराज रासो है। कुछ समय से उक्त ग्रन्थ की चन्द द्वारा रचना की प्रामाणिकता तथा सम्पूर्ण काव्य के मूल्यांकन को लेकर गम्भीर शंकाएँ उठी हैं। जोधपुर के मुरारिदान शंका उठाने वालों में प्रथम हैं, जिन्होंने प्रो० बूलर को अपने कारण बताते हुए (जर्नल ऑव दि बोम्बे ब्राञ्च आव दि आर०ए०एस०, १८७६) उल्लेख किया है कि चंद भी अपने स्वामी पृथ्वीराज सहित युद्ध में मारा गया था, फिर भी चौहान नरेश के पुत्र और उत्तराधिकारी के युद्धों का विस्तृत वर्णन उसी ने लिख रखा है। चंद की तथा कथित रचना में एक बड़ी संख्या में फ़ारसी शब्दों का मेल भी उसकी प्राचीनता में संदेह का एक कारण है।

१८८६ में कविराज श्यामलदास ने पृथ्वीराज रासो के उल्लेखों तथा संवतों की सूक्ष्म जाँच की (जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, १८८७ पृ० ५) और उन्हें निराधार तथा अशुद्ध सिद्ध किया है।

(३) प्रो० बूलर—

प्रोसीडिंग्ज़ ऑव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल जनवरी-दिसम्बर १८९२ पृ० ८२ पर प्रो० बूलर द्वारा लिखे गये एक पत्र के निम्न अंश को भाषा-वैज्ञानिक मंत्री द्वारा सुनाये जाने का उल्लेख है।

"पृथ्वीराज रासो के प्रश्न पर एकेडेमी के लिये मैं एक टिप्पणी प्रस्तुत कर रहा हूँ और मुझे उनका समर्थन करना पड़ेगा, जो इसे जाली कहते हैं। मेरे एक शिष्य श्री जेम्स मोरिसन ने 'पृथ्वीराज विजय', नामक संस्कृत ग्रन्थ का अध्ययन कर लिया है, जो मुझे १८७५ में काश्मीर में प्राप्त हुआ था, तथा उन्होंने सन् ११५०–

७५ ई० लिखित जोनराज की टीका भी पढ़ली है । पृथ्वीराजविजय का कर्ता निःसन्देह पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था । वह संभवतः काश्मीरी था और एक अच्छा कवि तथा पंडित भी था । उसका लिखा हुआ चौहानों का वृत्तान्त चन्द के लिखे हुए विवरण के विरुद्ध है और वि० सं० १०१० तथा वि० सं० १२२५ (जे०ए०एस० बी, भाग ५५, जिल्द प्रथम १८८६, पृ० १५ और टिप्पणी) के शिलालेखों से मिल जाता है । 'पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, में पृथ्वीराज को जो वंशावली दी हुई है, वही उक्त लेखों में भी मिलती है और उसमें दी हुई घटनाएं दूसरे प्रमाणों अर्थात, मालवा और गुजरात के शिलालेखों से मिल जाता है ।

उक्त पुस्तक में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के विषय में लिखा है—उसका पिता अर्णोराज और उसकी माता गुजरात के सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह की पुत्री कांचन-देवी थी । अर्णोराज की पहली रानी सुधवा से जो मारवाड़ की कन्या थी, दो पुत्र उत्पन्न हुए । उसमेंसे बड़े का नाम किसी ग्रन्थ या शिलालेख में लिखा नहीं मिलता और छोटे का विग्रहराज (वीसलदेव) था ।

ज्येष्ठ पुत्र ने जिसका नाम किसी शिलालेख में नहीं मिलता, अपने पिता को मार डाला । इस विषय में कवि लिखता है—'उसने अपने पिता की वैसी ही सेवा की, जैसी परशुराम ने अपनी माता की और अपने पीछे दीपक की बत्ती के समान दुर्गन्ध छोड़ गया' । अर्णोराज के बाद उसका पुत्र विग्रहराज और उसके अनंतर उसका पुत्र अमरगांगेय (अमरगंगू) राजा हुआ । फिर उक्त पितृघाती के पुत्र पृथ्वीभट या पृथ्वीराज (द्वितीय) को गद्दी मिली । पृथ्वीराज के बाद मंत्रियों ने सोमेश्वर को राज्यसिंहासन पर बिठाया, जिसने तब तक सारा समय विदेश में बिताया था और अपने नाना जयसिंह से शिक्षा पाई थी । सोमेश्वर ने चेदि (जबलपुर जिला) की राजधानी त्रिपुरी में जाकर चेदिराज की कन्या कर्पूरदेवी से विवाह किया,जिससे उक्त काव्य के चरित्र नायक पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए । अजमेर की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही समय पश्चात् सोमेश्वर का शरीरान्त हो गया और अपने पुत्र पृथ्वीराज की अल्पवयस्कता में अपने मन्त्री कादंबवास (कादंबवास) की सहायता से कर्पूरदेवी राज्य कार्य चलाने लगी ।

उक्त काव्य में कहीं इस बात का निशान नहीं है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनंगपाल की कन्या से उत्पन्न हुआ था और उसे अनंगपाल ने गोद लिया

था। यह आश्चर्य की बात है कि पुराने मुसलमान इतिहासकारों ने भी यह कहीं नहीं लिखा कि पृथ्वीराज दिल्ली में राज्य करता था। वे उसे अजमेर का राजा बतलाते हैं। उनका कहना है कि वह राजद्रोह के कारण विजेताओं (मुसलमानों) के हाथ से जिन्होंने उसे उसके राज्य में कुछ अधिकार दे रक्खे थे, अजमेर में भाग गया।

मुझे इस काल के इतिहास के संशोधन की बड़ी ही आवश्यकता प्रतीत होती है और मैं समझता हूँ कि चंद के रासो का प्रकाशन बद कर दिया जाय तो अच्छा होगा। वह ग्रन्थ जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया था। पृथ्वीराज विजय के अनुसार पृथ्वीराज के बंदिराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था, न कि चंद बरदायी"

प्रो० बूलर सदृश विद्वान् की प्रतिक्रिया शीघ्र ही हुई। इसी वर्ष १८९३ ई० की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की प्रोसिडिंग्स पृ० ११९ पर पृथ्वीराज रासो के सम्पादक और अंग्रेजी अनुवादक श्री ग्राउज़ महोदय का मृत्यु सम्वाद सोसाइटी को देते हुए माननीय विद्वान् श्री जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन जो चंद की प्रशसा में बहुत कुछ लिख चुके थे, अपना मत परिवर्तित कर चुके थे, लिखा कि—

"......पिछले कुछ वर्षों से उन्होंने अपने का प्रधानतः चन्द बरदायी रचित प्रिथिराज रायसा के उचित सम्पादन कार्य की सहायता में जिसे सोसाइटी ने कुछ समय पूर्व उठाया था, लगा रखा था। इसके सम्बन्ध में उनका अन्तिम लेख १८७८ ई० में प्रकाशित हुआ था। अपने अन्वेषण के बीच में इस काव्य के अनुवादक और वैज्ञानिक सम्पादन के सिद्धान्तों को लेकर श्री जॉन बीम्स महोदय से उनका विवाद भी छिड़ा था। दोनों विद्वानों के तर्क जर्नल में क्रमशः प्रकाशित होते रहे हैं, जिनका अब थोड़ा साहित्यिक मूल्य मात्र रह गया है। क्योंकि यह बात निश्चित हो चुकी है कि उक्त रचना आधुनिक जाल है।"

---

(४) जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन—

मोडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान। जे० आर० ए० एस० बी०, भाग १, सन् १८८८ ई०, पृष्ठ ३-४ पर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने फ्रांसीसी विद्वान् तासी के अतिरिक्त चंदबरदायी के विषय में इस प्रकार लिखा था—

"६- चन्द्र कवि; कवि और बन्दीचन्द्र या चन्द बरदायी समय ११६१ ई० ।

राग०, १ सन० वह प्राचीन गायक रणथंभौर के वीसलदेव चौहान का वंशज था (टॉड, २,४४७ और टिप्पणी, कलकत्ता संस्करण, २,४६२ और टिप्पणी)। कवि सूरदास विवरण देखिये। वह पृथ्वीराज के दरबार में आया और उसका मंत्री तथा कवीश्वर नियुक्त हुआ। उसकी रचनाओं का संग्रह मेवाड़ के अमरसिंह (परिचय संख्या १६१, राज्यकाल १५६७-१६२१ ई० देखिये; टॉड १ भूमिका पृष्ठ १३, पृ० ३५० और टिप्पणी; कलकत्ता संस्करण, भाग १, भूमिका पृ० १२, पृ० २७१ और टिप्पणी) ने १७ वीं शताब्दि के प्रथम चरण में कराया। उसी समय संभवतः उन्हें अंशतः शुद्ध करके वर्तमान सांचे में ढाला गया, जिसके कारण एक प्रस्थापना सामने आई (देखिये जे०ए०एस०बा०, १८८६, पृ० ५ पर कविराज श्यामलदास का 'चंदबरदायी के महाकाव्य की प्राचीनता और प्रामाणिकता' पर लेख, जिसमें हमारे कवि पर प्रहार किया गया है, तथा उसके प्रतिवाद में 'चंद बरदायी के पृथ्वीराज रासो की संरक्षा' शीर्षक पुस्तिका, जिसके लेखक पं०मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या हैं और जो सन् १८८७ ई० में बनारस मेडिकल हाल प्रेस में मुद्रित हुई है) कि रासो आधुनिक जाल है, । टॉड, के अनुसार कवि के काल का यह पूर्ण इतिहास है। (टॉड १, २५४, कलकत्ता संस्करण १, २७३); जिसमें ६६ पुस्तकें हैं तथा १,००,००० पद जिनमें से उन्होंने ३०,००० पदों का अनुवाद किया, जितने कोई यूरोपीय विद्वान अनूदित करने में सफल नहीं हो सका। चंद और पृथ्वीराज दोनों ११६३ ईस्वी में मुस्लिमों से युद्ध करते हुए मारे गये थे। जैसा ऊपर लिखा जा चुका कवि सूरदास उनके एक वंशज थे और और शार्ङ्गधर (संख्या ८) भी उन्हींके कुल में हुए जो हम्मीररायसा और हम्मीरकाव्य के प्रणेताकहे जाते हैं। (टॉड, २ टिप्पणी ४५२, कलकत्ता संस्करण, २, टिप्पणी ४६७)। प्रिथीराज रायसा का कुछ अंश बीम्स महोदय ने सम्पादित किया है और कुछ डा० हार्नली ने सम्पादित और अनुवादित इस कार्य में अत्यधिक कठिनाई होने के कारण दोनों विद्वान अधिक प्रगति नहीं कर सके। पं० माहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने सम्पूर्ण काव्य का आलोचनात्मक सम्पादन प्रारम्भ किया है और उसके दो समय बनारस के मेडिकल हाल प्रेस में सन् १८८७ ई० में प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस काव्य का महोबा खंड जो संभवतः जाली है, या चन्दकृत नहीं है, एकबार से अधिक हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है (टॉड ६१४ और टिप्पणी, कलकत्ता

संस्करण, १, ६४८ और टिप्पणी, -यह आल्हा ऊदर (ऊदल) (जिन्हें पूर्वी हिन्दुस्तान में प्रचलित परम्परा में आल्हा, उद्दल करते हैं) नामक प्रसिद्ध वीरों के विषय में है तथा इसका वह अनुवाद जिसकी सत्यता की जाँच करने में असमर्थ हूँ, फतेहगढ़ के ठाकुरदास का किया हुआ है और इसका उल्लेख आल्हाखण्ड के नाम से कवि जगनिक (संख्या ७) शीर्षक के प्रसंग में कर दिया गया है। यद्यपि इसमें भी उन्हीं वीरों का वर्णन हैं। गार्सां द तासी के (इस्तवार इत्यादि, १,१ ३८ के अनुसार राबर्ट लेंज नामक एक रूसी विद्वान् ने चंद के काव्य के एक भाग का अनुवाद किया था, जिसे सन १८३६ ई० में सेन्ट पीटर्स वर्ग पहुँच कर वह प्रकाशित करना चाहता था; परन्तु इस विशारद की असामयिक मृत्यु के कारण पूर्वी भाषाओं और साहित्य के अनुरागीं उसका कौशल देखने से वञ्चित रह गये। कर्नल टॉड ने इसके एक चरित्र का अनुवाद 'संजोगता नेम' के नाम से (टॉड; १. ६२३ और टिप्पणी, कलकत्ता संस्करण, १, ६५७ और टिप्पणी एशियाटिक जर्नल, भाग २५, पृ० १०१-१०३, १६७, २११, २७३-२८६ पर प्रकाशित किया है।

कवि के ग्रन्थ का अध्ययन करने के बाद मैं उसके काव्य सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने के लिये अनुप्राणित हो गया हूँ। परन्तु राजपूताने की विभिन्न बोलियों से अपरिचित कोई व्यक्ति इसे आनन्द से पढ़ सकता है, इसमें मुझे सन्देह है। यह चाहे कुछ भी हो; परन्तु यह काव्य भाषा-विज्ञान के विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि अभी तक प्राप्त सामग्री को देखते हुए योरोपीय अन्वेषकों के सामने अर्वाचीन प्राकृतों और प्राचीन तम रचनाओं के बीच की कड़ी के रूप में केवल यही (ग्रन्थ) मात्र है। चन्द के वास्तविक पाठ न होने पर भी हमें उसकी रचना में गौडीय साहित्य के अति प्राचीन अभिज्ञ निदर्शन प्राप्त होते हैं, जो शुद्ध अपभ्रंश शौरसेनी प्राकृत रूपों से भरे पड़े हैं।

गार्सां द तासी के अनुसार इस कवि ने जै चन्द्र प्रकाश या जयचन्द्र का इतिहास नामक एक ग्रन्थ और लिखा है, जिसकी भाषा रायसा सदृश है, तथा जिसके उल्लेख कर्ता वार्ड महोदय हैं।

('चंदवरदायी और उनका काव्य' ग्रन्थ के परिशिष्ट से साभार लिया गया।)

भारतीय विद्वानों की संमतियां

(१) पं० गणेशबिहारी मिश्र,
पं० श्यामबिहारी मिश्र,
पं० शुकदेवबिहारी मिश्र,

महाकवि चंदबरदाई

चन्द बरदाई हिन्दी का वस्तुतः प्रथम कवि है। इसके पहिले भी पुषी आदि कवि होगये हैं, परन्तु उनके नामों के अतिरिक्त उनकी रचना आदि पढ़ने का हम लोगों को सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। चन्द बरदाई की कविता से प्रकट होता है कि वह प्रौढ रचना है और छन्द आदि की रीतियों पर इसमें ऐसा अनुगमन हुआ है कि जान पड़ता है कि यह महाशय दृढ़ रीतियों पर चलता था और स्वयं इसने हिन्दी काव्य-रचना की नीव नहीं डाली। उस समय चारण आदि राजा-महाराजाओं के यहां प्रायः रहा करते थे और उनका यह काम ही था कि हिन्दी कविता में राज-यश गान करें। स्वयं कविचन्द ने लिखा है कि गुजरात में एक बार राजा भोराभीमंग के राजकवि से उससे वाद हुआ था, जिससे भी उस समय दरबारों में कवियों के उपस्थित रहने का प्रमाण मिलता है। कवियों की उस समय इतनी चाह थी कि चित्तौर के रावल समरसिंहजी का ब्याह जब पृथ्वीराज की भगिनी पृथा कुँवरी से हुआ था, तब उन्होंने कलेवा करने के समय दायज में सहठ कविचन्द के पुत्र जल्ह कवि को ले लिया, तब भोजन किया। यह हाल रासो में लिखा है। रासो के समाप्त करने के पहिले ही कवि चन्द का शरीर-पात होगया था, तब उसके इसी पुत्र जल्ह ने उसका अन्तिम भाग लिख कर ग्रन्थ समाप्त किया। इन सब बातों से विदित है कि उस समय हिन्दी-कविता का अच्छा प्रचार था, पर तत्कालीन अन्य कवियों के ग्रन्थ ऐसे उत्तम न थे कि आठ सौ वर्षों के पीछे भी अब तक जीवित रहते और उनका प्रचार लोक में रहता। उस समय और उसके पहिले के ग्रन्थों में काल के कुचक्र ने केवल इस एक ग्रन्थ रत्न को

सजीव रक्खा और वह शेष सब ग्रन्थों को निगल कर अपने उदर-समुद्र में सदा के लिये लीन कर गया, जहाँ से अब उनका निकलना ऐसा ही दुःसाध्य है जैसा कि स्थिर महासागर में फेंके हुए एक लोह के छोटे से टुकड़े का। अतः यद्यपि वास्तव में कविचन्द हिन्दी का प्रथम कवि न था; परन्तु वह हिन्दी का प्रथम उत्तमोत्तम कवि अवश्य था और काल ने अब अन्य कवियों के यशों को चर्वित कर के उसे प्रथम कवि बना भी दिया है।

कविचन्द ने अपने जन्मादि के विषय में कुछ वर्णन नहीं किया और पृथ्वीराज इत्यादि के विषय संवत् लिखते हुए भी अपने विषय संवत् नहीं लिखे। हम लोग इतना तो अवश्य जानते हैं कि वह जगात गोत्र का भाट था और उसका जन्म लाहौर में हुआ था. पर इससे अधिक उसके जन्म पूर्व पुरुष आदि के विषय निश्चयात्मक रीति पर कुछ नहीं जानते। चन्द के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०५ विक्रम में हुआ था और अनुमान से जान पड़ता है कि वह पृथ्वीराज से अवस्था में कुछ बड़ा था, क्योंकि पृथ्वीराज इसकी सलाहों को आदर से सुनता था और दूसरे एक स्थान पर अपनी सलाह न मानने पर लिखा है कि राजा ने धन और वय से मत्त होकर मेरी अनुमति नहीं मानी। यदि यह राजा से बड़ा न होता तो ऐसा लिखने का इसे साहस ही न होता और यदि यह ऐसा लिखता भी तो राजा इस पर अवश्य रुष्ट हो जाता पर पृथ्वीराज का इससे रुष्ट होना पाया नहीं जाता है और ऐसा लिखने के पीछे भी इसका पूर्ववत् मान रहा है। फिर पृथ्वीराज की पुत्री पृथाकुँवरी के विवाह के समय इसका पुत्र जल्ह ऐसा गुणी हो चुका था कि रावल समरसिंह ने उसे सहठ दायज में लिया। अतः वह उस समय सम्भवतः २५ वर्ष का होगा और तब चन्द शायद ४५ साल का हो। इसके पीछे संवत् १२२८ में पृथ्वीराज ने एक खजाना पृथ्वी खुदा कर पाया था, जिसका वर्णन रासे के ७३८ पृ०में है। पृथ्वीराज की मृत्यु संवत् १२४८ में ४३ वर्ष की अवस्था हुई थी। उसी समय चन्द की भी मृत्यु हुई; क्योंकि वह राजा के साथ ही मारा गया था. सो १२४८ वि० में चन्द की अवस्था सम्भवतः ६५ वर्ष की थी। अतः उसका जन्मकाल ११८३ विक्रमी अथवा सन् ११२६ ई० के लगभग समझ पड़ता है। इससे बहुत अधिक भी इनकी अवस्था नहीं जान पड़ती; क्योंकि यदि अधिक बुड्ढे होते तो मृत्यु पर्यन्त ये युद्ध में न सम्मिलित रह सकते। इस दूसरे हिसाब से भी उसकी अवस्था पृथ्वीराज से प्रायः २८ वर्ष बड़ी निकलती है जो बात प्रथम अनुमान से भी मिलती है। चन्द की मृत्यु पृथ्वीराज के साथ ही हुई

यह बात प्रसिद्ध है। अतः सन् ११६३ ई० में वह मरा। कहते हैं कि जब शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को पकड़ ले गया, तब चन्द राजा के छोड़ाने के विचार से गोर देश को गया और वहीं मारा गया।

चन्द के पितादि का हाल हमें ज्ञात नहीं है। यह लाहोर में उत्पन्न हुआ था और अजमेर में इसका पालन-पोषण हुआ था। यह पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर की राजधानी थी। यहीं चन्द पृथ्वीराज के साथ रहने लगा और यहीं यह पृथ्वीराज के तीन प्रधान मन्त्रियों में एक हो गया। शेष दोनों मंत्रियों के नाम कैमास और गुरुराम पुरोहित थे। कैमास तीनों में भी प्रधान था। चन्द अजमेर से मृत्यु पर्य्यन्त सदैव पृथ्वीराज के साथ रहा और युद्धों में भी लड़ता रहा। जो हाल रासो में वर्णित है उस सब में एक प्रकार से चन्द की भी जीवनी वर्णित है। इसकी स्त्री बड़ी गुणवती थी और रासो उसी से कहा गया है। बीच बीच में उसने बहुत प्रश्न भी किये हैं। इनका पुत्र जल्ह बड़ा गुणवान था जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। रावल समरसिंहजी उसे दहेज में ले गये थे और वह उसी समय से चित्तौर में रहने लगा। यह रावल समरसिंह चित्तौड़ नरेश और वर्तमान उदयपुर के महाराणा के पूर्व पुरुष थे। एक बार कैमास पृथ्वीराज की ओर से गुजरात के राजा भोरा भीमग से लड़ने गया, पर भीमंग की भेजी हुई एक खत्रा-बालिका पर ऐसा आसक्त हो गया कि पृथ्वीराज को छोड़ भीमंग से मिल गया और नागौर पर उसका अधिकार करा दिया। यह दशा देख चन्द बरदाई एक सेना सहित नागौर जाने लगा। मार्ग में भीमंग के दल से युद्ध भी हुआ, पर उस दल को घोर समर में पराजित करके यह वीर कवि कैमास के पास जान पर खेल कर जा पहुँचा। इसे देख कर कैमास को ऐसी लज्जा लगी कि वह सर न उठाता था। तब चन्द ने उसे समझाया कि भूल सबसे हो जाती है, पर भूल का न सुधारना ही मुख्यशः निन्द्य है। इस पर चन्द और कैमास ने मिल कर युद्ध में भोरा भीमग के दल को पराजित करके नागौर पर फिर पृथ्वीराज का अधिकार कराया और तब ये दोनों दिल्ली लौट आये। इस वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि चन्द बरदाई कोरा कवि ही न था, वरन् प्रचण्ड युद्धकर्त्ता भी था।

पृथ्वीराज के यहाँ चन्द की ऐसी प्रतिष्ठा थी जैसी कि खास राजा के भाई की हो एक बार चन्द द्वारिकापुरी को दर्शनार्थ गया। उस समय इसके साथ बहुत

से हाथी सैंकड़ो घोड़े, और हजारों पैदल गये। मार्ग में यह चित्तौर के समीप भी ठहरा। उस समय पृथ्वीराज की भगिनी पृथाकुंवरि स्वयं इसके डेरे पर इससे मिलने आई और तब यह कवि चित्तौर जाकर महारानी के भाई की भांति दो चार पहुनई में वहां रहा। महारानी पृथाकुंवरि रावल समरसिंह की पटरानी थी। यह हाल भी रासो में लिखा है। इससे इस कविरत्न के सन्मान का हाल प्रत्यक्ष प्रकट होता है। द्वारिका से पलटते हुए चन्द कवि पृथ्वीराज के शत्रु भोरा भीमंग के यहां भी गया और वहां भी इसने पृथ्वीराज का यशगान किया। वहां के राज कवि को इसी अवसर पर चन्द ने बाद में हराया था। कन्नौज के महाराजा जैचन्द के भाई का विवाह एक परम सुन्दरी राजकुमारी से होता था और बारात भी गई थी पर राजकुमारी की इच्छा पृथ्वीराज के साथ विवाह करने की थी। यह सुन कर पृथ्वीराज ने ससैन वहां जाने का विचार किया। यही झगड़ा जैचंद से शत्रुता फिर उभड़ने का प्रधान कारण हुआ। चन्द ने इस अवसर पर पृथ्वीराज को ऐसा करने से बहुत रोका पर उसने न माना। इसी पर चन्द ने लिखा है कि धन-वय-मत्त राजाने उसकी अनुमति का आदर न किया। यदि चन्द की अनुमति मानी जाती तो पृथ्वीराज और जैचन्द का झगड़ा न बढ़ता और शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को पराजित करने में समर्थ न होता।

चन्द बरदाई का एकमात्र ग्रन्थ पृथ्वीराजरासो है, परंतु इसी एक ग्रन्थ में २००० से ऊपर पृष्ठ हैं। यह ग्रन्थ मानों वर्तमान काल का ऋग्वेद है। जैसे ऋग्वेद अपने समय का बड़ा मनोहर ऐसा इतिहास बताता है, जो अन्यत्र अप्राप्य है, उसी प्रकार रासो भी अपने समय का परम दुष्प्राप्य इतिहास विस्तार-पूर्वक बताता है। पृथ्वीराज के समकालीन प्रायः सभी भारतवर्षीय राजाओं का सविस्तार वर्णन इस ग्रन्थरत्न में मिलता है। पर दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ अप्राप्य होगया था। यह देख काशी-नागरी प्रचारणी सभा साहस करके प्रचुर द्रव्य व्यय से इसे प्रकाशित कर रही है यहां तक कि प्रायः १८०० पृष्ठ तक छप चुके हैं और शेष छपते जाते हैं। पण्डितवर मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने रासो पर बहुत अधिक और परम प्रशंसनीय श्रम किया है और इसके विषय बहुत सी बातें खोज द्वारा निकाली हैं। उनके साथ मित्रवर राधाकृष्णदास एवं श्यामसुन्दरदास ने भी इसके विषय प्रचुर श्रम किया और यह इन्हीं तीनों महाशयों के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। दो भागों के पीछे बाबू राधाकृष्णदास की अकाल मृत्यु से अब शेष भाग दो ही

महाशय सम्पादित करते हैं। रासो में सम्पादकों ने फुट नोट में अर्थ पाठान्तर आदि भी दिये हैं, जो सन्तोषदायक हैं।

रासो की रचना से प्रकट होता है कि वह जैसे जैसे घटनायें होती गई हैं वैसे ही वैसे बनता गया है। ऐसा नहीं हुआ है कि सब घटनाओं के पीछे वह एक साथ बनाया गया हो। इसी कारण जैसे कविगण किसी घटना के वर्णन में प्रायः कह दिया करते हैं कि इस घटना से आगे चलकर बहुत उपद्रव अथवा लाभ हुए हैं, जो आगे लिखे जावेंगे, वैसे कथन रासो में नहीं पाये जाते। इसी कारण से रासो में प्रत्येक घटना का बड़ा ही सजीव, परिपूर्ण एवं भव्य वर्णन है। प्रत्येक घटना में जैसी जैसी मन्त्रियों से सलाहें ली गईं, और जिस जिस मंत्री ने जो जो कहा वह रासो में लिखा है, चाहे वह अनुमतियाँ नितान्त साधारण ही क्यों न हों। इसी प्रकार युद्धों में जितने जितने दिन प्रत्येक युद्ध रहा, जिस जिस में जो जैसा लड़ा और जिस प्रकार अपनी अथवा शत्रु की चमू रक्खी गई, वह सब अत्यन्त परिपूर्णता के साथ कहा गया है। प्रायः सब युद्धों में चन्द ने स्वसेन तथा शत्रु सेना दोनों की शोभा का वर्णन किया है और सदैव पृथक प्रकार से। इसी प्रकार चन्द ने न जानें कितने युद्धों के वर्णन दिये हैं, परन्तु उन सब में पार्थक्य वर्त्तमान है। इससे भी प्रकट होता है कि चन्द ने घटनाओं के साथ ही साथ रासो को बनाया है नहीं तो एक ही प्रकार की घटनायें लिखने में एक ही से वर्णन हो जाते और उनमें पार्थक्य बहुत कम रहता।

इन बातों के रहते हुए भी पण्डित महामहोपाध्याय कविराज श्यामलजी को रासो के असली ग्रन्थ होने के विषय सन्देह हो गया है। उनका मत है कि रासो को किसी ने सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दी में चन्द के नाम से बना दिया है। इस सन्देह की पुष्टि में दो प्रधान कारण बतलाये जाते हैं; एक तो यह कि रासो में प्रति सैंकड़ा १० के लगभग अरबी फ़ारसी आदि के शब्द हैं और दूसरे इसमें लिखे हुए घटनाओं के संवत् सब अशुद्ध हैं। कहा जाता है कि चन्द के समय हिन्दी में इतने विदेशीय शब्दों का होना असम्भव है; क्योंकि मुसलमानों के आने के पीछे ही उनके शब्द हिन्दी में आ सकते थे।

विदेशीय शब्दों के विषय पण्डितवर मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या का मत है कि रासो में इतने अधिक विदेशीय शब्द हैं भी नहीं और थोड़े बहुत विदेशीय शब्दों का होना शंका का कारण भी नहीं हो सकता। बाबू श्याम सुन्दरदासजी का

मत है कि प्रति सैकड़े १० ऐसे शब्द रासो में हैं। हमारे मत में कम से कम ५ सैकड़ा ५ विदेशीय शब्द रासो में अवश्य होंगे, पर इस बात से कोई सन्देह होनी चाहिए। भारत में शहाबुद्दोन के साथ ही यवनों का प्रवेश नहीं हुआ वरन् उसके प्रायः दोसौ वर्ष पहले से ही महमूद गजनवी की चढाइयाँ होने ल थीं और पञ्जाब का एक बृहदंश मुसल्मानों के अधिकार में चला गया था। मह से भी पहले सिन्धदेश पर मुसल्मानों का अधिकार हो गया था। अतः पञ्जा भाषा में मुसलमानो शब्दों का मिलना स्वाभाविक ही था। फिर चन्द बरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था, जहाँ उस समय मुसल्मानों ही का अधिकार थ चन्द ने अपना बाल्य-काल इसो स्थान पर बिताया था। स्वयं पृथ्वीराज के र शहाबुद्दीन का भाई हुसेन और हुसेन पुत्र रहते थे और उन्हें जागीर भी मिलो थ पृथ्वीराज के राज्य की सीमा मुसलमानी राज्य से मिलो हुई थी। ऐसो दश व्यापारिक सम्बन्ध से भी मुसलमानों का यातायात हिन्दुओं में अवश्य रह होगा। इन सब कारणों से चन्द की भाषा में मुसलमानी शब्दों का होना स्व भाविक था और इन शब्दों के कारण हम रासो के विषय में कोई सन्देह न उठा सकते।

सन संवतों का गड़बड़ अधिक सन्देह का कारण हो सकता था, पर भाग्यव विचार करने से वह निर्मूल ठहरता है। चन्द के दिये हुए संवतों में घटना का काल अटकल पच्चू नहीं लिखा है, वरन् इतिहास द्वारा जाने हुए समय चन्द के कहे हुए संवत् सदा ६० वर्ष कम पड़ते हैं और यही अन्तर एक दो न प्रत्येक घटना के संवत् में देख पड़ता है। यदि चन्द के किसी संवत् में जोड़ दें तो ऐतिहासिक यथार्थ संवत् निकल आता है। चन्द ने पृथ्वीराज के जन दिल्ली गोद जाने, कन्नौज जाने, तथा अन्तिम युद्ध के ११११५, ११२२, ११५ ११५८ संवत् दिये हैं और इनमें ६० जोड़देने से प्रत्येक घटना के यथार्थ सं निकल आते हैं [पृथ्वीराज रासो पृष्ठ १४० देखिये]। प्रत्येक घटना में केव ६० साल का अन्तर होने से प्रकट है कि कवि इन घटनाओं के संवतों से अनभि न था, नहीं तो किसी में ६० वर्षों का अन्तर पड़ता और किसी में कुछ और यदि यह कहें कि यह अशुद्धता इस कारण हुई कि रासो सोलहवीं शताब्दी बना और उसका रचयिता वास्तविक संवतों से अनभिज्ञ था, तो आश्चर्यसागर डूबना पड़ता है। जो कवि पृथ्वीराज के समय की छोटी छोटी घटनाओं तक

जानने का श्रम उठावेगा वह क्या इतना भी न जान लेगा कि शहाबुद्दीन ने किस संवत् में भारत पर विजय पाई थी। मुसलमानी राजत्वकाल में इतना जानना कुछ कठिन भी न था। अतः चाहे जिस घटना का संवत् वह अशुद्ध लिखता पर इस घटना का काल अशुद्ध नहीं लिख सकता था। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि रासो में साधारण विक्रमीय संवत् का प्रयोग नहीं हुआ है वरन् किसी ऐसे संवत् का प्रयोग हुआ है, जो वर्त्तमानकाल के प्रचलित विक्रमीय संवत् से ९० वर्ष पीछे था। अब देखना चाहिए कि चन्द ने इस विभिन्नता का कुछ संकेत भी दिया है कि नहीं। रासो के १३८ वें पृष्ठ पर यह दो दोहे मिलते हैं:—

एकादस सै पंचदह विक्रम साक अनंद।
तेहि रिपु जयपुर हरनको भय प्रिथिराज नरिन्द ॥
एकादस सै पंचदह विक्रम जिमि ध्रम सुन्त।
त्रतिय साक प्रिथिराज को लिष्यो विप्र गुन गुप्त ॥

इससे प्रकट है कि चन्द पृथ्वीराज का जन्म ११९५ विक्रम अनन्द संवत् में बताता है। अतः वह साधारण संवत् न लिख कर 'अनन्द संवत्' लिखता है। अनन्द का अर्थ साधारणतया आनन्द भी कहा जा सकता है, पर इस स्थान पर आनन्द के अर्थ लगाने से ठीक अर्थ नहीं बैठता है। यदि आनन्द शब्द होता तो आनन्द वाला अर्थ बैठ सकता था। अतः प्रकट होता है कि चन्द संज्ञा का कोई विक्रमीय सवत् लिखता है। यह अनंद सवत् संवत् जान पड़ता है कि साधारण संवत् से ९० वर्ष पीछे था। पंडितवर पंड्याजी ने लिखा है कि उस समय के चित्तौर-नरेश समरसिंहजी और उनकी महारानी पृथाजी के कुछ पट्टे-परवाने आदि भी मिले हैं, जो असली जान पड़ते हैं। इनमें भी इसी अनन्द संवत् में समय दिया गया है जो साधारण संवत् से ९० वर्ष पीछे है। उन्होंने यह भी कहा है कि बाप्पारावल आदि के समय इसी संवत् से मिलाये जासकते हैं। नागरी-प्रचारिणी–सभा के खोज में जो पुराने आज्ञापत्र पृथ्वीराज समरसिंह आदि के मिले हैं, उनमेंभी इसी संवत् का प्रयोग हुआ है। अतः जान पड़ता है कि उस समय राजाओं के यहां यही अनन्द संवत् प्रचलित था।

अनन्द संवत् किस समय चला और साधारण संवत् से वह ९० वर्ष पीछे क्यों है? इसके विषय में पंड्याजी ने कई तर्क दिये हैं, पर दुर्भाग्यवश उनमें से

किसी पर हमारा मत नहीं जमता है। बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने भी एक कारण बतलाया है, पर यह भी हमें ठीक नहीं जान पड़ता।

पण्डितवर पंड्याजी की दलील पर विचार

दलील—

(१) अनन्द शब्द 'अ' और 'नन्द' से बना है। उनके अर्थ अभाव के हैं, जो गणना क्रम में शून्य के माने जाते हैं और नवनन्द हुए थे (जिन्होंने चन्द्रगुप्त के प्रथम राज किया था) सो नन्द के अर्थ गणना में ९ के इसी प्रकार माने जाते हैं—जैसे चन्द्रमा के १, नेत्र के २, राम के ३, वेद के ४, बाण के ५, शास्त्र के ६, ऋषि के ७ वसु के ८ माने जाते हैं। अतः अनन्द के अर्थ ९० हुए।

उत्तर—

यह यथार्थ है, पर ९० का अर्थ उपर्युक्त दोहे में लगाने से प्रसंग नहीं बैठता। उसका अर्थ यही आता है कि विक्रम सम्वत् ९०। पर ९० से हीन ऐसा नहीं आता। यदि 'बिना अनन्द' दोहे में होता तो अनन्द से ९० वाला अर्थ निकालने में कुछ प्रयोजन बनता।

दलील—

(२) विक्रमादित्य का यदि अबका प्रचलित संवत माना जाय तो मरण-काल में विक्रम की अवस्था १६० वर्ष की ठहरती है, जो असम्भव जान पड़ती है। अतः सम्भव है कि ७० वर्ष की उचित आयु मानकर उससे ९० वर्ष निकाल कर अनन्द सवत् पड़ा हो।

उत्तर—

यह केवल अनुमान ही अनुमान है और इसका कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। जिसकी अवस्था १६० वर्ष की निकलती हो उसे केवल ७० वर्ष का अल्पजीवी मानना युक्तियुक्त नहीं है उसे कमसे कम ९० या ९५ वर्ष का तो मानना ही चाहिये। ऐसी दशा में उसे केवल ७० वर्ष का मान कर ९० वर्ष उसके संवत् से निकाल डालना तो यही हुआ कि ९० वर्ष की हमें आवश्यकता है, सो किसी न किसी प्रकार वह आया है।

दलील—

पंड्याजी लिखते हैं कि अन्य बातों में गड़बड़ प्रमाण मान लिये जाते हैं तो इसी में क्यों न माने जायँ।

उत्तर—

इसमें औचित्य छोड़ दिया जाता है। किसी भी बात में गड़बड़ प्रमाण न मानना चाहिए। विक्रमीय वर्तमान सम्वत् के चलाने का कारण यही है कि जब किसी कारण कोई सम्वत् चल पड़ा तो बिना पूर्ण प्रमाण के वह बदला भी नहीं जा सकता।

दलील—

(३) नन्दवंशी चन्द्रगुप्त और उसके अकुलीन सन्तानों ने भारत में प्राय: ९० वर्ष राज किया है। चन्द्रगुप्त, नन्द महाराज का एक मुरा नामक नायन से उत्पन्न पुत्र था, इसी से वह और उसके वंशी मौर्य्य कहलाये। सम्भव है कि चन्द ने इस अकुलीन राज्यकाल को विक्रम सम्वत् से निकालकर अनन्दसम्वत् लिखा हो और इसी से साधारण सम्वत् से यह ९० वर्ष पीछे रह गया हो।

उत्तर—

पर ऐसी दशा में इसे अनन्दसम्वत् न कह कर चन्द 'अमौर्य्य' सम्वत् कहता, क्योंकि नन्द तो अकुलीन था नहीं और उसका राज्यकाल भी निकाला नहीं गया था, फिर उसका नाम इस सम्वत् में क्यों आता ? दूसरे चन्द्रगुप्त और उसके वंशी अकुलीन राजे विक्रम के पहले हुए थे सो विक्रम सम्वत् में उनका राजत्व काल था ही नहीं, फिर वह उससे निकाला क्या जाता ?

दलील—

(४) ऊपर लिखे हुए दूसरे दोहे का अर्थ वह यों लगाते हैं कि—युधिष्ठिर (धर्मसुत) का संवत् जैसे ११०० या ११११ पर था (विक्रम के प्रथम) उसी प्रकार पृथ्वीराज का संवत् ११०० या १११८ है (विक्रम के पीछे) सो ११०० या १११५ तक युधिष्ठिर का प्रथम साका रहा, इसी काल तक विक्रम का द्वितीय साका रहा, और अब पृथ्वीराज का तृतीय साका प्रारम्भ होता है।

उत्तर—

इस अर्थ के लेने से भी अनन्द संवत् की उत्पत्ति के विषय कुछ ज्ञान नहीं पड़ता है। अतः संवतों के गड़बड़ मिटाने में यह दोहा सहायक नहीं है।

मित्रवर बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने हमें लिख भेजा है कि मदनपाल से लेकर जैचन्द तक कन्नौज के राजाओं का राजत्वकाल प्रायः ९० वर्ष होता है, सो स्यात पृथ्वीराज के कवि ने यह समय विक्रम के संवत् से निकल कर नया संवत लिखा हो। पर इस काल के निकालने से तो स्वयं पृथ्वीराज का, उसके पिता सोमेश्वर का और उसके नाना अनंगपाल का भी समय निकल जाता है. पृथ्वीराज ने अनंगपाल का ही दिया हुआ दिल्ली का राज पाया था। अतः राठूरों का काल चन्द अपने संवत से नहीं निकाल सकता था।

इन बातों से विदित होता है कि अभीतक हम लोगों को अनन्द संवत् के चलने तथा उसके ९० वर्ष पीछे रहने का कारण नहीं ज्ञात है। पर इतना जरूर जान पड़ता है कि अनन्दसंवत् चलता अवश्य था और वह साधारण संवत् से ९० या ९१ वर्ष पीछे अवश्य था। उसके चलने का कारण न ज्ञात होना, उसके अस्तित्व में सन्देह नहीं डाल सकता। भारत के प्राचीन इतिहास में निश्चयपूर्वक बहुत कम बातें ज्ञात हैं और प्राचीन शिलालेखों, ताम्र-पत्रों आदि से नित नई बातें ज्ञात होती जाती हैं। महाराज कनिष्क के वंश में अबतक केवल हुविष्क तथा वासुदेव नामक राजाओं का नाम ज्ञात था, पर अभी कल की बात है कि गोस्वामी राधाचरण दासजी ने एक शिला-लेख पाया, जिससे वशिष्क नामक कनिष्क वंशी एक और राजा का भी नाम ज्ञात होगया। ऐसी दशा में किसी दिन अनन्द संवत् का कारण ज्ञात हो सकता है। यह पंड्याजी के प्रयत्नों का ही फल है कि हम लोगों को अनन्द संवत् का हाल ज्ञात हुआ, जिससे चन्द के संवतों का झगड़ा सुलझ गया।

इन कारणों से प्रकट है कि रासो जाली नहीं है, वरन् पृथ्वीराज के समय में ही चन्द ने इसे बनाया था इसके अकृत्रिम होने का एक यह भी कारण समझ पड़ता है कि यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी आदि में इसे बनाता तो वह स्वयं अपना नाम न लिख कर ऐसा भारी (२५०० पृष्ठ का) उत्तम महाकाव्य चंद को क्यों समर्पित कर देता? कितने हो पंडितों ने पुराण ग्रन्थ बना कर अपना नाम

न लिख कर व्यासदेव को ग्रन्थ अवश्य दे दिया है, पर उन्होंने ऐसा इस कारण किया कि उनका ग्रन्थ पुराणों की भांति पूजा जावे। रासो के रचयिता को यह भी लालच न था, तब वह अपना अमूल्य ग्रन्थ चन्द को कभी न देता।

यह बड़ा भारी ग्रन्थ प्राय: २५०० पृष्ठ का है और इसमें सभी प्रकार के वर्णन आये हैं, पर उनमें भी युद्ध और शृंगार प्रधान हैं। मंगलाचरण में कवि ने एक छन्द में आदि देवगुरू आदि की स्तुति और फिर तीन षट्पदों में (जिन्हें यह कवि कवित्त कहता है) धर्म, कर्म एवं मुक्ति की स्तुति की है। इसके पीछे चन्द पुराने कवियों की स्तुति करता है, जिनमें व्यास, शुकदेव, श्रीहर्ष, कालिदास, डंडमाली और जयदेव का इसने नाम लिया है। इनमेंसे सब कवि संस्कृत के हैं, पर स्यात् डंडमाली भाषा का कवि हो। चंद ने कहा है कि इसने गंगा-सरित् का वर्णन किया है यथा—

सतं डड माली उलाली कवित्तं। जिनैं बुद्धि तारंग गंगा सरित्तं॥

तदनन्तर चन्द की स्त्री चन्द से प्रश्न करती है और तब चन्द ईश्वर प्रभाव का वर्णन करता है। ईश्वर के कथन में चन्द ने प्रथम तो एक निराकार निर्गुण ब्रह्म का वर्णन किया है, पर अन्त में ब्रह्मा की उत्पत्ति कह कर अन्य देवताओं का भी वर्णन कर दिया है। इसने यहां विष्णु और शिव का कथन नहीं किया। इसकी वन्दना से उदाहरणार्थ दो छन्द नीचे लिखे जाते हैं। ईश्वर वर्णन १८५ पृष्ठ पर उत्तम है।

साटक (शार्दूल विक्रीडित छन्द)।

आदिदेव प्रनम्य नम्य गुरयं बानोय बन्दे पयं।
सिष्टं धारन धारयं बसुमती लच्छीस चर्नाश्रयं॥
तंगुं तिष्ठति ईस दुष्ठ दहनं सुर्नाथ सिद्धि श्रयं।
थिर्चर्जंगम जीव चन्द नमयं सर्वेस बर्दामयं॥

(यह रासो का प्रथम छन्द है)

कवित्त (छप्पय)

सम बनिता बर बन्दि चन्द जंपिय कोमल कल।
सबद ब्रह्म इह सत्ति अपर पावन कहि निर्मल॥

जिहित सबद नहिं रूप रेख आकार ब्रन्न नहिं।
अकल अगाध अपार पार पावन त्रयपुर महिं ॥
तिहिं सबद ब्रह्म रचना करौं गुरुप्रसाद सरसे प्रसन।
जद्यपि सु उकुति चूकौं जु गति कमल बदनि कवि तहँ हँसन ॥

अष्टादशपुराण कह कर चन्द अपनी लघुता कहता है और फिर खल स्वभाव कह कर सरस्वती. शिव, गणेश की स्तुति करता है। इस प्रकार ६४ छन्दों में बन्दना तथा भूमिका कहकर चन्द ने क्रमशः परीक्षित, वशिष्ठ, आबूगिरि उत्पत्ति, ऋषियों के यज्ञ, चहुवान–उत्पत्ति, क्षत्रियों के ३६ वंशोंकी उत्पत्ति आदि की कथायें कही हैं इसके पीछे कवि ने चहुवानों के वंश का वर्णन किया है। बीसलदेव की उत्पत्ति कहकर चन्द ने आना की उत्पत्ति कही। आना ने अपनी माता से सुना कि बीसलदेव ने खूब मृगया खेली और फिर वह नपुंसक होगया पर पुनः पुंसत्व प्राप्त करके उसने अनुचित आचरण किया। बीसलदेव ने बालुका-राय से युद्ध किया और फिर गौरी-वैश्या का सतीत्व नष्ट कर डाला। इससे उसके शापवश वह सर्प से दंशित होकर ढूंढा नाम राक्षस होगया। ढूंढा ने सारंगदेव को मारकर अजमेर उजाड़ दिया। यह सुन आना ढूंढा के पास गया और ढूंढा ने प्रसन्न होकर उसे अजमेर दे दिया और स्वयं हारित ऋषि से उपदेश ग्रहण कर महात्मा होगया। बीसलदेव के पुत्र सारंगदेव हुए, जिनका ही पुत्र आनाजी था। इसने आनासागर बनवाया जो अब तक एक प्रसिद्ध ताल है। आनाजी का पुत्र सोमेश्वर था, जो पृथ्वीराज का पिता हुआ। दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री पृथ्वीराज की माता थी। पृथ्वीराज की कथा चन्द ने अपनी स्त्री की इच्छानुसार कही मंगलाचरण में कवि ने प्रायः साठ पृष्ठों में दशावतार की कथा इस स्थान पर कही है, जो परमोत्तम है। यह सब उपर्युक्त वर्णन २५४ पृष्ठों में समाप्त होगये हैं और शेष ग्रन्थ में पृथ्वीराज की कथा विस्तार पूर्वक वर्णित है। पृथ्वीराज का शत्रुओं से प्रायः युद्ध हुआ करता था और रासो में अधिकतर पृथ्वीराज के युद्धों, विवाहों एवं मृगया का ही वर्णन है। अतः विस्तार भय से अधिक न कह कर हम यहाँ पृथ्वीराज के शत्रुता के कारणों, और युद्धों का दिग्दर्शन कराये देते हैं।

शत्रु	शत्रुता के कारण तथा परिणाम
(१) भोरा भीमंग गुजरात का राजा।	पृथ्वीराज के एक सामन्त ने एक बार इसके भाइयों को कहासुनी में मार डाला। यह सलख की कन्या इंछिनी को चाहता था, पर पृथ्वीराज ने उससे विवाह कर लिया। इसने पृथ्वीराज के पिता को एक युद्ध में मार डाला। अन्त में कई युद्धों के बाद पृथ्वीराज ने इसे मार डाला।
(२) नाहरराय।	इससे एक विवाह के कारण युद्ध हुआ। इसने प्रथम अपनी कन्या पृथ्वीराज से विवाहने को कहा, पर पीछे यह नट गया। यह पराजित हुआ और विवाह हुआ।
(३) मुद्गलराय मेवाती।	इसने कर नहीं दिया था पर इसे पराजित होना पड़ा।
(४) शहाबुद्दीन गोरी।	इसकी चित्ररेखा नामक एक परम सुन्दरी वेश्या थी पर इसका भाई हुसेन उससे फँस गया। इस पर इन दोनों में खटपट हुई और हुसेन पृथ्वीराज के शरण आया। इसी पर इससे बहुत बार युद्ध हुआ और सदा यह हारा तथा कई बार पकड़ा भी गया पर दुर्भाग्यवश राजा ने दण्ड लेकर इसे हर बार छोड़ दिया। पृथ्वीराज ने अपनी भगिनी पृथाकुँअरी का विवाह जब रावल समरसिंह से किया था, उस समय इनके सब सामन्तों के साथ शहाबुद्दीन ने भी रावल को दायज दिया था, जिससे प्रकट है कि वह उस समय अपने को पृथ्वीराज का दबायल समझता था। पर अंत में ११६३ ई० में इसने एक बार राजा को युद्ध में पकड़ कर मार डाला और यह भारत का बादशाह होगया। पश्चिम के घक्करों ने इसे फिर मार भी डाला पर इसके दास कुतबुद्दीन के हाथ से भारत का राज न छूटा।
(५) कुमोदमनि कुमाऊँ का राजा।	यादवराज विजयपाल की पुत्री पद्मावती का इससे विवाह होता था, पर पृथ्वीराज ने इसे पराजित करके पद्मावती से अपना विवाह किया।

(६) जैचन्द कन्नौज का राजा। यह भी अनंगपाल का दौहित्र था जैसे कि पृथ्वीराज था, पर अनंगपाल ने राज पृथ्वीराज को दिया। देवगिरि के राजा यादवराज की कन्या शशिव्रता से इसके भाई का विवाह होता था पर पृथ्वीराज ने शशिव्रता को हर कर उससे अपना विवाह किया। इन दोनों बातों से और विशेषतया अन्तिम बात से क्रुद्ध कर जैचन्द ने एक यज्ञ में पृथ्वीराज की मूर्ति का अपमान किया। इस पर पृथ्वीराज ने यज्ञ विध्वंस कर डाला और इसकी पुत्री संयोगिता को हर कर उससे विवाह किया। इन्हीं कारणों से इसने शहाबुद्दीन से मिल कर अदूर दर्शिता से पृथ्वीराज का सर्वनाश करवा डाला पर दूसरे ही साल ११६४ ई० में शहाबुद्दीन ने इसे भी मार कर कन्नौज का भी राज छीन लिया।

(७) अनंगपाल। यह पृथ्वीराज का नाना था और इसी ने प्रसन्नता से पृथ्वीराज को दिल्ली का विशाल राज देकर बदरीनाथ की यात्रा की पर इसके वंशधर तोंबर राजपूत पृथ्वीराज से अप्रसन्न हुए और उन्होंने इसे बहका कर पृथ्वीराज से लड़ा दिया। इसके पराजित होने पर पृथ्वीराज इसके पैरों पड़ा और उसने इसे बहुत प्रसन्न किया। अन्त में यह फिर बदरीनारायण को चला गया।

(८) करनाट युद्ध। इस युद्ध को पृथ्वीराज ने विजय-लालसा से रचा था। अन्त में करनाटकी नामक एक रूपवती वेश्या पाकर यह वहाँ से प्रसन्नता पूर्वक लौट आया।

(९) गज्जरराय। यह भीम का साथी था और इसने पृथ्वीराज के बहनोई समरसिंह की राजधानी चित्तौर पर धावा किया था, पर पृथ्वीराज ने इसे भी हराया।

(१०) भीम उज्जैन का राजा। इसने पहले अपनी कन्या इन्द्रावती का विवाह पृथ्वीराज से करने का वचन दिया पर पीछे से यह नट गया। युद्ध में इसे हरा कर पृथ्वीराज ने यह विवाह किया।

(११) भान काँगरा का राजा।	इसने पृथ्वीराज के दूत का अनादर किया। यह पराजित हुआ और इसने अपनी कन्या पृथ्वीराज को ब्याय दी।
(१२) पंचाइन चदेरी का राजा।	यह रणथम्भौर के राजा भान की कन्या से विवाह करना चाहता था पर भान ने अपनी कन्या पृथ्वीराज को विवाही। इसी पर पंचाइन से युद्ध और यह पराजित हुआ।
(१३) बालुकाराय	यह जैचन्द का आश्रयी राजा था और जैचन्द का आश्रयी राजा था और जैचन्द ही के कारण पृथ्वीराज से दो बार लड़ कर मारा गया।
(१४) पीरमाल महोबे का राजा।	कन्नौज से संयोगिता वाले युद्ध से पलटते हुए पृथ्वीराज के कुछ सामन्त राह भूल महोबे चले गये और कुछ झगड़ा होने पर परिमाल ने उनका वध कर डाला। इस पर पृथ्वीराज ने प्रचण्ड कोप करके परिमाल के हित् मलिखाक को सिरसा में मारा और महोबा पहुँच आल्हा ऊदन आदि को पराजित करके परिमाल को मार कर महोबा खोद डाला। इस युद्ध में पृथ्वीराज की सेना की भी बड़ी हानि हुई।

इस वर्णन से विदित होता है कि चौदह प्रधान शत्रुओं में नो की शत्रुता पृथ्वीराज से विवाह के कारण हुई। यदि इन्हें बिवाह करने इतना भारी शौक न होता तो ४३ वष की स्वल्पावस्था में ऐसा प्राक्रमी राजा शहाबुद्दीन से हारकर काल-कवलित न होता और भारत उस समय यवनों के शासन में न जाता।

पृथ्वीराज जितना पराक्रमी शूर तथा उदारथा वैसाही अदूरदर्शी तथा हठी था। इन्हीं कारणों से ही यह बड़े बड़े सामन्त और बृहत् सेना रखते हुए भी एक क्षुद्र शत्रु से हारकर राजपाट और जीव तक खो बैठा। इस उपयुक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पृथ्वीराज ने आठ विवाह किये और एक वैश्या को रक्खा। इसके अतिरिक्त चन्द पुण्डीर की कन्या एवं एक और स्त्री से इन्होंने विवाह किये। रासो रासो के देखने से प्रकट होता है कि पृथ्वीराज के प्रायः तीन ही काम थे अर्थात् विवाह, आखेट और युद्ध।

रासो प्रायः संवत् १२२५ से १२४८ तक बनता रहा। यह वह समय था, जब प्राकृत भाषा का अन्त होरहा था और हिन्दी का प्रचार होता जाता था। प्राकृत का अन्तिम व्याकरण-कर्ता हेमचन्द्र हुआ है, जिसकी मृत्यु १२२६ वि० में हुई। अपने समयानुसार रासो में प्राकृत मिश्रित भाषा है पर चन्द शब्दों को शुद्ध स्वरूप में प्रायः लिखता था। अपनी भाषा के विषय में उसने यह श्लोक कहा है कि—

उक्ति धर्म्म विशालस्य राजनीति नवं रसं।
षट्भाषा पुराणञ्च कुरानं कथितं मया॥

(रासो पृष्ठ २३)

इससे विदित हुआ कि चन्द ने अपनी कविता में छः भाषाओं के शब्द, संस्कृत के शब्द (पुराण), तथा अरबी के शब्द (कुरान) रक्खे हैं। परंतु अरबी और संस्कृत के अतिरिक्त चन्द ने किन छः भाषाओं के शब्द रक्खे हैं, यह विचारना शेष है। संस्कृत एव प्राकृत के अतिरिक्त शौरसेनी, मागधी, अर्ध मागधी, अवधी, शाकारी, आभीरा, चांडाली, शाबरी, पैशाची, पञ्जाबी, राजपूतानी आदि भाषायें उत्तराय भारत में प्रचलित हुई हैं। इनमें से चन्द कौनसी छः भाषाओं का प्रयोग करता था यह प्रश्न उठता है। बाबू श्यामसुन्दरदास जी का मत है कि रासो में प्रति सैंकड़ा तीस शुद्ध संस्कृत के और तीस शौरसेनी के शब्द मिलते हैं और शेष अन्य भाषाओं के है। प्राकृत और शौरसेनी के अतिरिक्त चन्द-मागधी, अवधी, राजपूतानी और पञ्जाबी के शब्दों का भी प्रयोग करता है, यही छः भाषायें हैं; जिनका वह संस्कृत एव अरबी के अतिरिक्त प्रयोग करता है। चन्द की भाषा में माधुर्य्य एवं प्रसाद की मात्रा कम तथा ओज की विशेष है। प्राकृत-मिश्रित भाषा लिखने के कारण चन्द अनुस्वार से द्वितीया के स्थान पर प्रथमा का भी काम लेलेता है। इसकी भाषा से इसका अगाध पांडित्य प्रकट होता है। इसने संस्कृत के अच्छे २ शब्द लिखे हैं, तथा पुराणों कोकथाओं का अच्छा ज्ञान दिखाया है, यद्यपि संस्कृत के ग्रन्थ उस समय अनुवादित नहीं हुए थे। इसकी भाषा ऐसी कठिन है कि एका-एकी समझ में पूर्णतया नहीं आती और इनके कठिन छन्दों का प्रायः आशयमात्र समझ में आता है। इसकी भाषा कई भाषाओं का मिश्रण होने एवं प्राकृत प्रधान होने के कारण वर्तमान हिन्दी से बहुत भिन्न है और पढ़ने में मिलित वर्णों, अनुस्वारों के बाहुल्य, चन्दह, नरिन्दह आदि शब्दों

प्राचीन रूपों के होने से एक प्रकार की दूसरी ही भाषा जान पड़ता है, पर फिर भी वह ध्यानपूर्वक देखने से वर्त्तमान हिन्दी से बहुत कुछ मिलती भी है। चन्द ने उस समय की प्रचलित हिन्दी लिखी है और हम लोग आज कल का हिन्दी लिखते हैं। यह मानना पड़ेगा कि उस समय के देखते हुए वर्त्तमान हिन्दी ने बड़ी उन्नति करली है पर चन्द की हिन्दी जब भी अपने बालकपन से एक अलौकिक आनन्द देती है। जन्म ग्रहण करते ही हिन्दी ने जो रूप पाया उसका प्रत्यक्ष ऐतिहासिक प्रमाण चन्द की हिन्दी है। चन्द ने शौरसेनी एवं गुजराती ढर्रों को लेकर रचना की है परन्तु माध्यमिक समय में ब्रजभाषा का ही विशेष आदर रहा। आजकल नवीन प्रथा के कवि जनों की रुचि खड़ी बोली की ओर झुक रही है। यह खड़ी बोली उर्दू से पूर्ण रूपेण मिलती है, केवल फारसी आदि शब्दों के स्थान पर संस्कृत के शब्द रखती है।

चन्द ने संस्कृत काल की कविता के कुछ ही पीछे कविता की है। यह कवि संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि श्री हर्ष का समकालीन था, सो छन्दों में इसने श्लोकों से मिलते हुए कई छन्द कहे हैं। इसके साटक एक प्रकार से हिन्दी के श्लोक हैं। इनकी मात्रा चन्द की कविता में बहुत है और ये परम मनोहर हैं। षटपद छन्द का भी चन्द ने विशेष आदर किया है और यह छन्द अपनी मनोहरता के कारण अत्यन्त आदरणीय है भी। इन छन्दों के अतिरिक्त चन्द ने प्रायः सभी छन्द लिखे हैं और कोई छन्द इतनी दूर नहीं चलाया कि वह अरुचिकर हो जावे। चन्द ने कथा और छन्द ऐसे क्रम-बद्ध प्रकार से कहे हैं कि जान पड़ता है कि चन्द ही इस प्रथा का चलाने वाला नहीं है वरन् यह रीति उस समय के कवियों में स्थिर थी। चन्द ने एकाध छन्द ऐसा भी कह दिया है जिसका अब पता भी लगना कठिन है, यथा बथूआ छन्द रासो पृष्ठ ८। पंड्याजी ने इसे रिड्डक छन्द माना है। उदाहरणार्थ यह छन्द यहाँ लिखा भी जाता है।

प्रथम सु मंगल मूल श्र तोबिय। स्मृति सत्य जल सिंचिय॥
सुतरु एक धर धम्म उभ्यो॥
त्रिषट साष रम्मय त्रिपुर। बरन पत्त मुख पत्त सुभ्यो॥
कुसुम रंग भारह सुफल। उकति अलंब अभीर॥
रस दरसन पारस रमिय आस असन कवि वीर॥

चन्द ने श्लोक भी अच्छे अच्छे संस्कृत में कहे हैं।

इस महाकवि ने युद्ध और श्रृंगार रस तो उत्तम कहे ही हैं पर अन्य प्रकार के भी अनेकानेक परमोत्तम वर्णन रासो में वर्त्तमान हैं।

इसने कई स्थानों पर गोस्वामी तुलसीदासजी की भांति देवताओं की विनतियाँ बहुत विशद कही हैं, यथा शिवस्तुति (४३ तथा ७७ पृष्ठ), ईश्वर-स्तुति (१६० पृष्ठ) भूमि-देवी-वर्णन (५८६ पृष्ठ), सूर्य आदि वर्णन (१३६६ तथा १३६७ पृष्ठ) देवी-स्तुति (४६२ पृष्ठ) चन्द ने नीति, बसन्त (१२८७, १५०४, १५०७), उपवन (५५३), बाग (५५२), पक्षी (पृष्ठ २४८) तलवार (१२२५) मृगया (१५१२, ४७६), सवारी (५६६), खेमे (४८५) सिंह (५७८) न, वर्षा, शरद् (पृष्ठ ७६४). पकवान, भोजन, राज्याभिषेक (५६६), विवाह तैयारी (६४६), नख शिख (५६२) आदि सभी कुछ परमोत्तम कहा है। पृथ्वीराज की रानियों (१०२४, १०८७) के वर्णन, (८०१, ८०२) में नखशिख-(७७६) श्रृंगार रस, (१२८१-१३४३) आदि का अच्छा कथन है और पृथ्वीराज की भगिनी पृथा-कुंवरी (५४५) के वर्णन में भी नखशिख (६५०) उत्तम कहा गया है। हंसावती के वर्णन में संयोग श्रृंगार अच्छा है और वियोग काभी यत्रतत्र कथन अच्छा हुआ है। षटऋतु (१५७८,१५८८) और नखशिख (१२४०, ५६३, ५६६), चन्द ने कई बार और कई प्रकार कहा है। १५६ पृष्ठ पर पृथ्वीराज की शोभा वर्णन करने में कवि ने उपमायें अच्छी अच्छी कही हैं। कैमास जिस स्त्री पर लुब्ध होकर कुछ दिनों के लिए पृथ्वीराज का साथ छोड़ कर भोरा भीमंग का साथी हो गया था उसके वर्णन का एक छन्द यहाँ लिखते हैं।

> चन्द बदन चख कमल भौंह जनु भ्रमर गंधरत।
> कीर नास बिम्बोष्ठ दसन दामिनी दमक्कत॥
> भुजा मृनाल कुच कोक सिंह लंकी गति बारुन।
> कनक कन्ति दुति देह जंघ कदली दल आरुन॥
> अल संग नयन मयनं मुदित उदित अनंगह अंग तिहि।
> आनी सुमन्त्र आरम्भ बर देखत भूलत देव जिहि॥

पृथक् पृथक् वर्णनों में इस कवि रत्न ने उपमा, रूपकों आदि का भी परमोत्तम कथन किया है (पृष्ठ ७७३, ७७४, ८२१, ११३४, ११३५, १३०४, १३०५, १४१८ आदि)

प्रभात एवं सूर्य्य का चन्द ने कई बार उत्तम वर्णन किया है (१३१६, १३६७, १२२५, १२२६)। दो एक स्थान पर योगियों की क्रियाओं का भी वर्णन है (१४५०,१२४५,१२४६)। पृथ्वीराज के गुणों तथा कीर्ति आदि का बहुत वर्णन कई बार किया गया है (१२८४. १२८५, १४५५ तेज और आकार का निर्णय. आदि)।

इस कविरत्न ने शोभा को हर एक स्थान पर निहारा है और क्या देवता, क्या स्त्री, क्या सिंह, क्या मृगया, क्या युद्ध, क्या कन्नौजादि वर्णन सभी स्थानों और बातों में उसका ध्यान नहीं छोड़ा और कविता में उसे भली भाँति सन्निविष्ठ किया (१४८२, १६२३, १६६७,१५७३ १५७४,५५०, ५५२, ५७३, ५७८, ५७६, ५१६ आदि)।

यह युद्ध प्रधान ग्रन्थ है अतः इसमें युद्ध का वर्णन बहुत बार और कितने ही प्रकार है (७०६, ७०८, ८१५. १२२५, १२२६, ११३४, ११३५, १३७५. १३७६, १३८१, १३८२ आदि)। चन्द ने युद्ध तो सत्य सत्य कहे हैं पर कवियों की विस्तार कारिणी प्रकृति के वश सेन संख्या में अत्युक्ति करदी है। जैचन्द एवं सुलतानो दल को गणना में इन्होंने ३० और १८ लाख मनुष्य कहे हैं जो सर्वथा असम्भव है।

स्त्रियों के रूप, शृङ्गार, शोभा आदि का भी कई बार परमोत्तम वर्णन इस महा कवि ने किया है (५५०, ५६२. ५६६, ५७३, ६४५, ६४६, ६५२, ६५३, ७७६, ७८१, ८०१, ८०४, १२४२, १२४३. १०८४. १०८७, १२८१, १३०४, १३०५, १३४३, १४८२ आदि)।

चन्द ने शिव का भी शृङ्गार अच्छा कहा है (१५७३. १५७४)। यह वर्णन और ऐसे ही ऐसे सैंकड़ों अन्य वर्णन चन्द कवि ने रासो में बड़ी उत्तमता से किये हैं। पृष्ठादि का जहाँ हवाला है वह नागरी प्रचारिणी सभा वाली रासो की प्रतिका है। उदाहरण देने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जावेगा अतः हम थोड़े ही से उदाहरणों पर यहाँ सन्तोष करते हैं। उदाहरण।

(पृथ्वोराज)—

भयो जन्म पृथ्वीराज द्रुग्ग खर हरिय सिखर गुर।
भयो भूमि भूचाल धमकिधस मसिय अरिनि पुर॥
गढ़न कोट से लोट नीर सरितन बहु बढ्ढिय।
भौचक भय भूमिया चमक चक्रित चित चढ्ढिय॥
खुरसान थान खलभल परिय ग्रभ्भपात भय गभ्भनिय।
बैताल बीर बिकसे मनह हुँकारत खह देव निय॥
करिय नवनि कवि चन्द छन्द अन्नेक पढ्ढिकर।
तूं सुरपति सम कुंवर देव सामन्त समो वर॥
अग्नि कन्हँ जल चन्द पवन गोइन्द प्रबल बल।
धरा चन्द बल धीर तेज चामंड जलन खल॥
रवि तेज कहर कारंभ सब चन्द अमृत आबू धनी।
द्रुगपाल सबल सामन्त सब रहै दबि धरती धनी॥

(पृथ्वीदेवी)—

पीत बसन आरुहिय रत्त तिलकावलि मंडिय।
छुटिय चंचल बाल अलक गुंथिय सिर छंडिय॥

मीस फूल मनिबन्ध पास नग सेत रत्त बिच ।
मनों कनक साखा प्रचंड काली उप्पम रुच ॥
मनु सोम सहायक राहु होइ कोटि भान सोभा गही ।
अद्भूत द्रव्य ससि अहि गल्यो साख सुरंग भनावही ॥

(अप्सरा)— हरित कनक कांति कापि चपेव गोरी ।
रसित पद्म गंधा फुल्ल राजीव नेत्रा ॥
उरज जलज सोभा नाभि कोसं सरोजं ।
चरन कमल हस्ती लीलया राजहंसी ॥

(सरस्वती)— मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा अब्धा बुधा गोपनी ।
सेतं चीर सरीर नीर गहिरा गौरी गिरा जोगनी ॥
बीना पानि सुबानी जानि दधिजा हंसा रसा आसिनी ।
लंबोजा चिहुरार भार जघना बिघ्ना घना नासिनी ॥

(नाहरराय सुता)— तन्मै स्याम सुरंग वाम नयनं मन्मथ्थ बल्ली कला ।
सुख्ख धामय तेज दीपक कला तारुन्य लच्छी महा ॥
रूपं रंजित मजुमाल कलया बासंत पत्रावली ।
अव्वं लच्छन काम धीरज गुणै धन्यौ दुती दम्पती ॥

(चित्ररेखा वेश्या)—बेस्या बंछित भूप रूप मनसा भृङ्गार हारावली ।
सोयं सूरति लच्छि अच्छित गुनं बेली सु कामावली ॥
का बनैं कवि उक्ति जुक्ति मनयं त्रैलाक्यमं साधनं ।
सोयं बाल तिरत्त उष्ट विद्रुमं का मोद जोगेश्वरं ॥

चन्द बरदाई जैसा भाषा का वास्तविक आदि कवि था, वैसे ही संस्कृत के आदि-कवि महर्षि बाल्मीकि की भाँति वर्णन भी प्रायः पूर्ण और मनोहर करता था। काव्य प्रौढ़ता में चन्द का पद बहुत बढ़ा हुआ है और जितने विषयों के इस महाकवि ने उत्तम तथा पूर्ण वर्णन किये हैं उतने के किसी भी अन्य भाषा कवि ने नहीं किये। चन्द को नव रत्नों में रियायत से अथवा पुराने कवि होने की कारण नहीं स्थान दिया गया है, वरन् उसकी काव्य प्रौढ़ता ही के कारण उसे यह सम्मान मिला है। रासो भी हिन्दी का एक अमूल्य रत्न है और प्रत्येक हिन्दी रसिक को इसे पढ़ना चाहिये। इस लेख के भाषा सम्बन्धी भाग में मित्रवर बाबू श्यामसुन्दरदास के एक उस लेख से भी सहायता ली गई है, जो कि उन्होंने कृपया हमारे पास भेज दिया था।

"हिन्दी नवरत्न"

प्रकाशन—सम्वत् १९६७, पृष्ठ संख्या ३१६ से २४५ तक
हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली—प्रयाग

साहित्यवाचस्पति रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०

पृथ्वीराज रासो

इस ग्रंथ के सम्बन्ध में बहुत वाद-विवाद चल रहा है, पर अभी तक कोई निश्चित् सिद्धान्त नहीं स्थिर हुआ है। रायबहादुर महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा तो इसको १६-१७ वीं शताब्दी की रचना मानते हैं और 'पृथ्वीराज-विजय' में चंद का कोई उल्लेख न मिलने से उसके व्यक्तित्व में भी सन्देह करते हैं। यदि 'पृथ्वीराज विजय' की अखंडित प्रति मिल गई होती तो इस उल्लेख की बात को प्रामाणिकता का आधार, पूर्णतया नहीं तो अंशतः अवश्य माना जाता। पर दुर्भाग्य से उसकी खंडित प्रति के ही प्राप्त होने का सौभाग्य अब तक प्राप्त हुआ है।

इधर एक नई स्थिति उपस्थित हो गई है, जो पृथ्वीराज रासो की वर्तमान लब्ध प्रतियों के विषय में एक जटिल प्रश्न उपस्थित करती है। मुनि जिनविजयजी ने अपने सम्पादित 'पुरातव प्रबन्ध संग्रह' (सिंघी जैन माला, पुष्प २) में पृथ्वीराज और जयचंद विषयक प्रबन्धों में चार ऐसे छन्दों को दिया है, जिन्हें वे चंद-रचित बताते हैं और इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि "चंद कवि निश्चित तया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसीने पृथ्वीराज के कीर्ति कलाप का वर्णन करने के लिये देश्यप्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की था, जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई"

उन चार छन्दों में तीन का रूपान्तर तो काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित रासो में लगगया है। चौथे का पता अभी तक नहीं लगा है। ये चारों छन्द ये हैं—

(१) मूल

इक्कु बाण पहु बीसु जु पइँ कइँबासह मुक्कओ,
उर भिंतरी खडहडिउ धीर कक्खँ तरिचुक्कउ।
बीअंकरि संधोउँ भँमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गाडि दाहिम ओ खणइ खुदइ सइंरि वणु।

फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जाणउँ चदवलहिउ किंनवि छुटइ इह फलह।

पृष्ठ ८६, पद्यांक (२७५)

रूपांतर

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उधर थर हर्‌यौ बीर कक्खंतर चुक्यौ॥
बियो बान संधान हन्यौ सोमेसर नंदन।
गाढौ करि निग्रह्यौ खनिव गड्यौ संभरिधन॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गड्यौ गुन गहि आगरौ।
इम जंपै चंद वरद्दिया कहा निघटै इय प्रलौ॥

रासो पृ० १४६६, पद्य २३६।

(२) मूल

अगहु मगहि दाहिम ओ रिपुराय खयं करु,
कूडु मंत्रु मम ठवओ एहु जंबूय (ए!) मिलि जग्गरु।
सहनामा सिक्खवउँ जइ सिक्खिविउं बुज्झइं,
जंपइ चंदबलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहुविराय सइंभरि धनी सयंभरि सउणइ संभिरिसि,
कइँवास विआस विसट्ठ विणु मच्छि बंधि बद्धओ मरिसि॥

पृष्ठ वही, पद्यांक (२७६)

अगह मगह दाहिमौ देव रिपुराइ खयंकर।
कूरमत जिन करौ मिले जंबू वै जंगर॥
मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै।
अक्खै चंद बिरद्द बियौ कोइ एह न बुज्झै॥
प्रथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिस।
कैमास बलिष्ट बसीठ बिन म्लेच्छ बंध बंध्यौ मरिस॥

रासो पृष्ठ २१८२, पद्य ४७६।

(३) मूल

त्रिण्हि लक्ख तुखार सबल पाखरिअइँ जसु हय,
चउद्द सय मय मत्त दंति गज्जंति महामय,

बीस लक्ख पायक सफर फारक्क धणुद्धर,
ल्हूसडु अरु बलु यान संख कुजाणइ तांह पर।
छत्तीस लक्ख नराहिवइ विहि विनिडिओ हो किम भयउ,
जइचंद न जाणउ जल्हू कइ गयउ किमूउ किधरि गयउ॥

पृष्ठ ८८, पद्यांक २८७।

रूपांतर

असिय लक्ख तोखार सजउ पक्खर सायद्दल।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरुअ गज्जंत महाबल॥
पंच कोटि पाइक्क सुफर पाटक्क धनुद्धर।
जुध जुधान वार बीर तीन बंधन सद्धन भर॥
छत्तीस सहस रन नाइबौ विही क्रिम्मान ऐसो कियो।
जैचंद राइ कवि चंद कहि उदधि बुड्डि कै घर लियौ॥

रासो, पृष्ठ २५०२, पद्य २१६।

(४) मूल

जइतचंदु चक्कवइ दवे तुह दूसह पयाणउ।
धरणि धसवि उद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ।
सेसुमणिहि संकियउ मुक्कुहय खरिसरि खंडिओ।
तुट्टओ सोहर धवलु धूलि ज सुचियतणि मंडिओ।
उच्छहरिउ रेणु जसग्गिगय सुकवि ब (ज) ल्हु सच्चउ चवइ।
वग्ग इंदु बिंदु भुयजु अलि सहस नयण किण परिमिलइ॥

पृ० ८८–८९।

अब प्रश्न यह उठता है कि कौन किसका रूपांतर है? क्या आनिक रासो का अपभ्रंश में अनुवाद हुआ या अथवा असली रासो अपभ्रंश में रचा गया था, पीछे से उसका अनुवाद प्रचलित भाषा में हुआ और अनेक लेखकों तथा कवियों की कृपा से उसका रूप और का और होगया तथा क्षेपकों की भरमार होगई। यदि पूर्ण रासो अपभ्रंश में मिल जाता तो यह जटिल प्रश्न सहज ही में हल होजाता। राजपुताने के विद्वानों तथा जैन संग्रहालयों को इस ओर दत्तचित्त होना चाहिए।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक) ना०सं०, काशी,
वर्ष ४५, अंक ८ माघ १९९७, पृ० ३४९–३५२।

डॉ० दशरथ शर्मा एम०ए०

(१)

पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार

पृथ्वीराज रासो की कथाएँ कहा तक प्रामाणिक हैं— यह प्रश्न केवल भारतीय इतिहास के लिए ही नहीं, अपितु हिन्दी-साहित्य के इतिहास के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें सन्देह नहीं कि नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित रासो वृहत्काय संस्करण अनेक क्षेपकों से पूर्ण है और उसमें अनेक ऐसी कथाओं का समावेश किया गया है, जो सर्वथा गलत हैं। इन अशुद्धियों का दिग्दर्शन करा कर डाक्टर ब्यूलर, कविराज श्यामलदासजी एवं श्री गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा ने इतिहास और साहित्य के विद्यार्थियों एवं पंडितों का महान् उपकार किया है। परन्तु रासो के सब संस्करणों का न तो परिमाण ही एक लाख छन्द है और न उनमें उन सब कथाओं का समावेश ही है, जिनके आधार पर रासो को अनैतिहासिक बतलाया जा रहा है मेरे मित्र श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह की प्रति का परिमाण केवल दस हजार छन्द के लगभग है और बीकानेर की फोर्ट-लाइब्रेरी में तीन ऐसी प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनका परिमाण एक लाख छन्द नहीं, बल्कि एक लाख अक्षर हैं। अब इनमें से मुख्य प्रति की नकल कर्मचन्द बच्छावत के पुत्र की आज्ञा से हुई थी। इसलिए बहुत अधिक सम्भव है कि वह उस समय लिखी गई हो, जबकि कर्मचन्द महाराजा रायसिंहजी का प्रधान मन्त्री था और उसका सब कुटुम्ब बीकानेर में ही विद्यमान था। नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति, जिसे सम्वत् १६४२ का बतलाया जाता है, वास्तव में इतनी प्राचीन नहीं है। मेरे मित्र श्री नरोत्तमदास स्वामी के कथनानुसार उसका असली सम्वत् १७४२ पढ़ा जाना चाहिए।

समय और परिमाण दोनों को ही देखते हुए मैं बीकानेर की एक लाख अक्षर वाली प्रति को सबसे अधिक प्रामाणिक समझता हूँ[१]. पृथा और समरसिंह का विवाह, राणा समरसिंह का शहाबुद्दीन गोरी के विरुद्ध युद्ध करते हुए मारा जाना, सोमेश्वर का भीम चौलुक्य के हाथ से वध, पृथ्वीराज का नाहड़राय की पुत्री, दाहिमा चामुण्ड की पुत्री और शशिव्रता एवं हँसावती आदि से विवाह, मेवाती मुगल से युद्ध, ये तथा अन्य कई ऐसे आख्यान जिनके कारण रासो अनैतिहासिक समझा

जाता है, इस प्राचीन रासो में उपलब्ध नहीं है। इसमें केवल उन्नीस खण्ड है और मुख्य कथाएँ आदि इस प्रकार है:—

१ ब्रह्मा के यज्ञ से माणिक्यराय चौहान की उत्पत्ति

२ चौहानों की संक्षिप्त वंशावली, जो इस प्रकार है—

ब्रह्मा के यज्ञ से उत्पन्न माणिक्यराय चौहान
|
उसके अनेक उत्तराधिकारी
|
१ धर्माधिराज
|
२ बीसल
|
३ सारंग
|
४ आनल्ल
|
५ जयसिंह
|
६ आनन्द
|
७ सोम
|
८ पृथ्वीराज

३ भीम चालुक्य से आबू पर्वत एवं नागोर के निकट युद्ध।

४ कैमास बध।

५ संयोगिता-हरण एवं जयचन्द्र से युद्ध।

६ शहाबुद्दीन से अनेक बार युद्ध।

७ पर्वतीय राजा हांठुलीराय का विद्रोह।

प्रथम एवं द्वितीय खण्डों में वंशावली; चौथे पाँचवें में भीम से युद्ध; तीसरे, छठे, सातवें, आठवें, नवें दसवें, ग्यारहवें और बारहवें खण्डों में संयोगिता विषयक कथा, और बाकी सब में मुख्यत:—शहाबुद्दीन से युद्ध की कथा का वर्णन है। हम निम्नलिखित पंक्तियों में इस बात का विचार करेंगे कि ये वर्णन तथा कथाएँ आदि कहाँ तक ऐतिहासिक मानी जा सकती हैं।

(१) बीकानेर की इस प्रति में चौहान, सोलंकी, परमार, तथा प्रतिहारों के अग्नि कुण्ड से उत्पन्न होने की कथा का विस्तृत उल्लेख नहीं है। इसमें केवल इतना ही लिखा है—

ब्रह्मा जग्ग ऊपन्न सूर। मानिकराइ चहुआन सूर ॥

अर्थात्-ब्रह्मा के यज्ञ से प्रथम शूरवीर चौहान माणिक्यराय उत्पन्न हुआ। यह कथन वास्तव में सत्य है या असत्य, यह कहना कठिन है। परन्तु इतना कम से कम निश्चित है कि इस कथन से किसी प्राचीन शिलालेख या ऐतिहासिक काव्य का विरोध नहीं हैं। प्रायः सभी ही, प्रथम चौहान को ब्रह्मा के यज्ञ से ही उत्पन्न मानतेहैं। 'सुर्जन चरित' के सप्तम सर्ग में लिखा है कि ब्रह्मा ने पुष्कर में एक यज्ञ किया। विघ्न की आशंका से उन्होंने सूर्य की तर्फ देखा और उससे प्रथम चौहान की उत्पत्ति हुई। अतः ब्रह्मा का यज्ञ ही प्रथम चौहान की उत्पत्ति का कारण था। श्री हंम्मीर महाकाव्य की कथा भी इससे विशेष भिन्न नहीं है. उसमें लिखा है कि ब्रह्मयज्ञ के लिये भूमि ढूँढते हुए जब पुष्कर पहुँचे तो उनके हाथ का कमल गिर पड़ा। इसलिये उसी स्थान को शुभ मान कर ब्रह्मा ने वहाँ यज्ञ प्रारम्भ किया फिर राक्षसों द्वारा विघ्न की आशङ्का उत्पन्न होने पर उन्होंने सूर्य का स्मरण किया। उससे एक अत्यन्त तेजस्वी पुरुष उतरा। यही प्रथम चाहमान था। इस प्रकार हम्मीर महाकाव्य भी ब्रह्मा के यज्ञ को ही प्रथम चाहमान की उत्पत्ति का कारण बताता है। 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य भी पुष्कर की रक्षा के लिए ही चाहमान की उत्पत्ति करवाता है और इस काव्य के अनुसार भी त्रि-पुष्कर केवल जल से परिपूर्ण ब्रह्मा के तीन यज्ञ-कुण्ड थे। यदि हमारी रासो की प्रति प्रचलित अग्नि वंश की कथा देती वा कम से कम यह कहती कि चौहानों की उत्पत्ति वशिष्ठ के यज्ञ कुण्ड से या अर्बुद पर्वत पर हुई तो हमें उसे अनैतिहासिक बतलाने का पूर्ण अधिकार था ब्रह्मा के यज्ञ से चौहानों की उत्पत्ति बतलाने पर हाँ यदि उसे अनैतिहासिक ठहराया जाय तो यह दोष चौहान वंश के प्रामाणिक से प्रामाणिक शिलालेखों और काव्यों पर भी आरोपित किया जा सकता है।

(२) अब हम वंशावली की तर्फ मुड़ते हैं। माणिक्यराय का नाम प्रायः सभी ख्यातों और कुछ पुराने शिलालेखों में प्राप्त है। उसका वंशधर धर्माधिराज सम्भवतः राजा चामुण्डराज हो। उसने नरवर में भगवान विष्णु का मन्दिर बनवाया था[3]। अतः अत्यंत धर्मिष्ठ होने के कारण ही उसे धर्माधिराज पदवी मिली होगी। उसका पुत्र विग्रहराज तृतीय वास्तव में कामी एवं मदान्ध था। सम्वत् १३४० से पूर्व रचित चौहानों की वंशावली में भी उसे स्त्री लम्पट बताया गया है[4]। सारंग उसके पुत्र पृथ्वीराज का नाम हो सकता है। उसका पुत्र आल्हण था और इसीका

था और इसीका दूसरा नाम जयसिंह था। इन दोनों को भिन्न मान कर रासो के संस्करण कर्ता ने अवश्य गलती की है। परन्तु बहुत सम्भव है कि मूल रासो में यह गलती न रही हो। आनन्दराज अर्णोराज है। उसका पुत्र सोम या सोमेश्वर और पौत्र पृथ्वीराज तृतीय था। जगद्देव, विग्रहराज चतुर्थ, अमर गांगेय और पृथ्वीराज द्वितीय के नाम छूटना बिलकुल स्वाभाविक है; क्योंकि वे पृथ्वीराज के बाप-दादा नहीं, बल्कि पितृव्य आदि थे। शिलालेखों में प्रायः यह बात देखी गई है कि राजाओं के बाप-दादा के नाम तो दे दिये जाते हैं; किन्तु बाकी सब नाम नहीं दिये जाते। अतः वंशावली के आधार पर भी रासो को अनैतिहासिक मानना उचित नहीं है। माना कि हमारे लिये तो इतना ही पर्याप्त है कि वह जहां तक पहुँची है, वहां तक ठीक ही है और शिलालेख आदि के विरुद्ध नहीं जाती। इसमें न तो फालतू नामों की भरमार है और न झूठा विस्तृत वर्णन।

(३) भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज के परस्पर कलह की बात भी अकाट्य है। 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' के वर्णन से सिद्ध है कि पृथ्वीराज के मंत्री कदम्बवासादि चौलुक्यों को अपना शत्रु समझते थे[५]। 'पार्थपराक्रम व्यायोग' से यह सिद्ध है कि पृथ्वीराज ने भीम चौलुक्य के मातहत आबू के राजा धारावर्ष पर आक्रमण किया था[६]। इसलिए आबू के लिए या आबू के निकट दोनों राजाओं में युद्ध होना सिद्ध है। रासो में सलख परमार का नाम मिलता है। बहुत सम्भव है कि वह राजा विक्रमसिंह का पुत्र हो, जिसे सं० १२०२ के लगभग कुमारपाल ने आबू की गद्दी से उतार दिया था।[७] चौलुक्य विरोधी चौहान संभवतः उसे अब भी आबू का सच्चा अधिकारी समझते थे। आबू का तत्कालीन राजा धारावर्ष चौलुक्यों के मातहत था और उसे गद्दी से उतार कर सलख अर्थात् विक्रमसिंह के पुत्र या किसी निकट सम्बन्धी को यदि पृथ्वीराज ने आबू की गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। धारावर्ष और पृथ्वीराज के युद्ध का प्रभाव तो प्राप्य ही है। परन्तु वह युद्ध किस कारण से हुआ—यदि यह हम मालूम करना चाहें तो सम्भवतः रासो की कथा हमारी कुछ सहायक हो। नागोर के निकट चौलुक्यों के विरुद्ध युद्ध का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु चरलू नामक बीकानेर रियासत के एक ग्राम में कुछ शिलालेख मिले हैं, जिनमें लिखा है कि आहड़ और अम्बराक नामक दो चौहान सरदार सम्वत् १२४१ में नागपुर अर्थात

नागौर की लड़ाई में मारे गये। बहुत संभव है कि यह युद्ध पृथ्वीराज और भीम चौलुक्य के बीच में ही हुआ हो। जिनपाल उपाध्याय[८] रचित खरतरगच्छ पट्टावली में भी पृथ्वीराज और भीम चालुक्य के युद्ध का स्पष्ट निर्देश है। सम्वत् १२४४ में भीम चौलुक्य के सेनापति जगद्देव प्रतिहार ने मालवा पर आक्रमण किया था। उसी समय सपादलक्ष अर्थात् अजमेर राज्य का एक संघ तीर्थ यात्रा के लिये गुजरात पहुँचा। धार्मिक विद्वेष के कारण तद्देशीय एक दण्ड नायक ने उसे लूटना चाहा और जगद्देव की अनुमति चाही। सेनापति ने इस बात की स्पष्ट शब्दों में यह कहते हुए मनाही की कि अभी मैं बड़ी मुश्किल से पृथ्वीराज से सन्धि कर पाया हूँ। यदि तुमने सपादलक्ष के संघ से छेड़छाड़ की तो तुम्हें गधे के पेट में सी दिया जायगा। भीम और पृथ्वीराज के बीच में युद्ध का इससे अधिक स्पष्ट और क्या प्रमाण मिल सकता है ?

(४) कैमास-वध की कथा भी प्रमाण रहित प्रतीत नहीं होती। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में कदम्बवास अर्थात् कैमास का पृथ्वीराज का प्रधान मंत्री बतलाया गया है। सोमेश्वर की मृत्यु के बाद उसी ने अजमेर-राज्य का सुप्रबन्ध किया था। जिनपाल उपाध्याय रचित खरतरगच्छ पट्टावली में भी मण्डलेश्वर कइमास का उल्लेख है। जब पद्मप्रभ और श्री जिनपति सूरि का शास्त्रार्थ हुआ तब पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में वही सभापति माना गया था। इसलिए इतना तो स्पष्ट ही है कि कैमास को अजमेर राज्य में बहुत ऊंचा पद-प्राप्त था। अब रहा उसके वध का प्रश्न। सो भी अब प्रायः हल हो चुका है। लगभग तीन वर्ष पूर्व मुनिराज श्री जिनविजयजी ने पुरातन प्रबन्ध संग्रह नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इसके सबसे पुराने आदर्श का सम्वत् १५२८ है। परन्तु अन्य कारणों से जिनविजयजी का अनुमान है कि पृथ्वीराज प्रबन्ध सम्भवतः सम्वत् १२६० के आस-पास लिखा गया था। यद्यपि मैं इस विचार से सर्वथा सहमत नहीं हूँ[६], तथापि इतना तो कम से कम निश्चित है कि उसमें दिये अपभ्रंश अवतरणों की भाषा 'जैतसी रो छन्द' आदि ग्रन्थ की भाषा से कई सौ वर्ष पुरानी है। ये अवतरण निम्नलिखित है—

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइं कइंबासह मुक्कओ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ॥

गौअं करि संधीऊं मंमइ सूमेसर नन्दण ।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ सइं भरि वणु ।।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ बारह पलकउ खल गुलह ।
न जाणऊं चन्दबलहिउ किंन विछुहई इह फलह ।।

अगहुम गहि दाहिमओ रिपुराय खयंकरू ।
कूड़ मन्त्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरू ।।
सह नामा सिक्खवऊं जई सिक्खिविउं बुज्झइं ।
जंपइ चन्दवलद्दिहु मज्झ परमक्खर सुज्झइ ।।
पहु पहुविराय सइंभरिधणी सयंभरि सउणइ संभरिसि ।
कइंबास विआस विसट्ठविणु मच्छिबंधिबद्धओं मरिसि ।।

ये अवतरण रासो से लिए गए हैं और किसी न किसी रूप में रासो के प्रायः सभो संस्करणों में मिलते हैं । इससे कैमास-वध आख्यान का सत्यता और रासो की मूल प्रति की प्राचीनता—ये दोनों ही बातें उत्तम रूप से सिद्ध की जा सकती हैं । नैणसी को ख्यात में एक खीची सरदार के लिए ऐसी ही कथा दी गई है[10] । वह पृथ्वीराज का हो सामन्त था इससे भी यह सिद्ध है कि जनता परम्परा से यह बात जानती था कि पृथ्वीराज की किसी प्रेयसी से उसके किसी सामन्त का अनुचित प्रेम था । उसने उसे या, तो मार डाला, या मार डालने का प्रयत्न किया ।

(५) संयोगिता हरण और जयचन्द के यज्ञ की कथा इसी प्रकार काल्पनिक समझी जाती है । परन्तु यदि यह कल्पना भी मानी जाय तो कम से कम चार सौ वर्ष से अधिक पुरानी है । माना कि जयचन्द के शिलालेखों में इस यज्ञ का वर्णन नहीं है, परन्तु जिस यज्ञ का विध्वंस हुआ हो, उसका भला वर्णन कौन करेगा ? जयचन्द्र के शिलालेखों मे पृथ्वीराज या उससे शत्रुता का कहीं नाम भी नहीं है । परन्तु 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में छपे हुए जयचन्द्र प्रबन्ध में इसका स्पष्ट उल्लेख है । शिलालेखों का किसी विषय में मौन होना इस बात का साक्षी नहीं कहा जा सकता कि वह बात हुई ही नहीं । हमें कई बातें शिलालेखों से और कई सम सामयिक साहित्य से मिला करती है । संयोगिता हरण और जयचन्द्र से युद्ध की कथा कम से कम अकबर के समय में काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी । अकबर के प्रसिद्ध मन्त्री अकबरनामा एवं आइने-अकबरी के लेखक अबुलफ़जल ने इस

विषय का अत्यन्त रोचक वर्णन दिया है। हम 'राजस्थानी' के पाठकों के लिए उसका अनुवाद उपस्थित करते हैं''। "कथा प्रसिद्ध है कि हिन्दुस्तान का सम्राट राजा जयचन्द राठोड़ इस समय दिल्ली में राज्य कर रहा था और दूसरे राजा कुछ हद तक उसका प्रभुत्व स्वीकार करते थे। वह स्वयं भी इतना उदार हृदय था कि इरान और तुरान के निवासी उसके यहां नौकरी करते थे। उसने अपने चक्रवर्तित्व के परिचायक यज्ञ करने का निश्चय किया और उसके लिये तैयारियां शुरु कर दी। इस यज्ञ का नियम था कि सेवादि का सब काम राजा लोग ही कर और राजा के यहां उस समय रसोई बनाना और आग जलाना भी उनके तात्कालिक कार्य का एक अंग था। उसने यह भी वचन दिया था कि एकत्रित राजाओं में सबसे बहादुर व्यक्ति को उसकी कन्या विवाह दी जायगी। राजा पिथौरा ने इस उत्सव में भाग लेने का निश्चय किया था, परन्तु उसका एक दरबारी अकस्मात् कह उठा कि चौहानों का स्वतन्त्र राज्य रहते हुए राठोड़ राजा को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। इससे पृथ्वीराज का पैतृक गर्व जग उठा और उसने यज्ञ में न जाने का निश्चय किया। राजा जयचन्द ने उस पर आक्रमण करने का विचार किया, परन्तु उसके मंत्रियों ने उत्सव की निकट तिथि और युद्ध में समय लगने का ध्यान दिलाते हुए उसे आक्रमण करने से रोक दिया। यज्ञ को सम्पूर्णाङ्ग बनाने के लिये राजा पिथौरा की स्वर्णमूर्ति बनाई गई और उसे द्वार-रक्षक के स्थान पर रखा गया। इस समाचार से क्रुद्ध होकर राजा पिथौरा ने वेश बदला, और ५०० चुने हुए सामन्त लेकर यज्ञ में पहुँचा। वह मूर्ति को उठा लाया, बहुत से आदमियों को मार डाला, और शीघ्रता से वापस आगया। इस साहस के कार्य का सुन कर जयचन्द की पुत्री जो किसी दूसरे को वाग्दत्ता थी, पृथ्वीराज से प्रेम करने लगी और उसने दूसरे आदमी से विवाह करना मंजूर न किया। इस व्यवहार से रुष्ट होकर उसके पिताने उसे राजमहल से निकाल दिया और उसके लिये एक अलग महल बनवाया। इस समाचार से उन्मत्त होकर पिथौरा उससे विवाह करने का निश्चय कर वापस लौटा। यह इन्तजाम किया गया कि चन्द जो बाबुल के वन्दियों की बराबरी करने वाला था जयचन्द की की स्तुति करने के बहाने उसके दरबार में पहुँचे और राजा कुछ चुनिन्दा साथियों सहित उसका सेवक बन कर जाय। प्रेम ने इस निश्चय को कार्य में परिणत कर दिया, और इस चातुर्य पूर्ण उपाय एवं अति शायिनी

वीरता के सहारे उसने अपनी इच्छा पूर्ण की और शूर वीरता के अनेक आश्चर्य-कारी कार्य कर अपने राज्य में पहुँचा। उसके सौ सामन्त अनेक रूप धारण कर उसके साथ गये थे। उन्होंने राजा को भगाने में मदद दी और उसका पीछा करने वालों को हराया गोविन्दराम गहलोत ने सर्व प्रथम युद्ध किया और बहादुरी से लड़ता हुआ मारा गया। उसने सात हजार शत्रुओं का संहार किया। तदनन्तर नरसिंहदेव, चान्द पुण्डी, सरधौल सोलंकी और अपने दो भाइयों सहित पाल्हण देव कछवाहा पहले दिन की लड़ाई में आश्चर्यकारी वीरता के कार्य कर युद्ध में काम आये और बाकी सब सामन्त भी खेत रहे। चान्द और उसके दो भाइयों सहित राजा दुलहिन को दिल्ली लाया और तमाम संसार उसके इस कार्य से आश्चर्य चकित हो गया।''

इस अवतरण को पढ़ने के बाद कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि पृथ्वीराज रासो की रचना या संयोगिता हरण की कथा की कल्पना सत्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी में हुई होगी? यदि किसी को इससे भी अधिक इस प्रमाण की आवश्यकता हो कि रासो का स्वरूप प्राय: ऐसा ही होगा जैसा कि बीकानेर वाले संक्षिप्त संस्करण में मिलता है तो वह 'सुजन चरित' के निम्नलिखित अवतरण का अवलोकन करे। यह ग्रन्थ सम्भवत: आइने अकबरी से कुछ वर्ष प्राचीन ही है; और रासो का सोलहवीं शताब्दी में क्या रूप रहा होगा इस बात का निर्धारण करने के लिए तो मैं इसे अत्यन्त उपादेय समझता हूँ। 'सुर्जन चरित' की कथा संक्षेप में इस प्रकार है:—

"एक बार जब पृथ्वीराज नगर से बाहर बिहार भूमि में वास कर रहा था प्रतिहारी ने आकर निवेदन किया कि कान्यकुब्ज से आई हुई एक स्त्री आपका दर्शन करना चाहती है। आज्ञा प्राप्त कर उसने उस स्त्री को अन्दर बुलाया। प्रश्न पूछने पर नवागन्तुक स्त्री ने निवेदन किया, "नौलाख असवारों के स्वामी कान्य-कुब्जेश्वर के कान्तिमति नामक एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या है, पिता के पास बैठी हुई कान्तिमती ने एक बार चारणों के मुख से आपका यश सुना। स्वप्न में भी एक बार उसे आपके दर्शन हुए। तब ही से खाना पीना सब भूल कर आप ही की चिन्ता में मग्न है। पूछने पर कुछ उत्तर नहीं देती, कभी स्वयं ही आपका नाम रटा करती है। भाग्य भी उसके अत्यन्त प्रतिकूल हो रहा है। उसका पिता अभी एक अन्यराजा को अपना जमाई बनाना चाहता है। इससे अत्यन्त व्याकुल होकर कान्तिमती ने

एकान्त में अपनी सखी से कहा, "उन्हें प्राप्त करने की दुराशा क्या इतना ही मोह का कार्य नहीं है जितना कि रसातल के पिंजरे में बन्द किसी चकोरी का यह उम्मेद करना कि वह कभी आकाश में स्थित चन्द्रमा का स्पर्श कर सकेगी। यदि मैं उनके पास सन्देश भेजूं तो क्या यह हास्य का ही विषय न होगा। कन्याएँ कहीं पाणि-ग्रहण के लिए प्रार्थना थोड़े ही किया करती हैं। अब तो मेरे लिये मरण ही शरण है", सखी ने कान्तिमती को आश्वासन दिया और मुझे सब बात निवेदन करने के लिये आपकी सेवा में भेजा है।" पृथ्वीराज ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, मैंने कान्तिमती के गुणों का श्रोत पुटों द्वारा अनेक बार पान किया है। मैं शीघ्र ही उसकी इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करूंगा। मेरी यह इच्छा भी है कि मैं कान्यकुब्ज नगर देखूँ। तुम जाकर मेरी प्रिया को मेरे वचनों से प्रसन्न करो। मैं शीघ्र ही आता हूँ।" उसने अपने बन्दी को मुखिया बनाया, और जयचन्द के आशय, साहस आदि की परीक्षा करने और शहर के बाहर और अन्दर जाने के मार्गों को अच्छी तरह देखने के लिये अपना वेश छोड़ कर बन्दी का अनुसरण किया। उसके साथ १५० सामन्त थे। जयचन्द की सभा में वह दूसरे का पार्श्वचर बनकर रहता था, परन्तु अपने शिविरमें सब लोग उससे राजा का सा ही व्यवहार करते।

पृथ्वीराज गङ्गा के तीर पर निर्भय विहार किया करता। एक दिन चाँदनी रात के समय घोड़े को पानी पिलाने के लिये वह गङ्गा तट पर पहुँचा। फेन के गन्ध से कई मछलियाँ सतह पर आगई। राजा ने कौतुक वश अपने कण्ठ से कई मोती उनके बीच में फेंक दिये। मछलियों के झुण्ड के झुण्ड उन्हें खीलें समझ कर ऊपर उठ आए। कान्यकुब्जेश्वर की कन्या ने उसे इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए देख कर अपनी सखियों से कहा कि इस प्रकार से मुक्ताओं से क्रीडा करने वाला मनुष्य कोई बड़ा राजा ही होसकता है। पृथ्वीराज के समीप जो दासी भेजी गई थी उसने पृथ्वीराज को पहचाना और कहा कि वह पृथ्वीराज के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो किसी दासी को भेज कर इस बात की परीक्षा करलो। अधीश्वरों का यह स्वभाव ही होता है कि अकेले होने पर भी वे अपने आपको सेवकों से घिरा हुआ समझते हैं। इस हार के समाप्त होने पर, दूसरे मोतियों के लेने की इच्छा से, मनमें यह समझता हुआ कि पीछे कोई

ा है, यह अपना हाथ पसारेगा। कुतूहल वश राजकुमारी ने उसकी सलाह
अनुसार कार्य किया। जब पृथ्वीराज ने हार समाप्त होने पर पीछे की तर्फ
। पसारा, तो दासी ने उसके हाथ में मुक्ता जाल रख दिया। जब वे
थित मोती भी समाप्त हो गये, तब दासी ने अपने गले का हार उतार
राजा के हाथ में रख दिया। स्त्रियों के उस कण्ठ भूषण को देख कर
ा विस्मित हुआ और पीछे मुड़ कर उसने उस दासी को देखा और पूछा, 'तू
ा है, राक्षसी के समान तू रात्रि के समय कहां घूम रही है, और तूने किस लिए
; बहु मूल्य मोती दिये हैं'। उसने उत्तर दिया, हे महाभाग, मैं राजकुमारी
दासी हूँ। आपको यहां विहार करते हुए उसने तथा उसकी सखियों ने देखा
और स्वभावतः उनके मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि आप कौन हैं? उसकी
नी दासा ने उसे बतलाया था कि यह पृथ्वीराज है। परन्तु दूसरी ने इस बात
नहीं माना और इसलिए परीक्षार्थ मुझे भेजा गया है।" पृथ्वीराज ने कहा,
म्हारी इस गवेषणा से कोई लाभ नहीं। वह ऐसा सन्देह ही क्यों करती है।
कल रात्रि के समय फिर आऊंगा। उस समय सन्देह दूर हो जायगा।" पृथ्वी-
का यह सन्देश सुन कर राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न हुई। दूसरे दिन जब
काश में चाँदनी खिल चुकी थी; पृथ्वीराज द्वारपालों की नजर बचा कर राज-
ारी के महल में घुस गया। राजकुमारी और उसकी सखियों ने उसका स्वागत
ा। पृथ्वीराज ने वहाँ कुछ समय बिताकर फिर यह कहते हुए छुट्टी मांगी, । "हे-
नयनि! कोई आदमी यह नहीं जानता कि मैं यहाँ आया हूँ! यदि मैं ठीक समय
शिविर में न पहुँचा तो मेरे सेवकों के हृदयों में अनेक शंकायें उठेंगी; परन्तु
ुम्हारा वियोग भी सहन नहीं कर सकता। इसलिये सामन्तों से मिलकर मैं शीघ्र
ापिस आऊंगा और तुम्हारो इच्छा पूर्ण करूंगा।" इतनी बात सुनते ही राज-
ारी की आखों में आसूं भर आए और उसने अश्रु पूर्ण नेत्रों से सखियों
तरफ देखा। अपनी प्रिया को इस प्रकार विरह से तप्त देख कर पृथ्वीराज ने
का हाथ पकड़ा और उसके साथ-साथ महल के दरवाजे पर पहुँचा। वहाँ कई
म घोड़े खड़े थे। पृथ्वीराज ने एक तेज घोड़ा छीन लिया और राजकुमारी
त उस पर सवार होगया। द्वारपाल चकित होकर उसकी तरफ देखते ही
गये और वह अपने शिविर में पहुँच गया। तब उसके मुख्य सांमत ने प्रसन्नता
क उसके पास जाकर कहा "आप वधू सहित राजधानी के लिए प्रस्थान करें।

जब तक आप चार योजन जाँयगे तब तक मैं अकेला ही जयचन्द की सेना का सामना करूंगा।" इस प्रकार सब योजनों को सामंतों ने अपने बीच में बांट लिया। वे सामंत वास्तव में दानवों के अवतार थे और युद्ध में मृत्यु प्राप्त कर अपने असली स्वरूप में पहुँचना चाहते थे। पहले दानव ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ही कार्य्य किया। पृथ्वीराज के इन्द्रप्रस्थ पहुँचते पहुँचते बहुत थोड़े सामंत ही शेष रह गये। इसके बाद पृथ्वीराज ने जयचन्द से घोर संग्राम किया। जयचन्द युद्ध में हार गया और पृथ्वीराज को विजय लक्ष्मी और वधू दोनों ही प्राप्त हुई।"

इन दोनों अवतरणों को देखते हुए प्रायः सभी कह सकते हैं कि:—

(१) रासो अकबर के समय वर्त्तमान था।

(२) मुसलमान और बंगाली दोनों ही उसे ऐतिहासिक ग्रन्थ समझते हैं।

(३) अबुल फज़ल की दृष्टि में रासो का ऐतिहासिक महत्त्व फारसी तवारिखों से कम नहीं था।

(४) इस ऐतिहासिक महत्त्व को देखते हुए यह भी स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो उस समय भी प्राचीन ग्रन्थ समझा जाता था और इसे १६ वीं या १७ वीं शताब्दी का ग्रन्थ मानना भूल है।

(५) अब हम शहाबुद्दीन से युद्ध के बारे में विचार करते हैं। यह तो सभी मानते हैं कि पृथ्वीराज की शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध हुआ था; परन्तु रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज ने उसे हर एक बार हराया और पकड़ कर भी छोड़ दिया। पृथ्वीराज के कैद होकर गजनी जाने और अंधा होने पर भी शब्द वेधी बाण द्वारा सुलतान को मारने की कथा भी रासो के प्रायः सभी पाठक जानते हैं। इन कथाओं में कहां तक तथ्य है, यह इतिहास लेखकों के लिए विचारणीय प्रश्न है। १४ वीं शताब्दी में रचे हुए श्री हम्मीर महाकाव्य में लिखा है कि पृथ्वीराज शकाधिराज को पकड़ कर अपनी नगरी में ले गया और कुछ समय बाद उसे बढ़िया बढ़िया वस्त्र देकर छोड़ दिया। इस प्रकार पृथ्वीराज ने सुलतान को कई बार पकड़ा और कई बार छोड़ दिया। जिनविजयजी द्वारा प्रकाशित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में लिखा

है कि पृथ्वीराज ने मुहम्मदगोरी को सात बार युद्ध में हराया। आइने-अकबरी में अबुलफजल ने प्रायः पृथ्वीराज रासो ही की कथा दी है। उसने लिखा है कि पृथ्वीराज अपनी सुन्दर स्त्री के प्रेम ही में फँसा रहता था। जब एक साल बीत चुका तो सुलतान शहाबुद्दीन ने राजा जयचन्द से मेल कर लिया और एक बड़ी सेना सहित इस देश पर आक्रमण किया और बहुत से स्थान ले लिये; परन्तु किसी की इतनी हिम्मत नहीं होती थी कि वह जाकर राजा के सामने सब मामला पेश करे। अन्त में चन्द महलों में पहुँचा और उसने राजा को युद्ध के लिए उकसाया, परन्तु राजा अपनी पूर्व विजय के घमण्ड में था और थोड़ी सी सेना लेकर रवाने हुआ। उसके सामन्त मारे जा चुके थे और जयचन्द उसके विरुद्ध था। राजभक्त चन्द वहां भी पहुँचा और उसने सुलतान को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह पृथ्वीराज की धनुर्विद्या का कौशल देखे। सुलतान ने उसकी राय मान ली और राजा ने सुलतान को बाण से मार दिया। नौकरों ने राजा और चन्द पर हमला किया और उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। सुर्जनचरित की कथा भी इसी से मिलती जुलती है। उसके रचयिता ने भी लिखा है कि जब पृथ्वीराज ने मुहम्मदगोरी को सात बार पकड़ा और छोड़ दिया और आठवीं बार उसने पृथ्वीराज को पकड़ लिया और गजनी ले जाकर अन्धा कर दिया। बाकी कथा प्रायः आइने-अकबरी के समान ही है। इसमें भी चन्द का नाम दिया गया है, जिससे स्पष्ट है कि आइने-अकबरी और सुर्जनचरित इन दोनों की कथाएँ उस समय में प्रचलित रासो ली गई है। रासो और इन पुस्तकों की कथा की समानता से प्रायः सब ही देख सकते हैं।

यह बहुत सम्भव है कि मुहम्मदगोरी अनेक बार हारा हो। मुसलमान तवारीखों में ऐसा नहीं लिखा है, परन्तु जब तमाम हिन्दू पुस्तकें इस विषय पर एक मत है तो उन्हें भी झूठा किस प्रकार बतलाया जाय। सुलतान के पृथ्वीराज के हाथ से मारे जाने की कथा के विषय में एकमत का अभाव है। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार पृथ्वीराज गजनी ले जाकर मारा गया। पुरातन-प्रबन्ध संग्रह के अनुसार प्रतापसिंह नामक एक पुराने मंत्री के कहने से राजा ने सुलतान की एक लोह मूर्ति पर निशान लगाया। निशाना ठीक लगा, परंतु इससे सुलतान को कोई हानि नहीं हुई। यह तो केवल प्रतापसिंह का षड्यन्त्र था। राजा पकड़ा जाकर मारा गया। मुहम्मद गोरी के समसामयिक ग्रन्थ ताजुलमासीर से भी किसी ऐसे षड्यन्त्र का

भान होता है। उसमें लिखा है कि पृथ्वीराज युद्ध में पकड़ा गया। जब उसे कुछ समय के लिये मुक्त किया गया तो उसने सुलतान के विरुद्ध षड्यन्त्र किया और इसी कारण वह कत्ल कर दिया गया। सम्भव है कि मूल रासो के रचयिता को भी यह कथा मालूम हो, परन्तु रासो तो आखिरकार काव्य ही है, उसमें यदि दुष्ट सुलतान को दण्ड न दिलाया जाता, तो काव्य की सुन्दर पूर्ति न होती। उत्तररामचरित आदि के ग्रन्थकार इस बात से परिचित थे कि सीताजी अन्त में पृथ्वी में समा गई थीं; परन्तु उन सब नाटकों के अन्त में सीताजी को श्री रामचन्द्रजी से मिलन दिखलाया गया है। सुर्जनचरित्र का कर्त्ता अच्छी तरह जानता था कि पृथ्वीराज गजनी में मारा गया; परन्तु उसने लिखा है कि चन्द पृथ्वीराज को सुलतान के वध के बाद दिल्ली ले आया और अनेक वर्ष तक वहां सुख और शान्ति से राज्य किया। रासो के रचयिता को भी सम्भवतः सब बात मालूम हो। उसे शायद मालूम होगा कि पृथ्वीराज ने एक लोह मूर्ति पर बाण चलाया था और उस षड्यन्त्र के कारण वह मारा गया; परन्तु उसने ऐसा लिखना शायद उचित न समझा हो, किन्तु यह केवल अनुमान ही है। पाठक इस विषय में जैसा उचित समझें वैसा सिद्धान्त बनावें।

(७) पर्वतराज हाहुलीराय हमीर के विद्रोह के प्रमाण भी अनुपलब्ध नहीं हैं। हाहुलीराय पञ्जाब आदि का शासक माना गया है। उसका असली नाम सम्भवतः विजयदेव था। तबकातेनासिरी के अनुवाद के टिप्पणों में रैवर्टी ने जम्मू राजाओं की तवारीख से अनेक अवतरण दिये हैं। उनसे स्पष्ट है कि जम्मू के राजा ने शहाबुद्दीन गोरी का साथ दिया था। पञ्चनद मुसलमानों के हाथ में था, इसलिये हाहुलीराय से इस राजा का ही निर्देश हो सकता है। जम्मू की तवारीख में लिखा है कि तरावड़ी की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज का मुख्य सेनापति गोविन्दराय, विजयदेव के पुत्र नरसिंहदेव के हाथ से मारा गया। यह कहना कठिन है कि इस तवारीख की सब बातें ठीक हैं। परन्तु इतना तो अवश्य निश्चित है कि जम्मू में एक ऐसा परम्परागत ऐतिह्य है कि जम्मू के राजाओं ने पृथ्वीराज के विरुद्ध शहाबुद्दीन का साथ दिया था। मेरी धारणा है कि यही [illegible] विरोधी राजपूत राजा, रासो का हाहुलीराय है।

ऊपर की पंक्तियों में हमने बीकानेर के पृथ्वीराज रासो के [illegible] संस्करण

के प्राय: सभी विषयों पर विचार किया है। हमें उसकी चौहानों की उत्पत्ति-कथा इतिहास-विरुद्ध प्रतीत नहीं होती, वंशावली भी ठीक-ठीक ही है और चौहान चौलुक्य संघर्ष का आधार भी कुछ सच्ची कथाएं प्रतीत होती हैं। संयोगिता-स्वयंवर और शहाबुद्दीन के पकड़े जाने की कथाएं कम से कम सोलहवीं शताब्दी से बहुत प्राचीन हैं। कैंमास वध, हाहुलीराय के विद्रोह के लिए भी प्रमाण अनुपलब्ध नहीं है, और आइनेअकबरी, सुर्जनचरित, एवं पुरातनप्रबन्ध संग्रह के अवतरणों की सामग्री एवं भाषादि का विचार करते हुए हमें यह कहने में संकोच नहीं हो सकता कि मूल रासो काफी पुराना ग्रन्थ था और उसका आख्यान-भवन काफी मजबूत ऐतिहासिक बुनियाद पर बना हुआ था। बीकानेर में प्राप्त रासो, दूसरी प्रतियों से अधिक प्राचीन और प्रामाणिक है, पर वह भी क्षेपकों से रहित नहीं है। अभी रासो की प्रतियों के शोध की पर्याप्त आवश्यकता है और मुझे विश्वास है कि बीकानेर वाली प्रति से काफी पुरानी प्रतियां कभी न कभी राजस्थान के ही किसी कोने में मिलेंगी। पृथ्वीराजविजय महाकाव्य चौहानों के इतिहास का बहुत अच्छा साधन है, परन्तु मूल रासो सम्भवत: उससे कहीं अधिक सम्पूर्णाङ्ग और ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण पाया जायगा।

टिप्पणियां—

१. इस प्रति के विशेष परिचय के लिये हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १६३६ के प्रकाशित होने वाले कार्य-विवरण में लेखक का लेख देखें।

२. ऊपर वाला लेख, एवं अगरचन्दजी नाहटा का राजस्थानी, भाग ३, अङ्क २ में 'पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ' नामक लेख देखें।

३. पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, सर्ग ५, श्लोक ६८।

४. प्रबन्धकोश के अन्त में दी हुई वंशावली।

५. एकादश सर्ग।

६. गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज में प्रकाशित इस नाटक की प्रस्तावना।

७. जिनमण्डनगणि रचित कुमारपाल प्रबन्ध, द्वयाश्रय महाकाव्य, और सं० १२०२ का धारा वर्ष का लेख।

८. उपाध्याय ने संवत् १२६२ में षट्स्थानक नामक वृत्ति की रचना की।

९. प्रबन्ध में पृथ्वीराज के भाई का नाम यशोराज मिलना उसकी अत्यधिक प्राचीनता को संदिग्ध बनाता है।

१०. कथा इस प्रकार है:—

राजा पृथ्वीराज चौहान की राणी सुहवदे जोइयाणी अपने पति से रूठ कर पिता के घर आन बैठी थी, उसके पिता ने खाटू (गाँव) की पहाड़ी पर पुत्री के लिए एक महल बनवा दिया। वह इतना ऊँचा था कि उसमें जलता हुआ दीपक अजमेर में नजर आताथा। जोइयाणी की आशनाई गुन्दलराव से होगई। गुन्दल ने अपने गांव से उस महल तक एक सुरंग खुदवाई जिस में होकर वह जोइयाणी के महल में आया जाया करता था। एक बार पृथ्वीराज की दूसरी रानी अजयदेवी दहियाणी ने उस दीपक को देखकर अनुमान बांधा कि वहां अवश्य कोई मर्द आता जाता होवेगा और उसने यह बात पति से कही, तब अपने चौकी के घोड़े पर सवार होकर पृथ्वीराज अचानक सुहबदे के महल की ड्योढ़ी पर जा पहुँचा और घोड़े से उतर पड़ा। द्वारपाल ने राणी के पास खबर पहुँचाई, इतने में पृथ्वीराज भी महल में पहुँच गया, गुन्दल-राव तो तत्काल सुरंग के मार्ग से चलता बना, परन्तु उसके पाँव का जोड़ा वहां रह गया। प्रभात को जब पृथ्वीराज ने वह जोड़ा देखा तो सुवहदे से पूछा कि यह किसका है और यहां कौन मर्द आता है। थोड़ी देर तो वह टालम-टोल का उत्तर देती रही, परंतु जब देखा कि सच कहे बिना न चलेगा तो स्पष्ट कह दिया कि यहां गुन्दलराव खींची आता है। यह सुनकर पृथ्वीराज पीछा अजमेर को लौटा और दूसरे दिन ही दाहिम चामुण्डराज को फौज देकर जायल की तरफ खींचियों पर बिदा किया। (प्रथमभाग, पृष्ठ १८५६)

११. कई स्थानों पर केवल भावानुवाद कहा जा सकता है।

१२. जैरेट, आइनेअकबरी, भाग२, पृष्ठ ३००- ३०१।

१३. सर्ग १०, श्लोक ११-१२७।

राजस्थानी भाग ३, अंक ३, जनवरी १६४०, कलकता
(त्रैमासिक)
पृष्ठ १ से १६ तक

(२)

पृथ्वीराज रासो की एक पुरानी प्रति और उसकी प्रमाणिकता

पृथ्वीराज रासो की अनेक हस्तलिखित प्रतियां मेरे देखने में आई हैं। कई बहुत लम्बी और कई बहुत छोटी हैं। प्रतियाँ जितनी पुरानी हैं उतनी ही छोटी और जितनी नई प्राय: उतनी ही बड़ी हैं। इससे स्पष्ट है कि रासो आरम्भ में दीर्घकाय ग्रन्थ नहीं था।अनेकस्थानों में अनेक कवियों ने उसमें इधर-उधर की सामग्री भरकर उसकी ऐतिहासिकता को प्राय: नष्ट कर दिया है। यह भी सम्भव है कि रासो को ऐतिहासिक रूप में प्रख्यात देख कर अनेक राजाश्रित चारणों ने उसमें अपने संरक्षकों की महिमा गान इतस्तत: लगा दिया हो। रासो की भाषा भी एक सी नहीं है, कहीं काफी प्राचीन और कहीं बिलकुल नवीन है। रासो में प्रक्षिप्त भाग कितना है, यह बतलाना आसान काम नहीं है। परन्तु प्रक्षिप्तांश की मात्रा का कुछ साधारण ज्ञान निम्नलिखित तालिका से हो जायगा—

प्रति	समय	ग्र० सं०
(१) बीकानेर–फोर्ट लाइब्रेरी की रामसिंह के समय की प्रति	लगभग १६५५ सं०	४००४
(२) नाहटा संग्रह की प्रति	१७६२ सं०	१०३६०
(३) नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित	१७३२ सं०	१,००,०००

अत: बीकानेर पुस्तकालय की प्रति को ही सबसे प्राचीन मानना उचित होगा और उसका विषय–विश्लेषण हीं मैं आपके सम्मुख रखूँगा इस पुस्तक के केवल १६ खंड है और ग्रन्थ–संख्या एक लाख नहीं, चार हजार है।

प्रथम खण्ड:—

(१) गणेशवंदन।
(२) सरस्वती वंदन।
(३) शिववंदन।
(४) दशावतार वंदन।

दशावतार वंदन में कंस–वध पर्यन्त कृष्ण चरित सम्मिलित है। भाषा कहीं-कहीं बिलकुल नवीन है। उदाहरण–स्वरूप कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं—

(क) सुनौ तुम चंपक चंद चकोर, कहौ कहँ स्याम सुनौ खगमोर।
किये हम मान तज्यो उन संग, सह्यो नहीं गर्व रह्यो नहीं रंग॥

(ख) सकल लोक ब्रजवासि जहँ, तहँ मिलि नंद कुमार ।
दधि तंदुल मंजुल मुखहिं, किय बहु बिधि अहार ॥

द्वितीय खंड:—

(१) भरत, नलचरित-रचयिता हर्ष, कालीदास, दंडमाली आदि सात कवीश्वरों का वंदन ।

(२) चहुवान-वंश-वर्णन ।

इसमें केवल इतने राजाओं का वर्णन है-

(क) ब्रह्मा के यज्ञ से उत्पन्न चहुवान मानिकराय ।	(ङ) आनल
	(च) जयसिंह
(ख) अनेव ।	(छ) आनंद
(ग) धर्माधिराज ।	(ज) सोम
(घ) बीसल	(झ) पृथ्वीराज

(३) निधि-प्राप्ति

(४) दिल्ली-प्राप्ति

वशिष्ठ के अग्निकुंड से उत्पत्ति की कथा इस पुस्तक में नहीं है । चौहान राजाओं का वर्णन भी संक्षिप्त ही है और झूठ-मूठ बीच में राजाओं के नाम इसमें नहीं भरे गए हैं । मुझे तो यह भी संदेह है कि अनेव और और धर्माधिराज राजाओं के नाम हैं या नहीं । इस संक्षिप्त वर्णन में धर्माधिराज माणिक्यराय का विशेषण मात्र और अनेव अनेक का पर्यायवाची प्रतीत होता है । इस प्रकार वंशावली का रूप कुछ इस प्रकार होजाता है-

(क) अनेक अनुजयुक्त धर्माधिराज माणिकराय	(घ) जयसिंह
	(ङ) आनंद
(ख) बीसल	(च) सोम
(ग) आनल्ल	(छ) पृथ्वीराज

यदि बीसल को विग्रहराज तृतीय मान लिया जाय और प्रबंध कोश के अंत की वंशावली में भी स्त्री-लंपट बताया गया है, तो बात बहुत कुछ साफ हो जाती है । शिलालेखों से प्राप्त वंशावली इस प्रकार है-

यदि हमारी प्रति के आनल्ल को पृथ्वीराज प्रथम का दूसरा नाम मानें और केवल पृथ्वीराज एवं पृथ्वीराज के पिता एवं दादा आदि को वंशावली में शामिल करें तो यह वंश-परम्परा बिल्कुल ठीक बैठती है। आनंद. अर्णोराज का भ्रष्ट रूप प्रतीत होता है।

असली रासो द्वितीय खंड से ही आरम्भ हुआ होगा। प्रथम खंड के थोड़े से वन्दन-श्लोकों को छोड़ कर बाकी सब भाग प्रक्षिप्त ही है। द्वितीय खंड के कवि-वन्दन के ठीक बाद "कवि एम रच्यौं जु अग्गें सु वंदे, तिनहु पूछि के कछु कविचंद छंदे।" ये शब्द भी इस अनुमान को पुष्ट करते हैं। परन्तु द्वितीय खंड भी प्रक्षिप्तांश से रहित नहीं है। भाषा की कसौटी पर कसने से दिल्ली-ढिल्ली कथा और मेवाड़पति के यवनराज द्वारा पकड़े जाने की कथा स्पष्टतया प्रक्षिप्त प्रतीत होती है। उनका वास्तव में रासो के मुख्य कथानक से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

तृतीय खण्ड—

(१) संयोगिता की उत्पत्ति।

(२) संयोगिता-विषयक भविष्य वाणियाँ।

भविष्य-वाणियाँ भ्रष्ट संस्कृत में है और इन्हीं को फिर डिंगल के छंदों में बढ़ा कर दिया गया है:—

सत्ययुगे कासिका जुद्ध, त्रेतायां च अयोध्यया।
द्वापरे हस्तिनावासं, कलौ कनवज्जिकापुरी॥

अन्यथा नैव पिष्यंति, द्विजस्य वचन यथा।
प्राप्ते च जुग्गुनोनाथे, संयोगिता तत्र गच्छति ॥

चतुर्थ खण्ड—

(१) भोला भीम द्वारा आबू-विजय।

(२) सलख पँवार द्वारा शहाबुद्दीन गोरी का पकड़ा जाना।

पंचम खण्ड—

(१) अमरसिंह द्वारा कैमास-वशीकरण।

(२) भीम द्वारा नागौर-ग्रहण।

(३) चंद द्वारा दुर्गा स्तुति।

स्तुति के अंत में लिखा है "चूर्णिका। अयं मंत्र स्तुति—
संग्राम काले जपाय भूपाल द्वारे। विजयाय स्मरणं कृत्वा गच्छे।"

(४) वशीकरण का दूर होना और कैमास द्वारा भीम का पराजय।

षष्ठ खण्ड—

(१) जयचंद द्वारा यज्ञारंभ।

पृथ्वीराज का उत्तर इन शब्दों में दिया है:—

"जानहितं एक जुग्गिनी पुरेस जरासंध वंस पृथ्वी नरेस।
तिहुँ बार साह बंधिय जेन भंजिया भुवप्पति भीमसेन।
संभरि सुदेश सोमेशसुत्त दानवति रूप अवतार धुत्त
तिहि कंध सीस किम जग्य होय।"

(२) संयोगिता द्वारा पृथ्वीराज-वरण की प्रतिज्ञा। संयोगिता के लिये गंगा-तट पर महल की रचना।

खंड के प्रायः अन्त में संयोगिता द्वारा कहलाया हुआ यह श्लोक है।

"संवादेच विनोदेच, देव देव तिरच्छति।
अन्य प्रानैव प्रानैव, प्राणेसोमे दिल्लीस्वर।।"

सप्तम खंड—

(१) कैमास का कर्णाटी से गुप्त प्रेम के कारण वध।

(२) पृथ्वीराज का चंद बन्दाई से प्रश्न और भेद का प्रकाशित होना।

जिन छंदों का उल्लेख 'पुरातन प्रबंध-संग्रह' की प्रति में जिनविजयजी ने किया है वे इस प्रति में इस प्रकार हैं:—

"एकु वान पुहुमी-नरेस कैंबास हि मुक्कौ।
उर उप्पर खर हन्यो वीरु कष्षहंतर चुक्कौ॥
बियो बाँन संधान हत्यौ सोमेसर नंदन।
गहौ करि निग्रह्यौ षन्यौ रड्यौ संभरि-नंदन॥"

अष्टम खंड—

(१) सम्वत् ११५१ में कन्नौज के लिये प्रस्थान।

(२) गंगा पर पहुँचना और उसकी प्रशंसा।

(३) जयचंद के द्वार पर चन्द का पहुँचना।

नवम खंड—

(१) चन्द का जयचन्द द्वारा स्वागत।

(२) चन्द के यह कहने पर कि पृथ्वीराज के सिवाय अन्य सब राजा उसके वशीभूत होंगे, जयचन्द का रोष।

(३) कर्णाटी का प्रवेश और पृथ्वीराज को देख कर घूँघट करना।

(४) पृथ्वीराज का पहचाना जाना और लड़ाई का आरम्भ।

(५) पृथ्वीराज और संयोगिता का परस्पर दर्शन एवं विवाह।

दशम खंड—

(१) पृथ्वीराज को पकड़ने का प्रयत्न।

(२) पहले दिन सात सामन्तों का मारा जाना।

एकादश खण्ड—

(१) सोलह सामन्तों का दूसरे दिन मारा जाना।

(२) पृथ्वीराज के मुख्य कार्यों की गणना, मुहम्मदगोरी भीमचालुक्य आदि की पराजय।

द्वादश खण्ड—

(१) भयानक युद्ध।

(२) तीस सामन्तों और संयोगिता सहित पृथ्वीराज का दिल्ली प्रवेश।

इस प्रति के अनुसार युद्ध तीन ही दिन हुआ, न कि दस दिन। युद्ध

का वर्णन पर्याप्त है; परन्तु दूसरी रासो की प्रतियों के समान नहीं।

त्रयोदश खण्ड—

(१) पृथ्वीराज और संयोगिता का विधिपूर्वक विवाह।
(२) जैत खंभ का आरोपण।
(३) धीर पुंडीर द्वारा शहाबुद्दीन का पकड़ा जाना।
(४) षड् ऋतु शृंगार वर्णन।

चतुर्दश खण्ड—

(१) चामुंडराय सामंत का बंध मोचन।
(२) शहाबुद्दीन से युद्ध के लिये सामन्तों की मंत्रणा।

पंचदश खण्ड—

शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के दलों की प्रारम्भिक लड़ाई रचना।

षोडश खण्ड—

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी का युद्ध।

सप्तदश खण्डः—

'योगिनी-चिल्ह-गृद्ध रूपेण संयोगितां प्रति शूर समर पराक्रम व

अष्टादश खण्ड—

(१) शूर सामन्त पराक्रम वर्णन।
(२) पृथ्वीराज का पकड़ा जाना।
(३) जालंधरीदेवी के स्थान में चंद कवि से वीरभद्र की भेंट।

नवदश खण्ड—

(१) चंद का रूप बदल कर गजनी जाना।
(२) अंधे पृथ्वीराज को देख कर चंद बरदाई द्वारा उसके पूर्व का वर्णन।
(३) गोरी की आज्ञा सुनते ही पृथ्वीराज का बाण चलाना और का वध।

(४) चंद और राजा का मरण।

प्रति के अंत में ये पंक्तियाँ हैं—

"मंत्रीश्वर मंडन तिलक बच्छ वंश सुरताण
करमचंद सुत करमचंद भागचंद्र स्रव जाण
लिखियो सही.......... ..पृथ्वीराज-चरित्र
पढतां सुख संपति सकल...सुख होवे मित्त"

करमचंद वच्छावत बीकानेर-नरेश महाराज श्री राम (य) सिंहजी के के मंत्री थे। उनका देहांत संवत् १६५७ में हुआ और वे संवत् १६४७ के लगभग बीकानेर छोड़ चुके थे। उनके पुत्र १६७६ में काम आए। इसलिए हमारी प्रति कम से कम सं० १६७६ से पूर्व की है। बहुत सभव है कि वह मंत्रीश्वर करमचंद के समय में ही लिखी गई हो। प्रति में प्रक्षिप्तांश की मात्रा और भाषा के भिन्न-भिन्न स्वरूप देखते हुए कहा जा सकता है कि रासो उस समय तक काफ़ी पुराना हो चुका था। इससे पूर्व भी संभव है कि रासो के कई संस्करण हो चुके हों। जिन पद्यों का उल्लेख 'पुरातन प्रबंध-संग्रह' की भूमिका में श्री जिन विजयजी ने किया था, वे हमारी प्रति में मिलते हैं और बहुत संभव है कि प्राचीनतर प्रतियों में बिलकुल उसी रूप में वर्तमान हों।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि इसमें दी हुई वंशावली विशेष अशुद्ध नहीं है-रासो को प्रायः निम्न लिखित कथानकों के कारण कृत्रिम एवं जाली बतलाया जाता है:-

(१) अग्निवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति-कथा।

A.

(२) पृथाबाई और राणा संग्रामसिंह[1] का विवाह।

(३) भीम के हाथ सोमेश्वर की मृत्यु।

(४) दाहिमा चावंड की बहिन शशिव्रता एवं हंसावती आदि अनेक कन्याओं से पृथ्वीराज का विवाह।

---

१ सं० टि० A. रासो में सर्वत्र पृथाकुमारी का विवाह समरसी के साथ होना लिखा है, यहां संग्रामसिंह भूल से लिखा जाना प्रतीत होता है।

हमारी प्रति में इन सब कथाओं का अभाव है। सोमेश्वर की स्त्री को अनंगपाल की पुत्रा अवश्य बतलावा गया है। परन्तु संभव है कि वे पृथ्वीराज की विमाता हों। दिल्ली के बीसलदेव के अधीन होने पर भी तोमर राजाओं का वहां रहना संभव है। जिनपाल कृत 'खरतरगच्छ पट्टावली' में संवत् १२२३ के लगभग मदनपाल नामक एक राजा का नाम दिल्ली के शासक-रूप में मिलता है। सम सामयिक ग्रन्थ होने के कारण यह पट्टावली अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। अतएव इसके आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संवत् १२२० के बाद भी दिल्ली चौहानेतरवंश के शासन में थी।

इसी संस्करण की एक और प्रति राज्य-पुस्तकालय में वर्त्तमान है। यदि कुछ और प्राचीन प्रतियों को ढूंढ़ कर असली रासो का संस्करण निकाला जाय तो इतिहास का अत्यन्त उपकार होगा। मैंने सन् १६२७ में इस ग्रन्थ को पहले पहल देखा था। इसके बाद अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ देख चुका हूँ। परन्तु मुझे इसके समान प्रामाणिक एवं प्राचीन कोई दूसरी प्रति नहीं मिली है। यदि कोई सज्जन अन्य प्राचीन प्रतियों की सूचना दें, तो इन पंक्तियों का लेखक अत्यन्त अनुगृहीत होगा।

ना० प्र० (त्रैमासिक) पत्रिका बनारस [नवीन संस्करण भागखंड]
वर्ष ४४, अंक ३, कार्तिक सं० १६६६ पृ० २७५–२८२।
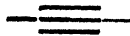
(३)

पृथ्वीराज रासो

पृथ्वीराज रासो को हिन्दी साहित्य का महाभारत कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। यह हिन्दी की शतसाहस्त्रिकी संहिता है और इसमें वही इतिहास, काव्य एवं नीति का विचित्र सम्मिश्रण है। महाभारत के विषय में विद्वानों का अनुमान है कि इसका परिमाण किसी समय केवल ८,००० श्लोक रहा होगा; पृथ्वीराज रासो के विषय में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आरम्भ में यह अत्यन्त अल्पकाय था।

'रासो' के अब तक चार रूपान्तर मिल चुके हैं: एक लगभग एक लाख ग्रन्थ (छंद) का, जिसका काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा प्रकाशन कर चुकी है, दूसरा लगभग दस हजार ग्रन्थ (छंद) का, जिसका सम्पादन सम्भवतः लाहौर में हो रहा है, तीसरा चार हजार ग्रन्थ (छंद) का जिसका इतिहास एवं भाषा शास्त्रादिक विषयक प्रस्तावनाओं सहित मैंने एवं मेरे मित्र प्रोफेसर मीनाराम रङ्गा ने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के लिए सम्पादन किया है और चौथा इससे भी लगभग आधे परिमाण का, जिसका सम्पादन प्रोफेसर नरोत्तमदास स्वामी एवं अगरचन्द नाहटा कर रहे हैं। रासो के मूल स्वरूप का परिमाण कितना था यह बतलाना कठिन है। किन्तु सम्भवतः वह अल्पकाय ही था और उसकी भाषा अपभ्रंश थी। इस बात पर सर्व प्रथम जोर देने का श्रेय मुनि श्री जिन विजयजी को है। उनका निम्नलिखित कथन 'रासो' के प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा पठनीय एवं मननीय है[१]।

"हम यहां पर एक बात पर विद्वानों का लक्ष्य आकर्षित करना चाहते हैं, और वह बात यह है कि इस संग्रह[२] गत पृथ्वीराज और जयचन्द विषयक प्रबन्धों से यह ज्ञात हो रहा है कि "चन्द कवि रचित पृथ्वीराज रासो" नामक सुप्रसिद्ध महाकाव्य के कर्तृत्व और काल के विषय में जो कुछ पुराविद् विद्वानों का मत है

१ 'पुरातनप्रबन्ध-संग्रह,' प्रस्तावना, पृष्ठ ८-६।

२ संग्रह = 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह'। जयचन्द ग्रोर पृथ्वीराज विषयक प्रबन्धों को मुनिजी सम्वत १,२६० की रचना मानते हैं।

कि "वह ग्रन्थ समूचा ही बनावटी और १७वीं शताब्दी के आसपास बना हुआ है" यह मत सर्वथा सत्य नहीं है। इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में जो प्राकृत-भाषा पद्य [पृष्ठ ८६, ८८, ८९ पर] उद्धृत किये हुए मिलते हैं, उनका पता हमने उक्त रासो में लगाया है और इन चार पद्यों में से तीन पद्य यद्यपि विकृत रूप में, लेकिन शब्दशः उसमें हमें मिल गये हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसी ने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई "

हम यहां पर पृथ्वीराज रासों में उपलब्ध विकृत रूप वाले इन तीनों पद्यों को प्रस्तुत संग्रह[1] में प्राप्त मूल रूप के साथ-साथ उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को इनकी परिवर्तित भाषा और पाठ-भिन्नता का प्रत्यक्ष बोध हो सकेगा।

प्रस्तुत संग्रह में प्राप्त पद्य पाठ

इक्कबाणु पहुवीसु जु पइं कइबासह मुक्कओं
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खं तरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओं खणइ खुद्दइ सइंभरिवणु।
फुड छांडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
नं जाणउं चंद बलद्दिउ किं न वि छुट्टइ फलह॥

पृष्ठ ८६ पद्यांक (२७५)

अगहु म गहि दाहिमओं रिपुरायखयंकरु,
कूडु मंत्रु मम ठवओ एहु जंबूय (प ?) मिलि जग्गरू।
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खिविउं बुज्झइं,
जंपई चदबलिद्द मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहु विराय सइंभरिधणी सयंभरि सउणइ संभरिसि,
कइंबास विआस बिसहविणु मच्छिबंधिबद्धओं मरिसि॥

---

१ पुरातन प्रबन्ध संग्रह।

पृष्ठ वही, पद्यांक (२७६)

त्रिणिह लक्ख तुषार सबर पाषरी अइं जसु हय,
चउदसय मयमत्त दंति गंज्जति महामय ।
बीसलक्ख पायक्क संफर फारक्क धगुद्धर,
ल्हू सडु अरु बलु यान संख कु जाणइ तांह पर ।
छत्रस लक्ख नराहिवर विहिविनडिओं हो किम भयउ,
जयचन्द न जाणउ जल्हुकइ गयउ कि मूउ कि धरि गयऊ ।।

पृष्ठ ८८, पद्यांक (२८७)

पृथ्वीराज रासा में प्राप्त पद्य-पाठ है[1]

एक बान पहुमी कैमासह मुक्कौ ।
उर उप्पर थरह ज्यौ वीर कष्षंतर चुक्यौ ।।
बियौ बान संधान हन्यौ सोमेसर नन्दन ।
गाढ़ौ करि निग्रह्यौ षनिव गड्यौ संभीर धन ।।
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाड्यौ गुन गहि अग्गरौ ।
इय जपै चंदबरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ ।।

रासौ पृष्ठ १६४६, पद्य २३६

अगह मकह दाहिमौ देव रिपुरार षयंकर ।
कूरमंत जिन करौ मिले जंबू वै जंगर ।।
मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै ।
अष्षे चंद बिरह बियौ कोइ एह न बुज्झै ।।
प्रथिराज सुनबि संभर धनी इह सभलि संभारि रिस ।
कै मास बलिष्ठ बसीठ बिन म्लेच्छ बंध बंध्यौ मरिस ।।

रासौ, पृष्ठ २१८२, पद्य ४७६

असिम लष्ष लोषार सजउ पष्षर सायद्दल ।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरूअ गज्जन्त महाबल ।।

---

१ मुनिजी ने यह पद्य पाठ काशी नागरी प्रचारिणी के बृहत् संस्करण से लिया है । अन्य संस्करणों में भी ये छप्पय प्राप्त हैं ।

पंच कोटि पाइक्क सुफर पारक्क धनुद्धर ।
जुध जुश्रान वर वीर तोन बन्धन सद्धनभर ॥
छत्तीस सहस रन नाइबौ विहि त्रिम्यान ऐसौ कियौ ।
जैचन्द राइ कविचन्द कहि उदधि बुद्धि कै धर लियौ ॥

रासो, पृष्ठ ५०२, पद्य २१६

"इसमें कोई शक नहीं है कि पृथ्वीराज रासो नामका जो महाकाव्य वर्तमान में उपलब्ध है, उसका बहुत बड़ा भाग पीछे से बना हुआ है। उसका यह बनावटी हिस्सा इतना अधिक और विस्तृत है और उसमें मूल अंश की रचना का अंश इतना अल्प और वह भी इतनी विकृत दशा में है कि साधारण विद्वानों को तो उसके बारे में किसी प्रकार की कल्पना करना भी कठिन है। मालूम पड़ता है कि मूल रचना का बहुत कुछ भाग नष्ट हो गया है और जो कुछ अब शेष रहा है, वह भाषा की दृष्टि से इतना भ्रष्ट हो रहा है कि उसको खोज निकालना साधारण कार्य नहीं है। मन भर बनावटी मोती के ढेर में से मुट्ठी भर सच्चे मोतियों को खोज निकालना जैसा दुष्कर कार्य वैसा ही इस सवालाख श्लोक प्रमाण वाले विशाल बनावटी पद्यों के विशाल पुंज में से चन्दकवि के बनाये हुए हजार पांच सौ अस्तव्यस्त पद्यों को ढूंढ निकालना कठिन कार्य है। तथापि जिस तरह अनुभवी परीक्षक, परिश्रम करके, लाखों झूठे मोतियों में से मुट्ठीभर सच्चे मोतियों को अलग छांट सकता है, उसी तरह भाषा शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान् इन लाख बनावटी श्लोकों में से उन अल्प संख्यक सच्चे पद्यों को भी अलग निकाल सकता है, जो वास्तव में कवि चन्द के बनाए हुए हैं।"

मेरी तरह स्वर्गीय डाक्टर श्री श्यामसुन्दर दास भी मुनिजी के इस युक्ति युक्त कथन से सर्वथा सहमत थे। अल्पकाय रूपान्तरों के अध्ययन से मेरी यह धारणा और भी सुपुष्ट होगई है कि मूल रासो न तो जाली ग्रन्थ था और न उसकी रचना संवत् १६०० के आस पास हुई थी। उस पर जो अनैतिहासिकता का आरोप किया जाता है, वह प्रायः उसके बृहत् एवं स्थूलकाय संस्करण के आधार पर है। रासो के अल्पकाय रूपान्तरों में ऐतिहासिक अशुद्धियों की यह भयङ्कर भरमार नहीं है[1]। कई बार विद्वानों ने रासो का अर्थ समझने में भी भूल की

१. इस विषय पर विशेष विवेचन के लिए इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली- नागरी प्रचारिणी पत्रिका और राजस्थानी में मेरे लेख देखें।

है, और अपनी निजी भ्रान्ति के कारण रासो में अनेक भ्रान्तियों का दर्शन किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासा सार भी इन भ्रान्तियों के लिये किसी अंश में उत्तरदायी है[२]।

महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इतिहास के प्रकांड विद्वान हैं। किन्तु उनके कई आक्षेप अशुद्धार्थ की भित्ति पर आश्रित होने के कारण निर्मूल हैं, कई पिछली तीन-चार सदियों की जोड़ तोड़ के आधार पर किये गये हैं, और कई हेत्वाभासयुक्त हैं।

स्थूलकाय रासो में चौहानों, प्रतिहारों, परमारों और चौलुक्यों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से मानी गई है। बहुत संभव है कि यह कथा परमारों के शिलालेखों या दन्तकथाओं से ली गई हो। रामायणान्तर्गत पह्लवादि की उत्पत्ति कथा भी कुछ ऐसी ही है[३]। बीकानेर के लघु रुपान्तर में इस लम्बी-चौड़ी कल्पनाप्रसूत कथा का अभाव है। उसमें चौहानों की उत्पत्ति के विषय में केवल निम्नलिखित पंक्ति है—

ब्रह्मा न जग्ग अपन्न मूर। मानिक राइ चहुआन सूर ॥

यह कथन पृथ्वीराज विजय महाकाव्य,हम्मीर महाकाव्य, सुर्जन चरित्र काव्य आदि के कथन से असंगत नहीं है। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य ने पुष्कर को प्रथम चाहमान का उत्पत्ति-स्थल माना है। उसी पुस्तक के अनुसार पुष्कर ब्रह्मा का प्राचीन यज्ञकुण्ड था। सुर्जन चरित के सप्तम सर्ग में लिखा है कि ब्रह्मा ने पुष्कर में यज्ञ करते समय विघ्नों की आशंका से सूर्य की तरफ देखा। इसी से प्रथम चौहान की उत्पत्ति हुई।

हम्मीर महाकाव्य की कथा भी प्रायः ऐसी ही है। कम से कम ब्रह्मा के यज्ञ से चौहानों की उत्पत्ति को स्वीकार करना रासा को जाली नहीं ठहरा सकता। बाकी रहा सोलंकियों, प्रतिहारों और परमारों की उत्पत्ति का प्रश्न। यह स्पष्टतः

---

२ इस पहलू पर उदयपुर के राव मोहनसिंह जी विशेष कार्य कर रहे हैं। इस विषय पर 'राजस्थान भारती' में शीघ्र ही उनका लेख प्रकाशित होगा।

३ इस विषय में 'राजस्थानी', भाग ३, अङ्क २, पृष्ठ ५२ पर मेरा 'अग्निवंशियों और प[illegible]वादि की उत्पत्ति कथा में समानता' नाम का लेख देखें।

ऊपर की जोड़-तोड़ है। चाहे वे सूर्य वंशी रहे हों या चन्द्रवंशी, मूल रासो का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। लघु रूपान्तर उनकी उत्पत्ति के विषय में एक भी शब्द नहीं लिखते। स्थूलकाय रासो उन्हें अग्निवंशी लिखे तो लिखता रहे।

पृथ्वीराज विजय से सिद्ध है[1] कि पृथ्वीराज ने अनेक विवाह किये थे। रासो में यदि उनका कुछ वर्णन हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। स्थूलकाय रासो में अवश्य बहुत कुछ जोड़-तोड़ है। उसके नाहरराय की पुत्री, दाहिमा चावंड की बहन, शशिव्रता और हंसावती से विवाह के वर्णन सर्वथा प्रक्षिप्त हैं। न तो लघु रूपान्तरों में ये कथाएँ दी गई हैं और न इतिहास के आधार पर उनका समर्थन किया जा सकता है। किन्तु संयोगिता के स्वयंवर का सभी रूपान्तरों में विशद वर्णन है, संयोगिता का प्रेम, रासो की आत्मा उसका मुख्य अंग है। ओझाजी इस कथा को भी मनगढ़न्त मानते हैं किन्तु वास्तव में क्या यह केवल कल्पना प्रसूत है? ओझाजी की उक्ति उन्हीं के शब्दों में इसी प्रकार दी जा सकती है "जयचन्द बहुत दानी राजा था। उसके कई उपलब्ध दान-पत्रों से पाया जाता है कि उसने प्रसंग-प्रसंग पर अनेक भूमि-दान किये। यदि उसने राजसूय यज्ञ किया होता तो उस महत्वपूर्ण अवसर पर वह बहुत अधिक दान करता। परन्तु उसके सम्बन्ध का न तो कोई दान-पत्र ही मिला और न किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक में उसका उल्लेख है। इसी तरह पृथ्वीराज और जयचंद की परस्पर लड़ाई और संयोगिता-स्वयम्वर की कथा भी ऐतिहासिक नहीं है। ग्वालियर के तंवर राजा वीरम के दरबार के प्रसिद्ध कवि नयचन्द्र[2] ने वि० सं० १४६० के आसपास 'हम्मीर महाकाव्य' बनाया, जिसमें पृथ्वीराज का विस्तृत वर्णन दिया है और उसी की रची हुई 'रंभामजरी' नाम की नाटिका में उसने जयचन्द्र को उसका नायक बनाया है जिसकी प्रशंसा में लगभग दो पृष्ठ उसके विशेषणों के दिये हैं। इन दोनों पुस्तकों में पृथ्वीराज और जयचन्द का पारस्परिक लड़ाई, राजसूय यज्ञ और संयोगिता के स्वयम्वर का उल्लेख तक नहीं है। उसमें स्पष्ट है कि वि० सं० १४६० तक ये कथाएँ प्रसिद्धि में नहीं आई थीं[3]।"

---

१. सर्ग ६, श्लोक ६५।

२. मूल लेख में भूल से 'जयचन्द' छपा है।

३. कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ५८।

किन्तु ये युक्तियां विशेष जोरदार नहीं है। प्रायः हर एक इतिहास एवं तार्किक यह जानता है कि किसी घटना के वर्णन का अभाव यह सिद्ध नहीं करता कि वास्तव में नहीं हुई। इसके अतिरिक्त राजसूय यज्ञ पूर्णतः संपन्न भी तो नहीं हुआ। इस भग्न यज्ञ की डौंड़ी पीटने में क्या आनन्द था? प्रशस्तिकार तो केवल अपनी जीत के राग अलापा करते हैं। हम्मीरमहाकाव्य में यदि पृथ्वीराज के जीवन की मुख्य घटनाएँ दी होती तो उसको मौन गवाही भी कुछ महत्व रखती। किन्तु न तो उसमें पृथ्वीराज के गुडपुर पर और न बुन्देलखण्ड पर किये हुए आक्रमण का ही वर्णन है और ये दोनों घटनाएँ पृथ्वीराज के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण थीं। हम्मीरमहाकाव्य ने गुजराती नर्तकियों का अच्छा वर्णन किया है। किन्तु उसमें पृथ्वीराज द्वारा गुजरात पर किये हुए आक्रमण के लिए एक भी पंक्ति नहीं है। ऐसी पुस्तक में जयचन्द्र से युद्ध का भी निर्देश न हो तो आश्चर्य ही क्या है। रही, रम्भामञ्जरी उसकी प्रामाणिकता तो हम्मीरमहाकाव्य से भी कम है। उसे वास्तव में हम्मीरमहाकाव्य नयचन्द की कृति हीं मानना भूल है।

लगभग सं० १२९० के लिखित पृथ्वीराजप्रबन्ध का यह अनुवाद पढ़ें।

"इधर पृथ्वीराज के स्वर्गस्थ होने पर जयचन्द ने बधाइयाँ आरम्भ की। घर-घर में घृत से उदुम्बर का क्षालन शुरू हुआ। बाजे बजने लगे। मंत्री राज-कुल में न जाता। किसी ने कहा देव, पृथ्वीराज का मरण मंत्री को अच्छा न लगा। "इस प्रकार चौथे दिन मन्त्री दरबार में पहुँचा। राजा ने कहा, मंत्री बहुत दिन बाद दिखाई दिये।" (उसने उत्तर दिया), महाराज राज कार्य में व्यग्र होने के कारण मैं नहीं आया। महाराजा यह खड़खड़ कैसी हो रही है; राजा ने कहा— "क्या तुम नहीं जानते कि पृथ्वीराज मर गया है? इस तरह के वैरी के मरने पर क्या बधाइयां नहीं होती? मंत्री ने उत्तर दिया, "उसके मारे जाने का हर्ष ठीक है या विषाद?" राजा ने कहा "इसका क्या मतलब?" (मन्त्री ने कहा) "दरवाजे के लोहे के किंवाड़ और अर्गला होती है। जब अर्गला टूट जाती है, किंवाड़ अलग-अलग हो जाते हैं, उस समय किले से क्या लाभ? इसी तरह महाराज, आपके लिये पृथ्वीराज अर्गला के समान था। उसके मरने पर घर में सूतक रखना उचित है या बधाइयां आरम्भ करना? बधाइयों को जाने दो। जो आज पृथ्वीराज की दशा हुई है वही कल हमारी होगी।"[1]

---

१ "पुरातनप्रबंध संग्रह" पृष्ठ ८६।

अकबर के समय संयोगिता स्वयंवर और पृथ्वीराज एवं जयचन्द्र के पारस्परिक कलह की कथा पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। अकबर के प्रसिद्ध मंत्री अबुलफज्जल और सुर्जनचरित के बंगाली कवि चन्द्रशेखर ने इनका अत्यन्त रोचक वर्णन किया है[१]। इन दोनों अवतरणों के आधार पर 'राजस्थानी' के पृष्ठों में इसी विषय पर लेख लिखता हुआ मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि—

(१) रासो अकबर के समय वर्तमान था।

(२) मुसलमान और बंगाली दोनों उसे ऐतिहासिक ग्रन्थ समझते थे।

(३) अबुलफजल की दृष्टि में रासो का ऐतिहासिक महत्व फारसी तवारीखों से कम न था।

(४) इस ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराजरासो अकबर के समय में प्राचीन ग्रन्थ समझा जाता था। इसे १६ वीं १७ वीं शताब्दी का ग्रन्थ मानना भूल है।

इस विषय में अब भी मेरा वही मत है। 'पृथ्वीराजविजय' के अन्तिम सर्ग में संयोगिता के अन्तिम सर्ग का निर्देश है।

हम रासो के लघु रूपान्तरों में दिये हुए सब घटना क्रम को शुद्ध नहीं मानते, किन्तु वह स्थूलकाय रासो के घटनाक्रम की तरह निरा-निराधार नहीं है। मूल रासो सम्भवतः पृथ्वीराज के समय लिखा गया था। तीनसौ-चारसौ वर्ष का समय श्रव्यकाव्य की काया पलटने के लिये पर्याप्त था; उसने उसकी काया पलटी भी, किन्तु लघु रूपान्तरों में हम अब भी उसके प्राचीन एवं असली रूप का आभास प्राप्त कर सकते हैं। लघु रूपान्तरों के प्रथम और द्वितीय खण्डों में वंशावली, चौथे पाँचवे में भीम से युद्ध, तीसरे छठे, सातवें, आठवें, नवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें खण्डों में संयोगिता विषयक कथा और बाकी सब में मुख्यतः शहाबुद्दीन से युद्ध की कथा का वर्णन है। ये सभी बातें साधार हैं।

रासो के अनुसार भीमदेव चौलुक्य ने चौहानों से दो युद्ध किये, एक नागौर में और दूसरा आबू में। चाहे इन युद्धों के विषय में हुई बातें अशुद्ध भी हों, तो भी

---

१. देखें जैरेट द्वारा अनुवादित 'आइनेअकबरी', भाग २, पृष्ठ ३००-३०१। सुर्जनचरित, सर्ग १०, श्लोक ११-११७। हिन्दी सारांश के लिये 'राजस्थानी,' भाग ३, अंक ३, पृष्ठ ७-१२ पढ़ें।

इतिहास के आधार पर कम से कम यह तो सिद्ध किया जा सकता है कि इन स्थानों में चौहान और चौलुक्यों में महान् संघर्ष हुआ था। 'राजस्थान भारती' के भाग के प्रथमाङ्क में मैंने चलू (बीकानेर राज्य) के दो शिलालेख प्रकाशित किये हैं। इनमें 'विष्णुदत्त देवसरा (?) आहड़ और अम्बराक नाम के चार मोहिल सरदारों के नाम सात होते हैं। इनमें से प्रथम की मृत्यु वि० सं० १२०० (११४३) और अन्तिम की वि० स० १२४१ (ई० सं० ११८४) में हुई थी। आहड और अम्बराक के विषय में इन देवलियों से पता चलता है कि ये नागपुर (नागोर) की लड़ाई में मारे गये थे।' मोहिल राजपूत चौहानों के अन्तर्गत थे। नागपुर सपादलक्ष साम्राज्य के प्रधान नगरों में से एक था। क्या यह सम्भव नहीं कि ये चौहान वीर अपने स्वामी पृथ्वीराज के पक्ष में नागोर में भीमदेव के विरुद्ध लड़ कर स्वर्गस्थ हुए हों ?

'पृथ्वीराज विजय' के वर्णन से स्पष्ट है कि चौहान भीमदेव को अपना शत्रु समझते थे। सम्वत् १२३५ में शहाबुद्दीन गोरी ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। उस समय पृथ्वीराज को गद्दी पर बैठे ज्यादा अर्सा नहीं हुआ था। मुसलमान नड्डूल नगर पर कब्जा कर गुजरात की तरफ़ बढ़ रहे थे[1]। इस समय स्वदेश हित की दृष्टि से चौलुक्यों से मेल-जोल करना अत्यन्त आवश्यक था, तो भी कदम्बवास (कैमास) ने पृथ्वीराज को निम्नलिखित शब्दों में राय दी थी—

राजन्नवसरो नायं रुषां भाग्यनिधेस्तव।
किं क्रमेलकभक्ष्येषुतार्क्ष्यः फणिसु कुप्यति ॥ ४॥
'तिलोत्तमामिवोदिश्य रसामतिमनोरमाम्।
सुन्दोपसुन्दभङ्ग्याते स्वयं नंक्ष्यन्ति शत्रवः ॥ ५॥

'हे राजन्, आप भाग्यनिधि हैं। यह आपके क्रोध के लिये (उचित) अवसर नहीं है। क्या गरुड़ उन सांपों पर क्रुद्ध होता है, जो ऊंटों द्वारा खाने योग्य हों।

'जिस तरह सुन्द और उपसुन्द तिलोत्तमा के लिये नष्ट हो गए थे, उसी तरह तुम्हारे शत्रु इस सुन्दरी पृथ्वी के लिये लड़-भिड़ कर नष्ट हो जायंगे।'

---

१ सर्ग १०, श्लोक ५० । २— सर्ग ।

यह तीव्र जलन एक-दो दिन की न थी। पृथ्वीराज तो गद्दी पर आया ही था। इसलिये यह निश्चित है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर को चौलुक्यों के हाथ पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ा था। वह उनके हाथ मारा न गया सही, किन्तु पराजित अवश्य हुआ था और यही ऐतिहासिक तथ्य रासो में वर्णित सोमेश्वर और भीमदेव के युद्ध का आधार है। इस पराजय का कुछ निर्देश मदन-ब्रह्म के भग्न शिलालेख में भी है।

"रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज ने भीमदेव का वध कर अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया। यहाँ फिर पाश्चात्त्न कवियों ने पराजय को वध में बदल दिया है। पृथ्वीराज ने चौलुक्यों से युद्ध किया और उन्हें हराया भी। यह बात पृथ्वीराज के समकालीन जैन पंडित जिनपाल की खरतर गच्छपट्टावलि से सिद्ध है। सम्वत् १२४४ में खरतरगच्छाचार्य जिनपतिसूरि ने आशापल्ली के दण्डनायक अभयड़ के गुरु प्रद्युम्नाचार्य को शास्त्रार्थ में हराया।

उससे नाराज़ होकर दण्डनायक ने जिनपपति सूरि और उनके संघ को तंग करने का निश्चय किया और मालव देश में स्थित गुजरात के प्रधान के पास यह लिख कर भेजा, "इस देश में अत्यन्त धनी सपादलक्ष के लोगों का एक संघ आया है। आपकी आज्ञा हो तो राज्य के घोड़ों के लिये दाने का प्रबन्ध करूँ।" इतना सुनते ही जगदेव अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने पेशकार से यह उत्तर लिखवाया, "मैंने अब बड़ी मुश्किल से पृथ्वीराज से सन्धि की है। इसलिये यदि तुमने सपादलक्षीय किसी आदमी पर हाथ डाला तो तुम्हें गधे के पेट में सी दिया जायगा।" गुजरात के एक शिलालेख में भी जगदेव प्रतिहार और पृथ्वीराज के युद्ध का निर्देश है।[1]

आबू के बारे में भी चौहानों और चौलुक्यों में बहुत दिन से कसमकस चल रही थी। कुमारपाल चौलुक्य ने आबू के राजा विक्रमसिंह को गद्दी से उतार कर उसी वंश की दूसरी शाखा को गद्दीनशीन किया था। यह असंभव नहीं है कि पदच्युत शाखा के प्रतिनिधियों ने पृथ्वीराज का आश्रय लेकर उसकी अनुपम सेवाएँ की हों। पृथ्वीराज के समय धारावर्ष व परमार आबू में राज्य करता था। वह

---

१. इस विषय पर विशेष विवेचन के लिये 'न्यू इन्डियन एण्टीक्वरी' में जगदेव प्रतिहार पर और "इण्डियन कल्चर" में पृथ्वीराज तृतीय पर लेखक के लेख देखें।

चौलुक्य भीमदेव का सामन्त था। उस पर आक्रमण करना एक प्रकार से भीमदेव पर ही आक्रमण करना था। शिलालेखों में और पृथ्वीराज विजय के उपलब्ध भागहा में चौहान परम्परा संघर्ष का वर्णन नहीं है; किन्तु धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादन ने स्वरचित 'पार्थ विजय' में स्पष्ट लिखा है कि पृथ्वीराज ने रात्रि के समय धारावर्ष की फौज पर छापा मारा। यही आक्रमण और पदच्यु परमारों का पृथ्वीराज के यहाँ शरण लेना सम्भवतः आबू विषयक रासो की युद्ध कथा का आधार बना है। अपभ्रंश भाषा में रचित मूल रासो में इस कथा का ठीक स्वरूप क्या था, यह बतलाना कठिन है।

यह तो सभी जानते हैं कि शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध की कथाएँ निराधार नहीं है। किन्तु उन पर विशेषतः दो कारणों से आक्षेप किया जाता है। मुसलमान इतिहासकारों ने पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गौरी के केवल दो युद्धों का वर्णन किया है। रासो में दी हुई युद्धों को संख्या कहीं अधिक है। रासो में शहाबुद्दीन की मृत्यु के विषय में यह कथा दी है—'शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को कैद कर गजनी ले गया। वहाँ उसने उसकी आँखें निकलवा लीं। फिर चन्द कवि योगी का वेष धारण कर गजना पहुँचा और उसने सुल्तान से मिल कर उसको पृथ्वीराज की तीरंदाजी देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चंद के संकेत के अनुसार शब्दवेधी बाण चलाकर सुल्तान का काम तमाम कर दिया। फिर चंद ने अपने जूड़े से छुरी निकाल कर उससे पेट चीर कर वह छुरी पृथ्वीराज को दे दी, जिससे उसने भी अपना पेट फाड़ डाला। इस प्रकार तीनों की मृत्यु हुई'।[1] यह कथा ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है।

ये आक्षेप किसी अंश तक ठीक हैं। किन्तु संवत् १४६० के लगभग रचित हम्मीरमहाकाव्य में शहाबुद्दीन के पराजयों की संख्या सात दी है और यह भी लिखा है कि पृथ्वीराज ने उसे पकड़ कर छोड़ दिया था।

'रास' श्रव्य काव्य थी। लोगों में प्रचलित धारणाओं का उसमें धीरे-धीरे समाविष्ट होना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त चौहानों और गौरियों में ही अधिक युद्ध होना भी संभव है, यद्यपि उनमें स्वयं पृथ्वीराज ने भाग लिया

---

१. 'कोशोत्सव स्मारक संग्रह' पृष्ठ ५६, 'रासोसार' पृष्ठ ३८३–४२४।

हो। सन् ११७५ से सन् ११६१ तक मुसलमानों ने अपने निकटतम राज्य पर दो ही बार चढ़ाई की हो, ऐसा निश्चित प्रतीत नहीं होता। सुर्जनचरित में शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की मृत्यु कथा प्रायः रासो की कथा से मिलती जुलती है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से अशुद्ध ही है; किन्तु दोनों ही सर्वथा निराधार नहीं है। शहाबुद्दीन गौरी के समय के इतिहासकार हसननिजामी ने लिखा है कि युद्ध में पराजित पृथ्वीराज को सुल्तान ने छोड़ दिया; किन्तु पृथ्वीराज ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र किया और इस अपराध के दंड स्वरूप मारा गया। हसननिजामी ने षड्यंत्र के विषय में हमें अन्धकार में रखा है। किन्तु जिनविजयजी द्वारा सम्पादित पुरातन प्रबंध संग्रह में षड्यंत्र का ब्यौरा इस प्रकार दिया है—

'सुल्तान ने राजा को पकड़ लिया, सोने की बेड़ियों से जकड़ कर वह उसे दिल्ली लाया और बोला—"राजा यदि मैं तुम्हें जीता छोड़ दूँ तो क्या करोगे? "राजा ने कहा, मैंने तुम्हें सात बार छोड़ दिया, क्या तुम मुझे एक बार भी न छोड़ोगे?" इधर राजा के उतरने के स्थान के सामने सुल्तान सभा में बैठा करता। राजा खिन्न होता (राजा का दगाबाज) प्रधान उसके पास आया, "महाराज क्या करें। यह भाग्य की करतूत है। राजा ने कहा, यदि मुझे धनुष और बाण दो तो मैं इसे मार डालूं।" उसने उत्तर दिया, "ऐसा ही करूंगा।" फिर सुल्तान के पास जाकर निवेदन किया, "आप यहां न बैठें।" सुल्तान ने वहाँ अपने स्थान पर एक लोहे का पुतला रख दिया। राजा को धनुष बाण दिया गया। राजा ने बाण छोड़ा। लोहे के पुतले के दो टुकड़े हो गए। राजा ने धनुष छोड़ दिया (कहने लगा) 'मेरा काम न बना और कोई मारा गया। इसके बाद सुल्तान ने उसे गर्त में डाल कर पत्थरों से मरवाया। सुल्तान ने कहा— "इसका खून पृथ्वी पर पड़ने से मंगल होगा।" इसी तरह (पृथ्वीराज) मारा गया। संवत् १२४६ में वह स्वर्गस्थ हुआ'[1]।

मुनि जिनविजयजी इस प्रबन्ध को सम्वत् १२६० में रचित मानते हैं। मूल रासो में कथा का रूप सम्भवतः कुछ ऐसा ही रहा होगा। तीन सौ चार सौ वर्ष में उसका वर्तमान स्वरूप में पहुँच जाना आश्चर्य की बात नहीं है।

---

१ 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह' पृष्ठ ८७।

लघु रूपांतर के सप्तम खंड में कैमास वध का वर्णन है। मुनि जिनविजयजी द्वारा उद्धृत पद्यों से स्पष्ट है कि यह कथा मूल रासो से लीगई है। कैंपम्बास, कंबास या कदम्बवास अपने समय का प्रसिद्ध व्यक्ति था। जिनपाल रचित खरतर-गच्छ पट्टावली में उसे मंडलेश्वर के नाम से संबोधित किया गया है। संवत् १२३६ में वह राजा की अनुपस्थिति में उसका प्रतिनिधित्व करता था। पृथ्वीराज प्रबन्ध ने उसे पृथ्वीराज का प्रधान माना है। चौलुक्य भीमदेव के विरुद्ध हम उसकी सलाह का उल्लेख कर चुके हैं। सोमेश्वर की मृत्यु के बाद वह पृथ्वीराज का एक रूप से संरक्षक और राजमाता कपूरदेवी के दाहिने हाथ के समान था। पृथ्वीराज विजय में उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है।

ऊपर लिखी बातों से स्पष्ट है कि रासो की, विशेष कर उसके लघु रूपान्तरों की कथायें ऐतिहासिक दृष्टि से निराधार नहीं हैं, किन्तु 'रासो' के श्रव्यकाव्य होने के कारण कई जगह इतनी परिवर्तित हो गई हैं कि उनमें से ऐतिहासिक तथ्यों को ढूँढना अत्यन्त कठिन है। यह कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है,जब हम रासो समुद्र का मन्थन कर उसमें मूल रासो को अमृत की तरह उद्धृत कर सकें। इस महान् कार्य के लिये रासो के पुनः पुनः सम्यक् अनुशीलन की आवश्यकता है। 'रासोसार' का आधार ग्रहण करना व्यर्थ है। उसमें कठिन स्थलों को कई स्थानों पर छोड़ दिया है, कई स्थानों में उनका उटपटांग अर्थ किया गया है। रासो के सब रूपान्तरों के सुसम्पादित संस्करण भी इस कार्य के लिये आवश्यक हैं। इनके आधार पर सब रूपान्तरों में मिलने वाले पाठों पर विशेष ध्यान दिया जाय। इससे बढ़कर कसौटी भाषा है। यदि भाषा अपभ्रंश के सन्निकट ही तो बहुत सम्भव है कि वह मूल रासो से ही कुछ परिवर्तित रूप में ली गई हो। इतिहास भी उस घटना का समर्थन करे तो हमारी मूल पाठ विषयक धारणा प्रायः निश्चय रूप ग्रहण कर सकती है। ऐसे स्थलों को हम पुनः अपभ्रंश का रूप देकर जाँचें तो और भी अच्छा होगा। यह कार्य दुष्कर होने पर भी असाध्य नहीं है, इसी को सिद्ध करने के लिए लेखक एवं प्रोफेसर मीनीराम रंगा ने 'राजस्थान भारती के प्रथमाङ्क' में रासो के बीकानेरी लघुतम रूपान्तर से जयचन्द के राजसूय-यज्ञ विषयक प्रकरण का अपभ्रंश प्रकाशित किया है। विद्वद्गण उसे पढ़ें और उस कार्य को अग्रसर करने का प्रयत्न करें।

'साहित्य-सन्देश, आगरा भाग ७, अंक ११ फरवरी सन् १६४६ पृष्ठ ३७५, ३८२

(४)

सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की रानी पद्मावती

पृथ्वीराज रासो और पृथ्वीराज विजय में दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के अनेक विवाहों का उल्लेख है। एक में सामान्यतः और दूसरे में विस्तार से[1]; किन्तु इनके आधार पर प्रायः निश्चित रूप से यह बताना सम्भव है कि ये विवाह कहां, वास्तव में किस कुमारी से और किस सम्वत् में हुए। 'पृथ्वीराज विजय' अत्यन्त प्रामाणिक होते हुए भी दैववशात् अपूर्ण ग्रन्थ है। उसमें एक विवाह का भी पूरा वर्णन नहीं मिलता। और रही रासो की पूर्णता, वह तो इतिहास की दृष्टि से अपूर्णता से भी गई बीती है। विशेषतः रासो के बृहत् रूपान्तर[2] में कल्पित इतिहास की इतनी भरमार है कि बहुत शोध के बाद भी उसमें से सत्य वस्तु को निकालना असम्भव न सही, कठिन तो अवश्य है। इस अपार समुद्र में मोती कम, कंकड़ अधिक हैं।

पृथ्वीराज का एक विवाह कान्यकुब्ज—नरेश जयचन्द्र की पुत्री संयुक्ता से हुआ था; यह हम अन्यत्र सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं[3]। दूसरा विवाह शायद पद्मावती नाम की राजकुमारी से हुआ हो। रासो में लिखा है वह समुद्र-शिखर-दुर्ग के राजा विजय पाल की पौत्री थी। एक सूए से पृथ्वीराज का वृत्तान्त सुन कर वह उस पर अनुरक्त होगई। दादा ने कमाऊं के राजा कुमुदमणि से उसकी सगाई का। किन्तु पद्मावती तो इससे पूर्व ही अपना हृदय पृथ्वीराज को दे चुकी थी। वह दूसरे से किस तरह विवाह करती। सूये के हाथ संदेश भेजकर उसने पृथ्वीराज को समुद्र शिखर बुलाया। उधर कुमुदमणि की भी बारात पहुँची। नियत समय और स्थान पर पहुँच कर पृथ्वीराज ने पद्मावती का हरण किया और अपने शत्रुओं एवं विरोधियों को परास्त करता हुआ दिल्ली वापस जा पहुँचा।

हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि रासो का यह कथानक किसी अंश में निरा कल्पित है। पूर्व दिशा में संभवतः समुद्र शिखर नाम के दुर्ग का अस्तित्व ही

---

१. देखें पृथ्वीराज विजय, १०,२ रासो में पृथ्वीराज के अनेक विवाहों का वर्णन है।

२. रासो के अनेक रूपान्तर हैं। इनके विषय में श्री अगरचन्द नाहटा के और मेरे लेख देखें।

३. राजस्थान भारती, खण्ड १, भाग २-३, पृष्ठ २१-२७।

न था। बहुत संभव है कि पद्मावती समय के रचयिताने[1] सूए की कथा भी प्रचलित लोकाख्यानों, जायसी के पद्मावती या कल्कि पुराण से ली हो[2] किन्तु पद्मावती स्वयं कल्पित न थी; यह मानने के लिये हमारे पास अब कुछ अन्य प्रमाण हैं।

पृथ्वीराज की मृत्यु संवत १२४६ में हुई। इससे परवर्ती २५० वर्षों में चौहान अपने इतिहास को बहुत कुछ भूल भी गये हों तो भी उसकी मुख्य घटनाएँ उन्हें विस्मृत न हुई होंगी। पद्मावती का पृथ्वीराज से विवाह कुछ ऐसी ही घटना थी; उसने पृथ्वीराज के जीवन क्रम को बदल दिया, उससे कई ऐसे कार्य करवाएँ जिस की लोगों को पृथ्वीराज से विशेष सम्भावना न थी। कान्हड़दे प्रबंध के मुख्य विषय से उसका कुछ संबंध न होने पर भी, शायद इसी कारण से चौहान राजा अखैराज का आश्रित कवि पद्मनाभ पद्मावती के बारे में कुछ शब्द कहे बिना न रह सका।

कान्हड़दे प्रबन्ध में मुख्यतः अलाउद्दीन और कान्हड़दे चौहान के अनेक युद्धों का वर्णन है। अलाउद्दीन की पुत्री सिताई मुसलमान जाति और शत्रु-कुल में उत्पन्न होने पर भी कान्हड़दे के पुत्र वीसमदे चौहान से प्रेम करती है। यह प्रेम जन्मजन्मान्तरगत है। अपने छठे जन्म का वर्णन सिताई इन शब्दों में करती है-

सोमसिरि घरि छट्ठी बार पृथ्वीराज लीधु अवतार।
पाहलण नइघरि हूँ कुंयरी पद्मावती नामिइ अवतरी ॥२०४॥
तिणि अवतारि पाप आचरिउ गाइअ विणासी कामण करिउ।
साधिउ मंत्र गर्भ गाइ निइ, चित्त विकार हुउ राय जिइ ॥२०५॥
राय बसि कीधु लोपी लाज, हव्या प्रधान निग मिऊंराज।
घाघर नदीतीर रा साहाबुद्दीन सुरताणि हणिउ ॥२०६॥
सती धर्मिराय ऊधारउ अगनि प्रवेश अयोद्धा करिउ[3]।

---

१. जिस रूपमें हमें अब रासो प्राप्य है, उसे हम एक कवि की कृति नहीं मान सकते। पद्मावती समय स्वयं शायद एक कवि की कृति हो।

२. साहित्य सन्देश (दिसम्बर, १९५१) में इस विषय पर 'आदिपद्मावती' नाम का मेरा लेख देखें।

३. कान्हड़दे प्रबन्ध, तृतीय खण्ड।

इस अवतरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कान्हड़दे प्रबन्ध की रचना के समय अर्थात् सन १४५५ में, लोग पृथ्वीराज की रानी पद्मावती के नाम से परिचित थे वह अत्यंत सुन्दरी रही होगी। पृथ्वीराज उस पर कुछ समय (शायद कुछ विरक्ति के बाद) इतना अनुरक्त हुआ कि सामान्य जन यह समझने लगे कि उसने राजा पर कोई जादू या टोना किया है। शायद पृथ्वीराज के प्रधान (कदम्ब वास या कैमास) के वध में उसका कुछ हाथ था।

यह पद्मावती पाल्हण की पुत्री थी प्रबन्ध ने पाल्हण की राजपूत शाखा और उसके स्थान का उल्लेख नहीं किया है। शायद वह आबू के राजा धारावर्ष परमार का छोटा भाई प्रल्हादन या पहलण हो, जिसके नाम पर पाल्हणपुर या पालनपुर नाम का नगर अब तक विद्यमान है। हम ऊपर बताचुके हैं कि कान्हड़दे प्रबन्ध के अनुसार पद्मावती किसी राज्य-प्रधान के हनन का कारण बनी थी और उसके इस कार्य से चाहमान राज्य को अत्यधिक क्षति पहुँची थी। पृथ्वीराज रासो में प्रायः यही बात हमें आबू के परमार राजा की पुत्री, पृथ्वीराज की रानी, इञ्छिनी के विषय में मिलती है। कैमास को दण्ड दिलाने वाली वही थी और कैमास के वध से ही चाहमान साम्राज्य के सर्वनाश का सूत्रपात हुआ। क्या यह सम्भव नहीं कि वास्तविक जीवन में रानी इञ्छिनी और पद्मावती एक ही रही हो? उनका पृथक्करण सम्भवतः उस समय हुआ होगा जब चारण और भाट चौहान इतिहास को बहुत अंश में भूल चुके थे। इससे उन्हें इञ्छिनी को आबू के राजा सलख की पुत्री और जैत परमार की बहन बनाना पड़ा। यद्यपि पृथ्वीराज की गद्दी नशीनी से लगाकर मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा (प्रल्हादन या पाल्हण का) बड़ा भाई धारावर्ष था; और शायद इसी से पूर्व दिशा में उन्हें समुद्रशिखर नाम के ऐसे दुर्ग की कल्पना करना पड़ी, जिसके विषय में इतिहास कुछ नहीं जानता। साहित्य की दृष्टि से रासो का पद्मावती समय बहुत सुन्दर है; किन्तु अपने सत्य और असत्य के अविवेच्य संमिश्रण के कारण ऐतिहासिक के लिये यह प्रायः निरर्थक है। 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा' वाली कहावत को चरितार्थ करने वाला इस से अच्छा उदाहरण शायद ही ऐतिहासिक को अन्य मिले।

'मरुभारती' वर्ष १, अंक १, सं० २००९ सितम्बर १९५२।

---

(५)

पृथ्वीराज-रासो सम्बन्धी कुछ विचार[A]

हम कुछ १६ वर्षों से इस ग्रन्थ का कुछ न कुछ अध्ययन करते रहे हैं और इसकी ऐतिहासिकता और समय के विषय में कुछ नवीन विचार भी **नागरी प्रचारिणी-पत्रिका, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली और राजस्थानी** के पाठकों के समक्ष उपस्थित कर चुके हैं[1] लगभग एक वर्ष पूर्व श्री नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी ने हमें बीकानेरीय प्रति के सम्पादन का कार्य सुपुर्द किया था। इसके फलस्वरुप इसका और परिशीलन करने पर हम जिन परिणामों पर पहुँचे हैं, उन्हें यहां प्रकाशित कर रहे हैं। हमें पूर्ण निश्चय है कि कुछ समय के पश्चात् सभी हिन्दी संसार इससे सहमत होगा।

रासो के तीन संस्करण हैं; सबसे बड़ा लगभग १,००००० ग्रन्थ का है, जिसे श्री नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी प्रकाशित कर चुकी है, दूसरा लगभग १०,००० ग्रन्थ का है, जिसकी कई प्रतिया प्राप्त हैं और तीसरा संक्षिप्त बीकानेरी संस्करण है, जिसका परिमाण लगभग ३५०० ग्रन्थ है। अंतिम प्रति के संस्कर्ता जयपुर नरेश महाराजा मानसिंह के भाई राजा सूरसिंह कच्छवाहा के आश्रित कोई चन्द्रसिंह कवि थे[2]।

A डा० दशरथ शर्मा ने अपने इस निबन्ध लेखन में प्रो० मीनाराम रंगा का नाम भी उल्लिखित किया हैं। अतएव यह दोनों ही विद्वानों द्वारा लिखित संयुक्त निबन्ध है—सम्पादक

१. नागरी प्रचारणी पत्रिका खंड ४४ पृष्ठ २७५-२८२, राजस्थानी भाग ३ अंक ३ पृष्ठ १-१६, इन्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली का खंड १६, पृष्ठ ७३८-७५० ।

२ प्रथम वेद उद्धरिय । बंभ मच्छह तनु किन्नउ ।
दुतिय वीर बाराह । धरनि उद्धरि जस लिन्नउ ।
कौमारिक महेश । जन्म उद्धरि सुर सज्जिय ।
कूरम सूर नरेश । हिन्दु हद उद्धारि रष्षिय ।
रघुनाथ चरितु हनुमंत कृत । भूप भोज उद्धरिय जिमि ।
पृथ्वीराज सुजस कवि चन्द्र कृत । चन्द्रसिंह उद्धरिय इमि ।

मुनि जिनविजयजी द्वारा उद्धृत--पृथ्वीराज विषयक अपभ्रंश पद्य[1], सुर्जन चरित और आइने-अकबरी में दी हुई कथा की रासो की कथा से[2] समानता और रासो की अनेक ऐसी वार्ताओं से, जिन्हें नवीन शोध सत्य सिद्ध करती है, यह निश्चित है कि हमारे वर्तमान रासो का मूल आधार कोई पृथ्वीराज-विषयक अपभ्रंश काव्य था। यह इतना जनप्रिय सिद्ध हुआ कि अन्य कवि शनैः शनैः अपनी रचनाओं को इसमें सम्मिलित करते गये और अन्ततोगत्वा इसने महाभारत के समान अपना नवीन वृहद् आकार धारण किया। अकबर के समय इसकी कथाएँ सर्वत्र प्रचलित थीं, परन्तु कुछ अव्यवस्थित रूप में। इस महान् मुगल सम्राट् के समय इतिहास-प्रणयन कुछ जोर पर था। बीकानेर राज्य की सर्व प्रथम ख्यात इसी समय लिखी गई थी। आइने-अकबरी में दिये हुए विवरणों के लिए भी सम्भवतः कुछ ऐतिहासिक सामग्री की आवश्यकता हुई होगी। इसी कमी की पूर्ति के लिए यदि राज्याश्रित कवियों और दरबारियों ने रासो की कथाओं के संकलन के लिए प्रयत्न किया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

बीकानेरीय संस्करण की एक प्रति के अन्त में लिखा है कि जिस प्रकार हनुमन् प्रणीत रघुनाथ चरित का राजा भोज ने उद्धार किया था, उसी प्रकार चन्द्रकृत पृथ्वीराज के सुयश का कवि चन्द्रसिंह ने उद्धार किया[3] और वास्तव में बात कुछ ऐसी ही थी। अनेक कवियों ने अनेक रूप से पृथ्वीराज रासो के उद्धार करने का प्रयत्न किया। जिसको जितनी कथा मिली, उसका संग्रह किया और अवशिष्ट की सम्भवतः तत्कालीन कवियों की सहायता से पूर्ति की। चन्द्रसिंह की प्रति लग-भग सन् १६६० में लिखी गई होगी[4]। इसके लघुकाय में अधिक क्षेपकों

---

१. पुरातन प्रबन्ध संग्रह प्रास्ताविक वक्तव्य पृष्ठ ६।

२. इन बातों के पूर्ण विवेचन के लिए नोट १ में निर्दिष्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली और राजस्थानी में हमारे लेख देखें।

३. नोट २ देखें—

४. इस प्रति के अन्त में ये शब्द हैं:—

मंत्रीश्वर मन्डन तिलक वच्छ वंश सुरताण।
करम चन्द सुत करमचन्द भागचंद्र सब जाण॥

के लिए स्थान नहीं था, अतः इसकी कथा में स्वभावतः दूसरे संस्करणों की कथाओं से कम अशुद्धियाँ हैं। इसमें चौहानों की उत्पत्ति का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है और वंशावली में केवल ८ नाम हैं। पृथ्वीराज के अनेक विवाहों की कथाएँ भी इसमें नहीं हैं।

यह मानना कि रासो सर्वथा जाली ग्रन्थ है या इसमें कोई सत्य ही नहीं है[1] महान् भूल है। इसकी कथाओं के ऐतिहासिक आधार पर हम 'राजस्थानी' के पृष्ठों में कुछ प्रकाश डाल चुके हैं। बीकानेरीय प्रति के निम्नलिखित कथानकों में तो सत्य का पर्याप्त अंश है:—

१ पृथ्वीराज और भीमदेव चलुक्य का युद्ध **पार्थ पराक्रम व्यायोग** नामक नाटक के मिलने के बाद विद्वानों को निश्चय होगया है कि पृथ्वीराज ने चौलुक्यों से युद्ध किया था, क्योंकि पृथ्वीराज का विरोधी आबू का राजा धारावर्ष चौलुक्य भीमदेव द्वितीय के आश्रित था। जिनपाल रचित खरतरगच्छ पट्टावली में भी लिखा है कि सं० १२४४ से कुछ पूर्व ही इस चौलुक्य चाहमान संघर्ष की समाप्ति हुई थी, चरलू नामक बीकानेर रियासत के ग्राम में कुछ शिलालेख मिले हैं जिनमें लिखा है कि आहड़ और अबराक नाम के दो चौहान सरदार सं० १२४१ में नागोर की लड़ाई में मारे गये। रासो में वर्णित है कि नागोर में भोलाभीम और पृथ्वीराज में महान् युद्ध हुआ था। सम्भवतः उपर्युक्त चौहान इसी युद्ध में धराशायी हुए हों।

२– कैमास वध— यह कथा मूल रासो से ली हुई प्रतीत होती है। इसलिये इसमें सत्य का पर्याप्त अंश होना संभव है[1]।

३– जयचन्द और पृथ्वीराज का युद्ध— आईनेअकबरी, सुर्जन-चरित, प्राचीन-जयचन्द-प्रबन्ध एवं तत्सामयिक राजनीतिक स्थिति से यह निश्चित है कि जयचन्द और पृथ्वीराज में पर्याप्त शत्रुता थी। संयोगिता हरण की कथा भी नवीन नहीं है। संभव है कि यह पृथ्वीराजविजय के अवशिष्ट अन्तिम सर्ग की तिलोत्तमा का अवतार- धारण करने वाली राजकुमारी हो।

तसु कारण लिखियो सही पृथ्वीराज चरित्र।
पढ़ना सुख संपति सकल ...सुख होवे मित्र।

मंत्री कर्मचन्द अकबर के प्रधान मनसबदार बीकानेराधिपति महाराजा रायसिंहजी के मंत्री थे।

१. जिनविजयजी द्वारा उद्धृत अपभ्रंश के पद्यों में कैमास वध का वर्णन है।

४- मुहम्मदगोरी से युद्ध- मुसलमानी तवारीखों में मुहम्मदगोरी और पृथ्वीराज के केवल दो युद्धों का वर्णन है, किन्तु हम्मीरमहाकाव्य, पृथ्वीराजप्रबन्ध, सुर्जनचरित और आइने-अकबरी में रासो के समान, इनके अनेक युद्धों का उल्लेख है, रासो, सुर्जन-चरित आदि ग्रन्थों में लिखा है कि अंधे पृथ्वीराज ने चन्द के चकमाने पर अपने बाण द्वारा मुहम्मदगोरी का वध किया। यह कथन सर्वथा निराधार नहीं है। पृथ्वीराज-प्रबन्ध में भी इस घटना का कुछ अन्य रूप में वर्णन है[१]। उसके अनुसार पृथ्वीराज ने मुहम्मदगोरी को मारने का प्रयत्न अवश्य किया, परन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई; क्योंकि मुहम्मदगोरी ने अपने सम्मान में बादशाही वस्त्रों से सुसज्जित कर एक लोह की मूर्ति को बैठा दिया था[२]। मुहम्मद-गोरी के समसामयिक ग्रन्थ ताजुलमासीर में भी इस कांड का कुछ अस्पष्ट वर्णन है[३]। इस घटना क सत्यता को सिद्ध करने के लिए कुछ अन्य अकाट्य प्रमाण भी उपलब्ध हैं। ये अन्यत्र प्रकाशित किये जायँगे।

५—पृथ्वीराज और परमाल का युद्ध—[४] इसके लिए मदनपुर के दो तीन पंक्ति वाले केवल दो लेख प्राप्य हैं। यदि ये न मिलते तो सम्भवतः आधुनिक ऐतिहासिक परमर्दी से युद्ध को सर्वथा अनैतिहासिक ही समझते। ऐतिहासिक परम्परा से प्राप्त कथाओं को कुछ महत्व न देना कहाँ तक ठीक है, यह इसीसे ज्ञात हो सकता है। चौलुक्य आदि जातियों से पृथ्वीराज के युद्ध के प्रमाण भी अभी प्राप्त हुए हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए क्या यह उचित न होगा कि विद्वान् लोग रासो की कथाओं को सर्वथा अनैतिहासिक और जाली कहने के स्थान पर कुछ दिन और प्रतीक्षा करें। संभवतः उन्हें कोई नया अभिलेख मिलजाय और यदि न भी मिले तो अधिक से अधिक उन्हें यही कहने का अधिकार है कि कथा अनुमानतः ठीक है, किन्तु उसके लिए कोई शिलालेख या ताम्रपत्र प्राप्य नहीं है।

---

१. आइने-अकबरी, सुर्जन-चरित आदि में इसका पूर्ण वर्णन है।

२. पुरातन-प्रबन्ध संग्रह पृष्ठ ८७।

३. History of India as told by its our Historians II, Page 215.

४. इस घटना का संबन्ध बीकानेरीयप्रति से नहीं, अपितु सामान्य रूप से पृथ्वीराजरासो की अन्य प्रतियों से है।

६—पृथ्वीराज की वंशावली— रासो के इस समय प्राप्त होनेवाले संस्करण में वंशावली सर्वथा शुद्ध नहीं कही जा सकती। इसमें तीन पृथ्वीराज के स्थान पर एक पृथ्वीराज, चार बीसलदेव के स्थान पर एक बीसलदेव और अनाक के स्थान पर आनंद नाम के राजा का वर्णन है बीकानेरीय प्रति में दिये हुए अन्य पाँच नामों की संगति के लिए इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली में प्रकाशित हमारा लेख देखें। यहाँ इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि ये नाम हमें किसी न किसी रूप में चौहान अभिलेखों में उपलब्ध हो सकते हैं।

पृथ्वीराजविजय में पृथ्वीराज प्रथम द्वारा चौलुक्यों के बध का वर्णन है। रासो में कन्हपट्टा प्रबन्ध में यही कथा विकृत रूप में पृथ्वीराज तृतीय के समय में रखदी गई है। रासो में लिखा है कि बीसलदेव का विवाह एक अत्यन्त सुन्दर पंवार राज–कन्या से हुआ था। इससे उसे अत्यधिक प्रेम था। बीसलदेव रासो में इस राज्य-कन्या का नाम राजमती दिया गया है। बीजोल्या के शिला-लेख से ज्ञात होता है कि विग्रहराज तृतीय की रानी नाम वास्तव में राजदेवी था। इसी प्रकार पृथ्वीराज और बीसलदेव विषयक अनेक कथाओं के उद्धरण दिये जा सकते हैं। रासो में बीसलदेव को अत्यधिक स्त्री-लम्पट कहा गया है। प्रबंधकोष के अन्त में दी हुई वंशावली से ज्ञात होता है कि वास्तव में वह ऐसा ही था और उसने एक पतिव्रता स्त्री के सतीत्व को भ्रष्ट किया था[1]। यह कथा वास्तव में बीसलदेव चतुर्थ की नहीं; अपितु बीसलदेव तृतीय की है।

बीकानेरीय प्रति के प्रथम व द्वितीय खंडों में वंशावली; चौथे–पाँचवें खंड में भीम से युद्ध, तीसरे, छठे, सातवें, आठवें, नवें–दसवें, और बारहवें खंडों में संयोगिता विषयक कथा और बाकी सब में मुख्यत: मुहम्मदगोरी से युद्ध की कथा का वर्णन है। ये सब इतिहास-सिद्ध बातें हैं, किन्तु इनमें वाह्य सामग्री कितनी आगई है, यह मालूम करने के लिये अत्यन्त परिश्रम की आवश्यकता है। हम बीकानेरीय प्रतियों के आधार पर रासो के संक्षिप्त संस्करण को प्रस्तुत कर रहे हैं परन्तु यह तो केवल कार्य का आरम्भ मात्र है। इसका असली स्वरूप तो अनेक वर्षों के सतत परिश्रम के बाद ही मालूम हो सकेगा। भाषा-विज्ञान की कसौटी पर कस कर हर एक नवीन छंद को अलग करना, प्राचीन पद्यों के अपभ्रंश रूप देना और उन्हें अपने ठीक स्थान पर बैठाना कोई सरल कार्य नहीं है। भगवान की दया रही तो हम यथाशक्य इस कार्य-संपादन का भी प्रयत्न करेंगे।

---

१ प्रबंध कोष पृष्ठ १३३ (सिंघी जैन ग्रन्थमाला का संस्करण)

श्री अगरचन्द नाहटा—

पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियां*

१–उपक्रम—

हिन्दी साहित्य संसार में 'पृथ्वीराज रासो' बहुत प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ है। इसके रचना काल के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी विवाद चल रहा है। एक ओर श्री मोहनलालजी पंड्या, बाबू श्यामसुन्दरदासजी, मिश्रबन्धु एवं पं० मथुराप्रसादजी दीक्षित आदि महानुभाव इसकी प्राचीनता के पक्ष में है, तो दूसरी ओर कविराजा श्यामलदासजी, कविराजा मुरारीदानजी, महामहोपाध्याय गौरीशङ्करजी ओझा एवं श्री रामकुमारजी वर्मा आदि सज्जन इसे जाली और अर्वाचीन सं० १६०० के लगभग का, सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। अन्तिम निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। मेरा विचार है कि दोनों ही पक्षों के विद्वानों ने निर्णय का जो मार्ग अवलम्बन करना चाहिये था, वह अवलम्बन नहीं किया और इसी से यह प्रश्न अभी तक ज्यों का त्यों विवाद ग्रस्त ही पड़ा है।

मेरे ख्याल से निर्णय का सबसे प्रशस्त मार्ग होगा रासो की उपलभ्य समस्त प्रतियों की पूर्ण शोध एवं उनकी बारीकी से छान-बीन। अभी तक 'रासो' के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, वह नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रति के आधार पर ही लिखा गया है। भाषा और ऐतिहासिक बातों का विश्लेषण भी उसी के आधार पर किया गया है और इस बात में उभय पक्ष के विद्वान् सहमत

---

* साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करने के कुछ समय पश्चात् ही हमें रासो की एक सुन्दर एवं प्राचीन प्रति उपलब्ध हुई। इधर लाहौर ओरियेन्टल कॉलेज के प्रोफेसर बनारसीदासजी जैन ने "आत्मानन्द" नामक मासिक पत्र में एक विज्ञप्ति प्रकाशित की। जिसमें लिखा था कि रासो की प्रतियां जिन-जिन के पास हों, वे हमें सूचित करें। इस विज्ञप्ति को पढ़कर हमने अपने संग्रह की प्रति की सूचना उन्हें यथा समय देदी। उसे पाकर सन् १९३४ के अगस्त में वे बीकानेर पधारे और हमारे ही यहां ठहरे। आते समय वे अपने कॉलेज लाइब्रेरी की प्राचीन प्रति की रोटोग्राफ प्रतिलिपि भी

हैं कि वर्तमान में जो रासो नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है, उसमें क्षेपक भाग बहुत है। अतः रासो की हस्तलिखित प्रतियों का अन्वेषण परमावश्यक प्रतीत होता है। इसीलिए प्रस्तुत निबन्ध में इस दिशा में कुछ प्रयत्न किया जाता है।

२-रासो का परिमाण-

पाठकों को विस्मय होगा कि जहां नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो ६६ समय, १६३०६ छन्द, एवं लगभग एक लाख श्लोक प्रमाण वाला है, वहां हमें उपलब्ध प्रतियों में से तीन प्रतियों में तो रासो का प्रमाण केवल ३५०० श्लोक के करीब ही है। इसी से आप अनुमान लगा सकते हैं कि तिल का ताड़ कैसे हो गया। हमारे संग्रह की प्रति में ४६ समय[१], ३३०६ छन्द और ग्रन्थाग्रन्थ ११ हजार के करीब है। बीकानेर के ज्ञान भंडार की प्रति में समय संख्या ४२।३ छन्द संख्या २६४७ और श्लोक प्रमाण ११ हजार के करीब है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उपलब्ध प्रतियों में ही परस्पर आकाश पाताल का सा अन्तर है। रासो की प्राप्त प्रतियों के आधार पर शताब्दी वार तीन संस्करण उपलब्ध होते हैं।

(१) सतरहवीं शताब्दी का लिखित संक्षिप्त संस्करण, जिसकी तीन प्रतियां बीकानेर राजकीय पुस्तकालय में हैं। इसमें समय संख्या १६ और ग्रन्था-ग्रन्थ ३५०० हैं।

(२) अट्ठारहवीं शताब्दी का लिखित मध्यम संस्करण-इसकी तीन प्रतियां लाहोर के ओरियंटल कॉलेज में, बीकानेर के बड़े ज्ञान भंडार में और हमारे निजी संग्रह में हैं। इनमें समय संख्या ४५, ४६ तथा ग्रन्था-ग्रन्थ ९ से १२ हजार है।

अपने साथ लाये थे, जिसका परिचय यथा स्थान दिया गया है। हमनें उन्हें बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी एवं बड़े ज्ञान भंडारस्थ रासो की प्रतियों का निरीक्षण करवा दिया। हमारी प्रति को तो वे कुछ समय के लिये अपने साथ ही लाहोर लेगये। तभी से हमारा ध्यान रासो की ओर आकृष्ट हुआ।

गत वर्ष श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' की प्रस्तावना को पढ़कर पृथ्वीराज रासो की हस्तलिखित प्रतियों का परिचय संग्रह करने की अभिलाषा हुई। (प्रस्तावना में रासो के सम्बन्ध में बहुत ही महत्व का कथन है, उपयोगी होने से उसे इस लेख के अन्त में ज्यों

(३) उन्नीसवीं शताब्दी और उसके बाद का विस्तृत संस्करण–जोकि मुद्रित रासो एवं अन्यान्य प्रतियों में है।

नागरी प्रचारिणी सभा आदि में सं० १६४०–४२ की लिखित जो प्रतियां बतायी जाती है, उनकी पुनः परीक्षा करना आवश्यक है।

पं० मथुराप्रसादजी ने लाहौर कॉलेज वाली प्रति को असली रासो माना है और उसका कारण एक मात्र यही बतलाया गया है कि रासो में उसका प्रमाण "सत्त सहस" यानी सात हजार बतलाया है और उस प्रति की श्लोक संख्या आर्या छन्द के हिसाब से ७ हजार के करीब ही है। पर पहली बात तो यह है कि ग्रन्थों की श्लोक संख्या सर्वत्र अनुष्टुप छन्द[२] से ही ली जाती हैं। उन्होंने "सत्तह" शब्द से आर्या छन्द लिया है, पर यह कष्ट कल्पना ही प्रतीत होती है। दूसरी बात किसी भी मौखिक रूप से चले आये हुए ग्रन्थ का जब कि वह बहुत समय पीछे लिखा गया हो, प्रमाण पूरा मिलना कठिन है। बीकानेर वाली प्रतियों

का त्यों प्रकाशित करते हैं। इससे मुनिश्री का अभिप्राय एवं रासो के प्राचीन पद्यों का दर्शन हो जायगा)। शीघ्र ही पं० मथुराप्रसादजी द्वारा संपादित रासा के प्रथम सर्ग की एक प्रति देखने में आई। उसके मुख पृष्ठ पर 'असली पृथ्वीरासो' शब्द देखकर हमारी उक्त अभिलाषा को और प्रेरणा मिली। फलतः हमारे संग्रह की, ज्ञान भंडार की तथा बीकानेर राजकीय पुस्तकालय की इन तीन प्रतियों का परिचय लिख लिया। राज–पुस्तकालय के गुटकों की एक भिन्न सूची से रासो की अन्य दो प्रतियों का पता चला, पर उस समय वे प्रतियां अवलोकनार्थ न मिल सकने के कारण यह कार्य यों ही पड़ा रहा। इधर राज पुस्तकालय में दो प्रतियां और भी मिलगई और श्रीनरोत्तम-दासजी स्वामी ने इस लेख को शीघ्र ही लिख देने की प्रेरणा की। अतः अभी तक मैं जितनी प्रतियों का परिचय संग्रह कर सका हूँ, इस निबन्ध में प्रकाशित कर रहा हूं। आशा है कि अन्य विद्वान् भी इसी प्रकार रासो की अन्यान्य प्रतियां का परिचय शीघ्र ही प्रकाशित करने का कष्ट उठावेंगे। इसके द्वारा रासो के सम्बन्ध की कुछ भी समस्याएं हल हुई हो तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

१–समय–खंड या अध्याय या सर्ग।

२–३२ अक्षरों का अनुष्टुप श्लोक होता है। उसी प्रमाण से श्लोक संख्या या ग्रन्था–ग्रन्थ प्रमाण माना जाता है।

में जो प्राचीनतर है, श्लोक संख्या इससे आधी, लगभग ३५०० ही है। अतः उस प्रति को असली मानना ठीक प्रतीत नहीं होता।

श्रीयुत ओझाजी महोदय ने जदुनाथ के 'वृजविलास' नामक सं० १८०० के आस-पास के रचित ग्रन्थ के आधार से रासो का परिमाण १०,५,००० श्लोक का लिखा है और उसी प्रमाण के आधार पर उन्होंने यहां तक लिख दिया है—यह भी नहीं कहा जा सकता कि पहले पृथ्वीराज रासो का मूल ग्रन्थ उसके वर्तमान परिमाण से बहुत छोटा था; परन्तु पीछे से बढ़ाया गया है।[1] पर उनका यह कथन उचित नहीं है; क्योंकि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी की प्रतियां ३५०० श्लोक परिमाण वाली हैं, एवं अन्य प्रतियों में रासो का परिमाण १० हजार श्लोक के लगभग मिलता है। अतः पहले छोटा था, पीछे से बढ़ाया गया, यह बात तो निर्विवाद रूप से प्रमाणित है। हां ओझाजी का कथन यहीं तक ग्रहण हो सकता है कि सं० १८०० के लगभग रासो का परिमाण एक लाख पांच हजार श्लोक परिमाण तक बन चुका था।

चंद कवि के वशज नानूरामजी के मतानुसार भी रासो का परिमाण ३-४ हजार श्लोक प्रमाण का ही था।

रासो की सबसे प्राचीन प्रति

बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने नागरी-प्रचारणी-पत्रिका, भाग १, पृ० १३८ में लिखा है कि "संवत् १६४० से पहले की लिखी हुई पृथ्वीराज रासो की प्रति अब तक कहीं नहीं मिली है।" उन्होंने अपने हिन्दी भाषा और साहित्य" नामक ग्रन्थ के पृ० २२७ में लिखा है कि "संवत १६४२ की लिखी पृथ्वीराज रासो की एक प्रति काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के सग्रह में है। चद के मूल छदों का यदि कहीं कुछ पता लग सकता है, तो वह सवत् १६४२ वाली प्रति से ही लग सकता है।" यह प्रति सम्भवतः वही है, जिसका श्यामसुन्दरदासजी ने नागरी-प्रचारिणी सभा में होना बताया है और उन्हीं के सह सम्पादन से प्रकाशित रासो में एक जगह "हमारे पास की सं० १६४७ वाली पुस्तक" लिखा है। इन उद्धारणों से सं० १६४० से १६४७ की लिखित तीन प्रतियों का पता चलता है। ओझाजी

---

१ "पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल" शीर्षकलेख में जो कि नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १०, एवं कोत्सव स्मारक संग्रह के पृ० ९६–६६ तक में प्रकाशित है।

महोदय सब से प्राचीन प्रति सं० १६४२ की बतलाते हैं। पर नागरी प्रचारिणी सभा वाली संवत् १६४२ की प्रति के सम्बन्ध में नरोत्तमदासजी स्वामी इस प्रति के संवत् १६४२ की लिखित होने में सन्देह करते हैं और उसके सं० १७४२ को लिखित होने का अनुमान करते हैं। ऐसी हालत में इन तीनों का पुनः बारीकी से अवलोकन किया जाना चाहिए।

नई खोज के अनुसार रासो की सब से प्राचीन प्रति, चंद कवि के वंशधर नानूरामजी के पास सं० १४५५ का लिखित है, पर जब तक हम स्वयं उसे न देखलें, हमें उसके उक्त समय की लिखित होने में संदेह है। प्रो० रमाकान्तजी के लिखे अनुसार उसका परिचय हम ने यथास्थान दिया है, पर जिनके अवलोकन में हजारों हस्त लिखित प्रतियां आई हों, ऐसे ओझाजी आदि प्राच्य-लिपि-विशारदों द्वारा उसका निर्णय होना आवश्यक है। रेऊजी, गहलोतजी आदि स्थानीय विद्वानों का कर्त्तव्य है कि उसके आदि, अंत एवं मध्य के पत्रों का फोटो लेकर समय, छन्दादि परिचय के साथ प्रकाशित करें, ताकि बाहर के विद्वानों को भी उसके सम्बन्ध में विचार करने का मौका मिले। श्रीयुत हरप्रसाद जी शास्त्री को नानूराम जी ने जो 'महोबा समय' लिखवाया था, यदि वह उस सं० १४५५ वाली प्रति से लिखवाया गया हो तो अवश्य ही वह उस समय की लिखित नहीं है; क्योंकि उसकी भाषा बहुत पिछली है[1]।

हमें उपलब्ध प्रतियों में तो बीकानेर राज्य पुस्तकालय की दो प्रतिया ही सब से प्राचीन प्रतियां हैं, जिनका लेखन समय सं० १६७० के करीब है।

४ रचयिता और उद्धारक

रासो के एक पत्र पुस्तक जल्हन हाथ दै चलि गज्जन नृप काज" के आधार पर यह कहा जाता है कि रासो का पिछला भाग[2] जल्हन ने बनाया है। इसी प्रकार "चन्द नन्द उद्धरिय तिमि" के पद्यानुसार रासो का उद्धार कवि चन्द के पुत्र (जल्हन) ने किया, यह भी कहा जाता है। पर हमें प्राप्त प्राचीन प्रतियों में पहला पद्य तो है ही नहीं और दूसरे पद्य में "चन्द नन्द" के स्थान "चम्रसिंह उद्धरिय

---

१. यथा—एक पहुर में सांवत सारे, ढोक हजार पांच तह मारे।

२ 'जल्हु' शब्द पुरातन प्रबन्ध संग्रह गत जयचन्द प्रबंध में चन्द रचित जो पद्य मिलते हैं, उनमें भी आया है।

तिमि" स्पष्ट लिखा मिलता है। अतः उद्धारकर्त्ता का नाम 'चन्द्रसिंह' ही विशेष प्रामाणिक प्रतीत ठहरता है। जरा गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि उद्धार करनेवाला कविचन्द का पुत्र नहीं हो सकता; क्योंकि उद्धार तो किसी ग्रन्थ के नष्ट प्रायः या बिखरे हुए हिस्से के संग्रह करने को कहते हैं और वह ग्रन्थ रचने के कुछ अरसे के बाद ही होना संगत कहा जा सकता है।

सं० १६१७ की लिखित उदयपुर राजकीय भण्डार की प्रति के एक पद्य के आधार पर बाबू रामनारायणजी दूगड़ ने लिखा है कि "चन्द के छन्द जगह जगह पर बिखरे हुए थे, जिनको महाराणा अमरसिंह ने एकत्रित कराया"। पर यह बात केवल उसी प्रति के पाठ के विषय में कही जा सकती है। क्योंकि अमरसिंहजी का राज्य काल सं० १६५३ से १६७६ तक का है और रासो की प्रतियां इससे पहले की उपलब्ध हैं एवं सं० १६७० के लगभग की लिखित बीकानेर राज्य पुस्तकालय की प्रतियों में उक्त प्रति के उद्धार सूचक दोनों पद्य[१] नहीं पाये जाते।

५ रासो की भाषा

प्रकाशित रासो की भाषा लेकर भी रासो को अर्वाचीन ठहराने का प्रयत्न किया गया है। पर "पुरातन प्रबन्ध संग्रह" में रासो के जो पद्य मिले हैं, उनकी भाषा तेरहवीं शताब्दी की अपभ्रंश ही है। अतः रासो की मूल भाषा के उदाहरण मिल जाने से अब वह प्रश्न उस रूप में नहीं रहता। मौखिक रूप से चले आते हुए गाथा ग्रन्थ में भाषा का रूपान्तरित होना स्वाभाविक ही है। अतः सम्भव है उन पद्यों जैसी भाषा रासो की अब उपलब्ध प्रतियों में न मिले। फिर भी प्राचीन प्रतियों में भाषा का रूप प्रकाशित रासो से अवश्य ही अच्छा मिलेगा। ज्यादा पिछली भाषा के जो पद्य हैं, वे तो प्रक्षेप, क्षेपक, छन्दों को अलग करने पर स्वयं भिन्न हो जायगें। प्राचीन प्रतियों में फारसी शब्द भी उतने अधिक नहीं मिलते।

६ प्रक्षेपकता

यह तो सब सम्मत बात है कि रासो में कई प्रकार की भाषा एवं शैली के पद्य प्रक्षेपित मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट है कि वर्त्तमान रासो की रचना में कई व्यक्तियों का हाथ है। पर वे कौन-कौन थे और कब हुए यह कहना असंभव है

---

१. गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी के कवि और काव्य, पृष्ठ १०३—४।

क्योंकि यह बहुत लोक प्रिय काव्य ग्रन्थ है। जिसके पास गया उसी ने ही उसका कुछ न कुछ भाषा सम्बन्धी रूपान्तर, एवं कुछ पद्य अपनी ओर से नये मिला कर उसके प्रभाव में वृद्धि की ही है। बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने अपने "हिन्दी भाषा और साहित्य" ग्रन्थ के पृष्ठ २२८ में एक प्रक्षेप कर्त्ता का वर्णन इस प्रकार दिया है:—

"जोति महुव्वा लीय कर, दिल्ली आनि सुपथ्थ।
ज ज कित्तिकला बढ़ी, मल्लैसिंह जस कथ्थ॥

इस दोहे का स्पष्ट अर्थ यह है कि जिस प्रकार कीर्ति बढ़ती गई उसी प्रकार मलैसिंह यश को कथता गया। मलैसिंह पज्जूनराय के लड़के का भी नाम था, पर यहां उससे कोई प्रयोजन नहीं जान पड़ता है कि मलैसिंह नामक किसी कवि ने इस रासो में अपनी कविता मिला कर भिन्न भिन्न सामन्तों का यश वर्णन किया। अतएव यदि क्षेपक मिलाने के लिए हम और किसी के नहीं तो मलैसिंह के अवश्य अनुगृहीत हैं।

पं० मथुराप्रसादजी अपने लेख (सरस्वती भाग ३५, पृष्ठ ४५८ में लिखते हैं कि "इसमें सन्देह नहीं कि रासो का अधिकांश भाग प्रक्षिप्त है। यह प्रक्षेप पन्द्रहवीं अथवा सोलहवीं शताब्दी में या अन्य समय में किया गया है। इस प्रक्षेप के करने वाले का नाम कविराज था, क्योंकि प्रक्षिप्त दोहों में कई स्थानों पर कविराज पद मिला है।" पर कविराज का नाम न होकर विशेषण होना विशेष सम्भव है।

रासो की प्रतियों का वर्गीकरण पर कसौटी पर कसने पर न मालूम और कितने ही प्रक्षेपकों का पता चलेगा।

७ संकलन काल

पुरातन प्रबन्ध संग्रह गत पृथ्वीराज एवं चंद के प्रबन्धों से स्पष्ट है कि चन्द कवि पृथ्वीराज का द्वार भट्ट था। अतः समकालीन था और उसके कथित ४ पद्य भी उक्त प्रबन्धों में मिलते हैं। अतः यह भी प्रमाणित है कि उसने रचना भी अवश्य की थी। वर्त्तमान रासो में उक्त पद्यों के मिल जाने से यह भी सिद्ध हो गया है कि वह रचना रासो ही है। अब केवल प्रश्न यही रहता है कि रासो के वर्त्तमान रूप का कब संकलन हुआ। इसके सम्बन्ध में एक मत तो यह है कि राजा अमर-

सिंह के समय में यह संकलित किया गया पर यह तो निम्नोक्त कारणों से तथ्यहीन प्रतीत होता है। हां, उदयपुर वाली प्रति के मूल आदर्श वाला पाठ उनके समय में संकलित कहा जा सकता है।

(१) गुजराती कवि प्रेमानन्द (सं० १६३६ से १७३४) कृत "कुन्तीप्रसन्ना ख्यात" ग्रन्थ में रासो के सम्बन्ध में पद्य मिलता है—

"भारत समुं प्रमाण, रासा ना तमासा भालो,
कर्यां भारत बेत्रण, आरत उवेखिये ॥
पृथ्वीश प्रशंसा कथी, मानशे नुं मोधुं तेमां,
प्रेमानद नी कविता, सविता शी पेखिये ॥
ब्राह्मण थी भाट थया, वंशज विधिना आतो !
कवीश्वर ना पिता थी, चन्द मन्द देखिये ॥

प्रेमानंद के समय में रासो की प्रसिद्धि गुजरात में फैल चुकी थी तो इसका संकलन इनसे बहुत पहले का होना चाहिये। इस पद्य में रासो को भारत के समान प्रमाण वाला कहा गया है।

(२) "हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण" ग्रन्थ के पृष्ठ ४१ में चन्द छन्द वर्णन की महिमा नामक गंग भाट के ग्रन्थ का परिचय इस प्रकार दिया है—

"नि०का०सं०१६२७, लि०का०सं०१६२६, वि० बादशाह अकबर को गग कवि का चंद बरदाई के रासो की कथा सुनाने का वर्णन दे० (ज०८४)।

इस ग्रन्थ को देखना चाहिए. यदि यह ठीक हो तो, रासो का संकलन काल सं०१६२७ के पूर्व सिद्ध ही है।

(३) हमारे संग्रह की सं०१७६२ की लिखी प्रति में भविष्यवाणी के रूप से चौथे खंड में निम्नोक्त पद्य पाया जाता है—

सोलह सै सतोतरे,[1] विक्रम शाक वितीत।
दिल्ली धर चित्तोर पति, ले रिपु जवर जोति ॥२२॥

---

१ जब यह घटना सं०१६०७ में नहीं घटी तो पिछले लिपि-लेखकों ने पाठ "सतरह सै सतौतरै" लिख दिया। प्रकाशित रासो में सतरह सै का पाठ है।

सं०१६०७ के लिये जब यह भविष्यवाणी की गई है तो रासो का संकलन इमसे पूर्व ही होना चाहिए।

(४) बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय की प्राचीन ३ प्रतियां मूल दो आदर्शों की प्रतिलिपि प्रतीत होती हैं। नं० ३४ की मूल प्रति जिसके आधार से उनकी नकल हुई है, भिन्न थी और नं०३ एवं बिना नम्बर वाली प्रति में कई स्थानों पर पाठ त्रुटक रह गये हैं। सम्भव है उसकी मूल प्रति प्राचीन होने से उनमें पाठ नष्ट हो गया हो। अतः उस मूल प्रति को उससे कम से कम सौ वर्ष पुरानी भी मानली जाय तो भी रासो का संकलन सं० १५७० से पूर्व ही हो जाना विशेष सम्भव है।

(५) श्रीयुक्त ओझाजी ने अपने "पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल" नामक लेख में लिखा है कि "हमारी सम्मति है कि वह ग्रन्थ वि०सं०१६०० के आस-पास बना × × × भाषा की दृष्टि से भी रासो वि०सं०१६०० के पूर्व का सिद्ध नहीं हो सकता।" पर जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, रासो का संकलन इस समय से पूर्व का ही होना चाहिये एवं भाषा संबंधी प्रश्न का भी जैन मुनियों की कृपा एवं श्री जिनविजयजी के परिश्रम से जो ४ प्राचीन पद्य मिले हैं, उससे सहज समाधान हो जाता है; क्योंकि उन पद्यों की भाषा पृथ्वीराज के समय की ही है एवं प्राचीन प्रतियों में भाषा प्रकाशित रासो से बहुत अंशों में प्राचीन मिलती है। हां, उन पद्यों जैसी भाषा वाली प्रति अभी तक लब्ध नहीं है। उसका तो यही कारण ज्ञात होता है कि पहले यह काव्य मौखिक रूप से चला आता था। अतः उसमें समयानुसार फेर-फार होता गया और उसके रूपान्तरित एवं प्रक्षेपों की भरती से वर्त्तमान अवस्था हो गई। फिर भी प्राचीन ४ पद्यों में से तीन पद्यों के रूपान्तरित अवस्थामें वर्त्तमान प्रकाशित रासो में मिल जाने के कारण उसकी रचना तो उसी समय की माननी पड़ेगी। संकलन भी १६०० से तो पूर्व ही हो गया था।

यह भी सम्भव है कि संकलन एक से अधिक स्थानों एवं व्यक्तियों द्वारा हुआ हो, अर्थात् जहाँ-जहाँ रासो का प्रचार था, जिन्हें जैसा स्मरण था या सुना वैसा ही संग्रह कर लिया।

८ ऐतिहासिक दृष्टिकोण

यह तो मैं पूर्व कह ही चुका हूँ कि रासो में ऐतिहासिक अशुद्धियें जो कुछ बतलाई जाती हैं,उनमें से बहुत सी का समाधान तो प्रतियों का बारीकी से निरीक्षण

कर मूल पाठ अलग कर लेने पर हो जायगा एवं शेष जो रहेंगी, उनको अन्य साधनों से भी परीक्षा करनी पड़ेगी।

यद्यपि रासो का ऐतिहासिक विश्लेषण करने का हमारे लेख का विषय नहीं है, फिर भी एक दो बातों पर कुछ प्रकाश डाल दिया जाता है।

चन्द बरदाई ने पृथ्वीराज द्वारा शहाबुद्दीन का कई बार पकड़ा जाना लिखा है; किन्तु इतिहास में ऐसा होना एक ही बार माना जाता है। इसके सम्बन्ध में हमें मिश्रबन्धुओं का यह मत विशेष ग्राह्य प्रतीत होता है कि इतिहास विशेषकर मुसलमानों के कथन पर बने हैं, जिनमें अपना अपमान बचाने को मुसलमानों की हार का कम लिखा जाना संभव है; क्योंकि जैन ऐतिहासिक ग्रन्थों से कविचन्द के कथन की पुष्टि होती है। 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह' गत पृथ्वीराज प्रबन्ध में लिखा है "एव वार ७ बद्धाबद्धा मुक्ताः" + नृपति प्राह मयात्वं सप्त वारान् मुक्तस्त्वं मामेकबलमपि न मुञ्चसि।

सं० १४०५ में राजशेखर सूरि रचित प्रबन्ध कोष में लिखा है "विंशतिवार बद्ध रुद्ध सहावदीन सुरत्राण मोक्ता पृथ्वीराजोऽपि बद्ध" (वस्तुपाल प्रबन्ध पृ० १७ जिनविजयजी संपादित संस्करण में)।

समरसी-पृथा विवाह आदि को लेकर भी आपत्ति उठाई जाती है; किन्तु बीकानेर राजकीय पुस्तकालय की तीन प्रतियों में यह सम्बन्ध भी नहीं मिलता, इसी से यह धारणा होती है कि चन्द का मूल अंश बहुत कम था। पीछे वालों ने प्रक्षेप कर उसे भाषा एवं इतिहास की दृष्टि से भ्रष्ट बना दिया है।

रासो का सबसे अधिक ऐतिहासिक आलोचना[1] एवं परीक्षा श्रद्धेय ओझाजी महोदय ने की है, वह बहुत ही विद्वत्तापूर्ण है, पर हमारे खयाल से उनका यह

---

१. इसकी कुछ प्रत्यालोचना पं० मथुराप्रसादजी अपने "पृथ्वीराज रासो और चन्द बरदाई" (सरस्वती भाग ३५, पृ० ४५३) शीर्षक लेख में की है। अन्त में वे लिखते हैं कि "श्रीओझाजी ने कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं का विरोध दिखाते हुए अपने लेख में रासो को अर्वाचीन सिद्ध करने का भी यत्न किया है। जिन-जिन घटनाओं का वे उल्लेख करते हैं, वे घटनायें हमारे पास के रासो में नहीं हैं। उदाहरण के लिये वे कहते हैं कि वीसलदेव का पाटन पर चढ़ाई करना आदि नागरी प्रचारिणी सभा की

लिखना कि "सोमेश्वर के देहान्त के समय (वि० सं० १२३६) में पृथ्वीराज बालक था" ठीक नहीं है; क्योंकि जिनपति सूरिजी के शिष्य जिनपालोपाध्याय रचित "खरतरगच्छ गुर्वावली" में महाराजा पृथ्वीराज की सभा में सं० १२३६ में श्री जिनपति सूरिजी एवं पद्मप्रभ का बड़ा शास्त्रार्थ हुआ, उसका विस्तार से वर्णन है। उससे प्रगट है कि उस समय के पूर्व तो महाराजा पृथ्वीराज ने बड़ी भारी सेना के साथ भदानक देश को विजय की थी और शास्त्रार्थ के समय में भी उन्होंने जो कुछ सम्भाषण किया है, वह युवा अवस्था का ही सूचक है। अतः स० १२३६ में उनको बालक कहना युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता।

अतएव हमारी सम्मति में पृथ्वीराज का जन्म सं० १२२० माना जाता है, वह ठीक नहीं है। जन्म सं० १२१५ के लगभग होना चाहिए।

६ उपसंहार

ऊपर जो कुछ विचार किया गया है, वह केवल दिशा सूचन रूप ही समझे निर्णयात्मक नहीं। निर्णय तो तभी होगा, जब हम प्राप्त प्रतियों को सामने रख उन पर गम्भीर विचार करेंगे। अतः अब हमारा यह आवश्यक कर्त्तव्य हो जाता है कि रासो के मूल स्वरूप की प्राप्ति के लिए विशेष प्रयत्नशील हों, यह प्राप्ति कैसे हो सकती है, इसके विषय में भी मैं अपने विचार प्रकट कर देना आवश्यक समझता हूँ।

तरफ से छपे हुए रासो में लिखा है, जो तत्कालीन शिलालेख के सम्वत् विरुद्ध है, इत्यादि। लेकिन हमारे पास के गोटो वाले रासो में पाटन पर चढ़ाई आदि की घटना का वर्णन नहीं है, अतः कह सकते है कि छपे हुए उक्त रासो में प्रक्षेप है। एवं पृथ्वीराज की माता का नाम, पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् आदि जिन-जिन घटनाओं का उन्होंने विरुद्ध में उल्लेख किया है, वे सब घटनायें हमारे पास के गोटो वाले रासो में नहीं हैं और न हमारे पास के रासो में फारसी शब्द हैं। ओझाजी कहते हैं कि रासो में दशमांश फारसी शब्द है, इसका भी पूर्णतया खण्डन हमारी इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही स्वयं हो जायगा।

हमें श्री दीक्षितजी का यह कथन सर्वांश में ठीक नहीं प्रतीत होता।

मेरे विचार में रासो के मूल असली स्वरूप की प्राप्ति तीन उपायों से हो सकती है (१) प्राप्त प्रतियों में जितनी अधिक संग्रह की जा सकें, एकत्र कर उन प्रतियों का वर्गीकरण कर लिया जाय। प्राचीन एवं शुद्ध प्रतियों को मुख्य स्थान देकर अवशिष्ट प्रतियों के लेखन समय के नोट के साथ पाठान्तर एवं प्रक्षिप्त पद्य भी संग्रह कर लिये जांय। (२) फिर उन पद्यों की भाषा की दृष्टि से परीक्षा की जाय, शब्दों एवं प्रत्ययों पर विचार कर प्राचीन एवं प्रामाणिक पाठ छांट-छांट कर अलग कर लिया जाय। (३) छंदों[1] के विषय में भी ध्यान रखा जाना चाहिये कि उस समय कौन कौन से छन्द प्रयुक्त होते थे। कौन कौन से छन्द कितने पीछे के ग्रन्थों में व्यवहृत पाये जाते हैं।

इनमें पहला कार्य तो प्रतियों के संग्रह एवं वर्गीकरण द्वारा ही हो सकता है। अवशेष दोनों कार्यों में जैन ग्रन्थ विशेष सहायक होंगे; क्योंकि रासो के समय के रचित जैनेतर ग्रन्थ इस समय प्रायः उपलब्ध नहीं से हैं, तब जैन ग्रन्थ पचासों की संख्या में विद्यमान हैं उस समय के आसपास के उपलब्ध हैं। उनसे भाषा एवं छन्दों की तुलना करने में विशेष सहायता मिलेगी। आशा है हिन्दी साहित्य महारथी विद्वान् रासो के पुनरसुसम्पादन की ओर शीघ्र ही ध्यान देंगे।

१० प्रति परिचय

अब जिन जिन प्रतियों का पता चला है, उन सबका संक्षेप में परिचय आगे दिया जाता है—

(क) बीकानेर राजकीय पुस्तकालय की प्रतियां—

इसमें "रासो" की गुटकाकार ७ प्रतियां है, जिनमें एक में केवल महोवा का समय तथा अन्य एक में 'पीर खण्ड' मात्र है। अवशेष पांच प्रतियों में 'रासो' लगभग पूर्ण रूप से मिलता है। इन पांच प्रतियों में भी तीन प्रतियों का पाठ तो एक समान ही है। ये प्रतियां एक दूसरे की प्रतिलिपि जान पड़ती है; अतः इन तीनों का परिचय एक साथ दिया जाता है।

---

१ पुरातन प्रबंध संग्रह के रासो के जो ४ पद्य मिलते हैं; वे चारों छप्पय छंद में हैं। छप्पय छन्द में रचित प्राचीन कृतियों में से १. जिनदत्त सूरि स्तुति-खरतर पट्टावली (सं० ११७०-७१ लि०) गुरु गुण षटपद, खरतर गुरुगुणवर्णन छप्पय, जिनोदयसूरिगुणवर्णन आदि हमारे संपादित ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह एवं चौदहवीं शताब्दी का उपदेश माला छप्पय प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह में प्रकाशित है।

नं० १ यह प्रति ८॥×७ इन्च के साइज की है। इसके ५ पत्रांक से प्रारम्भ होकर १०१ पत्रों में रासो समाप्त हुआ है। प्रत्येक पृष्ठ में १८ से २० पंक्तियां एवं प्रत्येक पंक्ति में लगभग ३० अक्षर हैं। अक्षर भद्दे पर पाठ ठीक है। अन्त का एक रूपक, जो कि नं० २ और नं० ३ वाली प्रतियों में मिलता है, इसमें नहीं है, पर इससे पहले का रूपक लिख कर जगह छोड़ी हुई है और पूर्णाहुति सूचक कुछ भी नहीं लिखा गया है। अतः स्पष्ट है कि वह रूपक लिखना बाकी रह गया है। उसके बाद भिन्नाक्षरों में लिखित निम्नोक्ति पुष्पिका का है–

"मन्त्रीश्वर मंडनतिलक, बच्छ वंश भर भाण।
करमचन्द सुत करम बड़, भागचंद सब जाण ॥ १ ॥
तसु कारण लिखियो सही, पृथ्वीराज चरित्र।
पढ़ता सुख संपति सकल, मन सुख होवै मित्र ॥ २ ॥
॥ शुभंभवतु ॥

नं० २– यह ७×६ साइज की गुटकाकार प्रति है। इसमें आदि के ७ पत्र नहीं हैं तथा आदि अन्त के कई पत्र कुछ-कुछ खंडित हैं। १५५ पत्रों में रासो समाप्त हुआ है। प्रत्येक पृष्ठ में १३ से १४ लाइने हैं और प्रत्येक पंक्ति में २२ से २७ तक अक्षर हैं। प्रति अट्ठारहवीं शताब्दी की लिखी हुई है। अन्त का पुष्पिका-लेख इस प्रकार है—

इति श्री पृथ्वीराज रासो समापत। शुभंभवतु। किल्याणमस्तु श्रीरस्तु साह श्री नरसिंह सुत नरहरदास पुस्तका लिखावतं। श्री ग्रंथा ग्र० ४०००४ (१४००४ ?)

जाद्रिसं पुस्तकं द्रष्टवा, ताद्रसं लिखतं मया।
जदि शुद्धिमविशुद्धं वा, मम दोषं न दीयते ॥
लिखतं मथेन ऊदा, ब्रह्मानापुर मध्ये।

नं० ३=१०॥×६। साइज की गुटकाकार प्रति। आदि के ५ पत्र नहीं हैं, ८४ पत्रों में रासो समाप्त हुआ है। प्रत्येक पृष्ठ में १६ से १८ लाइने एवं प्रत्येक लाइन में ३० से ३७ तक अक्षर हैं। प्रति की अवस्था अच्छी है एवं सतरहवीं शताब्दी में लिखी गई प्रतीत होती है।

"महाराज नृप सूर सुध. कूरम चन्द उदार ।
रासौ पृथीयराज कौ राख्यौ लगि संसार ॥

शुभंभवतु ॥ कल्याणमस्तु ।

यह प्रति जिस मूल-आदर्श से लिखी गई है उसमें कुछ पाठ नष्ट होगया प्रतीत होता है, तभी इस प्रति में कहीं--कहीं पाठ--त्रुटक के लिए स्थान छोड़ा हुआ है। नं० २ वाली प्रति इस प्रति को प्रतिलिपि प्रतीत होती है।

उपरोक्त तीनां प्रतियां में रासो का आदि भाग त्रुटित है। नं० १ वाली प्रति में रासो का प्रारम्भ उन्हीं दो श्लोकों द्वारा होता है, जो कि कुछ फेर-फार के साथ पण्डित मथुराप्रसादजी दीक्षित सम्पादित पृथ्वी राज रासो' के प्रथम समय में हैं, उसमें जैसा कि ऊपर कहा गया है, अन्त का रूपक लिखते समय छूटा हुआ है, जो नं० २ और नं० ३ प्रति में इस प्रकार मिलता है:—

प्रथम वेद उद्धरिय बंभ मच्छह तनु किन्नउ।
दुतीय बार बाराह धरनि उद्धरि जसु लिन्नौ।
कौमारीक भद्देस धम्म उद्धरि सुर सक्खिय।
कूरम सूर नरेस हिंदु हद उद्धरि रक्खिय॥
रघुनाथ चरितु हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथ्वीराज सुजसु कवि चन्द कृत, 'चन्द्रसिंह' उद्धरिय इमि ॥१४॥

इस अन्य रूपक से स्पष्ट है कि प्रस्तुत रासो चद्रसिंह का उद्धार किया हुआ है। यह चन्द्रसिंह कौन एवं कब हुआ, यह विद्वानों को अन्वेषण करना चाहिये।

उक्त तीनों प्रतियों के अनुसार रासो की ग्रन्थ संख्या कोई ३५०० श्लोक प्रमाण होती है। उनमें रासो १६ समयों में समाप्त हुआ है जिनमें से पहले, सातवें और अन्त के समय का नाम तीनों ही प्रतियों में लिखा नहीं पाया जाता। अवशेष समयों के नाम तीनों प्रतियों की पृष्ठ संख्या के साथ नीचे लिखे जाते हैं। रूपकों की संख्या, नम्बर का क्रम तीनों ही प्रतियों में क्रम बद्ध न होने से नहीं दी जा सकी।

प्रतियों के पृष्ठांक—

नं० १	न० २	नं० ३	समय संख्या	समय नाम
१४	१७	१४	१-२	वंशोत्पत्ति, द्रव्य लाभ, ढिल्ली राज्याभिषेक।
१६बी	२०	१६बी	३	संयोगिता उत्पत्ति, सकल कला पठनार्थ द्विज द्विजी गंधर्व गंधर्वी संवाद।
१८	२५	१८बी	४	सामंत सलख पावार हस्तेन गोरी साहावदी निग्रह।
२३बी	३२बी	२०बी	५	कैंवास मंत्रिणा भीमदेव पराजय
२७	२८	२६	६	यज्ञ विध्वंस, पृथ्वीराज वरणार्थं संयोगिता नियम
३६	५८	३३बी	८	जयचन्द द्वारा संप्राप्त।
४५		४१बी	६	जयचन्द संवादो संजोगिता विवाह।
४६	७२बी	४४बी	१०	अष्टमीशुक्रे प्रथम दिवस जुद्ध वर्णन।
५६	८४	५०बी	११	नौमी शनिवारे द्वितीय दिवस युद्ध वर्णन।
६२बी	६३	५४बी	१२	दशमी रविवारे तृतीय दिवसे जुद्ध वर्णन।
६६	१०४	६० बी०	१३	कनवज्जतः ढिल्यां पुनरागमन सामन्त धीर पुण्डीर हस्ते गोरी सहावदी निग्रह षटरितु वर्णन।
७७बी.	११८	६६	१४	चाण्डराइ सावंत बंध मोचनं गौरी साहावदी जुद्धार्थ सर्व सावंत मंत्र।
८२	१२५	६६ बी०	१५	जालंधरे देवी स्थाने हाहुलीराइ हम्मीरेन व्याजेन चन्द कवि निरोधनं अथ च पृथ्वीराज गोरीसहाव दीनयो युद्धार्थे सेना समागमे युद्ध व्यूह रचन।
८६	१३१	७२	१६	'पृथ्वीराज गौरी सहावदीनर्थौ युद्ध तदंतगत ज्जालंधरे देबी स्थाने महेश प्रतिवीर भद्र जक्ष वेताल योगिनी नौ संवाद।
६०	१३७	७५	१७	पृथीराज गौरी सहावदीनयो युद्धांतर्गत योगिनी बिल्ह गृध्र रूपेण संयोगितां प्रत्यागत्य सूर समूह पराक्रम वर्णन।

६५बी० १४६ ७६ १८ पृथीराज गोरी सहाबदीनयो युद्ध तदंतर्गत योगिनी वीर बिमाई रूपेन संयोगिता प्रति सूर सामंत पराक्रम वर्णन राज्ञो ग्रहण कथन अथ च जालंधरे देवी स्थाने चन्द्र कविना वीरभद्रेण समागमं ततो मुक्का इन्द्र प्रस्थान गमन।

समय नामादि मूल प्रतियों में शुद्धाशुद्ध जैसे लिखे मिले हैं, वैसे ही ऊपर लिखे गये हैं, जिससे प्रतियों की मूल अवस्था का भी ज्ञान हो सके। नं० ४-साइज १२×८, पत्रों पर संख्यात्मक नम्बर नहीं पर गिनने पर २६७ होते हैं। प्रत्येक पृष्ठ में लाइनें १७ से १८ एवं प्रत्येक पंक्ति में अक्षर ३५ से ४२ तक हैं। कई पत्र अस्त व्यस्त बंधे हुए हैं, उनका पूर्वापर सम्बन्ध नहीं मिलता। अक्षर अच्छे हैं, प्रति दीमकों द्वारा भक्षित है। आदि के बहुत से पत्र तो बहुत ज्यादा नष्ट हो चुके हैं, पीछे के क्रमशः कम भक्षित हैं। समयों की संख्या लिखी नहीं मिलती। भिन्न-भिन्न प्रसंगानुसार सर्ग विभाजित हैं; पर उनके भी संख्यात्मक नम्बर नहीं लिखे गये अतः रूपकों की संख्या के साथ सर्ग या खंडों के जो नाम लिखे मिलते हैं, उनकी सूची नीचे दी जाती है:—

पत्रांक	रूपक संख्या	सर्गनाम
१३	१७०	कटा हुआ। आदि मंगलाचरण में कवित्त:— प्रथम सुमर
३०	२६५	दसावतार वर्णन नाम द्वितीय खंड ॥ २ ॥
३४ ए	४४	पारहार नाहरराय पराजय-प्रिथीराज विवाह वर्णन
३५ ए	१४	मुगल पराजय
३६ ए	२१	संयोगिता पूर्वजन्म कथा संपूर्ण।
		इति० राजा प्रिथी ढिली किल्ली कथा वर्णन प्रस्ताव त्रितीय खड
३८ ए	२४	दिल्ली दान समय
४४	७६	चामंडराय वि
५८	२१७	भौराराई पराजय कैमास विजय
६२	४७	सलुख जुद्ध बिज (य)
६७	५६	प्रिथीराज इच्छनि विवाह संयोगिता श्रोतानुराग वर्णन
७१ ए	४५	वरुण मुंजल कथा वर्णन
७३	२८	पोपै पातिसाह ग्रहन

७८ ए	६०	राजा पंग सौमंतनि युद्ध वर्णन
८२ ए	४६	राजा जयचद् रावल समरसी जुद्ध वर्णन
८३	१८	कर्णाटी कर्णा वर्णन
८७ ए	४८	सोमेसुर वध
९० ए	६४	भोराराइ वध (२०)
९३ ए	२७	प्रिथा विवाह वर्णन
९४	२५	हंसावती विवाह वर्णन
९७	४२	वालुकाराइ वध
९९	३१	संयोगिता व्रत आरण
१०४	८७	कैमास वध
१०९ ए	५२	पहारखां विजई पातिशाह ग्रहन
१४५ ए	५०५	संयोगिता परिणयन गृह आनयन। पंगुराजा। जयचन्द्र प्रिथीराज चौहान कन्नौज जुद्ध संपूर्ण मिता।
१५८ ए	१२८	धीर वध।
१६३	६०	फुटकर १० ५०–८ बीच बीच में हिन्दी* वचनिका भी।
१६४	८	ऋतु वर्णन
२०१ ए	५६४	राजा ग्रहण
२११ ए	१६२	बाण वेधनो नाम खंड समाप्त
२१३ ए	३०	आसी युद्ध समाप्त
२१६	६७	रैण की बार कौ कहाव सुलितांन साहबदी सौ जुद्ध कृतं संपूर्ण खंड।
२२३	६२	देवगिरि कथा
२२६	४६,६२	इति वीर बरदान कथा संपूर्ण।

कुल रुपक ३३०२

अंतिम छंद—बीस ग्राम कवि चंद प्रति, करीय कुंवर बगसीस।

---

* उदाहरणार्थ—प्रमानिकाइ यपै खबरियाणु तबहि दूत गजने को धाए, तिहि दिनु सुरतानु बारा मुकरिआनि खरे रहे ततारखांन सौं बात कहै, बहुत रोज हुए कछु दिली की खबरि न पाई सतानखांन कइया पातिसाह कछु खूब है।

ए(क) वाजि साखत मुदन. दीयौ सुसंभर ईस ॥६२॥

पुष्पिका लेख—सं० १७३८ वर्षे वैशाख शुक्ल पक्षे षष्टीस्तिथौ गुरुवासरे प्रथम प्रहरे लिखित मिदं । १ । छ: ॥

२३२ ए	५६	फुटकर-विषय नहीं लिखा ।
२३५	७१	पाटो बंधन कथा
२४२ ए	६०	हसन खांन को कहाव
२४३	११	प्रजून राइ छोगा को कहाव जुद्ध संपूर्ण ।
२४४	२३	खोखंदाबाद जुद्ध
२४५	१७	महुवा जुद्ध
२४६ ए	२१	मलैसी नागपुरे जुद्ध संपूर्ण
२४७	२३	होलिका कथा } दोनों हिन्दी में दोहे बद्ध
१४८ ए	३४	दीपमालिका कथा }

लेखन प्रशस्ति—संवत् १७३८ वर्षे जेष्ठ वदि १२ स्तिथौ लिखितमिदं पुस्तकं ।१। स्वस्ति श्री षरतरगच्छे मथेननारायणजी शिष्य लालचंद लिपिकृतं । श्री चुरू स्थाने ॥ श्री ५ भींवजी राज्ये-

अथससिव्रताखंड-

६२६ नागौर सरे द्रवि ग्रहणं तदनन्तर पातिसाह प्रति महा जुद्धकृतं राजा पृथ्वीराज स्वहस्तेन पातिसाह ग्रहणो ढिली आगतं (१)

११५ }
६८ } फुटकर और भी कई हैं पूर्वा पर सम्बन्ध मिलता ।

४४६० रूपक

नं० ५—साइज ११॥×१०। पत्र ३१५। आदि के २२ पत्र नहीं हैं। प्रत्येक पृष्ठ में पत्राङ्क ७३ तक प्रति पत्र पंक्तियां २२, प्रति पंक्ति अक्षर ३५से४० और ७३ के बाद अन्य व्यक्ति लिखित प्रत्येक पत्र में लाइने १६ से २०, प्रति लाइन अक्षर लगभग ३०। बीच में कई पत्र खाली, कई पत्र एक ओर लिखित, और कई पत्र आधे लिखित हैं। लेखन समय प्रति में नहीं दिया गया। किन्तु प्रति उन्नीसवीं शताब्दी की लिखित प्रतीत होती है। समयों का नाम खंड लिखा गया है। खंड, जिनकी संख्यात्मक संख्या दी गई है, १५

से २८ तक हैं, अवशेष प्रसंगों को केवल "प्रस्ताव" रूप से सूचित किया है। नीचे रूपकों एवं पत्राङ्कों के साथ खड-प्रस्तावों की सूची दी जाती है:—

पत्राङ्क	रूपक सख्या	खंड-प्रस्ताव नाम
२३	११	छोगा प्रबन्ध समाप्त
२४	२२	खेखदाबाद युद्ध वर्णन
२५	१७	महाबाहु युद्ध
२६	२१	क्रूरम पजून प्रथम जुद्ध छोगा दुतीया जुद्ध बालकाराइ खेखंदा त्रितीय जुद्ध सुलितांन नागौर आयौ सु मलेसीय पकड्यो पाति साहनैं इति पंचदशोपाध्यायः ॥ ग्रन्था गं० १७५ ॥
३०	५७	इंछनि विवाह शुकशुको वाक्य पश्चात् दूतता संयोगिता प्रतिव्रतं नाम षोडशं खंड ग्र० श्लोक २००१० (?)
३२	३१	सोमेसर राजाजमुनांगते वरुण दूत सामंत उनयौ युद्ध वर्णनं नाम सप्तदशो खंड ॥ १७ ॥ श्लोक संख्या ६०
३३	१०	आखेट के सौलंकी सारंगदे हस्तेन मुगल ग्रहणो नाम अष्टा-दशम खंड । १८ । श्लोक ४२
३५	१८	परिहार पीप जुद्ध विजयं पीप हस्तेन गौरी ग्रहनो नाम एकोनविंशतितमो खंडः । श्लोक ११८
४०	६२	समरसी रावल सोमंत प्रधान उभयो परस्पर वार्त्ता पंगु सामंतनि युद्ध वर्णनं नाम विंशतितम सर्गः श्लोक २००१०
४३	४६	रावलसमरसी मन भ्रमर सदृश वर्णन जैचन्द समरसी जुद्ध वर्णनो नाम एको विंशतितमो खंड श्लोक १५०१५
४५ बी	१८	राठौर निड्डुर ढिल्ला आगमनं करनाटी पात्र कथा वर्णनं। द्वाविंशति खंड ।
४६	६५	जुद्ध विजय भोराराइ भीमदे वधनो चतुर्विंशतितमो खंडः।
५१	२७	रावल समरसी पिथा विवाह वर्णनं षटविंशति तमो खंडः।
५२ बी	२७	रणथंभोर हंसावती विवाह नाम सप्त विंशति तमो खंडः।
५६	७५	राजा पृथिराज युद्ध विजयं बालुकाराय बधनो [illegible] संजोगिता प्रति दूतीय परस्पर वार्ता नाम अष्टाविंशतितमो खंडः।
६२ बी	४८	भोराराइ विजय सोमेस बधनो पश्चात् पृथ्वीराज राज्याभिषेकं

		तिलकं दत्तं नाम त्रयोविंशतितम खंड ।
७३	१५४	धीर बंधनो नाम षट विंशतितमो ध्याय
७६	३०	राजा षट् वन आखेटक रमनचूक नाम प्रस्ताव:
७९	२०	मुक्कल कथा वर्णन नाम प्रस्ताव ।
८० बी	१६	पुण्डरनी दाहिमी विवाह प्रस्ताव ।
८५ बी	४८	अनंगपाल दिली दान माधो भट कथा पातिसाह ग्रहन नाम प्रस्ताव: ।
९१ बी	१३१	राजा अनंगपाल दिली दान माधो भट कथा पातिसाह ग्रहन नाम प्रस्ताव: ।
१०४	६३	देवगिर जुद्ध नाम प्रस्ताव ।
११४	८८	रेवातट पातिसाह ग्रहणं ।
१२३ बी	१८	अनंगपाल दिली आगमनं फिरि बद्री तप सुसजन नाम प्रस्ताव ।
१३०	४८	घघर नदी की लराई, कन्ह पातिसाह ग्रहन नाम प्रस्ताव ।
१४४	१५४	हंसावती नाम प्रस्ताव ।
१५३	७०	इंद्रावती करहेत्तरां राव समरसी जुद्ध नाम प्रस्ताव ।
१५८	६०	इन्द्रावती विवाह सामंत विजय नाम प्रस्ताव ।
१६४ ए	३६	आखेटक मधे जैत राव पातिसाह ग्रहन नाम प्रस्ताव।
१६७ ए	३१	राजा पानिग्रहन कांगुरा विजैकरन नांम प्रस्ताव ।
१७३ बी	७१	तोंअर पातिसाह ग्रहन नाम प्रस्ताव पहाड़राव जुद्ध ।
१७६	२८	पजून विजय नाम प्रस्ताव ।
१७९ बी	४८	चंद द्वारिका जात्र नाम प्रस्ताव ।
१८७	७९	षट् मद्ध कैमास पातिसाह ग्रहनं नाम प्रस्ताव ।
१९५	८९	हांसी प्रथम जुद्ध संपूर्ण ।
२०८	११३	हांसी जुद्ध जुद्ध नाम प्रस्ताव ।
२१८ बी	१४२	संजोगिता पूर्व जन्म नाम प्रस्ताव ।
२२६	७८	सुक वृंनन नाम प्रस्ताव ।
२३०	५५	संजोगिता नेमा आचरनो नांम प्रस्ताव ।
२३७	१७	दिल्ली वरनन नांम प्रस्ताव ।
२४१	५७	जंगम सोफी कथा सिवपूजा नाम प्रस्ताव ।
२४६	५४	षट् रिति वर्णन ।
२५६	१०१	शुक वर्णन विलास नाम प्रस्ताव ।

२६७	११६	राजा आखेटक चख श्राप नाम प्रस्ताव।
२७२	४९	राव समरसी दिल्ली सहाय नाम प्रस्ताव।
२८६ ए	११२	राजकुंअर श्रीरयनसी पटाभिषेक दिल्ली नगर गोरी साहाब गोरि घरनं विजै साहाब पातिसा तखत करनं परस्पर जुद्ध जुरनं। दिल्ली जेहर जरनं राजा श्रीरयनसी मरनं राजा जैचंद श्री गंगासरनं नाम प्रस्ताव संपूर्ण। शुभं भवतु। मथेन राखेचा लिखतं।
२९२	४५	मेवाती मुंगल कथा नाम प्रस्ताव।
३०५	११७	इछनि विवाह नाम प्रस्ताव।
३१५		तौंवर त्रिनेत्र विजय पातिसाह ग्रहनो नाम सप्तदशः सर्गः।१७। समाप्त।

कुल रूपक २९६६

नं० ६—जिसमें पत्र ९८ से १४४ में केवल "महवा को समो" खंड आया है, प्रत्येक पृष्ठ में लाइनें १६, एवं पंक्ति में २३/२४ अक्षर हैं। पुष्पिका लेख से ज्ञात होता है कि यह प्रति स० १९२४ को वैशाख कृष्ण ८ को लिखी गई थी।

नं० ७—जिसमें केवल "पीर खंड" ही है। इसमें कोई १०×६ आकार के ६९ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १४ पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति में १५ से १७ तक वर्ण हैं। भाषा इसकी विशेष अर्वाचीन प्रतीत होती है। यह शेखावाटी के सीकर नगर में सं० १९१० में लिखी गई थी। इसका आदि-अन्त भाग इस प्रकार है—

आदि—श्री गणेशायनमः॥ सारदायनम॥ अथ पृथ्वीराज रासो पीरां को षंड लिष्यते ॥ दोहा ॥ सुमरौ देवी सरश्वती गवरी पुत्र गणेश॥ वषांणुं चहुँवान कुल अछिर दै उपदेश ॥ १ ॥ वर विधि षोडस बास नृप पीथल शंकर अंस। बिजै छक चहुँवान कै वंश भयो अवतंस ॥ २ ॥

अंत—येक धनुख अर येक मनि, लई कबर प्रीथीराज।
अबै चढ्यौ दिल्ली लीयन, तंवरन करन अकाज ॥

मीर मरन छुडन सुधर, धन लीयौ वरदाय।
दिल्ली सीर छत्रह फिरन, ष्वाजदीन वरपाय ॥
धनि पीथल सोमेश धनि, धनि वरदई चद ।
जिनकी कीरति उचरी, इंद्र मुनिंद्र फुनिंद्र ॥

इति श्री कवि चंद विरंचिते अजमेरी षंड प्रथीराज रासो संपूरण समापनाः मीती फागण वदि ६ मंगलवार सामत १६१० लीम्वतं विजैराज वारठ पालावत सीकार मध्ये ॥ श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥ श्री

(ख) अभय जैन पुस्तकालय, बीकानेर की प्रति

हमारे निजी संग्रह में १६० पत्रों की पुस्तकाकार सुन्दर प्रति है। बीच बीच में तथा नीचे के किनारे उदेइ भक्षित है। फिर भी पाठ बहुत कम नष्ट हुआ है। प्रति का साइज १३॥।×६॥ इञ्च है। प्रत्येक पृष्ठ में पंक्तियें ३४ से ३६ (एक पत्रा में ४६ भी हैं) और प्रत्येक पंक्ति में लगभग ३२ से ३४ अक्षर हैं। अंत्य पुष्पिका लेख इस प्रकार है:—

"संवत् १७६२ वर्षे मार्गशीर्ष मासे शुक्ल..............................
तोलीयासर ग्रामे बालक श्री पुन्योनय गणि शिष्य..... ....
.............................श्रीरस्तु ॥ शुभम् ॥"

समयों के नाम रूपक संख्या के साथ नीचे लिखे जाते हैं—

पत्राङ्क	समय संख्या	रूपक संख्या	समय नाम
२ ए	१	६६	आदि प्रबन्ध मंगलाचरण वंशावलि वर्णन प्र०३००(३८५)
१० ए	२	१२५	पृथ्वीराज दुंढा दाणव सम्बन्ध वंशावलि, राजा जन्म कथा वर्णन प्र० ३०० (३७५)
१४ ए	३	११३	दशावतार वर्णन प्र० ३३६ (३६६)
१५ ए	४	२३	राजा स्वप्न कथा, दिल्ली किल्ली कथा प्र० ८५
१६ ए	५	८५	गौरी पातिसाह पृथ्वीराज प्रथम युद्ध वर्णन प्र० ३३६ (४२५, ३६७)
२४ ए	६	१११	भूमि स्वप्न सगुन कथा पृथ्वीराज युद्ध विजय पातिसाह ग्रहनो धनागम प्र० ३७२

२६ ए	७	४८	पडिहार नाहरराज पराजय, पृथ्वीराज विजय विवाह ग्र० १४४
२७ ए	८	१५	मु गल पराजय पृथ्वीराज विजय । ग्र० ५०
२८ ए	६	३८	संजोगिता पूर्व जन्म कथा वर्णन । ग्र० १००
२६ बी	१०	७१	कान्ह पाटी बन्धन कथा । ग्रन्थाग्रन्थ २००
३२ बी	११	८१	वीर वरदान कथा
३७ बी	१२	६६	दिल्ली राज्याभिषेक युद्ध विजय पातिसाह चामण्डराय हस्तेन ग्रहण । ग्र० ४५०
३६ बी	१३	५८	विजयपाल दिग्विजयकरण संयोगिता उत्पति मदन वृद्ध बंभनी गृहे सकल कला पठनार्थे दुजदुजी गन्धर्व गन्धर्वी सवाद ग्र० १०४
४७ ए	१४	१५८	भोराराइ भीमंगदे पराजय मंत्रि कैमास विजय । ग्र० ६००
४६ ए	१५	४५	पृथ्वीराज विजय पामार सलख हस्तेन गौरी सहाबदी ग्रहण ग्र० ग्र० १७५
५२ ए	१६	५८	इंछनि विवाह शुक शुकी वाक्य-पश्चात् दूत संजोगिता पतिव्रत ग्र० २००
५४ बी	१७	३३	सोमेस राजा जमुना गते वरुण दूत सामन्त उभयो युद्ध । ग्र० १८ ।
५५ ए	१८	१०	आखेटक सोलंकी सारंग हस्तेन मुगल ग्रहण । ग्र० ५६
५६ बी	१६	२८	पोप युद्ध विजय, पीप हस्तेन गौरी ग्रहन ग्र० २२०
५६ बी	२०	६२	समरसी रावल सुमति प्रधान वार्त्ता, मंगु सामंत नियुद्ध वर्नन । ग्र० २४०
६२ बी	२१	४७	रावल समरसी मन भ्रमर सदृश वर्णन, जैचन्द समरसी युद्ध वर्णन । ग्र० १५०
६३ ए	२२	१८	कर्णाटी पात्र कथा वर्णन, नमिङ्कराय दिल्ली आगमन । ग्र० ८०
६५ ए	२३	४८	भोराराइ विजय सोमेस बधनो पश्चात् पृथ्वीराज राज्याभिषेक तिलक वृत्त । ग्र० १७०
६७ बी	२४	६५	पृथ्वीराज विजय भोराराइ भीमगदे बध ग्र० १८०
६६ बी	२५	३६	शशिव्रता विवाह, युद्ध विजय । ग्र० २००

७१ ए	२६	२७	रावल समरसी पिथा कुवरि विवाह वर्णन ग्र० ६५
७२ बी	२७	२७	रणथंभोर हंसावती विवाह वर्णन
७६ बी	२८	७२	पृथ्वीराज युद्ध विजय, चालुकाराय वधनो पश्चात् संयोगिता प्रति दूती परस्पर वार्त्ता ग्र० ३५०
८० ए	२६	६०	चामुण्डराय बेडी, मन्त्रा कैमास वध । ग्र० ३१५
८२ बी	३०	५२	पृथ्वीराज राजा पानीपथं मृगया वर्ननं, चन्द कन्दार संवादो राजा पृथ्वीराज युद्ध विजय, तूअर पाहारखां हस्ते पातिसाह ग्रहण ग्र० २१५-
८७ बी	३१	६८	कनवज (गमन) वर्णन जैचन्द द्वारे संप्राप्तो ग्र० ३२५ ।
६४ ए	३२	१४७	राजा जयचंद संवादे चन्द आपाडौ वर्नन पृथ्वीराज प्रगटन । ग्र० ५५० । रू० १६४६ ग्र० ७२६२
६८ बी	३३	६१	प्रथम लंगरीराउ युद्ध वर्णन संजोगिता विवाह ।
१०३बी	३४	६८	अष्टमी शुक्रे प्रथम दिवसे उदिग पगार युद्ध वर्णन ।
१०७बी	३५	७१	नवमी शनिवासरे द्वितीय दिवसे जुद्ध वर्णन ।
११० ए	३६	४४	अस्मिन् समये राजा पृथ्वीराज सौरौ प्राप्त ।
१११ ए	३७	१६	दशमी रविवारे तृतीय दिवसे युद्ध वर्णन ।
११३ बी	३८	६८	राजा सुयज्ञ विध्वंसनं कनवज्जत ढिल्लीपुर आगमनं संजोगिता पाणिग्रहणो राजसभा सुखचरित्र । कुल २६६१
१२२ बी	३६	१३४	धीर हस्तेन पातिसाहि ग्रहन
१२३ बी	४०	२४	कालन मीर सौदागर हस्तेन धीर पुंडीर वध ।
१२६ ए	४१	३४	षट रिति वर्णन ।
१३५ बी	४२	१६७	पृथ्वीराज स्वप्न कथा, रावल समरसी आगमनं, चामंडराय बध मोचनं पश्चात् सूर सामंत वर्णन, रैणकुमार दिल्ली स्थापनं ।
१४६ ए	४३	१७३	इति श्री जालंधर देवी स्थाने हाहुलिराइ हमीर व्याजेन चंद कवि निरोधनं । अथ पृथ्वीराज गोरी साहाबद्दीन जुद्धार्थ सेना समागमे गृहव्यूह रचनं पश्चात् जालंधर देवी स्थापने महेशं प्रति वीरभद्र यक्ष वैताल योगिनीनां संवाद ।

१४६ बी	४४	४७	पृथ्वीराज गोरी साहाबदीन युद्ध वर्णनं ममली गिद्धनी संजोगिताप्रे सूर सामंत पराक्रम, परस्पर कथनं वीर आगमनं।
१५३ ए	४५	६७	पातिसाह युद्ध वर्णनं, तत्समये वीर विभाइ संजोगिताप्रे सूर सामंत पराक्रम वर्नना मंजोगिता सूज मंडल आगतं, पृथ्वीराज ग्रहणं पश्चात् जालन्धर देवी स्थाने चंद कविना वीरभद्र परस्पर वार्ता कथन चन्दमोक्षनं चन्द दिल्ली आगमनं ।
१६० बी ४६		१६७	दिल्लीतः क·········गजनपुर आगतं गोरी साहि चन्द कविना उभय परस्पर वार्त्ता कथंन रा······ज हस्तेन गोरी साहवदीन।

कुल रूपक ३३०६

हमारे संग्रह के एक अन्य फुट कर पत्र में, जो कि अट्ठारहवीं शताब्दी का लिखा हुआ प्रतीत होता है, रासो के समयों के नाम रूपक संख्या के साथ लिखे मिलते हैं। उसकी नकल भी नीचे दी जाती है:—

आदि प्रबन्ध	१२५	पृथ्वीराज आखेटक सोलंगी सारंग हस्तेन	१११
दशावतार	२१३	पडिहार पीपा युद्ध विजय पातिसाह समै	२८
दिल्ली किल्ली	२३	समरसी रावल प्रधान	६१
प्रथम युद्ध वर्णन	८५	जैचंद्र समरसी युद्ध व (र्णन)	४६
भूमि स्वप्न	१४५	कर्णाटी कथा निडर ढिली आगमन सम	१७
पडिहार नाहरखां	४८	पृथ्वीराज तिलक	४८
मुगल पराजय	१४१	भीमदे युद्ध पृथ्वीराज विजय समै	६७
संयोगिता पूर्व जन्म	३८	शशिव्रत समै	३६
दिल्ली राज्याभिषेक	६२	रावल समरसी वि०	५७
संयोगिता जन्म	१५८	हंसावती बिवाह	३७
भोराराइ भीमदे	२५७	वालुकाराय पात सा० वि	७७
पमार सलख हस्ते	२११	मंत्री कैमास कथा	८३
गोरी साहि ग्रहण	४४	पाखीपंथ केदार कथा	८६
शुक शुकी वाक्य	२२६	कनवज रो समइयो	५६८
प्रछन्न विवाह	३४		

सोनेश यमुनागते दूत सामंत ३४

(ग) वृहद् ज्ञान भण्डार-बड़ा उपाश्रय बीकानेर की प्रति—
उपरोक्त जिन प्रतियों का परिचय दिया गया है, वे सभी गुटकाकार प्रतियां हैं, पर बड़े ज्ञान भण्डार की प्रस्तुत प्रति पत्राकार है। इसकी पत्र संख्या १२४ + ७ + ७ + २ कुल १४५ है । प्रत्येक पृष्ठ में २० । २१ पंक्तियां, एवं प्रत्येक पंक्ति में अक्षर ६० से ६४ तक हैं। इस प्रति का लेखन सं० १७३६ वेलासर में प्रारम्भ होता है और सं०१७४० के वैशाख सुदि १ को पूनलसर में पत्र १२४ तक समाप्ति होती है। इसके पश्चात् ७ पत्र सं०१७४०वै०शु०६ को रड़वी में लिखे गये हैं। इसके लेखक खरतरगच्छीय यति विनयराज शि० सकलहर्ष शि० भागचन्द थे। समय आदि की नामवली इस प्रकार है:—

पत्राङ्क	समय	रूपक संख्या	समयनाम
६	१	१२५	आदि प्रबन्ध, वंशावली
११	१	६४	दशावतार
१२	३	२२	राजा स्वप्न दिली किल्ली
१७	४	११८	भूमि स्वप्न सुगन कथा, पृथ्वीराज युद्ध विजय, पातिसाह ग्रहन
१६	५	४५	पडिहार नाहरराय पराजय, पृथ्वीराज बिवाह
१६ बी	६	१४	मुगल पराजय
			सातवां समय नहीं
२५	८	६२	दिल्ली राज्याभिषेक, पृथ्वीराज युद्ध विजय, मुगल पराजय, चामंडराय हस्तेन गोरी ग्रहन
२७	६	५६	संयोगिता उत्पति कला पठन।
३६	१०	१५८	भोराराइ भीमंगदे पराजय, मंत्रि कैमास युद्ध।
३८	११	५०	पृथ्वीराज विजय, पमार मलख हस्ते गोरी ग्रहन। प्र. ७००
४१	१२	६५	इंछनि बिवाह, संयोगिता पतिव्रता।
४२	१२	३०	सोमेसर जमुनागते वरुण दूत सामंत उभय द्ध।

४३	१३	१०	आखेटक सोलंकी सारंग हस्तेन मुगल ग्रहण । ग्र० ८००
४५	१४	२८	परिहार पीपा युद्ध विजय ।
४८	१५	६३	समरसी रावल सामंत उभय वार्त्ता, पंग सामंत युद्ध ।
५०	१६	४३	जंचंद समरसी युद्ध ।
५१	१७	१६	राठौड नीडर दिल्ली आगमन
५३	१८	३८	भाराराइ विजय सोमेश वध, पृथ्वीराज राज्याभिषेक ।
५५	१९	६५(?)	भोराराइ भीमंगदे वध ।
५८	२०	४०	ससिव्रता विवाह, युद्ध विजय ।
५९	२१	२३	रावल समरसो पिथा विवाह ।
६०	२२	२७	रणथंभोर हंसावती विवाह ।
६४	२३	६८	चालुकराय वधनो संयोगिता दूती वार्त्ता
६५	२३	२०	सजोगिता पूर्व जन्म कथा ।
६८	२४	८८	मत्री कैमास वध ।
७१	२५	५३	तुंयर पाहाउखां हस्तेन गोरी ग्रहन ।
७३	२६	६३	कनवज वर्णन, जयचंद द्वारे प्राप्त ।
७८	२७	१३१	चंद भट संवाद, पृथ्वीराज प्रगट ।
८०	२८	८४	लंगरराइ युद्ध वर्णन, संजोगिता विवाह ।
८४	२९	९७	अष्टमी शुक्रे युद्ध ।
८७	३०	७१	नवमी शनिवारे युद्ध ।
			३१ वां समयानहीं ।
८९	३२	४३	पृथ्वीराज सोरो प्राप्त ।
९०	३३	२१	दशमी रविवारे युद्ध ।
९२	३४	५५	राज सूयज्ञ विध्वंसन दिल्ली आगमन ।
९९	३५	१२९	धीर पुंडीर युद्ध विजय ।
१००	३६	२१	कलन मीर सौदागर हस्तेन धीर पुंडरीक वध ।
१००	३७	८	षट ऋतु वर्णन ।
१०८	३८	१९७	राजा स्वप्न कथा, समरसी आगमन, सूर, सामन्त, रैणकुमार दिल्ली स्थान ।
११८	३९	१६५	जालंधर देवी स्थाने ।

१२१ ४० ४१ पृथ्वीराज गोरी युद्ध बीर बिभाई आगमन।
१२४ ४१ ६६ सूर सामंत पराक्रम-वर्णन, दिल्ली आगमन।

कुल छन्द २६४७

संवत् १७४० वर्षे मिति वैशाख सुदि १ दिने पूनलसर मध्ये पूर्णी कृतं। समयं। श्री॥

१३१-४२-१५५ गजनपुर आगतं गौरी चंद उभय वार्त्ता, पृथ्वीराज हस्ते गोरी बध।

फुटकर पत्र—

पत्र ७ रूपक २४ बसंत वर्णन।

,, २२ संयोगिता पूर्व जन्म कथा दुतीये स्थानकं।

पत्र ५ रूपक ८४ पातिसाह प्रथमारंभ समीउ श्रोतां नगे पृथ्वीराज पातिशाह प्रथम युद्ध।

पत्र ५ रूपक १०४ ढूंढीया समीलो।

रूपक सर्व २७४५

अन्य प्रतियों से इस प्रति में आदि अन्त भिन्न प्रकार है, अतः यहां दिया जाता है—

आदि— सुमंगल मूलश्रुत बीय सुतहु इकधर धरम उभ्यो।
त्रिखरमी पति पुर वरणगत मुखपत सुंभ्यो॥
कुसम रंग भारही सफल, उकति अलंब आभीर।
रस दरसन पारस मैं आस असन कवि कीर॥ १॥*

× × × × ×

अंतः— सत्त सहस रासौ रसिक, कह्यौ चंद विरुदाई।
पठत सुनत श्रीपति जयौ, भट्ट जपत्तति माय॥ ५५॥
प्रथम बयर भंजन मनह, दुजसाई उद्धार।
लोक जोग कित्तीय कहै, सुकीय चंद सुद्धारि॥ ५६॥

(घ) ओरियन्टल कॉलेज लाइब्रेरी, लाहौर की प्रतियाँ।

* पं० मथुराप्रसाद सम्पादित संस्करण में पद्याङ्क १४ वां (पत्राङ्क १२४)।

करीब ५ वर्ष पूर्व ओरियन्टल कॉलेज के वाइस चान्सलर डा० जी० सी० बूलनर ने श्रीमान् बनारसीदासजी जैन, एम. ए. महोदय को बीकानेरस्थ पृथ्वीराज रासो की प्रतियों का निरीक्षण करने के लिये हमारे यहां भेजा था, तब श्री बनारसी-दासजी अपने साथ रासो की एक प्राचीन त्रुटित प्रति की रोटोग्राफ नकल भी लाये थे, उसी को पं० मथुराप्रसादजी दीक्षित असली पृथ्वीराज रासो मानते हैं और उन्होंने इस प्रति के आधार से एक सटीक संस्करण भी प्रकाशित किया है। अतएव उक्त प्रति का परिचय देना अत्यावश्यक समझ कर बाबू बनारसीदास को पत्र लिखा था। उन्होंने उक्त लाइब्रेरी की प्रतियों का परिचय जो लिख भेजा है, वह यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है—

(१) नं० ४५५५–१०½ इंच लम्बा, ४½ इंच चौड़ा, कागज पुराना बारीक आदि के ४ प्रस्ताव तो अखण्ड हैं फिर बीच-बीच से पत्र नष्ट होगये हैं। अंतिम पत्र ६२ हैं। ४६ या ४७ प्रस्ताव हैं। जहाँ प्रिथिराज ने बान वेध किया है, ६३ वां पृष्ठ किसी दूसरी प्रति का प्रतीत होता है; क्योंकि उसका लेख किसी दूसरे हाथ का है, तथा पिछले पत्र के साथ प्रसंग नहीं बनता। देखने में ३०० वर्ष पुराना होगा. इस समय ५० पत्र विद्यमान हैं। प्राय. इसका जितना पाठ है, वह सब प्रकाशित प्रति में मिल जाता है। अनुमानतः १०० छन्दों के लगभग प्रकाशित प्रति में नहीं मिले। अधिक ध्यान से मिलाने पर उनसे भी बहुत से मिल जायंगे। इस प्रति में समय प्रायः उतने ही हैं, जितने आपकी प्रति में, क्रम में कुछ भेद है। पाठ प्रायः वही है। प्रकाशित प्रति में बहुत कुछ प्रक्षेप है, सो इसमें नहीं। (प्रति पृष्ठ में पंक्ति २२–२३ एवं प्रत्येक पंक्ति में अक्षर ५१ से ५३ तक हैं।※

बड़े पाठवाली एक प्रति अभी दो बरस हुए खरीदी गई है। यह पोथी के आकार की है। मोटा कागज है ११॥ इन्च लम्बा और १० इन्च चौड़ा, ७०० पत्र हैं। कुछ खाली हैं। दो प्रकार के लेख हैं। २६ पंक्ति, प्रति पंक्ति ३०-३२ अक्षर हैं। कुछ समय सं० १८३७ में पूज्य ऋ० देवीचन्द माणकचन्द ने लिखे हैं। कुछ समय सं० १८४८ में किसी दूसरे हाथ के लिखे हैं। समयों की संख्या ६० से अधिक है। क्रम छपी हुई प्रति से कुछ थोड़ा भिन्न है। पाठ साधारणतया प्रकाशित से मिलता है। परन्तु अक्षरों में काफी अन्तर है।

---

१ "पृथ्वीराज रासो" और चन्दवरदाई लेख में पं० मथुराप्रसादजी सूचित।"

(३) पद्मावती ब्याह तथा महोबा समय की एक फुटकर प्रति भी है। इनके अतिरिक्त विलायत में १० के करीब प्रतियाँ हैं, मगर वे सब अर्वाचीन हैं, कोई सौ डेढ़सौ सालके अन्दर की है। प्राचीन प्रति शायद कोई नहीं। हमारे वाली अधूरी प्रति आपकी प्रति से पुरानी प्रतीत होती है।''

(ङ)-बम्बई की रायल एशियाटिक सोसाइटी की प्रतियाँ

यहां के सूचीपत्र में जो कि प्रो० वेलणकर ने तैयार किया है, रासा की २ प्रतियाँ. एवं रासो के गुजराती अनुवाद की १ प्रति का उल्लेख अवलोकन कर प्रो० वेलणकर महोदय को उनका परिचय लिख भेजने के लिए लिखा गया था। प्रत्युत्तर में आपने दो प्रतियों का आदि-अन्त भेजा है, उसका आवश्यक अंश नीचे दिया जाता है।

(१) प्रति नं० २०३५—

आदि—अब पृथ्वीराजरासके मते मुगल कथानक भाषा लिख्यते। "सुवसि देस सोमेस" इत्यादि।

अन्त—सुनहि सूर कविचन्द मांन। इति श्री कविचन्द विरचिते पृथ्वीराज रासके सामन्त जुद्ध नाम प्रस्ताव सम्पूर्ण (पत्र १७१)।

(२) नं० २०३४, पत्र ५६२, परिचय प्राप्त नहीं हुआ।

(३) नं० २००४ पत्र ५८ पृथ्वीराज रास सारांश भाषा व लिपि गुजराती।

आदि-पृथ्वीराज रासानो सारांश भाषा तरजुमो। मकरंद मकवाणाना समय थी लिख्यो छे।

पृथ्वीराज ना सर्वे सामन्त सुरोंने दले घणा देश जीत्या तेउयेइ यादव कुलना मकरन्द मकवाणा, मनमा परदेस जीतवानी इच्छा थइ, पछे एणे सर्व सामन्तो ने कह्यो × × इत्यादि।

अन्त—संवत् साते बावने, बलि पचमी बुधवार।
पाटीधर पीथड पड़े, दत्त आपण दातार। १।

संवत ७५२······रेणुकाए सम्राजु नादिकनु, सीतारा···
रावणादिकनु लक्ष्मीए समुद्र बलोवता दानवोनु, संयोगताए
हिन्दु तुरकानु, चारे मोटी भारी देविए अवतार धरि ने
खपर भर्या छे. भारत रामायण ने जेवो चन्द कविनो रासो
जाणवो, अमरसिंह पड्या पछे दिल्ली तरकाओं ने हाथ गई।

छतिसगढ़ माथी····· छतिसगढ़ ना हिन्दु जवर थया
तेथी तरका ने हाथ घालण दियो नथी।

(च) सुमेर लाइब्रेरी जोधपुर की प्रतियाँ—

(१) नं० ७०।४० पृथ्वीराज रासो अपूर्ण, पत्र ३।८६

(२) नं० १६१।३५ पृथ्वीराज रासो पत्र १२०, ग्र० ५०००
सं० १८१० लिखित।

(छ) अन्य उल्लेख—

श्रीयुक्त रामकुमारजी वर्मा एम० ए० महोदय द्वारा लिखित "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" नामक ग्रन्थ के पृ० ७६ पर रासो की सात प्रतियों का उल्लेख हुआ है, जिनमें दो तो बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी नं० १ नं० २ की हैं, जिनका परिचय इस लेख में विस्तार से दिया गया है। अवशेष ५ प्रतियों का उल्लेख इस प्रकार है—

अभी तक रासो की निम्नलिखित प्रतियां प्राप्त हो सकी हैं—

१—बैदला (The Baidla) की प्रति

२—रायल एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित कर्नल टॉड की प्रति

३—कर्नल काल्फील्ड की प्रति

४—बोडलियन प्रति

५—आगरा कालेज की प्रति

"यही पांचों प्रतियाँ प्रामाणिक मानी गई हैं।"

(ज) इसी प्रकार हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज की ८ रिपोर्टों (सन् १९०० से १९११ तक की) के आधार से बाबू श्यामसुन्दर-

दासजी ने नागरीप्रचारिणीपत्रिका भाग १५, पृ० १३८ पर इस प्रकार लिखा है—

"सबसे महत्व की पुस्तक जिसका विवरण इस वर्ष की रिपोर्ट में दिया गया है "पृथ्वीराज रासो" है। इसकी तीन प्रतियों का इस वर्ष पता चला, जिनका लिपि-काल क्रमशः संवत् १६४०, १८५६ और १८७८ है।

संवत् १६४० से पहले की लिखी हुई पृथ्वीराज-रासो की प्रति अब तक कहीं नहीं मिली है × × इस अवस्था में यही कहा जा सकता है कि पृथ्वीराज रासो की सब से प्राचीन प्रति जिसका अब तक पता चला है, संवत १६४० की लिखी है। इसमें ६४ समय है-लोहानो आजानबाहु समय, पद्मावती ब्याह समय ३, होली कथा समय, महोबा समय और वीरभद्र समय इस प्रति में नहीं है। दुःख की बात है कि यह प्रति कहीं-कहीं से खंडित है।"

(झ) हस्तलिखि हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—

भा० १ (सं० १६००-१६११ तक) के पृ० ८६-६१ रासो की प्रतियों का निम्नाक्त विवरण मिलता है— दे० (छ० १४६ तक) क-५६ लि० का० सं० १८७८ ख- ४७ ख-४६ लि०का०सं० १६२५, ख-४४ख -४३ ख-४२ क ६३ लि का० सं० १६४० ख-४१ लि-का० सं० १८७६, ख-४०, लि० का० १८७६, ख-३८, ख-३६, लि० का० सं० १८७६, ग-७१, ख-४५, ग-२७५, क-५६, छ ११६।

संकेत—क=सन् १६०० की रिपोर्ट। कछ=सन् १६०४ की रिपोर्ट
ख=सन् १६०१की रिपोर्ट। छ=सन् १६०६-७-८ की रिपोर्ट
ग=सन् १६०२ की रिपोर्ट

इसके पश्चात् और भी प्रतियों का पता खोज में लगा होगा, पर हिन्दी ग्रन्थों के खोज की रिपोर्ट हमारे पास न होने से न तो उपरोक्त प्रतियों का परिचय ही दिया जा सका, न पीछे अन्य प्रतियाँ प्राप्त हुई है, उनका ही हमें पता है। ना० प्र० सभा को सब ही प्रतियों की छान-बीनकर परिचय शीघ्र ही प्रगट करना चाहिये।

(ञ) चन्द कवि के वंशज (!) नेनूरामजी के पास रासो की दो प्रतियें हैं— जिनमें एक सम्वत् १४५५ की लिखित कही जाती है, उसके सम्बन्ध में प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी, एम० ए० महोदय ने चांद के मारवाड़ी अंक के पृ० १४६ में "महाकवि चन्द के वंशधर" शीर्षक लेख में लिखा है—

"नेनूरामजी के पास रासो की दो प्रतियाँ भी है। मैंने दोनों को देखा है। एक प्रतिलिपि तो कागज स्याही तथा अक्षरों को देखते हुए काफी पुरानी ज्ञात होती है। उसे वे चन्द के पुत्र झल्ह कृत बतलाते हैं। क्योंकि जैसी कि परम्परा से यह जन-श्रुति चली आई है, जब चन्दबरदाई महाराजा पृथ्वीराज के साथ चले थे, तब उन्होंने रासो का अपूर्ण अंश अपने पुत्र झल्ह को पूरा करने के उद्देश्य से सौंपा था। अस्तु. प्रतिलिपि, जैसा कि नीचे दिये हुए लेख से ज्ञात होगा, जो उसी में मिलता है, सम्वत् १४५५ में कीगई थी।"

"सम्वत् १४५५ वर्षे शरद ऋतौ आश्वनमासे शुक्लपक्षे उदयात घटी १६ चतुरथी दिवसे लिखतं श्री खरतरगच्छाधिराजे, पण्डित श्री रूपजी लिखत। चेलः श्री सोभाजा रा। कपासन मध्ये लिपिकृतं।"

× × रासो की प्राचीनता के विषय में तो नेनूरामजी का भी यह कहना है कि उसका अधिकतर अंश प्रक्षिप्त है, जो कि १६ वीं शताब्दी के आस-पास जोड़ा गया है।

रही यह बात कि उसका कितना अंश चंद का लिखा है और कहां तक झल्ल ने उसके बनाने में सहयोग दिया, इसके विषय में भट्टजी ने मुझे अपनी झल्ल-कृत रासो की प्रति में ये पद्य दिखाए थे—

दोहा— दहति पुत्र कवि चन्द के, सुन्दर रूप सुजान।
एक झल्ल गुण बावरो, गुण समन्द ससि मान॥ १॥
आदि अन्त लगि भ्रन्त मन, बनि गुरनी गुनराज।
पुस्तक झल्लन हत्तदे, चलि राजन कविराज॥ २॥
उभै सत्त नव रस्स गुण, किय पूरन गुरु तन्त।
रासौ नाम उदद्धियुत, गद्यौ मन्त मन सन्त॥ ३॥

बिना प्रति के स्वयं देखे हमें तो इसकी भाषा एवं लेखन-प्रशस्ति पर से विश्वास नहीं होता कि यह प्रति ठीक १४५५ की लिखित है। विद्वानों को इस पर शीघ्र ही प्रकाश डालना चाहिये व प्रतिलिपि के आदि अन्त पत्र का फोटो प्रकाशित करना चाहिये।

(ट) बाबूरामनारायण दूगड़ अपने 'पृथ्वीराजचरित्र' की भूमिका (पृ०८६) में लिखते हैं कि "उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय में रासो की जिस पुस्तक से मैंने यह सारांश लिया है, उसके अन्त में यह लिखा है कि चन्द के छन्द जगह-जगह पर बिखरे हुए थे, जिनको महाराणा अमरसिंह ने एकत्र कराया।" इस प्रति का पुष्पिका लेख इस प्रकार है—

संवत् १९१७ रा वर्षे मासोत्तम मासे भाद्रपद मास तो कृष्णापक्षे तिथि ॥ ६ ॥ बुधे लिखति श्री उदयपुर मध्ये महाराणाजी श्री श्री श्री १०८ श्री सरूपसिंहजी विजयराज्यै लिखित व्यास अंदरनाथ चन्दरनाथ मन्थानी बड़ापलीवाल खीमराय श्री निवासजी री भैमपुरी मध्ये श्री हजूरमें लखाणी श्री रस्तु कल्याणमस्तु शुभं भवतु।

(इति श्री विवाह सम्यो संपूर्ण)

(ठ) रासो के क्षेपक भाग पर विचार करते हुए बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने ना० प्र० प० भाग १, पृ० १४० में एक और प्रति का परिचय दिया है—"सन् १९०१ की खोज में एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के पुस्तकालय में एक प्रति "पृथ्वीराज रायसा" की मिली। यह दो जिल्दों में बँधी है और इसका लिपिकाल संवत् १९२५ है। पहले खण्ड का नाम "महोबाखण्ड" और दूसरे का "कन्नौज खण्ड" है। इसके प्रत्येक "समय" के अन्त में कर्त्ता की जगह चन्द बरदाई का नाम दिया है, पर विशेष जाँच करने पर यह ग्रन्थ न तो पृथ्वीराज रासो ही ठहरा और न कर्त्ता चन्द बरदाई सिद्ध हुआ। पहले खण्ड में आल्हा-ऊदल की कथा तथा परमारदेव और पृथ्वीराज के युद्ध का सविस्तार वर्णन है। दूसरे

खण्ड में संयोगिता के स्वयंवर, अपहरण, विवाह आदि तथा पृथ्वीराज और जयचन्द के युद्ध का विस्तार के साथ वर्णन है। जिस बात का वर्णन चन्द के वर्त्तमान क्षेपक पूर्ण रासो में एक दो समयों में आ गया है, उसे इस प्रति में दो बड़े-बड़े खण्डों में समाप्त किया गया है और सारी कृति चन्द के सिर मढ़ दी गई है।"

११ पुरातन प्रबन्ध संग्रह की प्रस्तावना का इस विषय में सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण अवतरण

"हम यहां पर, एक बात पर विद्वानों का लक्ष्य आकर्षित करना चाहते हैं और वह बात यह है कि इस संग्रह गत पृथ्वीराज और जयचन्द विषयक प्रबन्धों से हमें यह ज्ञात हो रहा है कि चन्द कवि रचित पृथ्वीराज रासो नामक हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य कर्तृत्व और काल के विषय में जो कुछ पुराविद् विद्वानों का यह मत है कि 'वह ग्रन्थ समूचा ही बनावटी है और १७ वीं सदी के आस-पास में बना हुआ है' यह मत सर्वथा सत्य नहीं है। इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में जो ३-४ प्राकृत-भाषा पद्य (८६, ८८, ८६, ९२) उद्धृत किये हुए मिलते हैं उनका पता हमने उक्त रासो में लगाया है और इन ४ पद्यों में से ३ पद्य, यद्यपि विकृत रूप में, लेकिन शब्दशः उसमें हमें मिल गये हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसी ने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी, जो पृथ्वीराजरासो के नाम से प्रसिद्ध हुई।

हम यहाँ पर, पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध विकृत रूपवाले इन तीनों पद्यों को प्रस्तुत संग्रह में प्राप्त मूल रूप के साथ उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को इनकी परिवर्तित भाषा और पाठ-भिन्नता का प्रत्यक्ष बोध हो सकेगा।

प्रस्तुत संग्रह से प्राप्त पद्य-पाठ

इक्कु बाणु पहु वीसु जु पइं कइं बासह मुक्कओ
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरिवणु।

फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह ।
न जांणउं चन्द बलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इहफलह ॥*

पृष्ठ. ८६, पद्यांक (२७५)

पृथ्वीराज रासो में प्राप्त पद्य पाठ

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ ।
उर उप्पर थरहर्यौ बीर कष्षंतर चुक्यौ ॥
बियो बान संधान हन्यौ सोमेसर नन्दन ।
गाढौ करि निग्रह्यौ षनिव गड्यौ संभरि धन ॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाड्यौ गुन गहि आगरौ ।
इम जंपै चन्दवरद्दिया कहा निघट्टै इह प्रलौ ॥

रासो, पृष्ठ १८६६, पद्य २३६

अगहु म गहि दाहिमओ रिपुराय खयं करु,
कूडु मंत्रु ममठवओ एहु जंबूय(प?)मिलि जग्गरु ।
सहनामा सिक्खवउ जइ सिक्खिविउं बुज्झइं,
जंपइ चंदबलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ ।
पहु पहुविराय सइंभरि धनी सयंभरि सउणइ संभरिसि,
कइंबास विआस विसट्ट विणु मच्छि बंधिबद्धओ मरिसि ॥

पृष्ठ वही, पद्यांक (२७६)

अगह मगह दाहिमौ देव रिपुराइ षयंकर ।
कूर मंत जिन करौ मिले जंबू वै जगर ॥
मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै ।
अष्षै चंद बिरद्द बियौ कोइ एह न बुज्झै ॥
पृथ्वीराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिस ।
कैमास बलिष्ठ बसीठ बिन म्लेच्छ बंध बंध्यौ मरिस ॥

रासो, पृष्ठ २१८२, पद्य ४७६

---

* चन्द बलिद्दिको द्वारमहो नृपं प्राह:—

त्रियिह लक्ख तुषार सबल पाषरिअइं जसु हय,
चऊद्सय मयमत्त दंति गज्जंति महामय।
बीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर,
ल्हूसडु अरु बलु यान संख कु जाणइ तांह पर।
छत्तीस लक्ख नराहिवइ विहिविनिडिओ हो किम भयउ,
जइचंद न जाणउ जल्हूकइ गयउ कि मूउ कि धरि गयउ॥

पु० ८८, पद्यांक (२८७)*

असिय लष्ष तोषार सजड पष्षर सायद्दल।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरुअ गज्जंत महाबल॥
पंच कोटि पाइक्क सुफर पारक्क धनुद्धर।
जुध जुधान बार बीर तोन बंधन सद्धन भर॥
छत्तीस सहस्र रन नाइबौ विही न्निम्मान ऐसो कियौ।
जैचंद राउ कवि चंद कहि उदधि बुड्डि कै धर लियौ॥

रासौ पृ० २५०२, पद्य २१६

इसमें शक नहीं है कि पृथ्वीराज रासो नामक जो महाकाव्य वर्तमान में उपलब्ध है, उसका बहुत बड़ा भाग पीछे से बना हुआ है। उसका यह बनावटी हिस्सा इतना अधिक और विस्तृत है और उसमें मूल रचना का अंश इतना अल्प और वह भी इतनी विकृत दशा में है कि साधारण विद्वानों को तो उसके बारे में किसी प्रकार की कल्पना करना भी कठिन है। मालूम पड़ता है कि मूल रचना का बहुत कुछ भाग नष्ट हो गया है और जो कुछ अवशेष रहा है, वह भाषा की दृष्टि से इतना भ्रष्ट हो रहा है कि उसको खोज निकालना साधारण कार्य नहीं है। मनभर बनावटी मोती के ढेर में से मुट्ठी भर सच्चे मोतियों को खोज निकालना जैसा दुष्कर कार्य है, वैसा ही इस सवा लाख श्लोक प्रमाणवाले बनावटी पद्यों के विशाल पुंज में से चंद कवि के बनाये हुए हजार पांच सौ अस्त व्यस्त पद्यों का ढूंढ निकालना कठिन कार्य है। तथापि, जिस तरह अनुभवी परीक्षक, परिश्रम करके लाख झूठे मोतियों में से मुट्ठी भर सच्चे

* तदनुचंद बलिद् भट्टेन श्री जैत्रचंद्र प्रत्युक्तम

मोतियों को अलग छांट सकता है, उसी तरह भाषा-शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान् इन लाख श्लोकों में से उन अल्प सख्यक पद्यों को भी अलग निकाल सकता है, जो वास्तव में चंद कवि के बनाये हुए हैं।

हमने इस महाकाव्य ग्रन्थ के कुछ प्रकरण, इस दृष्टि से बहुत मनन करके पढ़े तो हमें उसमें कई प्रकार की भाषा और रचना पद्धति का आभास हुआ। भाव और भाषा की दृष्टि से इसमें हमें कई पद्य ऐसे दिखाई दिये, जैसे छाछ में मक्खन दिखाई पड़ता है। हमें यह भी अनुभव हुआ कि काशी की नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से जो इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है, वह भाषा-तत्व की दृष्टि से बहुत ही भ्रष्ट है। उसके सम्पादकों को रासो की प्राचीन भाषा का कुछ विशेष ज्ञान रहा हो, ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। बिना प्राकृत, अपभ्रंश और तद्भव पुरातन देश्य भाषा का गहरा ज्ञान रखते हुए इस रासो का संशोधन, सम्पादन करना मानो इसके भ्रष्ट कलेवर को और भी अधिक भ्रष्ट करना है। इस ग्रन्थ में हमें कई गाथाएं दृष्टि गोचर हुई, जो बहुत प्राचीन होकर शुद्ध प्राकृत में बनी हुई है; लेकिन वे इसमें इस प्रकार भ्रष्टाकार में छपी हुई हैं, जिससे शायद ही किसी विद्वान् को उनके प्राचीन होने का या शुद्ध प्राकृतमय होने की कल्पना हो सके। यही दशा शुद्ध संस्कृत श्लोकों की भी है। संपादक महाशयों ने, न तो भिन्न-भिन्न प्रतियों में प्राप्त पाठान्तरों को चुनने में किसी प्रकार की सावधानता रखी है, न खरे खोटे पाठों का पृथक्करण करने की कोई चिन्ता की है; न कोई शब्दों या पद्यों का व्यवस्थित संयोजन या विश्लेषण किया गया है, न विभक्ति अथवा प्रत्यय का कोई नियम ध्यान में रखा गया है। सिर्फ 'यादृशं पुस्तकं दृष्टं तादृशं लिखितं मया', वाली उक्ति का अनुसरण किया मालूम देता है।

मालूम पड़ता है कि चन्द कवि की मूल कृति बहुत ही लोकप्रिय हुई और इसलिये ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों उसमें पीछे चारण और भाट लोग अनेकानेक नये-नये पद्य बना कर मिलाते गये और उसका कलेवर बढ़ाते गये। कण्ठानुकण्ठ प्रचार होते रहने के कारण मूल पद्यों की भाषा में भी बहुत कुछ परिवर्तन होता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि आज हमें चन्द की उस मूल रचना का अस्तित्व ही विलुप्त-सा हो गया मालूम दे रहा है! परन्तु जैसा कि हमने ऊपर सूचित किया है, यदि कोई पुरातन भाषाविद् विचक्षण विद्वान्, यथेष्ट

साधन सामग्री के साथ पूरा परिश्रम करे तो इस कूड़े-कर्कट के बड़े ढेर में से चन्द कवि के उन रत्न रूप असली पद्यों को खोज कर निकाल सकता है और इस तरह हिन्दी भाषा के नष्ट-भ्रष्ट इस महाकाव्य को प्रामाणिक पाठोद्धार कर सकता है। नागरी प्रचारिणी सभा का कर्त्तव्य है कि जिस तरह पूना का भाण्डार रिसर्च इंस्टीट्यूट महाभारत को संशोधित आवृत्ति तैयार कर प्रकाशित कर रहा है, उसी तरह वह भी हिन्दी भाषा के महाभारत समझे जानेवाले इस पृथ्वीराज रासो की एक संपूर्ण संशोधित आवृत्ति प्रकाशित करने का पुण्य करे*।

जयचन्द प्रबन्ध में का चोथा पद्य जो कि प्रकाशित रासो में अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ इस प्रकार है:—

पत्त नागतं वर्षं द्वये नोक्तम् ।तेनैव मुक्तम् ।

"जइतचंदु चक्कवइ दवे तुह दूसह पयाणउ ।
धरणि धसविउद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ ।
सेसुमणिहिं संकियउ मुक्कु हय खरिसिरि खंडिओ ।
तुट्टओ सोहर धवलु धूलि जसुचियतणि मंडिओ ।
उच्छहरिउ रेणु जसग्गिगय सुकवि ब (ज) ल्हु सच्चउ चवइ ।
वग्ग इंदु बिंदु भुयजु अलि सहस नयण किण परि मिलइ ॥

(पृ० ८८-८९)

उक्त पद्य किसी प्रति में मिल जाय तो खोज कर सूचित करने का विद्वानों से नम्र अनुरोध है।

राजस्थानी, कलकत्ता।
भाग ३, अंक २, अक्टूबर १९३९
पृ० १-५०।

---

* मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित पुरातन प्रबन्ध संग्रह (सिंघी जैन ग्रन्थ माला, पुष्प २), पृष्ठ ८-१०।

पृथ्वीराज रासो के वृहद् संस्करण के उद्धारक अमरसिंह द्वितीय थे ?

साहित्य सन्देश के गत अप्रेल अङ्क में पृथ्वीराज रासो के वृहद् संस्करण के उद्धारक-शीर्षक मेरा लेख छपा है, उस पर पुनः विचार के रूप में श्री गङ्गाप्रसाद कमठान का जून अङ्क में लेख प्रकाशित हुआ है, उसमें आपने अन्य प्रसिद्ध बातों से प्रारम्भ करते हुए वृहद संस्करण के उद्धारक के सम्बन्ध में चार वर्ष पूर्व सरदार उमरावसिंह के ग्रन्थागार में उनकी देखी हुई रासो की प्रति का वह उद्धरण दिया है जिसमें "रान जगतेश नृप" के स्थान पर "अमरा दूतीय नृप 'पाठ है। इस पर से रासो के वृहद् संस्करण के उद्धारक अमरसिंह द्वितीय होने का मत पुष्ट करते हुए इस पाठ भेद से मेरे मत का खण्डन हो जाता है, लिखा है। पर यह उनकी सर्वथा भूल है। "अमर द्वितीय" का पाठ मिल जाने से ही मेरा मत खण्डित नहीं होता; क्योंकि मैंने जिन आधारों पर अपना मत रखा है, उन पर विचार करना चाहिये। मैंने स्पष्ट लिखा था कि अमरसिंह द्वितीय के समय से पहिले की लिखित वृहद् रूपान्तर की प्रतियाँ प्राप्त हैं। अतएव इससे अमरसिंह द्वितीय के उद्धारक होने का कथन स्वयं असिद्ध होजाता है। दूसरी बात यह है कि जब अमरसिंह के समय से पहिले की लिखी हुई प्रति में वही पद्य मिल जाता है और उसमें जगतेश पाठ स्पष्ट है, तब तो अमरसिंह द्वितीय वाला पाठ जिस प्रति में होगा, वह प्रति उसके बाद की है और अमरसिंह द्वितीय के समय में लिखी हुई या उस समय की लिखी हुई प्रति की प्रतिलिपि है। यह पाठ का परिवर्तन निश्चय ही पीछे से प्रति लेखकादि किसी ने किया है और इसी पर से मैंने यह लिखा था। सम्भव है-"सं०१७६० में जब अमरसिंह के समय वाली प्रति लिखी गई, तब उसमें जगतेश के स्थान पर अमरेश पाठ कर दिया गया हो या अमरेश पाठ प्राचीन हो और जगतेश परवर्ती पाठ हो तो अमरसिंह पहला होना चाहिए।"

कमठानजी ने सरदार उमरावसिंह का ग्रन्थागार कहाँ है और उस संग्रह की रासो की जो प्रति उन्होंने देखी, वह किस समय की लिखी हुई है? इसका निर्देश नहीं किया, जो आवश्यक था। आपका यह लिखना भी सही 'सङ्गत नहीं है कि" इस ऐतिहासिक पद्य पर तत्कालीन परिस्थितियों को आगे रख कर दृष्टि डालने से यह (अमरसिंह द्वितीय का नाम)

ठीक मालूम पड़ता है। क्योंकि अमरसिंह प्रथम का काल सङ्घर्ष का युग रहा। फिर भला अमरसिंह प्रथम को रासो की समस्त सामग्री को, जो बिखरी हुई थी, सुसम्पादित करने का अवकाश कहां था?" वास्तव में तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री के संकलन के प्रयत्न पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि अकबर के समय राजाओं ने अपने प्राचीन गौरव को प्रकट करने वाले इतिवृत्त को संग्रहीत करवाने का प्रयत्न किया था। ख्यातों संज्ञक राजकीय इतिवृत्त ग्रन्थों का लिखा जाना अकबर के समय से ही प्रारम्भ हुआ था। रासो के ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्धि के कारण उस समय भिन्न-भिन्न स्थानों और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा रासो का उद्धार या संकलन हुआ। रासो के लघु संस्करण में कूरमवंशीय सूरसिंह के पुत्र चन्द्रसिंह ने इस संस्करण का उद्धार किया, स्पष्ट लिखा है—

महाराज नृप सूर सुव, कूरमचन्द उदार।
रासौ प्रथीयराज कौ, राख्यौ लगि संसार॥
× × × ×
कूरम सूर नरेस हिन्दु हद उद्धरि रक्खिय।
रघुनाथ चरित्र हनुमन्त कृत. भूप भोज उद्धरिय जिमि
पृथ्वीराज सुजसु कवि चंद कृत, चन्द्रसिंह उद्धरिय इमि॥

'मु० नैणसी री ख्यात' के अनुसार आमेर कच्छवा महाराज मानसिंह के छोटे भाई सूरसिंह और उनके पुत्र चन्दसिंह (चांदसिंह) थे। उनका समय भी वही (अकबर काल) पड़ता है। लघुतम रूपान्तर की संवत् १६६७ की लिखी हुई प्रति बीकानेर के महाराजा रामसिंह के छोटे भाई भाण के पुत्र भगवानदास के पठनार्थ लिखी है। इन सब बातों पर विचार करते हुए जब बीकानेर वालों ने लघु संस्करण का उद्धार करवाया तो उनके समकालीन उदयपुर वाले महाराणा अमरसिंह प्रथम ने रासो के लिखे हुए पद्यों को संग्रहीत करवाया हो, यह बहुत अधिक सम्भव और समीचीन है। अमरसिंह प्रथम को रासो के सुसम्पादित करने का अवकाश कहां था? लिखना भी विचारपूर्ण नहीं। क्योंकि महाराणा ने रासो को स्वयं सम्पादित किया, यह न तो कहीं लिखा है और न सम्भव है। चाहे वह अमरसिंह प्रथम हो, चाहे द्वितीय हो। उनके तो आदेश से ही यह काम हुआ। इसका पद्य में भी स्पष्ट उल्लेख है 'हित श्री मुख आइस दियो।' काम तो करने वाले करते हैं; राजाओं की तो आज्ञा ही काफी है और आज्ञा देकर अमरसिंह प्रथम ने यह कार्य करवाया।

बृहद् संस्करण के उद्धारक अमरसिंह द्वितीय तो उसके पहले की लिखी हुई प्रतियाँ मिलने और एक में 'जगतेश' पाठ मिलने से सर्वथा असम्भव ही है, पर जैसा कि मैंने अनुमान किया है 'जगतेश' पाठ भी पीछे का होकर अमरेश पाठ प्राचीन हो तो अमरसिंह प्रथम ही उद्धारक माने जाने चाहिये। उसकी पुष्टि बृहद् संस्करण के कुछ खण्डों की प्राचीन प्रतियों के प्राप्त होने से होती है। माणिक्यरुचिजी की रासो-प्रति के मध्यवर्ती कुछ पत्र ही मिले हैं, पूरी प्रति नहीं मिली। पर उसकी लिपी में पड़ी मात्रा (पृष्ठ मात्रा) का प्रयोग होने से वह १७ वीं शताब्दी के पीछे की तो नहीं होनी चाहिये। इसी प्रकार लंदनवर्ती टॉड कलक्शन की सं० १६६२ वाली प्रति में कुछ खण्ड ऐसे मिले हैं, जो लघुतम और मध्यम रूपान्तर से पृथकता रखते बृहद् संस्करण के अधिक समीप है। इन दोनों प्रतियों का लेखन मेवाड़ में ही हुआ था और इससे हमें बृहद् संस्करण के उद्धार के सूत्रों की प्राचीनता का स्पष्ट पता चल जाता है। अर्थात् जगत्सिंह से पहले भी बृहद् संस्करण के कुछ खण्ड लिखित रूप में प्राप्त थे। ऐसी दशा में अमरसिंह प्रथम का इस संस्करण का उद्धारक होना अधिक सम्भव व सङ्गत हो जाता है।

कमठानजी और कुछ दूसरे विद्वानों ने पुरातन प्रबन्ध संग्रह में प्रकाशित पृथ्वीराज जयचन्द प्रबन्ध का रचनाकाल सं० १५२६ लिखा है, वह भी सही नहीं है। वास्तव में वह प्राप्त प्रति का लेखन काल है, रचना काल की प्रति के अन्त में स्पष्ट लिखा है—"संवत् १५२८ वर्षे मार्गसिर १४ सोमे श्री कोरण्ट गच्छे श्री सावदेवसूरीणां शिष्येण मुनि गुणवर्द्धनेन लिपिकृतः। मु० उदय रोज योगयं" अर्थात् सं० १५२८ के मार्ग शीर्ष १४ सोमवार के दिन कोरण्ट गच्छीय श्री सावदेवसूरी के शिष्य मुनि ने गुणवर्द्धन मुनि उदयराज के लिये लिखी।

मुनि जिनविजयजी ने इस प्रति का परिचय देते हुए लिखा है कि "प्रति का समस्त अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि यह पूरी प्रति मुनि गुणवर्द्धन की लिखी हुई नहीं है, इसकी लिखावट दो तीन तरह की मालूम देती है। प्रथम पत्र से लेकर १५ वें पत्र की आरम्भ की दो पंक्तियों तक की लिखावट किसी दूसरे के हाथ की है और उसमें भी दो तीन की कलम मालूम देती है और उससे आगे की मुनि गुणवर्द्धन के हाथ की है। प्रति का लेख कुछ अव्यवस्थित और प्रायः अशुद्ध है। कहीं-कहीं त्रुटि भी है। कई स्थलों पर लिपिकर्ता ने अक्षरों तथा पंक्तियों की पूर्ति के लिए '......' इस प्रकार के अक्षर शून्य की जगह रख

छोड़ी है। सातवें पन्ने की दूसरे पृष्ठ पर तो पूरी चार-पाँच पंक्ति इस प्रकार खाली रखी हुई है। इससे दो बातें सूचित होती हैं, एक तो यह कि यह पूरी प्रति एक साथ और एक हाथ से नहीं लिखो गई। इसका आरम्भ किसी दूसरे के हाथ से हुआ। दूसरी बात यह है कि इसका मूल आदर्श भी कोई एक ही सङ्गठन होकर जुदा दो-तीन संग्रह होने चाहिए। सिवाय इसके, मूल आदर्शों में से कोई प्रति ऐसी भी मालूम देती है, जो त्रुटि या खण्डित हो। ऐसा होना यह ज्ञात कराता है कि वह प्रति तालपत्रात्मक होनी चाहिए और उसका कुछ नष्ट-भ्रष्ट और कोई पत्र विलुप्त होगया होना चाहिए। ताल-पत्र लिखित पुरातन ग्रन्थों में प्रायः ऐसा होना रहता है। उनके उद्धार स्वरूप जो पीछे से कागज पर ग्रन्थ लिखे गये, उनमें ऐसे खण्डित या त्रुटि भाग की सूचना करने वाले अनेक रिक्त स्थान, जैसे उन ग्रन्थ में देखे जाते हैं। इसके उपरान्त यह प्रति भी बहुत जीर्ण दशा को प्राप्त होगई है।

मुनिजी के उपरोक्त प्रति परिचय से यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो के जो पद्य पृथ्वीराज और जयचन्द प्रबन्ध में मिले हैं, उनका रचना काल तो प्राचीन है ही, पर लेखन काल तो १५२८ से पहले का ही है। क्योंकि ये दोनों प्रबन्ध पत्र पत्र १२ व १४ में लिखे मिले हैं और मुनि जी की सूचनानुसार १५ वें पत्र के बाद के पत्र उससे कुछ न कुछ पहिले होंगे, जिसकी पूर्ति १५२८ में गुणवर्द्धन ने लिख कर की। मुनिजी के कथनानुसार इस प्रति का आदर्श ताड़पत्रीय प्रति हो तो निस्सन्देह इन पत्रों का लेखन समय १३. १४ वीं शताब्दी तक पहुँच जायगा। इनकी भाषा भी उसी समय की है। अतः विद्वान् लोग इन प्रबन्धों का जो १५२८ रचना काल निर्देश करते हैं, वह भ्रामक है क्रमशः उपलब्ध प्रति का लेखनकाल है, प्रबन्धों का रचना काल नहीं।

साहित्य सन्देश, आगरा (मासिक) नवम्बर १९५५,
वर्ष १७, अङ्क ५, पृ० २०१-२०२.एवं २०७।

नरोत्तमदास स्वामी एम०ए०

सम्राट् पृथ्वीराज के दो मंत्री

लन्दन में भारतमंत्री का इण्डिया ऑफिस नाम का जो दफ्तर है, उसमें संस्कृत भाषा के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का विशाल संग्रह है। उस संग्रह में कवि लक्ष्मीधर का बनाया हुआ "विरुद्ध विधि विध्वंस" नाम का एक स्मृति ग्रन्थ है[1]। इस ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकर्ता ने अपने वंश का संक्षिप्त परिचय दिया है, जिससे मालूम होता है कि ग्रन्थकर्ता अजमेर और दिल्ली के चौहानवंशीय नरेश सोमेश्वर के मंत्री स्कन्द का वंशज था। यह स्कन्द और उसका पुत्र सोढ दोनों सोमेश्वर के मन्त्री रहे। सोढ के दो पुत्र हुए, जिनके नाम स्कन्द और वामन थे, जो सोमेश्वर के पुत्र और उत्तराधिकारी पृथ्वीराजचौहान (सुप्रसिद्ध राय पिथौरा) के क्रमशः सेनापति और अमात्य थे। ग्रन्थकर्ता इनमेंसे वामन का पौत्र, अर्थात् उसके पुत्र मल्लदेव का पुत्र था। इस प्रशस्ति से पृथ्वीराज के सम्बन्ध की कुछ नयी बातें प्रकाश में आती है अतः उसे यहां पर उद्धत करते हैं:—

ब्राह्मणा ब्राह्मणा जाता जाता ये गुण सागराः
नागरा नागराजाहे हारोयानर्हयद्वरः (!) ॥१॥
तदन्वयेऽष्ट गोत्राणामष्ट गोत्रान्नति श्रिताम्
मध्याद् गोत्रेशसंशुद्धे गोत्रेऽजायत काश्यपे ॥२॥
श्रीमदानन्दनगर स्थाने स्थानेश्वराभिधः
पंडितो यः स्वविद्याभिश्चतुर्दिग्विदुषोऽजयत् ॥३॥

---

१. इण्डिया आफिस हस्तलिखित ग्रन्थ नं० १४५ (Collection of Colerbooke) देखिये जूलियस एगलिंग रचित केटेलग आफ दि संस्कृत मेन्यूस्क्रिप्स इन दि लाइब्रेरी आफ दि इण्डिया आफिस, भाग ३, पृष्ठ ४८४-४८१ (नम्बर १५७७) ग्रन्थ का लिपिकाल सम्वत् १५८२ चैत्रसुदी ४ मृगौ है।

श्रीमदानन्दनगरे नागरेभ्यो गृहांश्च यः
सप्रविशति विप्रेभ्यः प्रददौ सपरिच्छदान् ॥४॥
षण्मुखः षट्सु तर्केषु चतुर्वेदी चतुर्मुखः
मीमांसा-मांसल-प्रज्ञो योऽभूत्तस्यान्वयेऽभवत् ॥५॥
स्कन्दः स्कन्दपितुः प्रत्तानन्दकन्दस्त्वमन्दधीः
शाकंभरीशितुः सोमेश्वर-देवस्य भूभृतः ॥६॥
सांधिविग्रहिकामात्योऽरात्यौघ करि केसरी
सोढस् तस्य सुत्तोऽसोढः शत्रुभिस्तत्पदेऽभवत ॥७॥
तस्य पुत्रावभूतां द्वौ भूतान्तभूत कीर्त्तितौ
स्कन्द-वामन नाम्ना तावाम्रातावबनीमतौ ॥८॥
सर्वामात्यपदं ताभ्यां पृथ्वीराजोऽददन् मुदा
सेनाधिपत्यं स्कन्दाय प्रदाय च सुखी स्थितः ॥९॥
सेनापतित्वं स्कन्दाय प्रदाय धृतशक्तये
महादेव सुतायातिहृष्टपो भूपवत् (!) ॥१०॥
सांधिविग्रिहिकाद्यं पदं संपाद्य वामने
स्कन्दो राजेऽर्पितानन्दोऽवधीन् नित्यं कु(तु)रुष्ककान्॥११॥
सदा स दानानि ददौ द्विजेभ्यो दण्डनायकः
या काव्यपरिणीतायात् तस्य !)वैवाहिकं हृदान् ॥१२॥
स्कन्द स्कन्देति वर्णेषु वर्ण्यमानेऽत्र नागरैः
ब्राह्मणं कोऽपि कोपेन कंपिताधरमुक्तवान् ॥१३॥
स्कंन्द स्कन्देति वदथ किं विप्राः प्रतिवासरन्
मदीय-हृदये नायमप्यर्ध स्कन्द खंडिका ॥१४॥
इत्ये ते नागराः प्रोचुर यत्वं यात्वा तदंतिके
वद द्विजैवं वचनं यद्यस्ति तव योग्यता ॥१५॥
कोपात्सपादलक्षे द्वादशे शाकंभरीं पुरीम्
प्राप्य विप्रो राजकुलाद्यथान्तं दंडनायकम् ॥१६॥
गतेऽन्यसंगरे स्कन्दे निद्राव्यसनसन्न धीः
व्यापादितस् तुरुष्कैः स राजा जीवन्मृतो युधि ॥१७॥

हरिराजमथो राज्ये शाकंभर्या निवेश्य सः
स्कन्दस्तत्र कियत्कालं स्थित्वा तुर्याश्रमं श्रितः ॥२८॥
द्रम्माणां लक्षविंशत्या विंशत्यश्च शतैः समम्
वामनः सकुटुंबोऽणहिल्लपाटकमाट तु ॥२५॥
मल्लदेवोऽभवत्तस्य पुत्रः पुत्रवतां वरः
सुभाषितावली-कर्त्ता भर्त्ता भूतलवर्त्तिनाम् ॥२६॥
सहस्र संख्या साहित्ये लक्ष्यलक्षण संख्यया
कौटिल्याद्यर्थशास्त्रेषु कोटिशो यन्मतिर्मता । २७॥
स श्रीदेवीति नाम्नात्मनाम्नातां परिणीतवान्
लक्ष्मीशवत्ततो लक्ष्मीधरोऽभूद् वरधीधरः ॥२८॥
भगवद्बोध-भारत्याख्य श्रीपाद-प्रसादतः
आसादित सदानन्दाऽद्वैत ज्ञानानुभावकः ॥२६॥
श्रीमति श्रीशवदणहिल्लपाटक पत्तने
मल्लदेवः सहामात्यसभ्यः स्मृत्यादि निर्णये ॥३०॥
वेदान्त समृति सिद्धान्त श्रान्तः स्वान्तःकवेः पथि
पांथोऽ प्रतिमरामाख्यं महाकाव्यं चकार यः ॥३१॥
प्रत्यक्षीभूत भारत्येवितः (!) स्मार्तं महत्तमः
विरुद्ध-विधि-विध्वंसं व्यवधानमुग्ध बुद्धये ॥३२॥

ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति के अन्त में एक पत्रा है, जिसकी लिपि अपेक्षाकृत बहुत हाल की है। उसमें उल्लिखित श्लोकों का गद्य भावानुवाद दिया हुआ है। उसे हम यहां पर अनुवाद सहित उद्धृत करते हैं—

नागराः ब्राह्मणाः अष्टगोत्राः. तेषां मध्ये काश्यपगोत्रे नागरवंशे काश्यां स्थानेश्वर-नामा पंडितः चतुर्दिक्ष् पंडितान् जित्वा सप्तविंशति-संख्यक नागर ब्राह्मणेभ्यः सपरिच्छदान् गृहान् ददौ।···तदन्वये स्कंद···। शाकंभरी देशाधिप सोमेश्वर नाम्नोराज्ञः संधि विग्रहिकामात्योजातः, तस्यपुत्रः सोढः सोऽप्यमात्यः। तस्य पुत्रौ द्वौ स्कंद-वामन-नामानौ। तद्देशीय-राजा पृथ्वीराज-नामा स्कन्दाय सेनाधिपत्यं वामनाय सांधिविग्रहिकामात्यं च दत्त्वा स राजा स्वस्थो जातः। ततः स्कंदः तुरुष्ककान् अवधीत्। ततः अन्यसंगरे गते स्कन्दे राजा निद्राव्यसन मन्दधीः स तुरुष्कै र्व्यापादितः। पुनर्हरिराज नामानं शाकंभर्यां संस्थाप्य स्कंदः चतुर्थाश्रम-

माश्रितः। वामनस्तु विंशताधिक विशंल्लक्ष द्रव्यैः सह अणहिल्लपाटकमगात्। तत्पुत्रो मल्लदेवः येन सुभाषितावली कृताऽप्रति (म) रामाख्य काव्यं च। शास्त्रे कोटिशो मतं यस्य। तेन श्रीदेवी विवाहिता। तस्यां तत्सुतो लक्ष्मीधरोऽभूत्। सएव भगवद्बोधभारती-शिष्यः अद्वैतज्ञानानुभावकः स एव विरुद्धविधिविध्वंसनामानं ग्रन्थ मकरोत्। एवायं ग्रन्थः॥

[नागर ब्राह्मणों के ८ गोत्र हैं। उनमें काश्यप गोत्रीय नागर वंश में] स्थानेश्वर नामका पंडित हुआ। उसने चारों दिशाओं के पंडितो को जीत कर[1] काशी में सत्ताइस नागर ब्राह्मणों को सजे-सजाये घर दान में दिये। उसके वंश में स्कन्द हुआ। वह शाकंभरी देश के अधिपति सोमेश्वर नामक राजा का सांधिविग्रहिक-अमात्य हुआ। उसका पुत्र सोढ हुआ। वह भी अमात्य हुआ। उसके-स्कन्द और वामन-नाम के दो पुत्र हुए। उस देश के राजा पृथ्वीराज ने स्कन्द को सेनापति का और वामन को सांधिविग्रहिक-अमात्य का पद् दिया और निश्चिन्तता प्राप्त की। तब स्कन्द ने तुर्कों को मारा। इसके पीछे जब स्कन्द किसी दूसरे युद्ध पर गया हुआ था, तब निन्द्राव्यसन से मन्दबुद्धि वाले राजा को तुर्कों ने मारडाला। फिर हरिराज को शाकंभरा के सिंहासन पर बिठाकर स्कन्द संन्यासी होगया। वामन बीसलाख बीसहजार द्रव्य लेकर अणहिल्लपाटक को चला गया। उसका पुत्र मल्लदेव हुआ, जिसने सुभाषितावली और अप्रतिमराम नामक काव्य रचा। शास्त्र में उसकी बुद्धि करोड़ों प्रकार से स्थित है। उसने श्रादेवी से विवाह किया। उससे उसके लक्ष्मीधर नामक पुत्र हुआ। वही भगवद्बोधभारती का शिष्य और अद्वैतज्ञान का विवेचन कर्त्ता है। उसीने विरुद्ध विधिवि.ध्वंस ग्रन्थ लिखा। वही यह ग्रन्थ है।

ग्रन्थकर्ता का समय पृथ्वीराज से अधिक दूर नही। अतः उसका यह कथन कि उसके पितामह, प्रपितामह आदि अजमेर के चौहाणों के मन्त्री रहे. प्रामाणिक समझा जाना चाहिए। आश्चर्य की बात है कि इन मंत्रियों का उल्लेख अन्यत्र कहीं, किसी ग्रन्थ या अभिलेख में नहीं मिलता। संभव है कि ये लोग साधारण मंत्री रहे हों।

राजस्थानी (त्रै०मा०) कलकत्ता, भाग ३, अंक ३, जनवरी १९५०, पृ०४५-४८

---

१ मूल श्लोकों में काशी की जगह आनन्द नगर (आजकल का बडनगर) है।

पृथ्वीराज रासो के लघु रूपान्तर का उद्धार कर्ता

(१)

पृथ्वीराजरासो के इस समय चार रूपान्तर उपलब्ध हैं[१]। उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

(१) वृहत या बड़ा रूपान्तर– इसकी प्रतियाँ उदयपुर में मिलती हैं। काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा में भी इसकी प्रति है। सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण इसी वृहत् रूपान्तर का है। इसकी जिन प्रतियों पर लेखन–काल दिया है वे सभी अठारहवीं शताब्दी या उसके बाद को लिखी हुई हैं[१]।

(२) मध्यम रूपान्तर– इसकी एक प्रति पंजाब विश्व विद्यालय में, एक अबोहर के साहित्य–सदन में और एक श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रहालय में है। इसके प्रथम सर्ग को सोलन राजगुरू श्री मथुराप्रसाद दीक्षित ने टीका सहित छपवाया है। इसकी प्रतियाँ भी अट्ठारहवीं शताब्दी की हैं।

(३) लघु या छोटा रूपान्तर– इसकी तीन प्रतिया बीकानेर राज्य के अनूप-संस्कृत–पुस्तकालय में तथा एक प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के पास है, जो उन्हें फतहपुर (शेखावाटी) से मिली थी। इनमें से फतहपुर की प्रति सं०१७२८ की लिखी है। बीकानेर वाली प्रतियों में संवत् नहीं है. पर उनमें से एक बीकानेर के प्रधान मन्त्री कर्मचंद बच्छावत के पुत्र भागचंद के लिए लिखा गई थी जिसका देहान्त संवत् १६७० के लगभग हुआ था। अतः यह प्रति १६७० के पूर्व की होनी चाहिये। दूसरी दोनों प्रतियाँ और भी प्राचीन जानपड़ती हैं। उनमें से एक में पृष्ठ मात्राका भी प्रयोग है। तीनों प्रतियाँ सत्रहवीं शताब्दी की हैं, इतना तो निश्चित है।

---

१. इन रूपान्तरों की खोज, उनके पृथक्करण और वर्गीकरण का श्रेय रास्थानी साहित्य के सुप्रसिद्ध अनुसंधान और अनुशीलन-कर्त्ता श्री अगरचन्द नाहटा को है। इस विषय में राजस्थानी, भाग ३, अंक २ में 'प्रकाशित नाहटाजी का पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ' नामक लेख देखिये।

नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति को सं० १६४२ की लिखी बताया जाता है। हमने उस प्रति को देखा था। हम समझते हैं कि वह १६४२ की नहीं, किन्तु १७४२ की या जैसा कि अधिक संभव है, १८४८ की लिखी है।

इस रूपान्तर का संपादन हो चुका है और वह शीघ्र ही काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित होगा।

(४) लघुतम रूपान्तर—इसकी प्रति गुजरात के धारणोज गांव निवासी बारठ पथु-ब्रजा के पास है। इसकी प्रतिलिपि श्री नाहटाजी के संग्रह में है। इसका लेखन-काल संवत् १६६७ है। यह बीकानेर के महाराजा कल्याणसिंहजी के पुत्र और महाराजा रायसिंहजी के छोटे भाई भाण के पुत्र राजा भगवानदास के लिए लिखी गयी थी। इस रूपान्तर की भाषा अपेक्षा-कृत अधिकप्राचीन है। इसमें अध्यायों का विभाजन नहीं है अर्थात् आरंभ से अंत तक एक ही अध्याय है। इसकी ग्रन्थ-संख्या लिपिकार ने १३०० श्लोक प्रमाण दी है। इस प्रकार यह रूपान्तर उस समय के आस-पास लिखे गये रास-साहित्य के साथ मेल खाता है इसमें बीच-बीच में गद्य भी है।

(२)

जान पड़ता है कि रासा आरंभ में बहुत दिनों तक मौखिक रहा। उसका मूल रूप संभवतः बहुत छोटा था, जैसा कि रूपान्तर नं० ४ का है। धीरे-धीरे उसमें वृद्धि होती गई। आगे चलकर यह बिखर गया और अस्त-व्यस्त हो गया। अकबर के शासन काल में उसके उद्धार और संग्रह का प्रयत्न किया गया। लघुतम और लघु-रूपान्तरों की प्रतियाँ इसी काल की हैं। लघु-रूपान्तर का उद्धार कछवाह चन्द्रसिंह ने किया। बीकानेर के तत्कालीन महाराजा रायसिंहजी को विद्या और साहित्य से बड़ा प्रेम था। उनके निकट सम्बन्धी भी विद्या-प्रेमी थे, उनके छोटे भाई पृथ्वीराज डिंगल के प्रमुख कवि माने गये। रासो का संग्रह होने पर रायसिंहजी ने तुरन्त अपने लिये उसकी प्रतिलिपियाँ प्राप्त की। उनके विद्या-प्रेमी मंत्री कर्मचन्द ने अपने पुत्र के लिए उसकी प्रतिलिपि करवाई। लघुतम रूपांतर की प्रति रायसिंहजी के छोटे भाई भाण के पुत्र भगवानदास के लिये करवाई गई थी।

(३)

वृहत् रूपान्तर का संकलन महाराणा अमरसिंह दूसरे के समय में हुआ

जिनका शासन-काल सं० १७५५ से १७६७ तक है[1] इस रूपांतर की कई एक प्रतियों के अन्त में यह छप्पय मिलता है।

गुन मनियन रस पोइ चंद कवियन कर दिद्धिय।
छंद गुनी तें तुट्टि मंद कवि भिन-भिन किद्धिय॥
देस-देस विक्खरिय मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत आस विन आलय आवय॥
चित्रकोट-रांन अमरेस त्रप हित श्रामुख आपस दयौ।
गुन बीन-बीन करुना उदधि लखि रासौ उद्दिम कियौ[2]॥

(४)

जैसा कि ऊपर कहा गया है, रासो के लघु-रूपान्तर का उद्धारक कोई कछवाहा चन्द्रसिंह था। इस रूपान्तर की प्रतियों के अंत में नीचे लिखा छप्पय मिलता है। तथा इनमेंसे एक में नीचे लिखा दोहा भी है।

प्रथम वेद उद्धरिय बंभ मच्छह तनु किन्नउ।
दुतिय वीर वाराह धरनि उद्धरि जसु लिन्नउ॥
कौमारीक भदेस धम्म उधरि सुर सक्खिय।
कूरम सूर नरेस हिंद हद उद्धरिय रक्खिय॥
रघुनाथ-चरित हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिम।
प्रथिराज-सुजस कवि चंद कृत चन्द्रसिंह उद्धरिय इम[3]॥

---

१. श्री श्यामसुन्दरदास आदि विद्वान् रासो के वृहत रूपांतर के उद्धारक महाराणा अमरसिंह को, अमरसिंह प्रथम मानते हैं, जिनका शासनकाल सं० १६५३ से सं० १६७६ तक था। हमारी सम्मति में यह ठीक नहीं। इस रूपांतर की उदयपुर में जितनी प्रतियाँ मिली हैं, उनमेंसे कोई भी अठारहवीं शताब्दी के पंचम दशक के पहले की नहीं है, अधिकांश इससे भी काफी पीछे की है।

२ श्री मोतीलाल मेनारिया—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, पृष्ठ ६२, श्यामसुन्दरदास—हिन्दी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २२६।

३ वृहत् संस्करण की प्रतियाँ में भी यह छप्पय मिलता है, पर वहां चन्द्रसिंह की जगह 'चन्द-नंद' पाठ है। उस अवस्था में छप्पय की चौथी पंक्ति का कोई युक्ति संगत अर्थ नहीं बैठता। फिर वृहत् संस्करण की प्रतियाँ बहुत पीछे की हैं। अतः लघु रूपान्तर का पाठ ही मान्य हो सकता है।

महाराज नृप सूर-सुव, कूरम चंद उदार ।
रासौ प्रथीयराज कौ राख्यो लगि संसार ॥

यह कछवाहा चंद्रसिंह कौन था? इस का पता नहीं चल रहा था? उक्त पद्योंसे केवल इतना ही पता चलता है कि यह कूरम या कछवाहा वंश का था और सूरसिंह का पुत्र था। उस दिन मेरा जाना बीकानेर राज्य के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में हुआ वहाँ मेरे भूतपूर्व शिष्य श्री रावत सारस्वत से, जो उस समय पुस्तकालय के उप-पुस्तकाध्यक्ष थे, इस विषय की चर्चा चल पड़ी। उस समय राजस्थान के इतिहास का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'मुंहणोत नैणसी की ख्यात' उनके हाथ में था, कौतूहल-वश हम लोग कछवाहों का प्रकरण देखने लगे। देखते-देखते दृष्टि चांदसिंह पर पड़ी। पूरा अनुच्छेद पढ़ने पर चांदसिंह के पिता का नाम सूरसिंह मिला। यह सूरसिंह आमेर (जयपुर) के सुप्रसिद्ध महाराजा मानसिंह का छोटा भाई था। इस प्रकार चाँदसिंह महाराजा मानसिंह का भतीजा और अकबर का समकालीन सिद्ध हुआ। उक्त अनुच्छेद का हिन्दी अनुवाद नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित नैणसी की ख्यात से नीचे दिया जाता है[१]।

"सूरजसिंह भगवानदासोत बड़ा वीर था। बादशाह अकबर ने जब सीकरी का कोट बनवाया, तब सूरजसिंह का डेरा कोट की नीव पर था। उसने डेरा नहीं उठाया। बादशाह ने उसे कुछ न कहा और कोट को टेढ़ा करवा दिया। वह सदा बादशाह का सच्चा सेवक बना रहा। मोटे राजा की बेटी, जैत्रसिंह की बहन, जसोदाबाई का विवाह उसके साथ हुआ था, जो पति के शव के साथ सती हुई। स्यालकोट में, जो दरया-अटक और कांगड़े के बीच में है, शादमां सुल्तान से लड़ाई हुई। वहां से (पंजाब की) गुजरात भी पास ही है। शादमां हुमायूं बादशाह का पोता, असकरी कामरां का बेटा और हिंदाल का भतीजा था। सूरजसिंह उसको मार कर सही-सलामत चला आया। पुत्र चांदसिंह। चांदसिंह के बेटे—अचलसिंह, ज्ञानसिंह, अगरसिंह। अचलसिंह के पुत्र—मनरूप और राजसिंह।

---

१. खंड दो पृष्ठ १७।

२ इस उद्धरण में सूरसिंह की जगह सूरजसिंह नाम आया है। राजस्थानी साहित्य से अपरिचित विद्वान् कदाचित् कहें कि दोनों को एक क्यों माना जाय। पर राजस्थानी साहित्य में सूरसिंह की

लघु रूपान्तर की सभी उपलब्ध प्रतियाँ इस चाँदसिंह के पीछे लिखी हैं। अतः इस रूपान्तर का उद्धारकर्त्ता चंद्रसिंह यही चांदसिंह था, इसमें संदेह के लिए कदाचित् ही स्थान हो।

'वरदा' (प्राच्य-कला-निकेतन, द्वारा प्रकाशित शोधनिबन्ध) जयपुर।

संख्या १ श्रावण, २००७, पृष्ठ ३–६।

जगह सूरजसिंह या सूजा का प्रयोग साधारण बात है। बीकानेर के महाराजा सूरसिंह को अनेक स्थानों में सूरजसिंह या सूजा कहा गया है।

और स्पष्ट प्रमाण के लिये मुद्रित ख्यात का पृष्ठ १३ देखा जा सकता है, जहां वंशवृक्ष दिया है। वहां भगवन्तदास के तीसरे पुत्र का नाम सूरसिंह दिया है।

अनूप संस्कृत पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति में सूरजसिंह की जगह सूरसिंह ही दिया है।

श्री उदयसिंह भटनागर एम०ए०

पृथ्वीराज रासौ संबंधी कुछ जानने योग्य बातें

रासौ पर किये गए आक्षेप अभी तक निरुत्तर हैं और उसकी मौलिकता पर किये गये संदेह विद्वानों में उसी प्रकार प्रचलित हैं। जहाँ कहीं रासौ का वर्णन आता है, वहाँ इसी प्रकार के मतों को उद्धृत कर काम चला दिया जाता है। इधर विश्व विद्यालयों में भी इसके अध्ययन तथा खोज का कोई प्रबन्ध अथवा प्रयास नहीं किया जाता है। इतना विशाल कलेवर होने के कारण रासौ का 'पद्मावती समय' अथवा 'रावल समरसी समय' ही एम०ए० के पाठ्यक्रम में रखे जाते हैं। परीक्षा में आनेवाले प्रश्न भी बहुधा तैयार किए हुए नोटों के आधार पर ही होते हैं और ये नोट बहुधा आक्षेपों से ही सम्बन्ध रखते हैं। प्रश्न इसी प्रकार के होते हैं। रासौ डिङ्गल न होकर पिङ्गल क्यों? रासो हिन्दी का आदि काव्य है। रासो की मौलिकता, क्या चंद नाम का कोई कवि था? आदि...आदि।

जहाँ एक ओर इस प्रकार के प्रश्न हैं, वहाँ राजस्थान में दूसरी ओर एक कहावत भी प्रचलित है।

"सारो रासो बगड़ गयो।"

इसमें कितनी सचाई है। रासौ में मौलिकता अवश्य है; परन्तु आक्षेपों और प्रक्षेपों के कारण गड़बड़ हो गई है। अब तक रासो को सुधारने का कोई सफल प्रयत्न नहीं हुआ। हर्ष की बात है कि उदयपुर के कविराज श्री मोहनसिंहजी द्वारा इस पर सफल प्रयत्न किया जा रहा है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

एतिहासिक दृष्टि से जब रासौ जाली सिद्ध किया गया तो उस पर किये गये आक्षेप इस सीमा तक पहुँचे कि मेवातो मुगल (सं० मुद्गगल) को मुगल (मंगोल मुसलमान) मान लिया गया। मुगल मुसलमान न होकर हिन्दू था। यह तो इतिहास प्रसिद्ध है कि उस समय मुगल लोग भारत वर्ष में नहीं आये थे। अतः रासौ में किसी मुगल का आना इतिहास विरुद्ध होता। अक्षेपकारों ने इस प्रकार हिन्दू राजा मेवाती मुदागलराय को मुसलमान ठहराकर अपने आक्षेपों में क्षेपक ही जोड़ा है—

"पृथ्वीराज भी कुछ समय बाद अजमेर चला और रातों-रात मुगल सेना पर उसने आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुगल पराजित हुए। मुगल राजा का ज्येष्ठ पुत्र वाजिदखां मारा गया और वह स्वयं कैद हुआ।······यह कथा भी कल्पित है ······वहां कोई राजा स्वतन्त्र नहीं था और मुगलों का तो क्या अन्य मुसलमानों तक का उस प्रदेश पर अधिकार नहीं था।"

कोशोत्सव-स्मारक संग्रह पृ० ४६।४७.

यह जानकर भी कि 'मुगल' का पूरा नाम 'मुद्गगलराय' था, उसको मुसलमान कल्पित कर लेना कितनी एतिहासिक भूल है और फिर उसके पुत्र का वाजिदखां नाम कल्पित कर लेना "रासौ बिगाड़ देना" नहीं तो क्या हो सकता है ?

रासौ में दो तीन स्थानों पर मुगल शब्द का प्रयोग हुआ है। अन्य सब स्थानों पर (और अधिक स्थानों पर) 'मुंगल' शब्द आया है जहाँ 'मुगल' शब्द आया है, वहाँ भी छन्द की दृष्टि से अधिकतर 'मुगल' पाठ ही होना चाहिये। 'मुगल' का संस्कृत रूप 'मुदागल' (मुद्गलराय) रासौ में भी मिलता है। इस प्रकार 'मुदागल' शब्दके तीनरूप रासो में मिलते हैं, जा भाषा की दृष्टि से इस प्रकार है। सं० मुदाकल मुग्गल, मुंगल, मुगल

१. पढ़ि पत्र पिथ्थ मुग्गल नरिंद ॥ ८ ॥ ३ । ३

२. मुंगल दिसा बिसाल ॥ ८ ॥ १७ । ६

३. जहाँ मंडल यही ॥ ८ ॥ ४ । ४

मुदागल के हिन्दू होने का यह प्रमाण है-

सेवासु मोही श्री नाथ पाई

तिह चरन चित्त लग्गयौ सदाही ॥ ८ ॥ ८ । ४

रासो में मुदागलराय के वाजिदखाँ नाम का कोई पुत्र नहीं मिलता

इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से रासौ जाली सिद्ध हो जाने पर उसकी भाषा की प्राचीनता पर भी आक्षेप किया गया कि वह भाषा उस समय की नहीं है।

"पठित चारण और भाट लोग अब भी कविता बनाते है और बहुधा डिंगल वीर रस की सुंदर कविता रचते हैं, अन्य रस की कविताएँ वे साधारण भाषा में रचा करते हैं। डिंगल भाषा में व्याकरण की व्यवस्था नहीं होती और शब्दों के रूप तथा विभक्तियों के चिन्ह पुराने ढंग के होते हैं।"

तो हिन्दी के विद्वानों को यह कहने का अवसर मिला कि "रासौ की भाषा को राजस्थानी सिद्ध करने के लिए तथ्य का कोई आधार नहीं" क्योंकि "उसका कर्त्ता मध्यदेशका निवासी था, राजस्थान का नहीं।"

साधारण भाषा का अभिप्राय पिंगल समझ कर यह कहा गया कि रासौ न डिंगल में है और न पिंगल में। उनके मत से रासौ को भाषा अव्यवस्थित अवश्य है पर सर्वत्र नहीं। दोहों और छप्पयों की भाषा में व्याकरण की व्यवस्था है। रासौ में व्याकरण की अव्यवस्था का कारण डिंगल है। काशी-विश्वविद्यालय में पढ़ते समय मैंने ऐसे नोटों का संग्रह किया और जब आज मैं नोटों पर विचार करता हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है। प्रश्न उठता है कि क्या पृथ्वीराज के समय में मध्य देश और राजस्थान की काव्य भाषाएं भिन्न थीं, जब कबीर के समय में भी काव्य के लिए काशी तक एक ही 'पश्चिमी भाषा' जो कि आधुनिक राजस्थानी का ही प्राचीन रूप है; बोली जाती थी और काशी से पूर्व में 'पूर्वी भाषा' काव्य के लिए प्रयुक्त होती थी। यही कारण है कि कबीर की रचनाओं में दोनों का प्रयोग मिलता है। दूसरा प्रश्न यह है कि रासो की भाषा को हम डिंगल कहें या पिंगल! डिंगल और पींगल दोनों नाम यदि हम संस्कृत और अपभ्रंश पिंगलों से दूर रह रह कर सोचें—बहुत कुछ सम-सामयिक ज्ञात होते हैं। राजस्थानी में पिंगल का जो अर्थ लिया जाता है, वह पिंगल से भिन्नता प्रकट करता है। ऐसा मानते हुए भी कि रासो की भाषा न डिंगल है और न पिंगल। यह स्पष्ट है कि वह प्राचीन राजस्थानी है; क्योंकि चंद के मूल छंदों में वे तत्व वर्तमान हैं जो आधुनिक राजस्थानी के आधार है।

भाषा की दृष्टि से भी रासो की रचना सं० १६०० के लगभग मानी गई है। उसका कारण स्पष्ट है। रासो में जन भाषाओं का प्रयोग हुआ है। वे लगभग

उसी के आस-पास की हैं। रासो में भक्तिकाल और रीतिकाल की भाषा और शैलियों का प्रयोग उसके प्रथम भाग में ही स्पष्ट हो जाता है। उसमें डिंगल और पिंगल शैलियाँ भी वर्तमान हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त भी रासो में एक भाषा है, और वह है चंद की भाषा। राजस्थानी के कई प्राचीन ग्रन्थों की विभिन्न प्रतियों में उनके रचना काल की भाषा से विकसित लिपिकाल की भाषा के रूप मिलते हैं। रासो में भी चंद की यह भाषा लिपिकाल के अनुसार विकसित होती चली आई है, जिसके उदाहरण स्वरूप आचार्य जिनविजयजी द्वारा उद्धृत वि० सं० १५०० के आस-पास के रासो के तीन छंद हैं। उनमें से एक यहां दिया जाता है।

मूल

"इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइं कइंबासह मुक्कओ,
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कओ।
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण,
एहु सुगडिदाहिमओ खणइ खुदइ सइंभरिवण।
फुडछंडि नजाइ इहु लब्भि वारइ पलकउ खलगुलह,
न जांणउं चदबलदिउ किं न बिछुट्टइ इ फलह।"

परिवर्तित

एक बान पुहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्पर थरहर्‌यौ बीर कख्खंतर चुक्यौ॥
बियो बान संधान हन्यौ सोमेसर नंदन।
गाढौ करि निग्रह्यौ खनिव गड्यौ संभरिधन॥
थल छोरिन जाइ अभागरो गाड्यौ गन गहि आगरौ।
इम जंपै चंद वरद्दिया कहा निघट्टै इम प्रलौ॥

रासौ पृ० १४६६ पद्य २३६

उपरोक्त छप्पयों में—

इक्कु बाणु	के स्थान में	एक बान
पहुवीसु (पहुवि+ईसु)	"	पहुमी नरेस
कइंबा सह	"	कैमासह
मुक्कओ	"	मुक्यौ

कक्खंतरि	"	कख्खंतर
चुक्कश्रो	"	चुक्यो
बीश्रं	"	बीश्रो
संधीउं	"	संधान
सूमेसर	"	सोमेसर
नंदग्ग	"	नंदन
खगाइ	"	खनिव
सइंलरि	"	संभरि
छंडि	"	छोरि
चंद बलद्दिउ	"	चंदवरद्दिया
कि नवि छुट्टर	"	कहानिघट्टे
इहफलह	"	इयप्रलो

होगयेहैं। इसका कारण है—

१ लिपिकार में प्रचलित रूपों को प्राचीन रूपों के स्थान में रखना; जैसे—'इंक्कुवाणु' के स्थान में 'एक बाण'।

२ उस काल की भाषा के संधि-नियमों के अज्ञान के कारण, जैसे—पहुवीसु (पहुवि+ईसु) के स्थान पर बहुमी नरेश।

३ शब्दों का अर्थ ठीक न बैठने के कारण, जैसे—'चन्दबलद्दिउ' के स्थान में 'चन्दवरद्दिया'।

४ पाठ ठीक न बैठने पर, जैसे—'किं कवि छुट्टइ इह फलह' के स्थान में 'कसा निघट्टैं इय प्रलौं'।

रासो के इन तीन छप्पयों का लिपि-काल संवत् १६०० से पूर्व होने से ही यह सिद्ध है कि इसकी रचना १६०० से पूर्व की है। यह कोई प्रमाण नहीं हो सकता कि पठित चारण भाट डिंगल में वैसी ही सुन्दर रचना करते हैं, इसलिये रासो इस काल की रचना मानली जाय। संस्कृत में आज भी सुन्दर काव्य रचना होती है, इसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि संस्कृत की प्राचीन रचनाएं आज की रचनाएं हैं।

डॉ० बूलर ने पृथ्वीराज के बन्दी राज का नाम पृथ्वीभट्ट बतलाया है, अतः उनके अनुसार चन्द नाम का कोई कवि नहीं था। पृथ्वीभट्ट पृथ्वीराज के राज-

दरबार में रहने वाले किसी कवि का उपाधि सूचक हो सकता है, नाम नहीं; क्योंकि उसका अर्थ पृथ्वीराज का भट्ट है। संस्कृत काव्य में इस प्रकार के नामों की प्रथा उस समय प्रचलित थी। रासौ में भी इस प्रकार के कई नाम वर्तमान हैं। चन्द की जो वंशावली मिलती है उसमें कई नाम ऐसे हैं, जिनकी रचनाएं रासौ में मिलती हैं—उदाहरण के लिए—

इतित्रोटक छन्द सुमन्त गुरं। दिन सात पढायो हरि गंग कुरं "३० १२१।६४ इसमें 'हरि' से हरि चन्द 'अथवा गंग' से गंग चन्द अर्थ होगा। गंग अकबर का दरबारी भाट भी रहा है। जिसने अकबर को संवत् १६२७-२८ में रासौ सुनाया था। अतः संभव है उसने 'हरि' (हरिचन्द) नामक कवि से त्रोटक छन्द की रचना सीखी हो और उसने अपनी ओर से यह थोपक जोड़ दिया हो। 'हरि' से यदि 'नरहरि' का अर्थ लिया जाय तो 'नरहरि बन्दी-'जन' संवत् १५६२-१६६७ अकबर का दरबारी कवि था, उसीको मानना पड़ेगा। 'हरिचन्द' चन्द का एक वंशज भी था।

पृथ्वीराज के ३२ लक्षणों का वर्णन रीतिकाल की शैली और भाषा में निम्नलिखित पद्य में कवि ने अपना नाम देते हुए किया है—

पाघ विराजत सीस पर, जर कस जोति निहाय।
मनो मेर के सीस पर, रहयों अहप्पति आय।

॥७५१॥३८८॥

ता पर तुररा सुभत अति, कहत साम कविनाथ।
मनु सूरज के सीस पर, धिषन धरयों धनुहाथ।

॥७५२॥३८६॥

इसमें 'सोभनाथ' 'सोमनाथ' अथवा केवल 'नाथ' होगा। अथवा किसी 'हरिनाथ' नामक कवि ने उपरोक्त त्रोटक छन्द तथा इस छन्द की रचना की हो। 'सोमनाथ' के लिये तथा 'हरिनाथ' के लिये देखो रामचन्द्र शुक्ल कृत हि० सा० इ० पृष्ठ ३४१ और ३८४। सोमनाथ माथुर ब्राह्मण था और भरतपुर के प्रतापसिंह का आश्रित कवि का, जिसका रचना काल संवत् १७६० के आस पास है। नाथ कवि काशी का गुजराती ब्राह्मण था, जिसका रचना काल १८२६ के लगभग है। एक स्थान पर युद्ध वर्णन में—

गुण कवि कथ्थं' ७।३५५।११३।७८ भी आगया है, जो गुणचन्द का द्योतक है। गुणचन्द चन्द का ज्येष्ठ पुत्र था। तथा गुणचन्द जैन आचार्यों में कोई कवि हो गया है।

कई क्षेपकों के अंत में (आगे या नीचे) 'चंद वर्णन करता है'– इस सकेत के वाक्य मिलते हैं और उसके नोचे ही चंद का छंद आ जाता है। इससे इसमें क्षेपक जोड़ने और चन्द की रचना के अश उसमें वर्तमान होना स्पष्ट प्रतीत होता है। चंद के छंद का प्रमाण यह है—

··· छंद प्रबंध कवित जति । साटक गाह दुहथ्थ ॥

···लघु गुरु मंडित खंडिय हि । पिंगल अमर भरथ्थ ॥ १ । ८१ । ३७

इसके अतिरिक्त चद ने जहां अन्य छंदों में वर्णन किया है, वहां उसने कह दिया है।

छन्द पद्धरी

उतपतिवास सामन्त चन्द । पाधरी छन्द भन्ने सु चन्द ।

१।५८५।३१६

क्षेपको में चन्द का नाम इस प्रकार आया है—

भुजंगी

तु ही तन्त्र मन्त्र, कवीचन्द वादी । १८६ ६।०७६।४

इसी के नीचे चन्द का साटक छन्द हैं—

वृद्ध नाराच

सुरं सुदेह विद्धहर। कित्ति काथ्थ चन्दयं। १८७।८६।६

इस के नीचे चन्द का कवित्त है—

एक स्थान किसी 'नाल' (संभव तया नरपति नाल्ह) का इसमें वर्णन आता है।

इति हनू फालय छंद। कल बरमि बरमि सुकन्द ।

नहि नाल पिंगल जोर। दुह हूँ तो दुज तीय भोर॥ २६।६५।५१

अतः १. रासो के सभी छंद जाली नहीं हो सकते।

२. चंद की जो वंशावली मिलती है; उसमें कई ऐसे नाम हैं, जिनके नाम की रचनाएँ रासो में वर्तमान हैं।

३. महाराणा अमरसिंह तथा अकबर ने रासो के बिखरे हुए छन्दों का संग्रह करवाया था। अतः उनके समय के कवियों की रचनाएँ इसमें होनी चाहिये। कुछ

नाम इसमें अवश्य मिलते हैं। उनकी भाषा और शैली के आधार पर रासो का बहुत सा अंश क्षेपक में चला जायगा।

४ अकबर कालीन भाषा और शैली की रचनाएँ इससे क्षेपक में हटाई जा सकती है। तथा उपरोक्त श्री मुनिजी के दिये गये कवित्त की भाषा के आधार पर चंद के छंद स्पष्ट किये जा सकते हैं।

५ इतिहास के भी कई अंश इस प्रकार क्षेपकों में चले जाने पर उसकी सचाई स्पष्ट होती है।

शोध पत्रिका, उदयपुर। चैत्र सं० २००६, भाग २, अंक १, पृष्ठ ५-११।

श्री पण्डित झाबरमल्ल शर्मा, जसरापुर

शेखावाटी के शिलालेख

शेखावाटी जयपुर राज्याधीन एक प्रान्त है। वहाँ आम्बेर जयपुर के कछवाहा राजवंश की एक बलिष्ठ एवं बहुसंख्या-विशिष्ट शेखावत-शाखा[1] का अधिकार है। शेखावतों का अधिकार स्थापित होने के अनंतर ही इस भाग का नाम शेखावाटी प्रसिद्ध हुआ। 'वाटी' पट्टी का नामान्तर है। उदयपुरवाटी, झुंझुनूवाटी, नरहड़वाटी, शिंघाना-वाटी, सीकरवाटी, फतहपुरवाटी इत्यादि। वाटियों या पट्टियों के भिन्न भागों का एक सामूहिकता सूचक नाम 'शेखावाटी' है। बासूर जो (अलवर राज्य में चला गया) तथा नाण-अमरसर और खंडेलों के इलाके भी पुरानी शेखावाटी के ही अंग हैं। कारण वहां शेखावत- वंश को ही प्रधानता है।

रामायण के समय में यह प्रदेश 'मरुकान्तार' के अन्तर्गत था और महाभारत काल में मत्स्य देश में इसकी गणना होती थी, जिसकी राजधानी होने का गौरव वर्तमान समय के बैराठ[2] को प्राप्त था। तत्परवर्ती चोहाणों के शासन-काल में

---

१. कछवाहा वंश की शेखावत शाखा का मूल पुरुष आम्बेर के १३ वें अधीश्वर राजा उदयकरण (विक्रम सम्वत् १४२३-१४४५) का प्रतापी प्रपौत्र राव शेखा हुआ। जिसने स्व-बाहुबलसे अपनी सत्ता स्थापित की। राव शेखा जोधपुर राज्य के संस्थापक वीरवर राव जोधा का समसामयिक एवं समशील योद्धा था।

२ बैराठ का ही प्राचीन नाम विराट नगर है। इसी बैराठ की समीपवर्तिनी एक पहाड़ी की चट्टान पर बौद्ध सम्राट् अशोक का खुदवाया हुआ शिला लेख मिल चुका है, जो विक्रम संवत् के प्रायः २०० वर्ष पूर्व का है। यह लेख 'भाब्रू का शिलालेख' के नाम से प्रसिद्ध है। इस लेख का महत्त्व इस बात में है कि इसमें बौद्ध ग्रन्थों के उन ७ स्थलों का हवाला दिया गया है, जिन्हें सम्राट् अशोक इस योग्य समझता था कि लोग उनकी ओर विशेष ध्यान दें।

इस प्रान्त का सपाद लक्ष[1] एवं अनन्त[2] नाम होना पाया जाता है। चोहाण, निर्वाण, मोरी, चंदेल और जोड़ इत्यादि क्षत्रिय वशों के अतिरिक्त यहां कायम खानी और नागड़ पठान भी शासन कर चुके हैं। कायम खानियों के झुन्झुनू और फतहपुर—दो राज्य थे और नागड़ पठानों का परगना 'नरहड़' था। अठारवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में शेखावत वीर शार्दूलसिंह और राव शिवसिंह ने जयपुर प्रतिष्ठाता महाराजाधिराज सवाई जयसिंह की सहानुभूति और सहायता से यहां अधिकार जमा कर अपने शेखावत उपनिवेश की सीमा बढ़ाई।

शेखावाटी[3] में जो पुराने शिलालेख मिले हैं, यहां उनका संक्षेप में परिचय देने का प्रयत्न किया जाता है:—

जिस समय अशोक ने यह शिलालेख खुदवाया था, उस समय वह कदाचित् बैराठ के किसी संघाराम में रहता था। यह शिलालेख आजकल कलकत्ते में रक्खा हुआ है। (श्री जनार्दन भट्ट लिखित अशोक के धर्म लेख, अध्याय ५ पृष्ठ ४५)।

१. डाक्टर ओझा—राजपूताने के विभिन्न भागों के प्राचीन नाम, पृष्ठ ५।

२. हर्षके पहाड़ का शिलालेख श्लोक १६ वां (एपिग्राफिया इंडिका भाग २)।

३. फरवरी, १९३५ में मेरे अनुरोध पर शेखावाटी के उन स्थानों की जो प्राचीन धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं अथवा जहाँ पुराने शिलालेख हैं, यात्रा करने का प्रसिध्द पुरातत्वविद् डाक्टर गौरीशंकरजी हीराचन्दजी ओझा, डी० लिट् साहित्यवाचस्पति महोदय ने श्रम स्वीकार किया। खेतडी खंडेला और सीकर को क्रमानुसार केंद्र बनाकर हम लोगों ने वह यात्रा की। खेतडी के तत्सामयिक सुपरिटेंडेंट मिस्टर जी० ए० कैरल (सम्प्रति लेफ्टिनेंट कर्नल), खंडेला बड़ा पाना के श्री कुमार (वर्तमान खंडेला बड़ा पाना के राजा साहब के पिता स्वर्गीयराजा) प्रतापसिंहजी और सीकर के उस समय के सीनियर आफिसर कैप्टेन डब्ल्यू टी. वेब एवं उनके सहकारी राव बहादुर पंडित मणिशंकर राजाराम त्रिवेदीजी ने अपने इतिहासानुरागवश हमारी पार्टी की यात्रा के लिये समुचित व्यवस्था करने की कृपा की थी। इस लेख में वर्णित स्थानों के शिलालेखों को अपनी उसी यात्रा में मैंने प्राचीन-लिपि-पठन-पटु श्रध्दास्पदडाक्टर ओझाजी के साथ स्वयं जाकर देखा है और इनकी छापें ली हैं।

हर्ष के पहाड़ का शिला लेख

सन् १८३४ ई० में डाक्टर जो० ई० रैंकिन तथा सार्जेंट ई० डीन ने सर्व प्रथम हर्ष-पहाड़ के शिव मन्दिर के इस शिला लेख को ढूंढ़ निकाला और दोनों सज्जनों ने इसकी अलग २ छापें लेकर सन् १८३५ ई० में बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के पास भेजी। डाक्टर रैंकिन की प्रति यद्यपि रास्ते में कट फट गयी; किन्तु मि० डीन की कॉपी ज्यों की त्यों रही और उसीको संपादनपूर्वक रेवरेंड डाक्टर मिल ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल के चतुर्थ खंड में प्रकाशित कराया। डाक्टर मिल के बाद यह शिला-लेख डाक्टर बर्जेस की सहायता से प्रो० कीलहार्न द्वारा सुसंपादित होकर एपिग्राफिया इंडिका (भाग २ पृष्ठ ११६ से १४०) में प्रकाशित हुआ।

हर्ष-पहाड़[१] के इस लेख की शिला ३॥ इंच मोटी और वर्गाकार है। शिला की चौड़ाई २ फुट ११ इच और लम्बाई २ फुट १० इंच है। लेख कुल ४० पंक्तियों में है। शिला के चारों कोनों का कुछ अंश टूट गया है और दाहिने एवं बायें हासिये भी कुछ बिगड़ गये हैं। लेख के बीच के बारह तेरह अक्षर घिस जाने के कारण पढ़ने में नहीं आते शेष अंश अच्छी तरह पढ़ा जा सकता है। अक्षरों का आकार $\frac{9}{16}$ इंच और $\frac{3}{8}$ इंच के बीच है।

लेख के आरम्भ के अक्षर बड़े और अन्तिम भाग के सबसे छोटे हैं। बीच की पंक्तियों के अक्षर भी क्रमशः नीचे की ओर छोटे होते चले गए हैं। लेख को भाषा संस्कृत है। प्रारम्भ की ३३ पंक्तियों में पद्यबद्ध प्रशस्ति

---

१ हर्ष का पहाड़—कस्बा सीकर से दक्षिण पूर्व ७ मील की दूरी पर अवस्थित है। इस पहाड़ की ऊँचाई २६६८ फुट है। पहाड़ के नीचे 'हर्ष' नाम का एक छोटा सा गांव आबाद है। सीकर से पहाड़ के नीचे तक स्वर्गीय राव राजा माधवसिंह बहादुर (सीकर) की बनायी हुई पक्की सड़क है और पहाड़ के ऊपर चढ़ने के लिये पुराने समय का खुर्रा (पत्थर जमाया हुआ रास्ता) पहाड़ की चोटी पर प्राचीन महिमान्वित श्री हर्ष देव (शिव) के मन्दिर का भग्नावशेष है, जो चोहाण-काल की शिल्प कला का नमूना है। उक्त शिला लेख भी इसी मन्दिर का है। इस समय सीकर के म्यूजियम में रक्खा हुआ है। सीकर के म्यूजियम की स्थापना मुख्यतः हर्ष के प्राचीन मन्दिर की कारीगरी के नमूनों को रक्षित रखने के लिये ही हुई है।

है, जिसका रचयिता कार्णिक का पुत्र धीरङ्ग है। प्रारंभिक १२ श्लोकों द्वारा हर्ष नाम से भगवान शंकर की, उनके वास स्थान हर्ष पर्वत का, तथा पूजा के लिये निर्मित मन्दिर की प्रशंसा की गयी है। अनन्तर १३ से ५७ वें श्लोक तक हर्ष (शिव) की आराधना कर यशस्वी एवं प्रतापी होने वाले चोहाण (चाहमान) वंशी राजाओं की वंशावली का वर्णन है, जिसके अनुसार पहला राजा गूवक (प्रथम) हुआ, जो बड़ा प्रतापी वीर था। गूवक का पुत्र चंद्रराज, चन्द्रराज का गूवक (द्वितीय) और उसका चन्दन हुआ। चंदन ने युद्ध में तोमर वंशी राजा रुद्रेण को पराजित किया। चंदन का पुत्र वाक्पतिराज का सिंहराज हुआ। इसके विषय में कहा गया है कि यद्यपि इसने लवण नामक किसी राजा के साथ संधि कर लेने के कारण तोमरों के सेनापति तथा अन्य राजाओं को हटाया था, तथापि संभवतः यह युद्ध-क्षेत्र में पराजित होकर मारा गया। इसका पुत्र विग्रहराज राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। जिस समय शिला-लेख तैयार हुआ, उस समय यही (विग्रहराज) राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। इसके समय में इसके वंश का भाग्य फिर चमक उठा। इसका एक भाई दुर्लभराज था। सिंहराज के विग्रहराज के अतिरिक्त चन्द्रराज तथा गोविन्दराज नामक दो पुत्र और थे और एक भाई था, जिसका नाम वत्सराज था।

अवशिष्ट श्लोकों का भावार्थ संक्षेप में इस प्रकार है:—अनन्त नामक देश में पञ्चार्थलाकुलाम्नाय[1] का विश्वरूप नामक एक साधु रहता था। उसका शिष्य प्रशस्त और प्रशस्त का शिष्य भावरक्त था, जिसका दूसरा नाम अल्लट था।

वह वार्गटिकान्वय सत्कुल का ब्राह्मण अल्लट, हर्ष के निकटवर्ती रणपल्लिका[2] ग्राम से सांसारिक कुल-परम्परा को छोड़कर वहां बस गया था। वह आजन्म

---

१ 'पञ्चार्थलाकुलाम्नाय' शब्द को प्रो० कीलहार्न ने पञ्चार्थल-कुलाम्नाय का पर्यायवाचक समझा है। परन्तु डॉक्टर भण्डारकर कहते हैं कि, इसे 'पञ्चार्थलाकुलाम्नाय' समझना चाहिये। विश्वरूप लाकुलीश पाशुपत संप्रदाय का कोई साधु था। 'लाकुलाम्नाय' पद मैसूर के शिलालेख में आया है और पञ्चार्थ शब्द जो उसी में जुड़ा हुआ है, इस संप्रदाय के दर्शन के लिए प्रयुक्त होता हुआ पारिभाषिक शब्द है। इसे सायणाचार्य ने सर्वदर्शन संग्रह के लाकुलीश पाशुपत दर्शन नामक प्रकरण में स्पष्ट किया है।

२ वर्तमान समय का राणोली नामक गांव।

ब्रह्मचारी, दिगम्बर, संयतात्मा, तपस्वी और त्यक्तसंसार-मोह था। उसकी शुभ बुद्धि केवल श्री हर्ष की आराधना में लगी रहती थी।

इसी अल्लट ने हर्षदेव का विभूतिमान मंदिर बनवाया जिसमें कुछ दिनों के बाद यह शिला-लेख समारोपित किया गया। अल्लट का उसके संकल्पित कामों को पूरा करने से पहले ही देहावसान होगया। इसलिये जिन कामों को उसने आरंभ कर दिया था, उनकी पूर्ति उसके शिष्य भावद्योत ने की। अल्लट के इस मन्दिर का निर्माता वीरभद्र का पुत्र चण्डशिव नामक शिल्पकार था। यह मन्दिर आषाढ़ शुक्ला १३ संवत् १०१३ का बनकर तैयार हुआ। अल्लट का देहावसान संवत् १०२७ के अन्त में हुआ। उसकी मृत्यु के समय सूर्य. सिंह राशि पर था। शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि चन्द्रवार, शुभ योग एवं हस्त नक्षत्र था।

इस शिलालेख के लेखक ने चान्द्रमास का प्रयोग न कर सौर—संक्रान्ति का व्यवहार किया है। इसके अतिरिक्त २३ वीं से ४० वीं पंक्ति तक एक तालिका[1] दी

---

१ इस तालिका के अनुसार ग्राम देने वाले राजाओं की नामावली उनके दिये हुए ग्रामों और खेतों के नामों के साथ यों है।

सिंहराज—	तुनकूपक परगने में—	(१) सिंहगोष्ठ
	पट्टवद्रक ,,	(२) त्रैकलक (३) ईशानकूप
	सर कोट ,,	(४) कागपल्लिका
		(५) कर्दमखात
वत्सराज—जयपुर नगर में (राजा का भाई) वर्तमान जयपुर से भिन्न		
विग्रहराज		(१) छत्रधारा
		(२) शंकराणक
२ ग्राम		
चंद्रराज और गोविंदराज (सिंहराज के पुत्र)	पट्टबद्रक एवं दर्भकद परगने में दोग्राम.	
धुंधक	खट्टकूप परगने में	(१) मयूर पद्र
जयनराज		(१) कोलिकूप

इसके अतिरिक्त धार्मिक पुरुषों के द्वारा दान में प्राप्त निम्नलिखित ४ क्षेत्र (खेत):—

ग्राम मद्रापुरिका में—	(१) पिप्पल क्षेत्र
,, निम्बाडिका में	(२) दर्भटिका क्षेत्र
,, मरुपल्लिका में	(३) झाटक्षेत्र
,, हर्ष में	(४) लाटक्षेत्र

गई है, जिससे ज्ञात होता है कि आषाढ़ शुक्ला १५ संवत १०३० श्री हर्षदेव के मन्दिर के निमित्त किस राजा ने कौन कौन से ग्राम दिये। यह शिलालेख चोहाण वंश के इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्व का समझा जाता है।

खंडेला के लेख

खंडेले[1] में तीन पुराने तथा उल्लेखनीय शिलालेख हैं जिनमें सर्व प्रथम वर्णनीय वह है जिसकी लिपि अशोक के शिला लेखों की लिपि से बिलकुल मिलती जुलती है। डा० ओझा के मतानुसार उसका समय ईसा से ३०० वर्ष पूर्व निर्धारित किया जा सकता है। इस शिला का दाहिनी ओर का हिस्सा टूट जाने के कारण लेख का पूरा मतलब नहीं निकल सकता किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि कोई व्यक्ति मूला के द्वारा विषैले तीर से मार डाला गया था और उसकी स्मृति उसके शिष्य माहीस ने बनवाई[2]।

दूसरा शिला लेख खंडेले के एक महाजन के मकान में पाया गया। यह लेख संवत ७०१ चैत्र शुक्ला (सन् ६४४) का एक पत्थर के टुकड़े पर खुदा हुआ है। लेख पद्यात्मक है और दाहिनी ओर के नीचे का हिस्सा घिस गया है। इस लेख में अर्धनारीश्वर शिव की स्तुति के अनन्तर लिखा है कि वैश्य जाति के विश्वविख्यात ढूसर वंश में दुर्गावर्द्धन का जन्म हुआ जिसने अपनी सम्पत्ति के द्वारा बहुत से ब्राह्मणों का सन्तुष्ट किया। उसका पुत्र गांगक और गांगक का पुत्र बोधा, बोधा का पुत्र आदित्यांग था। जिसने अर्द्धनारीश्वर का मन्दिर बनवाया। इसके बाद लिखा है कि प्रशस्ति दीक्षितभट्ट सत्यघोष ने बनाई और मण्डन ने इसकी खुदाई की।

इस शिला लेख में वर्णित ढूसर वंश अब भी राजपूताने में प्रसिद्ध हैं। इस

---

१ खंडेला—शेखावत राजा रायसल दरबारी के वंशजों का टीकाई ठिकाना। समीपवर्ती रेलवेस्टेशन रेवाड़ी–फुलेरा–कोर्ड लाइन के 'कांवट' तथा "श्रीमाधोपुर" और जयपुर स्टेट रेलवे का "पलसाना"। खंडेला पुराना कस्बा है। खंडेलवाल महाजनों एवं ब्राहमणों का निकास यहीं से है। यहां दो पाने हैं, बड़ा और छोटा। दोनों पानों के स्वामी राजा कहलाते हैं।

२ राजपूताना म्यूजियम के कार्य की सन् १९३५ की रिपोर्ट।

सम्बन्ध में डॉ० ओझा (राजपूताना म्यूजियम, अजमेर के कार्य की सन् १६३५ की वार्षिक रिपोर्ट में) लिखते हैं कि संप्रति दूसर लोग अपने को भार्गव ब्राह्मण कहते हैं, किन्तु इस शिलालेख से स्पष्ट प्रकट है कि ईसा की ७वीं शताब्दी में दूसर खानदान वैश्य (बनियां) जाति में गिना जाता था। राजपूताना म्यूजियम की सन् १६३३-३४ की वार्षिक रिपोर्ट के नम्बर (४ बी) के शिला-लेख में मैंने लिखा है कि दूसर वंशी यशोवर्द्धन का पौत्र और राम का पुत्र मण्डन 'श्रेष्ठी' अर्थात् सेठ या व्यापारी कहलाता था। शिलालेख में लिखित श्रेष्ठी पदवी वैश्यजाति के लिये ही प्रयुक्त होती है।

खंडेले का तीसरा शिलालेख विक्रम को सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग का है। यह यद्यपि पुराना नहीं है किंतु चौहाण वंश की निर्वाण शाखा के शासन-समय से संबंध रखने वाला यह पहला शिला-लेख है और इसलिये उल्लेखनीय है। इस लेख की तिथि फाल्गुन शुक्ला १३ सम्वत् १५७५ (सन् १५१८) है। इसमें लिखा है कि, कोल्हा के पुत्र अग्रवाल पृथ्वीराज, उस (पृथ्वीराज) के पुत्र राम और वाल्हा आदि ने सुलतान इब्राहीम लादी के राज्य काल में इस बावड़ी का निर्माण-कार्य आरंभ किया। उस समय खडेले का शासन निर्वाणवंशी रावत नाथूदेव था। यह कार्य १७ वर्ष के बाद मुगल बादशाह हुमायूं के समय सम्वत् १५६२ ज्येष्ठ शुक्ला में पूर्ण हुआ। लेख के कोने पर २० का यन्त्र खुदा हुआ है। लेख छिन्न-भिन्न हालत में है और यह खडेले से पलसाना रेलवे स्टेशन को जाने वाले रास्ते पर (कस्बे से १॥ मील के करीब) 'कालीबाय' नामक बावड़ी की दीवार में लगा हुआ है।

सकरायमाता के लेख

श्री सकराय[1] माता के स्थान में तीन शिलालेख हैं जिनमें सबसे पुराना लेख सम्वत् ७४६ द्वितीय आषाढ़शुक्ला २ का है। इसके आरम्भ में देवीजी की स्तुति है और तदनन्तर श्री शंकरादेवी का मण्डप बनाने वालों के नाम अंकित

---

१ सकरायमाता का स्थान खंडेले से ५ कोस पर है। उदयपुर (शेखावाटी) होकर भी रास्ता जाता है। शेखावाटी में यह सबसे प्राचीन मन्दिर सघनवृक्षाच्छादित दुर्गम पहाड़ी स्थल वृहद्द्रोणी (दो पर्वतों के बीच की घाटी) में है। किन्तु अब यात्रियों के यातायात से घिसे

किये गये हैं। मण्डप बनाने वालों में सबसे प्रथम धूसर (दूसर) वंश के श्रेष्ठी सेठ यशोवर्द्धन, उसके पुत्र राम, उसके पुत्र मण्डन तथा धरकट वंशी सेठ मण्डन, उसके पुत्र यशोवर्द्धन उसके पुत्र गर्ग और तत्पश्चात् किसी दूसरे धरक्कट वंश के भट्टीयक, उसके पुत्र वर्द्धन उसके पुत्र गणादित्य और देवल के साथ ही तीसरे धरक्कट वंशी शिव उसके पुत्र शंकर उसके पुत्र वेष्णवाक, उसके पुत्र गणादित्य आदि के नाम हैं। इन सब सेठों ने मिल कर भगवती शकरादेवी (सकरायमाता) के सामने का मण्डप अपने पुण्य वृद्धि के लिए बनवाया। अन्त में सम्वत् ७४६ द्वितीय आषाढ़शुक्ला २ का उल्लेख है।

सकराय माता के मन्दिर का दूसरा शिला-लेख निज मंदिर के उत्तरी भाग के बाहरी हिस्से में दीवार में लगा हुआ है। इस शिला-लेख के बीच का अधिकांश भाग बिगड़ गया है, जिससे पूरा आशय नहीं निकल सकता। इसमें बच्छराज तथा उसकी स्त्री दयिका के नाम पढ़े जाते हैं। वच्छराज (वत्सराज) विग्रहराज का काका था, यह हर्ष के शिलालेख से सिद्ध है। इस लेख में शंकरादेवी के मंदिर के जीर्णोद्धार का वर्णन है और अन्त में संवत्सर ५५ माघसुदि ५ लिखा है। जान पड़ता है इस ५५ की संख्या के प्रारंभ के दो अंक (एका-१ और बिन्दी-०) छोड़ दिये गये हैं। यह सम्वत् १०५५ होना चाहिये। कारण पूर्वोल्लिखित हर्ष का शिलालेख विग्रहराज के समय का सम्वत् १०३० का है।

हुए पत्थर, बाहरी दीवारें और प्रतिमाएँ ही पुरानी रहगई हैं। वर्तमान नया मन्दिर संवत् १६७२-८० में नवलगढ़ के सेठ रामगोपाल भूरामल डांगायच खंडेलवाल महाजन की श्रद्धा पूर्ण उदारता से बना है। मन्दिर के अधिष्ठाता श्री गुलाबनाथजी महाराज हैं। (खेद है कि इन नाथजी का अब देहान्त हो चुका, उनके शिष्य गद्दी पर बैठे हैं)। देवीजी के मन्दिर के पास ही श्री शंकरजी का मन्दिर भी पुराना है। मन्दिर से सट कर कल-कल-नाद करती हुई शंकरानदी बहती है। बड़ा सुन्दर एवं शांतिमय दृश्य है। इस प्रांत के पवित्र तीर्थ श्री लोहार्गल की परिक्रमा में यह स्थान भी आता है। परिक्रमा प्रतिवर्ष भाद्रकृष्णा ११ से अमावस्या तक लगती है। हजारों यात्री स्त्री-पुरुष, वृद्ध-युवा, धर्म-भावना से प्रेरित होकर परिक्रमा करते हैं। परिक्रमा का क्रम श्री लोहार्गल माहात्म्य में निर्दिष्ट है। मन्दिर से थोड़ी दूरी पर माताजी के नाम पर ही "सकराय" गाँव बसा हुआ है। श्री हर्ष के शिलालेख में वर्णित 'शंकराणक' ग्राम यही है।

तीसरा शिला-लेख सम्वत् १०५६ का जान पड़ता है। इसमें प्रारंभ के ३ अक्षर टूटे हुए हिस्से में जाते रहे हैं। तीसरा अंक ५ का होना चाहिए। क्योंकि उसकी दाहिनी ओर की खड़ी लकीर का कुछ अंश-दिखायी देता है। लेख का आशय यह है—

सम्वत् (१०५) ६ श्रावण बदी १ के दिन (महाराजा) धिराज श्री दुर्लहराज के राज्य समय श्री शिवहरि के पुत्र तथा इसी के भतोजे (भ्रातृव्याक) सिद्धराज ने शंकरादेवी का मंडप बनवाया। काम किया सेवट के पुत्र आहिल ने जो देवी के चरणों में नित्य प्रणाम करता है। प्रशस्ति खोदो बहुरूप के पुत्र देवरूप ने।

रेवासा के लेख

रेवासा[1] की मस्जिद के बाहरी आंगन में ३ पत्थर लंबे स्तम्भाकार पड़े हुए हैं। इन पर तोन वीरों के स्मारक सूचक लेख खुदे हुए हैं। प्रत्येक लेख के शिरोभाग में घोड़े पर चढ़े हुए वीर की मूर्ति बनी हुई है। ये तीनों पत्थर दूसरे स्तंभों के साथ अन्यत्र से लाकर यहाँ डाले गये हैं, ऐसा जान पड़ता है। अरक्षितावस्था में होने के कारण एक लेख तो बिगड़ भी गया है। ये तीनों ही शिलालेख चंदेलों के हैं।

इसमें एक लेख मंगसिरसुदी ११ सम्वत् १२४३ सन् (११८६) का है। इसमें लिखा है कि, राजेन्द्र पृथ्वीपालदेव के राज्यकाल में चंदेल परगना (प्रतिगणक) के अन्तर्गत खलुवाणा गांव के चन्द्रवंशी सिहराज का पुत्र नानव चंदेला दिवंगत हुआ। उसकी स्मृति जसराजक ने बनवायी।

इसके साथ का दूसरा शिलालेख भी उक्त लेख के संवत् का ही है। इसमें सैंकड़े के लिये संख्या छोड़ी हुई है। इस लेखमें भी यही लिखा है कि राजेन्द्र पृथ्वीपालदेव के राज्य-काल में दुर्लभदेव चंदेला, जो चंद्रवंशी था, चन्देल परगने के खलुवाणा गांव में मारडाला गया और यह स्मृति आसल ने स्थापित की।

---

१. रेवासा, पहाड़ की तलहटी में बसा हुआ एक पुराना कस्बा है। इससे प्राय: १॥ कोस के अन्तर पर जयपुर स्टेट रेलवे का स्टेशन 'गोरियाँ' है। रेवासा नमक की उपज के लिए भी प्रसिद्ध रह चुका है। चंदेलों का सदर मुकाम यही बताया जाता है। इस समय पर खंडेले के दोनों पानों का आधिपत्य है। यहां श्रीकल्याणजी के मंदिर में दो या तीन थंबे ऐसे लगे हुए हैं, जो १२ वीं शताब्दी के कहे जा सकते हैं। किसी बनजारन के बनाये हुए कुवे के पास बनी हुई एक छत्री भी पुरानी है, जिसके स्तंभों पर खूब गहरी खुदाई है। डा० भंडारकर के मतानुसार ये स्तम्भ १० वीं शताब्दी से इधर के नहीं हो सकते।

तीसरे लेख में उक्त खलुवाणा गांव में चन्द्रवंशी सिंहराज के मारे जाने का उल्लेख है। इसमें भी संवत् के सैंकड़ों की संख्या छूटी हुई है।

चन्देलों के इन शिलालेखों के संबंध में डाक्टर ओझा ने लिखा है कि राजपूताने में चन्देला वंश के यही तीन शिलालेख पहले-पहल मिले हैं। इन शिला-लेखों की खोज से पहले चन्देला जिला अज्ञात था। इन लेखों से यह भी प्रकट है कि ये चन्देले अजमेर के प्रसिद्ध चोहाण राजा पृथ्वीराज के अधीनस्थ सामन्त थे और किसी युद्ध में मारे गए थे। राजेन्द्र पृथ्वीपालदेव अजमेर का प्रसिद्ध चोहाण राजा पृथ्वीराज ही था।

इन लेखों के अतिरिक्त रेवासा में श्री आदिनाथ के जैन मंदिर में एक और उल्लेखनीय लेख मार्गशीर्षशुक्ला ५ गुरुवार संवत् १६६१ (सन् १६०४) का खुदा हुआ है। इसमें लिखा है कि रेवासा (रतिवासा) नगर में बादशाह अकबर के शासन-समय प्रजापालन-तत्पर कूर्मवंशावतंस महाराजाधिराज श्री रायसल के विजयराज्य में रावत गोत्रीय साह श्री देवीदास की प्रधानता में छावड़ा गोत्र के खंडेलवाल साह श्री कुन्ता, उसकी भार्या (कुनरा), उसके दो पुत्र, प्रथम पुत्र शील-शिरोमणि साह श्री जीतो, उसकी दो स्त्रियां एक जसमादे और दूसरी हर्षमदे, उसका पुत्र चिरंजीव नानिगसाह, (कुन्ता के) द्वितीय पुत्र साह शिरोमणि साह नथमल-उसकी दो स्त्रियां-पहली नवरंगदे और दूसरी लाडमदे, जिसके पुत्र चिरं-जीव छज्जमल इत्यादि-परिवार सहितने मण्डलाचार्य श्री जशःकीर्ति गुरू के उपदेश से श्री आदिनाथ-प्रासाद में पद्म शिलारोपण किया। इनमें साह जीतमल नथमल ने कर्मक्षय निमित्त यह चैत्यालय बनवाया। यह अभिलेख बादशाह अकबर के दरबारी महाराजाधिराज रायसल शेखावत के समय का है।

जीणमाता के लेख

जीणमाता[1] के मन्दिर के स्तंभों पर लेख खुदे हुए हैं। इसके अतिरिक्त सबसे पुराना लेख सं० १०२६ का खेमराज की मृत्यु का एक शिला पर है, जो एक वीर का स्मारक सूचक है।

---

१. श्रीजीणमाताजी का मन्दिर रेवासा से दक्षिण करीब २ कोस पहाड़ी के निम्न भाग में अवस्थित है। झड़-बोरियों का घना जंगल है। यात्रियों को ठहरने के लिए बहुत सी तिबारियां

दूसरा लेख सभा-मंडप के स्तम्भ पर सं० ११६२ का परमभट्टारक महाराजाधिराज पृथ्वीराज (प्रथम) के समय का है। जिसमें मोहिल के पुत्र हठड़ द्वारा मन्दिर बनाए जाने का उल्लेख है।

दो लेख (तृतीय और चतुर्थ) परम भट्टारक महाराजाधिराज अर्णोराज के समय के संवत् ११९६ के हैं।

पांचवां लेख—सम्वत् १२३० का परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री सोमेश्वर के समय का है, जिसमें लिखा है कि उदयराज के पुत्र अल्हण ने सभा-मंडप बनाया।

ये सभी लेख चौहाण राजाओं के शासन-कालके हैं।

छठा लेख सम्वत् १३८२ चैत्र सुदि ६ सोमवार का 'महमदसाहि' के राज्य-समय का है, जिसमें लोटाणी वंश के ठा० देपति के पुत्र श्री वीन्छा के द्वारा जीणमाता के मन्दिर (देहरा) का जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है। इस लेख का 'महमदसाहि' का मुहम्मदशाह तुग़लक होना चाहिए।

सातवां लेख सम्वत् १५२० भाद्रसुदि २ सोमवार का है। इसमें माणिक भंडारी के वंशज ठा० ई(स)र दास के प्रमाण करने का उल्लेख है। माणिक भंडारी माथुर कायस्थों की एक खांप है।

आठवां लेख—सवत् १५३५ शाके १३९९ आषाढ़सुदि १५ सोमवार का है, जिसमें जीणमाताजी के मंदिर के जीर्णोद्धार का वर्णन है।

और धर्मशालाएं बनी हुई हैं। वर्ष में दो बार, नवरात्रियों पर दर्शनार्थियों का मेला लगता है। 'जीण' शब्द 'जयन्ती' का अपभ्रंश है। कहा जाता है देवीजी का यथार्थ नाम जयन्ती माता है। देवी अष्टभुजी है। मन्दिर का सभा-मंडप प्राचीन है और अनुमान से वह दशवीं शताब्दी से इधर का नहीं है। चौखट बहुत पुरानी है। सभामंडप के स्तंभों के नीचे वाले भागों पर लेख खुदे हुए हैं। देवायतन के तीसरी भाग में दो दीपक—एक घृत का और दूसरा तेल का अखंड रूप से जलता है। इनका खर्च जयपुर दरबार से मिलता है। माताजी के पुजारियों के सैकड़ों कुटुम्ब हैं, जो अपने को पाराशर ब्राह्मण कहते हैं। इनके साथ २ सांभरिया खांप का एक चोहाण भी माताजी के चढ़ावे का एक हिस्सेदार है। जीण-माता का यह स्थान इस समय खंडेला की माद्य ठिकाने खूड के अधीन है। खूड के वर्तमान सरदार साधु चरित श्री ठाकुर मंगलसिंहजी साहब हैं, जो अपने शिक्षानुराग, स्वधर्मनिष्ठा, एवं स्वजाति-हितैषिता के लिये प्रसिद्ध हैं।

भुवाला का लेख

भुवाला[1] (सीकर)के जाट डालूराम पटेल के घर के चौक में रक्खे हुए एक स्तंभ पर ४ पंक्तियों का यह लेख अंकित है:—

ओंसंक्च्छर शते ६२२ लौकिक वैशाख सुदि १५ धणसिह पुत्र वासूक लोकातरीभूतः ।

यह लेख भी स्मारक सूचक है। इसमें धणसिह किस वंश का था, इसका उल्लेख नहीं है ।

रघुनाथगढ़ का लेख

रघुनाथगढ[2] (सीकर) की धर्मशाला से थोड़ी दूर पर कूवे के पास एक 'तीथम्ब' है ,जिस पर सम्वत् ११५० का चन्देल वंशी राजा के राज्य-काल का लेख खुदा हुआ है ।

इस लेख का उल्लेख करते हुए डॉ० भंडारकर कहते हैं कि यह लेख व्यक्त करता है कि, यहां की वे सब दन्त कथाएँ सत्य हैं, जो इस प्रदेश का किसी समय चंदेल राजपूतों केअधिकार में रहना बतलाती हैं ।

---

१ भुवाला सीकर इलाके का एक छोटा गांव है ।

२ रघुनाथगढ़ सीकर से उत्तर पूर्व १४ मील की दूरी पर है । जन साधारण में यह 'खोह' नाम से भी परिचित है । 'खोह' नाम का कदाचित् यह कारण हो कि दो पहाड़ियों से बनी हुई प्राकृतिक गुहा में यह अवस्थित है । सीकर के भूतपूर्व राव देवीसिंहजी ने यहां पहाड़ पर एक किला बनवाया । (उन्हीं के नाम पर किले का नाम देवगढ़ पड़ा) रघुनाथगढ़ में श्री रघुनाथजी के दो मंदिर हैं—एक किले पर और दूसरा गांवमें । गांवमें एक पुराना—दुबारा बनाया हुआ महादेव का मन्दिर है , जिसकी बनावट से वह १८ वीं शताब्दी का बना प्रतीत होता है । मन्दिर से कुछ दूर महिषासुरमर्दिनी की एक स्फटिकमयी प्रतिमा है । सीकर ने रघुनाथ गढ़ खंडेलावालों से लिया और खंडेलावालों ने शेखावतों की ही अन्यतम शाखाके 'टकणेतों' से । अलखाजी के द्वारा दिये हुए पट्टों में अब तक टकणेतों की यादगार सुरक्षित है ।

नरहड़ का लेख

नरहड़[१] में प्राप्त एक आठ पंक्तियों का शिलालेख जो इस समय बिड़ला कॉलेज (पिलानी) के संग्रहालय में रखा हुआ है—मार्ग बदी १५ संवत् १२१५ का है। यह भी एक स्मारक सूचक लेख है। इसमें लिखा है कि श्री श्रीचन्द्र के पुत्र वील्हण का पुत्र ताल्हण स्वर्गलोक को गया। उसका देहरा परम भट्टारक महाराजाधिराज श्रीमद्विग्रहराजदेव के राज्य-काल में श्री सोमदेव के द्वारा बनाया गया।

इस लेख के ऊपर भी स्वर्गीय वीर की मूर्ति खुदी हुई है।

---

१ नरहड़ चिड़ावा और पिलानी के बीच एक प्राचीन चोहाण काल का कस्बा है, जो अब एक गांव के रूप में ही रह गया है। मुगल-शासन काल में यह नारनोल की सरकार के अधीन एक महाल (परगना) था, जिसके मालिक नागड़ पठान थे। लोदी पठानों की बादशाहत के समय नागड़ पठानों का नरहड़ पर अधिकार हुआ था। १८ वीं शताब्दी में अन्तिम भाग से यह शार्दूलसिंह शेखावत के वंशजों के अधिकार में चला आता है। नरहड़ हजरत पीर "हाजिब शकरवार" की दरगाह की जियारत के लिये मशहूर है।

(२)

चौहानों के अग्निवंशी कहलाने का आधार

चौहान क्षत्रिय अपनी वीरता के लिये भारतवर्ष के अतीत काल के इतिहास में बड़ी प्रसिद्धि पाचुके हैं। जिन वंशों को यहां सम्राट् के पद पर आरूढ़ होने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, उनमें चौहान-वंश भी एक प्रमुख वंश है। दिल्ली के अन्तिम हिन्दू-सम्राट् वीरवर पृथ्वीराज, जिन ने मुहम्मद गोरी की प्रबल पराक्रांत सेना को सात बार लड़ाई के मैदान से भाग जाने के लिए विवश किया था, इसी चौहान वंश के गौरव-रवि थे। अपने हठ के लिए प्रसिद्ध दृढ़ प्रतिज्ञ वीर हम्मीर चौहान वंश की ही विभूति थे, जिनने अलाउद्दीन खिलजी के हृदय को अपनी वीरता से विकम्पित कर दिया था। राजस्थान-इतिहास के अमर लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है–चौहान-वंश अग्नि कुलों में ही नहीं, प्रत्युत समस्त राजपूत जाति में सबसे अधिक वीर हैं। यद्यपि छत्तीस कुलों में से प्रत्येक की वीरता के बहुत काम लिखे जा सकते हैं, जो इतिहास के बहुसंख्यक और भिन्न-भिन्न वीरताओं की घटनाओं से पूरित पृष्ठों में किसी जाति के वीरों के चरित्र से कम न जचेंगे और यद्यपि 'राठोड़ों की तलवार' इस बात पर विवाद करने को तैयार होगी, तथापि परस्पर योग्यता का विचार कर पक्षपात-रहित निर्णय करने से चौहान लोग युद्ध-विषयक जीवन में सबसे प्रधान जान पड़ेंगे।

चौहानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इतिहासज्ञ विद्वानों में बड़ा मत भेद पाया जाता है।

(१) पृथ्वीराज-रासो के अनुसार-आबू को अचल देख कर महर्षि वशिष्ठ ने प्रसन्न हो वहां जप तप पूर्वक निवास किया और अन्य ऋषियों को यज्ञके लिये बुलाया। यज्ञानुष्ठान का होना सुन कर वहां दानव लोग भी एकत्र होगये। ऋषियों ने अग्नि कुण्ड रच कर ब्रह्म कर्म आरम्भ किया; परन्तु दैत्यों ने मूत्र, विष्ठा, रक्त-मांसादि डाल कर यज्ञ को भ्रष्ट कर दिया। इस पर ऋषियों ने संतापित होकर वशिष्ठजी की सेवा में उपस्थित हो प्रार्थना की। वशिष्ठजी ने ध्यान लगा कर हवन किया, उससे प्रतिहार चालुक्य और परमार–उत्पन्न हुए। इन तीनों पुरुषों ने राक्षसों से युद्ध किया। फिर भी राक्षसों का उपद्रव शान्त न हुआ। तब वशिष्ठजी ध्यान लगा

---

१ टॉड–राजस्थान, प्रथम खण्ड, प्रकरण ७।

कर फिर कुण्ड-रचना-पूर्वक स्वयं यज्ञ के लिए बैठे, जिसके प्रभाव से अग्नि कुण्ड से चाहुवान उत्पन्न हुआ।[1]

ऋषियों ने चाहुवान का स्वरूप चार हाथ, देखकर उसको चाहुवान कहा और आशापूरा देवी का स्मरण किया कि चाहुवान को राक्षसों से युद्ध करने की शक्ति दे। देवी ने प्रत्यक्ष होकर चाहुवान को राक्षसों से युद्ध करने में सहायता दी। फलतः राक्षस लोग रसातल को भाग गये। देवी ने चाहुवान को आज्ञा दी कि मुझे अपनी कुल-देवी मानो। तदनुसार चाहुवान ने देवी को अपने वंश भर की कुल देवी मानना स्वीकार किया। देवी उन्हें वह देकर पधार गयी और वशिष्ठजी ने चाहुवान को आशीर्वाद दिया।[2]

(२) कर्नल टॉड ने भी पृथ्वीराज रासो के आधार पर ही चौहानवश की उत्पत्ति लिखी है। परन्तु साथ ही उन्होंने अपनी कल्पना भी दौड़ायी है। वे कहते हैं—

"परमार, पड़िहार, चालुक वा सोलंकी और चौहान अग्निवंशी हैं। उनके रूपक मय इतिहास की स्पष्ट व्याख्या करने से मालूम होता है कि, ब्राह्मणों ने अपनी तरफ़ से युद्ध करने के लिए इन अग्नि कुल जातियों का केवल संस्कार मात्र करके परिवर्तन किया था और इनके सबसे प्राचीन शिलालेख पाली लिपि में हैं; जो जहां बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार था, वहां मिले हैं। उनमें उनको तुष्टा वा तक्षक वंश का होना बतलाया है, अतएव अग्निकुल का इसी जाति में होने का

---

१. अनलकुंड किय अनल मज्ज उपगार सर,
कमलासन आसनह मंडि जग्योपवीत जुरि।
चतुरानन स्तुतिसद्द मंत्र उच्चार सार किय,
सुकरि कमंडल बारि जुजति आह्वान थान दिय॥
जा जग्नि पानि अब अहुति जजि मजि सुदुष्ट आह्वान करि,
उपज्यो अनल चहुवान तब चव सुबाहु असिवाह धरि॥
भुज प्रचंड चव च्यार मुख, रक्त बन्न तन तुंग।
अनल कुंड उपज्यो अनल चाहुवान चतुरंग॥
पृथ्वीराज रासो, रूपक १३२-३, छंद २५५-६।

२ पृथ्वीराज रासो (काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित), भाग पहला पृष्ट ४६ से ५१ तक।

हमारा कथन पुष्ट होता है, जिस (जाति) ने ईसा के करीब दो शताब्दियों पहले भारत पर आक्रमण किया था। इसी समय के लगभग २३ वां बुद्ध पार्श्व भारत में प्रकट हुआ था"।

इतिहास की कसौटी पर कसी जाने पर टॉड साहब की उक्त धारणा प्रमाण मूलक नहीं, किन्तु कल्पनाप्रसूत ही प्रतीत होती है। आप के मत से तक्षक जाति ने ईसा के दो शताब्दियों पहले भारतवर्ष पर हमला किया था, जिसका कि अग्नि-कुल-वंशधर है। परन्तु वहीं उसी समय पार्श्व का भारत में प्रकट होना आप बतलाते हैं। इसी से आपके मत का खण्डन हो जाता है। क्योंकि जैनियों के २१ वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ, जिनको आपने बुद्ध लिखने की भूल की है, ईसाके ६५० वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे, यह प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध पुरातत्वविद् रायबहादुर महामहोपाध्याय डा०गौरीशंकर हीराचंद ओझा के शब्दों में ब्राह्मणों ने अपनी तरफ से युद्ध करने के निमित्त अग्निकुल की इन जातियों का केवल संस्कार मात्र से परिवर्तन किया था ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है और तुष्टा (त्वष्टा) शब्द से तक्षक मानना भी पूरा भ्रम है। उसका अर्थ तक्षक नहीं विश्वकर्मा है। परमार, पड़िहार, सोलकी और चौहानों के प्राचीन शिलालेखों में उनका तक्षक-वंशी होना कहीं नहीं लिखा। केवल चित्तौड़ के पास के मानसरोवर के लेख में टॉड साहब 'त्वष्टा" शब्द होना बतलाते हैं, परन्तु उस लेख का न तो इन चार वंशोंसे कोई सम्बन्ध है (वह लेख मोरियों का है) और न वह टॉड साहब के गुरु से ठीक ठीक पढ़ा ही गया था[१]। अस्तु।

(३) बून्दी के स्वर्गीय महाराजा रामसिंहजी बहादुर के आश्रित-कवि शिरोमणि कविराजा सूर्यमल्लजी ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वंशभास्कर' में आबू के साथ-साथ संक्षेप में चौहानों की उत्पत्ति लिखी है। परन्तु वह भी अग्निवंश

---

१ टॉड राजस्थान इतिहास (खड्गविलास प्रेस बांकीपुर द्वारा प्रकाशित) के ७वें प्रकरण पर रा० ० म० म० डाक्टर ओझा कृत टिप्पण नं० ६१ और ६२।

कर्त्ता को राजपूताने का इतिहास मालूम नहीं था। काव्यदृष्टि से उसकी पुस्तक प्रशंसनीय हो सकती है, परन्तु उसमें जो इतिहास लिखा है, उसमें से थोड़ा हिस्सा ही ठीक है, बाकी सब कल्पित है। चौहानों के अग्निवंशी माने जाने का शायद यह कारण हो कि पृथ्वीराज रासो के कर्त्ता को परमारों की उत्पत्ति की कथा मालूम होने से उसमें कुछ फेर-फार करके उसने चौहानों को अग्निवंशी ठहरा दिया हो, अथवा अजमेर का राजा **अर्णोराज**, जिसको **आनाक, आना, आनलदेव और अग्निपाल** भी कहते थे, बड़ा प्रतापी हुआ, जिससे संभव है, उसके वंशज अनलोत या अनलवंशी कहलाये हों और अनलअग्नि का नाम होने से पृथ्वीराज रासो के कर्त्ता ने वा किसी अन्य ने इनको अग्निवंशी लिख दिया हो और इसीसे इनका अग्निवंशी होना सिद्ध हो गया हो तो आश्चर्य नहीं[1]।"

अपना यह मत ओझाजी ने संवत् १६६८ तदनुसार सन् १६११ ई० में प्रकाशित 'सिरोही राज्य के इतिहास' में व्यक्त किया था। उस समय चौहानों को अग्निवंशी न मान कर भी वे किस वंश के हैं, इस विषय में कोई स्पष्ट सम्मति प्रकट नहीं की थी, किन्तु उसके बाद की शोध में उन्हें कई शिलालेखों और दान पत्रों के अलावा डाक्टर बूलर का परिश्रमोपलब्ध 'पृथ्वीराज विजय' मिलगया, जिसका सम्पादन भी उनने स्वयं किया है। इस महाकव्य की रचना काश्मीर के पण्डित जयानक ने अन्तिम हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के समय में ही की थी। इसमें चौहानों को जगह-जगह सूर्यवंशी बतलाया है[2]। अतएव प्रमाण परतन्त्र ओझाजी चौहानों को अग्निवंशी न मान कर सूर्य वंशी ही मानते हैं।

प्रस्तुत विषय पर मुझे भी चौहानों की अन्यतम शाखा **भदौरियों** के इतिहास की खोज करने के प्रसंग में कुछ विचार करने का अवसर मिला है। मेरी राय में पृथ्वीराज रासो के रचयिता का अपने काव्य-ग्रन्थ में चौहानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपनी कल्पना से काम लेकर अर्बुदगिरि के यज्ञ की कथा रच डालना संभव है और यह भी संभव है कि परमारों की उत्पत्ति की कथा ही

---

१ सिरोही राज्य का इतिहास, पृष्ठ १६१।

२ काकुत्स्थमिक्ष्वाकु, रघू च यद्दधत्
पुराऽभवत् त्रिप्रवरं रघोः कुलम्॥

पृथ्वीराज विजय, सर्ग २, श्लोक ७१।

उसकी कल्पना का आधार हो। मैं भी श्री ओझाजी के उपस्थित किये हुए प्रमाणों के विचार से चौहानों को महर्षि वशिष्ठ से कोई सम्बन्ध नहीं मानता; परन्तु उनका वत्स-गोत्री होना केवल टॉड साहब ने ही नहीं, बल्कि शिलालेख[1] के आधार पर ओझाजी ने भी स्वीकार किया है और स्वयं चौहान भी अपने को अग्निवंशी वत्स गोत्री मानते हैं। वह वत्स गोत्र ही बतलाता है कि चौहानों का अग्निवंश से आदि और अविच्छिन्न सम्बन्ध है। अब इसके कारण पर विचार कीजिये।

हिन्दुओं के यहाँ ८ बड़े गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि हो गये हैं—(१) विश्वामित्र, (२) भृगु, (३) भारद्वाज, (४) गौतम, (५) अत्रि, (६) वशिष्ठ, (७) कश्यप और (८) अगस्त्य। इनमें से भृगु गोत्र की ७ शाखाओं (वत्स, विद्, आर्ष्टिषेण, यास्क, मित्र-युव, वैन्य और शुनक[2]) में से एक 'वत्स' शाखा है।

जब वत्स गोत्र के आदि पुरुष महर्षि भृगु बतलाये गये हैं, तब यह देखना चाहिए कि भृगु किस वंश के हैं। इसके लिए मनुस्मृति का वचन है-

इदमूचुर्महात्मानं अनल-प्रभवं भृगुम्[3]।

इसमें भृगु का विशेषण अनल-प्रभव स्पष्ट है। इस सम्बन्ध में केवल मनुस्मृति ही नहीं श्रुति भी साक्षी देती है-

तस्ययद्रेतसःप्रथमं देदीप्यते तद्सावादित्योऽभवत्। यद्वीतीयमासीद् भृगुः।

[अर्थात् उसकी शक्ति (रेतस्=वीर्य) से जो पहला प्रकाश (अग्नि) हुआ, वह सूर्य बन गया और दूसरा हुआ उसी का भृगु।

इसी प्रमाण से भृगु को 'अनल-प्रभव' कहा गया है। इस प्रकार भृगु, अग्नि-वंशी हुए और भृगु वंशी हुए वत्स। वत्स गोत्री हैं चौहान। अतएव चौहानों के अग्निवंशी कहलाने में कोई तात्त्विक आपत्ति दिखलायी नहीं देती। सूर्य भी अग्नि का ही एक भाग है। राजस्थान के महाकवि कविराजा सूर्यमल्ल जी मिश्रण के शब्दों में—

"तेज तत्त्व एकत्व करि नहिं विरोध तहं जाति।"

राजस्थानी, कलकत्ता (त्रैमासिक)

अक्टूबर १६३६, भाग ३, अंक २ पृ० १-८

---

१ आबू में अचलेश्वर के मन्दिर का राव लुंभा का विक्रम संवत् १३७७ का शिलालेख।

२ गोत्र प्रवर निबन्ध कदम्बम्; भृगुकाण्डम्, पृ० २३-२४।

३ मनुस्मृति, अध्याय ५, श्लोक १।

श्री कुँवर देवीसिंह, मंडावा

सामंतसिंह ही रासो के समरसिंह और उसके बाद चित्तौड़ पर कुतूबूद्दीन का अधिकार

भारत के अन्तिम हिन्दू-सम्राट् वीरवर पृथ्वीराज चौहान हुए। इनकी वीर गाथाओं से भारत का बच्चा बच्चा परिचित है। देश के अनेक राजा इनकी सामन्त श्रेणी में रहते थे। मेवाड़ में रावल समरसिंह जिनका विवाह, इनकी बहिन पृथाबाई से हुआ था। यह भी पृथ्वीराज के पास रहा करते थे। शाहबुद्दीन गौरी से लड़ाई के मैदान में, जब भारत सम्राट् का अन्तिम युद्ध हुआ तो रावल समरसिंह भी देश के लिए लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुए। पृथ्वीराज के समय का विस्तृत विवरण, उनके राज कवि वीरवर चन्द वरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' नामक ग्रन्थ में लिखा है। उसके पश्चात् समय समय पर अन्य कवियों ने अपनी ओर से बहुत सा विवरण रासो में बढ़ा दिया[1] 'राजस्थान का इतिहास' के ले० माननीय विद्वान् गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने अनेक कारणों से इस ग्रन्थ को ऐतिहासिक खोज के लिए अनुपयुक्त माना है। इन अनेक कारणों में से मेवाड़ के रावल समरसिंह का पृथ्वीराज की मृत्यु से १०६ वर्ष पश्चात् प्रस्तुत होना भी एक कारण है[2]।

---

१ पं० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४१ ', डिंगल में वीर रस' श्री मोतीलालजी मेनारिया पृ० ७।

२ रा० इ० औ० भाग १ पृष्ठ ४५८।

ओझाजी मानते हैं कि मेवाड़ के रावल समरसिंह का पृथ्वीराज के समकालीन होना, पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई से उनका विवाह होना और पृथ्वीराज के साथ तराई के द्वितीय युद्ध में विक्रम संवत् १२४६ ई० ११९२ में मारा जाना आदि सारी बातें गलत हैं। क्योंकि समरसिंह का अन्तिम शिलालेख वि० सं० १३५६ ज्येष्ठ कृष्णा १० का कांकरोली स्टेशन से अनुमानतः ८ मील दूर दरीबा गाँव की खान के पास वाले माता के मन्दिर के स्तम्भ पर है। इस प्रकार पृथ्वीराज और समरसिंह, जिस युद्ध में मारे गए, माने जाते हैं; उससे १०६ वर्ष पश्चात् समरसिंह का जीवित रहना शिलालेखों के सिद्ध होता है।

ओझाजी यह मानते हैं कि पृथाबाई का विवाह समरसिंह से होना 'पृथ्वीराज रासौ' और 'राज प्रशस्ति' महाकाव्य में भी मिलता है[1]। परंतु उक्त पृथ्वीराज बहिन का विवाह रावत समरसिंह के साथ होना किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता है; क्यों कि ऊपर बताया जा चुका है कि सम्राट पृथवीराज की मृत्यु के १०६ वर्ष पश्चात् रावल समरसिंह प्रस्तुत थे। वे मानते हैं कि पृथाबाई पृथ्वीराज दूसरे की बहिन थी। पृथ्वीराज द्वितीय के तीन शिलालेख प्राप्त हुए हैं। संवत् १२२४-२५ और १२२६ तथा मेवाड़ के रावल सामन्तसिंह के समय के अभी तक दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं। एक विक्रम सं० १२२८ फाल्गुन शुक्ला ७ का, जो डूंगरपुर सीमा से मिले हुए मेवाड़ के छप्पन जिले के जगत नामक गांव में देवी के मंदिर के स्तम्भ पर खुदा हुआ है, दूसरा वि० सं० १२३६ का डूँगरपुर राज्य में सोजल गांव से लगभग डेढ़ मील दूर, वीरेश्वर महादेव की दीवार में लगा हुआ है। इस परिस्थिति में यह दोनों कुछ समय के लिये समकालीन थे। इस प्रकार पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के राजा सामन्तसिंह से हुआ। ख्यातों में सामन्तसिंह के बजाय समन्तसिंह भी नाम मिलता है।[2] सामन्तसिंह और समरसिंह का नाम परस्पर बहुत कुछ मिलते है इसलिये एक स्थान पर दूसरे का व्यवहार हो जाता कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं। डूँगरपुर की ख्यात में भी पृथा बाई का सम्बन्ध सामन्तसिंह के साथ लिखा है।[3]

---

१ राजपूताने का इतिहास ओझा भाग १ पृ० ४५८

२ राजपूताने का इतिहास ओझा भाग १ पृ० ४५८

३ राज प्रशस्ति सर्ग ३

इस प्रकार ओझाजी ने समरसिंह को पृथ्वीराज के समकालीन नहीं माना है। वह तो बिलकुल शिलालेखों से साफ है। उन्होंने यह माना है कि "रावल सामन्तसिंह का ख्यातों में नाम समन्तसिंह मिलता है।" समन्तसिंह और समरसिंह में सिर्फ 'त' और 'र' का ही फर्क है, जो किसी समय एक से दूसरे नकल करते समय 'त' के स्थान पर 'र' मँड कर समरसिंह नाम प्रसिद्धि में आ सकता है। इससे साफ जाहिर होता है कि रावल सामन्तसिंह ही रासो के समरसिंह हैं।

ओझाजी राजपूताना के इतिहास में सामन्तसिंह का वर्णन करते हुए लिखते हैं—"अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज द्वितीय (पृथ्वीभट्ट) की बहन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समन्तसिंह (सामन्तसिंह) से हुआ।"

"इसके बाद वे लिखते हैं कि सामन्तसिंह से मेवाड़ का राज्य किसी शत्रु के छीन लेने पर उसने बागड़ में जाकर अपना नया राज्य स्थापित किया।"

इसका प्रमाण ओझाजी ने, सामन्तसिंह के डूँगरपुर की सरहद से मिले हुए एक शिलालेख से दिया है। उन्होंने ऐसा मान लिया कि सामन्तसिंह से मेवाड़ का राज्य छूट जाने पर वह डूँगरपुर की तरफ गया, इसीलिए उसका वहाँ शिलालेख मिला। परन्तु वास्तव में मेवाड़ का राज्य उत्तरी बागड़ तक फैला हुआ था। कई इसके प्रमाण हैं। इसका सबसे ठोस प्रमाण भर्तृभट्ट दूसरे का वि०सं० ६६६ सावण सुदि १ का शिला लेख है, जो प्रतापगढ़ से मिला है। इस शिलालेख को देखकर ओझाजी ने 'राजपूताने' के इतिहास में यह माना है कि भर्तृभट्ट दूसरे का राज्य प्रतापगढ़ तक फैला हुआ था[1]। इससे यह साफ है कि जब भर्तृभट्ट के शिलालेख के प्रतापगढ़ में मिलने से वहाँ तक उसका राज्य माना जाता है। दूसरी तरफ सामन्तसिंह का शिलालेख डूँगरपुर में मिलने पर, उसका मेवाड़ छूटने पर उधर आना मानते हैं। यह बात बैठने वाली नहीं है।

ओझाजी की यह विचारधारा मुहणोत नैणसी की ख्यात से हुई है। नैणसी ने लिखा है। "समन्तसिंह (सामन्तसिंह) ने अपने छोटे भाई कुमारसिंह की सेवा से प्रसन्न होकर उसे मेवाड़ का राज्य दे दिया। राणा को उपाधि दी।"

---

१ राजपूताने का इतिहास ओझा भाग १ पृ० ४२५।

२ रा० इ० ओ० भाग १ पृ० ४५४।

आगे वह लिखता है कि "चित्तौड़ छोड़ कर रावल सामन्तसिंह ने वागड़ देश पर अपना अधिकार कर लिया।"

संवत् १५५७ का कुम्भलगढ़ के लेख में लिखा है कि "कुमारसिंह ने शत्रु को निकाल कर आधारपुर प्राप्त किया और खुद राजा होगया।" इस लेख के अनुसार नैणसी का यह लिखना कि सामन्तसिंह ने अपने छोटे भाई को राज्य दिया, गलत सिद्ध होता है।

ओझाजी ने इसमें से रावल सामन्तसिंह का बागड़ में जाना तो ले लिया और उसका जो कारण है कि प्रसन्न होकर चित्तौड़ का राज्य अपने छोटे भाई को दे गए।" उसके लिये लिखते हैं कि:- "मुहणोंत नैणसी ने इस घटना के ५०० वर्ष बाद पुस्तक लिखी है, जिस कारण यह गलत लिखा गया[1]" एक पुस्तक के एक प्रसंग के आधे हिस्से को सही तथा आधे को गलत मानना तर्क संगत नहीं है। उसमें जो लिखा है कि उसने अपने छोटे भाई को राणा का खिताब दिया। यह भी गलत है। क्योंकि मेवाड़ का इतिहास जाननेवालों के लिये यह बिल्कुल सिद्ध है कि मेवाड़ के स्वामी बापा से लेकर सामन्तसिंह, उसके छोटे भाई कुमारसिंह और इसके पश्चात् उसकी छटी पुश्त रत्नसिंह तक रावत ही कहलाये। राणा तो सामन्तसिंह के दादा कर्णसिंहके छोटे पुत्र माहप और राहप और उनके वंशज कहलाये। इन्हें सीसोदा की जागीर मिली थी। यह मेवाड़ के सामन्त थे। रावत रत्नसिंह के वि० सं १३६० में अलाउद्दीन से युद्ध करके निःसन्तान काम आजाने पर राणा शाखा में से हम्मीर ने चित्तौड़ पर फिर से अधिकार किया और तब से ही मेवाड़ के स्वामी राणा कहलाने लगे।

इन दोनों ही कारणों से हम नैणसी के इतिहास के प्राचीन भाग को प्रमाणित नहीं मान सकते। मालूम होता है कि ओझाजी ने सामन्तसिंह के मेवाड़ से बागड़ जाने का खयाल नैणसी की ख्यात से लिया। मेवाड़ के विस्तृत राज्य के कारण सामन्तसिंह का उत्तरी बागड़ की सीमा से जो शिलालेख मिला, उसे इस विचारधारा की पुष्टि-प्रमाण मान लिया।

ओझाजी ने पृथाबाई को पृथ्वीभट्ट की बहिन माना है। पृथ्वीभट्ट के तीन शिलालेख प्राप्त हुए हैं। पहला १२२४ का, दूसरा १२२५ का तथा तीसरा १२२६ का। इसके पश्चात् सोमेश्वर १२३६ तक राजा रहे। १२३६ से १२४६ तक सम्राट्

---

१ रा० इ० ओ० भाग १ पृ० ४५४।

पृथ्वीराज रहे। पृथ्वीराज द्वितीय के समय के दो वर्ष पश्चात सामन्तसिंह का प्रथम शिला लेख प्राप्त होता है। सोमेश्वर के यह पूर्ण समकालीन थे। सोमेश्वर महाराज आनाजी के द्वितीय पुत्र थे। इस लिये जब वे गद्दी पर बैठे, उनकी अवस्था भी काफी थी। इससे यही प्रकट होता है कि पृथाबाई सोमेश्वर की पृथ्वीराज से बड़ी लड़की होगी। पुरानी बातों के अनुसार भी यह पृथ्वीराज की बहिन मानी जाती है। ओझाजी ने पृथाबाई को पृथ्वीभट्ट की बहिन माना है। परंतु उस की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया है।

चौहान नरेशों का सम्बन्ध जानने के लिए नीचे आनाजी (अर्णोराज) से उनका वंश वृत्त दिया जाता है।

अजमेर के चौहानों का वंश वृत्त।
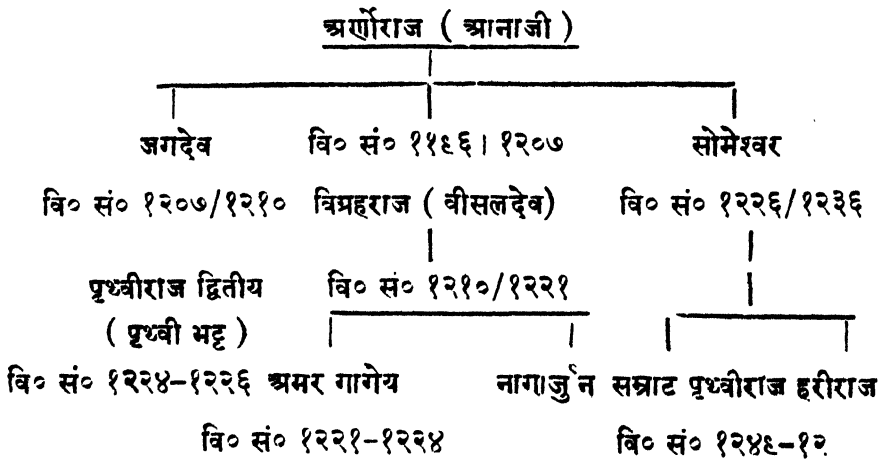
ऐसा ओझाजी ने माना है कि 'सामन्तसिंह' से मेवाड़ का राज्य किसी शत्रु ने छीन लिया। मेवाड़ छूट जाने के पश्चात् सामन्तसिंह ने बागड़ में जाकर नया राज्य स्थापित किया। इनके छोटे भाई कुमारसिंह ने अपना पैतृक राज्य वापिस छीना। ओझाजी ने इसका प्रमाण रावल समरसिंह के वि० सं० १६४२ के लेख से दिया है। लेख इस प्रकार है "उस (क्षेमसिंह) से कामदेव से भी अधिक सुन्दर शरीर वाला राजा सामन्तसिंह उत्पन्न हुआ। जिसने अपने सामन्तों से सर्वस्व छीन लिया। इसके पीछे कुमारसिंह ने इस पृथ्वी को, जिसने पहिले कभी गुहिलवंश का वियोग नहीं सहा था याने शत्रु के हाथ में चली गई थी, फिर छीन

कर राजवंती बनाया[1]।" इस लेख से यही विदित होता है कि सामन्तसिंह के पश्चात् कुमारसिंह ने मेवाड़ के राज्यको वापिस लिया। इससे यह कतई मालूम नहीं होता कि राज्य सामन्तसिंह के समय में गया या उनकी मृत्यु के पश्चात्। सामन्तसिंह का विवाह अजमेर के चौहानों के यहां हुआ था। इसलिए यदि सामन्तसिंह के समय में कोई शत्रु उनसे राज्य छीन लेता तो चौहान उनकी सहायता करते। परन्तु चौहान वंश के इतिहास में यह कहीं नहीं मिलता। चौहान उस समय बहुत शक्तिशाली भी थे। इन बातों को देखते हुए यह विचार होता है कि यह सामन्तसिंह सम्राट पृथ्वीराज के पास रहा करते थे। जो पृथ्वीराज तथा गौरी के अंतिम युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुये। उनकी मृत्यु के पश्चात् शत्रुओं ने उनके पुत्र से मेवाड़ को छीन लिया। उस समय चौहान भी उनकी सहायता करने योग्य नहीं थे। उनके पुत्र छोटे होने के कारण वहां से बाहर चले गए। और उनके भाई ने शक्ति एकत्रित करके मेवाड़ को वापिस विजय किया।

ऐसा कोई प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हुआ, जिससे यह कहा जासके कि सामन्तसिंह ने और उनके पुत्र जेतसिंह ने बागड़ प्रदेश को विजय किया हो। सामन्तसिंह के वि० सं० १२३६ का डूङ्गरपुर राज्य में बोरेश्वर महादेव की दीवार में लगे हुए शिलालेख के कारण ओझाजी ने इनका बागड़ में (डूंगरपुर) जाना मान लिया है। परन्तु इनका वि० सं० १२२८ फाल्गुन सुद ७ का जगत नामक ग्राम का शिलालेख भी डूंगरपुर राज्य की सीमा से बहुत समीप है। इन दोनों शिलालेखों से तो यही निश्चित होता है कि बागड़ का उत्तरी हिस्सा भी इनके समय मेंवाड़ के अधिन था। उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध तालाब जयसमुद्र के बाँध के निकटवर्ती वीरपुर (गातोड़ा) ग्राम में वि० सं० १२४२ कार्तिक शुक्ला १५ के दान-पत्र और डूँगरपुर के बड़ा दीवड़ा नाम के शिवमूर्ति के आसन पर वि० सं० १२५३ के लेख से यह साफ विदित होता है कि सं० ४२ से लेकर ५३ तक वहां गुजरात के सोलंकियों का अधिकार था। इससे यह तो साफ होता है कि सामंतसिंह ने बागड़ में राज्य स्थापित नहीं किया। जगदीशसिंह गहलोत ने अपने राजपूताने के इतिहास में यह माना है कि सं० ३६ से ४२ तक सामन्तसिंह ने बागड़ में राज्य

---

१ 'इन्डियन एण्टीक्वेरी जिल्द' १६ पृष्ठ ३४६.

किया हो और ४२ में सोलंकियों के बागड़ छीन लेने पर सम्राट पृथ्वीराज के पास चले गए। वहां शाहबुद्दीन गौरी से लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुए[1]। परन्तु यह नहीं मान सकते कि पृथ्वीराज अपने बहनोई सामन्तसिंह का राज्य दिलवाने बिना रह जाते, क्योंकि उस समय सारा हिन्दुस्तान सम्राट पृथ्वीराज की धाक मानता था। इन बातों से यह प्रतीत होता है कि यह पृथ्वीराज के साथ तराई के युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए। उनके पश्चात इनके हाथ से मेवाड़ का राज्य निकल गया।

ख्यातों में लिखा है कि सामन्तसिंह के पौत्र सीहड़देव ने बागड को विजय किया। उनके लिखे लेखों में उनके महारावल और महाराजाधिराज की उपाधि मिलती है।

अब यह समस्या आती है कि मेवाड़ का राज्य किस शत्रु ने छीना। इसके विषय में महाराणा कुम्भा का १५१७ का कुम्भलगढ़ का लेख कहता है "सामन्तसिंह राजा भूतल पर हुआ, उसका भाई कुमारसिंह था; जिसने अपने राज्य छीनने वाले कीतू नामक शत्रु राजा को देश से निकाला। गुजरात के राजा को प्रसन्न कर आधारपुर प्राप्त किया और स्वयं राजा बन गया।"

कीतू कौन था? इसके विषय में ओझाजी लिखते हैं—यह नाडोल के राजा आवाणदेव का तीसरा पुत्र था। साहसी वीर एवं उच्चाभिलाषी होने के कारण अपने ही बाहुबल से जालौर का राज्य परमारों से छीन कर चौहानों की सोनगरा शाखा का मूल पुरुष और स्वतंत्र राजा हुआ। सिवाने का किला भी उसने परमारों से छीन कर अपने राज्य में मिला लिया था। चौहानों के शिलालेखों और ताम्रपत्रों में कीतू का नाम कीर्तिपाल मिलता है। परन्तु राजपूताने में वह कीतू नाम से प्रसिद्ध है। जैसा कि मुहणोंत नैणसी की ख्यात तथा राजपूताने की अन्य ख्यातों में लिखा मिलता है। उसका अब तक केवल एक ही लेख मिला है जो वि०सं० १२१८ का दान पत्र है, उससे विदित होता है कि उस समय उसका पिता जीवित था। उसको बारह गाँवों की जागीर मिली थी जिसका मुख्य नाम नडुलाई था। कीर्तिपाल के पुत्र समरसिंह का शिलालेख १२३९ का जालौर में

---

१ राजपूताने का इतिहास, जगदीशसिंह गहलोत, भाग १ पृष्ठ ४०० ।

मिला है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि कीर्तिपाल इस समय से पहले मर चुका था। अगर कीर्तिपाल मेवाड़ छीनता तो चौहान उसको उससे वापस दिला देते। इसलिये ये शत्रु १२४६ के बाद का होना चाहिये। जब कि चौहान शक्ति टूट चुकी थी। पृथ्वीराज के पश्चात् दिल्ली पर गौरी का अधिकार हो चुका था। कुतुबुद्दीन ने अजमेर और रणथंभोर पर आक्रमण किये थे। मेवाड़ के ख्यातों से यह विदित होता है कि समरसिंह के तराई के युद्ध में मारे जाने के पश्चात् उनके बालक पुत्र के समय में कुतुबुद्दोन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजमाता ने स्वयं युद्ध किया और अंत में कुतुबुद्दोन को पीछे हटना पड़ा। संभव है कि दूसरी बार कुतुबुद्दीन ने फिर आक्रमण किया हो। पिछले युद्ध के कारण मेवाड़ की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। इसलिए इस बार कुतुबुद्दीन का मेवाड़ पर अधिकार होगया हो। राजस्थानी में कुतुबुद्दीन भी कीतू हो सकता है। इसलिए मेवाड़ पर अधिकार करने वाला कीर्तिपाल चौहान नहीं था। वरन् यह कीतू—कुतुबुद्दीन ऐबक था। कुमारसिंह ने मेवाड़ इसी से वापिस ली।

उस समय के राजस्थान के इतिहास को देखने से नाडौल, जालौर के चौहान वंशों की ताक़त का जब मेवाड़ के गुहिल वंश की शक्ति से तुलना करते हैं, तो यह प्रश्न और भी साफ़ हो जाता है। इसलिए इस गुत्थी को सुलझाने के लिये इन दोनों ताकतों का अवलोकन करना आवश्यक है।

पहले नाडौल और जालौर के चौहान वंश पर दृष्टि डालते हैं। साँभर के वाक् पतिराज (प्रथम) के छोटे पुत्र ने साँभर से जाकर नाडोल में अपना राज्य स्थापित किया। यहाँ के पांचवें शासक महेन्द्र के समय में गुजरात के सोलंकी दुर्लभराज ने इस पर चढ़ाई की[1]। इसने अपनी बहिन का उसके साथ विवाह करके आक्रमण को बचाया। सूंधे के शिलालेख में नाडौल के सातवें शासक बालप्रसाद के लिए लिखा है कि उसने "भीम के चरणों को पकड़ने के बहाने, दबा कर, कृष्ण को उसकी कैद से छुड़ा दिया।" इस लेख से सिद्ध होता है कि बाल प्रसाद गुजरात के सोलंकियों का सामन्त था[2]। उसका खयाल है कि इसके पिता अणहिल्ल के समय में, सोलंकी भीम के सेनापति विमल शाह ने

---

१ हथूंडी का लेख श्लोक ११ वां। भा० प्रा० रा० भा० १ पृ० ८८७।

२ रा० इ० ओ० भाग १ पृ० २१६, भा० प्रा० रा० रेउ भाग १ पृ० २८८

जो चढ़ाई की; उस समय नाडौल उनके मातहत होगया। दसवें शासक जो जोजलदेव के विषय में सूंघा के लेख में लिखा है कि वह अणहिल्लपुर में सुख से रहता था। इससे यह सिद्ध है कि वह गुजरात के सोलंकियों का सामंत था। उसके पश्चात् बारहवें शासक अश्वराज के वर्णन में मिलता है कि उसने मालवे के युद्ध में जयसिंह की बहुत मदद की जिससे जयसिंह उस पर बड़ा प्रसन्न हुआ। इसके समय का एक शिलालेख वि०सं० १२०० का बसी से मिला है; इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि इसके समय में नाड़ौल के चौहानों ने, सोलंकियों की अधीनता पूर्णतया स्वीकार करली थी[1]। इसके पहले कई शासकों ने गुजरात की सेना से मुकाबले भी किये। नाड़ौल के १४ वें शासक आल्हणदेव का छोटा पुत्र कीर्तिपाल था। इसने जालोर में जाकर अपना नया राज्य स्थापित किया। यह नाडौल के चौहान राज्य की छोटी शाखा थी। इसके पौत्र उदयसिंह के समय में जालोर और नाडौल के राज्य आपस में मिल गये थे। उदयसिंह उसका शासक था। इस पर मेवाड़ के जैत्रसिंह ने चढ़ाई की और उसे युद्ध में परास्त किया[2]।

अब हम पाठकों के सामने उस सदी के मेवाड़ के गोहिल वंश का भी परिचय देते हैं। मेवाड़ के शासक···(द्वितीय के राज्य की सीमा उत्तरी बागड़ तक फैली हुई थी[3]। यह उस समय के मिले हुए शिलालेखों से ज्ञात होता है। उसके पुत्र अल्हट्ट का वर्णन जब देखते हैं तो ज्ञात होता है कि उसकी राज्य-व्यवस्था बड़े सुंदर ढंग से शास्त्रों से बताए हुए नियमों के अनुसार थी[4]। उसके पुत्र के लिये शिला-लेखों में लिखा है कि वह कलाओं का आधार, धीर, विजय का निवास-स्थान, क्षत्रियों का क्षेत्र, शत्रु दल का नष्ट करनेवाला, वैभव का भवन एवं विद्या का वेदी था[5]। उसके पश्चात् शक्तिकुमार और अंबाप्रसाद के समय में भारत की दो बढ़ती हुई शक्तियों के आक्रमण मेवाड़ पर हुए और वे थे मालवा के शासक मुंज। इसने शक्ति कुमार को परास्त किया। उसके पश्चात् अंबाप्रसाद के समय में सांभर के

---

१ भारत के प्राचीन राजवंश भाग १ रेउ पृ० २६३

२ रा० इ० ओ० भाग १ पृ० ४६१।

३ रा० इ० ओ० भाग १ पृ० ४२५।

४ रा० इ० ओ० १ पृ० ४२६।

५ रा० इ० ओ० १ पृ० ४२८।

हान राजा वाक्पतिराज (द्वितीय) ने आक्रमण किया। इन दोनों ही युद्धों में
ाड़ की पराजय हुई । उसके पश्चात् शुचिवर्मा ने शक्ति को संगठित किया।
सके लिए लेख में समुद्र के समान मर्यादा का पालन करनेवाला,
ा के सदृश दानी तथा शिव के तुल्य शत्रु को नष्ट करने वाला लिखा है।[1]
के पीछे प्रसिद्ध शासक हंसपाल हुआ, जिसके विषय में चे.ी के कलचूरी शिलालेखों
प्रसंग वशात् वर्णन मिलता है; जिनमें लिखा है कि गुहिलोत वंश में हंसपाल राजा
ा; जिसने निज शौर्य से शत्रुओं के समुदाय अपने आगे झुकाया[2]। कल चूरियों के
ाघाट के शिलालेख में हंसपाल के पुत्र वैरीसिंह के लिये लिखा है कि उसके चरणों
अनेक सामन्त सिर झुकाते थे। उसने अपने शत्रुओं को पहाड़ों की गुफाओं
भगाया और उनके नगर छीन लिये[3]। इससे कुछ पुश्तों बाद
मन्तसिंह हुआ । उसके बारे में आबू पर देलवाड़ा गाँव के तेजपाल
बनवाए हुए लूणवा-सही नामक नेमिनाथ के जैन-मन्दिर के शिला-
। से यह मिलता है कि सामन्तसिंह ने गुजरात के राजा को परास्त किया[4]।
सामन्तसिंह से तीन पीढ़ी पश्चात् मेवाड़ का शासक जैत्रसिंह हुआ । उसने
ौल और जालौर के चौहान, मालवे के परमार, गुजरात के राजा त्रिभुवनपाल
र दिल्ली के सुल्तान शम्शुद्दीन अल्तमस और नासिरुद्दीन महमूद को युद्धों में
स्त किया[5]।

ऊपर नाडौल और जालौर के चौहान-वंश का मेवाड़ के गुहिल वंश से
ुलन दिखाया गया है, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि जालौर के चौहानों
ताकत बहुत छोटी थी। वे सदा ही गुजरात के सोलंकियों के सामन्त रूप में
। दूसरी तरफ मेवाड़ के गुहिलोतों की शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी। उन्होंने गुजरात
सोलंकियों तक को परास्त किया है। ऐसी परिस्थिति में यह मानने में नहीं
सकता कि सामन्तसिंह जैसे शक्तिशाली शासक को कीर्तिपाल जैसा एक

---

[1] भावनगर प्राचीन शोध संग्रह पृष्ठ २२।
[2] एपीग्राफीका इन्डीका जिल्द २ पृ० ११।
[3] एपीग्राफीका इन्डी का जि० २ पृ० १२।
[4] ए० इ० जिल्द ८ पृ० २११।
[5] ए० इ० जिल्द १६ पृ० ३४६।

छोटा सा सामन्त परास्त कर सके, इसलिए यह साफ है कि महाराणा कुम्भा के शिलालेख का कीतू-कीर्तिपाल चौहान नहीं है।

सूंधा पर्वत के चौहान शिलालेख में नाडौल और जालौर के शासकों का पर्याप्त वर्णन है। उसमें इनके बहादुरी के कार्यों की प्रशंसा की है। परन्तु उसमें कीर्तिपाल के चित्तौड़ पर अधिकार करने का कहीं वर्णन नहीं है। जहाँ कि उसमें छोटी-छोटी विजयों को भी प्रशंसा की है, तो उसमें चित्तोड़ जैसे प्रसिद्ध राज्य पर कीर्तिपाल के अधिकार होने का हाल नहीं है। यह बात ऐसी है कि जो सिद्ध कर देती है कि कीर्तिपाल ने चित्तौड़ पर अधिकार नहीं किया, वर्ना उस लेख में ऐसी प्रसिद्ध विजय लिखे बिना नहीं रहते।

उपरोक्त समस्त उद्धरणों को देखने के पश्चात् यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि सामन्तसिंह के पश्चात् चित्तौड़ पर अधिकार करनेवाला व्यक्ति कीतू-कुतुबुद्दीन ऐबक था। रासो में जो हमें समरसिंह का वर्णन मिलता है, वह मेवाड़ के इतिहास का सामन्तसिंह है न कि समरसिंह। जैसा कि कुछ विद्वानों ने मान लिया था, पृथाबाई का विवाह समन्तसिंह (सामन्तसिंह) के साथ ही हुआ था।

———

श्री गङ्गाप्रसाद कमठान

पृथ्वीराज रासो के वृहद् संस्करण के उद्धारक पर पुनः विचार

ओझाजी ने रासो का रचना काल सं० १६०० के आस-पास अनुमानित किया है, पर डा० मोतीलाल मेनारिया ने रासो का रचनाकाल सं० १७०० के बाद का बतलाया है। श्री अगरचंद नाहटा के मतानुसार भीएडर, कानोड़ और गलूएड की वृहद् संस्करण के रूपान्तर को प्रतियों का काल-क्रम संवत् १७३४, १७४६ और १७३१-३२ है। किन्तु अन्तिम गलूएड की प्रति का लेखन समय सदिग्ध है। अतः भीएडर वाली प्रति का समय स्वामी नरोत्तमदास के विचारानुसार सं० १७३१-३२ माना जाना चाहिए।

नाहटाजी के अनुसार विद्या-भवन कांकरोली से प्राप्त प्रति (सं० १७४६ से ५०) में वृहत् संस्करण के उद्धारक जगतेश का नाम है—

> 'चित्रकोटि रान जगतेश त्रिप हित श्री मुख आईस दियो।
> गुन विनि विनि करुणा उदधि लिखि रासा उद्यम कियो ॥"

वे लिखते हैं, इस पद्य में सुप्रसिद्ध 'अमरेश' पाठ को जगह 'जगतेश' पाठ है। यह मेनारियाजी के सं० १७०० के बाद रचे जाने के मत को खण्डन करता है। क्योंकि वे सं० १७६० की लिखित प्रति में अमरेश पाठ देख कर रासो के इस संस्करण के उद्धारक को पहला अमरसिंह मानना मिथ्या धारणा मानते हैं[1]। इस सम्बन्ध में नाहटाजी के मन्तव्य इस प्रकार है—१ वास्तव में तो जगतेश व

---

१ साहित्य-सन्देश, अप्रेल ५५।

अमरेश दोनों के समय से रासो का रचना-काल नहीं माना जाकर वृहद् संस्करण का संकलन उद्धारण, लिपि-काल माना जा सकता है । २—और इस संस्करण के उद्धार या पात्रों को संग्रहीत करवाने वाले कांकरोली की प्रति के अनुसार महाराणा जगतसिंह थे ।

रासोकार पृथ्वीराज का सम-सामयिक था । मुनिराज जिनविजय ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' नामक एक प्रबन्ध में जयचन्द्र प्रबन्ध की चर्चा की है, जिसमें चन्द रचित चार छप्पय उद्‌धृत हैं । इस पुस्तक का रचना काल सं० १५२८ है । इससे सिद्ध होता है कि चन्द की कृति रासो के फुटकर कवित्त सं० १५२८ से भी पूर्व प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे ।

केवल यही नहीं महाराणा राजसिंह के काल में लिखी 'राज प्रशस्ति' महाकाव्य में रासो का उल्लेख मिलता है ।[1]

ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः ।
पृथाख्या भगिन्यास्तु पतिरित्यति हार्दतः ॥ २४ ॥
× × ×
भाषा रासा पुस्तकेऽस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥ २७ ॥
—तृतीय सर्ग

राजप्रशस्ति के लेखन की क्रिया का आदि और अन्त वि० सं० १७१८ से ३२ तक हुआ । इससे ज्ञात होता है कि सं० १७१८ से पूर्व रासो लोक-जीवन में घुल मिल कर जनता के कण्ठ का हार (चाहे फुट कर कवियों के रूप में ही हो) बन गया था ।

"यही नहीं १७ वीं शती में रासो में वर्णित कथा बहुत प्रसिद्धि पा चुकी थी और सं० १७०५ में रचे गए 'जसवन्त उद्योत' में रासो का एक प्रसिद्ध व उल्लेखनीय ग्रन्थ के रूप में निर्देश पाया जाता है ।" (श्री अगरचंद नाहटा[2]) इससे विदित होता है कि सं० १७०५ से पूर्व रासो का निर्माण हो चुका था ।

---

१ मेवाड़ की वर्तमान राजधानी उदयपुर में राजसिंह ने राजसमंद सरोवर का निर्माण कराया । इसके नौ चौकी बाँध पर भारत भर में सब से बड़ा महाकाव्य 'राजप्रशस्ति' उत्कीर्ण है ।

२ साहित्य सन्देश का अङ्क, अप्रेल १९५५ ।

साथ ही चन्दवंशज कवि यदुनाथ ने करौली के यादव राजा गोपालपाल (गोपालसिंह) के राज्यकाल अर्थात् वि० सं० १८०० के आसपास 'वृतविलास' में वंश परिचय देते हुए रासो की प्रामाणिकता पर प्रकाश डाला है।

"एक लाख रासो किए, सहस पञ्च परिमाण।

पृथ्वीराज नृप को सुजस, जाहर सकल सुजान ॥"

यह कथन इस सत्य का पोषक है कि रासो का आविर्भाव सं० १८०० से कई शतीपूर्व हो चुका था।

परन्तु वृहद् रूपान्तर के उद्धारक के सम्बन्ध में अभिनव प्रकाश डालने वाली रासो की एक हस्तलिखित प्रति हमने आज से चार वर्ष पूर्व सरदार उमरावसिंह के ग्रन्थागार में देखी थी, जिसमें वृहद् संस्करण के उद्धारक का नाम-'अमरेश द्विताय' है—

"चित्रकोट अमरा द्वितीय त्रप,
हित श्रीमुख आयस दयौ।
गुन दिन बिन करुणा उदधि,
लिखि रासो उद्दियम कियौ ॥"

वस्तुतः इस पाठ में न तो अमरेश और न जगतेश है, अपितु अमरेश द्वितीय का नाम अङ्कित है। इस ऐतिहासिक पद्य पर तत्कालीन परिस्थितियों को आगे रख एक दृष्टि डालने से यह ठीक भी मालूम होता है; क्योंकि अमरसिंह प्रथम का काल (१६५३-७६) संघर्ष का युग रहा, उनके जीवन की बढ़ती छाया में भी सुख और और संतोष की लहर न आसकी। रसवन्ती की धारा साहित्य की धारा से सौगुनी प्रबल बह रही थी। फिर भला अमरसिंह प्रथम को रासो की सामग्री को, जो बिखरी हुई थी, सुसम्पादित करवाने का अवकाश कहा था ? इस बात का पुष्टि श्री रामनारायण दूगड का उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल में मिली एक पुस्तक में एक छन्द इस आशय का है कि चन्द के छन्द इधर-उधर बिखरे हुए थे, उन्हें एकत्र करवा कर अमरसिंह द्वितीय ने उसे वर्तमान रूप दिया।

इससे नाहटाजी के उस मत का खण्डन हो जाता है कि "सम्भव है, सम्वत् १७६० में जब अमरसिंह के समय वाली प्रति लिखी गई, तब उसमें जगतेश के स्थान पर अमरेश पाठ परिवर्तित कर दिया हो या अमरेश पाठ प्राचीन हो और जगतेश परवर्ती पाठ हो तो अमरसिंह पहला होना चाहिए।" इन सब बातों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि रासो का विराट रूप न होकर सूक्ष्म रूप में सं० १५२८ से पूर्व विद्यमान था। अर्थात् रासो के बिखरे पद्यों का आविर्भाव काल १५ वीं शताब्दी से आगे चला जाता है।

साहित्य सन्देश, आगरा।
भाग १६ अङ्क १२,
जून १९५५ ईस्वी
पृ० ४५२-४५२

कृष्णदेव शर्मा एम.ए. सिद्धांत शास्त्री, देहरादून

क्या पृथ्वीराज रासो जाली है

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के प्रसिद्ध ले० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'पृथ्वीराज रासो' के विषय में लिखते हैं, 'यह पूरा ग्रन्थ वास्तव में जाली है। भाषा और साहित्य के जिज्ञासुओं में किसी काम का यह ग्रन्थ नहीं है।'' रासोकार महा कवि चंदबरदाई के बारे में आपका मत है ''चंद नाम का कोई कवि पृथ्वीराज का सम सामयिक नहीं था। यदि कोई चंद नाम का कवि पृथ्वीराज के दरबार में था तो वह काश्मीरी कवि' जयानक के पश्चात् रहा होगा। अधिक सम्भव यह जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज अथवा उसके किसी वंशज के समय में चंद नाम का कोई कवि था और उसने उनके पूर्व पुरुषा पृथ्वीराज का यश वर्णन करने के लिये रासो की रचना की।'' प्रो० रामकुमार वर्मा, राय बहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आदि कतिपय अन्य विद्वान् भी 'रासो' को जाली मानते हैं।

दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध प्रवर्द्धक रायबहादुर डा० श्यामसुन्दर दासजी साहित्य-वाचस्पति 'हिन्दी भाषा और साहित्य' में लिखते हैं-''चंद बरदाई नाम के किसी कवि का पृथ्वीराज के दरबार में होना निश्चित है और यह भी सत्य है कि उसने अपने आश्रयदाता की गाथा विविध छंदों में लिखी थी। पृथ्वीराज रासो हिन्दी के कुछ उत्कृष्ट काव्यों में से है। पृथ्वीराज रासो वीर गाथा काल की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है। भाषा की जटिलता से यह ग्रन्थ कुछ दुरूह हो गया है, अन्यथा राष्ट्रीय उत्थान के इस काल में यह बड़ा ही उपयोगी होता। श्री सूर्यकांत शास्त्री, प्रो० मुंशीराम शर्मा आदि अनेक अन्य विद्वान् इसी मत के समर्थक हैं।

किसी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व उपर्युक्त दोनों मतों की गंभीर समीक्षा अनिवार्य है। प्रश्न उठता है 'जाली' शब्द का अर्थ क्या है? सामान्यरूप से जाली

उस पुस्तक या लेख को कहते हैं जिसको वास्तव में जिस व्यक्ति ने लिखा हो, उसके स्थान पर किसी अन्य का नाम लेखक रूपमें दिया गया हो। यदि ऐसा है तो स्वयं रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, "पृथ्वीराज रासो 'जाली' नहीं है क्यों कि वे 'जयानक' के आने के पश्चात चंदबरदाई के अस्तित्व की संभावना मानते हैं। दूसरा अर्थ 'जाली' का यह है कि लेखक जिस काल का वर्णन कर रहा है उस काल में विद्यमान न होते हुए भी उस काल में विद्यमान होने का दावा करे।" यह दूसरी सभावना भी श्री शुक्लजी ने प्रकट की है, परंतु ऐसा करते समय उन्हें यह ध्यान नहीं रहा कि इतिहास पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात दिल्ली के सिंहासन पर कुतुबुद्दीन एबक को प्रतिष्ठित मानता है। यदि शुक्ल जी के शब्दों को ध्यानपूर्वक विचारा जाय तो विदित होगा कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में जाली है। लिखने के पश्चात् जो कुछ उन्होंने लिखा है उससे प्रतीत होता है कि उस बारे में उनका मत स्थिर नहीं होपाया था। इतना ही नहीं उनके दिये हुए कई उदाहरणों से तो यह पुष्ट होता है कि 'रासो' तथा'रासोकार'जाली नहीं असली है। सो कैसे ?

आचार्य जी ने 'जयानक' कृत 'पृथ्वीराज विजय' से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है:-

"तनयश्चन्द्र राजस्य चन्द्रराज इवा भवत्।
संगृहं यस्सु वृत्तानां मित्र व्यधात् ॥"

वे कहते हैं "यहां यमक से जिस चंद्रराज कवि की ओर संकेत है वह चंद्रबरदाई नहीं, किन्तु चंद्रक कवि है, जैसा कि क्षेमेंद्र ने माना है।"

श्लोक का अर्थ—

चंद्रराज का पुत्र चंद्रराज के ही समान हुआ। उसने सुवृत्तों का संग्रह सुवृत्तों के समान किया। उसके पश्चात् शुक्ल जीने रासो की निम्न लिखित पंक्तियाँ उद्धृत की है:—

पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज'
रघुनाथ चरित्र हनुमंत कृत
भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथ्वीराज सुजस कवि चंद
कृत चंद- नंद उद्धरिय तिमि॥

अर्थात चंद कवि पुस्तक को जल्हन के हाथ में देकर राजा के कार्य के लिये गजनी चले गये ।

जिस प्रकार हनुमानकृत रघुनाथ चरित को भोज राजा ने पूर्ण किया उसी प्रकार कवि चंद कृत पृथ्वीराज रासो को चंद्र के पुत्र ने पूरा किया ।

ऊपर लिखित अवतरणों को सावधानी से अवलोकन करने पर विज्ञ पाठकों का स्पष्ट विदित हो जाएगा कि जयानक ने चन्द्रबरदाई को ही चंद्र-राज कह कर रासो की पंक्तियों की पुष्टि की है, विरोध नहीं। रासोकार महाकवि सम्राट पृथ्वीराज के सखा, सामंत एवं मंत्री थे। इन्हीं सम्राट ने 'ज्वाला' देश का राज्य दिया था जैसा कि सूरदासजी ने लिखा है।

तासु बंस प्रसंस में भौ चंद चारु नवीन ।
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्ह ज्वाला देस ॥

अतः काश्मिरी कवि के लिये यह उचित था कि वह सम्राट के राजकवि चंद्र को चंद्रराज कह कर सम्बोधित करता। उस चंद्र में 'क' अक्षर अपनी ओर से बढ़ा कर चन्द्रक नामक किसी अन्य के अस्तित्व का कल्पना करना खींचतान के सिवाय और क्या हो सकता है ? सच तो यह है कि क्षेमेंद्र का 'चंद्रक' जयानक का 'चंद्रराज' तथा प्रसिद्ध चंदबरदाई एक ही व्यक्ति हैं । प्रायः रासो कार चंद्र कवि कहा जाता है । अतः यह हो सकता है कि लिखने में चंद्र के स्थान पर चंद्रक लिखा गया हो अथवा चंद्र के स्थान पर चंद्रक लिखने की भूल होगई हो। इन पंक्तियों पर विचार करने पर यह विचार प्रतीत होता है कि उपरिलिखित वास्तव में चंद्रकवि के अस्तित्व एवं सम्राट पृथ्वीराज के समकालीनत्व का खडन नहीं करता वरन् प्रबल पुष्टि करते हैं। इस सिलसिले में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जयानक के पृथ्वी राज विजय की संपूर्ण प्रति अभी अनुपलब्ध है। खंडित प्रति के आधार पर चंद्र के अस्तित्व से इनकार करना उचित नहीं ।

यह कल्पना भी ठीक प्रतीत नहीं होती कि पृथ्वीराज चौहान के बाद के होने वाले किसी कवि जिसका नाम चंद्र नहीं कुछ और रहा हो इस विशाल ग्रंथ की रचना करके अपने स्थान पर चद्र का नाम डाल दिया हो जैसा कि अनेक पंडितों ने ऋषि मुनियों के नाम से पुराण तथा अन्य कल्पित ग्रंथों की रचना की

है, क्योंकि यह कल्पना तभी साकार ठहर सकती, जब कि पहले हम किसी प्रसिद्ध तथा महान् कवि चंद्र के अस्तित्व को स्वीकार करलें, और फिर उस पूर्ववर्ती तथा असली महाकवि चंद्र का समय पृथ्वीराज के काल के अतिरिक्त अन्य क्या माना जायेगा ?

इसके अतिरिक्त जगनिक का 'आल्हा खंड' चिन्तामणि द्वारा संशोधित फरूखाबाद की प्रति साहित्य-लहरी में दिये हुए सूर के स्ववंश परिचायक पद, टॉड राजस्थान-लेखक कर्नल टाड तथा जनश्रुति के आधार से भी चन्द्र एवं पृथ्वीराज की समकालीनता प्रकट होती है।

रासो को अप्रामाणिक मानने के निम्नलिखित कारण भी बताये जाते हैं—

१ इसमें इतिहास सम्बन्धी अनेक भ्रांतियां हैं, जो शिलालेखों से ज्ञात होती हैं।

२ इसकी तिथियाँ पूर्णतया अशुद्ध हैं।

३ इसमें १० प्रतिशत ऐसे उर्दू और फ़ारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो चंद के समय में प्रयुक्त नहीं होते थे।

भाषा अनुस्वारांत है और उसमें स्थिरता नहीं है।

इन बातों के विरोध में मिश्रबन्धुओं ने डा० श्यामसुन्दरदास से अनेक बातों में सहमत होते हुए निम्नलिखित प्रमाण उपस्थित किये हैं—

१—इतिहास सम्बन्धी भ्रांतियों के तीन कारण हैं।

(क) चन्द ने अपने स्वामी का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। कवि के लिए यह स्वाभाविक था।

(ख) जो भ्रांतियाँ मालूम पड़ती हैं वे, भ्रांतियां नहीं हैं, क्योंकि ना० प्र० सभा की ओर से प्रकाशित कुछ तत्कालीन पट्टे परवानों से उनकी पुष्टि होती है।

(ग) यदि वे वास्तव में भ्रांतियाँ हैं, तो क्षेपकों के कारण हो सकती हैं।

२— तिथियों के विषय में मिश्रबन्धु यह कारण देते हैं कि रासो में जो ९० वर्ष कम पड़ते हैं, उससे प्रकट होता है कि उन्होंने साधारण विक्रमीय संवत् का प्रयोग नहीं किया है। उसमें किसी ऐसे संवत् का प्रयोग हुआ है, जो विक्रमी संवत् से ९० वर्ष कम है। यह आनंद संवत् हो सकता है।

३— फ़ारसी अरबी शब्दों के विषय में मिश्रबन्धु तथा डॉ० श्यामसुन्दरदास की राय है कि शहाबुद्दीन गोरी से लगभग २०० वर्ष पूर्व महमूद गजनवी भारत

आचुका था। गजनवी से ३०० वर्ष पूर्व सिन्ध पर यवनों का राज्य था। अतः अरबी, फ़ारसी शब्द उनके मस्तिष्क में थे।

४— भाषा की शब्दरूपावली के संबंध में मिश्रबंधुओं का कथन है। कि "भाषा के नवीन रूप जहाँ रासो की अर्वाचीनता को सिद्ध करते हैं— वहाँ प्राचीन रूप 'रासो' की प्राचीनता को भी प्रमाणित करते हैं। प्रक्षिप्त अंशों के कारण ही भाषा की शब्दरूपावली अर्वाचीन हो गई है, नहीं तो 'रासो' का वास्तविक रूप प्राचीनता ही लिये हुए है।"

प्रो० रामकुमार वर्मा लिखते हैं— 'रासो' हमारे साहित्य का आदि ग्रंथ है। वह प्राचीन काल से श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया है। उसमें हमारे साहित्य का श्री गणेश हुआ है। अतः उसके विरुद्ध कुछ कहना अपने साहित्य की प्राचीन संपत्ति खो देना है। परन्तु वर्तमान खोजों से उसकी अप्रामाणिकता ही सिद्ध होती है।" उपरिलिखित की समीक्षा करते समय हमारा ध्यान रासो की निम्न लिखित पंक्तियों की ओर जाता है जिनके आधार पर पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या आदि ने 'अनन्द' संवत् का अस्तित्व माना है—

> एकादस सै पंच दह विक्रम साक अनंद।
> तिहि रिपुजय पुर हरन को भये पृथिराज नरिंद॥
> एकादस सै पंचदह विक्रम जिन ध्रम सुत्त।
> त्रतिय साक पृथिराज को लिष्यौ विप्र गुन गुप्त॥

'अनन्द' सम्वत् का अन्यत्र कहीं प्रयोग हो अथवा न हो परन्तु यह पंक्तियाँ रासो में अनन्द सम्वत् के प्रयोग की स्पष्टतोय सूचक हैं। डॉ० स्मिथ ने भी अपने इतिहास में पंड्याजी की बात को माना है। जैनियों के एक ग्रन्थ में भी 'अनन्द' सम्वत् का उल्लेख है।

घटनाओं के शिलालेख आदि से मेल न खाने के सम्बन्ध में विचार करते समय दृष्टि को फैलाकर देखा जाए तो अन्य अनेक ऐसे ग्रन्थ मिलेंगे जिनमें परस्पर विरोध मिलता है। यथा वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक-केशव की रामचन्द्रिका तुलसी का रामचरित मानस। पं० लेखरामजी, श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, स्व० सत्यनन्द आदि द्वारा रचित महर्षि दयानन्द के जीवन-चरित्रों में भारी भेद पाया जाता है; यद्यपि सब महानुभाव प्रायः समकालीन थे। परन्तु

इनमें से किसी को जाली नहीं माना जाता है। कवि के अधिकार का प्रयोग करते हुए द्विजेन्द्र बाबू ने 'दुर्गादास–नाटक' में गुलनार कासिम को काल्पनिक सृष्टि की है। भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' में सीता और राम का वाल्मीकि आश्रम में मिलन करा दिया है। तुलसीदासजी ने सीता-हरण से पूर्व सीता का अग्नि-प्रवेश कराके उनकी पवित्रता की रक्षा की है। इसी प्रकार समस्त अंग्रेज इतिहासकारों ने 'ब्लेक होल कलकत्ता' की मिथ्या कथा को बीसियों वर्ष तक अपने ग्रन्थों में स्थान दिया। ऐसी दशा में यदि मुसलमान इतिहास कारों के ग्रन्थों तथा चौहान-सम्राट् के अन्तरंगमित्र महाकवि चन्द्र कृत 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित घटनाओं में भेद पाया जाए तो यह स्वाभाविक है, अस्वाभाविक नहीं।

भाषा सम्बधी समस्या पर विचार करते समय यह स्मरण रखना अत्यावश्यक है कि 'रासो' के तीन संस्करण तो प्रसिद्ध ही हैं—

(१) 'चन्द्र' ने 'रासो' का आरम्भ किया।

(२) 'जल्हन' ने उसकी पूर्ति की।

(३) महाराणा अमरसिंह द्वितीय के समय में (सम्वत् १६४२) पुनः इसका संपादन हुआ। अतः तीन प्रकार की भाषा होना तो बिल्कुल स्वाभाविक है। दूसरी बात यह है कि रासो का रचनाकाल हिन्दी भाषा का आरम्भिक काल था। उस समय तक न तो शब्दों के रूप और न हिन्दी भाषा का व्याकरण ही स्थिरता को प्राप्त हुआ था। तीसरी और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि केवल मात्र अर्वाचीन शब्दों के रूपों का रासो में पाया जाना उसे 'जाली' सिद्ध करने के लिये पर्याप्त नहीं है। जिस प्रकार कि अमीर खुसरो की पहेलियों व मुकरियों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से खुसरो की भाषा आज की खड़ी बोली से कितनी मिलती-जुलती है यह देखकर आश्चर्य होता है। परन्तु उसे हम 'जाली' नहीं कहते। क० राधा-कृष्ण कृत 'राणा प्रताप' नाटक तथा अन्य इस प्रकार के आधुनिक ग्रन्थों में उर्दू हिन्दी दो प्रकार की भाषा पाई जाती है। मध्यकालीन संस्कृत नाटकों में संस्कृत व प्राकृत का प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त स्वयं रासोकार ने अपनी रचना में 'षट्भाषा' प्रयोग का दावा किया है। अतः अनेक भावनाओं का प्रयोग 'रासो' का गुण है, रासोकार के पांडित्य एवं भाषाधिकार का परिचायक है। उसके जालीपन का सूचक नहीं है।

इधर "मुनि जिनविजय" ने अपने संपादित "पुरातन प्रबन्ध संग्रह" (सिन्धी जैन ग्रंथ माला पुष्प २) में पृथ्वीराज और जयचंद विषयक प्रबंधो में चार ऐसे छंदों को दिया है और लिखा है कि "चन्द कवि निश्चित तथा एक ऐतिहासिक पुरुष था। वह दिल्लीश्वर हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसी ने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी, जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई। (नागरी प्रचारिणी पत्रिका माघ संवत् १९९७)

संस्कृत में जो स्थान व्यास कृत महाभारत का है, वही हिन्दी में पृथ्वीराज रासो का है। भारत को व्यास जो ने २४ सहस्र श्लोकों में लिखा था, पर आज तो वह लगभग १ लाख श्लोकों में पाया जाता है। परन्तु महाभारत को जाली कहने का साहस व इच्छा किसमें है? वह तो जाति को उठाने का एक महान् साधन है। इसी प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' के महत्त्व से प्रभावित होकर सम्राट अकबर ने उसे सुना और महाराणा अमरसिंहजी द्वितीय ने उसके सम्पादन की व्यवस्था की और जिन 'चन्द्र बरदाई' के समकालीनत्व व मैत्री संबंध से हिन्दू जाति और विशेषतया चौहानों व कविवंशियों का बच्चा बच्चा परिचित हैं, उस अमूल्य ग्रंथ को जाली तथा उसके रचयिता को काल्पनिक कहना उचित नहीं जान पड़ता। हाँ डाक्टर श्याम सुन्दर दासजी के कथनानुसार "उद्योग करने से प्रक्षिप्तांश मालूम करके असली अंश भी मालूम किया जा सकता है।" हमें रासो के संशोधन कार्य को सावधानी से करना चाहिये 'जाली' कह कर हिन्दी साहित्य की इस अमूल्य सम्पत्ति से अपना ध्यान हटाना हितकर न होगा।

———

श्री कृष्णानन्द—सम्पादक नागरी प्र० पत्रिका

पृथ्वीराज रासो संबंधी शोध

पृथ्वीराज रासो सम्बन्धी शोध में एक अर्द्ध शताब्दी बीत गई है। ऐतिहासिक बृहत्काव्य, हिन्दी के प्रथम महाकाव्य की मान्यता से पृथ्वीराज रासो अनेक अधिकारी विद्वानों के द्वारा सर्वथा जाली रचना के रूप में अवमानित हुआ है। परन्तु इसके सम्बन्ध में यथेष्ट शोध नहीं हुआ है, अतः यथार्थ निर्णय नहीं हुआ है। ऐसा परम्परागत काव्य सर्वथा जाली रचना हो, यह असंभाव्य सी बात है।

हाल में इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में दो ऐसे अनुसंधान हुए हैं, जो इसके मौलिक स्वरूप के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण विचार उपस्थित करते हैं। पहला अनुसंधान, जो दूसरे का एक प्रकार से प्रेरक हुआ है, मुनि जिनविजयजी द्वारा, प्रायः चार वर्ष पूर्व अपने सम्पादित 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' (सिंघी जैन ग्रन्थ माला, पुष्प २) से पृथ्वीराज और जयचन्द विषयक प्रबन्धों में, चार देश्य प्राकृत भाषा के पद्यों की उपलब्धि है। उक्त संग्रह की प्रस्तावना में इस सम्बन्ध में (पृष्ठ ८–१०) पर मुनिजी ने लिखा है:—

हम यहाँ पर एक बात पर विद्वानों का लक्ष्य आकर्षित करना चाहते हैं और वह यह है कि इस संग्रह गत पृथ्वीराज और जयचन्द विषयक प्रबन्धों में हमें यह ज्ञात हो रहा है कि चन्द कवि–रचित पृथ्वीराज रासो नामक हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य के कर्त्तव्य और काल के विषय में जो कुछ पुराविद् विद्वानों का यह मत है कि यह ग्रन्थ समूचा ही बनावटी है और १७ वीं सदी के आसपास में बना हुआ है, यह मत सर्वथा सत्य नहीं है। इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में, जो ३–४ प्राकृत भाषा पद्य (८६, ८८, ८९) पर उद्धृत किए हुए मिलते हैं उनका पता हमने उक्त रासो[१] में लगाया है और इन ४ पद्यों में से ३ पद्य यद्यपि विकृत रूप में लेकिन

---

१ काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो।

शब्दशः उसमें हमें मिल गए हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द कवि निश्चित तथा एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसीने पृथ्वीराज के कीर्ति कलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी, जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई।

हम यहाँ पर पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध विकृत रूप वाले इन तीनों पद्यों को प्रस्तुत संग्रह में प्राप्त मूल रूप के साथ साथ उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को इनको परिवर्तित भाषा और पाठ भिन्नता का प्रत्यक्ष बोध हो सकेगा।

इसके आगे मुनिजी ने उपर्युक्त पद्य उद्धृत किए हैं, जिन्हें इस अंक में राय-बहादुर श्यामसुन्दरदासजी ने 'पृथ्वीराजरासो' शीर्षक अपने लेख में अवतरित किया है।

पद्यों के बाद मुनिजी ने इस ग्रंथ के शोध के संबंध में जो अपने विचार लिखे हैं, उन्हें कुछ संक्षिप्त रूप में हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

हमने इस महाकाव्य ग्रंथ के कुछ प्रकरण, इस दृष्टि से बहुत मनन करके पढ़े तो हमें इसमें कई प्रकार की भाषा और रचना पद्धति का आभास हुआ। भाव और भाषा की दृष्टि से इसमें हमें कई पद्य ऐसे दिखाई दिए जैसे छाछ में मक्खन दिखाई पड़ता है। हमें यह भी अनुभव हुआ कि काशी की नागरी प्रचा-रिणी सभा की ओर से जो इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है, वह भाषा तत्व की दृष्टि से बहुत ही भ्रष्ट है। × × ×

मालूम पड़ता है कि चंद कवि की मूल कृति बहुत ही लोक प्रिय हुई और इसलिये ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों उसमें पीछे से चारण और भाट लोग अनेकानेक नए नए पद्य बना कर मिलाते गए और उसका कलेवर बढ़ाते गए। कंठानुकंठ प्रचार होते रहने कारण मूल पद्यों की भाषा में बहुत कुछ परि-वर्त्तन होता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि आज हमें चंद को उस मूल रचना का अस्तित्व ही विलुप्त सा होगया मालूम देरहा है, परन्तु यदि कोई पुरातन-भाषाविद् विचक्षण विद्वान् यथेष्ट साधन-सामग्री के साथ पूरा परिश्रम करे, तो इस कूड़े कर्कट के बड़े ढेर में से चंद कवि के उन रत्नरूप असली पद्यों को खोज कर निकाल सकता है और इस तरह हिंदी भाषा के नष्ट-भ्रष्ट इस महाकाव्य का

प्रामाणिक पाठोद्धार कर सकता है। नागरी प्रचारिणी सभा का कर्त्तव्य है कि जिस तरह पूना का भांडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट महाभारत की संशोधित आवृत्ति तैयार कर प्रकाशित कर रहा है, उसी तरह वह भी हिंदी भाषा के महाभारत समझे जानेवाले इस पृथ्वीराज रासो की एक संपूर्ण संशोधित आवृत्ति प्रकाशित करने का पुण्य करे।

प्रसगात् मुनिजी ने नागरी प्रचारिणी सभा के पृथ्वीराज रासो के प्रकाशन और उसके कर्त्तव्य की ओर जो निर्देश किए हैं, उनके सम्बन्ध में हमें यह कहना है कि सभा ने विद्वानों के शोध कार्य की सुविधा के विचार से ही अपने तत्कालीन साधनों से इस बृहद् ग्रन्थ का प्रकाशन किया था और अब उसकी संशोधित आवृत्ति की आवश्यकता वह समझती है। 'यथेष्ट साधन-सामग्री' के योग से संभव है कि यह पुण्य' काय भी उसके द्वारा बन पड़े। अस्तु

इस ग्रंथ के सम्बन्ध में दूसरा अनुसंधान बीकानेर फोट लाइब्रेरी (राजकीय पुस्तकालय) में इसके एक संस्करण की परख है, जिसके सम्बन्ध में अपने विमश श्री दशरथ शर्मा ने इस पत्रिका के वर्ष ४४, अंक ३, पृष्ठ २७५-२८२ पर, 'राजस्थानी' के भाग ३, अंक ३, पृष्ठ १-१५ पर और 'इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली' के ग्रन्थ १६, अंक ४, पृष्ठ ७३८-७४६ पर और श्री अगरचन्द नाहटा ने 'राजस्थानी' भाग ३, अक २, पृ० ६-३२ पर दिए हैं। उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि रासो का यह संस्करण समय और परिमाण दोनों की दृष्टि से उसके अब तक के उपलब्ध संस्करणों में सबसे प्राचीन और प्रामाणिक है। श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है—

अभी तक रासो के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, वह नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रति के आधार पर ही लिखा गया है कि भाषा और ऐतिहासिक बातों का विश्लेषण भी उसी के आधार पर किया गया है और इस बात में उभय पक्ष के विद्वान् सहमत हैं कि वतमान में जो रासो नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है, उसमें क्षेपक भाग बहुत अधिक है।

सभा द्वारा प्रकाशित रासो के संस्करण में ६९ समय और लगभग १००००० श्लोक हैं और बीकानेर के उक्त संस्करण में १९ समय और लगभग ४००० श्लोक ही हैं, यद्यपि वह भी क्षेपकों से रहित नहीं है। अनुसंधान में यह पता लगा है

कि इस ग्रन्थ की "प्रतियां जितनी पुरानी हैं, उतनी ही छोटी और जितनी नई प्राय: उतनी ही बड़ी हैं। इससे स्पष्ट है कि रासो आरंभ में दीर्घकाय ग्रन्थ नहीं था" और विशेष महत्त्वपूर्ण बात, जिसे श्री दशरथ शर्मा ने अपने लेखों में प्रतिपादित किया है, यह है कि जिन आख्यानों के कारण पृथ्वीराज रासो को कविराजा श्यामलदास, डा० बूलर और डा० गौ० ही० ओझा ने अनैतिहासिक और जाली माना है, उनका इस बीकानेरी संस्करण में अभाव है। इससे यह भी प्रतीत हुआ है कि इस ग्रंथ का कोई संस्करण जितना ही प्राचीन है उतना ही ऐतिहासिक दोषों से रहित है। अपने पिछले दो लेखों में श्री दशरथ शर्मा ने १६ वीं शती (ई०) के संस्कृत महाकाव्य सुर्जन-चरित (?) और प्रसिद्ध फारसी प्रबंध आईन-ए-अकबरी में उपलब्ध पृथ्वीराज सम्बन्धी वर्णनों से, जिनमें बंदी चंद का स्पष्ट उल्लेख मिला है, प्रमाणित किया है कि पृथ्वीराज रासो उस काल में भी प्राचीन और ऐतिहासिक महत्व का ग्रंथ माना जाता था। अत: इसके प्राचीन संस्करणों का निर्माणकाल १६ वीं शती से अवश्य ही बहुत पूर्व होगा और उसका "स्वरूप प्राय: ऐसा ही होगा, जैसा कि बीकानेर वाले संक्षिप्त संस्करण में मिलता है।"

उपर्युक्त दोनों अनुसंधानों के समन्वय से पृथ्वीराज रासो के मौलिक स्वरूप के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण विचार उपस्थित होता है। श्री शर्मा ने बताया है कि 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में उद्धृत पद्य "किसी न किसी रूप में रासो के प्राय: सभी संस्करणों में मिलते हैं।' उक्त संग्रह के 'सबसे पुराने आदर्श का काल संवत् १५२८ है। अत: उसमें उद्धृत रासो के पद्य यह सिद्ध करते हैं कि मूलरासो सं० १५२८ के पूर्व अवश्य विद्यमान था। पद्यों का देश्य प्राकृत या अपभ्रंश भाषा काफी पुरानी, पृथ्वीराज के काल की ही है। मुनि जिनविजयजी ने अपनी प्रस्तावना के तीसरे पृष्ठ पर पृथ्वीराज प्रबंध का रचना-काल सं० १२६० बताया है, तो जिस रासा से वे पद्य उसमें उद्धृत हैं, वह अवश्य इससे और पहले का, अर्थात् विक्रम की १३ वीं शती के मध्य का होगा। पृथ्वीराज प्रबन्ध के उक्त रचना काल को काफी प्रामाणिक न माना जाय तो भी उन पद्यों की भाषा से यह निश्चित होता है कि मूल रासो उक्त काल से बाद का नहीं हो सकता; क्योंकि यह अवश्य ही 'राव जेतसी रो छंद' या पुरानी हिन्दी की किसी भी निश्चित काल की रचना से सैकड़ों वर्ष पुरानी सिद्ध होती है।

"पृथ्वीराज विजय महाकाव्य चौहानों के इतिहास का बहुत अच्छा साधन है, परन्तु मूल रासो संभवतः उससे कहीं अधिक सम्पूर्णांग और ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण पाया जायगा" और सुर्जनचरित महाकाव्य सम्भवतः संस्कृत में उसका सार माना जायगा। इस प्रकार उक्त अनुसंधानों से यह महत्त्वपूर्ण विचार प्रामाणिकता से उपस्थित होता है कि पृथ्वीराज रासो मूलतः सम्राट् पृथ्वीराज के समय में उसके राजकवि चंद का रचा पृथ्वीराज-यशो वर्णन विषयक तत्कालीन अपभ्रंश भाषा का, अब से कहीं छोटा, बहुत लोकप्रिय ऐतिहासिक महाकाव्य था; जो दीर्घकंठ परम्परा से अपने विषय और भाषा में धीरे-धीरे ऐसा परिवर्धित और परिवर्तित हुआ कि अपने वर्तमान रूप में वह बहुत विकृत और व्याहत हो रहा।

अब आवश्यकता यह है और ये महत्त्वपूर्ण अनुसंधान प्रेरणा करते हैं कि पृथ्वीराज रासो के प्राचीन संस्करणों के लिये गहरी खोज की जाय—बीकानेर के उक्त संस्करण का तो यथासंभव शीघ्र आलोचनात्मक संपादन प्रकाशित हो जिससे उपर्युक्त विचार पुष्ट हो और हिन्दी के इस महाकाव्य का शोध यथार्थतः निर्णीत हो।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका त्रैमासिक
[नवीन संस्करण]
वर्ष ४५, अंक ४, माघ सं० १९९७

श्री तारकनाथ अग्रवाल एम० ए०, कलकत्ता

वीर काव्य में अग्नि कुल परंपरा

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक काल, जिन महापुरुषों की गाथाओं से परिपूर्ण है, उनकी उत्पत्ति के विषय में अनेक मत-मतान्तर अभी भी प्रचलित हैं। कोई उन्हें अग्नि कुल से सम्बन्धित बताता है, तो कोई सूर्य कुल से। सूर्य मण्डल से इनकी उत्पत्ति का इतिहास हमें जयानक कृत 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में मिलता है। इस महाकाव्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह महाराज पृथ्वीराज (तृतीय) के जीवनकाल में ही (सन् ११६१ और ११६३ के मध्य) जयानक द्वारा महाराज पृथ्वीराज के शहाबुद्दीन गोरी के ऊपर विजय प्राप्त करने पर लिखा गया था। चौहानों की उत्पत्ति तथा 'चाहमान' शब्द की सार्थकता का वर्णन करते हुए जयानक लिखता है कि—

करेण चापस्य हरेर्मनीषया बलेन मानस्य नयस्य मन्त्रिभिः।
घृतस्य नामाग्निमवर्णनिर्मिताम् स चाहमानयोर्यमिति प्रथां ययौ[1]।

'हमीर महाकाव्य' (रचना काल सम्वत् १४७०) में भी उपर्युक्त कथा की पुष्टि श्लोक १-२५ में की गई है। इस ग्रन्थ के रचयिता जयसिंह सूरि का कहना है कि ब्रह्माजी एक बार यज्ञ के लिए अनुकूल भूमि ढूँढ़ रहे थे, अकस्मात् उनके हाथ से कमल का फूल एक स्थान पर गिर पड़ा। उन्होंने उसी स्थान को यज्ञ के लिए उचित ठहराया और सूर्य को यज्ञ रक्षा का भार सौंपा, वही स्थान कालान्तर में पुष्कर क्षेत्र कहलाया तथा सूर्य मन्दिर से आया हुआ व्यक्ति 'चाहमान' नाम से प्रसिद्ध हुआ। चाहमानों का वंश भी इसी व्यक्ति से चला।

---

१ पृथ्वीराज विजय महाकाव्यम्, सम्पादक महामहोपाध्याय डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, पृष्ठ ३०-४१, श्लोक ४४।

किन्तु पृथ्वीराज रासो में चौहान क्षत्रियों की उत्पत्ति अग्नि से मानी गई है। महाकवि चन्द का कहना है—

> अनलकुण्ड किय अनल, सज्जि उपगार सार सुर ॥
> कमलासन आसनह, मंडिजग्योपवीत जुरि ॥
> चतुरानन स्तुति सद्य, मंत्र उच्चार सार किय ॥
> सुकरि कमंडल बारि, जुजित आह्वान थान दिय ॥
> जाजग्नि पानि स्रत्र अहुति जजि, भजि सुदुष्ट आह्वान करि।
> उत्पज्यो अनल चहुआन तब, चव सुबाहु असि बाह धरि[1] ॥

> भुज प्रचन्ड चव च्यार मुख. रत्त ब्रन्न तन तुंग।
> अनल कुंड उपज्यो अनल, चाहुआन चतुरग[2] ॥

बारहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी के उपर्युक्त तीन महाकाव्यों के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में एक और काव्य 'बीसलदेव रास' प्राप्य है, जिसमें चौहान कुल के पृथ्वीराज के पूर्वज बीसलदेव का परमार वंशीय महाराज भोज की कन्या राजमती के साथ विवाह, बिछोह, विरह और केलि तथा शृंगार का वर्णन उन्हीं के समकालीन कवि नाल्ह द्वारा किया गया है। जिस चौहान वंशी बीसलदेव का उल्लेख इस काव्य में है, उसके सम्बन्ध में भी अभी तक यह निश्चय नहीं किया जा सका कि यह बीसलदेव तृतीय है या चतुर्थ। फिर इस काव्य में चौहानों की उत्पत्ति के विषय में भी कुछ नहीं कहा गया, यद्यपि इसकी रचना बारहवीं शताब्दी के पूर्व की मानी जाती।

सम्वत् १७८५ में रचित 'हम्मीर रासो' में चौहान क्षत्रियों की उत्पत्ति कथा का उल्लेख हमें फिर प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ का रचयिता कवि जोधराज कहता है कि ऋषि वशिष्ठ ने वेद मन्त्रों की आराधना कर अग्नि से पँवार, चालुक्य और प्रतिहार, इन तीन शाखाओं के क्षत्रियों को उत्पन्न किया। लेकिन इन तीनों ने पृथ्वी को खलों से मुक्त करने में अपने को असमर्थ पाया और—

---

१ छन्द २५५, रू० १३२।

२ पृथ्वीराज रासो, संपा० मोहनलाल पंड्या, डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ५१ आदि पर्व, छन्द २५६, रू० १३३।

तब चतुरानन यज्ञथल, कियो तुरत वह दूरि ।
आबू गिरि अग्नेव दिसि चायस्थल सब आय ।
आराधे तिहँ फरसि धरि, आये सिघ्र सुभाय ।
कमलासन ब्रह्मा भये होता भृगु मुनि कीन ।
आचारज बासिष्ट भौ, ऋत्विज बत्स प्रवीन ।
परसराम जजमान करि, होम करत मुनि लाग ।
महाशक्ति आराधि करि, अनल पुंड पटि जाग[1] ।

और ऐसे यज्ञ से चाहमानों की उत्पत्ति हुई ।

"हलहलत दनुज बहु त्रासमानि, भुज च्यारि दिग्ध आयुध सजानि ।
जम यज्ञ पुरुष प्रगटे अजोनि, कर खग्ग धनुष कटि लसैं तोनि[2] ॥

इन काव्यों के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के इतिहास में अन्य कोई ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिसमें इन चार प्रकार के क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन हो । इस उत्पत्ति-कथा के भीतर नहीं कहा जा सकता कि कौनसी भावना ऐसी छिपी है, जिसने कवियों को इस उत्पत्ति कथा को कहने के लिए बाध्य किया । लेकिन युगों से भारत में यह तो प्रचलित है ही कि "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।" बहुत सम्भव है कि इसी सत्य को लक्ष्य कर ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी के कविगण ने 'म्लेच्छों के नाश करने के हेतु इन क्षत्रियों की उत्पत्ति-कथा की उपयुर्क्त रूप में रचना की हो । किन्तु अग्निकुल से क्षत्रियों की उत्पत्ति या वीरों की उत्पत्ति केवल राजस्थान तक ही सीमित नहीं थी । दक्षिण भारत में भी एक ऐसी कथा प्राप्य है, जिसके अनुसार एक ब्राह्मण को अपनी कन्या का विवाह ऐसे ही एक वीर से करना पड़ा था, जिसकी उत्पत्ति अग्नि से थी । प्रसिद्ध इतिहासकार एस० कृष्णस्वामी आयंगर ने इनके सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए Ancient India में कहा है:—"There have been in the Tamil land a certain number of chiefs whose names have been handed down to posterity as the last seven patrons of letters, the patron par excellence among them having been Pari of Parambunadu. This chief had a lifelong friend in the person of a highly esteemed Brahman, Kapilpur

---

१ हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ११, छन्द ५६ ।

२ वही छन्द, ६२ ।

who was a poet 'Suigeneris' in a particular department of the poetical art. The three crowned kings of the South—the Chera, the Chola and the Pandya growing jealous of the power and prosperity to the Pari as a patron of poets led scize conjointly to his hill--fort Multur. Pari having fallen a victim to discombination, if fell to the lot of his Brahman friend to get his daughter suitably married, to bring about acceptable marriages being one of the six spercial duties of Brahmans in social system. He, therefore, took the girl over successively to two Chiefs, Bichchikkom and Pulikadimal Irumgovel of Aryan. This taller chief is addressed by the poet in these terms. 'having come out of the sacrificial fire pit of the Rishi. having ruled over the camp of Dvarpati whose high walls looked as though they were built of copper, having come after fortynine generations of patrons never disgusted with giving, thou art the patron among patrons ." (Page 391).

लेकिन आधुनिक इतिहासकारों में श्री वी० ए० स्मिथ का कहना है कि अग्निकुंड से उत्पत्ति की उपयु क्त कथा केवल एक यही बात सिद्ध करती है कि 'पंवार, पणिहार, चौहान और सोलंका या चालुक्य क्षत्रियों का उद्गम स्थान एक ही जगह था और वह स्थान था दक्षिण राजपूताना'। इनके मतानुसार परिहार शाखा के क्षत्रिय निश्चय ही गुर्जरों के वंशज थे, जो भारतवर्ष में श्वेत हूणों के साथ या उनके भारत में प्रवेश करने के कुछ ही पश्चात् यहाँ आए थे। इस तर्क को मानते हुए भी स्मिथ यह कहने में समर्थ नहीं है कि एशिया के किस भाग से ये यहाँ आए थे और किस जाति विशेष से इनका सम्बन्ध था। प्रमाण हो अथवा नहीं, लेकिन उपसंहार में फिर स्मिथ यह कह ही बैठते हैं कि उत्तर भारत के निवासियों का उद्गम गुर्जरों से था[१]। इस विदेशी विद्वान् के मत का डाक्टर रमाशंकर त्रिपाठी ने शुद्धि संस्कार किया है। उनका कहना है कि प्रतिहारों की तरह (जिनकी उत्पत्ति ये भी शायद किसी अनार्य जाति से ही मानते हैं) चौहान भी विदेशी थे और हिन्दू समाज में अग्नि द्वारा शुद्धि संस्कार के पश्चात् उन्हें उच्च स्थान मिला।

किन्तु इन इतिहासकारों ने अग्नि अथवा सूर्य के अर्थ के ऊपर ध्यान नहीं दिया। अग्निकुंड से क्षत्रियों की विभिन्न शाखाओं की उत्पत्ति-कथा को उसी रूप

१ दी अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया वी० ए० स्मिथ (१९०८) पृ० ३७८–७९।

में ग्रहण कर सुलझाने के बदले एक और समस्या खड़ी कर दी। यह तो ठीक ही है कि वर्त्तमान वैज्ञानिक युग में इसे मानने के लिए शायद कोई भी व्यक्ति तैयार न होगा कि मनुष्य की उत्पत्ति अग्नि से सम्भव है, किन्तु हमें यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि विभिन्न शब्दों का प्रयोग भारत के ऋषि-मुनियों ने अथवा कवियों ने भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। एक अर्थ तो वह होता है जो सर्व साधारण की समझ में आ जाता है, अथवा यों कहा जाए कि वह अर्थ सर्वसाधारण के लिए ही होता है; लेकिन दूसरा अर्थ जो विशेषताओं से युक्त रहता है, वह सर्वसाधारण की वस्तु नहीं, वह तो ज्ञानियों के समझने की ही वस्तु है।

विदेशी विद्वान् वी० ए० स्मिथ यदि भारतीय शब्दों के किसी गूढ़ अर्थ को न समझ सके तो वह किसी अंश में क्षम्य हो सकता है। लेकिन उस प्रसिद्ध विद्वान् को यह भी न समझ में आया कि अग्निकुल से क्षत्रियों की उत्पत्ति-कथा केवल दक्षिणी राजपूताना तक ही सीमित नहीं थी, वरन् दक्षिण भारत में भी यह कथा किसी न किसी रूप में प्रचलित थी, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। भारत की सांस्कृतिक परम्पराओं से अनभिज्ञ विदेशी विद्वान् स्मिथ की यह भूल तो स्वाभाविक ही है, किन्तु डॉक्टर रमाशंकर त्रिपाठी जैसे भारतीय मेधावी जन का यह कथन कि चौहानों का अग्नि द्वारा शुद्धि-संस्कार हुआ, मौलिक दृष्टिकोण के अभाव का परिचायक है। वे भी न समझ सके कि अग्नि के शुद्धि-संस्कार का अर्थ साधारण शुद्धि से नहीं, बल्कि अग्नि-तत्व अर्थात् शौर्य और वीरत्व से अभिलषित होना है। आचार्य ललिताप्रसादजी सुकुल का मत है कि भारतवर्ष में यज्ञ की प्रथा वैदिक काल से ही प्रचलित थी और जब जब ऋषि-मुनियों को दानवों से त्राण पाना आवश्यक हो उठता था, तब-तब वे यज्ञ आदि किया करते थे, जिसका अर्थ ही यह होता है कि दुष्टों के नाश के लिए शक्ति का आह्वान विशेष रूप से होता था। प्राय: ऐसा देखा गया है कि रणक्षेत्र में जाने के पहले वीर सर्वदा यज्ञ आदि कर ही प्रस्थान करते थे। रामायण में हम देखते हैं कि इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण जैसे वीरों को भी राम से युद्ध करते करते अपनी शक्ति के ह्रास होने पर उसकी पुनः प्राप्ति के लिए यज्ञ का अनुष्ठान करना पड़ा था। यदि वे यज्ञ द्वारा शक्ति प्राप्त कर लेते तो राम जैसे प्रतापी पराक्रमी को भी शायद उनकी नव-प्राप्त शक्ति से होड़ लेना टेढ़ी खीर हो जाती और इसीलिए उनके यज्ञ का विध्वंस सर्व प्रथम किया गया। इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञादि

में अग्नि को प्रज्वलित करने का तात्पर्य शक्ति का आह्वान करना था और इसी आह्वान की हुई शक्ति से दीक्षित होने का अर्थ है किसी तत्व-विशेष से उत्पन्न होना। अतः अग्नि से उतपन्न होने का अर्थ है, अग्नि-शक्ति तत्व से दीक्षित होना। ऋग्वेद तथा प्रश्नोपनिषद् से भी उपयुक्त तर्क की पुष्टि होती है। ऋग्वेद में अग्नि को व्याख्या इस प्रकार की गई है—

आग्ना अग्ने इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्।
वरुत्रीं धिषणां वह।

तथा प्रश्नोपनिषद् में विश्व-उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रश्न किए जाने पर उत्तर मिलता है—

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तप।
सहस्र रश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

इससे यह सिद्ध होता है कि अग्नि ही विश्व की उत्पत्ति का प्रधान आधार है और यहाँ अग्नि शब्द का यह प्रयोग स्पष्ट रूप से अपने विविध रूपों के माध्यम से शक्ति का द्योतक है और सूर्य भी उसी अग्नि अर्थात् परमशक्ति का प्रतीक है।

अग्नि के इस विशेष अर्थ को मान लेने पर क्षत्रियों अथवा राजपूतों की विभिन्न शाखाओं को अग्नि से उत्पत्ति की कथा सार्थक हो जाती है और तब हिन्दी साहित्य के इतिहास की यह गुत्थी भी सुलझ जाती है कि हिन्दी साहित्य के इस काल विशेष का नाम 'वीर गाथा काल' क्यों पड़ा।

हिन्दी अनुशीलन
भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्व विद्यालय
का त्रैमासिक मुख पत्र,
आश्विन-मार्गशीर्ष २०१० वि०
वर्ष ६, अङ्क ३, पृ० ३२-३६

पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए०

चन्द बरदाई

भारत के अंतिम हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज के अमात्य, मित्र एवं राजकवि चंद का जन्म वि० सं० १२०५ के लगभग पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध नगर लाहोर में हुआ था[१]। ये जाति के भाट थे। जगात इनका गोत्र था। अजमेर के चौहान इनके पूर्वजों के यजमान थे। चंद के पिता का नाम वेण और गुरु का गुरुप्रसाद था। चौहान वंश से परम्परागत संबंध होने से बाल्यावस्था में चन्द की पृथ्वीराज से घनिष्ठता हो गई थी और बड़े होने पर ये इनके राजकवि एवं गण्यमान्य सामन्त बन गये थे। पृथ्वीराज के समान चन्द भी अश्वारोहण में, शब्द भेदी बाण मारने में, असि संचालन में बड़े सिद्धहस्त थे। अतएव युद्ध के समय ओजस्विनी कविताओं द्वारा अपने आश्रयदाता तथा सैनिकों को उत्साहित एवं उत्तेजित करने के अतिरिक्त युद्ध-क्षेत्र में अपनी रण-दक्षता का परिचय भी इन्हें पूर्ण रूप से और प्रायः देना पड़ता था, अर्थात् ये कवि थे और योद्धा भी।

चन्द ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरो, उपनाम राजोरा था। 'रासो' की कथा चन्द ने गौरी से कही है। गौरी प्रश्न करती है। चन्द उसका उत्तर देते हैं। वह शंका करती है, चंद उसका समाधान करते हैं। इन दो स्त्रियों से चन्द के ग्यारह संतति हुई, दस पुत्र और एक कन्या। कन्या का नाम राजाबाई था इन दस पुत्रों में इनका चौथा पुत्र जल्हण सबसे योग्य, प्रतिभा संपन्न एवं गुणाढ्य था। वीर एवं साहसी होने

---

१ रासो में पृथ्वीराज का जन्म संवत् ११९५ दिया है और लिखा है कि पृथ्वीराज तथा चंद का जन्म और देहान्त एक ही दिन हुआ था, किन्तु पंड्याजी के कथनानुसार इसमें ९० वर्ष जोड़ देने से यह संवत् १२०५ होता है।

के अतिरिक्त चंद षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंदशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, पुराण, संगीत आदि विद्याओं में भी परम प्रवीण थे। उन्हें भगवती जालंधरी देवी का इष्ट था, जिनकी कृपा से अदृश्य काव्य भी ये कर सकते थे। इन गुणों के कारण चन्द जहाँ जाते, वहाँ उन पर सम्मान की वर्षा होती थी। वे राज दरबार के भूषण, वीरों के अग्रणी और कवियों के सिरमौर थे।

चन्द की मरण तिथि अनिश्चित है। रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज और चन्द की मृत्यु ४३ वर्ष की आयु (वि० सं० १२४९[1]) में एक ही दिन गज़नी में हुई थी। परन्तु आधुनिक इतिहासवेत्ता रासोकार के इस कथन को सर्वांशत: सत्य नहीं मानते। पृथ्वीराज का देहान्त काल वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९२) तो वे भी स्वीकार करते हैं, किन्तु साथ ही साथ उनका यह भी कहना है कि पृथ्वीराज ने भारत में मुसलमानों से युद्ध करते समय रण-भूमि में प्राण छोड़े थे, गज़नी में नहीं[2]। इसके सिवा पृथ्वीराज के गज़नी में कैद रहने और शहाबुद्दीन को एक तीर द्वारा धराशायी करने के पश्चात् चंद सहित आत्म-हत्या करने की कथा को भी वे अनैतिहासिक और कवि कल्पना बतलाते हैं[3]। विद्वानों के उपरोक्त मतभेद के कारण तथा यथेष्ट सामग्री के अभाव से तथ्यातथ्य का निरूपण करना कठिन है। फिर भी यदि इतिहासकारों का यह मत कि पृथ्वीराज का स्वर्गवास वि० सं० १२४९ में हुआ था, ठीक है और रासोकार के 'इकदीह उपज, इकदीह समायकम्' आदि शब्दों का यही अर्थ है कि पृथ्वीराज और चंद एक ही दिन हुआ। तब तो स्पष्ट ही है कि चंद की मृत्यु भी वि० सं० १२४९ ही में हुई।

---

१ अनन्दसम्वत् के अनुसार।

२ In 1192 the Afghans again swept down on the Punjab Prithiviraja of Delhi and Ajmer was defeated and slain. His heroic princess burned herself on his funeral pile.

W. W. Hunter

३ A Hindu tale that Prithiviraja was taken to Ghazni, where he shot the Sultan and was then cut to pieces is false.

—V. A. Smith.

चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' नामक ढाई हज़ार पृष्ठों का एक बृहद् ग्रंथ बनाया, जिसमें पृथ्वीराज का जीवन चरित्र वर्णित हैं और ६६ समय (सर्ग अथवा अध्याय) में समाप्त हुआ है। कवि ने इसमें छप्पय, दोहा, तोमर, त्रोटक, गाहा आदि प्रायः सभी छंदों का प्रयोग किया है; पर छप्पय की संख्या अधिक और दूसरों की अपेक्षाकृत न्यून है। मीलित वर्णों की बहुलता, छन्दोभंग एवं व्याकरण की अव्यवस्था भी रासो में यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती है। चंद की भाषा उस समय की है, जब अपभ्रंश का अन्त और हिन्दी का विकास हो रहा था। हिन्दी उस समय बाल्यावस्था में थी, नवजात शिशु के रूप में थी। महाकाव्योपेक्षित गूढ़ातिगूढ़ भावों, मनुष्य के अतर्भावों के घात-प्रतिघातों, युग की सुसूक्ष्म अनुभूतियों और जीवन के अन्तर्द्वन्द्वों को स्पष्टतः अभिव्यक्त करने की ऐसी क्षमता उसमें उस समय न थी जैसी कि आज है और चन्द का काव्यक्षेत्र व्यापक था। उन्हें महाकाव्य की रचना अभीष्ट थी। साधन की अपेक्षा उद्देश्य कई गुना अधिक महत् था। अतः उन्हें अन्यान्य भाषाओं का सहारा लेना पड़ा, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज रासो में कन्नौजी शौरसेनी, मागधी, डिंगल, प्राकृत, अपभ्रंश आदि शब्दों का विशाल जाल फैला हुआ है। कवि के समय से लगभग सौ वर्ष पहले से पंजाब में मुसलमानों का प्रवेश हो गया था और जीविकोपार्जनार्थ वे इधर उधर फैलने भी लग गये थे। अतएव अरबी, फारसी एवं तुर्की के शब्द भी रासो में मिलते हैं। होमर के इलियड, व्यास के महाभारत और तुलसी के मानस की भांति रासो में भी प्रक्षिप्त अंश जोड़ कर लोगों ने इसे भ्रष्ट कर दिया है; पर इससे असली रासो का महत्त्व कम नहीं होता। चन्द की प्रतिभा फिर भी स्पष्ट ही है। क्योंकि जहाँ भाषा प्राचीन है, चन्द की है, वहाँ रचना-पद्धति अधिक ओजस्विनी, वर्णन अधिक भव्य और कविता अधिक भाव पूर्ण है।

चन्द एक महान् कवि थे। उनकी कविता वीरोल्लासिनी, सबल एवं काव्य-गुण युक्त है। रासो में वीर रस प्रधान तथा शेष रस गौण हैं और जैसा कि महाकाव्य में होना चाहिए, संध्या, चन्द्र, रात्रि प्रभात, मृगया, वन, ऋतु, संभोग, विप्रलंभ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश हुआ है। चन्द की प्रतिभा का प्रस्फुटन, कला की छाप तथा चरित्रों का खासा चित्रण रासो में विद्यमान है। कथा का तारतम्य निभाने तथा पात्रों का चरित्र चित्रण करने में तो चन्द कुशल थे ही, पर वर्ण्य विषय को साकार रूप दे देने की अद्भुत शक्ति भी

उनमें विद्यमान थी। इसलिये जिस विषय को उन्होंने पकड़ा उसका ऐसा साङ्गोपांग, विशद् एवं सजीव वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारे सामने आ उपस्थित होता है। वस्तुतः रासो में दृश्य काव्य की सजीवता और महाकाव्य की भव्यता है। एक सर्वोपरि विशेषता जो रासो में देखी जाती है, वह है कर्म समारोह की व्यस्तता, पात्रों की क्रियाशीलता। समस्त रासो को पढ़ जाइये, उसमें एक भी पात्र ऐसा नहीं मिलेगा जो गति हीन और अकर्मण्य हो। सभी अपने-अपने कार्य में संलग्न हैं। सभी को कुछ और कुछ करना है। अपनी अपनी धुन में मस्त सभी चले जारहे हैं-कोई सैन्य-शिविर में कोई रणभूमि में और कोई राज-दरबार में। यहाँ यदि यह कह दिया जाय कि रासो चन्द कालीन भारत का सवाक् चित्रपट है, तो भी इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। वास्तव में वह ग्रन्थ है ही इस प्रकार का। इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज की विलास-प्रियता, मुसलमानों की धर्मान्धता, बर्बरता एवं अर्थ लोलुपता, रणाङ्गण की हाय-हत्या, राजपूतों की वीरता उनके उत्कर्ष, उनकी डाँवाडोल स्थिति और उनके पतनादि का जैसा मार्मिक, क्षोभपूर्ण निष्पक्ष एवं नैसर्गिक वर्णन रासो में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रासो पृथ्वीराज का जीवन चरित्र है। परन्तु वास्तव में है, वह हिन्दू मुस्लिम संघर्ष की अमर कहानी।

चन्द के जीवन-चरित्र, उनके पांडित्य और उनकी काव्य-प्रतिभा का वर्णन ऊपर हो चुका है। अब रही रासो के ऐतिहासिक महत्त्व की बात। इस सम्बन्ध में विद्वानों में जो मतभेद है, उसका भी थोड़ा सा उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। बात संक्षेप में यह है। कुछ ही वर्षों पहले तक पृथ्वीराज रासो इतिहास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता था, जिसका मुख्य कारण कर्नल टॉड थे। इन्होंने अपने इतिहास में रासो की बड़े ऊँचे शब्दों में प्रशंसा की और इसमें वर्णित बहुत सी घटनाओं को सत्य मानकर उन्हें अपने ग्रन्थ में स्थान दिया[1]।

1 The wars of Prithivi Raj, his alliances, his numerous and powerful tributaries, their abodes and pedigrees make the work of Chund invaluable as historic and geographical memoranda, besides being treasures in mythology, manners and the annals of the mind.

—Annals and Antiquities of Rajasthan

इसी से वह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ समझा जाने लगा और बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने तो उसका थोड़ा थोड़ा अंश अपनी ग्रन्थ-माला में भी निकालना शुरू कर दिया। इसी समय उदयपुर के कविराजा श्यामलदान और जोधपुर के कविराजा मुरारीदान ने यह कह कर कि रासो एक जाली ग्रन्थ है और सम्वत् १६४० से १६७० के बीच में इसकी रचना हुई है, संदेह उत्पन्न कर दिया। परन्तु रासो एक अंग्रेजी विद्वान् द्वारा प्रशंसित हो चुका था। इसलिये इनके कथन पर किसी ने विशेष ध्यान न दिया, इसी अर्से में प्रसिद्ध पुरातत्व-वेत्ता डॉक्टर बूलर को पृथ्वीराजके समकालीन कवि जयानक रचित पृथ्वीराज विजय'नामक संस्कृत महाकाव्य की भोज-पत्र पर लिखीहुई एक प्राचीन प्रतिकाश्मीर में मिली, इसका अध्ययन करने पर डॉक्टर बूलर को मालूम हुआ कि जयानक सचमुच ही पृथ्वीराज का राजकवि था और उसके रचे महाकाव्य में वर्णित घटनाएँ उस समय के शिलालेख आदि से भी शुद्ध ठहरती हैं। अपने इस खोज की सूचना डा० बूलर ने बंगाल की ऐशियाटिक सोसाइटी को भी दी, जिससे पृथ्वीराज रासो का आगे प्रकाशित होना बन्द हो गया।

इधर अपने मत का समर्थन होते देख कविराजा श्यामलदान का भी साहस बढ़ा और उन्होंने 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' नामक एक छोटी सी पुस्तक लिखी, (सं० १९४३) जिसमें उन्होंने अपने पूर्व कथित मत का विस्तार के साथ मण्डन किया। इसके उत्तर में विष्णुलाल पंड्या ने'रासो की प्रथम संरक्षा'नाम की एक पुस्तक (सं० १९४४) की रचना की। इसमें उन्होंने रासो की घटनाओं को इतिहास-सम्मत बतलाया और इस बात पर जोर दिया कि उसमें वि० सं० का नहीं, बल्कि एक सम्वत् विशेष अनंद संवत् का प्रयोग हुआ है और उसमें ९०-९१ वर्ष जोड़ देने से शास्त्रीय विक्रम सम्वत् निकल आता है। साथ ही पंड्याजी ने यह भी कहा कि रासो का रचयिता जाति का भाट था, इसलिये जातीय द्वेष के कारण श्यामलदानजी ने यह झूठा झगड़ा उठाया है। कई वर्षों तक यह दाँता किटकिट होती रही, पर सार कुछ भी न निकला। अंत में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा ने इस विषय को अपने हाथों में लिया और जयानक के पृथ्वीराज विजय, शिलालेख आदि द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि न तो रासो, जैसा कि कुछ लोग मान बैठे हैं, इतिहास का खजाना है और न उसकी रचना पृथ्वीराज के राजत्व काल में हुई है। अनंद विक्रम सम्वत् की कल्पना को तो आपने बिलकुल ही व्यर्थ और निर्मूल बतलाया[१]।

---

१ ना० प्र० प० भाग १, पृ० ३७७-४५४।

कविराजा श्यामलदान ने रासो का रचना-काल सं० १६४० से सं० १६७० के बीच में माना था, पर ओझाजी ४० वर्ष आगे बढ़े और यह फैसला दिया कि सं० १५१७ और १६४२ के बीच अर्थात् सं० १६०० के आस-पास इसकी रचना हुई है[1]। कहना न होगा कि कविराजा श्यामलदान आदि की अपेक्षा ओझाजी के लेख अधिक गवेषणात्मक, उनकी उक्तियाँ अधिक संतोषजनक तथा उनके प्रमाण अधिक सबल थे। परिणाम यह हुआ कि रासो संबंधी इस वादविवाद में दिलचस्पी लेने वालों के अब मुख्यतः दो दल होगये हैं। जो लोग इतिहास ही को सत्य की कसौटी समझते हैं, वे ओझाजी के निर्णय को अक्षरशः ठीक मानते हैं, पर जो सेंटिमेंटल हैं और अतीत के अंधकार में मार्ग ढूँढने के लिये इतिहास ही को अपना एक मात्र पथ-प्रदर्शक तथा ज्योति-स्तंभ नहीं समझते, वे ओझाजी के मत को सन्देहास्पद बतलाते हैं। पंडित जी की दलीलों को काट तो ये लोग नहीं सकते; पर दबी ज़बान से इतना अवश्य कह देते हैं कि रासो में थोड़ा सा अंश चंद का भी लिखा हुआ है।

इस प्रसंग में एक बात हमें भी कहनी है। वह यह कि इतिहास की दृष्टि से ओझाजी ने रासो की बहुत अच्छी परीक्षा की, पर भाषा विज्ञान की दृष्टि से आपने उस पर बहुत कम प्रकाश डाला है। आपका कहना है—"भाषा की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ प्राचीन नहीं दिखता। इसकी डिङ्गल भाषा में जो कहीं कहीं प्राचीनता का आभास होता है, वह डिङ्गल की विशेषता ही है। आज की डिङ्गल में भी ऐसा आभास मिलता है, जिसका २० वीं सदी में बना हुआ वंशभास्कर प्रत्यक्ष उदाहरण है[2]।" डिङ्गल की विशेषता के संबंध में पंडित जी का यह कथन ठीक है। वस्तुतः डिङ्गल भाषा में यह विशेषता पाई जाती है, और आजकल जो ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रचलित है, उसके अधिक भाग की भाषा इतनी विकृत तथा रूपांतरित होगई है कि उसे देख कर कोई भी समस्त रासो को १२ वीं शताब्दी की रचना नहीं कह सकता। पर साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि उसमें ऐसे अंशों का भी सर्वथा अभाव नहीं है जिनकी भाषा पृथ्वीराज के समय की भाषा से सिद्ध न हो सके। उदाहरण-स्वरूप नीचे लिखी कविता की

---

१ ओझा; कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ६२

२ वही; पृ० ६६

भाषा को देखिये। इसको देखकर भी यदि कोई यह कहे कि यह सं० १६०० के आस पास की भाषा का नमूना है तो इसका मतलब यही है कि वह भाषा विज्ञान के नियमों का गला घोंटने को कटिबद्ध है:—

कहै साह हुस्सेन सुनौ चहुआंन जुझ्झ बत।
आज सोस तुम कज्ज। सेन साहब खँडौंखत॥
मौं कज्जे साहस्स करिग पृथिराज सरन भ्रम॥
हौं उभ्र डंसू अज्ज। करौं राजन अकथ क्रम॥
जपै सुराज पृथीराज तब। कहा अचिज्ज जंपौ हुमह॥
अप्पौं सुछत्र गज्जन पुरह। सद्धि सेन साहाब गह॥

जो हो, सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये आज न महाराज पृथ्वीराज हैं और न चन्द-बरदाई इसलिये हम जो चाहें कह सकते हैं। इसमें कोई विशेष हानि भी नहीं है। हाँ, केवल दुःख है तो केवल इस बात का कि रासो में वर्णित घटनाओं को इतिहास की कसौटी पर कसने के फेर में पड़ कर हम अपने मूल पथ से इतने भटक गये हैं कि इसके वास्तविक महत्त्व को, काव्य संबंधी गुणों को हमने भुला दिया है और यह है चंद के प्रति हमारा अन्याय।

चन्द की कविता के दो एक नमूने देखियेः—

मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह वन्निय।
बालबेस ससिता समीप, अंम्रित रस पिन्निय॥
बिगसिकमल स्रिग भ्रमर, बैन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नखसिख अहि घुट्टिय॥
छत्रपति गयंद हरि हंस गति, विह बनाय संचै सचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय॥
कुट्टिल केस सुदेश, पौह परचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय संध, हंस गति चलत मंदमद॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नख स्वाति बुंद जस।
भमर भँवहि भुल्लहि, सुभाव मकरंद बास रस॥
नैन निरखि सुख पाय सुक, यह सदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय॥

अरुण किरण परसंत, आइ पहुँच्यौ रयसल्लं ।
बज्जे वान विहंग, जानि जुट्टा दोइ मल्लं ॥
संमाही आजान, तेग मानहु हवि दिट्ठिय ।
जानि सिखर भंभि वीज, कंध रैसल्लह बुट्ठिय ॥
लोहान तनी बज्जे लहरि कोउ हल्ले कोउ उत्तरै ।
परनाल रुधिर चल्ले प्रबल, एक घाव एकह मरै ॥
सरस काव्य रचना रचौं, खल जन सुनि न हसंत ।
जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसंत ॥ १ ॥
पूरन सकल विलास रस, सरस पुत्र फलदान ।
अंत होइ सहगामिनी, नेह नारि को मान ॥ २ ॥
जस हीनो नागौ गिनहु, ढँक्यो जग जसवान ।
लंपट हारै लोह छन, त्रिय जीते बिन बान ॥ ३ ॥
पर योषित परसै नहीं, ते जीते जग बीच ।
परतिय तक्कत रैन दिन, तेहारे जगनीच ॥ ४ ॥

राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : ले० पं०मोतीलाल मेनारिया, एम० ए० (अगस्त १९३९ में प्रकाशित) पृ०३१ से ३९ तक।

२

चन्द

चन्द बरदाई की जीवनी इतिहास एक उलझी हुई पहेली है। अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ में जो बातें इनके विषय में लिखी मिलती हैं; वे सब संदिग्ध हैं। इनकी बड़ी ख्याति को देख कर राजस्थान में आज कई ऐसे व्यक्ति उठ खड़े हुए हैं जो अपने को चन्द का वंशज बतलाते हैं। इनमें से कुछ ने नकली वंशावलियाँ भी बनाली हैं, जिन पर विश्वास लाना भारी भूल है।

परम्परा से प्रसिद्ध है कि चंद जाति के राव थे। रासौ में इनका जन्म लाहौर में होना लिखा है—

बलिभद्र सु नागौर, चंद उपज्जि लाहौरह।

आदि सम्यों[1], छन्द १०३

कुछ लोगों ने चंद के पिता का नाम वेण और गुरु का गुरु प्रसाद बतलाया है। परन्तु यह उनका मनगढ़न्त है। रासौ में कहीं भी चंद ने अपने पिता का नाम नहीं लिखा है। न कहीं अन्यत्र इस बात का उल्लेख है। वेण नाम का कोई कवि राव जाति में कभी हुआ होगा, पर वह चंद का पिता ही था, ऐसा मानने का कोई आधार नहीं है और इनके गुरु का नाम गुरुप्रसाद बतलाने की भूल रासो की निम्न लिखित पंक्ति को पूरी तरह न समझ सकने के कारण हुई है—

---

१ अध्याय अथवा सर्ग के लिए 'पृथ्वीराज रासौ' प्राचीन लिखित कुछ प्रतियों में 'प्रस्ताव' और कुछ में 'सम्यों' शब्द का प्रयोग देखने में आता है। 'सम्यों' शब्द एक वचन है। इसका बहुवचन 'सम्यौं' होता है। राजस्थान में यह फारसी शब्द 'ज़माना' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे, 'काल़ रो सम्यों', 'खोटा सम्यौं आया' इत्यादि। परन्तु हिन्दी के कुछ विद्वान् 'सम्यों' (एक वचन) के स्थान पर 'समय' और 'सम्यौं' (बहुवचन) के स्थान पर 'समयों' का प्रयोग करते हैं, जो गलती है। वास्तव में 'सम्यों' का 'समय' से कोई संबंध नहीं है। ये दो भिन्न शब्द हैं। इनके अर्थ में उतना ही अंतर है, जितना क्रमश: इनके पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द Period और Time में है।

तिहि सबद ब्रह्म रचना करौं, गुरुप्रसाद सरसै प्रसन।
आदि सम्यों, छं० १३.

'गुरुप्रसाद' शब्द यहाँ व्यक्ति वाचक संज्ञा नहीं है। इसका अर्थ यहाँ 'गुरु की कृपा' से है।

कहा जाता है कि चन्द के कमला उपनाम मेवा और गौरी उपनाम राजौरा दो स्त्रियाँ और राजबाई नाम की एक कन्या थी। परन्तु यह कथन भी प्रमाण-शून्य है। रासो से इसकी पुष्टि नहीं होती। रासौ में चंद ने केवल अपने लड़कों के नाम लिखे हैं और उनकी संख्या दस बतलाई है।

रासौ में लिखा है कि पृथ्वीराज और चंद दोनों एक ही दिन पैदा हुए थे और एक ही दिन मरे थे

जीह जोति कवि चंद, रूप संजोगि भोगि भ्रम।
इक्क दीह उपन्न, इक्क दीहै समाय कम॥
आदि सम्यों, छंद ६२
ज्यौ भयौ जनम कवि चंद कौ। भयौ जनम सामंत सब।
इक थान मरन जनमह सु इक चलहि किंत्ति ससि लगि रव॥

आदि सम्यों, छंद ७६०

इतिहासकारों ने पृथ्वीराज का जन्मकाल सं० १२२० के लगभग और मृत्युकाल संवत् १२४६ निश्चित किया है। अतः पृथ्वीराज रासौ के अनुसार यही समय चंद का भी ठहरता है।

भारतीय विद्याभवन, बंबई, के आचार्य जिन विजय मुनि द्वारा सम्पादित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' (सिंधी जैन ग्रंथमाला पुष्प २) में पृथ्वीराज और जयचंद विषयक प्रबंधों में चंद रचित चार छप्पय उद्धृत हैं। जिस प्राचीन प्रति में ये छप्पय मिले हैं वह संवत् १५२८ को लिखी हुई है। इससे मालूम होता है कि चंद नाम का कोई कवि सं० १५२८ से पहिले अवश्य है। परन्तु वह चंद कब हुआ, कहाँ हुआ. उसने क्या लिखा, कितना लिखा इत्यादि बातों को जानने का कोई साधन प्राप्त नहीं है। केवल एक बात दृढ़तापूर्वक कही जा सकती है। वह यह कि प्राचीन कालीन वह चंद और अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ का कर्त्ता दोनों एक नहीं हैं। क्योंकि

दोनों की भाषा में बहुत अंतर है। 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में उद्धृत छप्पयों की को भाषा वस्तुतः बहुत पुरानी है, परन्तु आजकल जो ग्रंथ पृथ्वीराज रासौ के नाम से चल रहा है. उसकी भाषा उतनी प्राचीन नहीं है। कुछ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर १८ वीं शताब्दी में किसी दूसरे व्यक्ति ने चंद के नाम से उसे बनाया है। ऐसी दशा में पृथ्वीराज रासौ के आधार पर चंद का जो इतिवृत्त ऊपर दिया गया है, वह ठीक हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। यदि पृथ्वीराज रासौ के इस अज्ञातनामा कवि को प्राचीन-कालीन असली चंद की जीवन संबंधी बातों का पता रहा हो और उन्हें अपने इस रासौ में स्थान दिया हो तो संभव है कि इनमें से कुछ बातें ठीक हों। परन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। अब रही इस दूसरे व्यक्ति अर्थात् अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ के रचयिता चन्द के जावन वृत्त की बात। और सच पूछिए तो इसी से हमें मतलब भी है। परन्तु इसका जीवन-रहस्य अतीत के अतल अंधकार में छिपा हुआ है और शायद आकल्पान्त रहेगा। पृथ्वीराज रासौ की भाषा, वर्णन शैली, विषय-सामग्री के आधार पर इस समय तो अधिक यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह व्यक्ति राजस्थान-निवासी होना चाहिए। राजस्थान के बाहर का वह नहीं हो सकता।

पृथ्वीराज रासौ कब रचा गया यह एक समस्या है। इसका प्रथम प्रामाणिक उल्लेख राजप्रशस्ति[1] महाकाव्य में मिलता है। इसके तीसरे सर्ग में रावल समरसिंह के वर्णन में मोटिंग भट्ट [!] लिखता है कि समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई से

---

१ मेवाड़ की वर्तमान राजधानी उदयपुर से ४० मील उत्तर पूर्व में महाराणा राजसिंह प्रथम (सं० १७०६-३७) का बनवाया हुआ राजसमँद नाम का एक बहुत बड़ा तालाब है। यह तालाब चार मील लम्बा और पौने दो मील चौड़ा है। इस पर १,०५,४७,५८४ रुपया खर्च हुआ था। इसके नौ-चौकी नामक बांध पर ताकों में पचीस बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदा हुआ यह 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य भारत भर में सब से बड़ा है। यह काव्य संस्कृत में है। इसमें २५ सर्ग हैं और १०१७ श्लोक। इसमें मेवाड़ का इतिहास वर्णित है। यह काव्य कोरा कल्पना-प्रसूत नहीं है। इतिहास और काव्य दोनों का इसमें सुन्दर समन्वय हुआ है। इसका रचयिता तैलङ्ग जातीय कठोड़ी कुलोत्पन्न रणछोड़ नाम का कोई पंडित था।

विवाह किया था और शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई में वह मारा गया जिसका वृत्तान्त भाषा के रासो ग्रन्थ में लिखा है'। इससे पूर्व के लिखे पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (सं० १२४६), प्रबन्ध चिन्तामणि (सं० १३६१), हमीर महाकाव्य (सं० १४६०), सुर्जन चरित्र (सं० १६३५) इत्यादि संस्कृत ग्रन्थों में, जिनमें पृथ्वीराज अथवा चौहाण-वंशी अन्य राजाओं का वर्णन आया है, रासो का नाम ही नहीं मिलता। राज-प्रशस्ति की तरह रासो के लेख का हवाला देना तो बहुत दूर की बात है। न अठारहवीं शताब्दी से पूर्व के किसी भाषा ग्रंथ में इसका नामोल्लेख है। इससे मालूम पड़ता है कि अठारहवीं शताब्दी में यह बनाया गया है और सम्भवतः इसकी और राजप्रशस्ति की रचना लगभग साथ साथ ही हुई है।

'राजप्रशस्ति' के इतिहास के लिये इतिहास-सामग्री एकत्र करवाने में महाराणा राजसिंह ने बहुत व्यय किया था और बहुत दूर-दूर तक खोज करवाई थी। फलस्वरूप प्राचीन ग्रन्थों आदि के रूप में इतिहास विषयक प्रचुर सामग्री प्रकाश में आई और 'राजरत्नाकर', 'राजप्रकाश' आदि संस्कृत-हिन्दी के इतिहास संबंधी कई ग्रन्थ उसी समय भी लिखे गए इसी चद का कोई वंशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासो लिख कर सामने लाया प्रतीत होता है। यदि यह व्यक्ति रासो को अपने नाम से प्रचारित करता तो, लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिये अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़ती। अतः चंद रचित बतला कर उसने इस सारे झगड़े का अन्त कर दिया। चन्द का नाम लोक प्रचलित था ही। लोगों को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया।

---

१ ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः॥ २४॥
गोरी साहिबदीनेन गज्जनीशेन संगरम्।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामंतशोभिनः॥ २५॥
दिल्लीश्वरस्य चौहान—नाथस्यास्य सहायकृत्।
स द्वादश सहस्रैः स्ववीराणां सहितो रणे॥ २६॥
बध्वा गोरिपतिं दैवात् स्वर्यातः सूर्यबिम्बभित्।
भाषा रासा पुस्तकेऽस्य युद्धस्योक्तोऽस्ति विस्तरः॥ २७॥

तृतीय सर्ग

राजप्रशस्ति का लिखना सं० १७१८ में प्रारम्भ हुआ था और समाप्ति उसकी संवत् १७३२ में हुई थी। अतएव इसी समय के समानान्तर का समय 'पृथ्वीराज रासौ' की रचना का भी समय है। परन्तु यदि कोई यह कल्पना करे कि 'राजप्रशस्ति' का लिखना आरंभ करने से पूर्व उसके लिए सामग्री जुटाने का काम शुरू होगया होगा और संभव है कि उसी समय रासौ का भी श्री गणेश हो गया हो तो इस समय को खींच-खाँच कर संवत् १७०० तक भी लेजाया जा सकता है। परन्तु इससे आगे ले जाना इतिहास और अनुमान दोनों का गला घोंटना है।[1]

उपरोक्त कथन की पुष्टि रासौ की प्राचीन लिखित प्रतियों से भी होती है। सम्पूर्ण रासौ की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ अभी तक प्राप्त हुई हैं, वे उक्त समय के बाद की हैं। इसके पहले की जो भी प्रतियाँ बतलाई जाती हैं; वे सब जाली हैं। सबसे प्राचीन प्रति सं० १७६० की है। यह मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय के शासनकाल (सं० १७५५-६७) में लिपिबद्ध हुई थी। इसका अन्तिम पुष्पिका-लेख इस प्रकार है—

"संवत् १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायनगते श्री सूर्यें शिशिर ऋतौ सन्मांगल्यप्रद माघमासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोमवासरे। श्री उदयपुर मध्ये हिन्दूपति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंहजी विजय राज्ये। मेदपाट ज्ञातीय भट्ट गोवर्धन सुतेन रूपजी ना लिखितं चंद वरदाई कृतं पुस्तकं॥"

नागरी प्रचारिणी सभा काशी. द्वारा प्रकाशित रासौ का मूलाधार यही प्रति है और इसी की प्रतिलिपि की प्रतिलिपि को उक्त संस्करण के संपादकों ने सं १६४१ की लिखी हुई बतलाया है, जिसकी वजह से विद्वानों में बड़ा भ्रम फैला है तथा डाक्टर गौरीशकर हीराचंद ओझा प्रभृति इतिहासकार रासौ का रचना काल सं० १६०० के आसपास निश्चित करने को बाधित हुए हैं। अतः इसके विषय में दो-एक बातें जान लेना आवश्यक है।

उक्त पुष्पिका के बाद इसके अंत में नीचे लिखे छप्पय और दिए हुए हैं—

---

२ देखिये, माधुरी फरवरी, १६४७ के अंक में प्रकाशित "पृथ्वीराज रासौ का निर्माणकाल" शीर्षक हमारा लेख, पृ०७–१०।

(१)

मिली पंकज गन उद्‌धि करद कागद कातरनी ।
कोटि कवी का जलह, कमल कटिकतें करनी ॥
इहि तिथि संख्या गुनित, कहै कक्का कवियानै ।
इह श्रम लेखनहार भेद भेदै सोइ जानै ॥
इन कष्ट ग्रन्थ पूरन करय, जन बड़ या दुख नां लहय ।
पालियै जतन पुस्तक पवित्र, लिखि लेखिक विनती करय ॥

(२)

गुन मनियन रस पोइ, चन्द कवियन दिद्धिय ।
छन्द गुनी तैं तुट्टि, मन्द कवि भिन्न-भिन्न किद्धिय ॥
देस-देस विष्षरिय. मेल गुन पार न पावय ।
उद्दिम करि मेलवत, आस बिन आलय आवय ॥
चित्रकोट रांन अमरेस नृप, हित श्री मुख आयस दयौ ।
गुन बीन बीन करूना उद्‌धि, लखि रासौ उद्दिम कियौ॥

पहले छप्पय के प्रथम दो चरणों का अर्थ स्पष्ट नहीं है[१]। फिर भी इतना तो समझ पड़ता है कि इस में इस प्रति का लेखन-काल दिया गया है, जो वही होना चाहिए जिसका पुष्पिका में उल्लेख है। परन्तु इस बात की ओर ध्यान न देकर इसका गलत अर्थ इस प्रकार किया गया है, 'यदि पकज से पंकज नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप. उद्‌धि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान लें तो संवत् १६४१ बनता है। शेष शब्दों में मास, तिथि आदि होगी, पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब से रासो का संकलन संवत् १६४१ मान लिया जाय, तो कुछ अनुचित नहीं होगा। इससे कई बातों का सामंजस्य हो जायगा[२]।'

---

१ प्राचीन ग्रन्थों में 'उदधि' और 'करद' (खड्ग) को क्रमशः ७ और १ की संख्या का सूचक माना गया है। अतः 'अंकानां वामतो गतिः' नियम के अनुसार 'मिली पंकज गन उदधि करद' में '१७' की संख्या तो ठीक निकल आती है, पर आगे अर्थ साफ नहीं है।

२ देखिए सं० १९९० की ओरिएण्टल कॉन्फ्रेंस के हिन्दी-विभाग के सभापति की हैसियत से दिया गया डा० श्यामसुन्दरदास का भाषण।

दूसरे छप्पय के 'चित्रकोट रान अमरेस न्रप' शब्दों से अभिप्राय चित्तौड़ के राणा अमरसिंह प्रथम(स० १६५३-७६)लिया गया है[1] और इन दोनों मिथ्या धारणाओं के आधार पर रासौ की सबसे प्राचीन प्रति का लिपि-काल सं० १६४१ और रासौ का निर्माण-काल सं० १६४१ से पूर्व सं० १६०० के आस-पास बतलाया गया है। वास्तव में न तो रासो का निर्माण-काल सं० १६०० के आस-पास है। सम्वत् १७०० और सं० १७३२ के बीच किसी समय यह रचा गया है।

पृथ्वीराज रासौ में हिन्दूपति महाराज पृथ्वीराज चौहाण का जीवन चरित्र वर्णित है। परन्तु चरित्र-नायक के समय का लिखा हुआ न होने से इसमें इतिहास विषयक अनेक त्रुटियाँ आगई हैं। वस्तुत: दो चार व्यक्तियों के नामों एवं घटनाओं का सही उल्लेख होने के अलावा इसमें तथ्य की बात और कुछ भी नहीं है। इसकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करने के लिए मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या आदि विद्वानों ने अनन्द संवत् आदि की जो उक्तियाँ पेश की हैं, वे सब निराधार, भावुकतापूर्ण और भ्रामक हैं।

परन्तु साहित्य की दृष्टि से रासौ एक अपूर्व ग्रन्थ है। यह एक महाकाव्य है। इसमें एक लाख छन्द हैं और ६९ प्रस्ताव। भाषा इसकी पिंगल अर्थात् राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है, जिस पर प्राकृत, अपभ्रंश, अर्बी, फारसी आदि का भी रंग यत्र-तत्र लगा हुआ है। इसमें साटक, दोहा, पद्धरि गाहा, तोमर, भुजंगी आदि अनेक प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं, पर कवित्त (छप्पय) की संख्या सबसे अधिक है। कविता रासौ की बहुत सबल, वीरोल्लासिनी एवं अर्थ-गौरव पूर्ण है। लिखा है—

काव्य समुद्र कवि चंद कृत, मुकत समप्पन ग्यान।
राजनीति बोहिथ सुफल, पार उतारन यान॥

रासो में वीर रस प्रधान तथा शेष रस गौण हैं और जैसा कि एक महाकाव्य में होना चाहिए, संध्या, रात्रि, प्रभात, चन्द्र, मृगया, वन, ऋतु संभोग विप्रलंभ

---

१ देखिए, नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वार प्रकाशित पृथ्वीराज रासौ की उपसंहारिणी टिप्पणी, पृ० १७८।

विवाह, रण-प्रयाण इत्यादि को इसमें यथास्थान सन्निवेश हुआ है। चन्द की प्रतिभा का प्रस्फुटन, कला की छाप तथा चरित्रों का खासा चित्रण रासो में दिखाई देता है। कथा का तारतम्य निभाने तथा पात्रों का चरित्रांकन करने में तो चन्द सिद्धहस्त थे ही, वर्ण्य विषय को साकार रूप दे देने की अद्भुत शक्ति भी उनमें विद्यमान थी। अतः जिस विषय को उन्होंने पकड़ा उसका ऐसा सांगोपांग, सजीव और विशद वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारी आँखों के सामने घूमने लगता है। वस्तुतः रासौ में महाकाव्य की भव्यता और दृश्य काव्य की सजीवता है। इसकी कथा के वर्णन में बड़ा वेग, बड़ी गति है। बड़ी तेजी के साथ कथा-प्रवाह आगे बढ़ता है और पाठक को भी अपने साथ लेता चलता है। इसके सिवा एक दूसरी विशेषता जो रासौ में देखी जाती है वह है कर्म समारोह की वयस्तता, पात्रों की क्रियाशीलता। एक भी पात्र इसमें ऐसा नहीं है, जो निश्चेष्ट एवं अकर्मण्य हो। सभी को कुछ और कुछ करना है। अपनी-अपनी धुन में मस्त सभी चले जा रहे हैं। कोई सैन्य-शिविर में, कोई रणांगण में और कोई राजदरबार में। और तो और जेलखाने तक में पात्रों का हलचल मौजूद है।

व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त समष्टि रूप में हिन्दू-मुसलमान दो जातियों का चरित्रोद्घाटन भी रासौ में खूब हुआ है। मुसलमानों की धर्मान्धता एवं बर्बरता, राजपूतों के शौर्य्य, उनकी डाँवाडोल स्थिति और उनके पतनादि का जैसा मार्मिक, प्रकृत और क्षोभपूर्ण वर्णन रासो में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रासौ पृथ्वीराज का जीवन-चरित्र है; परन्तु असल में है वह हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की अमर कहानी।

पाठकों के विनोदार्थ चंद की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं:—

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइं कइंबासह मुक्कओ।
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ॥
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुदइ सइंभरिवणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
नं जाणउं चंदबलद्दिउ कि न छुट्टइ इह फलह॥ १॥

अगहु म गहि दाहिमओं रिपुराय खयंकरु ।
कूड़ मंत्रु मम ठवओं एहु जंबूय(प?)मिलि जग्गरु ॥
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खिविउं बुज्झइं ।
जंपइ चंद बलिहु मज्झ परमक्खर सुज्झइ ॥
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि ।
कइंबास विश्रास विसट्टविणु मच्छिवंधि बद्धओं मरिसि ॥ २ ॥

नृप ढंकन इल होइ इलह ढंकन सु राज भर ।
षह ढंकन वर देव देव ढंकन वर अंबर ॥
अपजस ढंकन किन्ति किन्ति ढंकन जस धारिय ।
औगुन ढंकन विद्य सुगुन विद्या उच्चारिय ॥
ढंकनह काल वर ध्रंमको ध्रंम काल ढंकन करिय ।
मावत्ति गुरू ढंकै जु षिसु सिसु ढंकन पित उच्चरिय ॥ ३ ॥

मनहुँ कला ससिभांन कला सोलह सो बन्निय ।
वाल बेस ससिता समीप अंम्रित रस पिन्निय ॥
बिगसि कमल म्रिग भमर बैन षंजन मृग लुट्टिग ।
हीर कीर अरु बिंब मोति नष सिष अहि घुट्टिय ॥
छत्रपति गयंद हरि हंस गात विह बनाय संचै सचिय ।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय मनहु काम कामिनि रचिय ॥ ४ ॥

वीर हक्क वर बज्जि थंभ फट्ट्यो धर फट्टिय ।
निडर जोति निब्भरिय लयौ मृगकस्य दबट्टिय ॥
धरनि धूरि धुंधरिय तीन भुवनं परि भग्गिय ।
भयौ सद हंकार जोग-माया ते जग्गिय ॥
प्रहलाद थप्पि उथ्थपि अरिन तीन लोक सुर असुर डरि ।
षिल अषिल षेल षेलन षलन कहर रूपनरसिंहधरि ॥ ५ ॥

भरनि भीर पलभलत रेन चल मलति पवन करि ।
लोथ लोथ पर परति अर्क नहिं सकत गवन करि ॥
श्रोन छिछ उछरंत सुभट सुभ्भति जनु किंसुव ।
गजन ढाल कंदुरति मार सघर तक मध भुव ॥
विरचंत विफुरि सोमेस सुश्र सहस करन नर कर बढ़िय ।
बन वृन्द पियन बड़वानल कि क्रन जांनि संमुह कढिय[1]॥ ६ ॥

इसमें सन्देह नहीं कि इस काल को सामग्री राजस्थानी-भाषा में प्रचुर परिमाण में मिलती है । परन्तु यह सामग्री ऐसी नहीं है कि इसके आधार पर इस काल के साहित्य एवं लोक जीवन की किसी विशेष प्रवृत्ति का पता लगाया जा सके । धर्म, कथा, प्रेम, आदि विषयों के बहुत छोटे-छोटे ग्रन्थ एव छन्द मिलते हैं, जो भाषा और साहित्य दोनों की अप्रौढ़ावस्था को सूचित करते हैं ।

('राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृष्ठ ६०-६८)

१ इन छप्पयों से पहला और दूसरा मुनि जिन विजय द्वारा संपादित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' से लिए गये हैं । शेष चारों मुद्रित रासौ से हैं ।

आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

रासो पर व्यापक दृष्टिकोण*

चन्द का रासो अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं रह सका है। इसमें बहुत प्रक्षेप हुआ है। फिर भी इसके वर्तमान रूप से जो (सत्रहवीं शताब्दी के आस-पास का है) अनुमान किया जा सकता है कि इसमें संस्कृत की ओर जाने की प्रवृत्ति है। तद्भव शब्दों में अनुस्वार लगा कर संस्कृत की छौंक देना तत्कालीन भाषा के नये घुमाव की सूचना देता है। परन्तु इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता (हि० सा० आ०, प्र० व्या० पृ० २१)।

...अजमेर के चौहान उस प्रदेश के पुराने वाशिन्दे थे। सन् ईस्वी की आठवीं शताब्दी के मध्यभाग में ही सपादलक्ष (सवालाख गांवों का देश) या शाकंभरी क्षेत्र (सांभर) में सामन्तसिंह ने चौहान वंश का राज्य स्थापित किया था। उसने उसी समय सिंध की ओर से बढ़ते हुए अरबों से कस के लोहा लिया था और इस प्रकार चौहानों की वह वीर-परंपरा स्थापित की थी, जो तृतीय पृथ्वीराज के समय तक मुस्लिम-वाहिनी से निरन्तर टक्कर लेने में प्रख्यात हो चुकी है। महमूद ने सांभर को नहीं छेड़ा था। इसलिये यह राज्य बचा रह गया था। प्रथम पृथ्वीराज के पुत्र अजयपाल ने सांभर से अपनी राजधानी अजमेर में हटाली थी। अजमेर का नाम अजयसिंह के नाम पर ही है। इस वंश में अर्णोराज और चतुर्थ बीसलदेव (विग्रहराज) बहुत ही प्रतापी और कवि-कल्पवृक्ष राजा हुए। बीसलदेव स्वयं अच्छे कवि थे। उनका लिखा एक प्रस्तर खण्ड पर खोदित हरकेलि नाटक आंशिक रूप में प्राप्त हुआ है[1]। इसका आधार 'किरातार्जुनीय काव्य है, इसमें राजा स्वयं अर्जुन का स्थानापन्न है। महादेवजी उसे दर्शन

---

* सं० टि० डाक्टर द्विवेदीजी द्वारा लिखित 'हिन्दी-साहित्य का आदि काल' नामक पुस्तक के व्याख्यानों से सार ग्रहण कर 'रासो पर व्यापक दृष्टिकोण' शीर्षक से यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक

१ इं० ए०; जि० २०, १८९१, पृ० २०१-२१२ में रोमन अक्षरों में पाठ छपा है।

भी देते हैं । इनके राजकवि सोमदेव ने ललित विग्रहराज नामका एक नाटक लिखा था । यह भी एक प्रस्तर खण्ड पर आंशिक रूप में खोदित मिला है । इसमें इन्द्रपुर के राजा बसन्तपाल की पुत्री देसलदेवी के साथ बीसलदेव का प्रेम वर्णन है । राजा और राजपुत्री कल्पित जान पड़ते हैं और उन दिनों के ऐतिहासिक समझे जानेवाले काव्यों की प्रकृति का सुन्दर परिचय देते हैं । इसी बीसलदेव के काल्पनिक प्रेम कथानक को परवर्ती काव्य बीसलदेव रासो में वर्णन किया गया है । यहाँ प्रेमपात्री मालवा के परमार राजा भोज की कल्पित पुत्री राजमती है । इस काव्य में बीसलदेव रूठ कर उड़ीसा की ओर जाता है; परन्तु ललित विग्रहराज में वह प्रिया के पास यह सन्देश भिजवाता है कि पहले हम्मीर का मान-मर्दन करलूँ, तब उसके पास आऊँगा । दोनों ही कवियों ने ऐतिहासिक तथ्यों की परवा न करके उन दिनों की प्रचलित प्रथा के अनुसार संभावनाओं पर जोर दिया है । बीसलदेव कवियों का आश्रयदाता था और उसके दरबार में भाषा-काव्य की थोड़ी प्रतिष्ठा भी थी । नरपति नाल्ह के बारे में तो, जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, यह सन्देह ही है कि यह कब का कवि है; पर अनश्रुतियाँ सिद्ध करती हैं कि बीसलदेव के दरबार में भाषा-कवियों का मान था । वह स्वयं बड़ा प्रतापी राजा था । काशी कान्यकुब्ज के राजाओं की भाँति यह वंश बाहर से नहीं आया था और साधारण जनता की भाषा की उपेक्षा नहीं करता था । दिल्ली के लौह-स्तम्भ पर उसने गर्व पूर्वक घोषणा की थी कि मैंने विन्ध्याचल से हिमालय तक की सभी भूमि को म्लेच्छ-विहीन करके यथार्थ आर्यावर्त बना दिया है । अपने वंशजों को पुकार कर वह कहता है कि मैंने तो हिमालय और विन्ध्याचल के मध्यवर्ती देश को करद बना लिया है; परन्तु बाकी पृथ्वी को जीतने में तुम लोगों का मन उद्योग-शून्य न हो, इस बात का ध्यान रहे[1] । बीसलदेव नाम ही अपभ्रंश नाम है । प्रबन्ध

---

१ आविन्ध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसङ्गाद्
उद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः ।
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छ-विच्छेदनाभि-
र्देवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते बीसलः क्षोणिपालः ॥
ब्रूते सम्प्रति चाहमानतिलको शाकंभरी-भूपतिः
श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मजान् ।

चिन्तामणि में एक मजेदार कहानी है, जिसमें बताया गया है कि बीसलदेव ने अपना नाम बदल कर विग्रहराज क्यों रखा? बीसलदेव का एक सान्धिविग्रहिक कुमारपाल की सभा में आया। उसने 'बीसल' का संस्कृत 'विश्वल' [विश्व को (जीत) लेने वाला] से व्युत्पन्न बताया। कुमारपाल के मंत्री कपर्दी ने 'विश्वल' (वि=पक्षी, श्वल=भागने वाला) का अर्थ किया—चिड़ियों की तरह भागने वाला यह सुनकर बीसलदेव ने अपना नाम बदल कर विग्रहराज रखा। पर कपर्दी ने इसका भी बेढंगा अर्थ सिद्ध कर दिया उसने बताया कि इस शब्द का अर्थ हुआ शिव और ब्रह्मा की नाक काटने वाला (वि+ग्र+हर+अजो) तब बीसलदेव ने अपना नाम 'कवि बांधव' रखा। यह कहानी तो परवर्त्ती काल का विनोद है; किन्तु इससे एक बात सिद्ध होती है कि बीसलदेव अपने को कवि-बांधव कहता था और उसका यह कहना ठीक था। पुरातन प्रबन्ध में उसकी रानी नागलदेवी को संगीत-कला में अत्यन्त निपुण बताया गया है। राजा बीसलदेव स्वयं संगीत से एकदम अनभिज्ञ था रानी ने उसे संगीत विद्या सिखाई थी। जैन-प्रबन्धों से बीसलदेव के समय की कुछ देशी भाषा की रचनाओं का भी परिचय मिल जाता था। (हि० सा० आ०, द्वि० व्या०, पृ० ३३-३४)।

बीसलदेव के राज्य में जगडू साहु (वसाह जगडुक) बड़े प्रसिद्ध दानी थे। इन्होंने अकाल के समय जनता की बड़ी सेवा की थी और तत्कालीन कवियों ने इनके दान की बड़ी प्रशंसा की है—

> नियति-दान-दाता हरिकान्ता हृदय-हार-शृंगारः।
> दुर्भिक्षसन्निपाते त्रिजगडु (त्रिजगति ?) जगडू चिरंजीयात् ॥
>
> —पु० प्र० ५०-८०।

देशी भाषा में इनकी दानशाला की प्रशंसा में कुछ पद्य प्रचलित हैं। एक दोहा इस प्रकार है:—

> नव करवाली मणि अडा, तिहिं अगला चिमारि।
> दानसाल जगडू तणी, कित्ती कलिहि मझारि ॥
>
> —पु० प्र० ५०-८०

अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः
शेषस्वीकरणाय मास्तु भवतामुद्योगशून्यं मनः ॥
[illegible]० प०, जि० १६, पृ० २१८।

इसका पाठ उपदेश तरंगिणी (पृ० ४१) में इस प्रकार है:—

नउ करवाली मणियडा ले अग्गीला च्यारि ।
दान साल जगडू तणी दीसइ पुहवि मंझार ॥

जगडू बड़े सीधे-सादे थे । उस समय के सभी राजाओं को उन्होंने अकाल में सहायता देने के लिये अशर्फियों से सहायता की थी । बीसलदेव को आठ हजार स्वर्ण मुद्राएँ दी थीं, लाहौर के तुर्क अमीरों को १८ हजार और सुलतान को २१ हजार स्वर्ण-मुद्राएँ दी थीं--

अट्ठय मूड महम्मा बीसल देवस्स सोल हम्मीरा ।
एकबीसा सुलताणा पयंदिन्ना जगडु दुक्काले ॥

इस प्रकार के उदार दानी धन कुबेर के बारे में प्रसिद्ध है कि वे इतने सीधे सादे वेश में रहते थे कि एक बार राजा बीसलदेव उन्हें पहचान ही नहीं सके और जब परिचय कराया गया तो आश्चर्य के साथ पूछ बैठे कि ऐसा वेश क्यों बनाया है ? जगडू ने नम्रता के साथ उत्तर दिया कि महाराज, कपड़े और गहनों से शोभा नहीं बढ़ती. मनुष्य गुण से शोभा पाता है । गहना पहन कर छोटी अंगुलियाँ सुशोभित होती हैं. मध्यमा तो अपनी बड़ाई से ही बड़ी लगती है —

तन्वन्ति डंबर भरैर्महिमा न मन्ये श्लाघ्यो जनस्तु गुणगौरवसंपदैव ।
शोभा विभूषणगुणैरितरांगुलीनां, ज्येष्ठत्वमेव रुचिरं खलु मध्यमायाः ॥

ऐसे उदार और सरल दानवीर की महिमा बखानने के लिये कवियों की भाषा यदि मुखर हो उठी थी तो इसमें आश्चर्य करने की बात नहीं है । बीसलदेव का विरुद जगडू के दान पर अवलंबित था ।

बीसलदे विरुअं करइ जगडु कहावइ जी ।
तुन परीसइ फालिसउ एउ परीसइ घी ॥

इस प्रकार के अजमेर में आगे चल कर चंद वरदाई-जैसे महाकवि का होना उचित ही है । समुद्र में ही कौस्तुभमणि के उत्पन्न होने की संभावना सोची जा सकती है (हि० सा० आ०, द्वि० व्या०, पृ० ३४-३५) ।

इसी प्रकार कालिंजर के चंदेल्लों का वंश बहुत काल से बुन्देलखण्ड में राज्य कर रहा था । इन चंदेलों ने अपनी प्रशस्तियों में अपने को चन्द्रात्रेय

गोत्र का कहा है पंडितों में इस गोत्र को लेकर भी थोड़ा चख-चख है। कुछ लोग कहते हैं कि चंद्रात्रेय शब्द 'चंदेल्ल' शब्द के आधार पर बनाली गई परवर्ती कल्पना है। मुझे ऐसा लगता है कि यह शब्द वस्तुतः पुरोहित के गोत्रनाम का अपभ्रंश रूप है। अनुमान किया जा सकता है कि इन क्षत्रियों के पुरोहित वही शाण्डिल्य गोत्री ब्राह्मण थे, जिन्हें कभी कर्ण के साथ सरयूपार आना पड़ा था और इस शांडिल्य का ही अपभ्रंश रूप 'चंदेल्ल' है। बाद में इसका मूल अर्थ भुला दिया गया और चंदेल्ला का संस्कृत रूप उसी प्रकार 'चन्द्रात्रेय बना लिया गया, जिस प्रकार त्रिपुर या तेवार के रहनेवाले तिवारी ब्राह्मणों ने तिवारी शब्द को त्रिपाठी के रूप में संस्कृत बनाया। इन राजाओं के दरबार में भी भाषाकवि का मान था। इनका सब से अन्तिम प्रतापी राजा परमर्दी या परमाल था, जिसने ११६५ से १२०३ ई० तक राज्य किया। इसी के दरबार में बणाफर कुल के प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदल थे। पृथ्वीराज से परमर्दी कर युद्ध हुआ था, जिसका वर्णन जगनिक के महोबा खण्ड में हुआ है। इसमें परमर्दी हार गया और आल्हा-ऊदल काम आए। पृथ्वीराज ने महोबे में अपने प्रसिद्ध सरदार पज्जून को रखा। पृथ्वीराज का एक लेख मदनपुर में प्राप्त हुवा है, जिससे इस घटना की ऐतिहासिकता प्रामाणिक होती है। लेकिन इस युद्ध में हारने के बाद भी परमर्दी जीवित था और शक्तिशाली भी बना रहा। १२०३ ई० में वह कुतुबुद्दीन से लड़ा था। पृथ्वीराज से उसकी लड़ाई ११८२ ई० में हुई थी। उस समय इस महाप्रतापी राजा का बल टूट गया होगा और वह आसानी से आगे चलकर मुसलमानों के हाथ पराजित होसका होगा। इन बीस वर्षों के भीतर ही कभी जगनिक का वह ओजपूर्ण काव्य लिखा गया होगा, जो बहुत दिनों तक आल्हा और ऊदल की स्मृति में लोककंठ में जीता रहा और बहुत दिनों तक अपने क्षेत्र में ही सीमित बना रहा। फिर कई सौ वर्ष बाद अत्यन्त परिवर्तित रूप में लिखवाया गया। यह स्वाभाविक भी था। क्योंकि जब काव्य के आश्रयदाता राजा उच्छिन्न हो गए तो उसका एक मात्र सहारा जनचित्त ही रह गया। किसी धर्म सम्प्रदाय का तो उसे सहारा मिलता नहीं था, इसलिये वह काव्य बहुत परिवर्तित रूप में प्राप्त हुआ है; परन्तु चन्देल-दरबार में भाषा-काव्य के सम्मानित होने का सबूत अवश्य देता है। (हि० सा० आ०, द्वि० व्या०, पृ० ३५-३६)।

निरन्तर युद्ध के लिये प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक होगया था। चारण इसी श्रेणी के लोग हैं। उनका कार्य ही था, हर प्रसंग में आश्रय-

दाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देनेवाली घटना-योजना का आविष्कार। उस काल के साहित्य में ऐसी छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई हो जाने की बात मिलती है कि आज का सहृदय विस्मय से देखता रह जाता है। पृथ्वीराज के चाचा कन्ह ने किसी को मूंछों पर हाथ फेरते देखा,सिर उतार लिया। पछताव उन्हें भी हुआ। प्रायश्चित्त रूप में उन्होंने आंखों पर पट्टी बांध ली। यह वीरता का आदर्श था। इन कवियों ने राजस्तुति के नाम पर असम्भव घटनाओं और अपतथ्यों की योजना की। विवाह भी इस वीरता का एक बहाना बनाया गया। आजकल के ऐतिहासिक विद्वान् बेकार ही इन घटनाओं और अपतथ्यों से इतिहास खोज निकालने का प्रयास करते हैं। इन काव्यों में व्यापक रूढ़ियों के आधार पर अपने राजा को या काव्य नायक को उत्साह का आश्रय और रति का आलम्बन बनाना चाहा है। इनमें इतिहास को समझने का कम और तत्काल प्रचलित काव्य-रूढ़ियों को समझने का अधिक साधन है। (हि० सा० आ०, द्वि० व्या०, पृ० ४०)।

···हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में दो प्रकार के अपभ्रंशों की चर्चा की है। एक तो शिष्ट जन की अपभ्रंश भाषा जिसका व्याकरण स्वयं हेमचन्द्राचार्य ने लिखा था और जो प्रधान रूप से जैन पंडितों के हाथों सँवरती रही। यह बहुत कुछ प्राकृत और संस्कृत की भाँति ही शिष्टभाषा बन गई थी। दूसरी ग्राम्य अप-भ्रंश भाषा जो संभवतः चलती जबान थी। भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह अधिक अग्रसर हुई भाषा है। संदेशरासक इसी प्रकार के अपभ्रंश में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में अर्थात् लगभग उसी समय जब पृथ्वीराज रासो लिखा जारहा था—रचित हुआ था। इसकी भाषा बोलचाल के अधिक नजदीक थी। यद्यपि इसके कवि अद्दहमाण या अब्दुलरहमान प्राकृत अपभ्रंश की परंपरा के अच्छे जानकार थे और बीच-बीच में उन्होंने जो प्राकृत गाथाएँ लिखी हैं, वे उनकी प्राकृत-पटुता की सूचना देती हैं, फिर भी उन्होंने अपनी रचना बोल-चाल के अधिक नजदीक रखने की ओर अधिक ध्यान दिया है। उन्होंने नम्रता प्रकट करते हुए कहा है कि जो लोग पंडित हैं, वे तो मेरे इस कुकाव्य पर कान देंगे ही नहीं और जो मूर्ख हैं- अरसिक हैं- उनका प्रवेश मूर्खता के कारण इस ग्रन्थ में हो ही नहीं सकेगा, इसलिये जो न पंडित हैं, न मूर्ख हैं; बल्कि मध्यम श्रेणी के हैं, उन्हीं के सामने सदा हमारी कविता पढ़ी जानी चाहिए—

णहु रहइ बुहा कुकवित्त रेसि
अबुहत्तणि अबुहह णहु पवेसि ।
जिण मुक्ख ण पंडिय मज्झयार,
तिह पुरउ पढिव्वउ सव्ववार ॥

सो, यह काव्य बहुत पढ़े-लिखे लोगों के लिये न होकर ऐसे रसिकों के लिये है, जो मूर्ख तो नहीं है, पर बहुत अधिक अध्ययन भी नहीं कर सके हैं। रासो कुछ इसी ढंग की भाषा में लिखा गया होगा। यद्यपि कवि ने उस ग्रन्थ में भी थोड़ी नम्रता दिखाई है, पर यह प्रथा पालनमात्र के लिये, नहीं तो रासोकार को अपने भाषा ज्ञान पर गर्व है। उसकी भाषा में थोड़ी प्राचीनता की छौंक दी गई हो तोकोई आश्चर्य नहीं है। सौभाग्यवश रासो के चार छन्द अपभ्रंश रूप में प्राप्त होगये हैं. जिनसे मूल रासो की भाषा का कुछ अन्दाजा लग जाता है। तत्कालीन साहित्यिक भाषा के जो भी उदाहरण मिल जाते हैं. उन्हें देखते हुए अनुमान किया जा सकता है कि पुरातन-प्रबन्धसंग्रह में सुरक्षित छप्पयों की भाषा के आस पास ही मूल रासो की भाषा रही होगी (हि० भा० आ०, द्वि० का०, पृ० ४२)।

···इन दिनों जो रासो मिलता है उसमें तो इस नियम का अत्यधिक प्रयोग है. जो दुरुपयोग की सीमा को भी पार कर गया है। उदाहरणार्थ 'फरक्क' झड़प्पि', 'चल्लि', लिक्खि' आदि में भी इसी परंपरा को दुरुपयोग की सीमा तक घसीटा गया है। मूल रासो में यह प्रवृत्ति बहुत स्वस्थ और संयत रूप में रही होगी। संभवतः संदेशरासक की मात्रा के आस-पास हो (हि० सा० आ०, दि०, व्या०, पृ० ४५)।

रासो में अनुस्वार देकर छंदों निर्वाह की यामना बहुत अधिक मात्रा में है। 'जंत भूषनं तनं' अलक्क छुट्टयं मनं। (१० २११२) जैसे छन्दों में अकारण अनुस्वार ठूँसे गए हैं। एक कारण तो अनुस्वार देने का यह हो सकता है कि भाषा में संस्कृत गमक आजाए। परन्तु यह प्रवृत्ति सिर्फ इतने ही उद्देश्य से होती तो इतना विशाल रूप न धारण करती। वस्तुतः अपभ्रंश काल में दो प्रकार से अनुस्वार जोड़ने के उदाहरण मिल जाते हैं— (१) मूल संस्कृत में उस पद में अनुस्वार रहा हो और छन्द की पादपूर्ति के लिये उसकी आवश्यकता अनुभव की गई हो। परवर्ती हिंदी में 'परंब्रह्म'—जैसे शब्दों में यही प्रवृत्ति है। प्राकृत पिंगल सूत्र के उदाहरणों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है—

ठवि सल्ल पहिल्लौ चमर हिहिल्लौ, सल्लजुअं पुणु बहू ठिआ। (पृ० २१५) में 'सल्लजुअं' का अनुस्वार 'सत्ययुगं' में आए हुए संस्कृत अनुस्वार का अवशेष है (हि० सा० आ०, द्वि० व्या०, पृ० ४५)।

...अपभ्रंश या देश्य भाषा की ऐसी रचनाएँ जिनका निर्माण आज के हिंदी भाषी क्षेत्रों में हुआ था, प्रायः नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं, वे अपने मूल अविकृत रूप में नहीं मिलतीं। अपभ्रंश के जिन चरितकाव्यों की चर्चा पहले की गई है, वे अधिकांश में जैन-परम्परा से प्राप्त हुए हैं और हिन्दी भाषी क्षेत्रों के बाहर लिखे गए हैं। व इस बात की सूचना देते हैं कि इस काल में जैनेतर-परम्परा में भी प्रचुर काव्य-साहित्य लिखा गया था। नाना ऐतिहासिक कारणों से ये रचनाएं सुरक्षित नहीं रह सकीं। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना 'पृथ्वीराज रासो' है। किसी समय यह ग्रंथ बहुत प्रामाणिक माना गया था और पृथ्वीराज विषयक इतिहास के लिये प्रामाणिक स्रोत समझा गया था। बंगाल की एसियाटिक सोसायटी ने इसका प्रकाशन भी आरम्भ कर दिया था। लेकिन उन्हीं दिनों डा० बूलर ग्रन्थानुसंधान के लिये काश्मीर गए और वहाँ उन्हें 'पृथ्वीराज विजय' की एक खंडित प्रति मिली। यह सन् १८७६ ई० की बात है। डा० बूलर को 'पृथ्वीराज विजय' अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ मालूम हुआ और उन्होंने सोसायटी को एक पत्र लिखकर (१८६३ की प्रोसीडिंग्स देखिए) पृथ्वीराज रासो का मुद्रण बन्द करा दिया। बाद में इस विशाल ग्रन्थ को काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा ने प्रकाशित किया। किन्तु तभी से विद्वानों के मत में रासो की उपादेयता के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न हो गई। डा० बूलर ने अपने पत्र में रासो की इतिहास-विरुद्धता की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था। उनका विश्वास था कि 'पृथ्वीराज विजय' में लिखी घटनाएँ सन् ६७३ ई० से सन् ११६८ ई० तक की प्रशस्तियों और शिलालेखों से मिलती हैं। 'पृथ्वीराज-विजय' के अनुसार पृथ्वीराज, सोमेश्वर और उसकी रानी कर्पूरदेवी के पुत्र थे। कर्पूरदेवी चेदिदेश की कन्या थी। पृथ्वीराज को बाल्यावस्था में ही सिंहासन मिला था और राज्य का संचालन उनकी माता कर्पूरदेवी कदम्बवास नामक मन्त्री की सहायता से करती थी। कदम्बवास रासो का प्रतापी मन्त्री कैमास है। परन्तु पृथ्वीराज रासो के अनुसार पृथ्वीराज अनंगपाल की पुत्री से उत्पन्न हुए थे और दत्तक भी थे। पृथ्वीराज के लेखों से 'पृथ्वीराज विजय' का ही समर्थन होता है।

पृथ्वीराज के अत्यन्त अभिन्न मित्र मानेजानेवाले कवि का यह आरम्भ ही इतना गलत हो–यह बात समझ में नहीं आती (हि०सा०आ०, तृ०व्या०, पृ० ४६)।

बाद में लोगों ने और भी तरह-तरह की ऐतिहासिक गलतियाँ दिखाई। रासो के प्रति एक प्रकार का साहित्यिक 'मोह' रखनेवाले विद्वानों को इस बात से कष्ट हुआ। उन्होंने नाना युक्तियों से उसे ऐतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न शुरू किया। एक आनंद संवत् की बेबुनियादी कल्पना को सहायक बनाया गया। पर रासो वर्तमान रूप में इतनी इतिहास-विशुद्ध घटनाओं का भौजाल है कि उसे किसी भी युक्ति से इतिहास के अनुकूल नहीं सिद्ध किया जा सकता। अब यह निश्चित रूप से विश्वास किया जाने लगा है कि मूल रासो में बहुत अधिक प्रक्षेप होता रहा है और अब यह निर्णय कर सकना कठिन है कि मूल रासो कैसा था? सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् म० म० पं० गौरीशंकर ओझाजी ने निश्चित प्रमाणों के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि रासो का वर्तमान रूप सं० १५१७ और १७३२ के बीच किसी समय में प्राप्त हुआ था। अर्थात् वर्तमान रासो का अन्तिम रूप से संकलन-संपादन सत्रहवीं शताब्दी के आस-पास हुआ है। इधर जब से मुनि जिन विजयजी ने 'पुरातन प्रबध-संग्रह' में प्राप्त चार छप्पयों की ओर पंडितों का ध्यान आकृष्ट किया है, तब से मूल रासो में प्रक्षेपवाले सिद्धान्त की पुष्टि होगई है। ये छप्पय प्रायः अपभ्रंश में हैं। वर्त्तमान रासो में ये विकृत रूप में प्राप्त होते हैं। हम आगेवाले व्याख्यान में इनको उद्धृत करने जा रहे हैं। यहाँ केवल इतना कहना उचित जान पड़ता है कि इन छप्पयों से 'पृथ्वीराज-विजय' का भी विरोध नहीं है और रासो में तो ये मिलते ही हैं, इनमें 'पृथ्वीराज-विजय' वाले प्रसिद्ध मंत्री 'कदम्बवास' (कइंमास) की पृथ्वीराज द्वारा की हुई हत्या की चर्चा है। इसलिये इनमें अनैतिहासिक तत्त्व नहीं है। भाषा इनकी अपभ्रंश है और इस तथ्य से यह अनुमान पुष्ट होता है कि रासो भी कुछ उसी प्रकार के अपभ्रंश में लिखा गया था, जिस प्रकार के अपभ्रंश में ग्यारहवीं शताब्दी-वाला दमोह-वाला शिलालेख* (जिसकी चर्चा प्रथम व्याख्यान में की गई है) लिखा गया था (हि०सा०आ०, तृ०व्या०, पृ०५०)

---

* सं०टि०— इस शिलालेख का अवतरण स्व० डा० हीरालाल ने 'हिन्दी के शिला और ताम्रलेख' शीर्षक निबन्ध में प्रकाशित किया था, जो काशी ना०प्र०सभा (न०सं०) भाग ६, सं०१

अब यह मान लेने में किसी को आपत्ति नहीं है कि रासो एकदम जाली पुस्तक नहीं है। उसमें बहुत अधिक प्रक्षेप होने से उसका रूप विकृत जरूर हो होगया है; पर इस विशाल ग्रन्थ में कुछ सार भी अवश्य है। इसका मूल रूप निश्चय ही साहित्य और भाषा के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा। परन्तु जब तक कोई पुरानी हस्तलिखित प्रति नहीं मिल जाती, जब तक उसके विषय में कुछ कहना कठिन ही होगा। फिर भी मेरा अनुमान है कि उस युग की काव्य-प्रवृत्तियों और काव्य रूपों के अध्ययन से हम रासो के मूल रूप का संधान पा सकते हैं। परिश्रम करके यदि हम उस रूप का कुछ आभास पा जायँ तो उसकी साहित्यिक महिमा और काव्य-सौंदर्य की किंचित् झलक पा सकेंगे; परन्तु भाषा का प्रश्न फिर भी विवादास्पद रह जाएगा। 'पुरातन प्रबंध' वाली परंपरा को विश्वास योग्य मानें तो वह भाषा अपभ्रंश ही थी, जो उस युग की प्रवृत्तियों को देखते हुए ठीक ही मालुम देती है। परन्तु उसे मानने में थोड़ी हिचकिचाहट भी हो सकती है। जैन ग्रन्थकार अपभ्रंश भाषा के विषय में जरूरत से कहीं ज्यादा सावधान रहे हैं, जिस प्रकार तुलसीदास की रामायणवाली भाषा को उत्साही ब्राह्मण पंडितों के हाथ शुद्ध होकर संस्कृतानुयायी बनना पड़ा है, उसी प्रकार संभव है कि चंद की देश्यमिश्रित अपभ्रंश (जो कीर्तिलता के अवहट्ट के समान भी हो सकती है), उत्साही जैन मुनियों के हाथ कुछ शुद्ध बनकर विशुद्ध अपभ्रंश बन गई हो। यह संभावना हो सकती है। हमें उस ओर से सावधान होना होगा। इसीलिये मैं भाषा की दृष्टि से इस प्रश्न पर अभी विचार करने योग्य स्थिति में नहीं हूँ। साहित्यिक दृष्टि से यदि कुछ हाथ लग जाय तो भी कम लाभ नहीं है। 'अर्ध तजहिं बुध सरबस जाता।' (हि०सा०आ०,तृ०व्या०,पृ० ५८-५९)।

सं० १९८२ द्वारा छापा गया था। उसमें से कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं—

बिसमत्ति गोत्त उत्तिम चरित विमल पवित्तोभाणु।
अरबह घडणो संसिजय ढुवडो भूवाणु।
ढुवडो पटि परिठियउ खत्तिय विज्जयपालु।
जोएो काइउ रणि विजिणिउ तह सुअ भुवण पालु॥······

हि०सा०आ०, प्र०व्या०पृ०२२

भिन्न-भिन्न विद्वानों के परिश्रम से अब तक रासो के चार रूप उपलब्ध हुए हैं। इनमें सबसे बड़ा तो काशी–नागरी–प्रचारिणी–सभा वाला संस्करण है, जो सं० १७५० की उदयपुर वाली प्रति के आधार पर संपादित हुआ था। ओरियंटल कालेज, लाहौर की एक प्रति है, जिसको पं० मथुराप्रसाद दीक्षितजी असली रासो मानते हैं। इसकी एक प्रति बीकानेर के बड़े उपासरे के जैन-ज्ञान-भाण्डार में है, एक अबोहर के साहित्य-सदन में है और एक श्री अगरचंद नाहटा के पास है। दीक्षितजी कहते हैं कि रासो के 'सत्र सहस' का अर्थ सात हजार है और इस दूसरे रूपान्तर की श्लोक संख्या आर्या के हिसाब से लगभग सात हजार है भी। इस रूपान्तर की सभी प्रतियाँ संवत् १७०० के बाद की बताई जाती हैं। तीसरा लघु रूपान्तर है, जिसकी तीन प्रतियाँ तो बीकानेर–राज्य के अनूप-संस्कृत–पुस्तकालय में तथा एक श्री अगरचन्द नाहटा के पास है। इसकी एक प्रति सत्रहवीं शताब्दी की है। नाहटाजी वाली प्रति सं०१७२८ की है और बाकी दो में सवत् नहीं दिया गया है; पर अन्दाज से उनका भी समय इसी के आसपास कूता गया है। चौथा एक लघुतम संस्करण है, जिसे राजस्थानी साहित्य के परिश्रमी अन्वेषक श्री अगरचन्दजी नाहटा ने खोज निकाला है, इसका लिपिकाल सं०१६६७ है[1]। यह दावा किया जाने लगा है कि लघुतम रूपान्तर ही मूल रासो है। परन्तु इतिहास की जिन गलियों से बचने के लिये बड़े रासो को अप्रामाणिक और छोटे रासो को प्रामाणिक बताया जाता है, उनमें से कुछ न कुछ छोटी प्रतियों में भी रह जाती हैं। वस्तुतः कई भिन्न-भिन्न उद्धारकों ने चंद के मूल ग्रंथ का उद्धार किया था। सभी संस्करण परवर्ती हैं सबमें क्षेपक की संभावना बनी हुई है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर एक भी प्रति प्रामाणिक नहीं ठहरती (हि०सा०आ०, तृ०व्या०, पृ०५१)[2]।

इधर उदयपुर के कविराव मोहनसिंह ने रासो को ऐतिहासिक प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये एक दूसरा ही उपाय सुझाया है[3]। उनका कहना है कि रासोकार ने अपने द्वारा प्रयुक्त छन्दों की जाति के बारे में स्वयं ही लिखा है कि—

---

१ डा० उदयनारायण तिवारी: वीर काव्य, पृ० १०८–१११।

२ रासो की ऐतिहासिक आलोचना के सारांश के लिये देखिए, वीरकाव्य, पृ० ११४–१५३।

३ राजस्थान भारती, भाग १, अंक २–३ जुलाई अक्टूबर १९४६, पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार।

छन्द प्रब्रंध कवित्त यति, साटक गाह दुहत्थ।
लघु गुरु मंडित खंडि यह, पिंगल अमर भरत्थ॥

अर्थात् (मेरे प्रबन्धकाव्य रासो में) कवित्त (षट्पदी) साटक (शार्दूल-विक्रीडित), गाहा (गाथा) और दोहा नामक वृत्त प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें मात्रादि-नियम पिंगलाचार्य के अनुसार हैं और संस्कृत (अमरवाणी) के छन्द भारत के मतानुकूल हैं (हि०सा०आ, तृ० व्या०पृ० ५१)।

इस प्रकार, कविरावजी का मत है कि, यही चार छंद रासो के मूल छंद हैं, बाकी सभी प्रक्षिप्त हैं। यह विश्वास किया जा रहा है कि इस बात को स्वीकार कर लेने पर, रासो की ऐतिहासिकता पर आँच नहीं आएगी। कविरावजी का लेख अभी राजस्थान-भारती में छप रहा है। जब वह पूरा प्रकाशित हो जाएगा तो उस पर पंडितों की बहस शुरु होगी*। अभी यहाँ उस झगड़े में पड़े बिना भी हम आसानी से समझ सकते हैं कि ये चार छंद यदि रासो के मूल छन्द हों भी तो यह मानने में काफी कठिनाई बनी रहेगी कि प्रक्षेप करनेवालों ने इन छन्दों में रचना करके कुछ प्रक्षेप किया ही नहीं होगा। ये छंद अपभ्रंश के बहुत पुराने और परिचित छंद हैं, प्रक्षेप करने वालों ने इन छन्दों का भी उपयोग किया ही होगा और बाकी छन्दों को रासो से निकाल भी दें तो प्रक्षेप की समस्या हल नहीं हो-जाएगी। रासो के कुछ अशुद्ध बताए जानेवाले संवत्-दोहा और छप्पय छंदों में ही हैं। दोहा—जैसे छन्द को प्रक्षेप करनेवाले कैसे भूल सकते हैं। दोहा तो अपभ्रंश का अत्यंत लाड़ला छन्द है। अपभ्रंश-रचना को दोहा-बंध कहने की प्रथा भी रूढ़ हो गई थी और फिर पद्धड़ियाबंध भी उन दिनों की कथाओं की विशिष्ट पद्धति बन गया था। यह भी कैसे मानलें कि पद्धड़िया को चंद-जैसे कवि ने

---

* स० टि०—इस ग्रन्थ में कविरावजी का सम्पूर्ण लेख 'रासो पर की गई शंकाओं का समाधान' इस शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित किया जा चुका है और साथ ही 'रासो सम्पादन के बाद नये विचार' भी इसी शीर्षक के अन्तर्गत, इनके सम्पूर्ण विचार युक्त दोनों निबन्ध दे दिये गये हैं। साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के तत्वावधान में श्री कविराव द्वारा सम्पादित रासो के चारों भाग भी प्रकाशित हो चुके हैं। अब विद्वज्जन इनके पूरे विचारों पर भली प्रकार निर्णय कर सकेंगे, जैसा कि महा-मनीषी श्री द्विवेदीजी ने भी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है।
—सम्पादक

अपने काव्य का छंद चुना ही नहीं होगा। लेकिन जैसा कि मैंने अभी कहा है, इस विवाद में पड़ना व्यर्थ है। रासो में इतिहास की संगति खोजने का प्रयास ही बेकार है। हम आगे इस बात पर विस्तार पूर्वक विचार करने का अवसर पाएँगे।
(हि० सा० आ०, तृ० व्या०, पृ० ५२)

…रासो में भी कई बार उस काव्य को 'कीर्ति कथा' कहा गया है[१]। इस प्रकार यह 'कथा' शब्द बहुत व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। कुछ थोड़े से सामान्य लक्षण इन काव्यों में अवश्य एक-से रहते होंगे। उन पर विचार किया जाना चाहिए (हि० सा० आ०, तृ० व्या० पृ० ५३)

…पुराणों में जटिल प्रश्नोत्तर विधान की योजना मिल जाती है, लेकिन पृथ्वीराज रासो में संभवतः इस प्रकार की जटिलता का कुछ आभास पाया जा सकता है (हि० सा० आ०, तृ० व्या०, पृ० ५८)।

…प्राचीन काल से ही प्राकृत और संस्कृत-कथाओं में श्रोता और वक्ता की परंपरा रखने का नियम चला आ रहा है। जैन-कवियों में और सूफी कवियों में इस नियम के पालन में थोड़ी शिथिलता दिखाई पड़ती है; परन्तु अन्यत्र श्रोता-वक्ता का रखना आवश्यक समझा जाता है। ग्यारहवीं -बारहवीं शताब्दी में भी यह नियम जरूर माना जाता रहा होगा। वैतालपचविंशति, शुकसप्तति, आदि कथाओं में भी पूर्वकथा की योजना की गई और रासो में तो यह योजना स्पष्ट ही मिल जाती है। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि विद्यापति की कीर्तिलता में उस समय के देश-भाषा-साहित्य के गुणानुवादप्रधान चरित-काव्यों में अनेक लक्षण मिलते हैं और यह पुस्तक, उस युग के गुणानुवाद मूलक चरितकाव्यों में सबसे अधिक प्रामाणिक है। कवि ने उसे

---

१. रासो में कई जगह 'कथा' कहने की बात आई है। परन्तु आरंभिक पद्यों में एक प्राकृत की गाथा आई है, जिसका उल्लेख इसी व्याख्यान में आगे किया जा रहा है। 'उसमें कित्ती कहो आदि अन्ताई' पाठ है। गाथा प्राकृत में लिखी गई होगी। उसमें 'वुत्त' या उक्त पहले ही आ चुका है, इसलिये फिर से 'कहो' की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती है। जान पड़ता है, यहाँ मूल रूप में 'कहो' नहीं, 'कहा' था। इस प्रकार मूलरूप इस प्रकार रहा होगा-दिल्ली ईस गुणाणं कित्ति,"कहा आदि अन्ताणं।"

'काहाणी' या 'कथानिका' कहा है, जो सम्भवत: उसके आकार की छोटाई के कारण है। उसमें प्राय: उन सभी छन्दों का व्यवहार हुआ है, जिनका रासो में व्यवहार मिलता है। रासो की ही भांति उसमें संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का प्रयोग है और देश्य मिश्रितअपभ्रंश तो वह है ही। ऐसा जान पड़ता है कि उन दिनों ऐतिहासिक व्यक्ति के गुणानुवाद-मूलक चरित-काव्य इसी ढंग से लिखे जाते थे। विद्यापति के सामने ऐसा ही कोई ग्रन्थ आदर्श रूप में उपस्थित था। मैं यह नहीं कहता कि वह ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' ही था; क्योंकि गद्यपद्यमयी रचना को संस्कृत में 'चम्पू' कहते हैं। किन्तु प्राकृत का पद्यबद्ध कथाओं में थोड़ा-थोड़ा गद्य भी रहा करता था। लीलावती में गद्य है, पर वह नाम मात्र का ही है कीर्तिलता में गद्य और पद्य दोनों है। रासो में भी गद्य अवश्य रहा होगा। वस्तुत: रासो में बीच-बीच में जो वचनिकाएँ आती है, वे गद्य ही हैं। निस्सन्देह इन वचनिकाओं की भाषा में भी परिवर्त्तन हुआ होगा। परन्तु वे इस बात के सबूत के रूप में आज भी वर्तमान हैं कि उन दिनों का प्राकृत और अपभ्रंश कथाओं के सम्पूर्ण लक्षण रासो में मिलते हैं (हि० सा० आ०, तृ० व्या०, पृ० ५६)।

पृथ्वीराज रासो चरित-काव्य तो है ही, वह रासो या 'रासक' काव्य भी है। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में रासक को गेयरूपक माना है[1]। ये गेय रूपक तीन प्रकार के होते थे-मसृण अर्थात् कोमल, उद्धत और मिश्र। रासक-मिश्र गेयरूपक है। टीका में इन गेय-रूपकों के सम्बन्ध में बताया गया है कि इनमें से कुछ तो स्पष्ट रूप से कोमल हैं, जैसे डोम्बिका। इस गेयरूपक के बारे में अधिक विचार करने का अवसर हमें आगे मिलेगा। कुछ दूसरे हैं, जो स्पष्ट रूप से उद्धतरूपक हैं, जैसे भाणक। कुछ ऐसे हैं, जिनमें मसृण की प्रधानता होती है, कुछ उद्धत भी मिल जाता है, कुछ में उद्धत कम मिला होता है, जैसे प्रस्थान। कुछ में अधिक मिला होता है, जैसे शिङ्गटक। परन्तु ऐसे भी कई हैं, जिनका प्रधान रूप तो उद्धत होता है, फिर भी थोड़ा-बहुत मसृण का प्रवेश हो जाता है। भाणिक ऐसा ही है। फिर प्रेरण, रामाक्रीड,

---

१ गेयं डोम्बिकाभाणप्रस्थानशिङ्गकभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसकरासकगोष्ठीश्रीगदितरागकाव्यादि। ८-४

रासक, हल्लीस आदि ऐसे ही रूपक हैं। सो, रासक आरम्भ में एक प्रकार के उद्धत-प्रयोग-प्रधान गेयरूपक को कहते थे, जिसमें थोड़ा बहुत 'मसृण' या कोमल प्रयोग भी मिले होते थे। इसमें बहुत सी नर्तकियाँ विचित्र ताल-लय के साथ योग देती थीं। यह मसृणोद्धत ढंग का गेयरूपक था। संदेश-रासक इसी प्रकार का रूपक है। यह मसृण अधिक है। पृथ्वीराज रासो यदि सचमुच ही पृथ्वीराज के काल में लिखा गया था तो उसमें रासक-काव्य के कुछ न कुछ लक्षण भी अवश्य रहे होंगे। संदेशरासक का जिस ढंग से आरम्भ हुआ है, उसी ढंग से रासो का भी आरम्भ हुआ है। आरम्भ की कई आर्याएँ तो बहुत-अधिक मिलती हैं। उदाहरण लीजिएः—

सन्देशरासक—

जइ बहुलदुद्ध संमोलिया य उल्ललइ तंदुला खीरो।
ता कणकुक्कससहिआ रब्बडिया मा दडब्बउ ॥ १६ ॥

पृथ्वीराजरासो-

पय सक्करी सुभतौ, एकत्तौ कनय राय भोयंसी।
कर कंसी गुज्जरोय, रब्बरियं नैव जीवंति ॥ छं०४३, रू० १६

संदेशरासक—

जइ भरहभावछंदे णच्चइ णवरंगचंगिमा तरुणी।
ता किं गाम गहिल्ली तालीसद्दे ण णच्चेचेइ ॥ १५ ॥

पृथ्वीराज रासो—

सत्त खैन आवासं, महिलानं मह सद्द नूपरया।
सतफल बज्जुन पयसा, पब्बरियं नैव चालंति ॥ छं०४४, रू०१७ इत्यादि

संदेशरासक में युद्ध का कोई प्रसंग नहीं है। पर उद्धत-प्रयोग प्रधान गेय-रूपक में युद्ध का प्रसंग आना प्रयोगानुकूल ही होगा और युद्धों के साथ प्रेम-लीलाओं का मिश्रण भी प्रयोग और वक्तव्य-विषय के मिश्रण के अनुकूल ही होगा। इससे लगता है कि पृथ्वीराज रासो आरम्भ में ऐसा कथाकाव्य था, जो प्रधान रूप से उद्धत-प्रयोग प्रधान मसृण-प्रयोग-युक्त गेयरूपक था। उसमें कथाओं के भी लक्षण थे और रासकों के भी (हि० सा० आ०, तृ० व्या०, पृ० ६०)।

हेमचन्द्राचार्य ने यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि इन काव्य रूपों के ये भेद पुराने लोगों के बताए हुए हैं— पदार्थाभिनयस्वभावानि डोम्बिकादीनि गेयानि रूपकाणि चिरन्तनैरुक्तानि। और इन्होंने पुराने आचार्यों के बताए लक्षण भी उद्धृत किए हैं। धीरे-धीरे इन शब्दों का प्रयोग कुछ घिसे अर्थों में होने लगा। जिस प्रकार 'विलास' नाम देकर चरितकाव्य लिखे गए, 'रूपक' नाम देकर चरितकाव्य लिखे गए, 'प्रकाश' नाम देकर चरितकाव्य लिखे गए, उसी प्रकार 'रासो' या रासक' नाम देकर भी चरितकाव्य लिखे गए। जब इन काव्यों के लेखक इन शब्दों का व्यवहार करते होंगे तो अवश्य ही उनके मनमें कुछ-न-कुछ विशिष्ट काव्यरूप रहता होगा। राजपूताने के डिंगल-साहित्य में परवर्ती काल में ये शब्द साधारण चरितकाव्य के नामान्तर हो गए हैं। बहुत से चरितकाव्यों के साथ 'रासो' नाम जुड़ा मिलता है-जैसे रायमलरासौ,राणारासौ,सगतसिंघरासौ,रतनरासौ इत्यादि। इसी प्रकार बहुतेरे चरितकाव्यों के साथ 'विलास' शब्द जुड़ा हुआ है-जैसे, राजविलास,जगविलास, विजैविलास,रतनविलास,अभैविलास, भीमविलास। 'विलास' शब्द भी कुछ क्रीड़ा, कुछ खेल आदि की ओर इशारा करता है। इसी प्रकार कुछ काव्यों के नाम के साथ रूपक' शब्द जुड़ा हुआ है-जैसे, राजारूपक, गोगादे रूपक, रावरिणमल रूपक, गजसिंघजीरूपक इत्यादि। स्पष्ट ही रूपक शब्द किसी अभिनेयता की ओर संकेत करता है। ये शब्द केवल इस बात की ओर संकेत करके विरत हो जाते हैं कि ये काव्यरूप किसी समय, गेय और अभिनेय थे। 'रासक' का तो इस प्रकार का लक्षण भी मिल जाता है। परन्तु धीरे-धीरे ये भी कथाकाव्य या चरितकाव्य के रूप में ही याद किये जाने लगे। इनका पुराना रूप क्रमशः भुला दिया गया, परन्तु पृथ्वीराज के काल में यह रूप संपूर्ण रूप से भुलाए नहीं गए थे। इसीलिये पृथ्वीराजरासो में कथा-काव्यों के भी लक्षण मिल जाते हैं और रासकरूप के भी कुछ चिह्न प्राप्त हो जाते हैं (हि०मा०आ०, तृ०व्या०, पृ०६०-६१)।

हमने ऊपर कथा के जिन सामान्य लक्षणों का उल्लेख किया वे गद्य-पद्य सबमें ही मिलते हैं। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि विद्यापति ने अपनी कहानी का ढाँचा उन दिनों अत्यधिक प्रचलित चरितकाव्यों के आदर्श पर ही बनाया होगा। कीर्तिलता की कहानी भृंग और भृंगी के संवाद रूप में कहलवाई गई है। प्रत्येक पल्लव के आरम्भ में भृंगी भृंग से प्रश्न करती है और फिर भृंग कहानी शुरू करता है। रासो के वर्तमान रूप को देखने से स्पष्ट हो जाता है

कि मूल रासो में भी शुक और शुकी के संवाद की ऐसी ही योजना रही होगी। मेरा अनुमान है कि इस मामूली से इंगित को पकड़ कर हम मूल रासो के कुछ रूप का अन्दाज़ा लगा सकते हैं। इतने दिनों की ऐतिहासिक कचकचाहट से इतना तो निश्चित हो ही गया है कि परवर्ती काल में रासो में बहुत अधिक प्रक्षेप हुआ है। यदि हम इस संकेत से रासो के मूल रूप का कुछ आभास पा सकें तो यह मामूली लाभ नहीं होगा। इतनी देर तक इसी लाभ को आशा से मैं आप को साहित्यिक इतिहास के खँडहरों में भटकाता रहा। देखा जाए। (हि०सा०आ०तृ०व्या०पृ० ६१)

शुरू में (प्रथम समय, छन्द ग्यारह और आगे) चन्द को स्त्री शंका करती है। यह बात एका–एक आ जाती है, इसके पहले चन्द की स्त्री का कहीं उल्लेख नहीं है। ग्यारहवें छन्द के पहले कवि ने विनयवश कह दिया है कि वह अपने पूर्ववर्ती महाकवियों का उच्छिष्ट कथन कर रहा है। यहीं पर चन्द की स्त्री शंका करती है कि यह कैसे हो सकता है ? प्रसंग से जान पड़ता है कि कथा चन्द और उसकी पत्नी के संवाद रूप में चल रही है। इसके पहले उसका कोई आभास नहीं है, फिर काफी दूर जाकर प्रश्नोत्तर का क्रम फिर शुरू होता है। वहाँ स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है कि रात्रि के समय रस में आकर कविपत्नी ने पृथ्वीराज की कीर्ति-कथा आदि से अन्त तक वर्णन करने का अनुरोध किया। बहुत कुछ यह 'लीला-वती' के कवि कौतूहल की पत्नी के समान ही है। लगता है कि इस गाथा को ग्रन्थ के शुरू में आना चाहिए था। गाथा इस प्रकार है—

समयं इक निसि चंदं। वाम वत्त वदि रस पाई।
दिल्ली ईस गुनेयं। कित्ती कहो आदि अताई॥

फिर अचानक पाँचवें समय में संवाद कवि और कविपत्नी के बीच न होकर शुक और शुकी के बीच चलने लगता है। शुकी कह उठती है कि हे शुक, सँभलो, हे प्राणपति, बताओ कि भोला भोमंग के साथ पृथ्वीराज का वैर कैसे हुआ ?

सुकी कहै सुक संभरौ कहौ कथा पति प्रान।
पृथु भोरा भीमंग पहु, किय हुअ वैर वितान॥

यहाँ अचानक ही शुक का आ जाना कुछ विचित्र-सा लगता है। फिर कवि और कविपत्नी कभी नहीं आते। रासो-सार के लेखकों ने शुक को कवि चन्द और शुकी को उसको पत्नी मान लिया है। पता नहीं, किस प्रकार यह बात उनके

मन में आई है। शायद उनके पास कोई ऐसी परम्परा का प्रमाण हो। ग्रन्थ से यह नहीं पता चलता कि शुक कवि चन्द है और शुकी कवि पत्नी। मुझे तो यह भी सन्देह होने लगा है कि 'समयं इक निसि चन्द' वाली गाथा कुछ विकृत रूप में आई है और इसी गाथा में शुक और शुकी की चर्चा होनी चाहिए। जो हो, उसके आगे के दोहे में स्पष्ट है कि वार्तालाप कवि और उसकी पत्नी में चल रहा है। इसलिये इस अनुमान को दूर तक घसीटना अच्छा नहीं जान पड़ता। अस्तु।

इसके बाद बारहवें समय में पहले एक छन्द में तिथि-वार बता लेने के बाद शुकी इच्छिनी के विवाह के विषय में प्रश्न करती है—

जंपि सुका सुक पेम करि, आदि अन्त जो बत्त।
इंछिनि पिथ्थह व्याह विधि, सुष्ष सुनंते गत्त॥

(हि० सा० आ०, तृ० व्या०, पृ० ६१-६२)

वैसे तो रासो में पृथ्वीराज के दो विवाहों का उल्लेख है, पर तीन विवाह ऐसे हैं, जिन्हें कवि ने विशेष रस लेकर लिखा है। ये तीन विवाह हैं—इच्छिनी, शशिव्रता और संयोगिता नामक राजकुमारियों के साथ पृथ्वीराज के विवाह। तीनों ही में शुकी ने शुक से प्रश्न किया है। शेष विवाहों में ऐसी योजना नहीं मिलती। रासो के अन्तिम अंश से स्पष्ट है कि इच्छिनी और संयोगिता ही मुख्य रानियाँ हैं और अन्त तक ईर्ष्या और प्रतिस्पर्द्धा का द्वन्द्व इन्हीं में चलता है। सो, प्रमुख विवाहों में एक इच्छिनी का विवाह है और इस प्रसंग में शुकी का मिलना काफी संकेतपूर्ण है। इच्छिनी के विवाह का प्रसङ्ग उत्थापित हुआ है कि तेहरवें समय में अचानक शहाबुद्दीन गोरी के साथ लड़ाई हो जाती है। इस प्रकार हर मौके-बे-मौके शहाबुद्दीन प्रायः ही रासो में आ धमकता है। यह सत्य है कि ऐतिहासिक कहानी के लेखक के लिये कथा का मोड़ अपने वश की बात नहीं होती; किन्तु प्रसंग का उत्थापन-अवस्थापन तो उसके वश की बात होती ही है। यहाँ कवि लाचार मालूम देता है। शहाबुद्दीन उसकी गैरजानकारी में आ गया जान पड़ता है। मजेदार बात यह है कि तेरहवाँ समय जो कवि चंद विरचित 'पृथिराज रासके सलख जुद्ध पातिसाह ग्रहन नाम त्रयोदश प्रस्ताव' है-शुक-शुकी के इस संवाद से अन्त होता है।

सुकी सरस सुक उच्चरिय, प्रेम सहित आनंद।
चालुक्कां साम्हति सथ्थो, सारुं है में चंद॥

(दूहा सं० १५६)

अर्थात् वस्तुतः चालुक्यराज भोरा भीमंग के हराने का प्रसंग ही चल रहा था कि बीच में शहाबुद्दीन का 'अपटी क्षेपेण' प्रवेश विशेष ध्यान देने योग्य व्यापार नहीं है, और सच पूछिए तो मैं यह बात आपसे छिपाना नहीं चाहता कि यह बात मेरे मन में समाई हुई है कि चंद का मूल ग्रन्थ शुक-शुकी संवाद के रूप में है, उतना ही वास्तविक है। विद्यापति की कीर्तिलता के समान रासो में भी प्रत्येक अध्याय के आरंभ में-और कदाचित् अन्त में भी शुक और शुकी की बातचीत उसमें अवश्य रही होगी।

चौदहवां समय इस प्रकार शुरू होता है—

> कहै सुकी सुक संभलौ, नींद न आवे मोहि।
> रय निरवांनियं चंद करि, कथ इक पूछौं तोहि॥
> सुकी सरिस सुक उच्चरयो, धरयो नारि सिर चित्त।
> सयन संयोगिय संमरै, मन में मंडप हित्त॥
> धन लडूबौ चालुक संध्यौ, बंध्यो सेत पुरसांन।
> इंछनि व्याही इच्छ करि, कहो सुनहि दे कान॥

और फिर इञ्छिनी विवाह को कवि ने जमके वर्णन किया है। इससे कुछ अधिक जमके संयोगिता का विवाह वर्णन किया है और इससे कुछ कम जमके शशिव्रता का। चौदहवें समय के बीच में फिर एक बार शुकी-शुक से इञ्छिनी के नख-शिख का वर्णन पूछती है। ऐसा लगता है कि यहाँ से कोई नया अध्याय शुरू होना चाहिए, पर हुआ नहीं। प्रसङ्ग तो इञ्छिनी-विवाह है ही। प्रश्न इस प्रकार है—

> बहुरि सुकी सुक सौं कहै, अंग अग दुति देह।
> इंछनि इंछ बखानिकै, मोहि सुनावहु एह॥

(हि० सा० आ०, तृ० व्या०, पृ० ६२-६३)

प्रायः नई कथा शुरू करने या पुरानी कथा के समाप्त करने के समय शुकी द्वारा शुक के सँभलने और सो न जाने के लिये सावधान करने की बात आ जाती है। कभी कभी किसी समय के बीच में अचानक इस सँभलने की हिदायत मिल जाती है और पाठक को यह अनुमान करने का अवसर मिलता है कि मूल रासो में इस स्थल पर से कथा का कोई नया अध्याय शुरू हुआ होगा। कभी-कभी

ऐसा भी लगता है कि इसके पहलेवाला अंश प्रक्षिप्त है। उदाहरणार्थ पचीसवें समय में राजा के शिकार आदि के ऐसे प्रसङ्ग हैं, जो सुकविजनोचित कम हैं और भट्ट भणन्त अधिक। पृथ्वीराज शूकर का पता बतानेवाले के साथ अकेले ही चल पड़ते हैं, सरदार लोग भी अनुगमन करते हैं अचानक शुकी-शुक से पूछ बैठती है कि पृथ्वीराज के गन्धर्व विवाह की कहानी सुनाओ—

पुच्छ कथा सुक कहो। समह गंध्रवी सुप्रेमहि।
स्रवन मंमि संजोगि। राज समधरी सुनेमहि॥
..................। इम चिंतिय मन मामिझ।
कै करो पति जुग्गन। ईसह ईस पुज्जै सुजग्गीसह॥
शुक चिंति बाल अति लघु सुनत। ततविन विस उपजै तिहि।
देवसभा न जदुदुव नृपति। नाल केर दुज अनुसरहि॥६८॥

पचीसवाँ समय

और फिर एकाएक शशिव्रता के गंधर्व विवाह की कहानी शुरू हो जाती है, और शुरू भी ऐसी होती है कि समाँ बँध जाता है। कम प्रसङ्गों में रासोकार का कवित्व इतना मुखर हुआ होगा। निश्चय ही यह चन्द जैसे कवि के योग्य रचना है। (हि० सा० आ०, तृ० व्या०, पृ० ६३-६४)

मुझे ठीक नहीं मालूम कि किस आधार पर 'रासो-सार' के लेखक ने शुकी का अर्थ कविपत्नी कर लिया है। शायद शुरू में कवि और कविपत्नी का संवाद देख कर और बाद में समूचे ग्रन्थ में शुक और शुकी का प्रसङ्ग पढ़ कर उन्होंने अनुमान कर लिया हो कि शुक और शुकी कोई और नहीं कविचन्द और उनकी पत्नी हैं। बीच-बीच में शुक और शुकी के स्थान पर दुज और दुजी (द्विज=पक्षी) का नाम आ जाता है और उस पर से भी यह भ्रम हो जाता है कि यहाँ किसी ब्राह्मण और ब्राह्मणी का उल्लेख है या उन्हें फिर कोई और परम्परा हाथ लगी हो। पर मेरी धारणा यही है कि शुक, शुकी का ही रासोकार ने दुज, दुजी कह कर उल्लेख किया है। रासो में इन बातों के अन्तरङ्ग प्रमाण उपस्थित हैं। शीघ्र ही हम चर्चा करने का अवसर पाएँगे।

पचीसवें समय के बाद बहुत दूर तक शुक और शुकी का पता नहीं चलता। सैंतीसवें समय में वे फिर द्विज और द्विजी के रूप में आते हैं—

दुज सम दुज्जी जु उच्चरिय, ससि निसि उज्ज्वल देख।
किम तूंअर पाहार पहु, गहिय सु असुर नरेस ॥

यदि मेरा यह अनुमान ठीक हो कि शुक-शुकी के संवाद के रूप में ही रासो लिखा गया था, तो कहा जा सकता है कि मूल रासो में शहाबुद्दीन के आने का यह प्रथम अवसर है (हि० सा० आ० श्रु० व्या०, पृ० ६४)।

दीर्घ व्यवधान के बाद पैंतालीसवें समय में फिर शुक-शुकी संवाद बीच में उपस्थित हो जाता है। शुक-शुकी का प्रसङ्ग उठाने के पहले यहाँ अप्रासंगिक रूप से रामायण की कथा आ गई थी। चौवन छन्दों के बाद पचपनवाँ छन्द इस प्रकार है—

सुकी सुनै सुक उच्चरै, पुब्ब संजोय प्रताप।
जिहि छर अच्छर मुनि छल्यो, जिन त्रिय भयौ सराप ॥ ५५ ॥
पैंतालीसवां समय

यहाँ से संयोगिता की कहानी शुरू होती है। कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है कि कोई मंजुघोषा, जिसे बाद में चलकर रंभा कहा गया है, इन्द्र की आज्ञा से ऋषि को छलने गई थी और ऋषि के पिता द्वारा अभिशप्त होकर मर्त्य-लोक में संयोगिता के रूप में अवतीर्ण हुई थी। यहीं से संयोगिता के स्वयंवर, विवाह और हरण की कहानी दूर तक चली जाती है। बीच-बीच में लड़ाइयाँ भी टपक पड़ती हैं, परन्तु प्रेम-व्यापार ठीक ही चलता रहता है। प्रक्षिप्त अंश इस कथा में भी बहुत हैं। सुमन्त मुनि जब अप्सरा पर आकृष्ट होकर उस पर अपना सब जप-तप निछावर करने पर उतारू हो जाते हैं, तो अप्सरा तुलसीदासजी की पत्नी की भाँति कह उठती है कि मुझसे नहीं, भगवान से प्रेम करो। सगुण भक्ति की प्रशंसा भी करती है। सुनते ही लगता है कि यह प्रसङ्ग तुलसीदासजी वाली कहानी से प्रभावित होकर लिखा जा रहा है। पैंतालीसवें समय के एकसौ अड़तालीसवें दोहे में तो 'भै बिन प्रीति न होइ' आता है, जो लगभग इसी प्रकार की तुलसी के रामायण की याद दिलाए बिना नहीं रहता। यह प्रसङ्ग सावधान करता है कि शुक-शुकी का नाम देखकर ही सब बातों का ज्यों-का त्यों पुराना नहीं मान लिया जा सकता। फिर भी संयोगिता की कहानी निःसन्देह प्राचीन है।

छियालीसवें समय में विनयमंगल है। इस विनय-मंगल के बीच शुक-शुकी फिर भी आ जाते हैं—

निकट सुकीसुक उच्चरय, कर अवलम्बित डार।
मवरिय अंब सु अंब लगी, सुनत सु मारनि मार ॥७४॥
विनय साल सुक सुकनि दिषि, सर संभरिय अपार।
मानो मदन सुमत्त की, विधि संजोगि सु सार ॥७५॥

छियालीसवाँ समय

विनयमंगल में संयोगिता को वधूधर्म की शिक्षा दी गई है और विनय की मर्य्यादा बताई गई है। इस समय में 'इति विनय काण्ड समाप्त' लिखने के बाद दुज-दुजी का संवाद और स्थलों की अपेक्षा जरा विस्तार के साथ आया है। दुज, दुजी को सँभलने के लिए कहता है और यहाँ से कहानी के श्रोता और वक्ता नहीं रह जाते, बल्कि पद्मावत के शुक की भाँति स्वयं कहानी के पात्र बन जाते हैं और संयोगिता और पृथ्वीराज के प्रेम-घटक के रूप में उपस्थित हो जाते हैं। पहले तो शुक 'नर भेष धरि साकार' पृथ्वीराज के पास जाता है। उधर दुजी भी उड़कर संयोगिता के पास जाती है। स्पष्ट ही यहाँ दुज और दुजी पक्षी हैं, ब्राह्मण और ब्राह्मणी नहीं। 'द्विज चले उड्डु कनवज्ज दिसि' आदि पंक्तियों में इसकी स्पष्ट ध्वनि है। यह सैंतालीसवें समय को कथा है (हि० सा० आ०, तृ० व्या०, पृ० ६३, ६४-६५)।

संभवतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की कथा रुद्रट और हेमचंद्र के बताए लक्षणों से बहुत दूर नहीं पड़ेगी। साहित्यिक दृष्टि से भी यह अंश बहुत उपादेय हुआ है। शुक-शुकी के संवाद रूप में कथा कहने की योजना तत्काल प्रचलित नियमों के अनुकूल तो थी ही, इसलिये भी आवश्यक थी कि उसमें चंद कवि स्वयं एक पात्र है। किसी दूसरे के मुख से ही अपने बारे में कुछ कहलवाना कवि को उचित लगा होगा। इस प्रकार सब दृष्टियों से ऊपर बताए हुए प्रसंग रासो के मूल रूप होंगे अब संक्षेप में उसकी साहित्यिक दृष्टि से परीक्षा कर लेनी चाहिए। क्योंकि कथा की परीक्षा इतिहास की दृष्टि से नहीं, काव्य की दृष्टि से होनी चाहिए। पुरानी कथाएँ काव्य ही अधिक है, इतिहास वे एकदम नहीं है। ऐतिहासिक काव्यों के बारे में हम अगले व्याख्यान में कुछ विस्तार से कहने का अवसर पाएँगे। यहाँ संस्कृत की कथाजातीय पुस्तकों को एक क्षण के लिये देख लेना आवश्यक जान पड़ता है।

आलंकारिक ग्रन्थों के कथा-आख्यायिका के लक्षण बाह्यरूप की ओर ही इंगित करते हैं। उनका कथा के वक्तव्य वस्तु से कोई सीधा संबंध नहीं है। परवर्ती गद्य-काव्यों में नाना भांति के अलंकारों से अलंकृत करके सुललित गद्य लिखना ही लेखक का प्रधान उद्देश्य हो गया था। इन काव्यों में कवि को कहानी कहने की जल्दी नहीं जान पड़ती। यह रूपक दीपक और श्लेष आदि की योजना को ही अपना प्रधान कर्त्तव्य मान लेता है। सुबंधु ने तो यह प्रतिज्ञा ही करली थी कि अपने ग्रन्थ में आदि से अन्त तक श्लेष का निर्वाह करेंगे। इन कथाकारों के मुकुटमणि बाणभट्ट ने कथा की प्रशंसा करते हुए मानों अपनी रचना के लिये कहा था कि सुस्पष्ट मधुरालाप और भावों से नितांत मनोहरा तथा अनुरागवश स्वयमेव शय्या पर उपस्थित अभिनवा वधू की तरह सुगम, कला-विद्या संबंधी वाक्य-विन्यास के कारण सुश्राव्य और रस के अनुकरण के कारण बिना प्रयास समझ में आनेवाले शब्द गुंफवाली कथा किसके हृदय में कौतुक युक्त प्रेम उत्पन्न नहीं करती? सहज बोध्य दीपक और उपमा अलंकार से संपन्न अपूर्व पदार्थ के समावेश से विरचित अनवरत श्लेषालंकार से किञ्चित् दुर्बोध्य कथा काव्य उज्ज्वल प्रदीप के समान उपादेय चम्पक की कली से गुँथे हुए और बीच-बीच में चमेली के पुष्प से अलंकृत घनसंनिविष्ट मोहनमाला की भाँति किसे आकृष्ट नहीं करता?–

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव॥
हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिता कथा।
निरन्तरश्लेषघना सुजातयो महास्रजश्चंपककुड्मलैरिव॥
कादम्बरी।

अर्थात् संस्कृत के आलंकारिक जिस रस को काव्य की आत्मा मानते हैं, जो अंगी है, वही कथा और आख्यायिका का भी प्राण है। कथा-काव्य में कहानी या आख्यान गौण है, अलंकार-योजना गौण है, पद संघट्टना भी गौण है, मुख्य है केवल रस। यह रस अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। इस बात में काव्य और कथा-आख्यायिका समान हैं। विशेषता यह है कि कथा-आख्यायिका में रस के अनुकूल-अलंकार योजना और पद संघट्टना-सभी महत्त्व-पूर्ण हैं, किसी की उपेक्षा नहीं की जा सकती। एक पद्य के बंधन से मुक्त होने के कारण ही गद्य-कवि

की जिम्मेवारी बढ़ जाती है। वह अलंकारों की और पदसंघट्टना की उपेक्षा नहीं कर सकता। कहानी तो उसका प्रधान वक्तव्य ही है। कहानी के रस को अनुकूल रख कर इन शर्तों का पालन सचमुच ही कठिन है, और इसीलिए संस्कृत के आलोचकों ने गद्य को कवित्व की कसौटी कहा है - 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'। किन्तु अपभ्रंश और प्राकृत का कथाओं में पद का बन्धन भी लगा हुआ है। अपभ्रंश में भी अलंकार कथा का बहुत महत्त्व-पूर्ण उपादान समझा जाता रहा है। 'णायकुमार चरिउ' में एक संकेत पूर्ण वाक्य आया है। सौत के कुचक्र से राजा ने नागकुमार की माता के सब अलंकार उतरवा लिए थे। जब नागकुमार लौटा, तो उसने अपनी माता को ऐसा निरलंकार देखा, मानों कुकवि की लिखी कथा हो। इससे जान पड़ता है कि अलंकार का अभाव कथा को फीका कर देता है (हि० सा० आ०, तृ० घा०, पृ० ६५, ६६, ६७)।

पृथ्वीराज रासो ऐसा ही रसमय सालंकर युद्धबद्ध कथा थी, जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेम-लीला, कन्याहरण और शत्रु पराजय था। इन्हीं बातों का मूल रासो में विस्तार रहा होगा। ऊपर जिन अंशो को रासो का पुराना रूप कहा गया है, उनमें इन्हीं बातों का विस्तार है। यह कहना तो कठिन है कि इससे अधिक उसमें कुछ था ही नहीं, पर जहाँ तक अनुमान शक्ति के उपयोग का अवसर है, वहाँ तक लगता है कि रासो को ऐसी हो कथा थी। ऐसी कथाएँ उन दिनों और भी बहुत-सी लिखी गई थीं। कुछ का आभास संस्कृत-प्राकृत के विजय, विलास, रासक आदि की श्रेणी के काव्यों से लगता है और कुछ का उस समय की लिखी हुई नाटिकाओं, सट्टकों, प्रकरण, शिलालेख-प्रशस्तियों आदि से मिलता है। संस्कृत में इतिहास का कुछ पता बता देनेवाले काव्य तो मिलते हैं, पर उन्हें ऐतिहासिक काव्य नहीं कहा जा सकता। सब जगह इतिहास-प्रसिद्ध तथ्यों पर कल्पना द्वारा उद्भावित घटनाएँ प्रधान हो उठती हैं। आगेवाले व्याख्यान में मैं थोड़ा सा इन ऐतिहासिक कहे जानेवाले काव्यों पर विचार करूँगा और फिर रासो के इस नवोद्घाटित मूल रूप के काव्य-सौन्दर्य पर विचार करूँगा।

मुझे खेद है कि रासो का प्रसंग कुछ अधिक बढ़ाने को बाध्य हो रहा हूँ, पर सब दृष्टियों से यह इतना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है कि थोड़ा और विचार कर लेना बहुत अनुचित नहीं होगा। (हि० सा० आ० तृ० व्या० पृ० ६७)

हमारे आलोच्य काल में ऐतिहासिक पुरुषों के नाम से सम्बन्द्ध कई काव्य, नाटक और चंपू आदि मिले हैं। पृथ्वीराज रासो के बारे में हम कह आए हैं कि ऐतिहासिक व्यक्ति के नाम से जुड़े रहने के कारण शुरू-शुरू में अनुमान किया गया था कि इससे इतिहास का काम निकलेगा, पर यह आशा फलवती नहीं हुई। कम ही ऐतिहासिक पुरुषों के नाम से सम्बद्ध पुस्तकें इतिहास-निर्माण में सहायता कर सकी हैं। कुछ से ऐतिहासिक तथ्यों, नामों और वंशावलियों का कुछ संधान मिल जाता है। कुछ से इतना भी नहीं मिलता।

बहुत पहले से तो नहीं, पर पृथ्वीराज के आविर्भाव के काफी पहले से ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम से सम्बद्ध काव्य-पुस्तकें लिखी जाने लगी थीं। शिलालेखों और ताम्रपट्ट की प्रशस्तियों में तो ऐसी बात बहुत पुराने जमाने से मिलती है, पर पुस्तक रूप में सम सामयिक राजाओं के नाम से सम्बद्ध रचना सातवीं शताब्दी से पहले की नहीं मिली। बाद की शताब्दियों में यह बात बहुत लोक-प्रिय हो जाती है और ९ वीं, १० वीं शताब्दी में तो संस्कृत-प्राकृत में ऐसी रचनाएँ काफी बड़ी संख्या में मिलने लगती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि भारतीय साहित्य में यह प्रवृत्ति नई है। सातवीं शताब्दी के बाद भारतीय जीवन और साहित्य में अनेक नये उपादान आए हैं। ऐतिहासिक काव्य भी उनमें एक है। सम्भवतः तत्काल-प्रचलित देश्यभाषा में ऐसी रचनाएँ अधिक हुई थीं। इस काल के संस्कृत-साहित्य में राजस्तुति का बहुत प्रमुख स्थान है। अपभ्रंश की रचनाओं में ऐसी राजस्तुति-परक रचनाओं का होना स्वाभाविक ही था। कई नवागत जातियों ने जिनमें आभीर, गूजर और अनेक राजपूत समझी जानेवाली जातियाँ भी हैं, राज्य अधिकार किया था। वे जिन प्रदेशों से आए थे; वहाँ की अनेक रीति-नीति भी साथ ले आए थे। फिर वे संस्कृत उतनी अच्छी तरह से समझ नहीं पाते थे, यद्यपि अपने क्षत्रियत्व का दावा उच्च स्वर से घोषित करने के लिये वे पंडितों का सम्मान भी करते थे। इन उपायों में देशी भाषा की उपेक्षा भी एक था। फिर भी सच्चाई यह है कि वे अपभ्रंश में लिखी स्तुतियाँ ही समझ सकते थे। इसलिये अपभ्रंश में तेजी से राजस्तुति परक साहित्य की परम्परा स्थापित होने लगी। संस्कृत में भी यह बात थी, पर संस्कृत में और भी सौ बातें थीं (हि० सा० आ०, व० व्या०, पृ० ६८)।

प्रकृत प्रसंग ऐतिहासिक काव्यों का है। ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा बाद में खूब चली। इन्हीं दिनों ईरान के साहित्य में भी इस प्रथा का प्रवेश हुआ। उत्तर-पश्चिम सीमान्त से बहुत सी जातियों का प्रवेश होता रहा। वे राज्य-स्थापन करने में भी समर्थ हुईं। पता नहीं कि उन जातियों की स्वदेशी प्रथा की क्या-क्या बातें इस देश में चलीं। साहित्य में नये-नये काव्यरूपों का प्रवेश इस काल में हुआ अवश्य। सम्भवतः ऐतिहासिक पुरुषों के नाम पर काव्य लिखने या लिखाने की चलन भी उनके संसर्ग का फल हो। परन्तु भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही, जिसमें काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम; कल्पना-विलास का अधिक मान था तथ्य निरूपण का कम; संभावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम; उल्लसित आनंद की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम। इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा। ऐतिहासिक तथ्य इन काव्यों में कल्पना को उकसा देने के साधन मान लिए गए हैं। राजा का विवाह, शत्रु-विजय, जयक्रीड़ा, शैलवन-विहार, दोला-विलास, नृत्य-गान-प्रीति-ये सब बातें ही प्रमुख हो उठी हैं। बाद में क्रमशः इतिहास का अंश कम होता गया और संभावनाओं का जोर बढ़ता गया। राजा के शत्रु होते हैं। युद्ध होता है। इतिहास की दृष्टि में एक युद्ध हुआ, और भी तो हो सकते थे। कवि संभावना को देखेगा। राजा के एकाधिक विवाह होते थे, यह तथ्य अनेकों विवाहों की संभावना उत्पन्न करता है और कवि को अपनी कल्पना के पंख खोल देने का अवसर देता है। उत्तर काल के ऐतिहासिक काव्यों में इसकी भरमार है। ऐतिहासिक विद्वान् के लिये संगति मिलाना कठिन हो जाता है (हि. सा. आ. च. व्या., पृ० ७०)।

वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में दैवीशक्ति का आरोप कर के पौराणिक बना दिया गया है। जैसे-राम, बुद्ध, कृष्ण आदि और कुछ में काल्पनिक रोमांस का आरोप कर के निजंधरी कथाओं का आश्रय बना दिया गया है, जैसे उदयन, विक्रमादित्य और हाल। जायसी के रतनसेन, रासो के पृथ्वीराज में तथ्य और

कल्पना का फैक्टस और फिक्शन का–अद्‌भुत योग हुआ है। कर्मफल की अनिवार्यता में, दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्‌भुत-शक्ति में और मनुष्य के अपूर्व-शक्ति भाण्डार होने में दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंग में रंगा है। यही कारण है कि जब ऐतिहासिक व्यक्तियों का भी चरित्र लिखा जाने लगा, तब भी इतिहास का कार्य नहीं हुआ। अन्त तक ये रचनाएँ काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं। फिर भी निजंधरी कथाओं से वे इस अर्थ में भिन्न थीं कि उनमें बाह्य तथ्यात्मक जगत् से कुछ-न-कुछ योग अवश्य रहता था। कभी-कभी मात्रा में भी कमी-बेशी तो हुआ करती थी, पर योग रहता अवश्य था। निजंधरी कथाएँ अपने-आप में ही परिपूर्ण होती थीं (हि. सा. आ. च. व्या. पृ० ७१)।

...सब मिलाकर ऐतिहासिक काव्य काल्पनिक निजंधरी कथानकों पर आश्रित काव्य से बहुत भिन्न नहीं होते। उनसे आप इतिहास के शोध की सामग्री संग्रह कर सकते हैं, पर इतिहास को नहीं पा सकते। इतिहास जो जीवन्त मनुष्य के विकास की जीवनकथा होता है, जो कालप्रवाह से नित्य उद्‌घाटित होते रहने वाले नव-नव घटनाओं और परिस्थितियों के भीतर से मनुष्य की विजय-यात्रा का चित्र उपस्थित करता है और जो काल के परदे पर प्रतिफलित होनेवाले नये-नये दृश्यों को हमारे सामने सहज भाव से उद्‌घाटित करता रहता है। भारतीय कवि इतिहास प्रसिद्ध पात्र को भी निजंधरी कथानकों की ऊंचाई तक ले जाना चाहता है। इस कार्य के लिये वह कुछ ऐसी कथानक-रूढियों का प्रयोग करता है, जो कथानक को अभिलाषित ढंग से मोड़ देने के लिये दीर्घकाल से भारतवर्ष की निजंधरी कथाओं में स्वीकृत होते आए हैं और कुछ ऐसे विश्वासों का आश्रय लेता है, जो इस देश के पुराणों में और लोक-कथाओं में दीर्घकाल से चले आरहे हैं। इन कथानक-रूढ़ियों से काव्य में सरसता आती है और घटना-प्रवाह में लोच आ जाती है। मध्यकाल में ये कथानक-रूढ़ियाँ बहुत लोकप्रिय होगई थीं और हमारे आलोच्य काल में भी इनका प्रभाव बहुत व्यापक रहा है (हि० सा० आ०, च० व्या०, पृ० ७१–७२)।

...संस्कृत में ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम से संबद्ध काव्यों को 'चरित', 'विलास' 'विजय' आदि नाम दिये गए हैं। सबसे पुराना काव्य तो 'हर्षचरित' नामक आख्यायिका ही है। इसके बाद पद्मगुप्त का 'नवसाहसाङ्क चरित' (१००० ई०

के आस-पास) और विल्हण का 'विक्रमाङ्कदेव चरित' नाम के ऐतिहासिक काव्य मिलते हैं। ये दोनों काव्य हमारे आलोच्य काल के आरम्भ के हैं और ऐतिहासिक काव्यों की तत्कालीन परिस्थिति को बताते हैं। विक्रमाङ्कदेवचरित राजकीय विवाहों और युद्धों का काव्य है। राजाओं के गुणानुवाद के लिये उन दिनों ये ही दो विषय उपयुक्त समझे जाने लगे थे। दोनों में ही कल्पना का प्रचुर अवकाश रहता था और संभावनाओं की पूरी गुंजायश रहती थी। यह वस्तुतः इन स्तुति-मूलक कल्पना प्रवण काव्यों में इतिहास का केवल सुदूर-स्पर्श मात्र ही है। इतिहास की दृष्टि से कुछ अधिक उपादेय पुस्तक कल्हण की राजतरंगिणी है, लेकिन उसमें भी पौराणिक विश्वासों और निजंधरी कथाओं का कल्पना का गड्ड भड्ड थोड़ा-बहुत मिल ही जाता है। तन्त्र-मन्त्र, शकुन-अपशकुन के विश्वासों का सहारा भी लिया हो गया है और प्राचीन गौरव की अनुभूति के कारण घटनाओं में असन्तुलित गुरुत्वारोप हो ही गया है। मानव-कृत्य को इन अति प्राकृत घटनाओं का नियन्त्रित समझने के विश्वास ने इस अपूर्व इतिहास-ग्रंथ को थोड़ा-सा इतिहास के आसन से दूर खड़ा अवश्य कर दिया है; पर सब मिला कर राज-तरंगिणी ऐतिहासिक काव्य है। संध्याकर नंदी का राम-चरित एक ही साथ अयोध्याधिपति श्री रामचंद्र का भी अर्थ देता है और बंगाल के रामपाल पर भी घटित होता है। इस प्रकार के कठिन व्रत को निर्वाह करनेवाले श्लिष्ट काव्य से इतिहास की जितनी आशा की जा सकती है, उतनी इससे भी की जा सकती है। यहां कवि को रामपाल के जीवन की वास्तविक घट-नाओं से कम और श्लेष-निर्वाह से अधिक मतलब है। सोमपाल-विलास जल्हण का लिखा ऐतिहासिक काव्य है। 'जयानक' का लिखा कहा जानेवाला 'पृथ्वीराज विजय' हिन्दी भाषियों के निकट परिचित ही है। इसी पुस्तक की हस्तलिपि के प्राप्त होने से पृथ्वीराज रासो का ऐतिहासिक माहात्म्य धूमिल पड़ गया था और बंगाल की एसियाटिक सोसायटी से प्रकाशित होना बीच ही में बंद होगया था। इस पुस्तक के बारे में हम आगे विशेष भाव से चर्चा करेंगे। एक और ऐतिहासिक पुस्तक अनन्तपुत्र रुद्र-लिखित 'राष्ट्रौढ़ वंश' बताई जाती है। इन सब पुस्तकों के बारे में एक ही बात सत्य है। इतिहास इनमें कल्पना के आगे म्लान होगया है और ऐतिहासिक, पौराणिक और निजंधरी घटनाओं के विचित्र और असन्तुलित मिश्रण से इनका ऐतिहासिक रूप एक दम गौण होगया है। जैन कवि हेमचन्द्राचार्य का लिखा 'कुमारपाल चरित' या 'द्व्याश्रय' काव्य है, जिसके २० सर्गों में अनहिलवाड़

के राजाओं के कुमार चलिबल का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। बाद के आठ सर्ग प्राकृत में कुमारपाल के वर्णन में है। गुजरात के चालुक्यों के इतिहास की दृष्टि से पुस्तक बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार सोमेश्वर की कीर्तिकौमुदी और सुरथोत्सव, बालचन्द्र सूरि का वसन्तविलास और जयचन्द्र सूरि का हम्मीरकाव्य ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेख योग्य है। अंतिम पुस्तक में ऋतु वर्णन और विहार सुन्दर है।

पृथ्वीराज रासो और पद्मावत भी ऐतिहासिक व्यक्ति के नाम के साथ संबद्ध काव्य है परन्तु अन्यान्य ऐतिहासिक काव्यों की भाँति मूलतः इनमें भी ऐतिहासिक और निजंधरी कथाओं का मिश्रण रहा होगा। जैसा कि शुरू में ही इशारा किया गया है, ऐतिहासिक चरित का लेखक संभावनाओं पर अधिक बल देता है। संभावनाओंपर बल देने का परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिये कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घकाल से व्यवहृत होते आए हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक-रूढ़ि में बदल गए हैं। इस विषय में ऐतिहासिक और निजन्धरी कथाओं में विशेष भेद नहीं किया गया। केवल ऐसी बात का ध्यान रखा गया है कि सम्भावना क्या है?.........

...शुक का दूसरा रूप है, कथा को गति देनेवाला महत्त्वपूर्ण पात्र। पद्मावत में वह यही काम करता है और रासो के दो प्रसगों में उसे यही काम करना पड़ा है। प्रथम प्रसंग है समुद्रशिखरगढ़ की राजकन्या पद्मावती के साथ पृथ्वीराज के विवाह का सम्बन्ध स्थापन और दूसरा है इञ्छिनी और संयोगिता की प्रतिद्वन्द्विता के समय इञ्छिनी की वियोग-विधुरा अवस्था की सूचना देकर राजा को बड़ी रानी (इञ्छिनी) की ओर उन्मुख करना। दोनों ही स्थानों पर सुग्गे ने महत्त्वपूर्ण कर्म किया है। इनमें पहला तो उस अत्यधिक प्रचलित लोककथानक का स्मारक है जिसका उपयोग जायसी ने किया था। इस कथानक में इतिहास खोजने के लिये मूँड मारना बेकार है। यह अत्यन्त प्रचलित लोककथा थी। इसे अमुक पुराण से अमुक ने चुराया है, कह कर पौराणिक कथा मानना भी उचित नहीं है। यह दीर्घकाल से प्रचलित भारतीय कथानक-रूढ़ि है। दो या

तीन स्थानों पर ही इसका उपयोग नहीं हुआ है। तीसरा भी चिर-प्रचलित कथानक रूढ़ि है और भिन्न-भिन्न प्रदेशों की लोककथाओं में आज भी खोजा जा सकता है।

पद्मावतीवाली कहानी पर थोड़ा और भी विचार करना है।

भारतीय साहित्य में सिंहलदेश की राजकन्या से विवाह के अनेक प्रसंगों की चर्चा आती है। साधारणतः उनमें परिचारिका से प्रेम और बाद में परिचारिका का रानी की बहन के रूप में अभिज्ञान-इस कथानक की रूढ़ि का ही आश्रय लिया जाता है। श्री हर्षदेव की रत्नावली में इसी रूढ़ि का आश्रय लिया गया है। कौतूहल की लीलावती में भी नायिका सिंहलदेव की राजकन्या ही है और जायसी के पद्मावत में भी वह सिंहलदेव की ही कन्या है। इन सभी स्थानों पर सिंहल को समुद्र-मध्य स्थित कोई द्वीप माना गया है। अपभ्रंश की कथाओं में भी इस सिंहलदेश को समुद्र-स्थित होना पाया जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि सिंहलदेश की कन्याएँ पद्मिनी जाति की सुलक्षणा होती हैं। जायसी के पद्मावत तक के काल में सिंहल के समुद्र-स्थित होने की चर्चा आती है। परन्तु बाद में सिंहलदेश के सम्बन्ध में कुछ गोलमाल हुआ जान पड़ता है। मत्स्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे किसी स्त्रीदेश में विलासिता में फँस गये थे, और उनके सुयोग्य शिष्य गोरक्षनाथ ने वहाँ से उनका उद्धार किया था। 'योगीसम्प्रदायाविष्कृति' नामक एक परवर्ती ग्रन्थ में सिंहल को त्रिया-देश अर्थात् स्त्री-देश कहा गया है। भारतवर्ष में स्त्रीदेश की ख्याति बहुत प्राचीनकाल से है। इसी देश को 'कदली-देश' और बाद की पुस्तकों में 'कजरीवन' कहा गया है। मैंने अपनी पुस्तक 'नाथ-सम्प्रदाय' में इस स्त्रीदेश और कजरीवन के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया है। यहाँ प्रासंगिक सिर्फ इतना ही है कि परवर्ती काल की नाथ-अनुश्रुतियों में सिंहलदेश, त्रिया-देश और कजरीवन को एक दूसरे से उलझा दिया गया है। पद्मावत के समय में भी सिंहलदेश दक्षिण में समझा जाता था। परन्तु कुछ बाद चल कर 'त्रिया-देश' और 'कजरीवन' के साथ उलझा देने के कारण उसे उत्तर में समझा जाने लगा। यह विश्वास किया जाता था कि सिंहल में पद्मिनी नारियाँ हुआ करती थीं, जिनके शरीर से पद्म की सुगन्धि निकलती रहती है और जो उत्तम जाति की स्त्री मानी जाती हैं। रासो में पद्मावती

के विवाहवाला अध्याय इसी परवर्तीकाल के विचारगत उलझन की सूचना देता है। कहानी उसमें वही है, जो पद्मावत में है। परन्तु वहाँ पद्मावती उत्तरदेश की राज-कन्या बताई गई है। पुरानी कहानी की स्मृति इसके कुछ शब्दों में जी रही है। जैसे, यह तो नहीं कहा गया कि पद्मावती सिंहलदेश की राजकन्या थी। परन्तु उसके नगर का नाम 'समुद्रशिखर' यह सूचित करता है कि उस देश का सम्बन्ध किसी समय समुद्र से था। फिर उसका राजा विजयसिंह सिंहल के प्रथम राजा विजयसिंह से मिलता-जुलता है और जादूकुल में संभवतः यातुधान कुल की याद-गार बची हुई है—

> उत्तर दिसि गढ़ गढ़नपति, समुद शिखर इक दुग्ग।
> वहँ सुविजय सुरराजपति, जादूकुलह अभग्ग॥

इस प्रकार यह कहानी सोलहवीं शताब्दी के बाद की लिखी हुई है और रासो में प्रक्षिप्त हुई है। यह ध्यान देने की बात है कि जिन विवाहों के सम्बन्धों में शुक और शुकी का संवाद मिलता है, उनसे यह भिन्न है और यह भी ध्यान देने की बात है कि बीकानेर की फोर्ट लाइब्रेरी में रासो की जो छोटी प्रति सुरक्षित बताई जाती है, उसमें भी यह कहानी नहीं है। कथानक-रूढ़ियों का विचार किए बिना, जो लोग रासो या पद्मावत की ऐतिहासिकता या अनैतिहासिकता की जाँच करने लगते हैं, वे भ्रान्त मार्ग का अनुसरण करते हैं। पद्मावती की कहानी इस बात की स्पष्ट सूचना देती है (हि० सा० आ०, च० व्या०, पृ० ७७)।

शुक और शुकी के वार्तालापरूप में प्रथम विवाह इञ्छिनी का है। दूसरा विवाह शशिव्रता का और तीसरा संयोगिता का है। तीनों विवाह सरस बने हैं और सुकवि रचित जान पड़ते हैं।

इञ्छिनी के विवाह के प्रसंग में तीन घटनाएँ उल्लेख योग्य हैं, जो शुक-शुकी के प्रश्नोत्तर के रूप में आई हैं। पहली बात है भीम भोरंग के साथ पृथ्वीराज के वैर का कारण। भीम के सात चचेरे भाई जो उसके राज्य में उपद्रव मचाने लगे थे, भीम के प्रताप से भयभीत होकर पृथ्वीराज की शरण आए, पर पृथ्वीराज के एक प्रिय सामन्त कन्ह से उनकी लड़ाई होगई और वे मारे गए। इस पर भीमराव असन्तुष्ट हुआ। दूसरी बात है भीम का इञ्छिनी से विवाह की इच्छा। इञ्छिनी की बड़ी बहन मंदोदरी

से उसका विवाह पहले ही हो चुका था। छोटी बहन को बड़ी पत्नी की सौत के रूप में पाने का प्रयत्न अच्छा नहीं था। सलख अपनी छोटी लड़की को और उसका पुत्र जैत अपनी बहन को, इस प्रकार व्याहने के विरुद्ध थे। उन्होंने भीम से रक्षा पाने के उद्देश्य से ही पृथ्वीराज की शरण ली। लड़ाइयाँ हुई–रासो में होती ही रहती हैं— शहाबुद्दीन भी भीम के कहने से, किन्तु भीम को बरबाद कर देने की इच्छा के साथ, चढ़ आया—वह भी रासो में जब-तब आ ही धमकता है–और इञ्छिनी से पृथ्वीराज का विवाह हुआ। आगे तीसरी घटना है बारात का वर्णन और इञ्छिनी का नख-सिख (नख-शिख) वर्णन, इस विवाह में कवि ने किसी प्रकार की कथानक-रूढ़ि का आश्रय नहीं लिया है फिर भी और विवाहों से यह विशिष्ट है। इसमें इञ्छिनी का सौन्दर्य बहुत ही सुन्दर रूप में बिखरकर प्रकट हुआ है, जो प्रधानतः कवि समय के अनुसार ही है—

> नयन सुकज्जल रेष तष्षि निष्छल छवि कारिय।
> श्रवनन सहज कटाछ चित्त कषंन नर नारिय॥
> भुज मृनाल कर कमल उरज अंबुज कलिय कल।
> जंभ रंभ कटि सिंघ गमन दुति हंस करी छल॥
> देव अरु जष्षि नागिनि नरिय गरहि गर्व दिष्षत नयन
> इंछिनी अंखि लज्जा सहज कितक सोभ कव्विय वयन। १४-१५६

सो, यह विवाह झगड़ों और लड़ाइयों के बावजूद सहज विवाह है। इसके पहले और बाद में पटापट दो विवाह और हुए हैं, पर उनमें कवि का मन रमा नहीं है। स्पष्ट ही लगता है कि वे मूल रासो के विवाह नहीं हैं। इञ्छिनी का विवाह ही शायद मूल रासो का प्रथम विवाह है। बाकी दो विवाहों का वैशिष्ट्य दिखाने के लिये ही कवि ने इस सहज विवाह की पृष्ठभूमि तैयार की है। इस सहज विवाह की सहज शोभा का कवि ने बार-बार उल्लेख किया है—

> घन घुंमि घुम्मर हेम, कवि कहो ओपम एक।
> मनों कमल सौरभ काज, प्रति प्रीत भमर विराज॥
> कह कहौ अंग सुरंग, रति भूलि देखि अनंग।
> लषि लच्छि पूर सहज्ज, चित वृत्त मानों रज्ज॥
> सो सलख राजकुँवारि, नृप लही [illegible] सँवार।
> इन लच्छि इछनिय रूप, कुल वधू लच्छिन रूप॥

रति रूप रमनिय रज्जि, छबि सरल दुति तन सज्जि ।
रसि रसित रंगह राज, तिह रमन हुन्न प्रथिराज ॥

अगले विवाह में कवि ने जमके कथानक-रूढियों का सहारा लिया है। राजा का नट के मुख से यादवराज-कन्या शशिव्रता के रूप की प्रशंसा सुनना और आसक्त होना, यह जानना कि उज्जैन के कामध्वज राजा को सगाई भेजी गई है, पर कन्या उसे नहीं चाहती, कन्या-प्राप्ति के लिये शिव पूजन और शिवजी का स्वप्न में मनोरथ-सिद्धि के लिये वरदान-ये पुरुष-राग के चिराचरित भारतीय कथानक-रूढियाँ हैं। कवि ने इन्हें निपुणता के साथ उपस्थित किया है। फिर पृथ्वीराज भिन्न-भिन्न ऋतुओं में मन्मथ-पीड़ा से व्याकुल होता है—यहाँ भी वही बात है। कवि ने इस बहाने बड़ा ही सुन्दर ऋतु-वर्णन किया है—

मोर सोर चहुँ ओर घटा आसाढ़ बंधि नभ ।
वच दादुर झिंगुरन रटत चातिग रंजत सुभ ॥
नील बरन वसुमतिय पहिर आभ्रंन अलङ्क्रिय ।
चंद वधू सिठ्यंद धरे वसुमत्तिसु रज्जिय ॥
वरषंत बूंद घन मेघसर तब सुभौग जइव कुँअरि ।
नन हंस धीर धीरज सुतन इष फुट्टे मन मत्थ करि ॥ २५-६५

और फिर,

घन घटा बंधि तम मेघ छाय, दामिनिय दमकि जामिनिय लाय ।
बोलंत मोर गिरवर सुहाय, चातिग्ग रटत चिहुँ ओर छाइ । इत्यादि

यह विरहवर्णन साधारणतः बाह्यवस्तु-प्रधान है। विरह में जिस प्रकार का हृदयराग चित्रण होना चाहिए था, वैसा इसमें नहीं हैं। अस्तु।

जिस प्रकार नैषधचरित के नल की भाँति नटमुख से प्रिया के गुण सुन कर पृथ्वीराज व्याकुल हो उठा, उसी प्रकार एक हंस की भी कल्पना की गई है। यहाँ आकर मालूम हुआ कि सगाई जयचन्द के भतीजे वीरचन्द से होने जा रही थी। किसी गंधर्व ने यह बात सुनली और वह हंस बन कर शशिव्रता के पास पहुँचा। नैषध के हंस की भाँति यह भी सोने का ही था। शशिव्रता के पूर्व जन्म में चित्र रेखा नामक अप्सरा होने की बात हंस ने उसे बताई। अप्सरा का सुन्दरी कन्या के रूप में अवतार पृथ्वीराज रासो का प्रिय विषय है। संयोगिता भी

अप्सरा का ही अवतार थी । 'पृथ्वीराजविजय' के अन्त में कहानी आई है कि पृथ्वीराज अपनी चित्रशाला में अप्सरा का चित्र देखकर मुग्ध हुए थे । कथा का झुकाव जिस प्रकार का है, उससे पता चलता है कि वह अप्सरा किसी-न-किसी रूप में पृथ्वीराज का मिली होगी । दुर्भाग्यवश वह काव्य आधा ही प्राप्त हुआ है और यह नहीं पता चला कि वह अप्सरा पृथ्वीराज को किस रूप में मिली । पर जान पड़ता है अप्सरावाले विश्वास का पृथ्वीराज के वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध है । जो हो, गंधर्व (हंस) शशिव्रता को पृथ्वीराज को ओर उन्मुख करता है । वीरचन्द तो अभी साल भर का बच्चा था । अप्सरावतार युवती शशिव्रता को उससे विमुख करने में हंस को विशेष श्रम नहीं पड़ा । शशिव्रता के मन में प्रेमांकुर उत्पन्न करके वह दिल्ली गया । यही उचित था । यही स्वाभाविक भी । पृथ्वीराज ने उसे पकड़ा । नल ने भी ऐसा ही किया था । प्रेम गाढ़ होता है । पृथ्वीराज की ओर से भी और शशिव्रता की ओर से भी । हंस ने शशिव्रता का रूप-गुण वर्णन किया, चित्ररेखा का अवतार होना बताया और एक नई बात यह बताई कि शशिव्रता ने गान सिखाने वाली अपनी शिक्षयित्री चन्द्रिका से पृथ्वीराज का गुण सुनकर आकृष्ट हुई है । पृथ्वीराज भी नट से सुनके आकृष्ट हुआ था, शशिव्रता भी गायिका के मुख से सुनकर आकृष्ट हुई थी—दोनों ओर गुण-श्रवण-जन्य आकर्षण है । यह भी भारतीय कथानक रूढ़ि है, पर कहानी नैषधचरित के समानान्तर हो गई है । पृथ्वीराज के प्रेम का समानान्तर दूसरी घटना है, शशिव्रता का भी शिवपूजन । हंस संकेत करता है कि रुक्मिणी को जिस प्रकार श्री कृष्ण ने हरा उसी प्रकार तुम हरो । कन्याहरण का यह अभिप्राय भी बहुत पुराना है । रासो में पद्मावती ने भी पृथ्वीराज को उसी प्रकार वरा था 'ज्यों रुक्मिनि कन्हर वरिय ।' और संयोगिता को भी लगभग इसी पद्धति से हरा गया था । रासोकार को यह अभिप्राय अत्यन्त प्रिय है ।

अब कहानी नल के आदर्श पर नहीं चल कर श्री कृष्ण के आदर्श पर चलने लगी । परन्तु शशिव्रता के पिता ने ही पृथ्वीराज को लिखा कि शिवजी की पूजा के लिये शशिव्रता जाएगी और वहीं मिलेगी । पुत्री की दृढ़ता और व्रत से पिता का हृदय पसीज गया था । मन्दिर में पूजा के बहाने आई हुई कन्या का हरण पुराना भारतीय 'अभिप्राय' है, जो कथानक-रूढ़ि के रूप में ही बाद के साहित्य में जम बैठा है । पद्मावत में भी यह 'अभिप्राय' है । यहाँ पद्मावती अपने मन में अच्छी

तरह जानती हुई जाती है कि वहां रतनसेन जाने वाला है। शशिव्रता को वह नहीं मालूम। जायसी की तुलना में यहां चन्द अधिक सफल है। रासोकार ने अन्तर्वृत्तिओं के द्वन्द्व दिखाने में अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। रामचरितमानस की सीता को भी गौरी पूजन के प्रसंग में रामचन्द्रजी का अचानक दर्शन हो गया, पर वहाँ पूर्वराग उस सीमा तक नहीं पहुँचा था, जिस सीमा तक शशिव्रता और पृथ्वीराज का पूर्वराग-अवश्य ही साक्षात् दर्शन अभी भी बाकी था।— पहुँच चुका था। सखी ने शशिव्रता को दिखाया—देखो, जिसे चाहती हो, वह आ गया! आँखें चार हुईं और—

कर्न प्रयंत कटाच्छ सुरंग विराजही
कछु पुच्छन कों जांहि पै पुच्छय लाजहीं
नैन सैन मैं बात स्रवनन सो कहैं
काम किधौं प्रथिराज मेद करि ना लहैं। ४१-२६०

शशिव्रता मन्दिर की ओर बढ़ी। ५०० सखियाँ उसे घेरे थीं। कान्यकुब्जेश्वर की सेना डटी हुई थी। मन्दिर में फिर पृथ्वीराज की आँखों से आँखें मिलीं। सुकुमार-लज्जा-भार-भरिता शशिव्रता की वह शोभा देखने ही लायक थी। पृथ्वीराज ने उसकी बाँह पकड़ी. मानों गजराज ने लहरा कर आई हुई काञ्चन-लता को पकड़ लिया हो— (हि०सा०आ०, च०व्या०, पृ० ८०)

चौहान हत्थ बाला गहिय सो ओपम कवि चंद कहि।
मानो की लता कंचन लहरि मत्त वीर गजराज गहि॥

यह बिलकुल अप्रत्याशित बात थी। शशिव्रता इसके लिये बिल्कुल तैयार नहीं थीं। उसकी आँखों में आँसू आ गए। उधर सेनाएँ डटी हुई थीं। एकही साथ राजा पृथ्वीराज के हृदय में रौद्र, शशिव्रता के मन में करुण, वीरों के मनमें सुभट-गतिजन्य उत्साह, सखियों के मनमें हास, अरिदल के हृदय में बीभत्स और कमधज्ज के हृदय में भयानक रस का सञ्चार हुआ—

नृप भयो रुद्द. करुना सुत्रिय, वीर भोग वर सुभट गति।
संगियन सुहास वीभच्छ रिन भय भयान कमधज्ज दुति॥

फिर युद्ध-युद्ध-युद्ध! अन्त में शशिव्रता ने प्रस्ताव किया कि दिल्ली चलिए। शशिव्रता यहाँ अत्यन्त कोमल पतिपरायणा स्त्री के रूप में दिखाई पड़ती है। सब

मिलाकर यह कथा रासोकार की कवित्वशक्ति का परिचायक है। इसमें उसने प्रेम कथानकों की अनेक काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग किया है। उसे सफलता भी मिली है (हि० सा० आ०, च० व्या०, पृ० ८०-८१)।

संयोगिता का स्वयंवर विशुद्ध कवि-कल्पना है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी प्रामाणिकता पर कई बार सन्देह प्रकट किया गया है। जयचंद की किसी पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह हुआ था या नहीं, यह सन्दिग्ध ही है। कहा जाता कि ऐतिहासिकता के लिये प्रमाण मानी जाने योग्य प्रशस्तियों में या मुसलमान ऐतिहासिकों के विवरणों में तो इसका कोई उल्लेख है ही नहीं। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के जैन प्रबन्धों में भी इसकी चर्चा नहीं है। पृथ्वीराजविजय अधूरा ही मिला है। उसके उपलब्ध अन्तिम हिस्से में चित्रशाला में पृथ्वीराज एक अप्सरा की मूर्ति देख कर प्रेमातुर होता है। यह पता नहीं चलता कि आगे क्या हुआ, पर कथा के झुकाव से अनुमान होता है कि किसी ऐसे ही प्रेम-विवाह की ओर कवि कथा को ले जाना चाहता है जैसा रासो के कवि ने वर्णन किया है। उन दिनों स्वयंवर-प्रथा वास्तविक जगत् में समाप्त हो गई थी, पर कवियों की कल्पना की दुनिया से ऐसी बात लोप नहीं हुई थी। इस काल के कुछ थोड़ा पहले सन् ११२५ ई० में बिल्हण ने विक्रमाङ्कचरित में बहुत टीमटाम के साथ एक स्वयंवर का वर्णन किया है। बिल्हण चालुक्य राजा विक्रमादित्य के प्रताप का वर्णन करता है। कर्णाटदेश के शिलाहार-कुल की राजकन्या चन्द्रलेखा रूप और गुण में इतनी उत्तम और विख्यात थी कि राजतरंगिणी के समान ऐतिहासिक समझे जाने वाले काव्य के लेखक कल्हण ने भी लिखा है कि काश्मीर का राजा हर्ष उसे प्राप्त करने की इच्छा से कर्णाट पर चढ़ाई करने की सोच रहा था। उस राजकन्या का स्वयंवर हुआ और वह सर्व-सौन्दर्य निधि राजकन्या बिल्हण के आश्रयदाता राजा विक्रमादित्य के अतिरिक्त और किसे वरण कर सकती थी? ऐतिहासिक विद्वान् इस घटना को कवि-कल्पना ही मानते हैं। इससे केवल इतना ही सूचित होता है कि कवियों की दुनिया से स्वयंवर—जैसी मनोमोहक प्रथा समाप्त नहीं हुई थी। पृथ्वीराज-विजय के लेखक ने भी किसी ऐसे आयोजन की कल्पना की हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है। राज-तरंगिणी के लेखक ने भी कविजनोचित भाषा में हर्ष के प्रेमोद्रेक का कारण चित्र-

दर्शन ही बताया है[1] और पृथ्वीराज विजय के कवि के मन में भी कुछ ऐसी ही बात है— (हि० सा० आ०, चतुर्थ व्या०, पृ० ८१)

हृदये लिखिता पुरः स्थितादपि चित्रात्रु चिरां ददर्श यत् ।
अविदत् परमार्थतस्ततः स मनोराज्यमनोतिशायिनीम् ॥ १२-२५

इसलिये घटना ऐतिहासिक हो या न हो, रासो के कवि को कल्पना में इसका अविर्भाव वश्य हुआ था। संयोगिता की प्राप्ति ही रासो का चरम उद्देश्य जान पड़ता है। शेष इसमें भो है पर कवि ने इसे लिखने में बड़ा मनोयोग दिया है (हि० सा, आ; च. अ. पृ० ८२)।

इस प्रसंग में कवि को ऋतुवर्णन करने का अच्छा बहाना मिल गया है। बहाना तो खोजना ही पड़ता है। सन्देशरासक के कवि ने भी एक सुन्दर बहाना खोजा है। वहाँ विरहिणी का सन्देशा ले जाने वाला पथिक बार-बार जाने को उत्सुक होता है, पर उस बेचारी का दुःख देखकर रुक जाता है और पूछता है कि तुम्हें और भी कुछ कहना है ? कहना तो उसे है ही। प्रसंग बढ़ता जाता है। अन्त में पथिक पूछता है कि कब से तुम्हारा यह हाल है ? फिर एक-एक करके ऋतुवर्णन चलने लगता है। रासो में पृथ्वीराज जयचन्द का यज्ञ-विध्वंस करने और संयोगिता को हर लाने का इच्छा से घर से निकलना चाहते हैं। यह कोई नई बात नहीं है। पृथ्वीराज तो बाहर जाते ही रहते हैं, लड़ना तो उनका स्वभाव ही है और कन्याहरण और विवाह भो नया नहीं होने जा रहा है। फिर भो कवि यहाँ रुकता है। पृथ्वीराज हर रानो के पास विदा लेने जाते हैं और जिस ऋतु में जाते हैं, उसका मनोरम वर्णन सुन के रुक जाते हैं। वसन्त ऋतु में वे इञ्छिनी के पास जाते हैं, पर अनुमति नहीं मिलती। इञ्छिनी उन्हें समझाती हैं कि इस ऋतु में कोई भला आदमी बाहर जाता है ? जब आम बौरा गये हों, कदम्ब फूल चुके हो, रात को दीर्घता में कोई कमी नहीं आई हो, भँवरे भावमत्त होकर

---

१. कर्णाटभर्तुः पर्माद्रेः सुन्दरीं चन्दलाभिधाम् ।
आलेख्यालिखितां वीक्ष्य सोऽभूत् पुष्पायुधाहतः ॥
स विटोद्रेखितो वीतत्रपश्चक्रे समान्तरे ।
प्रतिज्ञां चन्दलावाप्त्यै पर्माद्रेश्च विलोडने ॥
राजतरंगिणी, ७-११२४

झूम रहे हों, मकरन्द की झड़ी लगी हुई हो मन्द-मन्द पवन विरहाग्नि को सुलगाने में लगी हो, कोकिल कूक रहे हो और किसलयरूपी राक्षस प्रीति की आग लगा रहे हों, तब कैसे कोई युवती रमणी अपने प्रिय को बाहर जाने की अनुमति दे सकती है ? इञ्छिनी ने पैरों पड़के विनय किया कि हे प्राणनाथ, इस ऋतु में बाहर मत जाओ—

मवरि अंब फुल्लिग कदंब रयनी दिघ दीसं ।
भँवर भाव भुल्लै भ्रमन्त मकरन्द बरीसं ॥
बहत बात उज्जलति मौर अति विरह अगिनि किय ।
कुहकुहन्त कलकंठ पत्र-राषस अति अग्गिय ॥
पय लग्गि प्रानपति बीनवौं नाह नेह मुझ चित धरहु ।
दिन-दिन अवद्वि जुब्बन घटय कन्त वसंत न गम करहु ॥

पृथ्वीराज ऐसे दो चार पद्य सुनने के बाद वसन्त भर वहीं रुक गये । फिर ग्रीष्म आया-प्रचण्ड ग्रीष्म । उस समय वे पुण्डीरनी रानी से विदा लेने गए । वही कैसे छोड़ती ? भला, यह भी कोई बाहर जाने का समय है-उत्तप्त वायु बह रही हो, तरुणी का क्षीण शरीर ताप से दग्ध हो रहा हो, चारों दिशाएँ धधक उठी हो, क्षण भर के लिये भी कहीं ठंड का अनुभव न होता हो, ज्वलंत पानी पीने को मिलता हो, खून सूख रहा हो, राह चलना कठिन हो रहा हो, दिन रात गर्मी की ज्वाला से काया क्लेशापन्न हो उठी हो इस प्रकार के समय में तो कन्त को कभी बाहर नहीं जाना चाहिए, संपत्ति हो या विपत्ति ! !—
(हि० सा० आ०, च० व्या०, पृ० ८२) ।

पीन तरुनि तन तपै बहै नित बाव रयन दिन ।
दिसी चार-यों परजलै नहिं कहीं सीत अरध पिन ॥
जल जलंत पीवंत रुहिर निसिवासर घट्टै ।
कठिन पंथ काया कलेस दिन रयनि संघट्टै ॥
त्रिय लहै तत्त अष्पर कहै गुनियन प्रब्बन मंडियै ।
सुनि कंत सुमति संपति विपति ग्रीषम गेह न छंडियै ॥

सो, पृथ्वीराज यहाँ भी एक ऋतु तक रुके रहे । वर्षाकाल में इन्द्रावती से विदा लेने गए । वही कैसे छोड़ती भला ? विशेष करके जब बादल घहरा

रहे हों, एक-एक क्षण पहाड़ बने हुए हों, सजल सरोवर को देख कर सौभाग्य-वतियों के हृदय फटे जा रहे हों, बादल जल से सींच-सींच कर प्रेमलता को पलुहा रहे हों, कोकिलों के स्वर के साथ प्रेम के देवता अपना बाण संधान कर रहे हों, दादुर, मोर, दामिनी, चातक, सब के सब दुश्मनी पर उतारू हो आए हैं तो प्रिय को कैसे जाने दिया जा सकता है ?

घन गरजै घर हरै पलक निसि रैनि, निघट्टै ।
सजल सरोवर पिक्खि हियौ तत छन घन कट्टै ॥
जल बद्दल बरषंत पेम पल्लहौ निरन्तर ।
कोकिल सुर उच्चरै अंग पहरंत पंचसर ॥
दादुरह मोर दामिनी दसय अरि चवत्थ चातक रटय ।
पावस प्रवेस बालम न चलि विरह अगिनी तन तप घटय ॥
घुमड़ि घोर गन गरजि करत आडंबर अंबर ।
पूरत जलधर धसन धार पथ पथिक दिगंबर ।
झमकित द्रिग सिसु त्रिग समान दमकत दामिनि द्रसि ।
विहरत चात्रग चुवत पीय दुष्षंत समं निसि ।
ग्रीषम्म विरह द्रुमझतातन परिरंभन क्रत सेन हरि ।
सज्जन्त काम निसि पंचसर पावस पिय न प्रवास करि ॥

इस ऋतु का वर्णन कवि ने प्राण डाल कर किया है—

द्रिग भरित भूमिल जुरति भूमिल कुमुद त्रिम्भलसोभिलं ।
द्रुम अंग वल्लिय सीस हल्लिय कुरलि कंठह कोकिलं ।
कुसुमंज कुंज सरीर सुम्भर सलित सुम्भर सद्दयं ।
नद रोर दद्दुर मोर नद्दर बनसि बद्दरि बद्दयं ।
झमझमकि बिज्जल काम किज्जल श्रवनि सज्जल कद्दयं ।
पपीह पीहति जीह जंजरि मोर मंजरि मद्दयं ।
अगमगति मिगन निसि सुरंगन भय अभय निसि हद्दयं ।
मिति हंस हंसि सुवास सुंदरि उरसि आनन सिद्धयं ॥
(हि० सा० आ० च० व्या०, पृ० ८२-८३) ।

सो, चंदबरदाई का यह वर्षा वर्णन भाषा और भाव-ध्वनि और बिंब-दोनों ही दृष्टियों से बहुत उत्तम हुआ है। अनुकूल ध्वनियों का ऐसा समंजस विधान है

कि देखते ही बनता है। चंद इस कला में निपुण है। बल्कि यह कहना चाहिए कि वे इस कला में जरूरत से ज्यादा महारत हासिल कर चुके हैं। युद्ध के प्रसंगों में तो वे लाठी लेकर शब्दों को पीट-पीट कर इस योग्य बनाते हैं कि वे युद्ध की ध्वनि उत्पन्न कर सकें। यदि किसी का हाथ-पैर टूट जाय तो उन्हें कोई परवाह नहीं। इस ऋतु वर्णन के प्रसङ्ग में इतनी दूर तक शासन से काम नहीं लेते। शरद, हेमन्त और शिशिर भी इसी प्रकार एक-एक रानी के पास बीत जाते हैं, पृथ्वीराज का जाना नहीं होता। अन्त में वे चन्द की शरण जाते हैं–

षट् रित बारह मास गय, फिरि आयौ रु बसंत।
सो रित चँद बताउ मुँहि, तियान भावै कंत॥

चन्द ने 'ऋतु' शब्द को पकड़ लिया। उसी पर श्लेष करते उत्तर दिया—

रोस भरे उर कामिनी होइ मलिन सिर अंग।
उहि रिति त्रिया न भावई, सुनि चुहान चतुरंग॥

और यह प्रसंग समाप्त होता है (हि० सा० आ० च० का० पृ० ८३-८४)।

यह ऋतु वर्णन मिलनजन्य आनद में उद्दीपना का संचार करता है। शशिव्रता-विवाह के प्रसंग में विरह जन्य दुःख बोध को गाढ़ बनाने के लिये ऋतु वर्णन का सहारा लिया गया है। इस काल के कवि अद्दहमाण (अब्दुलरहमान ?) के सन्देश रासक और ढोला-मारू के दोहों में विरह दशा की अनुभूतियों के वर्णन का प्रयत्न है। कुछ थोड़ा परवर्ती काल के कवि मलिकमुहम्मद जायसी ने विरह-वेदना की अनुभूतियों को दिखाने के उद्देश्य से ऋतुवर्णन लिखा है। संदेशरासक में कवि ने जिस बाह्य प्रकृति के व्यापारों का वर्णन किया है, वह रासो के समान ही कवि प्रथा के अनुसार है। उन दिनों ऋतु वर्णन के प्रसंग में वर्ण्य वस्तुओं की सूची बन गई थी। बाहरवीं शताब्दी की पुस्तक कविकल्पलता में और चौदहवीं शताब्दी की पुस्तक वर्णरत्नाकर में ये नुसखे पाए जा सकते हैं। इन बाह्य वस्तु और व्यापारों के आगे न तो रासो का कवि गया है, न अद्दहमाण हो। फिर भी जायसी की भांति अद्दहमाण के सादृश्य मूलक अलंकार और बाह्य वस्तु-निरूपक वर्णन बाह्यवस्तु को ओर पाठक का ध्यान न ले जाकर विरह-कातर मनुष्य के (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) मर्मस्थल की पीड़ा को अधिक व्यक्त करता है। रासो में यह बात इस मात्रा में नहीं मिलती। सन्देशरासक का पद्य बाह्य वस्तुओं की

सम्पूर्ण चित्र योजना इस कोशल से करता है कि उससे विरहिणी के व्यथा-कातर सहानुभूति सम्पन्न कोमल हृदय की मर्म वेदना ही मुखर हो उठती है। वर्णन चाहे जिस दृश्य का हो, व्यंजना हृदय की कोमलता और मर्मवेदना की ही होती है। तुलना के लिये एक वर्षा वर्णन का प्रसंग ही लिया जाय। विरह-कातरा प्रिया किसी पथिक से अपने प्रिय के सन्देशा भेजती है। वह मेघों का समय है। दसों दिशाओं में बादल छाए हुए हैं, रह-रह के घहरा उठते हैं, आकाश में विद्युल्लता चमक रही है, कड़क रही है, दादुरों की ध्वनि चारों ओर व्याप्त हो रही है-धारासार वर्षा एक क्षण के लिये भी नहीं रुकती। इस कवि प्रथा-सिद्ध वर्षा का वर्णन करते-करते विरहणी कातर भाव से कह उठती है-हाय पथिक, पहाड़ की चोटियों पर से उसने (प्रियने) यह सब कैसे सहा होगा ?—

> झपवि लम बद्दलिण दसह दिसि छायउ अंबरु ।
> उन्नवियउ घुरहुरइ घार घणु किसयाडंबरु ।
> णहह मग्गि णहवल्लिय तरल तउयडिवि तड़क्कइ ।
> दरह, रउणु रउद्द, सद्द, कुवि सहवि ण सक्कइ ।
> निबड निरन्तर नीरहर, दुद्धर धर धारोह भरु ।
> किय सहउ पहिय सिहरट्ठियइ दुसहउ कोइल रसह सरु ।
>
> —(संदेशासक)

इससे विरह-कातरा प्रिया का अत्यन्त कोमल और प्रीति परायण हृदय ही ध्वनित हुआ है। बाह्य प्रकृति तो उसके सहानुभूतिमय प्रेम-परायण हृदय को दिखा देने का साधन भर है। रासो के वर्णनों में यह बात नहीं आने पाई है, फिर भी वे बाह्य प्रकृति के सरस चित्र उपस्थित करते हैं। ध्वनियों और रंगों के सामंजस्य से रासो के चित्र खिल उठे हैं। अस्तु-

सो, इस प्रसंग में कवि ने विरह के समय ऋतु वर्णन की प्रथा को न अपना कर संयोग-कालीन उद्दीपक ऋतुवर्णन की पुरानी प्रथा को ही अपनाया है। यद्यपि वर्ण्य विषयों की योजना में कोई नवीनता नहीं है, वे तत्काल-प्रचलित रूढ़ियों के अनुसार ही हैं, तथापि उनमें अपना सौन्दर्य है। वे पाठक को आकृष्ट करते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार राजपूत चित्र रूढ़िबद्ध होने पर भी दर्शक को विह्वल बनाते हैं।

शब्दचयन की अद्भुत शक्ति ने चंद के काव्य को अपूर्व शोभा प्रदान की है। इन मधुर-मोहन छंदों को पढ़ने के बाद रासो के अन्य प्रसंगों की ऊबड़-खाबड़, बेठोर-ठिकाने की भाषा के विषय में सन्देह होना उचित ही है। कहाँ शब्द योजना, गंभीर ध्वनिमान्द्रय और कहाँ द्वित्व और अनुस्वारों के सहारे बे मतलब खड़ी की गई बे तरतीब शब्दों की पल्टन। एक बार दिखती है कथाकार की अद्भुत योजनाशक्ति, कथा का घुमाव पहचानने की अपूर्व क्षमता, भावों का उतार-चढ़ाव चित्रित करने की मोहक भंगिमा और फिर दिखता है लड़ने वाले सरदारों की नामावली बताने की आतुरता हथियारों के लक्षण और हिसाब बताने की उतावली, कवि चंद की सिद्धियों की महिमा बखानने का उमंग और कथा को बे मतलब बोझिल और लस्टम-पस्टम बनाने की निबुद्धिक योजना। रासो विचित्र मिश्रण है। खैर!

इस के बाद राजा कन्नौज के लिये प्रस्थान करते हैं। कवि को अनेक शकुनों और फलों के वर्णन का अवसर मिलता है। इस काल में शकुन में पूरा विश्वास किया जाता था और शकुनों का यहाँ विस्तारपूर्वक वर्णन अपेक्षित ही है। बाद में पृथ्वीराज और उसके साथी वेश बदल कर कन्नौज पहुँचते हैं। कन्नौज का सुन्दर वर्णन दिया गया है और जयचंद की दासियों को गंगा में जल भरते देख कवि को नारी- सौंदर्य के मोहक वर्णन का बहाना मिल जाता है—

> द्रिग चंचल चंचल तरुनी, चितवन चित्त हरंति।
> कंचन कलस झकोरि कैं, सुंदरि नीर भरंति ॥ ६१-३३८

इसके बाद दासियों के नख-शिख सौंदर्य का वर्णन चिराचरित कवि प्रथा के अनुसार होने लगता है। फिर जरा कतरा कर कवि कन्नौज नगर की सुन्दरियों की शोभा का भी लगे हाथों उद्धार कर देता है। दासियाँ अभी पानी भर रही हैं। उनका घुंघट अचानक जरा सरका और सामने रूप और शोभा के अगाध समुद्र दिल्ली नरेश दिख गए। सोने का घड़ा हाथ में जो पड़ा था, सो पड़ा ही रह गया, घूँघट छूटा सो छूट ही गया, आमोध हो गया। वक्षः स्थल के तट देश पर पसीना झलक आया, ओठ काँप गए, आँखों में पानी भर आया, जड़िमा और आलस्य के लक्षण जृंभा और स्वेद प्रकट हो गए, गति शिथिल हो गई—सात्त्विक विचारों के ससाध्वसा वह सुन्दरी भाग गई।

भागते-भागते भी पृथ्वीराज को निहारती गई, खाली घड़ा गंगा के तट पर पड़ा रह गया—

दरस त्रियन दिल्ली नृपति, सोत्रन घट पर हथ्थ।
बर घूँघट छुटि पट्ट गौ, खटपट परि मनमथ्थ॥
खटपट परि मनमथ्थ, भेद वच कुचतट स्वेदं।
वष्ट कंप जल द्रगन, लग्गि जंभायत भेदं॥
सिथिल सुगति लजि भगति गलत पुंडरि तन सरसी।
निकट निजल घट तजै मुहर मुहरं पति दरसी॥ ६२-३७०

कवि भावी रोमांस का बीज यही बो देता है। इसके बाद नगर का किले का, सेना का, दरबार का और अन्य बातों का वर्णन करने का बहाना खोज निकालता है। एक बहुत ही मजेदार प्रसंग कविचन्द का राजा जयचन्द्र के दरबार में जाना है। जयचन्द्र के दरबार में कोई दसोंधी कवि थे। ये सम्भवतः वर्तमान जसोंधी जाति के हैं, जो आज भी कड़खे और नाजि कहने वाले जोगवरों की जाति है, या यह भी हो सकता है कि इस नाम का कोई कवि रहा हो और आज के जसोंधी अपने इसी पूर्व पुरुष के नाम पर अपना परिचय दिया करते हों। दसोंधियों और चन्द के वार्तालाप से चन्द की सर्वज्ञता का परिचय मिलता है। चन्द अदृष्ट बातों का जिनमें स्वयं राजा जयचंद्र और उसके दरबार की तात्कालिक अवस्था भी शामिल है—वर्णन सफलता पूर्वक करता है और इस प्रकार कविचंद दरबार में प्रवेश करने का अवसर पाता है और जयचन्द्र जब पृथ्वीराज के विषय में प्रश्न करता है तो तुर्की-बतुर्की जवाब देता है। इसी प्रसंग में कवि पृथ्वीराज की वीरता के वर्णन का बहाना भी खोज निकालता है। जब जयचन्द्र पूछता है कि क्यों नहीं पृथ्वीराज उसके दरबार में और राजाओं की भांति आता तो चंद बताता है कि पृथ्वीराज ने तुम्हारे राज्य की रक्षा की है। शहाबुद्दीन गोरी जब कन्नौज पर आक्रमण करना चाहता था तो पहले तो कुन्दनपुर के पास रायसिंह बघेले ने उसे रोका; परन्तु वह उसे पराजित करके आगे बढ़ा। उस समय पृथ्वीराज नागौर में थे। वे बाज की भांति शहाबुद्दीन पर झपट पड़े। इसी बहाने कवि विस्तार के साथ इस लड़ाई की चर्चा करता है। स्वयं पृथ्वीराज भी दरबार में चंद के खवास के रूप में उपस्थित होते हैं और इस प्रकार कवि ने पृथ्वीराज-सम्बन्धी वार्तालाप में स्वयं उसे श्रोता बनाकर एक प्रकार का नाटकीय रस ला दिया है। जयचन्द्र के

मन में एकाध बार सन्देह होता है, पर पृथ्वीराज खवासवेश में बाहर आ जाता है। लेकिन अन्त तक यह बात छिपती नहीं। पृथ्वीराज का पड़ाव घेर लिया जाता है युद्ध का नगाड़ा बज उठता है और इसी युद्ध के बीच पृथ्वीराज अकेले कन्नौज की शोभा देखने चल पड़ते हैं। युद्ध का रोर सुन कर कन्नौज की सुँदरियाँ अटारियों पर आ बैठती हैं। घोर युद्ध होता है और इसी दुर्द्धर युद्ध की पृष्ठ भूमि में कवि ने रोमांस का आयोजन किया है। चंद की यह अद्भुत घटना-योजना-शक्ति रासो में अन्यत्र कहीं भी प्रकट नहीं हुई। तलवार चमक रही थी, घोड़े और हाथियों की सेना में जुझाऊ बाजे बज रहे थे, वीर दर्प से कन्नौज मुखरित हो उठा था और मस्तमौला पृथ्वीराज संयोगिता के महल के नीचे मछलियों को मोती चुगा रहे थे। संयोगिता की सखियों ने देखा, संयोगिता ने भी देखा। क्या देखा? हृदय के आराध्य प्रेममूर्ति पृथ्वीराज मछलियों को मोती चुगा रहे हैं। एक क्षण के लिये सन्देह हुआ। चित्रसारी में जाकर पृथ्वीराज का चित्र देखा और विश्वास हो गया कि निस्सन्देह यही वह राजा है, जिसकी मूर्ति के गले में संयोगिता ने अपनी वरमाला डाल दी थी और फिर पृथ्वीराज ने भी संयोगिता को देखा। क्या देखा?

कुंजर उप्पर सिंघ सिंघ उप्पर दोय पव्वय।
पव्वय उप्पर भृंग भृंग उप्पर ससि सुब्भय॥
ससि उप्पर इक कीर कीर उप्पर मृग दिट्ठौ।
मृग उप्पर कोवंड संध कंद्रप्प वयट्ठौ॥
अहि मयूर मंह उप्परह हीर सरस हेमन जर्‌यो।
सुर भवन छंडि कवि चंद कहि तिहि धोषै राजन पर्‌यो॥

इसके बाद प्रेम का देवता अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ने लगता है। संयोगिता ने दासी के हाथ से थाल में मोती भिजवाया। पृथ्वीराज अन्यमनस्क भाव से उन मोतियों को भी मछलियों को चुगाते रहे। फिर दासी ने ऊपर इशारा करके संयोगिता को दिखाया। कवि ने बड़ी कुशलता के साथ प्रेमियों के भाव-परिवर्त्तन का चित्रण किया है। संयोगिता की विचित्र स्थिति है, बोले कि न बोले? बोले तो हाथ से चित्त ही निकल जाय और न बोले तो हृदय फटजाय! भइ गति साँप छुछुंदरि केरी।—

जो जपौ ता चित्त हर, अनजंपै विहरंत ।
अहि उट्ठे छच्छुन्दरी, हियै बिलग्गी वंति ॥

परन्तु अन्त तक त्रिभुवन विजयी प्रेम देवता की ही जीत होती है। पृथ्वीराज महल में लाए जाते हैं और गंधर्व विवाह होजाता है। इसी समय पृथ्वीराज को खोजते हुए गुरुराम गंगा के तट पर आजाते हैं और उनसे सेना का हाल सुनकर पृथ्वीराज चल देते हैं। युद्ध फिर बीच में भयंकर ध्वनि के साथ आ उपस्थित होता है। संयोगिता व्याकुल हो उठती है। माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध उनके शत्रुको प्रेम करनेवाली बालिका के हृदय की दशा बड़ी ही करुण थी। वह व्याकुल भाव से रोकर मूर्च्छित हो गई इसी समय पृथ्वीराज उपस्थित हुए। संयोगिता को घोड़े पर बैठा कर वे दिल्ली की ओर चले। जुझाउ बाजे बजते रहे। तलवारें खनखनाती रहीं, घोड़े दौड़ते रहे, सूर-सामन्त युद्धोन्माद में पगे रहे। भयंकर युद्ध हुआ। पृथ्वीराज के राजभक्त सामन्त कई दिनों तक लड़ते रहे और राजा अपनी प्रियाके साथ भागते रहे। वीररस की पटभूमि पर यह प्रेम का चित्र उसमें एक दम डूब गया है। कथा का आरम्भ जिस प्रकार हुआ था, उससे लगता है कि प्रेम के चित्र का इस प्रकार युद्ध के गहरे रंग में नहीं डूबना चाहिये। वह युद्ध प्रेम का परिपोषक हो कर आया है। या तो युद्ध का इतना गाढ़ा रंग बाद के किसी अनाड़ी चित्रकार ने पोता है या चंद बहुत अच्छे कवि नहीं थे। कथा का आरम्भ जिस ललित ऊर्जस्वल योजना के साथ हुआ था उसे देखते हुए उसकी यह परिणति सामंजस्य न पहचानने का चिह्न है। कथा की परवर्ती परिणति बताती है कि शुरू में मूल कवि ने इतना रंग नहीं पोता होगा। चन्द कुशल कवि ही थे। उन्होंने इस प्रेम-कथानक की बड़ी ही सुन्दर और सुकुमार योजना की थी। युद्ध का वर्णन उस प्रेमप्रसंग को गाढ़ बनाने के उद्देश्य से आया है, सरदारों की मृत्यु-सूची बताने के लिये नहीं। जान पड़ता है, किसी उत्साही वीर कवि ने युद्ध के प्रसंग में बहुत-कुछ जोड़ कर बेकार ही उसे इतना घसीटा है। इस बात को यदि स्वीकार न किया जाय तो कहना होगा कि चंद को सामंजस्य का बोध नहीं था। (हि० सा० आ०, च० व्या०, पृ० ८७-८८)।

इस प्रकार संयोगितावाला प्रसंग निस्संदिग्ध रूप से मूल रासो का सर्व प्रधान अंग था, यद्यपि अपने वर्तमान रूप में वह बहुत से प्रक्षिप्त अंशों के कारण विकृत होगया है इसके बाद शुक चरित्र है, जिसके बारे में पहले ही उल्लेख

किया गया है कि कथा के प्रवाह के वह अनुकूल ही है। यद्यपि उसके बारे में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह रासोकार की अपनी रचना है ही। अन्यान्य काव्यों की भांति रासककाव्य भी मिलनान्त होते हैं। संयोगिता के मिलन के बाद कवि का उद्देश्य पूरा होजाना ही संगत जान पड़ता है। शुक चरित्र के द्वारा इञ्छिनी का हृदय शान्त करना भी संगत ही है। संदेशरासक विरह काव्य है, पर कवि अचानक अन्त में मिलन को योजना कर देता है। विरहिणी अपना व्याकुल संदेशा लेकर ज्योंही घर की ओर लौटना चाहती है त्योंही उसका पति दक्षिण की ओर से आता दिखाई देता है। इस प्रकार अप्रत्याशित 'अचिन्तउ' मिलन की योजना कवि को स्वयं थोड़ा उद्वेजक मालूम पड़ती है। लेकिन इसका उपयोग वह पाठक को आशीर्वाद देने में कर लेता है—उस विरहिणी की कामना जिस प्रकार अप्रत्याशित रूप से छिन भर में ही सिद्ध होगई, उसी प्रकार इस काव्य के पढ़ने वालों की भी पूरी हो—अनादि अनन्त देवता की जय हो—

> जेम अचिन्तिउ कज्ज तसु, सिद्ध खणद्धि महंतु।
> तेम पढन्त सुणन्त यह, जयउ अणाइ अनन्तु॥

और तो और, कालिदास को भी विरह का समुद्र उद्वेल कर देने के बाद मिलन करा देने की उतावली होगई थी—

> श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
> शापस्यान्तं सदयहृदयः सविधायास्तकोपः।
> संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दंपती हृष्टचित्तौ
> भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत्॥

(हि० सा० आ०, च० व्या०, पृ० ८८)

यही चिराचरित भारतीय प्रथा है। रासो की समाप्ति भी आनन्द में ही होनी चाहिए। रासो में संयोगिता के साथ पृथ्वीराज के विलास का प्रधान वर्णन तो शुक चरित्र में ही मिल जाता है, पर अन्तिम हिस्सों में कई जगह बिना किसी योजना के और बिना किसी प्रसंग के (या जबर्दस्ती लाए हुए प्रसंगों में) इस संयोग-सुख का वर्णन मिलता है। बीच-बीच में इञ्छिनी का पतिव्रता रूप भी स्पष्ट हो उठता है। इन्हीं किन्हीं प्रसंगों में मूल रासो का अंतिम अंश प्रच्छन्न है। यह प्रसिद्ध है कि चंद के पुत्र ने इस ग्रन्थ को पूरा किया था।

पता नहीं, इस 'पुत्र' ने कितना विस्तार किया है। सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इन पुत्रों की सख्या बहुत अधिक रही है और दो-तीन शताब्दियों तक उनका प्रभुत्व रहा हो।

आरम्भ में हमने ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम से संबद्ध भारतीय काव्यों की मूल प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है। उस पृष्ठ भूमि में रासो का यह रूप अनुचित नहीं मालूम होता। सभी ऐतिहासिक कहे जाने वाले काव्यों के समान इसमें भी इतिहास और कल्पना का–फैक्ट और फिक्शन–का मिश्रण है। सभी ऐतिहासिक माने जाने वाली रचनाओं के समान इसमें भी काव्यगत और कथानक प्रथित रूढ़ियों का सहारा लिया गया है। इसमें भी रस-सृष्टि की ओर अधिक ध्यान दिया गया है, संभावनाओं पर अधिक जोर दिया गया है और कल्पना का महत्वपूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है (हि० सा० प्रा०, न० व्या०, पृ० ८६)।

····· अपभ्रंश में भी बड़े-बड़े छन्द लिखे जाने लगे। रोला, उल्लाला, वीर, कव्व, छप्पय और कुण्डलिया अपभ्रंश के अपने छन्द हैं। धीरे-धीरे अपभ्रंश की कविता भी आडम्बरपूर्ण होती गई। छप्पय और कुण्डलिया-जैसे छन्दों को सँभाल कर वीर दर्प की ओजस्विनी कविता लिखना भाषा की प्रौढ़ता का सबूत है (हि० सा० आ०, पं० व्या०, पृ० ६७)।

चंदबरदाई छप्पयों का राजा था। बहुत पहले शिवसिंह ने यह बात लिखी थी और रासो असल में छप्पयों का ही काव्य है। कविराज श्यामलदास तो रासो में छप्पय और दूहा के अतिरिक्त और किसी छन्द का अस्तित्व ही नहीं मानते और वैसे तो हर तलवार की झनकार में चंदबरदाई तोटक, तोमर, पद्धरी और नाराच पर उतर आते हैं, पर जम कर वे छप्पय और दूहा ही लिखते हैं। यह अत्यन्त संकेत पूर्ण तथ्य है कि चन्दबरदाई के नाम से मिलने वालों छन्दों में जिनकी प्रामाणिकता लगभग निःसन्दिग्ध है: वे छप्पय ही हैं। मुनि जिनविजयजी ने पुरातन प्रबन्ध संग्रह में चन्द के नाम पर मिलने वाले चार छप्पयों का उल्लेख किया है। उनमें से तीन तो मुनिजी ने स्वयं ही वर्तमान रासो से ढूँढ निकाले हैं।

पुरातनप्रबन्ध के छप्पयों की भाषा अपभ्रंश है। मैंने बहुत पहले अनुमान किया था कि चंद हिंदी परंपरा के आदि कवि की अपेक्षा अपभ्रंश परंपरा के अंतिम कवि थे। यह बात इन छप्पयों* से प्रमाणित होती है (हि० सा० आ०,पं०व्या०,पृ० ६७-६८)।

एक मनोरंजक बात यह है कि चंदवरदाई ने संस्कृत और प्राकृत श्लोक लिखने का भी प्रयास किया है। संस्कृत में वे साटक या श्लोक छन्द में लिखते हैं और प्राकृत गाहा (गाथा) में इन दोनों बातों को देख कर अनुमान किया जा सकता है कि अपभ्रंश वे दूहा और छप्पय में लिखते होंगे। छप्पय आगे चल कर डिंगल का प्रधान छन्द हो गया है, पर यह संस्कृत वाला साटक क्या है। रासो के सम्पादकों को इस नाम का व्याख्या करने में काफी श्रम उठाना पड़ा था। उन्होंने स्पष्ट ही अनुभव किया था कि यह छन्द 'शार्दूल-विक्रीडित' का नामान्तर है। यहाँ इस बात का उल्लेख उनके मत में कोई भ्रांति दिखाने या संशोधन करने के उद्देश्य से नहीं किया जा रहा है। उन्होंने ठीक ही अनुमान किया था कि शाटक शार्दूलविक्रीडित का नामान्तर है। मुझे इस शब्द पर विचार करने से एक दूसरी बात सूझी और यद्यपि यह थोड़ा अप्रासंगिक है तो भी इस अध्ययन के लिये उपयोगी समझ कर उसकी चर्चा कर रहा हूँ।

प्राकृत-पिंगल में शार्दूलविक्रीडित का लक्षण और उदाहरण दिया गया है और उसके बाद ही 'शद्दूलसट्ट' का लक्षण दिया हुआ है, जो वस्तुतः एक ही छन्द है। आगे 'शार्दूलस्यलक्षणद्वयमेतत्' कह कर उपसंहार किया गया है। टीका में 'सट्टअ' या 'साटक' छन्द के और भी कई भेद दिए गए हैं। यहाँ छन्द के इन भेदों की चर्चा करने में कोई लाभ नहीं है। मुझे सिर्फ सट्टक या साटक शब्द से मतलब है। शार्दूलविक्रीडित का अनुवाद ही शार्दूल-सट्टक होगा। वस्तुतः सट्टक एक प्रकार का नाटक भेद है। ·····(हि० सा० आ०, प० व्या०, प्र० ९९)।

···पृथ्वीराजरासो इसी श्रेणी का काव्य है। इसमें रासक छंद का प्रयोग बहुत कम हुआ है।········· (हि० सा० आ०, पं० व्या०, पृ० १००)।

---

* सं० टि०—जो चार छप्पय छन्द पुरातनप्रबन्ध संग्रह में श्री मुनि जिनविजयजी ने ढूंढ निकाले हैं, उनमें से तीन वर्तमान रासो में विद्यमान हैं और कई स्थानों पर विद्वानों ने उद्धृत किये हैं, वे इस ग्रन्थ में पृ० २०७—२०९, ५०१—५०३, ५६७—५६९, ५९४—९६ और ६४८—६५० में छप चुके हैं, इसलिये यहां ग्रन्थ के कलेवर को नहीं बढ़ाने की दृष्टि से छोड़ दिये हैं।

शार्दूल साटक का मतलब शार्दूल का खेल है। ठीक विक्रीडित शब्द का अनुवाद समझिए। संस्कृत के शार्दूलविक्रीडित शब्द का किसी ने शार्दूल साटक अनुवाद किया होगा। यह बात थोड़ी महत्वपूर्ण इसलिये है कि 'रासो' शब्द को लेकर हिन्दी के विद्वानों ने बे मेल, बेमतलब के अटकल लगाए हैं। सन्देश-रासक जैसे ग्रन्थों के मिलने के बाद भी यह अटकल समाप्त नहीं हुआ है। रासक-वस्तुतः एक विशेष प्रकार का खेल या मनोरंजन है। रास में वही भाव है। सट्टक भी ऐसा ही शब्द हैं। लोक में इन मनोरंजक विनोदों को देखकर संस्कृत के नाट्य शास्त्रियों ने इन्हें रूपकों और उपरूपकों में स्थान दिया था। इन शब्दों का वर्णन अर्थ विशेष प्रकार के विनोद और मनोरंजन थे (हि०सा०आ०,प०व्या०.पृ०१००-१०१)।

···चंद के नाम पर कुछ विशुद्ध ब्रजभाषा के घनाक्षरी छंद चलते हैं, इनमें पृथ्वीराज का गुणानुवाद है। शिवसिंह ने अपने सरोज में ऐसे कुछ छन्द उद्धृत किए थे। एक इस प्रकार है।

मंडन मही के अरि खण्डे प्रथिराज वीर,
तेरे डर वैरि वधू डौग-डाँग डगे हैं।
देश-देश के नरेश सेवत सुरेश जिमि,
काँवत फणेश मुनि वीर रस पगे हैं॥

तेरे स्रुति मंडलनि कुंडल विराजत हैं,
कहै कवि चंद यहि भांति जेब जगे हैं।
सिंधु के वकील संग मेरु के बकिलहि लै,
मानहुँ कहत कछु कान आनि लगे हैं॥

भाषा से ये परवर्ती लगते हैं। साहित्य में इस छन्द का प्रवेश एकदम अचानक हुआ है। मूलतः ये बन्दी जन के छन्द है। संभवतः उसी परम्परा में इसका मूल भी मिले। जिस प्रकार श्लोक लौकिक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का और दोहा अपभ्रंश का अपना छन्द है, उसी प्रकार कवित्त-सवैया ब्रजभाषा के अपने छन्द हैं, जिसे हिन्दी का आदिकाल कहा जाता है। उसमें इस छन्द का प्रचार निश्चय ही होगया था (हि०सा०आ०, पं०था०, पृ०१०३)।

······पृथ्वीराजरासो के ४६ वें समय में 'विनयमंगल' नाम का एक काण्ड जोड़ दिया गया है। यह भी विवाह काव्य है। प्रसंग संयोगिता की शिक्षा का है।

संयोगिता को उसकी गुरु ब्राह्मणी ने वधू धर्म की शिक्षा दी थी। ऐसा जान पड़ता है कि यह 'विनयमंगल' कोई पृथक् काव्य था। जो बाद में रासो में जोड़ दिया गया है। अध्याय के मध्य में ही 'इति विनयकाण्ड समाप्त' कहा गया है, जो इस बात का सूचक है कि यह 'विनयकाण्ड' पूरा का पूरा कहीं से उठा कर इसमें जोड़ दिया गया है। आगेवाले अध्याय में फिर से विनयमंगल का प्रसंग आ जाता है। ऐसा गड्ड-मड्ड क्यों हुआ। संयोगिता की शिक्षा का प्रकरण मूल रासो का अंग था। उसमें विनयमंगल का प्रसंग देखकर बाद में किसी इसी नाम की पूरी पुस्तक को वहाँ जोड़ दिया गया है। रासोवाला विनयमंगल इस बात का सबूत है कि मंगल-साहित्य बंगाल से राजस्थान तक किसी समय व्याप्त था। (हि० सा० आ०, पं० व्या०. पृ० १०२)।

...ऐसा जान पड़ता है कि ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में दशावतार वर्णन बहुत आवश्यक समझा जाने लगा था। मूल रासो में भी दशावतार वर्णन परक कुछ कविताएँ अवश्य रही होंगी। वर्तमान रासो में भी दशावतार नामका एक अध्याय जुड़ा हुआ है। मूल ग्रन्थ से यह लगभग स्वतंत्र ही है। इसमें अच्छे कवित्व का परिचय है। जान पड़ता है कि क्षेमेन्द्र के 'दशावतारचरितम्' की भाँति यह भी देशी भाषा में लिखा हुआ कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ था। वर्तमान रासो में इसका दसम् नाम अब भी सुरक्षित है। दसम् अर्थात् दशावतारचरित। यद्यपि वर्तमान रासो में यह दूसरे समय के रूप में अंतर्भुक्त किया गया है, तथापि इसका दसम नाम उसमें दिया हुआ है। सम्पादकों को इस नाम की व्याख्या में कहना पड़ा है कि दसम् नाम उसमें दिया हुआ है। सम्पादकों को इस नाम की व्याख्या में कहना पड़ा है कि दसम् अर्थात् द्वितीय समय। जब तक यह स्वीकार न किया जाय कि दसम् नाम का दशावतारचरित विषयक कोई अलग ग्रन्थ था, जो बाद में रासो में जोड़ दिया गया,तब तक'दसम्' अर्थात 'द्वितीय' को ठीक-ठीक संगति नहीं लग सकती।

परन्तु मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि यह दसम् नामक पुस्तक चंद की रचना होगी ही नहीं इसमें सुन्दर कवित्व हैं। यह किसी अच्छे कवि की रचना जान पड़ती है। इसमें राधा का नाम आया देख कर बिदकने की कोई जरूरत नहीं है। यह विश्वास बिलकुल गलत है कि जयदेव के पहले उत्तर भारत में राधा शब्द अपरिचित था। मैंने 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका' में दिखाया है कि दसवीं

शताब्दी में आनन्दवर्धन को इस राधा का परिचय था। उन्होंने एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें श्रीकृष्ण उद्धव से राधा का कुशल पूछ रहे हैं। श्लोक इस प्रकार है—

तेषां गोपवधूविलाससुहृदः राधारहः साक्षिणाम्
भद्रं भद्र ! कलिंदराजतनयातीरे लतावेश्मनाम् ? इत्यादि

इसी तरह ग्यारहवीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र ने भी अपने दशावतार-चरित में राधा की चर्चा की है। श्लोक इस प्रकार है:—

गच्छन् गोकुलगूढ़कुञ्जगहनान्यालोकयन्केशवः
सोत्कंठं वनितानतो वनभुवा सख्येव रुद्धाञ्जलः।
राधाया न न नेति नीविहरणे वैक्लव्यलक्ष्याक्षराः
सस्मार स्मरसाध्वसाङ्कुततनोरर्द्धोक्तिरिक्ता गिरः।

इसी प्रकार वेणीसंहार नाटक के इस श्लोक में भी राधा नाम है—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसे।
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽत्र कलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुण्णो ऽनुनयः प्रच्छन्नदयितांदृष्टस्य पुष्णातु वः॥

हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में जो अपभ्रंश के दोहे संगृहीत हैं, वे उनके समय के पहले के हैं। कुछ ऐसे भी होंगे, जो उनके सम-सामयिक कवियों के लिखे होंगे। इनमें भी राधा का प्रधान गोपी रूप में ही उल्लेख है। इस दोहे में राधा के वक्षः स्थल की महिमा इस प्रकार बताई गई है कि इसने आँगन में तो हरि को नचा ही दिया, लोगों को विस्मय के गर्त में गिरा ही दिया (इससे बड़ी सफलता इसकी क्या हो सकती है) सो, अब इसका जो हो सो हो—

हरि णच्चाइव पंगणइ विम्हइ पाडिउ लोइ।
एम्वहिं राह पयोरहं जं भावइ तं होइ॥

जो लोग गाथा सप्तशती में आए हुए राधा शब्द को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें आश्वस्त होकर इतना तो कम से कम मान ही लेना चाहिए कि नवीं-दसवीं शताब्दी में राधा का नाम उत्तर भारत में अत्यन्त परिचित हो चुका था। इसलिए वर्तमान पृथ्वीराजरासो में संयोजित 'दसम' अर्थात् 'दशावतारचरित' में राधा नाम

आ जाने मात्र से यह नहीं सिद्ध होता कि यह रचना चन्द की नहीं है। परन्तु मैं यह भी नहीं कह रहा हूँ यह रचना चन्द की ही है। मेरा निवेदन केवल इतना हो है कि यह दसम् किसी अच्छे कवि की रचना है और भक्ति काल के पूर्ववर्ती दशावतार वर्णन-परम्परा का एक उत्तम निदर्शन है। विनयमंगल की ही भांति इसे भी भक्तिपूर्वकाल को साहित्यिक रचना-प्रवृत्ति का निदर्शन मानना चाहिए। ये दोनों रचनाएँ 'रासो' से बाहर की हैं। यह भो सम्भव है कि चन्द ने अलग से इन दो पुस्तकों की रचना की हो और बाद में वे रासो के साथ जोड़ दी गई हों। या फिर यह भी हो सकता है कि ये किसी अन्य अच्छे कवि या कवियों की रचनाएँ हों। रासो में ये जोड़ी गई हैं, यह स्पष्ट है। दशावतार का कोई प्रसंग नहीं था। यदि था भी तो बहुत थोड़ा, उसका इतने विस्तार से कहने की वहाँ कोई आवश्यकता नहीं थी। जान पड़ता है कि रासो में कुछ थोड़ा-सा प्रसंग देख कर किसी ने बाद में इस पुस्तक को उसमें जोड़ दिया है और विनयमंगल तो स्पष्ट रूप से अलग पुस्तक है। उसके समाप्त हो जाने के बाद भी रासो में विनयमंगल का प्रसंग चलता रहता है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि उस स्थान पर विनयमंगल का थोड़ा-सा प्रसंग देख कर किसी ने वहाँ पर इस पूरी पुस्तक को जोड़ दिया है। वस्तुतः ये दोनों ही भक्तिकाल के काव्य रूपों के उत्तम नमूने हैं। (हि० सा० आ०, पं० व्या०, पृ० ११०-१११)।

परिशिष्ट

(१)

सहायक पुस्तकों एवं शिलालेखों की सूची

१ अबुल्फ़िदा
२ अकबरनामा
३ आइने अकबरी
४ आँवलदा का लेख
५ इतिहास राजस्थान
६ ईरान की तवारीख़
७ उदयपुर राज्य का इतिहास
८ कश्मीर का इतिहास
९ कदमाल गाँव का ताम्रपत्र
१० कर्नल टॉड का जीवन चरित्र
११ कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास
१२ कान्हड़दे प्रबन्ध
१३ कादम्बरी
१४ काव्यानुशासन
१५ किरातार्जुनीय
१६ कीर्ति कौमुदी
१७ कुम्भा का दानपत्र
१८ कुमारपाल प्रतिबोध
१९ कुन्ती प्रसन्ना ख्यात
२० कोषोत्सव स्मारक संग्रह
२१ खरतर गच्छ पट्टावली
२२ खड़ी बोली हिन्दी-साहित्य का इतिहास
२३ खसूसन कुतुबुद्दीन ऐबक
२४ गउडवहो
२५ ग्वालियर के शिलालेख
२६ गंभीरी नदी के पुल का शिलालेख
२७ गोविन्दचन्द्र का ताम्रपत्र
२८ चन्दबरदाई और उनका काव्य
२९ चन्द-छन्द-महिमा
३० चतुर्विंशति प्रबन्ध
३१ चाहुवान कल्पद्रुम
३२ चित्तौड़ के शिलालेख
३३ चौहानों की वंशावली
३४ चौहानों की ख्यातें
३५ जयमलवंश प्रकाश
३६ जयचन्द प्रकाश
३७ जयचन्द प्रबन्ध
३८ जयनगर पंचरंग
३९ जामे-उल हिकायत
४० जैन साहित्य का इतिहास
४१ जैतसीराव को छंद

७१ पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता
७२ पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार
७३ पृथाबाई के पत्र
७४ प्रकाश नामी
७५ प्रबन्ध कोष
७६ प्राकृत व्याकरण
७७ प्राकृत पिंगल
७८ फ़ारसी तवारीखें
७९ फुतूह कुतुबी
८० बसन्त विलास
८१ बांसवाड़ा का ताम्रपत्र
८२ बीजोलिया का शिलालेख
८३ भविष्य पुराण
८४ भारत के प्राचीन राजवंश
८५ भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास
८६ भीम विलास
८७ भोजदेव की प्रशस्ति
८८ 'मरुभारती' में प्रकाशित लेख
८९ महाकवि चन्द-वरदाई और पृथ्वीराज रासो
९० मनुस्मृति
९१ महाकवि चन्द के वंशधर
९२ मदनपालदेव का ताम्रपत्र
९३ मिश्रबन्धु विनोद
९४ मेनाल का शिलालेख
९५ रसराज
९६ रसिका संवत
९७ रंभामंजरी
९८ रघुवंश मुक्तामणि
९९ रासमाला
१०० राणपुर जैनमंदिर के शिलालेख
१०१ राजतरंगिणी
१०२ रासो और चन्द बरदाई
१०३ राजपूताने का इतिहास
१०४ राजस्थान रत्नाकर
१०५ राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज
१०६ राज विलास
१०७ राजस्थानी (पत्रिका) के लेख
१०८ 'राजस्थान भारती' के लेख
१०९ रासो का निर्माणकाल
११० राजप्रशस्ति
१११ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा
११२ राजपूताने के विभिन्न भागों के प्राचीन नाम
११३ राठौड़ों के दान-पत्र
११४ ललित विग्रह (नाटक)
११५ लुण्ढदेव की प्रशस्ति
११६ लोहारी ग्राम के शिलालेख
११७ वस्तुपाल के मंदिर की प्रशस्ति
११८ 'वरदा' (पत्रिका) के लेख
११९ विक्रमांक देव चरित
१२० विग्रहराज नाटक
१२१ वीर काव्य
१२२ वीर विनोद
१२३ वंशावली कुरसीनामा
१२४ वंश प्रकाश
१२५ वंश भास्कर

१२६ वृत्त विलास
१२७ व्रत रत्नाकर
१२८ शोध-पत्रिका में प्रकाशित लेख
१२९ श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रपूर्णि
१३० श्री एकलिंग महात्म्य
१३१ सफरनामा
१३२ सकरायमाता के शिलालेख
१३३ साहित्य संदेश
१३४ सिरोही राज्य का इतिहास
१३५ सुर्जन चरित
१३६ हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज
१३७ सुरथोत्सव
१३८ हम्मीर रासो
१३९ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण
१४० हम्मीर काव्य
१४१ हर्षनाथ मंदिर का शिलालेख
१४२ हरकेलि नाटक
१४३ हम्मीर का दानपत्र
१४४ हथूड़ी के लेख
१४५ हरिपिंगल प्रबन्ध
१४६ हाड़ा राजपूतों की वंशावली
१४७ हांसी का शिलालेख
१४८ हिन्दी के कवि और काव्य
१४९ हिन्दी काव्यधारा
१५० हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
१५१ हिन्दी नवरत्न
१५२ हिन्दी अनुशीलन
१५३ हिन्दी साहित्य का आदिकाल
१५४ हिन्दी के शिला और ताम्रलेख

अंग्रेजी

155 Annual Report of the search of Hindi Manuscripts.
156 Ancient India —S. Krishnaswamy Ayanger.
157 Annals and Entiquities of Rajasthan.
158 Bombay Gazetteer.
159 Catalouge of the Sanskrit manuscripts in the library of India office.
160 Epigraphica Indica.
161 Early History cf India.
162 Entiquities of India.
163 Gaikwar Oriental Series.
164 History ol India as told by its our Historians.
165 History of Literature and Mythology of Hindus.
166 Imperial Gazettier.
167 Indian Culture.
168 Indian Historical Quarterly.
169 Indian Entiquery.
170 Journal of the Asiatic. Society Bengal.
171 Journal of the Great Britain and Ireland.
172 Mythology of Hindus.
173 Modern Vernacular Literature of Hindusthan.

174 Proceedings of the Royal Asiatic Society Bengal.

175 Progress report of the Archiological survey.

176 Some Accounts of the Genelogies in the Pritviraj Vijai.

177 The Glory that was Gurjerdes

178 Tod Rajasthan.

179 Viena Oriental Journ

इस ग्रन्थ में उल्लिखित इतिहासकारों एवं शोध विद्वानों की नामावली

अगरचन्द नाहटा
अबुलफ़ज़ल
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
अल्लामा अब्दुल्लाह यूसुफ़अली
उदयसिंह भटनागर
ए० कन्हिघम
एच० ईलियट
एम० एम० फ़ैलन
एफ० एस० ग्राउज़
कविराजा मुरारीदान
कविराजा श्यामलदास
कर्नलटाड
कवि जयानक
कविराव मोहनसिंह
कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी
कविराज चन्डीदान
कान्तिसागरजी मुनि
कुंवर देवीसिंह मंडावा
कृष्णानन्द
कृष्णदेव शर्मा एम० ए०
गणेशप्रसाद द्विवेदी
गार्सां दतासी
गिरिजाशंकर पेटरजी
गोवर्धन शर्मा
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
गंगाप्रसाद कमठान
जगन्नाथदास रत्नाकर
जान बीम्स
जिनप्रभ सूरि
जिनपाल
जेम्स मोरीसन
जी० ग्रियर्सन
झाबरमल शर्मा
डा० ब्हूलर
डा० भगवानदास इंद्रजी
डा० डी० आर० भंडारकर
डा० होर्नले
डा० मोतीलाल मेनारिया
डा० टेसीटोरी
डा० आर० मित्र

डा० एच० एच० विल्सन
डा० रूडोल्फ़ होर्नली
डा० हन्टर
डा० दशरथ शर्मा
तारकनाथ अग्रवाल
नयचन्द्र सूरि
नर्मदाशंकर
नरोत्तम स्वामी
नानूराम
प्रह्लाद
पं० मथुराप्रसाद दीक्षित
पं० हरिवल्लभ
पं० विल्हण
प्रिन्स एडवर्ड हाल
प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी
प्रो० व्हूलर
प्रो० मीनाराम रंगा
प्रो० मूलराज जैन
प्रो० वेलणकर
बनारसीदास चतुर्वेदी
बनारसीदास जैन
बाबू श्यामसुन्दरदास
बृजरत्नदास
वी० ए० स्मिथ
भँवरलाल नाहटा
माधो भट्ट
मि० फ्राब्स
मि० पीटर्सन
मिश्र बन्धु
मि० फ़ैल
मुनि जिनविजयजी
मेजर रेवर्टी
मेरुतुंग
मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या
रामनारायण दूगड़
रामकुमार वर्मा
रामनाथ रत्नू
राय बहादुर राजा राजेन्द्रलाल
राजशेखर
विजयसिंहाचार्य
विन्सेन्ट ए० स्मिथ
सर जार्ज ग्रियर्सन
सूर्यमल्ल मिश्रण
हजारीप्रसाद द्विवेदी
हसन निजामी
हरिप्रसाद शास्त्री
हेमाचार्य
हेमचन्द्र सूरि
ह्वेनसांग

ग्रन्थ-उल्लिखित ऐतिहासिक एवं भौगोलिक स्थानों की नामावली

अ आ-औ

इ

उ

ए

क

ल

व

श

स

ह